भाव निर्झरिणी

भक्ति की चेतावनी

[द्वितीय-सर्ग
टीका सहित]

आनन्द घन

भाव निर्भ्करिणी

* * *

भक्ति की चेतावनी

[द्वितीय-सर्ग
टीका सहित]

* * *

आनन्द घन

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
अरुण गनेड़ीवाला
५६१, ब्लाक 'ओ' न्यू अलीपुर
कलकत्ता-७०००५३
दूरभाष : ४५०४५८

प्रकाशन :
श्रावण कृष्णा षष्ठी
सम्वत्—२०४३
दिनांक २७-७-८६

मुद्रक : भागचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी,
कलकत्ता-७००००७
दूरभाष : ३३-१३६३

मूल्य : ४०) रु०

1. करे करायें आपे आप, मानुष के कछु नाहिं हाथ।

2. जो कुछ है सो तेरा, क्या लागे मेरा ॥

दो शब्द

'भाव-निर्झरिणी' पुस्तक सन्त वाणी का संग्रह है। पुस्तक के द्वितीय सर्ग की वाणियों का विश्लेषण इस पुस्तक में है। ये वाणियाँ धर्म विशेष से आबद्ध नहीं, सत्य भाव से युक्त हैं। साधक किस पथ पर बढ़कर साध्य (ईश्वर) की प्राप्ति करता है यह अर्थ नहीं रखता क्योंकि प्रधान ईश्वर की प्राप्ति है, पथ विशेष नहीं। साधन कुछ भी हो किन्तु उद्देश्य लक्ष्य तक पहुँचना रहे तो व्यक्ति सहज ही लक्ष्य को पा लेता है। पंथ विशेष को प्रधान मानने वाला अपने ही पथ को सर्वश्रेष्ठ बतलाता हुआ अधिक से अधिक उसी पंथ के अनुयायियों को देखना चाहता है। यह संख्या वृद्धि उसके अभिमान को जाग्रत करती है और वह इसी में अटक जाता है। प्रधान संख्या नहीं, प्रधान भाव है। भाव की जागृति के पश्चात् व्यक्ति मत-मतान्तर के झगड़े में नहीं पड़ता, सदैव सुन्दर भावों को धारण कर प्रभु के चरणों में निवास करना चाहता है। वह जान जाता है कि यह बाहर का पसारा बाहर ही रह जायेगा, छूट जायेगा और जो भाव दिल पर जमे हुए हैं वे ही ईश्वर-मिलन का कारण बन सकेंगे।

बाहर के साज सजाने वाला सदा बहिर्मुख बना रहता है, अन्तर्मुखी नहीं हो पाता—धर्म के नाम पर कार्य बदलना व कार्य सजाना ही उसके लिये यथेष्ट होता है, हृदय परिवर्तन उसकी कल्पना के बाहर हो जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति 'मैं-मेरे' को पकड़ कर भक्ति करता है और सदा आनन्द से दूर ही बना रहता है। भक्ति में भक्त का अपनापन खत्म हो जाता है किन्तु जहाँ भक्ति में कर्म प्रधान है और 'मैं-मेरे' के लिए स्थान है वहाँ हृदय परिवर्तन और अपनापन खत्म होने की अवस्था दुर्लभ हो जाती है। संयोग से प्राणी सन्त वाणी का सम्पर्क पाकर यदि सत्य दृष्टि पाये तो शायद उसमें भाव की जागृति हो जाये। भाव की जागृति यदि कुछ क्षण के लिए भी मनुष्य में हो जाती है तो वे क्षण उसके जीवन में अनुपम एवं चिरस्मरणीय बन जाते हैं। ऐसे भाव के लिए यदि प्राणी के अन्तर में अज्ञात चाहना (भक्ति) प्रारम्भ हो जाये तो एक दिन मनुष्य अवश्य उस स्थिति का मालिक बन जाये जिसे विरले ही पाते हैं। चाहना का ही रूप है कि आज मनुष्य स्थूल का दास हो रहा है। स्थूल दिखलाई देता है किन्तु सूक्ष्म दिखलाई नहीं देता अतः दिखलाई न पड़ने वाले की केवल चर्चा ही रह जाती है, उसकी प्राप्ति का आनन्द नहीं मिल पाता।

सूक्ष्म भाव (आनन्द व ईश्वर) दिल की कद्र करने से ही पाये व पहिचाने जा सकते हैं। सन्त वाणी प्राणी के हृदय में एक अज्ञात आनन्द का अनुभव कराती है जिसके कारण उसका जीवन अद्भुत हो जाता है। सन्त वाणी में निहित भाव का स्पष्टीकरण प्राणी मात्र के हित में सहायक सिद्ध हो सकेगा ऐसी आशा की जाती है। आशा निराशा में परिवर्तित हो सकती है किन्तु विश्वास अमूल्य निधि है, जिसे यह धन प्राप्त हो जाता है वह इस परिवर्तनशील संसार में रहकर भी आनन्दमय जीवन बिताता है। मनोविनोद की भावना से पुस्तक का अध्ययन करने वालों की बात भिन्न है किन्तु जो विश्वास के साथ इसमें प्रवेश करेंगे उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा जायेगा।

पाठक अध्ययन कर सकता है किन्तु उसकी स्थिति बनाने वाला अज्ञात है। हे अज्ञात! तुझसे प्रार्थना है कि ये सरल भाव वाले तेरे बच्चे तेरे भावों को समझना ही नहीं, हृदय में बसाना चाहते हैं। तेरी मेहर ही इनकी चाह को यथार्थता में परिवर्तित कर सकेगी। तू सदा इन्हें अबोध जान इन पर अपना वरदहस्त बनाये रखना कि तू इनके लिये अज्ञात न रह जाये और भाव इनका अपना धन बन जाये।

आनन्द की वृष्टि करने वाले सन्त तेरी जय हो

....

समर्पण

मेरे प्रभो !

तू हमेशा आँखों के सामने है फिर भी आँखें तुझे स्पष्ट देख नहीं पातीं क्योंकि ये आँखें धुंधली हैं। इन्हें तेरा आभास तो मिलता है किन्तु इतने से इन्हें सन्तोष नहीं, ये तेरा जलवा स्पष्ट देखना चाहती हैं। अतः तू मेहरबानो कर और अपनी रूप माधुरी का पान करा कि ये आँखें तृप्त हो जायें—ये केवल तुझे ही देखती रहें, क्षण भर के लिये भी इधर उधर न देखें। अन्यथा मेरा आगमन और तेरा मिलन दोनों ही वृथा होंगे, मैं तेरा होकर भी तुझसे दूर ही रह जाऊँगा।

तेरे दर्शन का अभिलाषो

....

भक्ति की चेतावनी

१ बाहर की पूजा, संस्कार से मुक्त न कर सकी।

मनुष्य संस्कारों के बन्धन में जकड़ा हुआ है किन्तु उसके ये बन्धन बाहर की पूजा से नहीं कट सकते। पूजा के कार्य अवश्य ही शान्तिप्रद होते हैं परन्तु हृदय में आलोक नहीं फैला सकते। आलोक के बिना व्यक्ति संस्कारों को देख नहीं पाता अतः उनसे छुटकारा भी नहीं पा सकता। ऐ प्राणी ! हृदय में आलोक सन्त-वाणी द्वारा फैलता है। सन्त, प्रकाश की जीती जागती मूर्त्ति होते हैं। उनका साथ (सत्संग) ईश्वर-मिलन के लिये सच्ची चाह पैदा कर देता है परिणाम ईश्वर की पूजा केवल बाहर से नहीं होती, अन्तर घट का एक-एक भाव ईश्वर-मिलन के लिए होने लगता है। धीरे-धीरे अन्तर घट प्रकाशित होता चला जाता है और उस आलोक में संस्कारों के बन्धन कटते जाते हैं। शरीर, घर-परिवार व संसार—जिन्हें आज तक संस्कारों के कारण व्यक्ति अपना मानता आया था, उनका रूप बदल जाता है और सम्पूर्ण विश्व का कण-कण ईश्वरमय बन जाता है।

२ चाही कब पाई ? गलत है—पाई जब चाही।

मनुष्य की यह धारणा है कि प्रत्येक चाही हुई वस्तु पायी नहीं जा सकती, किन्तु उसकी यह धारणा गलत है। चाह में तीव्रता यदि न हो तो इच्छित वस्तु व भाव आदि के मिलने में देर हो सकती है अन्यथा वे **जरूर** मिलते हैं। व्यक्ति धीरज खो बैठता है अतः जल्दी ही हताश व निराश हो जाता है। यदि वह धीरज से काम ले तो सफलता उसके कदम चूमने लगे। ऐ प्राणी ! देख, बच्चा जब माँ के लिये रोना शुरू कर देता है तो मां को हाथ के कामों को छोड़ कर उसे निश्चित ही गोद में लेना पड़ता है। जब एक छोटे से बच्चे की छोटी सी चाह पूरी होती है तो तेरी चाह पूरी नहीं होगी—ऐसा क्यों समझ बैठा है ? चाह तुझे अवश्य ही इच्छित भावों से मिलायेगी। तू तो बढ़ता चल, लगनपूर्वक बढ़ता चल—लक्ष्य को पाने का यही सही तरीका है।

३ साथी दुर्बलता नहीं। साथी-साक्षी। भीतर बाहर का साक्षी।

दिन-रात स्थूल जगत में विचरण करने वाला बुद्धि प्रधान प्राणी ईश्वर के सामने झुकना दुर्बलता का लक्षण समझता है किन्तु साथी (ईश्वर) का साथ दुर्बलता नहीं। सब प्रकार से सबल व्यक्ति को भी साथी की आवश्यकता पड़ती है। शरीर, पैसा, परिवार एवं तपस्या की ताकत जहाँ खत्म हो जाती है वहाँ साथी की क्षणिक स्मृति अद्भुत शक्ति प्रदान करने वाली बनती है। ऐ प्राणी! देख, ईश्वर का साथ पाकर ही तू सभी परिस्थितियों में तटस्थ (शान्त) रह सकेगा तथा दर्शक बन कर भीतर एवं बाहर की सभी गतिविधियों को देख सकेगा क्योंकि साथी का साथ ही तटस्थ दर्शक बनाता है। वह भीतर की प्रत्येक गतिविधि को दिखलाता है एवं बाहर की प्रत्येक परिस्थितियों का रूप बतलाता है। उसका प्रत्येक पल का साथ भीतर के भाव एवं बाहर के कार्य दोनों को सजा देता है।

४ इस क्रिया का कर्त्ता छिपा है फिर भी वाक्य है, अर्थ पूर्णता है।

ऐ प्राणी! मनुष्य का जीवन उस अधूरे वाक्य की तरह है जिसका अर्थ पूरा स्पष्ट रहता है किन्तु उसमें कार्य का कर्त्ता छिपा रहता है। जैसे—वह परदेश चला गया। परदेश जाने वाला कौन है—यह इस वाक्य से नहीं मालूम होता। देख, इस शरीर द्वारा भी अनेक क्रियाएँ हो रही हैं किन्तु इनका कर्त्ता कौन है, वह नहीं दिखता। कर्त्ता के बिना भी यह जीवन पूरा सा दिखलायी देता है और इसी भ्रम के कारण व्यक्ति कर्त्ता की खोज नहीं करता तथा स्वयं में ही खोया रहता है। किन्तु जब तक वह कर्त्ता को नहीं पा लेता तब तक जीवन की पूर्णता को भी नहीं पा सकता अतः बेचैन बना रहता है। देख, इस शरीर की प्रत्येक क्रिया का कर्त्ता कौन है—तू शान्त हो कर इस पर विचार कर। जिस दिन कर्त्ता को तू सम्मुख देख पायेगा उस दिन से तेरा जीवन अनुपम होगा।

५ मर्म का मर्म? मर्म में छिपा है। ऊपर वाले को बीच में लाओ।

ऐ प्राणी! प्रत्येक साधारण सी दिखने वाली घटना भी साधारण नहीं होती, उसमें ईश्वर की विशेष कृपा छिपी रहती है किन्तु इस मर्म से अवगत वे

ही हो पाते हैं जिन्होंने इस रहस्य को जानने की इच्छा रखी है। देख, मर्म शब्द के ऊपर लगी रेफ जब बीच में आ जाती है अर्थात् किसी भी भाव-विचार को जानने के लिये व्यक्ति जब रम जाता है तो वह उन्हें स्पष्ट देख पाता है। किन्तु वह उनसे आनन्द तभी ले पाता है जब मर्म शब्द के रेफ की तरह ऊपर रहने वाला ईश्वर उसके हृदय पटल पर आच्छादित हो जाता है अर्थात् ईश्वर के प्रति हृदय में आस्था जग जाती है तथा उसके साथ से दृष्टि स्वच्छ हो जाती है। ईश्वर के साथ से वह प्रत्येक कार्य व भाव का मर्म जान पाता है, ईश्वर की सारी रचना उसे आनन्द देने लगती है। अन्यथा दृष्टि के अभाव में वह अपने भाग्य को कोसता हुआ रोते-रोते ही संसार से विदा हो जाता है।

६ छूते ही मरता है, एक बार छू कर देख, डरता क्यों है ?

ईश्वर की शरणागति के खेल अनोखे होते हैं। जिसने ईश्वर की सत्ता को जाना है तथा चरण छू कर ईश्वर की शरण ग्रहण की है अर्थात् जो ईश्वर के सामने झुक गया है—उसकी दुनिया ही बदल गयी। वह किस चीज का अहंकार करेगा, क्योंकि वह जानता है कि प्रत्येक कार्य का कर्त्ता ईश्वर है। जब तक व्यक्ति ईश्वर को भुलाकर अपनी दुनिया में जीता है तब तक प्रत्येक कार्य उसे कर्त्तापन के 'मैं' से जोड़ते हैं, परिणाम वह छोटा होता चला जाता है तथा दुःख, चिन्ता आदि अनेक कष्टों से घिरता जाता है। ऐ प्राणी ! ईश्वर की शरण अहंकार-शून्य करने वाली है ! तू अपने पूर्व कर्मों की ओर देख कर डर मत, संशय-भ्रम को त्याग कर निर्भय हो कर प्रभु के चरणों में झुक जा। 'चरणों का जादू' तू झुक कर ही देख सकेगा। जो अहंकार एक पल के लिए भी तेरा साथ नहीं छोड़ता था वह चरण की शरण ग्रहण करने से स्वतः मिट जायेगा। तेरी दुनिया बड़ी हो जायेगी क्योंकि तू आज उसका है, जिसका यह सम्पूर्ण विश्व है।

७ कोई नहीं मानता ? तू मान कोई के फेर में न पड़ !

ऐ प्राणी ! यदि तेरी मंजिल सत्य है किन्तु उसे मानने वालों की संख्या अभी नहीं के बराबर है तो भी तू घबड़ा नहीं, आगे बढ़ता चल। इधर-उधर देखते रहने से तेरी गति धीमी पड़ जायेगी और तू मंजिल से दूर रह जायेगा। देख, सत्य अविनाशी धर्म है। "इसे मानने वाले कितने हैं, कोई धनी-मानी या प्रतिष्ठित व्यक्ति इसे मानता है या नहीं" आदि बातों से सत्य को तौला नहीं

जा सकता। इन बातों से यह घटता-बढ़ता नहीं, यह तो सूर्य के प्रकाश की तरह ज्यों का त्यों बना रहता है। जो इस प्रकाश तले बैठता है उसी को यह प्रकाशित करता रहता है। अतः यदि तू आज अकेला है तो भी तू बढ़ता चल। यदि तू प्रकाश की एक किरण भी पा सका तो वह प्रकाश कल तुझे प्रकाश पुञ्ज बना देगा एवं उसी प्रकाश से एक दिन तू सबको प्रकाश देने योग्य बन जायेगा।

८ तेरा ज्ञान कितनों की जान, जरा पहचान।

मनुष्य धन-जन की कमी से कष्ट में नहीं, वह अज्ञान से घिरा हुआ है इस लिये कष्ट में है। धन-जन मिल सकते हैं फिर भी अज्ञान यदि बना हुआ है तो कष्ट कभी मिटने वाला नहीं। अज्ञान, पुस्तक पढ़ कर नहीं हटाया जा सकता क्योंकि पुस्तकें केवल संकेत देती हैं, उलझनें नहीं सुलझा सकतीं। अज्ञान अन्धकार को मिटाने के लिए प्रत्यक्ष ऐसा आधार चाहिये जो ज्ञान से आलोकित हो। ऐ प्राणी! यदि तेरे हृदय में सत्य को पाने की लालसा है तो तू उसे कभी न नकार, प्राणपण से पाने की इच्छा रख क्योंकि हृदय में ईश्वर को पाने की लालसा का उदय होना अज्ञात कृपा का प्रतीक है। ज्ञात के साथ से जब तू अज्ञात को जान सकेगा तो तेरी यह जानकारी केवल तेरे लिये लाभकारी नहीं होगी, न जाने कितनों को जान बख्शने वाली होगी। अन्यथा सब कुछ पाकर भी व्यक्ति यदि ईश्वर से जुड़ा हुआ नहीं, ज्ञान से आलोकित नहीं तो वह केवल शरीर का बोझ ढोता रहेगा और जीवित ही मृतक समान रहेगा।

९ मुँह न मोड़, दिल न तोड़, लगा होड़ जीत ही जीत है।

ऐ प्राणी! यदि तू ईश्वर से विमुख होकर चलेगा तो तेरा दिल हमेशा छटपटाता रहेगा फिर भी तू इस तथ्य को नहीं जान पायेगा कि यह छटपटाहट क्यों है—ऐसे में सब कुछ पाकर भी तू बुझा-बुझा सा रहेगा। देख, तू दिल की उपेक्षा न कर, दिल की उपेक्षा से तेरा जीवन भार बन जायेगा। हमेशा जिन्दादिल बने रहने के लिये तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर तथा तेजी से उसकी ओर बढ़ता चल क्योंकि तूने यह जिन्दगी ईश्वर-मिलन के लिये पायी है। ईश्वर को पाकर तेरा हृदय शुद्ध होता चला जायेगा परिणाम तू दिल की छोटी से छोटी भावना की भी कद्र कर पायेगा—यह तेरी जीत की बाजी होगी। अन्यथा व्यवहार का बोझ ढोते-ढोते तू हारा-थका मृत्यु-मुख में समा जायेगा!

१० जब जीते जीत, मरे क्यों हार ?

ऐ प्राणी ! सम्पूर्ण जीवन काल में व्यक्ति जिन भाव-विचारों के साथ जीता है, अन्तिम समय वे ही भाव सम्मुख रहते हैं, उस समय नये भाव पाने की शक्ति व्यक्ति में नहीं रहती। देख, यदि तू ने जीवित रहते प्रसन्न रहने का गुर पाया है तो वे भाव तुझे सर्वदा प्रसन्न बनाये रखेंगे। ये भाव ईश्वर-कृपा प्राप्त प्राणी को सद्गुरु के संरक्षण में मिलते हैं तथा एक बार मिलने के पश्चात् फिर कभी जाते नहीं, सदा बने रहते हैं। ये शरीर की भी अपेक्षा नहीं रखते अर्थात् शरीर जाने के पश्चात् भी बने रहते हैं। इसे पाने वाला जीवित अवस्था में सदा प्रसन्नवदन दिखता है तथा इसी भाव के साथ दुनिया से विदा हो जाता है। मृत्यु उसे भयभीत नहीं बना पाती अतः दुःख, चिन्ता, भ्रम आदि भी उसके समीप नहीं आ पाते। मृत्यु की चिन्ता उन्हें करनी पड़ती है जो जीवन से हारे हुए हैं किन्तु जिन्होंने जीवित अवस्था में बाजी जीत ली है अर्थात् उन भावों को पा लिया है जो अविनाशी हैं, वे मरकर भी मिटते नहीं, उनका शरीर मिटता है किन्तु वे अविनाशी भावों के साथ सदा बने रहते हैं।

११ प्राणी की प्रेम की वाणी प्राणों में मोह भी उत्पन्न करती और मोह का हनन भी करती।

प्रेम में सहज आकर्षण है। यह प्राणी मात्र को आकृष्ट करने वाला है किन्तु दिन-रात मोह से घिरा रहने वाला प्राणी प्रेम को नहीं पहचान पाता, वह प्रेम पर भी मोहित होता देखा जाता है क्योंकि आज तक उसने मोह को ही प्रेम जाना है। ऐ प्राणी ! शरीर के साथियों की वाणी मोह पैदा करने वाली है जबकि सन्त-वाणी हृदय में प्रेम का जागरण करने वाली है। प्रेम परमेश्वर है। यह अन्य सभी बन्धनों से मुक्त करने वाला है। यह शरीर के माध्यम से दिखलाई देता है किन्तु है यह अशरीरी भाव। देख, तू यदि कहीं ऐसी प्रेम की मूर्ति के दर्शन कर पाये तो उससे मोह न कर बैठना, प्रेम से ही उसे स्वीकारना। यदि तू मोह कर बैठेगा तो घर-परिवार की तरह उनका अभाव भी तुझे खलेगा और यदि प्रेम को प्रेम से अपना लेगा तो तू जन्म-जन्मान्तर के बन्धन (मोह) से छूट जायेगा क्योंकि प्रेम प्रकाश है और प्रेम प्रकाश के सम्मुख मोह अन्धकार टिक नहीं सकता।

१२ अवलम्ब चाहता है, अविलम्ब अवलम्ब चाहता है किन्तु विलम्ब क्यों हो रही है उस कारण की ओर कब देखता है ?

ऐ प्राणी ! जब तक ईश्वर के प्रति हृदय में सच्ची आस्था नहीं होती तब

तक ईश्वर के कार्य दिखलाई नहीं पड़ते। देख, अभी तेरी आस्था घर-परिवार में है। घर-परिवार से घबड़ा कर तू ईश्वर का नाम ले लिया करता है, उसका सहारा चाहता है तथा जल्दी से जल्दी पाना चाहता है किन्तु "ईश्वर ही एक मात्र सहारा देने वाला है" इस सत्य को तू नहीं जानता। देख, जब अन्य सहारे सम्मुख नहीं रह जाते, निर्बल हो कर व्यक्ति ईश्वर के आधीन हो जाता है तब ईश्वर का सहारा मिलता है। अतः तू अपनी ओर देख कि तुझे अवलम्ब मिलने में विलम्ब क्यों हो रही है, तू अन्य (संगी-साथियों) की ओर देखने में तो नहीं लगा है? ईश्वर का सहारा जब भी किसी ने पाया है, एकमात्र ईश्वर का बन कर ही पाया है।

१३ सिद्ध की सिद्धि बहुत अच्छी, सिद्धि की विधि भी जान।

ऐ प्राणी! जो सिद्ध पुरुष हुए हैं एवं जिन्होंने सत्य को जाना है, उनके समीप बैठने का तुझे यदि अवसर मिला है तो तू उस अवसर को खो मत, उस अवसर से लाभ उठा। उन्होंने जिन भावों को अपना कर सत्य की प्राप्ति की है, तू भी उन भावों को ग्रहण कर कि जो सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई है वह तुझे भी प्राप्त हो सके। यदि उनके समीप जाकर भी तू धन-जन की याचना करता रहेगा तो तू उस शक्ति से दूर ही रह जायेगा, जो उन्हें प्राप्त है। धन-जन सत्य की प्राप्ति के पश्चात ही सुखदायी होते हैं, सत्य से विमुख रहने से ये कष्टदायी ही बनते हैं। अतः तू मिले हुए अवसर का लाभ उठा तथा सद्गुरु के समीप बैठ कर सत्य आखें ग्रहण कर कि तेरा सद्गुरु को पाना सार्थक हो और तेरी दुनिया आनन्दमयी हो जाये।

१४ खोज कर लिख। खो कर लिख।

ऐ प्राणी! 'ईश्वर है' यह तू सुनी सुनाई बातों के आधार पर न लिख। तू प्रथम ईश्वर को खोज। खोजते-खोजते जब तेरा अहं विलीन हो जाये और तू ईश्वर को पा जाये तब उसके बारे में कुछ लिख। ईश्वर को जाने बिना कुछ लिखना स्वयं को ही धोखा देना है। ऐसी स्थिति में तू ईश्वर को कभी समीप नहीं पा सकेगा, वह सदा तुझसे दूर ही बना रह जायेगा। ईश्वर की खोज के पश्चात भी तू ईश्वर में डूब कर लिख। ईश्वर को हर पल सम्मुख देखे बिना तेरा लिखना पूरा सही नहीं हो सकेगा। अतः तू प्रथम ईश्वर को खोज, तत्पश्चात उसी में खो जा, अब उसके लिये कुछ लिख कि तेरा लिखना सरस हो।

१५ जल पान कर तृषा मिटे।

ऐ प्राणी ! तू जन्म-जन्मातर का प्यासा है। इस प्यास को बुझाने के लिये तू चारों ओर चक्कर काटता रहता है फिर भी तेरी प्यास नहीं बुझती। देख, तेरी यह प्यास वस्तु, व्यक्ति, आमोद-प्रमोद आदि से मिटने वाली नहीं, सन्त-वाणी रूपी जल से मिट सकेगी। अतः तू सन्त की शरण ग्रहण कर कि तेरे हृदय की तृषा शान्त हो। अन्तर की बेचैनी (चाह) तेरी सहायक बनेगी तथा तू सन्त की शरण पाने में सफल हो सकेगा। जिस दिन से तू उनकी वाणी का सम्पर्क पा जायेगा तथा उसको हृदय में धारण करने के लिए लालायित होगा उस दिन तेरी तृषा मिट सकेगी और तू तृप्ति का आनन्द ले सकेगा। अन्यथा वाणी के अभाव में तू कभी सत्य दृष्टि नहीं पा सकेगा अतः सदा बेचैन ही बना रहेगा।

१६ किसी को शाप, किसी को बाप—कहना क्या ठीक है ?

ऐ प्राणी ! तू स्वार्थ से प्रेरित होकर भिन्न-भिन्न स्थितियों को अपना लेता है। यदि किसी से तेरा स्वार्थ पूरा होता है तो वह तेरे लिये सब कुछ बन जाता है और यदि किसी से स्वार्थ में बाधा आती है तो वह तेरा कुछ भी नहीं रह जाता। तेरी यह स्थिति शोभनीय नहीं। देख, तू प्यार करना सीख, स्वार्थ की पूर्ति के लिए इतना परेशान मत बन। शुद्ध हृदय से प्रेम को अपना कर जब तू आगे बढ़ेगा तो तेरे सभी कार्य स्वतः पूरे होते जायेंगे तथा तू हृदय की सुन्दर भावना का भी आनन्द ले सकेगा। प्रेम से ही तुझे वह दृष्टि प्राप्त होगी जिसमें 'सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है' तू इसे देख पायेगा और बाहरी परिस्थितियों का रूप भी समझ पायेगा। अन्यथा तू स्वार्थ से आबद्ध हुआ हृदय के भाव कलुषित कर बैठेगा अर्थात जिनसे तेरा स्वार्थ पूरा होता सा दिखेगा वे तेरे माई-बाप होंगे और जिनसे स्वार्थ में बाधा आयेगी वे तेरा कोपभाजन बनेंगे।

१७ घृणा नहीं, प्यार भी नहीं। कर सके तो प्यार कर, किन्तु इसमें भी धोखा है।

ऐ प्राणी ! तू किसी से घृणा करके उनसे दूर-दूर न रह और न अपना मानकर मोह बन्धन में जकड़—ये दोनों ही बन्धन हैं। इनमें बँधा हुआ तू बन्धन के कष्ट से कराहता रहेगा। देख, बन्धन तोड़ने का रास्ता प्रेम है अतः तू कर सके तो सबसे प्रेम कर। प्रेम अशरीरी भाव है। प्रेम के नाम पर तू

कहीं शरीर को ही प्रधान नहीं मान बैठना अन्यथा प्रेम के नाम पर भी तुझे धोखा मिलेगा। प्रेम जब हृदय में अङ्कुरित होने लगता है तब अन्य भाव—घृणा, द्वेष, मोह, स्वार्थ आदि विलीन होने लगते हैं, जैसे प्रकाश के आगमन के साथ-साथ अन्धकार विलीन होता चला जाता है। हृदय में प्रेम के अङ्कुरित होने की यही पहचान है कि जीवन प्रकाश से भरता चला जाता है।

१८ प्यार में धोखा ? हाँ यदि शरीर का प्यार है।

'प्यार' शरीर के माध्यम से दिखलाई देता है किन्तु है यह अशरीरी भाव। एक बार प्यार की जागृति हो जाने पर शरीर जाता है किन्तु प्यार नहीं जाता, सदा सदा के लिये रह जाता है। प्यार में धोखा तभी मिलता है जब प्यार शरीर के लिये होता है क्योंकि शरीर के साथी स्थायी नहीं होते, एक दिन बिछुड़ने वाले होते हैं। ऐ प्राणी ! सन्त प्यार की जीती जागती मूर्त्ति हैं। तू उनका सम्पर्क पाकर कभी उनके शरीर में न अटक जाना, उनको सदा भाव से ही अपनाना। यदि तू उनका भाव ग्रहण कर सका तो वे सदा तेरे साथ बने रहेंगे, शरीर जाने के पश्चात् भी साथ नहीं छोड़ेंगे अन्यथा उनका सामीप्य पाकर भी तू प्यार से दूर ही रह जायेगा, केवल शरीर की ओर देखता हुआ एक दिन धोखा खायेगा।

१९ शरीर शरीर है बात न सुन। बहुत कुछ चाहता और बोलता है—फैलता ही जाता है।

ऐ प्राणी ! यों तो शरीर की आवश्यकतायें अति अल्प हैं किन्तु इसकी चाह शैतान बच्चे की तरह अत्यधिक हैं ! यदि तू शरीर की चाह पूरी करने में लग जायेगा तो उसका कभी अन्त नहीं आयेगा क्योंकि इसकी चाह जैसे-जैसे पूरी होगी वैसे-वैसे इसकी माँगें और अधिक बढ़ती जायेंगी। अतः तू केवल इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रह किन्तु शरीर को प्रधान न बना। अन्यथा अनेक जन्म बीतने पर भी तू इसकी चाह पूरी नहीं कर सकेगा तथा केवल इसके पीछे परेशान बना अपनी सुख शान्ति खो बैठेगा। देख, शरीर ईश्वर प्राप्ति का साधन मात्र है। साधन की सुरक्षा परमावश्यक होती है किन्तु साध्य को भूल कर केवल साधन में ही अटक कर बैठ जाना उचित नहीं। अतः तू इसको उचित देखभाल करता हुआ शरीर पाने के उद्देश्य को जान कि तेरा शरीर पाना सार्थक हो।

२० दाम, काम, नाम फिर कहीं राम—व्यवहार। राम, काम, नाम फिर कहीं दाम—पुरुषार्थ।

ऐ प्राणी! यदि तेरे जीवन का लक्ष्य केवल अधिक से अधिक पैसा एकत्रित करना है तो तेरे सभी काम उसी के लिये होंगे। उठते-बैठते, सोते-जागते तेरा ध्यान पैसों के लिये होगा, पैसों के साथ से ही तुझे नाम प्रिय होगा तथा राम की स्मृति भी पैसों के लिये ही होगी। तेरे सभी कार्य व्यवहारिक होंगे, प्रेम का उनमें नामोनिशान नहीं होगा। किन्तु तू यदि पुरुषार्थी है तो तेरे जीवन का लक्ष्य राम (पुरुष) को पाना होगा और तेरे सभी कार्य राम को पाने के लिये होंगे। राम के साथ से यदि नाम भी मिले तो वह तुझे स्वीकार होगा तथा दाम तो तेरे लिये केवल शरीर को चलाने के लिये साधन मात्र रह जायेगा। देख, व्यवहारिक प्राणी जलन में जीता है जबकि पुरुषार्थी प्रिय के साथ जीता है अतः आनन्द में जीता है। अब यदि तू जीवन में आनन्द पाना चाहता है तो व्यवहारिक न बन, पुरुषार्थी बन कि तू जीवन को सही रूप से जान पाये।

२१ इन अन्धों को कौन समझाये, एक के अनेक रूप प्रतिक्षण।

ऐ प्राणी! तू तेरे चारों ओर जो कुछ देख रहा है वह तेरी भावना के अनुसार है। तेरी भावना के ही अनेक रूप तेरे सम्मुख हैं। राह हमेशा चाह के अनुसार ही होती है जिस पर बढ़ता हुआ व्यक्ति दुःख-सुख पाता है और सत्य दृष्टि के अभाव में उन्हें देख नहीं पाता तथा उसका दोषारोपण अन्य पर करता रहता है। देख, यदि तू वातावरण में परिवर्तन देखना चाहता है तो भाव परिवर्तन की इच्छा रख! भाव-परिवर्तन तेरी आँखें खोल देगा। सम्पूर्ण विश्व तेरे लिये आनन्द का भण्डार बनेगा तथा तुझे कण-कण से आनन्द मिलेगा। यदि भाव-परिवर्तन नहीं होगा तो बन्द आँखों से सभी कार्य करता हुआ तू भाग्य तथा संसार को कोसता रहेगा तथा इस सत्य से दूर ही रह जायेगा कि एक (भावना) के ही अनेक रूप प्रतिक्षण होते रहते हैं और वे ही दृष्टि के सम्मुख रहते हैं।

२२ राहत चाहने वाला, निश्चित राह पकड़ता है और चला जाता है—चलना और राहत साथ-साथ।

ऐ प्राणी! शान्ति चाहने वाला शान्ति के रास्तों को ही अपनाता है। यदि व्यक्ति अशान्ति के रास्ते पर बढ़ता जाये तथा शान्ति पाने की इच्छा

रक्खे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? ऐसी अवस्था में पूरी आयु व्यतीत हो जाने पर भी वह कभी शान्ति नहीं पा सकेगा। देख, यदि तू सचमुच शान्ति चाहता है तो एक कदम भी उन रास्तों पर न बढ़ा जहाँ तुझे अशान्ति मिलती हो। तू सदा शान्ति की राह पर कदम बढ़ा। 'इसके लिये कौन सी राह सही है' यह तू बाहरी कार्य-कलापों को देख कर नहीं जान सकेगा, जिस राह पर बढ़ने से तेरे अन्तर की बेचैनी शान्त हो—वही शान्ति की राह है। तू बिना किसी हिचकिचाहट के उस पर बढ़ता चल! जैसे-जैसे तू उस राह पर आगे बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे शान्ति तेरी सहयोगिनी बनेगी और तेरा प्रत्येक कदम 'शान्ति' के साथ होगा।

२३ हैरान है, क्यों ? हाय राम देख नहीं पाता, कह नहीं पाता, हो नहीं पाता।

ऐ प्राणी! तू आनन्दमयी सृष्टि में आकर भी सदा हैरान बना हुआ है क्योंकि यहाँ अनेक प्रलोभनों में फँस जाने के कारण तेरी आँखें बन्द हो गई हैं। अब 'सम्पूर्ण विश्व का संचालक राम है' तू इसे देख नहीं पाता, न राम को याद कर पाता है और न ही उसका बन पाता है। देख, यह संसार आनन्द भूमि है, इसके कण-कण से आनन्द का झरना बह रहा है किन्तु इस आनन्द को तू तभी पा सकेगा जब तू इसमें रमण करने वाले राम को देख पायेगा। अतः तू उसे भुलाकर हैरान न रह। तू राम को ही सब कार्य का कर्त्ता जानते हुए याद कर तथा उसी का बन जा क्योंकि वही तेरा सर्वस्व है। तेरी हैरानी विदा होने का यही स्वाभाविक रास्ता है।

२४ 'परम' न कह, रम तो परम। कह कर सन्तोष क्यों ?

ऐ प्राणी! तू ईश्वर को बड़ा मानकर केवल उसकी चर्चा करके खुश न हो। जिन्होंने ईश्वर को पाया है उनमें जो विशेष भाव तुझे नजर आते हैं, तू उन्हें पाने की इच्छा रख। जब तू उन भावों को पाने के लिये लालायित होगा तब वे भाव तुझमें भी आने लगेंगे जिनकी तू आज तक केवल चर्चा ही करता आया है। देख, यदि तू ईश्वर को बड़ा समझ कर केवल उसकी बातें ही करता रहेगा तो तू उसके भावों से कभी लाभान्वित नहीं हो सकेगा, ईश्वर सदा तुझसे दूर ही रह जायेगा। अतः तू ईश्वर की बातें करके ही सन्तोष न ले, वे भाव जो तुझे अच्छे लगते हैं उनको पाने के लिये अग्रसर हो कि वे तेरे अपने बनें।

२५ दिन रात यही बात।

ऐ प्राणी ! ईश्वर केवल तेरे कार्यों से खुश होने वाला नहीं, उसे तेरे अन्तर का भाव चाहिये। देख, भोगी के दिन रात का ध्यान भोग होता है, अन्य अनेक कार्य करते हुए भी उसका ध्यान भोग से नहीं हटता। इसी प्रकार जो ईश्वर की दुनिया में रहने का अभिलाषी है उसका ध्यान 'ईश्वर' रहता है। दिन रात के ध्यान के साथ ईश्वर के लिये जो कार्य होते हैं, वे ही ईश्वर से मिला सकते हैं। अतः तू ईश्वर को पाने के लिये केवल कार्यरत न हो, भाव ग्रहण कर। भाव की जागृति सत्संग में होती है अतः तू सत्संग कर। सन्त की शरण में बैठ कर जब तू सत्संग करेगा तो वह भाव पा सकेगा जिससे ईश्वर को पाया जा सकता है।

२६ मंगल में अहं गल।

ऐ प्राणी ! 'अहं' शरीर का भान क्षण भर के लिये भी भूलने नहीं देता तथा 'मैं-मेरे' की सृष्टि करता है। 'मैं-मेरे' से ही कष्ट की सृष्टि प्रारम्भ होती है। दुःख, चिन्ता आदि अनेक अमंगलकारी भाव भी 'मैं-मेरे' की ही देन हैं। ये भाव जब एक बार जीवन पर छा जाते हैं तो इनसे छुटकारा पाना कठिन होता है। देख, अहं का गलना ही अमंगलकारी भावना से छुटकारा पाना है तथा मंगलमयी भावना को अपनाना है। अतः तू उन चरणों की शरण ग्रहण कर जिन्हें पाकर तेरा अहं गलता जाये। चरण की शरण गहे बिना तू अहं से कभी विलग नहीं हो सकेगा और अहं के गले बिना तेरा मंगल होना कठिन है। अरे पगले ! जिस शरीर को तू 'मैं' समझता है वह तो वस्त्र की तरह है जिसे बदलते रहना पड़ता है। चरण की शरण तुझे शरीर का सही रूप दिखायेगी परिणाम 'मैं' स्वतः गलता चला जायेगा और तू आनन्द पायेगा।

२७ कहते दास बन गये स्वामी। कहा यही भक्ति, बनी वासना। यह खेल कभी शान्त भी होगा ?

ऐ प्राणी ! भक्ति प्रदर्शन का मार्ग नहीं, उन भावों के दर्शन का मार्ग है जिन्हें अपनाकर शरीर तथा संसार को पाना सार्थक होता है। भक्ति के नाम पर भी व्यक्ति यदि बाहर का स्वांग रचाये तथा भीतर में धन-जन को अपनाये तो यह किसी अन्य को धोखा देना नहीं, स्वयं के लिये ही धोखा है। ऐसा व्यक्ति वासना के चक्र में पड़ा हुआ केवल चक्कर खाता रहेगा, कभी शान्त

नहीं हो सकेगा। भक्ति के नाम पर जब तक यह खेल होता रहेगा तब तक व्यक्ति के जीवन तथा जगत में अँधेरा ही रहेगा। देख, तू भक्ति के नाम पर कभी आडम्बर न करना क्योंकि हृदय की प्रत्येक भावना को सच्चाई के साथ स्वीकारना ही भक्ति है। ऐसे शुद्ध हृदय में ही ईश्वर का वास होता है तथा ऐसा शुद्ध हृदय ही जीवन तथा जगत का रूप बदल देता है।

२८ देवता को वासना स्वर में पुकारा। भावना रोती रही, देवता व्याकुल। गन्दे हाथों ने जिसे स्पर्श किया, गन्दा बनाया।

ऐ प्राणी! देवता को तू वस्तुओं के लिये न याद कर, यदि तू उन्हें वासना पूर्ति का साधन बना लेगा तो उनसे और कुछ नहीं पा सकेगा। देख, वस्तुएँ केवल शरीर को सुख दे सकती हैं किन्तु अन्तर की भावना को तृप्ति नहीं दे सकती। देवता के समीप जाकर भी तू यदि शरीर का ध्यान रखेगा तो तेरी भावना (जो विकसित होने के लिये व्याकुल है) रो देगी तथा देवता भी व्याकुल हो जायेगा कि तू ने भावना की कद्र नहीं की। देख, तुझे कितनी सुन्दर काया मिली, खेलने के लिये माया मिली किन्तु तू ने मिली हुई वस्तुओं की कभी कीमत न की। तू हमेशा शरीर को प्रधान मान कर अभाव में रोता रहा तथा हृदय में गन्दगी फैलाता रहा। गन्दे हाथों से तू अब जिसे छूता है उसे ही गन्दा बना देता है और यही कारण है कि तू ईश्वर के समीप बैठ कर भी लाभ नहीं उठा पाता।

२९ तू नहीं जाने, तुझ में रस है।

ऐ प्राणी! तू रस का भण्डार है, तेरे रोम-रोम में रस समाया हुआ है किन्तु तू अभी उस रस से अनभिज्ञ है क्योंकि तेरी दृष्टि बाह्य विषयों का रस पान करने में लगी है। विषयों का रस जलन भरता है जबकि अन्तर का रस तृप्ति देता है और जो तृप्ति दे, यथार्थ में वही रस रस कहलाने के योग्य है। देख, तू अन्तर के रस से परिचित तभी हो सकेगा जब तू विषयों का रस पाकर उसी के पीछे न लगा रहेगा और तेरा हृदय तृप्ति पाने के लिये छटपटाता रहेगा। ऐसी अवस्था में तुझे ऐसे का साथ मिल जायेगा जो रस से सराबोर है। उसका साथ (प्रेम) तेरे अन्तर के भाव को जगा देगा। ईश्वर कृपा, तेरे अन्तर की बेचैनी तथा सन्त का साथ—इन तीनों का जब सम्मेलन होगा तब तू रस से सराबोर होगा। अन्यथा रस से परिपूर्ण होता हुआ भी तू रस पाने के लिये छटपटाता रहेगा।

३० रस नहीं जाने, रस में रस है।

ऐ प्राणी ! पेड़ अपने फल स्वयं नहीं खाता और नदी अपना जल स्वयं नहीं पीती, इनसे सदा अन्य को ही लाभ पहुँचता है। तेरा अनुभव (रस) भी केवल तेरे लिये नहीं है, यह कितनों को ही रस प्रदान करने वाला है। इस रहस्य को तू आज नहीं जान पाता है किन्तु तुझे मिले हुए रस का जब सर्वत्र वर्षण होगा तब यह रहस्य तेरे सम्मुख स्पष्ट होगा। देख, हीरा कभी नहीं कहता कि "मेरा यह मोल है", हीरे की कीमत जौहरी करता है। रस से सराबोर सन्त भी अपनी दृष्टि में महान नहीं होता, उनकी महानता का आनन्द महानता पाने के इच्छुक व्यक्ति ही ले पाते हैं। अतः तू यदि रस की प्राप्ति चाहता है तो अपना आपा खो दे कि तू रस में डूब जाये, तेरे जीवन में रस ही रस हो जाये और रस तुझे अलग से न दिखे, रस पाने के इच्छुक ही तुझसे रस ले पायें।

३१ बिछुड़ा कब ? जो योग हो।

ऐ प्राणी ! योग (मिलन) बिछुड़े हुए से होता है, जो सदा साथ है, उससे योग कैसा ? देख, ईश्वर सदा तेरे साथ है। उससे अभी तेरा परिचय नहीं। परिचय के अभाव में निकटतम सम्बन्ध रखने वाला भी यदि साथ रहे तो उससे मिलन नहीं होता। यही अवस्था तेरी भी है। तू ईश्वर से सदा साथ रहता हुआ भी दूर है और उसे दूर देखता हुआ पाना चाहता है। पाने के लिये तू अनेक रास्ते (पूजा पाठ आदि) भी अपनाता है किन्तु उसे पा नहीं सकता। अरे पगले ! जिसे तू स्थूल आँखों से नहीं देख पाता उसे स्थूल कार्यों से कैसे देख पायेगा ? वह स्थूल कार्यों से मिलने वाला नहीं, भाव में मिलने वाला है अतः तू अहंता ममता को छोड़ कर भाव में आ ! भाव में ही तू प्रियतम से मिल पायेगा और तभी तू देख पायेगा कि वही जर्रे-जर्रे में समाया हुआ है।

३२ भूखा, भोग चाहता है।

ऐ प्राणी ! भूख (अतृप्त आकांक्षा) व्यक्ति को भोग की ओर उन्मुख करती है जैसे पेट की भूख रोटी की ओर उन्मुख करती है। पेट की भूख रोटी खा कर मिट जाती है किन्तु अतृप्त आकांक्षा बहुत कुछ पाकर भी नहीं मिटती क्योंकि यह भूख शरीर की नहीं। इसके मिटने का एक ही रास्ता है— वह है सत्य दृष्टि पाना। देख, सत्य दृष्टि तू अपने आप नहीं पा सकेगा, जिन्हें

सत्य दृष्टि प्राप्त है उनके समीप बैठ कर पा सकेगा। सत्य दृष्टि तुझे प्रत्येक चीज का सही रूप दिखा देगी परिणाम विषयों की भूख जो तेरे अन्तर में धधक रही है वह शान्त हो जायेगी। अतः तू सत पुरुषों का संग कर कि तू सत्य दृष्टि पा जाये अन्यथा विषयों की भूख तुझे कहीं का न छोड़ेगी और तू अन्तर में भोग की आकांक्षा लिये इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहेगा।

३३ तुष्ट, कब रुष्ट ?

ऐ प्राणी ! 'सम्पूर्ण सृष्टि को चलानेवाला ईश्वर है, वही सबका त्राता माता है' जो इस सत्य से अवगत है वह प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति को ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण करता है तथा सदा सन्तुष्ट बना रहता है। वह कभी भी किसी अवस्था से रुष्ट नहीं होता और न उसका दोषारोपण ईश्वर पर करता है। वह जानता है कि मां के द्वारा किये गये प्रत्येक कार्यों में जैसे बच्चे की भलाई निहित है, ऐसे ही ईश्वर प्रदत्त प्रत्येक परिस्थिति में मेरी भलाई है। देख, तू यदि अभी रुष्ट है तो उसका कारण तू ही है। तू उसकी दुनिया को भूल कर अपनी दुनिया में बैठा है—यही तेरे दुःख का मूल कारण है। सही रास्ते को छोड़कर यदि व्यक्ति गलत रास्ता पकड़ ले तो कष्ट तो वह पायेगा ही। अतः तू गलत राह पर कदम न बढ़ा अर्थात ईश्वर की दुनिया को अपनी दुनिया न बना। सदा ईश्वर की दुनिया में बैठ कि तू सन्तुष्टि पाये और कष्ट तेरे समीप न आ पाये।

३४ भगवान न देखा, इन्सान को प्यार करने लगा।

ऐ प्राणी ! 'प्यार' ईश्वर की अद्‌भुत देन है। प्यार के सहारे ही उसे पाया जा सकता है ! प्रेम रूपी धन पाकर भी यदि तू भगवान को नहीं देख सका तो तुझे यह धन मिलना ही बेकार होगा और जानकारी के अभाव में तू इस धन का प्रयोग व्यक्ति के लिये करेगा। देख, जैसे घेरे में बँधा हुआ जल गन्दा हो जाता है वैसे ही शरीर से आवद्ध प्रेम भी मोह में परिणित हो जाता है तथा कष्टदायी बनता है। अतः तू प्रेम को हाड़-मांस के शरीर में न लगा, इसका पूरा आनन्द पाने के लिए तू ईश्वर की ओर बढ़। ईश्वर के साथ जुड़ा प्रेम तेरे हृदय को शुद्ध कर देगा, मोह, कामना, वासना आदि अनेक संकीर्ण भावों को हृदय में पनपने नहीं देगा। उसी अवस्था में तू प्रत्येक इन्सान से भी प्यार कर सकेगा। अन्यथा प्यार का नाम लेता हुआ तू मोह

वासना के घेरे में जकड़ता चला जायेगा तथा भीतर ही भीतर घुटता रहेगा।

३५ प्यार से खेल न कर। रो उठेगा, कहीं शान्ति नहीं।

ऐ प्राणी ! प्यार गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं, दो हृदयों का मेल है, उन दो हृदयों का जो दो से दिखलाई देते हैं किन्तु हैं एक। इतने शुद्ध व पवित्र भाव (प्रेम) से तू खेल न कर ! देख, बाहरी कारणों से हुए आकर्षण को प्रेम का नाम देना प्यार से खेल करना है। ऐसा प्रेम रुलाने का कारण बनता है तथा एक दिन मिटता भी देखा जाता है। जब तक प्रेम के नाम पर यह खेल चलता है तब तक व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती और हर क्षण की अशान्ति से वह बेचैन बना रहता है ! अतः तू प्यार को प्यार से अपना तथा प्रिय से प्यार कर कि शरीर जाये किन्तु प्यार अमर हो जाये।

३६ प्रार्थना ही करता रहा, प्यार के गीत गाये, कर न सका प्यार। गीत प्रार्थना कर्म बने।

ऐ प्राणी ! भक्त प्रार्थना के द्वारा हृदय के उद्‌गार ईश्वर के सम्मुख व्यक्त करके हल्का-फुल्का होता है एवं प्रेमी प्रेम के द्वारा ईश्वर से एक होता है। प्यार आत्म समर्पण का भाव है। एक बार जब इसकी जागृति हो जाती है और व्यक्ति प्रेम पथ पर बढ़ने लगता है तब वह खुद को भूलता जाता है। देख, केवल प्रार्थना के शब्दों से तू प्रभु तक नहीं पहुँच सकेगा और न प्रेमियों की बातें करके प्रेम पथ को अपना सकेगा। यदि तू प्रार्थना व प्यार की बातें ही करता रहेगा तो ये बातें अन्य कर्मों की तरह कर्म ही बन कर रह जायेंगी और तू इनसे आनन्द नहीं ले सकेगा। अतः तू ईश्वर के नाम पर केवल बातें न बना, प्रथम ईश्वर का आभास पा फिर प्रार्थना कर एवं ईश्वर से प्रेम बढ़ा कि तेरी प्रार्थना स्वीकार हो तथा प्रेम तुझे उस तक ले जाये।

३७ प्यार का रास्ता किसने बताया ? प्यार ने।

ऐ प्राणी ! जिनको तू आज प्रेम के रास्ते पर बढ़ते देख पा रहा है तथा जिनका जीवन आज प्रेम ही प्रेम बन गया है वे भी तेरी ही तरह हैं, जिस दुनिया में तू रहता है उसी में वे रहते हैं, जैसा तेरा शरीर है वैसा ही उनका भी है फिर भी वे रोते को हँसाते हैं और तू केवल रोता ही रहता है। उनमें और तुझमें भिन्नता बाहर की नहीं, भीतर की है। उन्होंने प्यार की कद्र की

अतः प्यार का रास्ता पाया और तू ने वस्तु की कद्र की अतः अभाव को ही अपनाया। देख, प्रेम परमेश्वर है। जिस हृदय में प्रेम का पदार्पण होता है वह हृदय परमेश्वर का मन्दिर बन जाता है और सारे तीर्थ उन चरणों में वास करने लगते हैं। ऐसी प्रेम की मूर्ति के समीप जाकर तू भी प्रेम की याचना कर कि जो भाव उन्होंने पाया उसके छींटे तुझ पर भी पड़ें और तू भी प्रेम के कण पा सके।

३८ खुदा का प्यार चाहता है, खुद का प्यार चाह, वही राह।

ऐ प्राणी ! यदि तू ईश्वर का प्यार चाहता है तो तुझे स्वयं से प्यार करना होगा। स्वयं से प्यार करके ही तू ईश्वर को पा सकेगा। देख, स्वयं से प्यार करने के लिये तुझे सभी कष्टकारी भावों से दूर रहना होगा क्योंकि वे भाव तेरे हृदय की निर्मलता को दूषित करने वाले हैं। तुझे हर पल हृदय की सुरक्षा का ख्याल रखना होगा और जिस सम्पर्क से हृदय में मलिनता आती हो उसका सर्वथा त्याग करना होगा। देख, प्रत्येक समय की देखभाल (खुद को प्यार) करने से तेरा हृदय शुद्ध होता चला जायेगा और शुद्ध हृदय में ही ईश्वर का वास होता है अर्थात् खुद को प्यार करने वाला ही खुदा का प्यार पाता है।

३९ अभाव की पूर्ति ? इसके गीत से नहीं भाव से होती है, स्वभाव से होती है।

ऐ प्राणी ! जीवन में यथार्थ के अभाव कम होते हैं तथा अधिक से अधिक फैलने की मनोवृत्ति के कारण माने हुए अभाव अधिक होते हैं। यथार्थ अभाव से छुटकारा पाना सहज है किन्तु माने हुए अभाव से छुटकारा पाना कठिन है। इससे छुटकारा पाना भाव-परिवर्तन से ही सम्भव है। देख, अभाव की चर्चा से तेरे अभाव नहीं मिट सकेंगे, जिन भाव-विचार या वस्तु-व्यक्ति आदि की तू जरूरत देखता है उनके लिये सतत् प्रयत्नशील होने से तेरे अभाव मिट सकेंगे। अतः तू अभाव की चर्चा करके मन को दूषित न कर, तू उन भावों को पा जिनसे तू स्वयं को जान सके। तू केवल शरीर नहीं कि शरीर को खिलाने पिलाने व इसके लिये साधन जुटाने में ही रह जाये, तू ईश्वरीय भावों से युक्त शक्ति है। तू जब स्वभाव को जान पायेगा तब तेरी शक्ति अनुपम होगी और तू शुद्ध भावों से कार्य करता हुआ आगे बढ़ता जायेगा परिणाम अभाव तेरे समीप भी नहीं आ सकेंगे।

४० प्यार की बातें कहता है, प्यार करता कहाँ? करता तो बातें न होतीं प्यार होता।

ऐ प्राणी! प्यार की बातें करके तू समय व्यतीत न कर, तू उन प्रेमियों के जीवन की ओर देख जिन्होंने प्यार किया है तथा उनके समीप बैठ कि तेरे अन्तर में भी प्रेम की सरिता बहने लगे। देख, प्यार की बातें करके तू यदि स्वयं को महान समझ बैठेगा तो प्रेम तत्व से दूर ही रह जायेगा, तेरा सारा समय व्यर्थ चला जायेगा और तू प्रेम नहीं कर पायेगा। अतः तू प्रेम की पगडण्डी पर कदम बढ़ा। जैसे-जैसे तू प्रेमास्पद (प्रभु) के समीप होता जायेगा वैसे-वैसे तेरी बातें खत्म हो जायेंगी और तू प्रेम को पाता जायेगा। यदि तू प्रेम पथ को नहीं अपनायेगा तो केवल बातें करके मन बहलायेगा, प्यार का एक कण भी नहीं पायेगा।

४१ प्रकृति की शोभा ही मुग्ध करती है—फिर प्रभु? देख पाता तो क्यों भटकता? न प्रभु भटकता और न भक्त।

ऐ प्राणी! विभिन्न ऋतुओं से सज्जित इस प्रकृति की शोभा अवर्णनीय है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त हरे-भरे पेड़-पौधे, नदी, नाले, पहाड़, झरने आदि सभी अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। देख, इस प्रकृति की छटा ही जब मन मुग्ध करती है तो वह प्रभु कैसा होगा जो इस सृष्टि का नियामक है तथा प्रकृति जिसके इशारे पर नाच रही है? उस प्रभु को तू यदि एक बार देख पायेगा तो तेरा भटकना खत्म हो जायेगा जो अज्ञानता से घिरे रहने के कारण है। देख, ईश्वर को भुलाकर तू भी भटक रहा है और तेरा ईश्वर भी प्रतीक्षा में रत भटक रहा है जैसे मां बाहर घूमने गये बच्चे के लिये प्रतीक्षा रत रहती है। प्रभु की स्मृति केवल तुझे ही चैन नहीं देगी, तेरा प्रभु भी चैन पायेगा कि मेरा भटका हुआ बच्चा आज लौट रहा है। प्रभु की गोद में बैठ कर ही तू मोद पायेगा तथा तेरी दुनिया भी तभी सजेगी।

४२ गुणातीत के गुणों से क्या खरीदोगे? बिक जाओगे और कुछ न होगा।

ऐ प्राणी! सन्त गुणातीत होते हैं। तुझे उनमें यदि अनेक गुण भी दिखलाई दें तो भी तू उनके गुण न देख क्योंकि गुण केवल स्थूल जगत की उपलब्धि दे सकते हैं। तू यदि उनके गुणों में ही अटक जायेगा तो उनके भावों से दूर ही रह जायेगा। देख, गुणों को ग्रहण करके तू केवल स्थूल

उपलब्धि कर सकता है जबकि उनके भाव ग्रहण करके तू ईश्वर को पा सकता है। सन्त के गुणों को देखना, समुद्र के समीप जाकर लहरों को गिनना है। इससे तू उनका सामीप्य पाकर भी उनसे दूर रह जायेगा, सम्पूर्ण आयु उनके समीप बिताने पर भी तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा। अतः तू गुणातीत से वह भाव ग्रहण कर जिनसे वे सुसज्जित हैं कि तू भी गुणातीत हो सके।

४३ एक का प्यार ही वरदान।

ऐ प्राणी ! मनुष्य जीवन असाधारण धन है, यह ईश्वर का वरदान है किन्तु तेरे लिये यह वरदान तभी होगा जब तू एक (ईश्वर) के प्यार से सुसज्जित होगा। जैसे नाबालिग बच्चा यदि अतुल सम्पदा का मालिक हो तो वह सम्पदा उसे बालिग होने से ही प्राप्त होती है वैसे ही तेरा जीवन भी जब एक के प्यार से सुसज्जित होगा तभी मनुष्य जीवन तेरे लिये वरदान बनेगा। अतः तू उस एक ईश्वर को जान जो तेरा अपना है एवं जिसका प्यार ही मां की कोख से लेकर आज तक तेरी सुरक्षा कर रहा है। देख, ईश्वर दिखता नहीं किन्तु सन्त दिखता है, ईश्वर के प्यार को तू सन्त के समीप बैठकर ही देख सकेगा क्योंकि सन्त उसके प्यार से ओत-प्रोत हैं। सन्त के समीप बैठकर जब तू उनकी आँखों में प्यार की झलक देख पायेगा एवं जो भाव उनके अन्तर में व्याप्त हैं उनके प्रति तेरा समर्पण होगा तब उस प्यार को तू जीवन में भी देख पायेगा। तब प्रिय तेरे हर क्षण का साथी बन जायेगा और तभी साधारण सा दिखने वाला यह जीवन तेरे लिये वरदान होगा तथा तुझे सदा आनन्द देने का कारण बनेगा।

४४ बूंदों ने कहा—हम तो झरना जानती हैं—नभ की नभ जाने।

ऐ प्राणी ! तू आकाश से जो बूंदे (वर्षा) झरते देखता है, यह नभ की विशालता है। नभ तृषित भूमि की तृषा शान्त करने के लिये जल की वृष्टि करता है एवं भूमि उस जल का पान करके हरी-भरी होती है। देख, तू भी नभ की तरह विशाल है क्योंकि तेरे निर्माण में जो पाँच तत्व लगे हैं उनमें से एक तत्व 'नभ' है। जब तू अपने रूप को पहिचान पायेगा अर्थात नभ की तरह सबके प्रति प्रेम की भावना (विशालता) अपना सकेगा तब तेरे मुख से जो वाणी की वर्षा होगी वह कितने ही तृषित हृदयों को शान्त करने वाली बनेगी। अन्यथा वाणी का कार्य तो होता ही रहेगा किन्तु अपने रूप को भुलाने के कारण तेरी वाणी दूषित भावों से युक्त होगी। न तो वह (वाणी) तुझे ही आनन्द देगी और न अन्य को ही आनन्द देने का कारण बनेगी।

४५ प्रेम और भाव का प्रसाद तो कुछ अनोखा ही है।

ऐ प्राणी ! प्रसाद प्रसन्नता का द्योतक है। प्रसाद पाकर व्यक्ति सदा राहत सी महसूस करता है। किन्तु यह राहत उसके लिये क्षणिक होती है क्योंकि अभी उसने प्रेम भाव का प्रसाद नहीं पाया है अतः क्षण भर बाद ही वह पुनः अपनी दुनिया में लौट आता है। देख, यदि तुझे प्रसाद से प्रसन्नता मिलती है तो उस प्रसाद को तू सदा ग्रहण करता रह अर्थात् तू प्रभु से प्रेम कर तथा भाव से उसे अपना। जब तेरी दुनिया प्रभु के प्रेम से सजी होगी तब स्थूल सूक्ष्म से जो कुछ तू सम्मुख देख पायेगा वह सब प्रभु का प्रसाद होगा। तब तेरा जीवन ही प्रभु का प्रसाद बन जायेगा एवं वह सदा तुझे प्रसन्नता देता रहेगा।

४६ एक नहीं तो ठौर न पावे।

ऐ प्राणी ! तू एक ईश्वर की शरण ग्रहण कर क्योंकि तू उसी की सन्तान है और वह एक ही तेरा सर्वस्व है। उस एक का होने से सम्पूर्ण विश्व तेरा अपना होगा अन्यथा यह (विश्व) केवल सपना रहेगा। देख, सपने की कोई बात सत्य नहीं होती जबकि देखते समय सब सच्ची-सी लगती हैं, एक के बिना यह दृश्य जगत भी तुझे सच्चा-सा लग सकता है किन्तु यह रहता नहीं। (उस एक को भुलाकर) तू इसको जितना पकड़ने की इच्छा रक्खेगा उतना ही यह तुझसे दूर भागता जायेगा। अतः तू एक की शरण ग्रहण कर। एक की शरण लेकर तू जब जहाँ भी बैठेगा वहीं तुझे उसकी गोद मिलेगी क्योंकि वह एक सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में व्याप्त है। सम्पूर्ण पृथ्वी उसकी गोद है, आकाश के रूप में सर्वत्र उसकी छत्र छाया है। यदि तू एक का नहीं होगा तो दर-दर की ठोकर खाता हुआ इधर से उधर भटकता रहेगा फिर भी ठौर नहीं पा सकेगा।

४७ पा, रस, यही पारस। जिसका स्पर्श लोहे को ही सोना नहीं बनाता विश्व को ही सुनहला बना देता है।

ऐ प्राणी ! तू प्रभु के प्रेम रस का पान कर, प्रेम रस का पान करने से सम्पूर्ण विश्व तेरे लिये सुनहला बन जायेगा। देख, पारस पत्थर लोहे को केवल सोना बनाता है किन्तु प्रभु प्रेम का रस पान करने से जीवन ही अनुपम बन जाता है। सोने के साथ जीवन की कोई तुलना नहीं हो सकती क्योंकि सोना खरीदा जा सकता है किन्तु जीवन की सरसता खरीदी नहीं जा सकती। अतः

तू जीवन के क्षणों को धन के पीछे न बरबाद कर, जीवन के प्रत्येक क्षण से रस ग्रहण कर। तेरे अन्तर की चाह तेरी सहायक बनेगी और तू उस रस का पान कर सकेगा जिसे पान करके तू रसपूर्ण हो सकता है। रस युक्त होकर ही तू जीवन तथा जगत का आनन्द ले सकेगा।

४८ ग्रन्थ नहीं, अब तो ग्रन्थी देखता हूँ जिसे चाव से पहन रखी है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर-मिलन के लिये होने वाली विकलता व्यक्ति को अनेक कार्य करने के लिये बाध्य करती है। कभी वह (व्यक्ति) व्रत-उपवास की शरण ग्रहण करता है तथा कभी पूजा-पाठ आदि करता है और कभी-कभी अनेक ग्रन्थों का अवलोकन करता देखा जाता है। उसके सभी कार्य ईश्वर-मिलन के लिये होते हैं। कार्यों द्वारा जब उसके हृदय की व्याकुलता शान्त नहीं होती तब वह और अधिक बेचैन हो उठता है। ऐसी अवस्था में ही उसे सद्गुरु के दर्शन होते हैं। सद्गुरु भाव की जीती जागती मूर्ति हैं। उनकी भाव भरी वाणी व्यक्ति की आँखों को खोल देती हैं, उन आँखों को जो मोह-वासना के कारण बन्द हो गई थीं। आँखें खुलने के पश्चात् व्यक्ति की दृष्टि बहिर्मुखी नहीं रह जाती, अन्तर्मुखी हो जाती है। परिणाम वह ग्रन्थ नहीं देखता, उन ग्रन्थियों को देखता है जिन्हें वह आज तक चाव से पहना हुआ था तथा जिनके कारण ही उसकी गति रुकी हुई थी। वह दृष्टि ही धीरे-धीरे हृदय के मल को साफ करती हुई एक दिन उसे आनन्द की दुनिया में पहुँचा देती है।

४९ गले में माला भी दबा रही है—प्रेम को। प्रेम माला नहीं चाहता मिलन चाहता है वियोग नहीं।

ऐ प्राणी ! माला वरण करने का प्रतीक है। देख, तू ईश्वर को प्रतिदिन माला पहना कर भी यदि उसका हो न सका तो तेरी यह माला उसके गले का बोझ ही बनेगी तथा प्रेम की भावना को ही कुचलेगी क्योंकि वह तुझसे माला नहीं चाहता, वह तेरे प्रेम का भिक्षुक है। प्रेम भिक्षुक कभी किसी अन्य सौदे से खुश नहीं हो सकता, वह देता भी प्रेम है तथा चाहता भी प्रेम है। प्रेमी कुछ देकर उससे सदा दूर ही बना रहे—यह उसके लिये असहनीय है। अतः तू उसे एक बार माला पहना कर सदा सदा के लिये उसके चरणों पर समर्पित हो

जा कि तेरा उससे कभी वियोग न हो, वह सदा तेरे साथ बना रहे, शरीर रहे या न रहे किन्तु वह सदा साथ रहे।

५० जलती वासना को, तड़पते भोग को प्रेमाश्रु से शान्त किया।

ऐ प्राणी ! प्रेम ईश्वर है। प्रेम का एक कण भी यदि कहीं किसी में दिखलाई दे तो यही समझना होगा कि उसको ईश्वर ने अपना रक्खा है क्योंकि ईश्वर नहीं तो प्रेम भी नहीं ! देख, प्रेम का अंश मात्र भी व्यक्ति यदि जीवन में पाता है तो उसे और अधिक पाने की विकलता भी पाता है क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है। प्रेमी का हृदय सदा प्रेमाश्रुओं से तर रहता है। वासना की अग्नि प्रेमी के समीप आकर स्वतः शान्त हो जाती है क्योंकि प्रेमी शरीर का दास नहीं होता। वह शरीर द्वारा संसार के भोगों को भोगने नहीं आता अतः भोग प्रेमी को आकृष्ट नहीं कर पाते, नतमस्तक होकर लौट जाते हैं। ईश्वर-मिलन ही प्रेमी का चरम लक्ष्य है, उसमें समाकर ही वह शान्त होता है।

५१ रिझाना ही झुकाना है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर तू जो भी कार्य करता है उन्हें सम्पादित करते समय जब तक तुझे कार्य का ध्यान रहेगा तब तक तू उसका पूरा आनन्द नहीं ले सकेगा। जब कार्य करते-करते तू उसी में खो जायेगा तथा तुझे अपना भान नहीं रहेगा तभी तू रीझ सकेगा और तभी ईश्वर को रिझा सकेगा। देख, 'रीझना' साधारण अवस्था नहीं, इसमें अनुपम आकर्षण होता है। इसके सम्मुख ईश्वर भी झुकता देखा जाता है तथा जो ईश्वर को पाना चाहते हैं वे भी झुकते देखे जाते हैं। यह आकर्षण ईश्वरीय होता है। अतः तू यदि ईश्वर को पाना चाहता है तो तू अपनी ओर देख कि तेरे प्रत्येक कार्य रीझ कर होते हैं या केवल कार्य मात्र हैं? यदि उनको करते समय तू उन्हीं में खो जाता है तो तू अद्भुत भाव का धनी होगा अन्यथा अवसर पाकर भी तू उससे दूर ही बना रहेगा।

५२ पूर्व की कथा अपूर्व। क्यों? जहाँ सूर्य उदय, भाव सदय भक्ति लय, ज्ञान अभय।

ऐ प्राणी ! पूर्व में स्थित भारत भूमि सदा से ऋषि-मुनियों की भूमि रही है, उन ऋषि-मुनियों की जिनका भाव अपूर्व रहा है। देख, अनन्त वैभव

सम्पन्न प्राणी भी जब वैभव से सुख नहीं पाता, हताश व निराश होकर इधर-उधर शान्ति की खोज में भटकता है तब इन ऋषि-मुनियों का भाव ही उसे शान्ति देता है क्योंकि उन सन्तों ने उन भावों को धारण कर रक्खा है जो स्थूल जगत में नहीं पाये जा सकते। देख, स्थूल वस्तुएँ शरीर को सुख दे सकती हैं किन्तु मन को शान्ति नहीं दे सकतीं, प्राणों में तृप्ति नहीं दे सकतीं। मन प्राणों की तृप्ति का भाव सन्त की शरण में है क्योंकि वे (सन्त) प्रकाश पुंज हैं, भाव की सरिता उनकी वाणी द्वारा प्रवाहित होती रहती है, भक्ति उनके रोम-रोम से झलकती है तथा ज्ञान का आलोक पाकर वे सदा अभय बने रहते हैं। वे पूर्व में उदय होने वाले सूर्य की तरह उदीयमान हैं। सूर्य केवल स्थूल जगत को प्रकाशित करता है किन्तु उनका भाव भीतर व बाहर सर्वत्र प्रकाश फैला देता है।

५३ ध्वनि का धन धुन में है।

ऐ प्राणी ! प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में सत्य प्रतिष्ठित है, वह सदा सही-सही बोलता है तथा सही-सही तौलता है किन्तु वृत्तियों के बिखराव के कारण व्यक्ति उसकी ओर देख नहीं पाता अतः मनमानी करता है। देख, तू अन्य प्रलोभनों में न फँस क्योंकि दुनिया का सबसे बड़ा धन सत्य (आनन्द ध्वनि) है। इस ध्वनि को धुन (लगन) से पाया जा सकता है, अन्य किसी मार्ग से नहीं। इस ध्वनि के धन को पाकर तेरी दुनिया ही बदल जायेगी। तब तू आनन्द पथ का पथिक बन हृदय में आनन्द की तरंगों को लिये हुए हमेशा आनन्द ध्वनि सुन सकेगा। परिणाम तेरे हृदय में आनन्द पुष्प प्रस्फुटित होगा और इसी भाव को लिये तू एक दिन आनन्द में समाहित हो जायेगा।

५४ भाई—तुझे अपनी कथा भायी। बहन—बह न, देखती क्या है ? डूबने की कथा छोड़। प्रभु वाले डूबते नहीं, डूबते हैं शरीर वाले।

ऐ प्राणी ! जिन्होंने ईश्वर की शरण ग्रहण की है वे ईश्वर-भक्त संकीर्णता को त्याग कर विशालता की ओर बढ़ते जाते हैं, उनकी दुनिया अन्य जनों से भिन्न होती है। शरीर के साथी ही उनके अपने नहीं होते, सभी उनके अपने (भाई-बहन) होते हैं। देख, जिन्हें केवल दुनिया का आकर्षण भाता है एवं जो शरीर तथा संसार में लिप्त हैं उन भाइयों के प्रति उनके हृदय में सद्भाव ही रहता है और वे जानते हैं कि दुनिया का आकर्षण जब उन्हें बेचैन

बना देगा तब उनके हृदय में भी प्रभु प्रेम की धारा में बहने की भावना जागृत होगी और प्रेम की धारा में बहने की इच्छा रखने वाले प्राणी से वे कहते हैं कि तू दुनिया की ओर देखते-देखते पाप-पुण्य की बातों में न उलझ, तू प्रेम धार में बह । जो ईश्वर के होते हैं उन्हें अन्य कोई भी आकर्षण अपनी ओर खींच नहीं पाते अतः वे कभी डूबते नहीं, सदा प्रिय की गोद में बैठकर आनन्द मानते हैं । डूबते वे हैं जिनके लिये शरीर प्रधान होता है तथा जो दिन-रात शरीर के साथियों की ओर देखते हुए उन्हीं का सहारा चाहते हैं ।

५७ समुद्र से सम्बन्ध, शान्ति मोती स्वतः प्राप्त ।

ऐ प्राणी ! मोती समुद्र में पाये जाते हैं, यदि किसी को मोती प्राप्त करने हों तो उसे समुद्र से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा । शांति रूपी मोती भी समुद्रवत विशाल हृदय संत के द्वार पर मिलते हैं । सम्पूर्ण विश्व की बड़ी से बड़ी उपलब्धि (गुण) धन-जन, मान सम्मान आदि सब कुछ दे सकती है किन्तु शान्ति नहीं दे सकती, यहाँ तक कि ईश्वर के नाम पर किये गये अनेक कार्य भी शान्ति नहीं दे सकते क्योंकि कार्य शरीर से किये जाते हैं और शान्ति भीतरी धन है । यह (शान्ति) सत्संग द्वारा भाव परिवर्तन से मिलती है । अतः तू सचमुच शान्ति चाहता है तो समुद्रवत विशाल हृदय सन्त की शरण ग्रहण कर तथा उनके भावों में डुबकी लगा कि तुझे शान्ति रूपी मोती प्राप्त हों ।

५८ दुनिया के कष्ट तेरी मानसिक दवा है ।

ऐ प्राणी ! जिन कष्टों से तू घबड़ाता है वे मन के लिये दवा हैं । यदि कष्ट जीवन में न आयें तो यह मन कभी होश में ही न आये, सदा बदहोश बना चक्कर काटता रहे तथा तन को भी कटाता रहे । देख, मन चञ्चल है । यह मिली हुई वस्तुओं से तृप्त होना नहीं जानता, और अधिक तृप्ति पाने की लालसा से विषय भोगों के पीछे भागता रहता है अतः किसी के द्वारा दी गई शिक्षा भी जल्दी सुनने के लिये तैयार नहीं होता । दुनिया के कष्ट मन को इधर-उधर दौड़ने से रोकते हैं क्योंकि वे (कष्ट) सदा संसार की नश्वरता का भान देते रहते हैं परिणाम कूदता-फाँदता मन अटकता (रुकता) है । अतः तुझे यदि अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है तो तू घबड़ा नहीं, उसे ईश्वर का प्रसाद समझ कर प्रसन्नता से स्वीकार कर क्योंकि ये कष्ट तुझे दवा के रूप में मिल रहे हैं । दवा खाते-खाते जब तेरा मन निरोग हो जायेगा

तथा सही राह पकड़ लेगा तो तू मन से आनन्द पायेगा। जिस मन को तू आज तक बन्धन का कारण जानता था, उसी से मुक्ति पायेगा।

५७ सब कुछ होते हुए भी रोता है, किसे कहे? अपनी सृष्टि रस की है। चुना वह भी रोना और अभाव का। भाव में आ, रोना प्रेम में बदल जाय।

ऐ प्राणी! तू अपने चारों ओर आँख उठा कर देख। देख, तेरे पास सब कुछ है, फिर भी तू हर समय रोता रहता है। तू रसपूर्ण संसार में बैठा है फिर भी एक-एक बूंद रस के लिये तरसता रहता है क्योंकि तू शरीर से आबद्ध हुआ अभाव से घिर गया है। अभाव, सत्य दृष्टि बन्द कर देता है परिणाम सब कुछ पास होते हुए भी व्यक्ति कुछ देख नहीं पाता, केवल रोता रहता है और अपनी इस व्यथा को किसी से कह भी नहीं पाता। देख, रोना जोर जबर्दस्ती द्वारा खतम करने की चीज नहीं, यह भाव-परिवर्तन से खतम होता है। अतः तू केवल शरीर तथा शरीर के साथियों को ही अपना न मान, तू उन प्रेमियों का साथ कर जिनके साथ से तेरी आँखें खुल जायें और तेरा रोना प्रेम बदल जाये।

५८ है, भीतर? है भी तर? है भीतर तो है भी, तर।

ऐ प्राणी! तू आज जिनके भीतर तरी (प्रसन्नता) देख पाता है उन्होंने तरी बाहर वस्तुओं से नहीं पाई है, भीतर से पाई है। उन्होंने भीतर हरि को पाया है इसीलिये भीतर व बाहर सर्वत्र तरी पाई है। देख, हरि को भुलाकर तरी की कल्पना करना वैसे ही निरर्थक है जैसे सूर्य के बिना प्रकाश की कल्पना। सम्पूर्ण विश्व का चक्कर काटकर एवं बड़े से बड़े ऐश्वर्य को पाकर भी तरी को पाना कठिन है। अतः तू कुछ वस्तुओं को जुटाकर अपने आप को धोखा न दे, तू अपने भीतर झाँक कर देख कि तुझे इनसे तरी मिल रही है क्या? यदि नहीं, तो तू अपना रास्ता बदल डाल। तू अन्तर में स्थित हरि से मेल बढ़ा कि तू तरी पा सके।

५९ प्रेम को वासना न बना। अमूल्य को मिट्टी न बना।

ऐ प्राणी! प्रेम विराट भाव है, यह संकीर्णता का घेरा तोड़नेवाला है। देख, तुझे यह कीमती धन मुफ्त में मिला हुआ है, मुफ्त में मिले हुए इस धन को तू बरबाद न कर। किसी भी आकर्षक व्यक्ति-वस्तु को देखकर प्रेम आ

सकता है किन्तु आकर्षक लगने वाली सभी चीजें अपनायी नहीं जा सकतीं। वे चीजें जहाँ भी रहें अपनी होती हैं, उन्हें अपना बनाने के चक्कर में ही प्रेम गन्दा हो जाता है। देख, तू यदि आज प्रेम की कीमत नहीं करेगा तो जीवन पर्यन्त रोता रहेगा फिर भी इस भेद को नहीं जान पायेगा कि 'तू क्यों रो रहा है'। अतः तू प्रेम को प्रेम से स्वीकार, इसे पाकर स्थूल के पीछे न दौड़ क्योंकि आकार में दिखने वाली सभी चीजें एक दिन मिट्टी में मिल जायेंगी, तू स्थूल जिस पर खड़ा है उस शक्ति के पीछे दौड़ कि तुझे मिला हुआ अमूल्य धन मिट्टी न बने, वह अमूल्य ही रह जाये।

६० दिल से छू कि हाथ भी न चले।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर अनेक कर्म तब तक होते हैं जब तक ईश्वरीय भाव दिल में स्पर्श नहीं करते एवं दिल में ईश्वर की स्मृति बस नहीं जाती। देख, तू केवल हाथ के कार्यों द्वारा ईश्वर को नहीं पा सकेगा क्योंकि ईश्वर व्यक्ति नहीं कि वह तेरे हाथ के कार्यों पर रीझ जायेगा, वह तेरे अन्तर में बसी अज्ञात शक्ति है जो तेरे अन्तर के भावों से रीझने वाली है। जब तू उसके लिये हाथ की जगह दिल का प्रयोग करने लगेगा अर्थात् दिल से उसे छूता रहेगा तो तू उसे पा जायेगा। उस अवस्था में तेरे हाथ के कार्य स्वतः ढीले पड़ते जायेंगे तथा एक समय पश्चात् नहीं रहेंगे। ईश्वर के लिये तू जो कुछ करेगा वह तेरे दिल का होगा, हाथों का तो कहीं-कहीं केवल प्रयोग मात्र होगा।

६१ रक्त मांस तो आसक्ति है, प्रेम स्पर्श भी नहीं चाहता, वह तो मिलन चाहता है जहाँ शरीर नहीं, शरीर का भाव नहीं।

ऐ प्राणी ! तू रक्त मांस के शरीर के पीछे दौड़कर उसे प्रेम का नाम न दे क्योंकि यह प्रेम नहीं। प्रेम अशरीरी भाव है। यह शरीर के माध्यम से दिखलाई पड़ सकता है किन्तु है यह शरीर से ऊपर उठाने वाला भाव। जब तक इसमें शरीर की गन्ध रहती है तब तक यह प्रेम नहीं, आसक्ति है और आसक्ति बन्धन का कारण है। देख, प्रेम परमात्मा का प्रसाद है। यह सदा मिलन चाहता है, शरीर का नहीं, भाव का मिलन चाहता है। भाव का मिलन शरीर का ध्यान भी नहीं रहने देता अतः प्रेमी की अपनी दुनिया नहीं रहती, प्रिय की दुनिया ही उसकी अपनी दुनिया हो जाती है और उसी के भावों में रमण करता हुआ वह सदा आनन्द मनाता रहता है।

६२ तन की आसक्ति तो पतन ; तन, मन की सुध न रही तो शुद्ध, ज्ञान वहाँ निरर्थक। प्यार में प्यार, ज्ञान उस पर वार।

ऐ प्राणी ! तू यदि तन के प्रति आसक्त हो जायेगा तो पतन की ओर उन्मुख होता जायेगा क्योंकि तन स्थायी नहीं अतः तन का प्रेम भी स्थायी नहीं। देख, तन घेरे में बाँधता है जबकि प्रेम विराट भाव है, यह घेरे को तोड़ता है। एक बार जब प्रेमाग्नि हृदय में प्रज्वलित हो जाती है तो वह तन, मन की सुध भी नहीं रहने देती—ऐसा प्रेम ही शुद्ध प्रेम होता है। प्रेम, ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें सुनना पसन्द नहीं करता क्योंकि ज्ञान मस्तिष्क की उपज है एवं प्रेम हृदय का भाव है। यह (प्रेम) प्रेमी के चरणों में न्योछावर होकर ही शान्त हो पाता है, जब तक प्रेमी को नहीं पा जाता तब तक विकल बना रहता है। ऐसे प्रेम के सम्मुख ज्ञान भी एक दिन झुकता देखा जाता है।

६३ प्रेम में मर्यादा कहाँ ? मर्यादा में प्रेम कहाँ ? श्रद्धा भक्ति अवश्य ही शान्तिप्रद हैं किन्तु प्रेम तो कुछ और ही है।

ऐ प्राणी ! प्रेम असीम भाव है, यह कभी सीमा में नहीं बँधता। प्रेम के साथ जहाँ सीमा दिखलाई पड़ती है वहाँ अभी प्रेम का पूर्ण साम्राज्य नहीं ! देख, श्रद्धा हृदय में कोमलता व नम्रता का भाव देती है एवं भक्ति जीवन में सरसता प्रदान करती है, ये दोनों ही भाव शान्ति देने वाले हैं किन्तु प्रेम तो कुछ अनोखा भाव है, यह जीवन को ही बदलने वाला है। प्रेम का प्रस्फुटन जब हो जाता है तो जीवन पाना सार्थक हो जाता है। देख, यह जीवन प्रभु मिलन के लिये मिला है और प्रेम ही वह भाव है जिससे प्रभु को पाया जा सकता है। यदि जीवन मिला और प्रेम नहीं मिला तो जीवन पाना ही बेकार होता है क्योंकि प्रेम नहीं तो प्रभु भी नहीं।

६४ पाप पुण्य वाला प्रेम क्या जाने ? डरते ही समय बीतता है।

ऐ प्राणी ! प्रेम की दुनिया में केवल प्रेम रहता है, शरीर तथा शरीर के साथ रहने वाले संस्कार दोनों ही नहीं रहते किन्तु जो प्रेम की दुनिया से दूर हैं तथा संस्कारवश पाप पुण्य की दुनिया में फँस गये हैं उनका ध्यान तो सदा शरीर तथा शरीर के कार्यों में लगा रहता है। वे सदा शरीर की शुद्धता एवं शरीर के कार्यों को सजाने में लगे रहते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि वे कभी पाप के भागी न बन जायें, अतः कुछ पुण्य के से कार्य करते रहते हैं। देख, जो दिन रात शरीर को ही देखने में लगे हैं वे प्रेम कैसे कर सकेंगे

क्योंकि प्रेम तो शरीर का ध्यान भी नहीं रहने देता और वे पाप पुण्य के भय के कारण शरीर से एक क्षण भी विलग नहीं हो पाते।

६५ खोया हुआ है भक्त। सोया हुआ—ज्ञानी। भाव में दोनों ओत-प्रोत।

ऐ प्राणी ! भक्त, भगवान को अपने से अलग (बाहर) देखता है एवं उसी में खोया हुआ भक्ति द्वारा उसे पाना चाहता है। ज्ञानी स्वयं में उसकी कल्पना करता है एवं बाहर से बेखबर होकर स्वयं में ही उसे पाना चाहता है। दोनों अपनी अलग-अलग दुनिया में बैठे हैं तथा अपनी पद्धति को ही प्रधान समझते हुए ईश्वर को पाना चाहते हैं। किन्तु 'भाव' तो कुछ अनोखा ही है। यह भक्ति और ज्ञान दोनों को स्वीकारता है, स्वयं में भी उसे ही देखता है तथा सर्वत्र भी उसी का जलवा देख पाता है। भाववाला कभी भक्ति के गीत गाता दिखाई पड़ता है तथा कभी स्वयं में लीन-तल्लीन देखा जाता है, दोनों ही भाव उसमें ओत-प्रोत दिखाई देते हैं। ईश्वर को भुलाकर उसकी अपनी अलग दुनिया ही नहीं होती।

६६ शब्द गूँजेगा, यदि श्रोता का दिल खाली हो।

ऐ प्राणी ! खाली जगह में आवाज गूँजती है। ईश्वर की चर्चा सुनने वाले का भी यदि दिल खाली हो तो उसका अद्‌भुत प्रभाव देखा जाता है। खाली दिल में सुना हुआ प्रत्येक शब्द अन्तर में प्रतिध्वनित हो उठता है। किन्तु हृदय का खाली होना सहज नहीं। खाली होने के लिये जीता जागता कोई ऐसा साथी चाहिये जिसका हृदय प्रेम रस से परिपूर्ण हो और जो दिल का बोझ ग्रहण कर सके। जब तक व्यक्ति ऐसा साथी नहीं पा जाता तब तक वह दिल पर बोझ लिये ही घूमता है। परिणाम सुनी हुई कीमती से कीमती भावपूर्ण बातें भी उसके समीप से लौट कर चली जाती हैं, हृदय में स्थान नहीं बना पातीं।

६७ प्रभाव ? जहाँ नहीं भाव, वहाँ कैसा प्रभाव ?

ऐ प्राणी ! सुनी सुनाई बातों का हृदय पर प्रभाव पड़ने के लिये अन्तर में भाव चाहिये। भाव (चाह) के बिना ईश्वर के नाम पर कितनी ही बातें सुन ली जायें वे उतना प्रभाव नहीं डाल सकतीं। देख, ईश्वर की बातें सुनकर अच्छा लगना एक बात है किन्तु उन बातों का जीवन पर प्रभाव पड़ना दूसरी

बात है। प्रभाव पड़ने से जीवन की गतिविधि ही बदल जाती है अन्यथा ईश्वर के नाम पर भाग-दौड़ होती रहती है किन्तु परिणाम उस रूप में नहीं दिखाई देता जिस रूप में होना चाहिये। अतः तू अपने अन्तर को टटोल कि तेरे अन्तर में ईश्वर-मिलन की चाह बनी हुई है या तू केवल ईश्वर के नाम पर संस्कार वश दौड़ता है ? यदि उसे पाने के लिये तेरे हृदय में सच्ची विकलता है तो सत्य साथी (सद्‌गुरु) की वाणी का तेरे जीवन पर प्रभाव पड़ेगा और तू मौज में रह सकेगा।

६८ देखा बिन्दु का चमत्कार, कितने ही सिन्धु इसमें समाये हुए हैं।

ऐ प्राणी ! भाव के आँसू असाधारण होते हैं। ये अपूर्व शक्ति सम्पन्न होते हैं, इनमें सम्पूर्ण विश्व को हिलाने की शक्ति होती है। ईश्वर भी इन आँसुओं के सम्मुख झुकता देखा जाता है। देख, जो (सन्त) आज तेरी नजरों में महान हैं उनकी महानता का राज ये आँसू ही हैं। उन्होंने तड़प-तड़प कर ईश्वर को याद किया था तभी इतना विशाल भाव पाया था। यदि उनकी आँखों में तड़प के ये आँसू (बिन्दु) नहीं होते तो विराट सिन्धुवत इतना गहरा भाव भी उन्होंने नहीं पाया होता। देख, उनका यह भाव केवल उनके लिये नहीं है, उन सबके लिये है जो भाव की दुनिया में रहना चाहते हैं। अतः उनके समीप बैठकर तू भी उनकी सी तड़प पा ले कि उनके सिन्धु सदृश्य भाव का बिन्दु तू भी पा सके।

६९ एक बार खेल कर देख, बातें तो बहुत सुनीं।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर की अनेक बातें (कथा कहानियों के रूप में) सदा से सुनता आ रहा है तथा आज भी सुनता रहता है, किन्तु इन बातों का कहीं अन्त नहीं आया और न ही तू ने इन बातों से कुछ पाया। देख, ये कथायें ईश्वर के भावों को अपनाने के लिये संकेत देती हैं। तू इनको ही धर्म समझ कर न सुनता रह क्योंकि ईश्वर की लीला के गीतों में उलझ कर तू कुछ नहीं पायेगा, केवल भक्ति के नाम पर 'मैं' को ही अपनायेगा। अतः तू इन कथा-वार्ताओं से भाव ग्रहण कर क्योंकि उनकी प्रत्येक लीला भाव का संकेत देती है। यदि तू उनमें निहित भावों की ओर देख सका तो वे भाव तेरे अन्तर में भी रच-पच जायेंगे, परिणाम तेरा जीवन ही बदल जायेगा। यह संसार—जो कल तक असार था, कष्टपूर्ण था—आनन्द पूर्ण बन जायेगा और तू खेल के रूप में इस संसार का आनन्द ले पायेगा।

७० मुख सम्मुख या सम मुख।

ऐ प्राणी ! तू अपने शरीर को प्रधान मान कर सदा अपना मुख (स्वार्थ) ही देखा करता है या तू ने समता के भावों को भी अपना रखा है ? यदि तू शरीर को ही देखता रहेगा तो 'मैं-मेरे' के घेरे में घिरता चला जायेगा परिणाम तू कामना-वासना का पुजारी बन बैठेगा और तेरा मुख मलिन हो जायेगा। यदि तू समता को अपनायेगा तो तेरा मुख चमक जायेगा तथा तू सबसे प्यार कर पायेगा। देख, शरीर बन्धन में बाँधता है जबकि समता बन्धन को तोड़ती है और प्यार के सूत्र में जोड़ती है। एक (शरीर) को अपना कर कष्ट बढ़ता है तथा दूसरे (समता) को अपनाने से कष्ट का निवारण होता है। अतः तू हो सके तो समता को अपना कि तेरा मुख देखना प्रधान न रह जाये।

७१ पुस्तक पूजा, स्थूल। सूक्ष्म, भाव पूजा। कारण पूजा का जहाँ विकास है।

ऐ प्राणी ! जिन धार्मिक ग्रन्थों को ईश्वरोक्त कहा गया है वे ग्रन्थ भाव की जागृति के लिये हैं। तू उन पुस्तकों की पूजा करके अपने को धार्मिक न समझ क्योंकि पुस्तक पूजा स्थूल कार्यों को बदल सकती है, और कुछ नहीं दे सकती। उन पुस्तकों के प्रति तेरे हृदय में यदि श्रद्धा है तो तू उन पुस्तकों में निहित भावों का अवलोकन कर। उन भावों का अवलोकन तेरे अन्तर के सूक्ष्म भावों को परिवर्तित कर देगा, परिणाम उन्हें (पुस्तकों को) तू अन्तर से पूजेगा। देख, तेरे अन्तर की यह पूजा एक दिन तुझे पूजा के मूल कारण से जोड़ देगी अर्थात् 'ईश्वर के साथ से ही यह जीवन तथा जगत जाज्वल्यमान है, इस सत्य को दिखा देगी। परिणाम ईश्वर को बाद करके तू एक श्वास भी जीना पसन्द नहीं करेगा।

७२ कहता है प्यार करूँगा। किन्तु कब ? इसका उत्तर नहीं।

ऐ प्राणी ! प्यार हृदय का सुललित भाव है। इसका प्राकट्य जब एक बार अन्तर में हो जाता है तो फिर यह जाता नहीं। प्रेम बातों का विषय नहीं। बातें करने वाला प्रेम को नहीं अपना पाता और प्रेम को अपनाने वाला बातें नहीं कर पाता। देख, तू सदा ईश्वर से प्रेम करने की बातें कहता रहता है किन्तु अभी तेरा ध्यान अन्यत्र है। जब तक तेरा ध्यान अन्यत्र रहेगा तब तक तेरी कही हुई बात पूरी नहीं होगी। समय गुजरता जायेगा किन्तु वह समय नहीं

आयेगा जब तू प्यार कर सकेगा। अतः 'प्यार करूँगा' तू यह कह नहीं, तू प्यार को जीवन का शृंगार जान कर प्यार के लिये कदम बढ़ा। परिणाम तेरा ध्यान स्वतः केन्द्रित होने लगेगा और तू प्यार से सजता चला जायेगा अन्यथा तेरे जीवन में प्यार की घड़ी आनी ही कठिन होगी।

७३ बच्चे बड़े होंगे, शायद तब। अब रह क्या गया जो प्यार करेगा?

ऐ प्राणी! तेरी यह धारणा है कि आज तो मैं भली प्रकार मेरे घर-परिवार तथा बच्चों की साज-सँभाल कर लूँ तथा बच्चे जब बड़े हो जायेंगे तब ईश्वर से प्यार कर लूँगा, किन्तु तेरी यह धारणा गलत है क्योंकि घर-परिवार व बच्चों की देखभाल करते-करते तू तेरे हृदय की निर्मलता ही खो बैठेगा। तू 'मैं-मेरे' में इतना अधिक उलझ जायेगा कि उनसे छुटकारा पाना ही तेरे लिये कठिन हो जायेगा। देख, प्यार का प्रादुर्भाव निर्मल अन्तःकरण में होता है। प्यार को अपना कर घर-परिवार व बाल-बच्चे छूटते नहीं, इनके प्रति भाव बदलता है। प्रथम ये मोह से अपने रहते हैं किन्तु प्रेम की दुनिया को अपनाने से सभी ईश्वर के हो जाते हैं अतः अपने हो जाते हैं। मोह में जो बातें नहीं दिखतीं वे प्रेम में स्पष्ट होकर दीखती हैं। अतः तू इस गलत धारणा को प्रश्रय न दे कि बच्चों के बड़े होने पर मैं ईश्वर से प्यार करूँगा क्योंकि समय बीत जाने के पश्चात् न तो तेरे तन में ही नवीन भाव को अपनाने की शक्ति रह जायेगी और न तेरा मन ही निर्मल रह जायेगा।

७४ मैल ही फैलाता रहा, निर्मल हुआ कब?

ऐ प्राणी! जो मैले में रहता है वह मैल फैलाता भी है। जिसे साफ-सुथरा रहने की आदत रहती है उसे थोड़ा मैल भी दिखलाई देता है और वह तब तक चैन से नहीं बैठ पाता जब तक कि मैल साफ न हो जाये। देख, प्रारम्भ से ही तेरी अभाव मानने की आदत बनी हुई है, तू बात-बात में अभाव मानता रहता है। यह अभाव और कुछ नहीं तेरे मन का मैल है। इस मैल से घिरा तू भी कष्ट पाता रहता है तथा इसकी चर्चा करके चातुर्दिक भी इसे फैलाता रहता है—स्वच्छता की तो तू केवल बात करता है, अभी चाहता नहीं। अरे पगले! अभाव की चर्चा तू यदि किसी भी भाव से करेगा तो तू अभाव को ही आमन्त्रण देगा क्योंकि चाहे किसी भी भाव से क्यों न हो, अभी तू अभाव को याद करता है और निर्मलता की तो तू बातें ही करता है, अभी

उसे याद नहीं करता। जिस दिन निर्मलता भी तुझे अभाव की तरह याद आने लगेगी उस दिन तू निर्मलता को भी पा जायेगा।

७५ भ्रम ही शर्म।

ऐ प्राणी ! तू महान की सन्तान है। तेरे भीतर अलौकिक शक्ति है फिर भी तू स्वयं को कमजोर समझता है। तू स्थूल जगत में रहते-रहते दिन व दिन स्थूल से आवद्ध होता जा रहा है और यही कारण है कि भ्रमवश तू स्थूल के प्रति समर्पित होता जा रहा है। देख, भ्रम अन्धेरा है। अन्धेरे में किसी भी चीज का सही रूप नहीं दिखाई देता और न सही कार्य होते हैं। यह अन्धेरा तो छूट जाने में ही भलाई है। अन्य जीव-जन्तु यदि अन्धेरे में रहते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि उनके पास प्रकाश पाने का कोई रास्ता नहीं किन्तु तू यदि अन्धेरे में रहे तो तेरे लिये यह शर्म की बात है क्योंकि तू स्वयं प्रकाश पुञ्ज है और प्रकाश को पाने की क्षमता भी रखता है। अतः तू अपनी शक्ति को पहिचान कि भ्रम में पड़े रहने के कारण तुझे कभी नीचा न देखना पड़े।

७६ देखो उन प्यार के पुजारियों को जिनकी पूजा हो गई बन्द।

ऐ प्राणी ! प्यार के पुजारी पूजा के कुछ कार्य करके सन्तुष्ट नहीं हो पाते, उन्हें तो प्रिय का प्रत्यक्ष सामीप्य चाहिये। वे जब तक प्रिय का सामीप्य नहीं पा जाते तब तक वेचैन वने रहते हैं, उनके दिन की भूख तथा रात की नींद सब गायब हो जाती है। वे लोगों के द्वारा बनाई हुई विधि से भी पूजा नहीं कर पाते, उनकी पूजा तो प्रायः बन्द सी हो जाती है, यदि रहती भी है तो भी उस पूजा के तौर-तरीके भिन्न रहते हैं। वे पागलों की तरह कभी ईश्वर पर फूल चढ़ाते देखे जाते हैं तथा (वे ही फूल) कभी स्वयं पर रखते देखे जाते हैं। उनमें और प्रिय में कोई भेद नहीं रह जाता, उनकी दुनिया प्रिय के भावों से सज कर एक हो जाती है। ऐसे प्रेम के पुजारी देखने में ईश्वर से भिन्न दिखते हैं किन्तु होते हैं एक। उनमें और ईश्वर में भिन्नता केवल शरीर की रहती है, भाव से वे अभिन्न होते हैं।

७७ प्यार पूजा नहीं चाहता। प्यार प्यार चाहता है। भगवान की भगवान जानें।

ऐ प्राणी ! प्यार ईश्वर है और ईश्वर ही प्यार है। प्यार कभी पूजा नहीं चाहता क्योंकि पूजा में श्रद्धा अवश्य रहती है किन्तु प्यार का अभाव ही रहता है। प्यार हमेशा प्यार से ही पाया जा सकता है, श्रद्धा से नहीं पाया

जा सकता। देख, भगवान के नाम पर बड़े-बड़े मन्दिर, व्रत-उपवास, तीर्थाटन आदि हो सकते हैं किन्तु प्रिय के नाम पर तो दिल ही मन्दिर बनता है, उसमें प्रिय की मूर्ति विराजमान होती है और प्रेमी, प्रिय के भावों में रत रहता हुआ सदा भाव से उसी के समीप बना रहता है। प्रिय के चरण ही उसके चारों धाम होते हैं। वह प्रिय को केवल बाहर देख कर खुश नहीं होता, भीतर भी वह उसे वैसे ही प्रत्यक्ष देखना चाहता है जैसे बाहर देखता है।

७८ यदि प्यार ही भगवान। फिर क्यों करता अभिमान? अभिमान—मान दे प्यार को अभिमान न रहे।

ऐ प्राणी! प्यार की दुनिया में अभिमान नहीं रहता और जब तक अभिमान है तब तक प्यार नहीं होता। देख, यदि तुझे प्यार ही भगवान लगता है तो अभिमान तेरे लिये शोभनीय नहीं। यह अभिमान सदा कर्त्तापन के 'मैं' के कारण होता है और प्रेमी की दुनिया में 'मैं' के लिये किञ्चितमात्र भी स्थान नहीं रहता, रहता है केवल प्रिय, जिसे देखता हुआ वह सदा आनन्द पाता रहता है। अतः तेरे समीप यदि अभिमान बना हुआ है तो तू प्यार को अधिक से अधिक सम्मान दे। तू जैसे-जैसे प्रिय की दुनिया में स्वयं को पायेगा वैसे-वैसे अभिमान-शून्य होता जायेगा और एक समय आयेगा जब तेरी दुनिया में केवल प्रिय ही रह जायेगा, सम्पूर्ण जड़-चेतन प्रकृति में तू प्रिय को ही समाया हुआ देख पायेगा। प्रिय के सिवा तेरी दुनिया में कुछ नहीं रह जायेगा अर्थात सम्पूर्ण कार्य का कर्ता तू ईश्वर को देख पायेगा।

७९. सँभल, प्यार मिट्टी में न मिल जाय। चेतन का प्यार चेतन में समाया। जड़ का प्यार जड़ ही बन आया।

ऐ प्राणी! प्यार की निधि बहुमूल्य है, तू सदा इसे सहेज कर रखना। तुझे मिला हुआ यह धन तेरी बेरुखी के कारण कहीं मिट्टी में न मिल जाये। देख, ईश्वर चैतन्य प्राणी में जितना प्रत्यक्ष झलकता है, उतना प्रतिमा में नहीं झलकता क्योंकि प्राणी ईश्वर द्वारा निर्मित है और प्रतिमा मनुष्य द्वारा निर्मित है, अतः ईश्वर द्वारा निर्मित मनुष्य में ईश्वर का झलकना स्वाभाविक है। देख, यों तो ईश्वर सब प्राणियों में समाया हुआ है किन्तु कहीं-कहीं वह चैतन्य दीख पड़ता है। तुझे जहाँ उसका भाव आकृष्ट करे तथा जहाँ बैठकर तू स्वयं को भूल पाये, तू उस चैतन्य पुरुष का आधार ग्रहण कर कि तू अपनी भूली चेतना पा सके। उस चेतनता को पाकर ही तेरा चैतन्य प्राणी होना सार्थक होगा

अन्यथा (चेतना के अभाव में) तू प्रतिमा के समीप बैठकर भी कुछ नहीं पा सकेगा, केवल शरीर द्वारा कार्य करके अहंकार को ही फुलायेगा और शरीर तथा संसार की स्थिति को क्षण भर के लिये भी नहीं भूल पायेगा।

८० राम रस (नमक) के बिना सभी पदार्थ फीके।

ऐ प्राणी! तू चाहे सम्पूर्ण संसार का पराकाष्ठा का वैभव प्राप्त कर ले किन्तु उन्हें पाकर भी तू अन्तर से सरस नहीं हो सकेगा क्योंकि रूप, गुण, मान-सम्मान, धन-ऐश्वर्य ये सभी ईश्वर के साथ से सजते हैं। ईश्वर को पाये विना ये उस भोजन की तरह हैं जो विविध प्रकार से तैयार किया गया हो किन्तु जिसमें नमक न हो। देख, राम का आधार ही जीवन में सरसता भरने वाला है। राम के बिना जीवन की कल्पना करना जीवन को जड़ बनाना है— ऐसा जीवन चलती फिरती लाश कहा जा सकता है। जीवित रहने के लिये केवल श्वास ही नहीं चाहिये, वह भाव भी चाहिये जिससे अन्तर में सरसता आये क्योंकि श्वास तो केवल तन को गतिशील कर सकते हैं किन्तु प्राणों में चेतना तो भाव (राम रस) से ही मिलती है। भाव पाकर ही स्थूल दृष्टि से पाया हुआ सब कुछ भी आनन्द देने वाला बन सकता है।

८१ जगमग ज्योति जले। जग, मग ज्योति जले।

ऐ प्राणी! तू प्रकाश पुञ्ज है। तेरे अन्तर में अनवरत् जगमग ज्योति जल रही है किन्तु तू उससे अनभिज्ञ, बाहर की दुनिया में प्रकाश के पीछे दौड़ रहा है। बाहर का प्रकाश स्थूल कार्यों का सहायक हो सकता है किन्तु अन्तर के भावों का सहायक नहीं हो सकता, उसके लिये तो अन्तर का प्रकाश चाहिये। देख, अभी तू स्थूल में खोया हुआ है अतः अन्तर की तरफ से सोया हुआ है। यदि सौभाग्य से तू सत्य वाणी का संग पा जाये तो तू होश में आये। होश में आने के पश्चात् तू जिस रास्ते पर आगे बढ़ेगा वहीं प्रकाश तेरे साथ होगा। उस अवस्था में स्थूल तुझे आकृष्ट नहीं कर पायेगा, अन्तर-प्रकाश के साथ तू सदा आगे बढ़ता रहेगा।

८२ मन चाही नहीं होती इसीलिये दुःखपूर्ण। मन चाही न हुई तो क्या, किसी की चाही तो हो रही है। मन दो उसको तो मन चाही होने लगे।

ऐ प्राणी! अभी तेरी दृष्टि संकीर्ण है इसीलिये यदि तेरे मन के अनुकूल परिस्थितियाँ रहती हैं तो तू खुश हो जाता है और यदि प्रतिकूल रहती हैं तो

तू दुःखित हो जाता है। देख, तू सदा कहता व सुनता आया है कि सम्पूर्ण कार्य का कर्ता ईश्वर है किन्तु अभी तू उसे देख नहीं पाता। उसके कार्यों को देखने के लिये तू उसे मन दे, वह मन जो उसे भूल कर बाहर ही बाहर चक्कर काट रहा है तथा ईश्वर की बातें कर रहा है। जब मन उसका होगा तो ईश्वर की इच्छा ही तेरी इच्छा बनेगी और तू देख पायेगा कि सभी कार्य ईश्वर की मन चाही से हो रहे हैं अर्थात् तेरी भलाई के लिये हैं। ईश्वर को मन देकर ही तू ईश्वर के सारे विधान से खुश रह सकेगा तथा आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकेगा।

८३ गाकर भी रिझा न सका। क्यों? रीझ न पाया। खिलाने वाले खुद भूखा न रह तन से, मन से, धन से। नहीं तो भूख बनी रहेगी दोनों की।

ऐ प्राणी! ईश्वर के गीत गाकर ईश्वर को नहीं रिझाया जा सकता है। गीत गाते-गाते जब तू स्वयं रीझ जायेगा और 'तू गाने वाला है' इसका तुझे ध्यान नहीं रह जायेगा तब तू ईश्वर को रिझा पायेगा क्योंकि रीझने वाला ही अन्य को रिझा सकता है। देख, यदि तू किसी की तन से सेवा करना चाहता तो तेरा तन पहले स्वस्थ चाहिये, यदि किसी को मन से प्रसन्न देखना चाहता है तो उसे मन की प्रसन्नता देने के लिये पहले तेरा मन प्रसन्न चाहिये और यदि धन से किसी की सहायता करना चाहता है तो तेरे पास धन रहना भी आवश्यक है। जो चीज तेरे पास नहीं होगी, उसे तू किसी को कैसे दे सकता है? अतः तू यदि ईश्वर को रिझाना चाहता है तो तू सही रास्ते पर कदम बढ़ा अर्थात् ईश्वर के लिये तू मुख से वे ही शब्द उच्चारित कर जो तुझे दिल से भाते हों एवं जो तेरे अपने हों। रीझ कर कहे गये शब्दों से केवल ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर को पाना चाहते हैं वे भी रीझ जायेंगे अन्यथा सरलता के अभाव में सभी अतृप्त बने रहेंगे।

८४ नारायण ने लक्ष्मी को चरण दिये किन्तु हृदय तो भक्तों का धन है।

ऐ प्राणी! लक्ष्मी, नारायण की सहचरी (अर्द्धांगिनी) है। वह दिन-रात नारायण की सेवा में रत रहती है फिर भी उसे नारायण के चरण ही प्राप्त हैं, हृदय नहीं। देख, लक्ष्मी की आज घर-घर में पूजा होती है, सिद्ध-साधक भी उसे केवल मुख से भला-बुरा कहते हैं किन्तु दिल से उसकी पूजा करते हैं,

तब भी वह नारायण से दूर ही बनी हुई है क्योंकि नारायण का हृदय तो उन भक्तों के लिये है जिनके जीवन का सर्वस्व नारायण है। नारायण-भक्त को धन-ऐश्वर्य, मान-बड़ाई आदि कोई भी आकर्षण अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते क्योंकि उनके जीवन का परम लक्ष्य नारायण ही बन जाता है। नारायण के बिना जिनका अपना कुछ भी नहीं रह जाता—ऐसे भक्त ही नारायण के हृदय में स्थान पाते हैं। देख, यों तो नारायण सबका है—जिन्हें कोई भी नहीं अपनाता वे भी नारायण की शरण में जगह पाते देखे जाते हैं किन्तु नारायण के हृदय पर अधिकार केवल भक्तों का होता है।

८५ लक्ष्मी के लिये चरणों में पड़ा किन्तु गति तो हृदय में है।

ऐ प्राणी ! नारायण के समीप जो जिस भाव से जाता है वह उसे अवश्य प्राप्त होता है क्योंकि उसके दरवाजे से कोई खाली नहीं लौटता। यदि तू नारायण के चरणों में लक्ष्मी के लिये पड़ेगा तो वह (लक्ष्मी) तुझे अवश्य प्राप्त होगी किन्तु नारायण के चरणों में लक्ष्मी की याचना करना राजा से तरकारी की माँग करने के समान होगा। देख, नारायण हृदय-परिवर्तन करने वाला है, वह तेरे दिल की कद्र करके राहत देने वाला है अतः तू नारायण के समीप हृदय-परिवर्तन के लिये एवं हृदय को शुद्ध करने के लिये जा क्योंकि जीवन में गति हृदय से है। नारायण का साथ तेरे हृदय के भावों को बदल देगा और यदि तेरे हृदय के भाव बदल जायेंगे तो तेरे जीवन की गति ही बदल जायेगी अन्यथा हृदयहीन बनकर तू लाशवत् जीवन व्यतीत करता रहेगा।

८६ नर नहीं नारायण का भाव ले तो लक्ष्मी चरण सेविका बने।

ऐ प्राणी ! तू छोटा नहीं है, 'मैं' के घेरे में आबद्ध होकर छोटा बना हुआ है और अब वस्तुओं को एकत्रित करने की चेष्टा में उनके पीछे भागता रहता है। देख, वस्तुओं के पीछे दौड़-दौड़ कर तू थक जायेगा फिर भी तृप्ति नहीं पायेगा क्योंकि वस्तुएँ परिवर्तनशील व विनाशी हैं। अतः तू उनके पीछे दौड़ना छोड़ कर अपने रूप को पहिचान अर्थात् तू नारायण का भाव ग्रहण कर कि जिनके पीछे तू दौड़ रहा है, वे तेरे पीछे दौड़ने लगें। देख, समुद्र में सभी नदी-नाले आकर स्वतः समाहित हो जाते हैं क्योंकि समुद्र विशाल है। तू भी जब नारायण के भाव से सजता चला जायेगा तो लक्ष्मी तेरा सामीप्य पाने के लिये (सेवा करने के लिये) छटपटायेगी। वह तेरे द्वार पर स्वतः चली आयेगी क्योंकि लक्ष्मी सदा नारायण के साथ रहती है।

८७ पान कर, अहं का भान न रहे।

ऐ प्राणी ! ईश्वर-कृपा के बिना सद्गुरु का मिलन सम्भव नहीं तथा सद्गुरु के मिलन के बिना अहं का मिटना सम्भव नहीं। देख, तुझे यदि सद्गुरु के दर्शन हुए हैं तो तू यह निश्चित समझ ले कि तुझ पर ईश्वर-कृपा शुरू हो गई है। अब तू उनकी अमृत वाणी का पान कर। उनकी अमृत वाणी जब श्वासों की तरह तेरी अपनी होगी तब वह अहं का भान भी नहीं रहने देगी क्योंकि सत्य-वाणी ऐसी ही होती है। सन्त, सत्य का प्रत्यक्ष रूप हैं। उनकी वाणी का एक-एक शब्द सत्य से आवेष्टित है। उनकी वाणी जब सत्य की जिज्ञासा रखने वाले प्राणी के हृदय में पड़ती है तो अनुपम सृष्टि पैदा करती है। अनेक जन्मों के संस्कार सन्त-वाणी की मेहरबानी से कटते देखे जाते हैं। अतः तू उनके वाणी रूपी अमृत-प्रवचन में अन्तर घट को डुबा दे कि तेरा अपना अलग अस्तित्व ही न रहे, केवल सन्त (सत्य) ही रह जाये।

८८ सोना दे, सोने दे यही प्रार्थना थी।

ऐ प्राणी ! धन ऐश्वर्य व ऐश-आराम की पहुँच केवल शरीर तक है, अन्तर की दुनिया तक नहीं। देख, तू शरीर की तरफ देखते-देखते शरीर से इतना बद्ध हो गया है कि केवल शरीर को ही अधिक से अधिक आराम देने के साधनों में उलझा रहता है। यदि सौभाग्य से ईश्वर का या ईश्वर के प्यारों का सामीप्य भी तू पा जाता है तो उनके सम्मुख भी शरीर के लिये ही प्रार्थना करता है। अरे पगले ! धन जो साधन मात्र है तथा आराम जो विश्राम मात्र है—उसे ही तूने जीवन का लक्ष्य क्यों बना लिया है ? देख, इन्हें लक्ष्य बनाकर तू अन्तर में कभी चैन नहीं पा सकेगा और अन्तर में चैन पाये बिना तुझे कितना भी कुछ क्यों न मिल जाये, तू प्रसन्न नहीं रह सकेगा। अतः तू प्रथम अन्तर की प्रसन्नता के साज सजा तथा ईश्वर से प्रार्थना भी अन्तर की शान्ति व तृप्ति के लिये कर तभी तू चैन पा सकेगा अन्यथा सब कुछ पाकर भी तू अतृप्त ही बना रहेगा।

८९ हैरान होता है, जान है राम फिर क्यों हैरान ?

मनुष्य प्रत्येक कार्य बुद्धि द्वारा सजा कर करना चाहता है, इससे कुछ अंशों में वह बाहर की हैरानी (परेशानी) से बच भी जाता है किन्तु हैरानी का समूल परिवर्तन (बुद्धि द्वारा) नहीं हो पाता—कारण हैरानी केवल बाहर के कार्यों की नहीं रहती, अन्तर्मन की रहती है और अन्तर्मन को परिवर्तित करना

मनुष्य के वश की बात नहीं ! ऐ प्राणी ! देख, ईश्वर को जाने बिना हैरानी से बचना कठिन है क्योंकि हैरानी का मूल कारण ईश्वर से विमुखता है। बुद्धि द्वारा थोड़े समय के लिये अन्तर के भावों को दबाया जा सकता है किन्तु दिल नहीं बदला जा सकता। अतः तू सचमुच हैरानी से घबड़ाता है तथा उससे बचने की राह खोजता है तो तू ईश्वर की सत्ता को पहिचान। परिणाम तेरे अन्तर के भाव बदलते चले जायेंगे ओर सभी कार्यों का कर्त्ता तू ईश्वर को देख पायेगा तथा उसके सभी कार्यों में भलाई देखता हुआ, हैरानी से बच जायेगा।

९० आज शांत, फिर काल ? नहीं भ्रान्त, नहीं क्लान्त।

ऐ प्राणी ! आज का समय तू गफलत में न खो क्योंकि आज का अवसर कुछ पाने के लिये है। आज तू शान्त पुरुष (सन्त) के समीप बैठ कर शान्ति का रास्ता अपना ले तथा उसी पर बढ़ता हुआ शान्ति रूपी धन को पा ले। शान्ति रूपी धन सब प्रकार के धन से बड़ा है। इस धन को पाकर तू निहाल हो जायेगा तथा आज का पाया हुआ यह धन तेरे हर अवसर पर काम आता रहेगा। देख, भ्रान्ति और क्लान्ति शान्त पुरुष के समीप नहीं आ सकती क्योंकि शान्त पुरुष प्रत्येक अवस्था में शान्त बना रहता है। भ्रान्ति तो उन्हें भ्रमित करती है जो अस्थिर हैं तथा थकावट भी उन्हें ही मिलती है जो हड़बड़ा कर कार्य करते हैं। शान्त पुरुष तो धीरज के साथ एक-एक कदम आगे बढ़ाता है तथा एक दिन मंजिल तक पहुँच जाता है।

९१ (सीना) तान कर कह, सीने में तू।

ऐ प्राणी ! सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है—यह तू सुनी-सुनाई बातों के आधार पर न कह, इससे तू कोरा का कोरा रह जायेगा। इस सत्य को तू प्रत्यक्ष देख, क्योंकि प्रत्यक्ष देखे बिना तू ईश्वर की दुनिया का आनन्द नहीं ले सकेगा। देख, प्रथम तू ईश्वर को जानने की इच्छा रख। तेरी चाह जब तीव्र रूप धारण करेगी तब तू ईश्वर के कार्यों को प्रत्यक्ष देख सकेगा अर्थात् सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है—यह जान पायेगा। ईश्वर तब केवल बाहर नहीं होगा, सदा तेरे सीने में प्रतिष्ठित होगा क्योंकि अब तेरे हृदय में ईश्वर को प्रत्यक्ष देखने की चाह उत्पन्न हो गई है और यही वह स्थिति है जब एक दिन तू सीना तान कर कह सकेगा—सीने में तू।

९२ घुटने न टेक, जब टेक रखने वाला सम्मुख है।

ऐ प्राणी ! जन-जन के सामने घुटने उसको टेकने पड़ते हैं जिसके सामने

'ईश्वर टेक रखने वाला है' यह बात स्पष्ट नहीं। देख, यदि तू ने टेक रखने वाले (ईश्वर) को जाना है तो तू सदा उसे ही देखता रह क्योंकि प्रत्येक कार्य की कर्त्ता वही है। यदि प्रत्यक्ष रूप में तू किसी अन्य को कार्य करते देख पाये तो भी भ्रम में न पड़ना क्योंकि सभी रूप ईश्वर के हैं एवं किसी भी रूप में वह कार्य सम्पादित कर सकता है। देख, व्यक्ति का सहारा बालू की भीत की तरह है, वह किसी भी समय ढह सकता है, उनका सहारा तुझे पुनः बेसहारा बना देगा। अतः सहारा उसका ही ठीक है जो सदा साथ रहे। उस साथ वाले (ईश्वर) के सामने घुटने टेकने वाला ही महान है। जो ईश्वर का है वह केवल ईश्वर के सामने ही झुकता है, अन्य कोई भी हस्ती उसे झुका नहीं सकती।

९३ हार जीत तजी तब शांत।

ऐ प्राणी! सफलता वे ही व्यक्ति पाते हैं जो कार्य को पूरी लगन व मेहनत से शान्त रह कर सम्पादित करते हैं। कार्य करने के पूर्व ही जो उसके प्रतिफल की ओर देखना शुरू कर देते हैं वे न तो कार्य के प्रति सतर्क रह पाते हैं और न शान्त ही रह पाते हैं। देख, जीवन में शान्ति का बहुत बड़ा स्थान है, शान्ति के बिना जीवन पाकर भी व्यक्ति जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जाता है। अतः तू प्रत्येक कार्य को तल्लीनता से, शान्त रह कर करता चल, हार-जीत की कल्पना करके शक्ति का अपव्यय न कर। यदि तू शान्त रह सका तो बड़ी से बड़ी परिस्थिति भी तुझे अशान्त नहीं कर पायेगी और सफलता का राज भी तू उसी अवस्था में पा सकेगा।

९४ वाकुल है तो आकुल क्यों?

ऐ प्राणी! चाह में बहुत बड़ी शक्ति है। चाह से असम्भव कार्य भी सम्भव होते देखे जाते हैं। जब तक केवल तन-मन का जोर लगाकर व्यक्ति कुछ पाने की इच्छा रखता है तब तक उसे इच्छित वस्तु के मिलने में देर होती है किन्तु जिस दिन इच्छा, चाह में परिवर्तित हो जाती है उस दिन सफलता उसके कदम चूमने लगती है। देख, अब तू अपने अन्तर में निरिक्षण कर कि जिन वस्तु, भाव आदि को तू पाने की बातें करता है वे केवल तेरी बातें ही हैं या अन्तर की चाह (विकलता) है। यदि चाह है तो उसे पाने के साधन तुझे जुटाने नहीं होंगे, तू स्वतः उन रास्तों को पा जायेगा जिन पर बढ़ता हुआ लक्ष्य को पा सकेगा। अन्यथा विकलता (वाकुल) के अभाव में तू यों ही परेशान (आकुल) होता रहेगा।

९५ आलाप चाहता है कि मिलाप ? प्रथम आलाप फिर मिलाप।

ऐ प्राणी ! बातचीत (आलाप) द्वारा परस्पर भावों का मिलन होता है और जब भावों में कहीं दूरी नहीं रह जाती, तब मिलाप (आत्म-समर्पण) होता है। आलाप के बिना मिलाप सम्भव नहीं, क्योंकि आलाप द्वारा जब तक हृदय शुद्ध नहीं होगा तब तक भागवदीय शक्ति का हृदय में उतरना सम्भव नहीं। देख, यदि तू ईश्वर से मिलन चाहता है तो जो ईश्वर के हैं, प्रथम तू उनसे मिल। तेरे हृदय की विकलता तेरी सहायक बनेगी और तू सद्गुरु के दर्शन कर पायेगा। सदगुरु की वाणी का बीज जब तेरे तड़पते हृदय पर पड़ेगा तो वह बेकार नहीं जायेगा, वह तेरे अन्तर की जमीन को बनाता हुआ अंकुरित होगा तथा धीरे-धीरे बढ़ता हुआ एक दिन फूल का रूप धारण कर लेगा। किन्तु यह सब सम्भव होगा आलाप से, क्योंकि आलाप से ही मिलाप सम्भव है।

९६ आज विलाप कल मिलाप।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को वे ही पाते हैं जिनका हृदय ईश्वर मिलन के लिये तड़पता (विलाप करता) है। ईश्वर यों तो सब में समाया हुआ है एवं सभी कार्य ईश्वर द्वारा सम्पादित हो रहे हैं किन्तु इस तथ्य से व्यक्ति अनजान है क्योंकि वह शरीर को सम्मुख देखता है तथा भ्रमवश शरीर को ही कर्त्ता मान बैठता है। देख, तू ईश्वर की गोद में ही बैठा है किन्तु इस सत्य को जानने के लिये तुझे तड़पना होगा। तड़प के के बिना तू ईश्वर के साथ रहते हुए भी ईश्वर से दूर रह जायेगा। तड़पन ईश्वर-मिलन का सहज साधन है। जो स्थिति जप-तप से सम्भव नहीं, वह हृदय की तड़पन से सम्भव होती है। देख, यदि तेरे हृदय में प्रभु-मिलन के लिये तड़पन है तो तू यह निश्चित समझ ले कि वह बेकार जाने वाली नहीं क्योंकि जिसका हृदय ईश्वर-मिलन के लिये छटपटाता है उसका एक न एक दिन अवश्य ईश्वर से मिलाप होता है।

९७ कुछ भूला है, जो भूला भूला घूम रहा है। कुछ खिला है जो फूला फूला घूम रहा है।

ऐ प्राणी ! जो ईश्वर को भूलकर जीवन-यापन करते हैं वे सब कुछ पाकर भी अप्रसन्न से रहते हैं फिर भी इस रहस्य को नहीं जान पाते कि उनकी ऐसी अवस्था क्यों है, किन्तु (दूसरी ओर देखा जाता है कि) जिन्होंने अंश

मात्र भी ईश्वर की शरण ली है वे कुछ खिले हुए से रहते हैं, वे यहाँ, इसी संसार में फूले-फूले (आनन्द मनाते) रहते हैं। देख, ईश्वर को भूलने से एक के लिये यही संसार नरक बन जाता है तथा ईश्वर के साथ से दूसरे के लिये यही (संसार) स्वर्ग अर्थात् आनन्द का बगीचा बन जाता है। अतः तू भी यदि मौज मनाना चाहता है तो कुछ पाले कि तेरा हृदय-कमल खिल जाये तथा तू फूला-फूला फिरे अन्यथा तेरी जिन्दगी भूल की शूल के कारण रोते-रोते ही गुजरेगी।

९.८ भजन भी गाया तो पाप पुण्य का। फिर आनन्द ?

ऐ प्राणी! भजन के द्वारा भक्त, हृदय के भावों को ईश्वर के सम्मुख रखता है। भजन से उसके हृदय का वजन कम होता है तथा वह ईश्वर की समीपता का आभास पाता है—यह स्थिति उसके हृदय में आनन्द की अनुभूति देती है। देख, भक्त के भजन करने में कोई कारण नहीं लगा रहता है, क्योंकि भजन उसके हृदय की मधुरिमा का प्रतीक है। किन्तु वही भजन जब कारण से किया जाता है तो भजन का रस खत्म हो जाता है क्योंकि भजन कोई कार्य नहीं जो कारणवश सम्पादित किया जाये। अतः तू भजन द्वारा पाप-पुण्य के गीत न गा, भजन में हृदय के भावों को सजा कि तू भजन से आनन्द पाये। अन्यथा ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य करके तू उसे भजन नाम देता रहेगा तथा भजन की मधुरिमा से दूर ही रह जायेगा एवं आनन्द नहीं पा सकेगा।

९.९ रास देख आँखों में—सफेदी राधा भूमिका बनी, कालिमा कृष्ण नृत्याकार और लालिमा गोपियों की तरह झूमने लगी। रास-रस-रास।

ऐ प्राणी! तू रास को केवल कल्पना में या खेल में देखने का इच्छुक न बन, इससे तू रास के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा। देख, हृदय में जब प्रेम-भाव का आविर्भाव हो जाता है तो ये आँखें ही रास-भूमि बन जाती हैं। हृदय की सरलता (राधा) आँखों की सफेदी में छा जाती है तथा गोलाकार कालिमा कृष्णवत् आकर्षण युक्त होकर अपनी ओर खींचने लगती है और (आँखों की) लाल नसें गोपियों की तरह आनन्द-मग्न हो झूमने लगती हैं—ऐसी आँखें देखते ही बनती हैं। ये (आँखें) व्यक्ति को रास का आनन्द देती हुई रस से आप्लावित करती रहती हैं तथा रास के योग्य बना देती हैं अर्थात् प्रेम की जागृति देती हैं। जब ऐसी आँखों के दर्शन व्यक्ति कर पाता

है तो उसी में घुल-मिल कर एक हो जाता है। देख, आँखों से देखे हुए रास का आनन्द तो मिल भी सकता है और नहीं भी, क्योंकि जब तक रास के भावों के अनुसार भाव की जागृति नहीं होती तब तक (रास से) रस नहीं मिलता किन्तु आँखों का रास तो हृदय में प्रेम की उत्पति के पश्चात् ही होता है। यह रास, अंग-प्रत्यंग व रोम-रोम को बाहर-भीतर व सभी जगह से रस से आप्लावित कर देती है और रस देती हुई जीवन को ही रासभूमि बना देती है तथा सदैव आनन्द का वर्षण करती रहती है।

१०० प्रिया के हृदय में प्रिय का नृत्य—रस विभोर हो गई गोपियाँ।

ऐ प्राणी ! प्रिय का नृत्य वहीं होता है जहाँ राधा भाव है। राधा प्रेम की धारा का नाम है ! राधा का सर्वस्व प्रिय है, प्रिय से विलग उसका एक श्वास भी नहीं—उसका सोना, जागना, उठना, बैठना सब प्रिय के साथ है। अहंता ममता का वहाँ नामोनिशान नहीं क्योंकि शरीर तथा सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में वह प्रिय का ही रूप देखती है। जहाँ ऐसा भाव है वहीं प्रिय का नृत्य होता है और (वह) सदा रस का वर्षण करता रहता है। उस रस से सम्पूर्ण इन्द्रियाँ (गोपियाँ) तृप्त हो उठती हैं—आँखें रूप माधुरी का पान करने में रत हो जाती हैं, कान सुरीली वाणी सुनने में तत्पर हो जाते हैं, जिह्वा गुणानुवाद करने में लग जाती है, हाथ सेवा में रत हो जाते हैं तथा पाँव द्वार तक जाने में सहायक बनते हैं। भीतर व बाहर सम्पूर्ण प्रिय का साम्राज्य छा जाता है और कण-कण में भी उसी का रूप व्याप्त हो जाता है। कहने को वे दो रहते हैं, यथार्थ में राधा ही कृष्ण तथा कृष्ण ही राधा बन जाते हैं।

१०१ रस बरसे, मन तरसे। क्यों न हरसे, जब बरसे।

ऐ प्राणी ! तेरे अन्तर में अनवरत रस का वर्षण हो रहा है किन्तु अभी तेरी आँखें स्थूल में लगी हैं तथा स्थूल को पाने के लिये ही व्यग्र बनी हुई हैं। अब यदि रस का वर्षण (सम्मुख) प्रत्यक्ष रूप में भी होता रहे तो भी तू उस रस को केवल कान से ग्रहण करता है किन्तु ध्यान स्थूल (धन-जन) में लगे रहने के कारण तू मन से तृप्त नहीं होता, (मन) तरसता रहता है। देख, अन्तर के रस को तू सद्गुरु की वाणी द्वारा पा सकेगा अतः तू प्रथम सद्गुरु की वाणी रूपी वर्षा का पान कर, किन्तु तू उसे केवल कान न देना, उससे हर्षित होना। उसे पाकर जब तेरा मन हरषेगा तो तेरे अन्तर का बन्द दरवाजा खुलता जायेगा ओर तू अन्तर्मुखी हो सकेगा। अन्तर्मुखी होकर ही तू अन्तर में हो रही अनवरत वर्षा को देख पायेगा, इतना ही नहीं, उसका आनन्द भी ले पायेगा।

१०२ गो लोक के रास की कल्पना की, क्यों न गो लोक में प्रत्यक्ष रस चक्खा ?

ऐ प्राणी ! 'आँखों से परे कोई ऐसा देश है जहाँ हर पल रास होती रहती है' तू ऐसी कल्पना करता है तथा वे बातें करके आनन्द लेना चाहता है। अरे पगले ! तू कल्पना में न खेल, कल्पना में खेलते रहने से तू सत्य से सदा दूर ही रह जायेगा क्योंकि कल्पना का आनन्द स्वाभाविक नहीं होता, किसी भी समय उड़ सकता है। अतः तू यदि सचमुच आनन्द का अभिलाषी है तो कल्पना को छोड़ कर यथार्थ में आ। देख, तेरे हृदय में जब प्रेम (राधा) का प्रादुर्भाव होगा तो तेरा हृदय ही रासभूमि बन जायेगा—कृष्ण तेरे हृदय-पटल पर आच्छादित होकर प्रत्येक इन्द्रियों (गोपियों) को रस विभोर करता रहेगा। ऐसी स्थिति में रास की तुझे कल्पना नहीं करनी होगी, इस शरीर (गो लोक) में ही तू आनन्द पाता रहेगा और तेरा काल्पनिक गो लोक भी तेरे अन्तर में ही आ जायेगा।

१०३ भाव जाने तो भावुक। नहीं, भाव में आये तो भावुक।

ऐ प्राणी ! भाव, बुद्धि से समझने का विषय नहीं। भाव को बुद्धि से समझ कर क्षणिक आनन्द लिया जा सकता है, (भाव का) स्वाभाविक आनन्द नहीं पाया जा सकता। देख, भाव और भावुकता में अन्तर है। भावुक (व्यक्ति) समय-समय पर भाव में आता देखा जाता है किन्तु उसकी यह स्थिति स्थायी नहीं, क्षणिक है किन्तु भाव में यह बात नहीं। भाव जल्दी से आता नहीं और यदि एक बार जीवन में आ जाता है तो फिर लौट कर जाता नहीं क्योंकि भाव सामयिक स्थिति नहीं स्थायी अवस्था है। भाव वाला भी भावुक देखा जाता है किन्तु इस भावुकता में तथा केवल भावुक में जमीन-आसमान का अन्तर है। भावुक को छोटी-छोटी बातें रिझाती व खिजाती हैं किन्तु भाव वाला तो 'भाव' पाकर ही कोमल (भावुक) होता है। वह (भाव वाला) बड़ी से बड़ी स्थिति में भी शान्त बना रहता है तथा भाव का आनन्द पाता रहता है।

१०४ 'गूंगे का गुड़' तो मूक अवस्था है किन्तु गूंगा कब तक ? पा कर भी शांत रहा तब तक। पाया तो पिला। नहीं व्यर्थ बातें न बना।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का प्यार गूंगे के गुड़ की तरह जीवन में मिठास भरने वाला है। देख, गूंगा गुड़ का केवल स्वाद ले सकता है किन्तु उसका वर्णन

करने में असमर्थ है क्योंकि उसके पास वर्णन करने के लिये वाणी (जीभ) नहीं, किन्तु तू ने यदि ईश्वर का प्यार पाया है तो तू चुप न बैठ क्योंकि गूंगे के पास भाव व्यक्त करने के लिये वाणी नहीं परन्तु तेरे पास तो है। अतः तुझे कुछ मिला है तो उसे तू वाणी से व्यक्त कर और यदि नहीं मिला है तो निरर्थक वकवास न कर—इससे किसी अन्य को धोखा नहीं होगा बल्कि तू ही धोखे में रह जायेगा। देख, ईश्वर का भाव बुद्धि से समझने का विषय नहीं। बुद्धि से समझ कर एवं कल्पना की दुनिया में खोकर तू यह कभी न समझ बैठना कि तू ने ईश्वर के भावों को पा लिया है। ईश्वरीय भावों की प्राप्ति से अन्तःकरण में हर पल आनन्द की अनुभूति होती रहती है—अन्तःकरण ही इसको पा लेने का साक्षी है।

१०५ क्यों पापी ? पाया तो पी, नहीं तो पी पी बोल। पिय आये और दिल की जलन मिटाये। पपीहा की पी, पी, की आवाज नहीं सुनता ?

ऐ प्राणी ! यह मनुष्य जन्म बहुत कीमती है। तू इस जन्म को पाप-ताप की बातों में न खत्म कर क्योंकि चर्चा के अनुसार ही भाव बनते हैं। तू इस मिले हुए बहुमूल्य समय को रस-पान करने में लगा जो (रस) तेरे अन्तर में अनवरत वह रहा है—उसे पान करके ही तू तृप्त हो सकेगा। यदि तुझे वह रस सम्मुख नहीं दिखलाई पड़े तो उसे पाने के लिये तू पपीहे की ओर देख। पपीहा केवल स्वाति नक्षत्र का जल ही पान करता है, अन्य जल नहीं—चाहे वह प्यासा ही छटपटा कर क्यों न मर जाये, लेकिन वह कभी मरता नहीं—स्वाति नक्षत्र का जल उसे अवश्य मिलता है। देख, तेरी भी रस की पुकार बेकार जाने वाली नहीं, तेरी पुकार से प्रिय एक दिन अवश्य आयेगा तथा पाप-ताप की बातों के कारण तेरे दिल में जो जलन हो गई थी, वह भी तभी मिटेगी।

१०६ मेरी ओर भी देख। अनेक हैं तो क्या मैं अनेक में नहीं ?

ऐ प्राणी ! तेरे अनेक संगी-साथी हैं। वे (अनेक) तेरे हैं तो रहने दे किन्तु उनमें से एक स्थान तू मुझे भी दे। उन्हें देखते-देखते तू मुझे बाद न कर क्योंकि मैं तेरा अपना हूँ। तू मुझसे कोई भी नाता जोड़ ले किन्तु मेरी ओर देखता रह। देख, यों तो मैं सबमें समाया हुआ हूँ किन्तु तू सबमें मुझे अभी नहीं देख पायेगा। जिस दिन तू मुझसे किसी भी एक भाव से सम्बन्ध

जोड़ेगा तथा मेरी ओर भी देखना शुरू करेगा तो तेरी दृष्टि शायद बदल जाये और तू सबमें भी मुझे देख पाये। मेरी दुनिया में बैठ कर ही तेरी दुनिया सुनहली होगी—तू अहंकार शून्य व आनन्द मग्न होकर इस संसार में विचरण कर पायेगा और तभी सम्पूर्ण विश्व का कण-कण मुझसे आच्छादित देख पायेगा।

१०७ डर तो मर—नहीं तो अभय हो विचर।

ऐ प्राणी! भय, मौत से भी भयानक है। मौत जीवन में एक बार आती है किन्तु भय बार-बार आता है और भयभीत रहने के कारण व्यक्ति मृत्यु तुल्य जीवन हर पल यापन करता है। भय सदा कमजोर विचार भावों की उत्पत्ति से आता है। इसका साम्राज्य जब हृदय-पटल पर छा जाता है तो विवेक साथ नहीं देता परिणाम व्यक्ति मृत्यु से भी बदतर अवस्था को प्राप्त होता है। देख, तू कमजोर है नहीं, ईश्वर को भूलकर तथा शरीर को कर्त्ता मानने से ही कमजोर बन गया है। जिस दिन शरीर को गति देने वाले ईश्वर को तू कर्त्ता के रूप में देख पायेगा उस दिन तू अभय हो सकेगा—जीवन का आनन्द भी तू अभय हो कर ही पा सकेगा।

१०८ पत्ते पत्ते में हरियाली। आली पत्ते पत्ते में हरि।

ऐ प्राणी! तू पत्ते-पत्ते में हरियाली देख पाता है किन्तु "यह पत्ता हरा कैसे है" इस रहस्य को नहीं जान पाता। देख, प्रत्येक चीजें जो सजीव, हरी-भरी व रसपूर्ण दिखती हैं वे हरि (चैतन्य शक्ति) के साथ से हरी हैं, यदि हरि नहीं तो उनका कोई अस्तित्व नहीं। पत्ता पेड़ में लगा है तभी तक हरा-भरा है क्योंकि जड़ से उसे रस मिलता है, पेड़ से विलग होते ही वह सूख जायेगा। हरा-भरा रहने के लिये, तेरे लिये भी यही रास्ता है। जिस जड़ से तू पल्लवित हो रहा है अर्थात् जो शक्ति अज्ञात रह कर तुझे सजीव बना रही है यदि तू उससे जुड़ा रहा तो तू भी हरा-भरा रह सकेगा अन्यथा हरि का साथ पाकर भी तू उससे विलग रहने के कारण भीतर ही भीतर दुःखित, चिन्तित व परेशान होता चला जायेगा। अतः तू उस अज्ञात साथी को पहिचान जो सदा तेरे साथ रहता हुआ तुझे गति दे रहा है कि तू हरा-भरा (आनन्द-मग्न) रह सके।

१०९ विचाराधीन क्यों? विचार का धनी बन।

ऐ प्राणी! विचार, सड़क पर आते-जाते पथिक की तरह हैं। देख,

विचार तो आते-जाते रहेंगे ही किन्तु तू उनके आधीन न हो अर्थात् उनके इशारे पर न नाच; तू विचारों का खेल देख। विचारों के खेल को देखते रहने से वे तुझ पर अपना आधिपत्य नहीं जमा सकेंगे—जिनकी तुझे जरूरत है, तेरे समीप वे ही विचार ठहरेंगे—ऐसे में तू विचारों का धनी बन जायेगा। देख, विचारों के आधीन होने से तू दिन-ब-दिन क्षीण होता जायेगा किन्तु तू यदि प्रत्येक अवस्था का शान्त अवलोकन कर सका तो विचारों पर विचार करके सबल होता जायेगा। ऐसी अवस्था में विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) पर भी तू विचार कर पायेगा और वे तेरे समीप नहीं ठहर सकेंगे।

११० मुस्करा हँसी आये। भक्ति है भगवान आये।

ऐ प्राणी! प्रफुल्लित अवस्था में चेहरे पर मुस्कुराहट आती है और यह मुस्कुराहट ही जीवन में हँसी भर देती है। देख, तुझे यदि मुस्कुराहट अनुकूल वातावरण के कारण मिली है तो प्रतिकूल वातावरण में यह ठहर नहीं पायेगी क्योंकि प्रकृति प्रति मुहूर्त परिवर्तनशील है। किन्तु तू ने यह मुस्कुराहट यदि भक्ति से पाई है तो यह कभी लौट कर नहीं जा सकेगी क्योंकि भक्ति का प्रारम्भ भगवान की अनुकम्पा से होता है। भक्ति हृदय का सुललित भाव है। इसकी जागृति जब एक बार हो जाती है तो हृदय के भाव सजने लगते हैं एवं सुखद व सुमधुर भावों का हृदय में जागरण होने लगता है परिणाम दुःख, चिन्ता, कष्ट आदि भाव पलायन करने लगते हैं। भक्त की दुनिया भावों से सजने लगती है, वह जर्रे-जर्रे में भगवान के दर्शन करने का इच्छुक बन जाता है—वह हृदय में भी भगवान को देख पाता है तथा सर्वत्र भी उसी का जलवा देख पाता है।

१११ विश्वास दिला कर घात। फिर न रहे मूल न रहे पात।

ऐ प्राणी! विश्वासघात बहुत बड़ा अपराध है, यह अपराध क्षम्य नहीं। इसकी सजा यदि व्यक्ति द्वारा न भी मिले तो प्रकृति द्वारा मिलती है, पर विश्वासघाती दण्डित अवश्य होता है। देख, तू ईश्वर का है तथा ईश्वर की दुनिया में आया है किन्तु यहाँ ईश्वर को भुलाकर अपनी दुनिया बसाकर बैठ गया है—यह ईश्वर से विश्वासघात है! अरे पगले! मूल पर ही वृक्ष टिका रहता है, मूल को बाद कर देने से वृक्ष में हरियाली का नामोनिशान भी नहीं रह जाता है। ईश्वर को बाद करने से तेरी भी यही अवस्था होगी—तू कभी चैन नहीं पायेगा क्योंकि तू मूल से ही विलग है, फिर हरियाली का तेरे पास

क्या काम ? अतः तू ईश्वर के साथ को पहिचान तथा उसकी दुनिया में बैठ कि मूल (ईश्वर) के अभाव से तेरे हृदय में जो बेचैनी है वह मिट जाये और तू हरा-भरा (प्रसन्नवदन) रह सके।

११२ मनमोहन में भी मन नहीं लगता ? कैसे मानूँ ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर मन को मोहित करने वाला है इसीलिये उसका एक नाम मनमोहन है। देख, यदि तू कहता है कि "ईश्वर में मेरा मन नहीं लगता" तो यही कहना होगा कि अभी तू ने मनमोहन को देखा ही नहीं, क्योंकि तू यदि उसे देख पाता तो ऐसा नहीं कहता। देख, अभी ईश्वर के नाम पर तेरी सारी क्रियाएँ अनजाने में ही हो रही हैं, यदि वे (क्रियाएँ) ईश्वर से परिचय के पश्चात होतीं तो उन क्रियाओं का रूप भी भिन्न होता एवं तेरी अवस्था भी कुछ अनोखी रहती। तब तुझे ईश्वर से शिकायत नहीं रहती और तू ईश्वर को मनमोहन के रूप में देख पाता। अतः तू ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य-कलाप करके भ्रम में चक्कर न काट। प्रथम तू ईश्वर की उपस्थिति का आभास पा, उसके वाद उसे याद कर कि तेरे मन का निरर्थक चक्कर छूट जाये और वह मनमोहन में रम जाये।

११३ पंथ देखा, ग्रंथ देखा, शांति कहाँ ? संत ने ग्रंथ की ग्रन्थी का अन्त किया दर्शन मात्र से।

ऐ प्राणी ! शान्ति केवल किसी पंथ विशेष का अनुयायी बनने से नहीं मिल सकती और न धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने से मिल सकती है—शान्ति, हृदय की ग्रन्थियों के सुलझने से मिलती है। देख, तू जन्म-जन्मान्तरों से संस्कारों में बद्ध है। तेरे इन संस्कारों को काटने की क्षमता पंथ, ग्रन्थ में नहीं, सन्त में है, सत्संग में है। पंथ, ग्रन्थ से तुझे उपदेश मिल सकते हैं, वे (उपदेश) तुझे सुनने में भले भी लग सकते हैं किन्तु तेरे संस्कारों को नहीं काट सकते और जब तक संस्कार नहीं कटते तब तक शान्ति भी नहीं मिल सकती। शान्ति तुझे सन्त के द्वार पर मिलेगी। सन्त, वाणी द्वारा हृदय के बन्द दरवाजों को खटखटाते हैं तथा उन ग्रन्थियों को खोलते हैं जो ग्रन्थों से नहीं सुलझ पाती हैं। अनेक शंका, भ्रम आदि का निवारण केवल सद्गुरु के दर्शन मात्र से होता है क्योंकि वे सत्य की प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं तथा उनका आगमन भ्रम निवारण के लिये ही होता है।

११४ खोये दिल की बात न सुन, कहीं तेरा दिल भी न खो जाय।

ऐ प्राणी ! संग का एक रंग होता है। देख, जिनका दिल खोया हुआ है अर्थात् जो ईश्वर प्रेम में पूर्णतया लीन हैं—ऐसे सन्तों का संग तू सोच समझ कर करना। तू यदि उनके भाव तथा प्रेम को जीवन में अपनाना चाहता है तभी उनके समीप बैठना, क्योंकि उनके समीप बैठते-बैठते तेरा बहुत कुछ छूट सकता है तथा तू बहुत कुछ पा सकता है, किन्तु यह छूटना तथा पाना—दोनों ही अन्तर के होंगे। देख, सन्त के समीप बैठकर तेरी दुनिया ही बदल जायेगी। तू आज तक बाहर की दुनिया में बैठा था किन्तु अब तू भीतर की दुनिया से जुड़ जायेगा और तेरे अन्तर का प्रत्येक कोना भाव से सज जायेगा, क्योंकि सन्त कभी कार्य नहीं बदलते, भाव बदलते हैं और भाव बदलने के साथ-साथ व्यक्ति की दुनिया ही बदल जाती है—जो संसार आज तक अपना था एवं कष्ट का कारण बना हुआ था, वही (संसार) ईश्वर-रूप हो जाता है तथा आनन्द वर्षण करता रहता है।

११५ भूल शूल। याद शाद।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की दुनिया में आकर तू ईश्वर को भूला हुआ है—यही भूल आज तेरे लिये शूल बन गयी है। देख, तू उसकी दुनिया का उपभोग कर रहा है किन्तु न तो तू उसकी ओर देखता है और न उसके प्रति कृतज्ञ ही हो पाता है। ऐसा भाव यदि एक व्यक्ति के प्रति भी हो अर्थात् यदि किसी व्यक्ति के द्वारा कुछ मिले और उसके प्रति कृतज्ञता न रहे तो पाने वाले के हृदय में एक अज्ञात बेचैनी रहती है जिसे वह खुद भी नहीं जान पाता—ईश्वर के प्रति रहा हुआ ऐसा भाव तो जिन्दगी को ही बोझिल बना देता है। अरे पगले ! तू यदि जिन्दगी पाने का तथा संसार में आने का आनन्द लेना चाहता है तो जिन्दगी देने वाले एवं संसार के रचयिता (ईश्वर) को याद कर। उसकी याद से तेरे जीवन में प्रसन्नता आ जायेगी क्योंकि ईश्वर की याद में स्वाभाविक प्रसन्नता है।

११६ "श्वास में वास" कहते सुना किन्तु भीतर बाहर का सम्पर्क आज भी अनजान।

ऐ प्राणी ! तू लोगों के द्वारा सदा से यह सुनता आ रहा है कि "प्रत्येक श्वास में ईश्वर का वास है" किन्तु ईश्वर के इतना समीप रहकर भी तू उससे अनजान है। देख, भीतर वाले पर ही यह शरीर (बाहर वाला) ठहरा हुआ

है किन्तु जब तक तू भीतर वाले को पाने के लिये बेचैन नहीं होगा और उसका परिचय नहीं पा जायेगा तब तक उसके साथ रहते हुए भी साथ का आनन्द नहीं पा सकेगा तथा सदा रोता रहेगा। अरे पगले ! जो इतना करीब है, एक श्वास भी जिसके बिना नहीं है, तू उसी से मुख मोड़ कर बैठ गया है—तेरे लिये यह शर्म की बात है। अतः तू उसे जानने के लिये उत्सुक बन जो तेरे श्वासों में वास कर रहा है। तेरे अन्तर की चाह, बाहर भीतर वाले को एक कर देगी अर्थात तुझे ईश्वर से मिला देगी और तभी तू उसके साथ का आनन्द पा सकेगा।

११७ स्वर्ग, नरक ने हलचल मचा दी—प्यार वाला शांत।

व्यक्ति की कल्पना है कि अच्छे कार्य करने से 'स्वर्ग' मिलता है तथा बुरे कार्य करने से 'नरक' मिलता है एवं स्वर्ग-नरक इन आँखों से परे कहीं और हैं—इसलिये वह स्वर्ग पाने की कल्पना से दान-पुण्य आदि कुछ भले कार्य करता है तथा बुरे कार्य करते हुए भी, नरक की कल्पना से, बुरे कार्य करने में घबड़ाता है। ऐ प्राणी ! प्यार वाले की दुनिया भिन्न होती है, प्यार वाला प्यार में सराबोर रहकर शान्त बना रहता है। वह आनन्द पाने के लिये आगे-पीछे की कल्पना नहीं करता क्योंकि उसकी दुनिया प्यार से सजी रहती है। देख, प्यार अशरीरी भाव है, स्वर्ग-नरक की हलचल प्यार की दुनिया में नहीं रहती। यह हलचल उनके समीप रहती है जो केवल स्थूल से आवद्ध होकर जीवन व्यतीत करते हैं। वे केवल शरीर को ही देख पाते हैं अतः संकीर्ण भावों से घिर जाते हैं और जब उससे उबरने के लिये उनके समीप कोई चारा नहीं रह जाता तब वे स्वर्ग-नरक की बातें करते हैं। यदि वे एक बार प्यार वाले का साथ पा जाते तो शायद उनकी दृष्टि भी बदल पाती तथा वे शान्त भी रह पाते।

११८ सरल से कपट व्यवहार ? गरलवत् सिद्ध होगा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के सम्मुख तू सदा अपने दिल की बातें कह, औरों के द्वारा सुनी-सुनाई बातें न कह। दिल में कुछ और रहे तथा मुख से कुछ और बातें कही जायें—यह ईश्वर से कपट व्यवहार है। देख, ईश्वर सरलता की मूर्त्ति है और तुझमें भी सरलता देखने का इच्छुक है। सरलता से ही उसका प्रेम पाया जा सकता है अन्यथा ईश्वर के नाम पर बहुत कुछ करके भी तू कुछ नहीं पा सकेगा। देख, यदि कपट व्यवहार एक सरल

व्यक्ति से भी किया जाता है तो सरल व्यक्ति का कुछ नहीं बिगड़ता, कपट व्यवहार करने वाले को ही एक दिन नीचा देखना पड़ता है। ईश्वर से रखा हुआ कपट व्यवहार तो जीवन में ही जहर भर देता है, परिणाम आनन्द के लिये मिला हुआ जीवन जहरीला बन जाता है। अतः तू कपट भाव का परित्याग करके सरलता से ईश्वर के सम्मुख दिल के भावों को रख दे कि तेरे जीवन का जहर धीरे-धीरे धुलता जाये तथा एक दिन तेरा दिल परिष्कृत हो पाये।

११९. गोता लगाता तो गाता न रहता, रिझाता न रहता।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर के प्रति जो कुछ भी कहता है वह डूब कर कह। ईश्वर के लिये कहे गये प्रत्येक शब्द जिस दिन से तेरे दिल के होने लगेंगे उस दिन से तेरे जीवन में प्रसन्नता भर जायेगी एवं तेरा हृदय गुनगुनाने लगेगा, क्योंकि हृदय से कहे गये एक-एक शब्द ईश्वर के समीप पहुँचते हैं जबकि केवल इन्द्रियों द्वारा किये हुए अनेक कार्य भी उस तक नहीं पहुँच पाते। देख, ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं जो तेरे हाथ के कार्यों पर रीझ जाये, वह तेरे अन्तर में स्थित अज्ञात शक्ति है, उसे तेरे दिल का भाव चाहिये। अतः तू उसके समीप केवल गीत न गा, उन गीतों के द्वारा दिल के भाव व्यक्त कर कि उन्हें गा कर तू भी रीझ जाये तथा जिसके लिये तू गा रहा है वह भी रीझ पाये।

१२०. ये अधिक बातें अपने को भुलाने के लिये या रिझाने के लिये?

ऐ प्राणी! ईश्वर का नाम दुःखी व्यक्ति को केवल समय विशेष के लिये राहत देने वाला नहीं, वह दुःखी हृदय को ही बदलने वाला है। देख, तू ईश्वर को केवल दुःख भुलाने का साधन न बना, इससे तू ईश्वर की महिमा से दूर ही रह जायेगा और तेरा दुःख भी नहीं मिट पायेगा। तू अन्तर के प्रत्येक भावों को ईश्वर के सम्मुख सच्चाई के साथ रख दे, इससे तू ईश्वर को निकट पायेगा। यों तो प्रत्येक भाव उसके सम्मुख हैं किन्तु उन भावों को जब तक तू अपनी ओर से उसे नहीं सौंप पायेगा तब तक उसकी निकटता का आभास नहीं पा सकेगा। अतः तू अपनी ओर देख कि तू ईश्वरीय चर्चा केवल दुःख को भुलाने के लिये करता है या ईश्वर की निकटता पाने के लिये? देख, ईश्वर की निकटता पाकर ही तू रीझ पायेगा और जिस दिन तू रीझने के लिये तथा ईश्वर को रिझाने के लिये उसकी चर्चा करेगा, उस दिन से तेरा भीतर

(अन्तःकरण) तथा बाहर (कार्य-कलाप) सभी स्वच्छ व शुद्ध होते चले जायेंगे और तू आनन्द-मग्न रह सकेगा।

१२१ ग्रंथों की पूजा की पाठ भी किया किन्तु लाभ क्या उठाया ?

ऐ प्राणी ! कुछ ग्रन्थों में ऐसे भाव निहित हैं कि वे ग्रन्थ ईश्वरोक्त कहे जाते हैं। ऐसे ग्रन्थों की तू यदि केवल पूजा करता रहेगा तथा प्रतिदिन उनका पाठ करता रहेगा तो तू उनसे लाभ नहीं उठा पायेगा। देख, ग्रन्थ भाव की अभिवृद्धि के लिये संकेत देते हैं। यदि तेरे हृदय में उन ग्रन्थों के प्रति सच्ची श्रद्धा है तो तू उनमें निहित भावों को हृदय में स्थान दे। यदि वे भाव तेरे अपने बन सके तो उन पुस्तकों के प्रति तेरी श्रद्धा सफल होगी अन्यथा तू ग्रन्थों की पूजा व पाठ करके धार्मिक कहला सकता है किन्तु उनमें निहित भावों को नहीं पा सकता। अतः जीवन को सत्यमय व सुन्दर बनाने के लिये तू उन ग्रन्थों के भावों को ग्रहण कर कि तेरी पूजा सफल हो क्योंकि वे ग्रन्थ उन भावों से ही पूजनीय हैं।

१२२ प्रेमी की राह न देखी, गुण देखा, अवगुण देखा। प्रेम न अनुभव किया, न राह देखी। भूला कि भूलता ही रहा।

ऐ प्राणी ! जो ईश्वर-प्रेमी हैं और जिन्होंने ईश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है—तू उनके कार्यों को न देख तथा उनमें गुण अवगुण न खोज क्योंकि वे गुणों से परे हैं। तू उस राह की ओर देख जिस पर वे बढ़ रहे हैं, तभी तू उनके सामीप्य का लाभ उठा सकेगा, नहीं तो उनका सामीप्य पाकर भी तू उनके क्रिया-कलापों को साधारण व्यक्ति की तरह देखता रहेगा। देख, उनमें गुण-अवगुण देखना—तेरी सबसे बड़ी भूल होगी और इस भूल के लिये अन्ततोगत्वा तुझे पछताना पड़ेगा। अतः तू उनके समीप बैठकर उनका प्रेम अनुभव कर और उस प्रेम को पाने के लिये तुझे जो भी रास्ता अपनाना पड़े, तू उस पर बढ़ता चल और तब तक बढ़ता चल जब तक प्रेम तेरे जीवन में पूरा-पूरा न समा जाये। यदि तू प्रेम को प्रत्यक्ष देखता हुआ भी उसे नजर अंदाज करेगा तो यह भूल शूल की तरह कष्ट देती हुई तुझे सदा भ्रमित करती रहेगी।

१२३ साध लीन—साधना पूर्ण।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर व्यक्ति जप-तप, पूजा-पाठ, ध्यान-धारणा

आदि के रूप में अनेक साधनाएँ करता है, किन्तु जब तक उसके अन्तर में साध (इच्छा) बनी रहती है तब तक उन साधनाओं का प्रतिफल वह सम्मुख नहीं देख पाता। देख, साधक का परम लक्ष्य साध्य की प्राप्ति करना है। साध्य की प्राप्ति के लिये अनजाने में साधक के द्वारा जो क्रिया-कलाप होते हैं, वे क्रिया-कलाप (साधन) ही उसे साध्य तक पहुँचा सकते हैं। किन्तु जब तक साध्य के सिवा उसके अन्तर में अन्य साध भी रहती है तब तक वे साधन उसे साध्य तक पहुँचाने में सहायक नहीं बनते ; क्योंकि साधना की पूर्णता, साध के लीन होने में है। साधक की दुनिया में जब अहंता, ममता का नामो निशान भी नहीं रह जाता और जब उसकी दुनिया केवल साध्यमयी हो जाती है एवं वह स्वयं का भान भी भूलने लगता है—ऐसी अवस्था में उसे साध्य की प्राप्ति होती है। साध्य की प्राप्ति के लिये फिर उसे अलग से साधना करनी नहीं पड़ती, साधक ही साध्य हो जाता है तथा साध्य ही साधक हो जाता है।

१२४ कहता था भक्त बड़ा या भगवान? न भगवान बना न भक्त। एक बनता तो जानता कि दोनों एक ही हैं।

ऐ प्राणी! भक्त और भगवान बड़े-छोटे नहीं होते क्योंकि ये दो नहीं, एक हैं। एक अरूपी है तथा दूसरा रूपधारी है, शायद इसीलिये वे दो से दिखते हैं। अरूपी ईश्वर यों तो कण-कण में व्याप्त है किन्तु उसे देख पाना कठिन है। भक्त भगवान का प्रत्यक्ष रूप है। भक्त के हृदय में ही ईश्वर को देखा जा सकता है तथा भक्त के समीप बैठते-बैठते जब भक्त का भाव हृदय में आता है तभी ईश्वर को सर्वत्र देखा जा सकता है। देख, भक्त और भगवान एक दूसरे से पूरे हैं। भगवान, भक्त के माध्यम से साकार होता है तथा भक्त भगवान के चरणों में झुक कर एवं सर्वथा अहंकार शून्य होकर ईश्वरीय भावों को हृदय में अपनाता है। यदि भगवान नहीं तो भक्त नहीं और भक्त नहीं तो भगवान भी नहीं अर्थात् ये दो से लगते हुए भी एक हैं। किन्तु यह रहस्य उनके सम्मुख ही स्पष्ट होता है जो भक्त या भगवान में से कोई एक भाव अपनाते हैं। अतः यदि तेरे मन में जिज्ञासा है कि "भक्त-भगवान में कौन बड़ा है" तो तू इनमें से किसी एक भाव को अपना कि यह रहस्य रसपूर्ण होकर तेरे सम्मुख स्पष्ट हो।

१२५ मेरा दिल देख, मेरा दिमाग देख। झगड़ते क्यों हो? दोनों में प्रियतम को देखो कि देखने से भी फुरसत मिले।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व का सृजनकर्त्ता ईश्वर है। ईश्वर की बनाई हुई इस सृष्टि का कण-कण अद्‌भुत है और मनुष्य तो उसकी सृष्टि का अतुलनीय प्राणी है किन्तु फिर भी वह रोता है, झगड़ता है। देख, ईश्वर (कर्त्ता) को भूलने के कारण ज्ञानी कहता है—मुझे देख, मैंने कितना अनुभव प्राप्त किया है तथा विज्ञानी कहता है—मुझे देख, मैंने कितने नये-नये आविष्कार किये हैं। एक कहता है—मेरा दिल देख तथा दूसरा कहता है—मेरा दिमाग देख। अरे पागलों! झगड़ते क्यों हो? तुम दोनों एक की सन्तान हो अतः एक हो। तुम उस देने वाले को पहचानो कि भीतर बाहर सर्वत्र उसी को देख पाओ। सर्वत्र ईश्वर को देख पाने से ही तुम उसके प्रति कृतज्ञ हो पाओगे। मिली हुई शक्ति का सदुपयोग भी तुम तभी कर पाओगे तथा जीवन का आनन्द भी तभी ले पाओगे और तभी नम्रता व एकता (प्रेम) तुम्हारी चिर-संगिनी होंगी।

१२६ मनन कर मन न रहेगा। भाव ही मन पर न्योछावर होगा।

ऐ प्राणी! चक्कर काटना मन का धर्म है। यह हमेशा चक्कर काटता रहता है तथा तन को भी अपने इशारे पर नचाता रहता है, किन्तु यही मन जब मननशील हो जाता है तब इसका रूप ही भिन्न हो जाता है। अब यह पहले वाला मन नहीं रह जाता, जो चक्कर काटता था तथा (तन को) कटवाता था। अब चूँकि इसने एक बार प्रभु-प्रेम का रस पान कर लिया है अतः उसी रस को पान करने के लिये यह व्यग्र बना रहता है। ऐसी अवस्था में मन का अलग अस्तित्व ही नहीं रह जाता अर्थात् मन है कि मनन है—इसका पता ही नहीं लगता। मन की यह मननशील अवस्था देखते ही बनती है। 'भाव' भी इसमें अलग नहीं रह पाता, वह मन पर न्योछावर हो जाता है और मन की सारी क्रियाएँ 'भाव' के साथ होने लगती हैं। 'भाव' स्वभाव में ऐसा घुल मिल जाता है कि "भाव है कि स्वभाव है" इसे खोजना भी कठिन हो जाता है। अतः तू मन को निरर्थक चक्कर में न लगा, इसे प्रभु प्रेम का रस पिला कि तू इसका भाव भरा रूप देख पाये।

१२७ मोदक का मोद बच्चों के लिये। मोद ही बड़ा मोदक है।

मिठाई बच्चों को प्रसन्नता देती है किन्तु वही मिठाई बड़ों को केवल

जीभ का स्वाद देती है, प्रसन्नता नहीं। चूंकि बच्चे अभी बच्चे हैं, उनकी जरूरतें भी अधिक नहीं हैं अतः वे मिठाई पाकर प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु बड़ों की बात इससे सर्वथा भिन्न है। उनकी जरूरतें अत्यधिक फैली हुई हैं अतः वे बहुत कुछ पाकर भी अभाव में ही सने रहते हैं। उन्हें मोदक (मिठाई) नहीं, वह भाव चाहिये जो उनके मुरझाये चेहरे को खिला सके। ऐ प्राणी ! मोद ही सबसे बड़ा मोदक है किन्तु यह (मोद) सब जगह नहीं पाया जा सकता। यह तुझे सद्गुरु के द्वार पर मिलेगा किन्तु इसकी प्राप्ति तुझे शरणागति के भाव से ही हो सकेगी। देख, इसके लिये तुझे बड़ी से बड़ी कीमत भी यदि चुकानी पड़े तो भी तू इसे पा ले क्योंकि मोद ही जीवन में मिठास भरने वाला है। इसके बिना जीवन चमड़े की उस धोंकनी की तरह है, जिसमें श्वास तो चलते हैं किन्तु प्राण नहीं रहते।

१२८ याद कर फरियाद कैसी ?

ऐ प्राणी ! फरियाद दूसरों के सम्मुख की जाती है, अपनों के सम्मुख नहीं। जो अपना है वह तो स्वतः देखता रहता है, उसके सम्मुख फरियाद कैसी ? देख, ईश्वर तेरा अपना है, तू उसके सम्मुख धन-जन व शरीर के लिये फरियाद न कर क्योंकि वह तेरी सारी व्यवस्था स्वतः कर रहा है। तू अभी उससे विमुख है अतः उसके कार्यों को देख नहीं पाता—इसीलिये फरियाद करता है। जिस दिन तेरा ध्यान धन-जन से हटकर ईश्वर की ओर होगा अर्थात् ईश्वर तेरा अपना होगा, उस दिन तू फरियाद करना भूल जायेगा और तू देख पायेगा कि उसकी दृष्टि सदा तुझ पर लगी है। देख, ऐसे प्रिय को तू धन-जन के लिये न याद कर, प्रेम के लिये याद कर। धन-जन एक दिन बिछुड़ जायेंगे, तेरा साथ नहीं दे पायेंगे किन्तु प्रेम कभी बिछुड़ने वाला नहीं। यह आज भी तुझे आनन्द-मग्न रक्खेगा तथा शरीर जाने के पश्चात् भी सदा बना रहेगा।

१२९ एक मिनट। नहीं एक मिन्नत।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को याद करने में एक मिनट का विलम्ब भी अच्छा नहीं। ईश्वर के बिना जिन्दगी का जितना समय बीतता है वह समय भार पूर्ण होता है, जीवन में बहार ईश्वर की स्मृति से आती है। इसीलिए तू अन्य प्रलोभनों में फँसकर, ईश्वर की ओर देखने में एक मिनट का भी विलम्ब न कर। यदि तू इन प्रलोभनों में ही लगा रहा तो तेरे जीवन काल में वह समय

कभी नहीं आयेगा जब तू ईश्वर को याद कर पायेगा। अतः तू 'आज' से नहीं, 'अभी' से ही ईश्वर के सम्मुख घुटने टेक दे तथा उससे प्रार्थना (मिन्नत) कर कि "मैं तेरा हूँ"। देख, तेरी प्रार्थना सुनी जायेगी और तू देख पायेगा कि केवल तू ईश्वर का नहीं, वह भी तेरा है।

१३० विश्वास पूर्ण न हुआ तो? फिर भी विश्वास रख पूर्ण होगा।

ऐ प्राणी! विश्वास में बहुत बड़ी शक्ति है। यह असम्भव कार्य भी संभव कर दिखाती है, किन्तु इसके लिये विश्वासी के अन्तर में धीरज चाहिये तथा उसका हृदय संशय-विहिन होना चाहिये। देख, ईश्वर आँखों से दिखलाई नहीं देता किन्तु जिन्होंने एक बार भी ईश्वर का अनुभव किया है, वे जानते हैं कि 'ईश्वर है' अतः वे हमेशा ईश्वर की ओर देखते रहते हैं। वे हताश-निराश नहीं होते कि उनका विश्वास पूर्ण होगा या नहीं? वे सदा विश्वास के साथ आगे बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे ईश्वर के प्रति उनका विश्वास प्रगाढ़ होता जाता है वैसे-वैसे उनकी दुनिया ईश्वरमयी होती चली जाती है। अतः "विश्वास पूर्ण होगा या नहीं" तू इसकी चिन्ता छोड़कर विश्वास के साथ आगे बढ़। विश्वास के साथ चलते रहने से तुझे एक दिन निश्चित ही सफलता मिलेगी अर्थात तू इच्छित भावों के अनुसार ईश्वर की समीपता अवश्य पा सकेगा।

१३१ रागात्मक वृत्तियाँ क्यों बेचैन? वृत्ति तो वह घेरा है जिसे जानने वाला ही जाने।

ऐ प्राणी! इस मन की अवस्था दयनीय है। यह रस पाने की लालसा में चारों ओर चक्कर काटता रहता है फिर भी कभी तृप्त नहीं हो पाता, जितना अधिक पाता है उतना ही अधिक लोलुप बनता जाता है। देख, सम्पूर्ण विश्व का कण-कण रस से सराबोर है किन्तु इस रस को वे ही पाते हैं जिन्होंने रस के उद्‌गम (ईश्वर) को जाना है। ईश्वर को बाद करके केवल स्थूल में रस पाने की आकांक्षा रखने वाले, बालू से तेल निकालने की चेष्टा करते हैं। उनकी यह चेष्टा कामयाब होने वाली नहीं रहती, बेचैनी बढ़ाने वाली होती है क्योंकि उनकी दौड़ उस घेरे के अन्दर है जो अहंता, ममता, स्वार्थपरता आदि से घिरा है। देख, घेरा अंधेरा है अतः तू उनसे मिल जो तेरे इस घेरे को तोड़ सकें। इसे (घेरे को) जानने वाले भी अति अल्प हैं। तेरे अन्तर की बेचैनी तुझे

उनसे मिलायेगी एवं उनका साथ पाकर ही तू इस घेरे से निकल सकेगा अन्यथा जन्म-जन्मान्तरों तक तू यों ही भटकता रहेगा।

१३२ खेल प्यार से। खेल से ही समाधि।

ऐ प्राणी ! प्यार ईश्वर है। हृदय में प्यार का प्रादुर्भाव होना—ईश्वर की समीपता का आभास पाना है। देख, प्यार से खेलना साधारण नहीं। प्यार से खेलने वाले की दुनिया अन्तर्मुखी हो जाती है। बाहर का प्रत्येक दृश्य उसे अन्तर दृष्टि के अनुसार दिखने लगता है अर्थात् उसकी दुनिया भीतर-बाहर-सर्वत्र प्रेममयी हो जाती है। प्यार से खेलते-खेलते उसकी वृत्तियाँ सम्पूर्ण सिमट जाती हैं तथा प्रिय के चातुर्दिक ही चक्कर काटने लगती हैं। मन-बुद्धि का अलग अस्तित्व ही नहीं रह जाता, रह जाता है केवल प्रिय और प्रिय की दुनिया। स्वयं का वहाँ भान भी नहीं रह जाता—ऐसा है प्यार से खेलना, जहाँ खेल-खेल में ही समाधि लगती है।

१३३ कदम उठाया उत्थान और रखा उसी को पतन समझ बैठा। यह तो गति है उत्थान पतन कैसा।

ऐ प्राणी ! चलने वाले को जैसे एक बार कदम उठाना पड़ता है तथा दूसरी बार कदम नीचे रखना पड़ता है वैसे ही जीवन यात्रा में अनेक उतराव-चढ़ाव व ऊँच-नीच आते हैं—तू इन्हें उत्थान-पतन का नाम न दे क्योंकि कदम उठाना तथा रखना दोनों ही मंजिल तक पहुँचने के लिये जरूरी हैं, केवल कदम उठाने वाला यात्रा तय नहीं कर पायेगा। ऐसे ही उतराव चढ़ाव दोनों ही जीवन के आवश्यक अंग हैं, केवल चढ़ने वाला सुव्यवस्थित ढंग से गतिशील नहीं हो सकेगा। अतः तू हर स्थिति में शान्त रह कर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ता चल—परिणाम तू जीवन पाने का सही आनन्द पा सकेगा, तेरा आना सफल तथा जाना सुखदायी बनेगा।

१३४ यह वासना, यह अहंकार। तुम इसे भक्ति ज्ञान कहते हो। भाव गिरा, भाव में आओ।

ऐ प्राणी ! मन की अधूरी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये ईश्वर की शरण ग्रहण करना—भक्ति नहीं, वासना है तथा बुद्धि द्वारा अन्तर्जगत की कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना—ज्ञान नहीं, अहंकार है। देख, भक्ति हृदय को प्रभु के समर्पित करने का नाम है तथा ज्ञान, शरीर की सत्ता पूर्णतया मिटने

के पश्चात् ईश्वरीय सत्ता को जीवन पर आच्छादित पाने का नाम है। इन (भावों) का प्रादुर्भाव जब हृदय-पटल पर होता है तो भक्ति और ज्ञान भी जीवन में आ जाते हैं। अतः इन भावों को पाने के लिये अर्थात् भक्ति और ज्ञान को अपनाने के लिये तू वासना व अहंकार को गिरा दे तथा केवल एक ईश्वर का आधिपत्य स्वीकार कर ले। जिस दिन ऐसा सम्भव होगा उसी दिन तुम भाव में आ सकोगे तथा भक्ति-ज्ञान से सुसज्जित हो सकोगे।

१३५ प्यार सन्तोष में स्नान कर, देख सम्मुख देव खड़ा, बलदेव खड़ा।

ऐ प्राणी! प्यार सन्तोष देने वाला भाव है। जब तक प्यार का प्रादुर्भाव हृदय-पटल पर नहीं होता, तब तक जीवन में प्रत्येक मिली हुई वस्तु से असन्तोष बना रहता है, चाहे वे वस्तुएँ कितनी भी मात्रा में क्यों न मिल जायें। देख, प्यार सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने वाला है। प्यार में वृत्तियाँ चारों ओर से सिमट कर प्रेम-रस का पान करने में लग जाती हैं और किसी भी वस्तु-व्यक्ति का जीवन में अभाव नहीं रह जाता। इसके आगमन से ही सन्तोष मिलता है तथा जीवन का प्रत्येक पल ईश्वर द्वारा अनुप्राणित दिखने लगता है और बल देने वाला देवता अर्थात् बलदेव भी हमेशा सामने खड़ा दिखलाई देने लगता है। अतः तुझे यदि प्यार मिला है तो तू प्रथम सन्तोष के साथ उसे शिरोधार्य कर, तभी तू प्यार का ज्वलन्त रूप सम्मुख देख पायेगा तथा उसका आनन्द जीवन में ले पायेगा।

१३६ इस प्राणमय लोक में भी मृत्यु? है, जिनके प्राण प्राणपति के लिये व्याकुल न हों।

ऐ प्राणी! यह प्राणमय लोक है। यहाँ सम्पूर्ण जड़-चेतन प्रकृति प्राण धारण किये हुए है अर्थात् सजीव है। यहाँ प्रत्येक प्राणी प्राण धारण करके आता है किन्तु प्राण धारण करना सार्थक उन्हीं का होता है जिनको प्राण धारण करने का प्रयोजन याद है। देख, प्राण पाकर भी जब तक प्राणी के प्राणों में प्राणपति को पाने की विकलता नहीं, तब तक व्यक्ति निष्प्राण के समान है क्योंकि प्राणपति के बिना जिन्दगी में जिन्दादिली नहीं और जिन्दादिली के बिना व्यक्ति का जीवन, जीवित ही मृतक-तुल्य होता है। प्राणपति का साथ प्राणों में उन प्राणों की प्रतिष्ठा कर देता है जिनकी प्रतिष्ठा के बाद मृत्यु नहीं आती। आँखों से दिखलाई पड़नेवाला शरीर चला जाता

है किन्तु वह नहीं जा पाता क्योंकि प्राण रहते उसने प्राणों में स्थित प्रभु को अर्थात् उन प्राणों को पा लिया जो अमर हैं। किन्तु इसी प्राणमय लोक में आकर भी जो प्राणपति के साथ को नहीं जान पाते, वे यों ही आते हैं और एक दिन लौटकर चले जाते हैं—उनका कहीं नामोनिशान नहीं रह जाता।

१३७ मोह का हवन हो, प्रेम की सुगन्ध हो, फिर न जीवन हो न जीव हो।

ऐ प्राणी! 'प्रेम' बन्धन काटने वाला है जबकि 'मोह' बन्धन में बाँधने वाला है। देख, मोह कुछ और नहीं है, यह प्रेम का ही विकृत रूप है। शरीर जब प्रधान हो जाता है तो शरीर के साथी भी उतने ही प्रधान बन जाते हैं और उन साथियों के लिये जब प्रेम आता है तो वह प्रेम ही मोह बन जाता है। देख, ये साथी तुझे अटकने के लिये नहीं मिले हैं, जीवन को प्रेममय बनाने के लिये मिले हैं। अतः तू स्वयं को कर्त्ता जान कर झूठे मोह-बन्धन में न जकड़, तू सबसे प्रेम कर। प्रेम का प्रादुर्भाव जब जीवन में हो जाता है तो मोह का हवन होने लगता है तथा प्रेम-सुगन्ध से रोम-रोम आप्लावित हो जाता है—सारे बन्धन कटने लगते हैं। ऐसी अवस्था पाने से साधारण सा लगने वाला जीव भी शिव भाव को प्राप्त होता है तथा उसके आवागमन का चक्र भी समाप्त हो जाता है।

१३८ सीमित राग, असीम वैराग।

ऐ प्राणी! प्रेम असीम भाव है किन्तु यह (प्रेम) जब स्थूल में आबद्ध होता है तो सीमा में बँध जाता है क्योंकि स्थूल की एक सीमा है। देख, प्रेम पाने की उत्कट अभिलाषा जब हृदय में जागृत हो जाती है तो स्थूल (सीमा) में बँधा प्रेम, प्राणी को तृप्त नहीं कर पाता परिणाम प्राणी प्रेम का असीम भाव पाने के लिये छटपटाने लगता है और स्थूल से उसे विरक्ति होने लगती है। देख, स्थूल से विरक्ति—प्रेम-पगडण्डी पर कदम बढ़ाने की पहली पहिचान है। प्रेम-पगडण्डी पर चलते रहने से प्रेमी की दुनिया धीरे-धीरे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम होती चली जाती है। उसका प्रत्येक श्वाँस प्रेम के साथ हो जाता है—उठना-बैठना, सोना-जागना कुछ भी प्रेम से अलग नहीं रह जाता। उसकी आँखों के सम्मुख स्थूल संसार नहीं रह जाता, रहता है प्रेम-लोक, जिसमें आकण्ठ डूबा हुआ वह सबको प्रेम लुटाता रहता है।

१३९ हँसना चाहते हो या आनन्द। रोना चाहते हो या प्रेमाश्रु।

ऐ प्राणी ! व्यक्ति जब प्रसन्न रहता है तो हँसना चाहता है किन्तु उसे यह मालूम नहीं कि उसका यह हँसना स्थायी नहीं। देख, प्रकृति परिवर्तनशील है और उससे मिली प्रसन्नता भी परिवर्तनशील है, यह कब दुःख में बदल जायेगी, इसका पता नहीं। अतः तू उस भाव को पाने की इच्छा रख जो सदा तेरे साथ बना रहे—वह भाव 'आनन्द' है। 'आनन्द' कभी जाने वाला भाव नहीं, यह दुःख-सुख दोनों में समान रूप से रहने वाला है क्योंकि यह प्रकृति द्वारा प्राप्त भाव नहीं, ईश्वर से मिला हुआ भाव है। देख, दुःखी व्यक्ति रो कर अपना दुःख हलका करना चाहता है किन्तु रोने से उसका दुःख कम होने वाला नहीं, और अधिक बढ़ने वाला है। उसके ये आँसू यदि प्रभु-मिलन के लिये हों तो शायद उसके हृदय का दुःख, प्रेम में बदल जाये और उसके दिल में दुःख ही न रहे क्योंकि प्रेमी की दुनिया दुःख-सुख से परे सदा आनन्दमग्न रहने के लिये होती है। अतः तू हँसना-रोना न चाह, चाहता ही है तो आनन्द में रहना चाह तथा उसकी प्राप्ति के लिये ही तड़प। प्रेमाश्रु कभी बेकार जाने वाले नहीं—इनसे तू आनन्द अवश्य पा सकेगा।

१४० धर्माचार्यों ने झाड़ू ली तू जल ले। जो काम झाड़ू से न हुआ वह जल से होगा। कर और देख।

ऐ प्राणी ! झाड़ू से केवल सफाई होती है किन्तु जल से सफाई भी होती है तथा प्यासे की प्यास भी बुझती है। देख, धर्माचार्यों के कार्य झाड़ू की तरह हैं—वे पूजा-पाठ, कथा-वार्त्ता सदुपदेश आदि के द्वारा केवल कार्यों की सफाई कर सकते हैं, अन्तर के भावों को नहीं बदल सकते, किन्तु तुझे बाहर के साथ-साथ भीतर (दिल) की सफाई भी करनी है। देख, प्रेम, जल की तरह शीतल, शुद्ध व निश्छल भाव है। इसका आगमन जब हृदय-पटल पर होता है तो अन्तर की दुनिया स्वच्छ होती जाती है तथा सुमधुर भावों से सजने लगती है और बाहर के कार्य भी भीतर की दुनिया के अनुरूप ही होने लगते हैं—भीतर-बाहर के इस सम्मेलन से चातुर्दिक भी सुगन्ध बिखरने लगती है। जो इस प्रेम के झरने के नीचे बैठता है वही शीतलता से परिपूर्ण हो जाता है। ऐसा है यह प्रेम जिसे अपना कर ही उसका रूप देखा जा सकता है। अतः तू प्रेम रूपी जल का पान कर कि तू भी तृप्त हो सके तथा चातुर्दिक भी उसका रूप देख सके।

१४१ स्पर्श कर चरण हृदय से, रोम-रोम पुलकित हो।

ऐ प्राणी ! ईश्वरीय कार्य केवल हाथ से करने के नहीं होते। केवल हाथ से करने से वे (कार्य) अन्य कार्यों की तरह ही हो जाते हैं—उनका प्रतिफल (शान्ति-सन्तोष) नहीं मिलता। ईश्वर के लिये किये गये प्रत्येक कार्य हृदय से होने चाहिये क्योंकि हृदय से किये गये कार्यों का प्रतिफल अनुपम होता है। देख, 'चरण-स्पर्श' ईश्वर की शरण ग्रहण करने की पहली सीढ़ी है। भक्त जब हृदय से भगवान के चरण-स्पर्श करता है तो वह स्पर्श भक्त के रोम-रोम में पुलक (प्रसन्नता) भर देता है। यह पुलकित भावना उसे ईश्वर के करीब करती है परिणाम वह ईश्वर को पाने के लिये और अधिक व्यग्र बन जाता है। अतः तू यदि ईश्वर की समीपता पाने का इच्छुक है तो तू हृदय से ईश्वर की शरण ग्रहण कर। ईश्वर के लिये किये गये प्रत्येक कार्यों को जब तू हृदय से सम्पादित कर पायेगा तब तेरा रोम-रोम पुलकित हो जायेगा और तू ईश्वर को अति करीब देख पायेगा।

१४२ माला में दाने देखे, फूल देखे, एकता न देखी जिसने सब का हृदय एक कर दिया।

ऐ प्राणी ! बिखरे हुए दाने तथा फूल जब एक सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वे एक होकर माला का रूप धारण कर लेते हैं। एकता उन बिखरे हुए दानों व फूलों को एक कर देती है तथा उन्हें आकर्षक रूप प्रदान करती है। अब वे दाने और फूल ही ईश्वर को याद करने तथा ईश्वर के अर्पित करने के योग्य बन जाते हैं। देख, तेरे अन्तर में भी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अनेक भावनाएँ हैं जो बिखरी हुई हैं, ये भावनाएँ एक का साथ चाहती हैं। एक (ईश्वर) का साथ पाकर वे सिमट जायेंगी तथा एकत्रित होकर एक हो जायेंगी। कल तक वे तुझे अपने इशारे पर नचाती थीं किन्तु आज तेरे इशारे पर नाचने को तत्पर होंगी। तेरा हृदय प्रेम से आप्लावित हो जायेगा—ऐसा प्रेमिल हृदय ही सबसे प्रेम कर पायेगा, सबसे एकता भी ऐसे प्रेमिल हृदय में ही आयेगी। अतः तू एक ईश्वर का बन कि एकता की शक्ति को पहिचान पाये तथा सबसे प्रेम (एकता) कर पाये।

१४३ प्यार बलि चाहता है अहं की। बलि दे या बलिहार जा।

ऐ प्राणी ! प्रेम में दो नहीं रहते, केवल एक (प्रेम) रहता है। जब

तक 'अहं' सूक्ष्म रूप से भी विद्यमान है तब तक प्रेम पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता अर्थात् प्रेम के प्रादुर्भाव के लिये अहं की बलि देनी होती है। देख, यदि तू स्वतः अहं की बलि देने की सामर्थ्य नहीं रखता तो तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर ले। जिस दिन तू पूरा ईश्वर का हो जायेगा, तेरे प्रत्येक कार्य का कर्त्ता तू ईश्वर को देख पायेगा उस दिन तेरा अहं स्वतः विलीन हो जायेगा। तेरा जीवन प्यारमय हो जायेगा, तेरा प्रत्येक रोम कूप ईश्वर का आभास देगा और प्यार से अलग तू कुछ भी नहीं रह जायेगा।

१४४ फूल चन्दन में ही भक्ति बह गई तो, हृदय का स्थान कहाँ ?

ऐ प्राणी ! फूल, हृदय-कमल के प्रस्फुटन का प्रतीक है तथा चन्दन, हृदय में मिली शीतलता का प्रतीक है किन्तु हृदय के इन भावों की ओर ध्यान न देकर ईश्वर पर केवल फूल-चन्दन चढ़ाकर ही व्यक्ति यदि उसे भक्ति समझ बैठे तो वह भक्ति की महिमा से अनभिज्ञ ही रह जायेगा। देख, ईश्वर हाथ के कार्यों से रीझने वाला नहीं, उसे प्रत्येक कार्य हृदय से चाहिये—किन्तु अभी तूने उलटा रास्ता पकड़ रक्खा है। जो स्थूल के साथी हैं, जिन्हें तुझसे स्थूल के कार्य चाहिये, उनके लिये तो तू अन्तर से उद्विग्न बना रहता है तथा जो अन्तर का साथी है और जिसे तेरे अन्तर के भाव चाहिये, उसे तू कार्यों से खुश करना चाहता है—ऐसे में न तो तू ही खुश हो पाता है और न उसे ही खुश कर पाता है। यदि तूने सीधा रास्ता पकड़ा होता अर्थात् ईश्वर की पूजा दिल से की होती तो तू शान्ति पाता, आनन्द पाता। उल्टा रास्ता पकड़ने से तू ईश्वर के नाम पर फूल-चन्दन ही चढ़ाता रह जायेगा और उसी को भक्ति समझता हुआ भक्ति से दूर ही बना रहेगा।

१४५ मम बन, मर्म जाने, धर्म जाने, कर्म जाने।

ऐ प्राणी ! यदि तू जीवन तथा जगत के रहस्य को जानना चाहता है, "धर्म किस चीज का नाम है" इसे पहिचानना चाहता है तथा "तेरे लिये कौन से कर्म करने उचित हैं" यह भी समझना चाहता है तो तू मेरा बन। मेरा बनकर तू अहंकार-शून्य हो सकेगा और अहंकार-शून्य होने से तेरा अन्तःकरण शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल होता चला जायेगा। देख, निर्मल अन्तःकरण में सभी भाव स्पष्ट होकर दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यह जीवन आनन्द के लिये मिला है तथा यह संसार एक बगीचा है जो प्रसन्नता प्रदान करने वाला है—यह मर्म तभी सम्मुख आता है। धर्म, कार्यों में नहीं, हृदय की सुमधुर

भावना में है तथा जीव मात्र के प्रति प्रेम पूर्वक किये गये कर्म ही धर्म हैं—यह भाव भी तभी स्पष्ट होता है तथा सच्चाई हृदय में धारण करके कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ते रहना ही सत्कर्म है—यह भावना भी तभी सम्मुख आती है। अतः प्रथम तू मेरा बन, फिर तू जो कुछ जानने की इच्छा रक्खेगा उसी के मर्म से अवगत हो सकेगा।

१४६ फाल्गुन फिर आया। गुण, निर्गुण का खेल छोड़। खेल फाग, हो जा बाग-बाग।

फाल्गुन महिना रंग का सन्देश लेकर आता है किन्तु व्यक्ति का हृदय यदि नहीं रँग पाता है तो यह (फाल्गुन महिना) आता है और यूँ ही लौट कर चला जाता है। ऐ प्राणी ! यदि तू अपने जीवन को रंगीन देखना चाहता है तो तू ईश्वर से प्रेम बढ़ा, उसके नाम पर तर्क-वितर्क न कर क्योंकि 'ईश्वर' बुद्धि से समझने का विषय नहीं। देख, ईश्वर सब गुणों में दीखता हुआ भी गुणों से परे है किन्तु उसके इस खेल को तू अपनी आँखों से नहीं देख पायेगा। ईश्वर को जानने के लिये तुझे ईश्वर के रंग में रँगना होगा। उसकी दुनिया में बैठने से ही तेरी दुनिया रंगीन होती जायेगी और यही वह रंग है जो एक बार लगने के बाद कभी छूटता नहीं। अतः तू ईश्वर से लाभ उठा ले अर्थात् प्रभु का होकर आनन्दित हो ले, नहीं तो तुझे मिला हुआ समय निरर्थक वाक-वितण्डावाद में ही व्यतीत हो जायेगा और तू रंग विहीन ही रह जायेगा।

१४७ बच्चे ही सच्चे। और ? मिथ्या गाल बजाते।

ऐ प्राणी ! बच्चे दिल के सच्चे होते हैं इसीलिये 'ईश्वर-रूप' कहे जाते हैं किन्तु ये बच्चे ही जब बड़े हो जाते हैं तब इनके भीतर वह सरलता नहीं रह जाती। उम्र के साथ-साथ उनकी समझ खुलती जाती है तथा समझ के साथ-साथ उनके जीवन में अनेक दुविधाएँ लगती चली जाती हैं। देख, उम्र बढ़ने के पश्चात् भी जो दिल से बच्चे (सरल) हैं उनकी दुनिया निराली होती है—जीवन का सच्चा आनन्द वे ही ले पाते हैं और आनन्द पाने के जो अभिलाषी हैं उनको भी आनन्द वे ही दे पाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनका पिता सदा उनकी देखभाल कर रहा है। अन्य प्राणियों का जीवन तो यों ही पशुवत् व्यतीत हो जाता है। वे केवल शरीर रक्षा के निमित्त परेशान बने रहते हैं और अहंकार में लीन रहकर कष्ट पाते तथा देते हुए एक दिन संसार से लौट जाते हैं।

१४८ मित्र को निमित्त बनाता, महाभारत रचाता, वह कौन है ? तुम्हारा सखा, श्याम।

ऐ प्राणी ! महाभारत के युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को केवल निमित्त बनाया था, यथार्थ में श्रीकृष्ण के इशारे पर ही वह युद्ध हुआ था तथा श्रीकृष्ण ने ही अर्जुन को विजेता बनाया था। देख, यह बात केवल अर्जुन के लिये ही नहीं, तुम्हारे लिये भी है। तुम्हारे भी सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है, तुम तो निमित्त मात्र हो किन्तु यह रहस्य तुम्हारे सम्मुख स्पष्ट तभी होगा जब तुम उसके मित्र बनोगे। मित्र बन कर तुम देख पाओगे कि जो कार्य तुम्हारे लिये असम्भव हैं तथा जिन भाव-विचारों से छुटकारा पाना तुम्हारे लिये कठिन है, वे साथी के साथ से सहज में ही आसान हो जाते हैं। ईश्वर को साथी के रूप में पाने के पश्चात् व्यक्ति केवल निमित्त रह जाता है, उसके सभी कार्यों का कर्त्ता उसका सखा, श्याम होता है।

१४९ गुलाब ने कहा गुलाल ले। अबीर ने कहा—अब देर न कर। प्राण गुलाल, दिल अबीर।

ऐ प्राणी ! यह जीवन तुम्हें आनन्द के लिये मिला है किन्तु तुम हर पल सुख-दुःख के झूले में झूल रहे हो। देख, फूलों का राजा गुलाब है, यह रंग व सुगन्ध दोनों से सजा-धजा है। यह तुम्हें संकेत देता है कि तुम भी जीवन में प्रेम का रंग भरो ताकि तुम्हारा जीवन सुवासित हो जाये, रोम-रोम पुलकित हो जाये और तुम आनन्द में रह सको। देख, अबीर चमकीला है, यह तुम्हें सन्देश देता है कि तुम भी चमक जाओ एवं दिल की स्वच्छता ग्रहण करो। जैसे-जैसे तुम्हारा दिल स्वच्छ होता जायेगा, वैसे-वैसे तुम्हारा जीवन चमकता चला जायेगा। प्राणों में प्रेम की भावना गुलाब बन जायेगी और स्वच्छता दिल को अबीर की तरह चमका देगी—दोनों का सम्मिश्रण तुम्हारे जीवन को अनुपम बना देगा।

१५० मल गुलाल मैल न रहे। हो ली तो होली।

ऐ प्राणी ! जीवन में मैल तब तक ही रहता है जब तक हृदय प्रेम-रंग में नहीं रँग जाता। जैसे-जैसे हृदय प्रेम-रस से सराबोर होता जाता है, वैसे-वैसे जीवन से मैल भी विदा हो जाता है। अतः तू हृदय को प्रेम-मन्दिर बना कि तेरा जीवन रंगीन हो जाये। देख, जीवन को रंगीन बनाने का एक ही तरीका है—

वह यह है कि तू किसी का हो जा, उसका हो जा जिसका साथ कभी छूटे नहीं ! उसका हो कर ही तू होली का आनन्द ले सकेगा अर्थात् तेरा अन्तर घट रंग से परिपूरित होगा अन्यथा तू साल में एक बार होली का त्योहार मनाता रहेगा, फिर भी तेरा जीवन रंगीन नहीं हो पायेगा। बाहर से तू रंग में नहाता रहेगा किन्तु भीतर से (रंग विहीन होने के कारण) छटपटाता रहेगा।

१५१ ग्रहण न किया—कहता रहा चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण। स्नान से ही फुरसत। ग्रहण से क्या ग्रहण करता।

ऐ प्राणी ! सूर्य-चन्द्र में जब ग्रहण लगता है तब वे तेजी से घटते चले जाते हैं किन्तु ग्रहण की अवधि खत्म होते ही वे पुनः उतनी ही तेजी से बढ़ने लगते हैं तथा अपने सही रूप में आ जाते हैं। देख, तू ने 'ग्रहण' से क्या ग्रहण किया ? तू ने तो ग्रहण के नाम पर केवल स्नान करके ही फुरसत पाली। तू उनके बढ़ते प्रकाश की ओर कब देख पाया ? अरे पगले ! ग्रहण के नाम पर तू यदि कुछ कर्म करके ही स्वयं को धार्मिक समझ लेगा तो ग्रहण से कुछ भी ग्रहण नहीं कर पायेगा—जीवन में उतराव-चढ़ाव तो आते ही रहेंगे किन्तु भाव-विहीन होने के कारण, तू उतरने के बाद फिर चढ़ नहीं पायेगा। अतः तू सूर्य-चन्द्र को घटते-बढ़ते देख कर उनसे भाव ग्रहण कर कि तू भी कुछ पा सके।

१५२ गीत से रीझेगा कौन ? अर्पण कर, शांत हो।

ऐ प्राणी ! ईश्वर केवल मुख के गीतों से रीझने वाला नहीं, उसे तेरे दिल के भाव चाहिये। गीत गाकर न तो तू रीझ सकेगा और न ईश्वर को रिझा सकेगा, न ही तुझे शान्ति मिल सकेगी। देख, शान्ति अर्पण में है। तू अन्तर में भले-बुरे जिन भावों को भी देख पाता है, उन्हें ईश्वर को सौंपता चल—ईश्वर को सौंप देने से तेरा दिल शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल व हल्का-फुलका हो जायेगा और तभी तू सही मायने में शान्त हो पायेगा। अन्यथा तू गीत गाकर क्षणिक शन्ति पा सकता है किन्तु स्थायी शान्ति तुझसे कोसों दूर रहेगी और रीझना तथा रिझाना तो शान्ति के पश्चात् की अवस्था है। अतः तू जीवन में यदि आनन्द पाना चाहता है तो प्रभु के चरणों में झुक जा कि तुझे मनवांछित फल की प्राप्ति हो।

१५३ पाप पुण्य भय से। प्रेम तेरा धन है।

ऐ प्राणी ! प्रेम तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। प्रेम सदा तेरे साथ था,

है और सदा रहेगा—यह कभी खत्म होने वाला नहीं। तू इसे जितना अधिक प्रयोग में लेगा, उतना ही यह बढ़ेगा। देख, पाप पुण्य तेरे साथ नहीं थे, वे भय से पैदा हुए हैं। गलत मार्ग पर बढ़ते हुए व्यक्ति को पाप का भय दिखाया जाता है, जैसे शैतानी करते हुए बच्चे को हौवे का भय दिखलाया जाता है—यथार्थ में पाप कुछ नहीं, भय मात्र है। इस पाप से उबरने के लिये व्यक्ति द्वारा अनेक धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं—वे ही पुण्य कहलाते हैं। ऐसी अवस्था में बाहर की दुनिया में चक्कर काटता हुआ व्यक्ति, दिल की दुनिया से दूर ही रह जाता है। अतः तू पाप पुण्य को प्रधानता न दे, प्रेम को प्रश्रय दे कि तू अपने धन को पहिचान सके तथा सबसे प्रेम करते हुए जीवन का आनन्द ले पाये।

१५४ पात्र रिक्त नहीं—भय क्रोध से पूरित कर रखा है। उड़ेल आँसुओं से।

ऐ प्राणी! तेरा हृदय-घट खाली नहीं, भय-क्रोध आदि अनेक भावों से पूरित है। अब, यदि तू उसमें और कुछ रखना भी चाहे तो तब तक नहीं रख सकता जब तक वह खाली न हो जाये। देख, हृदय को खाली किये बिना तू यदि अन्य भाव (शान्ति, प्रेम आदि) उसमें रखने की चेष्टा भी करेगा तो वे विकृत हो जायेंगे (भय-क्रोध आदि में मिलकर) सही रूप में नहीं रह पायेंगे। अतः तू प्रथम हृदय की गन्दगी को रो-रो कर प्रभु के सम्मुख रख दे। पश्चाताप की अग्नि में जलकर जब तेरा हृदय पूर्णतया स्वच्छ हो जायेगा तब शान्ति, प्रेम, दया, क्षमा आदि भाव स्वतः तेरे हृदय पटल पर आच्छादित हो जायेंगे और तभी तू इस मिले हुए पात्र (मनुष्य शरीर) का पूरा आनन्द ले पायेगा।

१५५ न उड़ना है न छिपना। प्रकाशित कर अपनी प्रेम सत्ता को।

ऐ प्राणी! कल्पना में उड़ने वाला यथार्थ प्रेम से दूर ही रह जाता है एवं कल्पना को सत्य मान कर उसी में चक्कर काटता रहता है। भीतर की भावना को हमेशा छिपाते रहने वाला भी भय व संकोच के कारण प्रेम की स्थिति को नहीं पा सकता क्योंकि अभय हुए बिना प्रेम की प्राप्ति सम्भव नहीं। अतः तू न तो निरर्थक कल्पना करके उड़ और न अन्तर की भावनाओं को ही कुचल—तेरे अन्तर में जैसे भी भाव हैं, तू उन्हें सहजता से प्रिय के सम्मुख व्यक्त करता चल—तब तू देख पायेगा कि धीरे-धीरे तेरा प्रेम जाग्रत होता

जा रहा है। देख, प्रेम ही वह धन है जिसके सम्मुख सभी धन छोटे हैं—उसे सम्मुख पाकर ही तू सच्चा धनी बन सकेगा।

१५६ मान—वर्त्तमान। भूल—भूत। निश्चित—भविष्य।

ऐ प्राणी! तू वर्त्तमान में जीना सीख। वर्त्तमान के प्रति हमेशा सजग रहने से तेरा हर पल सज जायेगा। देख, केवल कार्यों के प्रति सजग होने से तू कुछ नहीं पा सकेगा, भीतर के भावों के प्रति भी तुझे उतना ही सजग रहना होगा। जिस दिन तू कार्य व भाव दोनों के प्रति सजग हो जायेगा, उस दिन से तेरा भविष्य निश्चित (उज्जवल) होगा। अतः तू भूत की बातों को भूल जा क्योंकि उन बातों से तेरा कोई लाभ होने वाला नहीं—उनसे केवल समय ही बरबाद होगा। तू भविष्य की चिन्ता भी न कर क्योंकि भविष्य चिन्ता से सुधरने वाला नहीं—तेरे आज के भावों पर अवलम्बित है। तू वर्त्तमान को मान कि प्रत्येक कदम तेरे आनन्द का वर्द्धन करता रहे।

१५७ प्रेम की पगडण्डी पर न घूम, पागल हो जायेगा।

ऐ प्राणी! तू सोच-समझ कर प्रेम की राह पर कदम बढ़ाना क्योंकि प्रेम की राह पर बढ़ने से अपनापन छूटने लगता है—सोना-जागना, उठना-बैठना सब प्रिय की दुनिया में होने लगते हैं, केवल प्रिय की दुनिया ही सम्मुख रह जाती है। ऐसे प्रेमी को लोग पागल कहते हैं क्योंकि प्रेमी दिल की कद्र करता है। जिन कार्यों से दिल में दर्द हो—ऐसा कोई भी काम वह नहीं करता जबकि दुनिया वालों के सभी कार्य दिल के विपरीत होते हैं क्योंकि वे दिल को देखना ही नहीं जानते। साधारण लोगों की दुनिया बुद्धि प्रधान होती है, उसमें कहीं-कहीं मन का स्थान भी रहता है किन्तु प्रेमी की दुनिया दिल प्रधान होती है। देख, सब जिस राह पर चलें, उस पर कोई एक न चले—वह पागल नहीं तो और क्या है? अतः ऐसी प्रेम की पगडण्डी पर कदम बढ़ाने के पूर्व तू हृदय को टटोल ले कि ऐसी स्थिति में आने के लिये तू तैयार है न? यदि है, तभी तू प्रेम-पगडण्डी पर कदम बढ़ाना अन्यथा ईश्वर के नाम पर पूजा-पाठ आदि ही कर लेना, प्रेम का नाम भी मुँह पर न लाना।

१५८ देख दिल से। मान मन से।

ऐ प्राणी! तू यदि ईश्वर को स्थूल आँखों से देखना चाहता है तो यह सम्भव नहीं हो सकेगा क्योंकि ये आँखें केवल स्थूल जगत को देखने की

सामर्थ्य रखती हैं। ईश्वर की अनुभूति दिल में होती है, दिल ही ईश्वर को देखने का एकमात्र स्थान है और जिस दर्शन से दिल को राहत मिले—वही ईश्वर दर्शन है, अन्य दर्शन तो ईश्वर के नाम पर मन को भुलावा देना है। अतः तू यदि ईश्वर को देखने की लालसा रखता है तो प्रथम वह स्थान ढूँढ जहाँ तेरे दिल को राहत मिले और दिल के भावों में परिवर्तन होने लगे। उसे ही तू मन से मान, वहीं तुझे एक दिन ईश्वर दर्शन हो सकेंगे।

१५९. खुशामद कैसी ? प्रिय के प्यार ने वेद बनाये, शास्त्र रचे। प्यार के शब्द स्तोत्र के रूप में बहने लगे।

ऐ प्राणी ! ईश्वर तेरा अपना है, अपने की कभी खुशामद नहीं होती (अपने से) प्यार होता है। देख, ये वेद-शास्त्र आदि जितने भी ग्रन्थ रचे हुए हैं—ये ईश्वर प्रेम के प्रतीक हैं। 'ईश्वर-प्रेम' जब हृदय में जागृत हो जाता है तो मुख से जो शब्द उच्चरित होते हैं, वे ही स्तोत्र बन जाते हैं तथा वेद-शास्त्र आदि के नाम से पुकारे जाने लगते हैं। अतः तू ईश्वर को पराया जान कर उसकी खुशामद न कर—ईश्वर तेरा अपना है तथा सदा तेरे साथ है—इस सत्य को जान कर तू ईश्वर से प्यार कर। ईश्वर के प्रति जब तेरे हृदय में प्रेम होगा तब तेरी दुनिया ही बदल जायेगी एवं तेरे मुख के शब्द अद्‌भुत होंगे अर्थात वेद-शास्त्र तेरी वाणी में विराजमान होंगे।

१६० प्राण स्पर्शी ध्वनि धुन में समाई, क्रिया भीतर बाहर। यही लाभ।

ऐ प्राणी ! मुख की ध्वनि केवल कान तक पहुँचती है किन्तु ध्वनि के साथ जो भाव रहते हैं उनकी पहुँच कानों तक ही नहीं, वे (भाव) उन भावों को जगा देते हैं जो प्राणी के अन्तर में गुप्त हैं, सुप्त हैं। देख, धुन में मस्त होकर व्यक्ति जब गाता है तो वह ध्वनि प्राण स्पर्शी हो जाती है क्योंकि ध्वनि के साथ-साथ (उसके) भीतर में भी क्रिया हो रही है—ऐसी ही ध्वनि का प्रभाव बाहर देखा जाता है। यदि क्रिया भीतर नहीं, तो वह आवाज बाहर कर्ण प्रिय बन कर ही रह जाती है, प्राणों को स्पर्श नहीं कर पाती एवं दिल में परिवर्तन भी नहीं ला पाती। अतः तू गाता ही है तो धुन में गा कि गाना तेरे अन्तर में भी जागरण पैदा कर दे तथा तुझे बाहर भी उसका प्रभाव देखने को मिले।

१६१ भक्ति को तुच्छ समझना, समझ की तुच्छता है। भक्त तो बह जाता है, फिर स्थिरता? बुद्धि की बातें, क्या मूल्य रखती हैं?

भक्ति की महिमा से अनजान प्राणी अनजाने में ही भक्ति के लिये हीन भावना अपना लेता है। उसकी दृष्टि में भक्ति कायरता है अतः वह भक्ति को तुच्छ समझता है। ऐ प्राणी! भक्ति हृदय की सरसता है, यह दीन-हीन प्राणी को महान भावों से सजा देती है। तुच्छ जीवन जीने वाला प्राणी इसे अपना कर स्वच्छ हो जाता है—वह भक्ति के सहारे उस स्थिति को पा जाता है जिसे बुद्धिमान अनेक चेष्टा करके भी नहीं पा सकते। देख, तू बुद्धि की बातों में आकर भक्ति को हेय दृष्टि से न देख, तू शान्त होकर भक्ति की स्थिति का अवलोकन कर। जिस दिन तू भक्ति का रूप देख पायेगा, उस दिन से तू भी भक्ति किये विना नहीं रह पायेगा क्योंकि भक्त प्रभु-प्रेम में बहता हुआ उस अवस्था में पहुँच जाता है जिसमें बुद्धि वाले लाख चेष्टा करने पर भी नहीं पहुँच पाते।

१६२ रूप ने पागल बनाया। नाम ने क्या क्या दिखाया।

ऐ प्राणी! रूप स्थायी नहीं, तू इसे आज जिस रूप में देख पाता है, कल नहीं देख पायेगा। देख, जो स्थायी रहने वाला नहीं, तू उसी के पीछे पागल बना हुआ है एवं दिन-रात उसी को सजाने-सँवारने तथा उसी की देखभाल करने में लगा है। नाम की भूख ने तो तेरी अवस्था और भी दयनीय बना दी है। नाम की इच्छा के कारण तू अन्तर की ओर देखना ही भूल गया है, केवल बाहर की ओर देखते हुए सभी कार्य नाम-प्राप्ति के लिये सम्पादित करने लगा है। नाम की भूख ने तेरे हृदय की मधुरिमा खत्म कर दी है। अरे पगले! ऐसी अवस्था के लिये तो तूने मनुष्य तन नहीं पाया है! तेरा यह रूप नहीं है, तू ईश्वर का जीता-जागता रूप है। अतः तू रूप तथा नाम को भूलकर उसे याद कर जिसके सहारे यह शरीर ठहरा हुआ है—वही तेरा सच्चा रूप है तथा उसे जानने में ही तेरा सच्चा नाम है।

१६३ नत क्यों होता? क्या उन्नत के लिये?

ऐ प्राणी! खुशामद करने वाला भी झुकता है तथा जो स्वभाव से ही नम्र है, वह भी झुकता है किन्तु दोनों के झुकने में अन्तर है। एक दृश्य जगत में उन्नति पाने के लिये झुकता है तथा दूसरा झुक कर अन्तर के उन भावों को

पाता है जिसे धन-जन वाले नहीं पाते। देख, अब तू अपने अन्तर को टटोल कि तू क्यों झुकता है? तुझे केवल धन-जन की उन्नति चाहिये या हृदय के भाव विचार भी उन्नत चाहिये? यदि तू भीतर से बाहर सर्वत्र उन्नति चाहता है तो प्रत्येक कार्य करते समय तुझे हृदय के भावों की ओर भी देखते रहना होगा। किसी भी कार्य को सम्पादित करते समय तेरे हृदय के भाव गन्दे नहीं होने चाहिये—तभी तू भीतर से बाहर तक उन्नति कर पायेगा।

१६४ पीपल में देव देखे, भूत देखे। पी, पल (भर) के लिये रस कि देव, भूत रस में लीन हो जायँ।

ऐ प्राणी! अभी तू कमजोर भावों से घिरा हुआ है इसीलिये कभी भय से घिर कर भूत की कल्पना करता है तथा कभी भय-मुक्त होने के लिये देव की शरण लेता है। देख, तू यदि पल भर के लिये भी प्रेम (प्रभु) रस का पान करता तो कमजोर भाव तेरे समीप नहीं आ पाते। प्रेम कहीं से लाना नहीं वह तो सदा तेरे साथ था तथा सदा रहेगा किन्तु तू आज उसका रस ग्रहण करने में देर कर रहा है। तू यदि एक बार भी वह रस ग्रहण कर ले तो तुझे न तो अपने से अलग (पीपल में) देव की कल्पना करनी पड़े और न तुझे भूत ही दिखलाई दें, तू रस से इतना सराबोर हो जाये कि सम्पूर्ण देवता तथा सभी प्राणी (भूत) तुझे पाने के लिये तरसें।

१६५ चिन्ह प्यार के, पद चिन्ह भगवान के।

ऐ प्राणी! प्यार का प्रादुर्भाव जब हृदय-पटल पर होता है तो प्रेम के कुछ चिन्ह बाहर भी प्रगट होने लगते हैं—प्रेमी के हृदय में प्रिय को कुछ देने की लालसा उत्पन्न हो जाती है। वस्तु के रूप में उसका देना प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है किन्तु वस्तु तो निमित्त होती है, यथार्थ में वह हृदय को ही अर्पित करता है प्रिय के चरणों में। समर्पण की भावना उसके रोम-रोम में बस जाती है, किन्तु यह स्थिति होती है ईश्वर के पदचिन्हों पर चलने से। देख, जो आज ईश्वर के भक्त दिखलाई देते हैं, वे समर्पण से ईश्वर तुल्य हो जाते हैं तथा अन्य प्रेमियों के लिये पदचिन्ह छोड़ जाते हैं—उन पदचिन्हों पर बढ़ता हुआ प्रभु-प्रेमी ही प्रेममय बन पाता है। यदि व्यक्ति उनके कार्यों को अपनाये तो वह कुछ नहीं पायेगा किन्तु उनका 'भाव' उसे उस स्थिति में पहुँचा देगा जिस स्थिति को पाकर वे पूजनीय हुए।

१६६ शंख फूँका, ढपोरशंख की तरह प्रार्थना की। क्या, आया? क्या, पाया?

ऐ प्राणी! 'ईश्वर' शरीर का नाम नहीं, उस अदृश्य शक्ति का नाम है जो शरीर को अनुप्राणित करती है। ईश्वर तेरे बाहर के कार्यों से रीझने वाला नहीं, उसे तेरे हृदय के भाव चाहिये। देख, केवल कार्यों से तो ये शरीर के साथी भी खुश नहीं हो पाते, जबकि इनकी जरूरतें स्थूल हैं, फिर कार्यों से तू ईश्वर को कैसे रिझा सकेगा। अतः तू ईश्वर के लिये केवल कार्य न कर। ईश्वर के सामीप्य के लिये तू अपना अन्तःकरण स्वच्छ रख तथा प्रत्येक कार्य शुद्ध अन्तःकरण से सम्पादित कर। यदि तेरा हृदय गन्दा ही बना रहा और तू उसे छिपाकर बाहर से पूजा के कार्य करता रहा तो अनेक जन्म बीतने पर भी तू ईश्वर को नहीं पा सकेगा, ईश्वर के नाम पर नाम (प्रसिद्धि) पा लेगा किन्तु ईश्वर की समीपता का आभास भी नहीं पा सकेगा।

१६७ नाच, बिना साज। नाच? बिना साज? हाँ, नाच बिना साज। ताज झुकेगा, राज मिलेगा।

ऐ प्राणी! जब कोई साज (तन, धन, जन, मन आदि) साथ नहीं रह जाते, केवल एक ईश्वर का साथ ही शेष रहता है तब ईश्वर की प्राप्ति होती है। देख, ये सारे साज ईश्वर के साथ से ही सुखदायी हो सकते हैं, ईश्वर को भुलाकर ये काँटों की चुभन की तरह दर्द देने वाले होते हैं। अतः तू इन साज-बाज को बाद करके ईश्वर को प्रधान जान। ईश्वर तेरे लिये जब इन सभी साज-बाजों से अधिक प्रधान होगा तभी तू ईश्वरीय सत्ता को सदा साथ देख पायेगा। ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण विश्व तेरा अपना होगा तथा तू सभी से समान रूप से प्यार कर पायेगा।

१६८ तन मन अब तन्मय हो।

ऐ प्राणी! ये तन-मन की दुनिया तूने खूब देखी है—तन के लिये तूने दिन-रात एक किये हैं तथा पूरी जिन्दगी मन के इशारे पर नाचता रहा है—फिर भी तू प्यासा बना हुआ है। देख, तन-मन के पीछे तूने बहुत समय बिताया है, अब एक बार तू इस तन को बनाने वाले तथा मन को नचाने वाले 'ईश्वर' में तल्लीन होकर देख—शायद तेरी प्यास, जो जन्म-जन्मान्तरों से चली आ रही है, वह बुझ जाये और तू शान्ति व तृप्ति का आनन्द पाये। यदि तू ईश्वर में तन्मय नहीं हो सका तो जो तन ईश्वर-मिलन के लिये साधन के

रूप में मिला है, वह तुझे परेशान करता रहेगा तथा जो मन आनन्द के लिये मिला है, वह तन के पीछे परेशान बन तुझे बेचैन बनाता रहेगा। अतः तू इन मिले हुए कीमती साधनों की कीमत कर कि इनका मिलना सार्थक हो।

१६९. मन्मना भव, उन्मना क्यों ?

ऐ प्राणी ! यह संसार आनन्द का उद्यान है, यहाँ की प्रत्येक वस्तु मन को मोहित करने वाली है—इतने रमणीय संसार में रहकर भी तू शुष्क है, उदासीन है एवं बुझा-बुझा सा रहता है। देख, अभी स्वार्थ में लगे रहने के कारण तेरी दृष्टि संकीर्ण हो गई है, तू केवल अपने चारों ओर ही देख पाता है एवं जो शरीर के साथी हैं उन्हीं के लिये चिन्तित व परेशान बना रहता है। परिणाम इसके सिवा भी दुनिया का कोई रूप है, जो लुभावना है—यह तेरी समझ (आँखों) से परे है और इसीलिए तू उन्मना रहता है। देख, जिन्होंने संसार से आनन्द ग्रहण किया है, उनका सामीप्य तुझे भी आनन्द दे सकता है, उनकी आँखों से ही तेरी बन्द आँखें खुल सकती हैं और तू संसार का मनमोहक रूप देख सकता है। अतः तू उदास मन लिये ही न बैठा रह, उठ, होश में आ तथा संसार के सही रूप को पाने की इच्छा रख कि तुझे सन्त का साथ मिले और तू आनन्दी बन पाये।

१७० श्याम सलोने, कोने कोने।

ऐ प्राणी ! आकर्पण श्याम सलोने (ईश्वर) में है, यदि श्याम नहीं तो आकर्पण भी नहीं। देख, इस संसार की प्रत्येक चीजें (जड़-चेतन पदार्थ) अपनी ओर आकृष्ट करती हैं—यह आकर्पण उनका नहीं, उनमें निहित श्याम का है जो उन्हें चेतन बनाये हुए है। जिस दिन वह शक्ति उनसे विलग हो जायेगी, उस दिन उनमें आकर्पण नहीं रह जायेगा अर्थात् वे मिट जायेंगी। अतः तू भ्रम में न पड़ तथा आकर्षण का केन्द्र स्थूल को न जान। तू उस श्याम सलोने से प्रेम बढ़ा—जो तेरे अन्तर में भी समाया हुआ है—कि तू कोने-कोने में उसी का जलवा देख पाये।

१७१ भाव की दुनिया बनी है, भाव का भगवान है। भाव में तू आप ही है, भाव और सब भाव है।

ऐ प्राणी ! तू इस दुनिया का आनन्द भाव से ले सकता है तथा भाव से ही भगवान को भी देख सकता है। जब तक तू अभाव से घिरा रहेगा तब

तक सम्मुख मिली दुनिया के आनन्द से वंचित रहेगा तथा भगवान को प्रत्यक्ष पाकर भी देख नहीं सकेगा। 'भाव' आँख है, भाव की जागृति के पश्चात् भगवान तेरे लिये बाहर नहीं होगा, तू स्वयं भगवान का रूप होगा एवं सब जगह तू उसी का जलवा देख पायेगा। सभी भले-बुरे कार्य तथा विचारों का कर्त्ता भी तू ईश्वर को देख पायेगा, ईश्वर के सिवा तेरे देखने के लिये और कुछ नहीं रह जायेगा।

१७२ अचरज को रज में मिला।

ऐ प्राणी! ईश्वर को भूल जाने से इस दुनिया के अनेक कार्य तेरे लिये अचरज भरे हैं। देख, यों तो संसार की प्रत्येक वस्तु अचरज भरी है किन्तु यह अचरज उनके लिये है जो शरीर की आँखों से संसार को देखते हैं। इन आँखों से प्रकृति के कुछ गुण सम्मुख आ सकते हैं किन्तु प्रकृति का पूर्ण रहस्योद्‌घाटन नहीं हो सकता अतः तृप्ति भी नहीं पाई जा सकती। प्रकृति के रहस्योदघाटन के लिये तथा रसपूर्ण होने के लिये, तू प्रभु के चरणों की रज बन। जो भाव बुद्धि द्वारा नहीं जाने जा सकते वे रज बन कर सहज में ही पाये जा सकते हैं। रज, हृदय के मल को स्वच्छ कर देती है, परिणाम प्रत्येक वस्तु व भाव-विचार साफ-साफ दिखलाई देने लगते हैं। भ्रम ने अचरज की सृष्टि की थी और भ्रम का निराकरण जब होता है तब आनन्द की सृष्टि होती है।

१७३ सन्त उपदेश नहीं देता, देश दिखलाता जो अपना है।

ऐ प्राणी! सन्त उपदेशक नहीं होते, वे सत्य के प्रतिरूप होते हैं, उनके प्रत्येक कार्य व भाव सत्य के लिये होते हैं। देख, उनके कार्यों एवं उनकी वाणी से तू उनको नहीं पहचान सकेगा क्योंकि उनके बाहरी कार्य अटपटे होते हैं। उन्हें तू दिल में उदय होते उन भावों से पहचान सकेगा जो उनके सामीप्य से हृदय में उदय होते हैं। यदि उनके प्रति तेरा समर्पण हो सका तो तू उस स्थिति को पा जायेगा जो स्थिति उपदेश सुनकर नहीं पायी जा सकती, इतना ही नहीं, वे तुझे उस देश तक ले जायेंगे जिस देश के वे वासी हैं। अतः तू उनके समीप बैठकर भाव ग्रहण कर तथा भाव से ही उन्हें देख कि उनका प्रत्येक शब्द तुझे उस मंजिल पर पहुँचा दे जहाँ वे खड़े हैं।

१७४ सन्त ने क्या दिया? सन्त ने क्या नहीं दिया? पहचान चाहिये।

सब कुछ पाकर भी प्राणी जब तक सन्त की शरण नहीं पा जाता तब तक

वह कुछ नहीं पाता, प्रत्येक मिली हुई वस्तु में अभाव देखता रहता है। सन्त भाव की प्रत्यक्ष मूर्त्ति हैं। उनका साथ प्राणी को अभाव जगत से हटाकर कब भाव जगत से जोड़ देता है—इसका पता भी नहीं लगता और वह होश में तब आता है जब उसकी दुनिया बदल चुकी होती है। ऐ प्राणी! सन्त क्या देता है—यह वाणी का विषय नहीं क्योंकि उसकी देन वस्तु के रूप में नहीं होती कि उसकी गणना हो सके। उसकी देन भाव बदल देती है परिणाम सम्पूर्ण संसार अपना हो जाता है। सन्त के साथ से प्रत्येक अवस्था में आनन्द मिलने लगता है किन्तु सन्त से लाभ वे ही उठा पाते हैं जिन्होंने उसे पहचाना है तथा उसके सामीप्य का लाभ उठाया है।

१७५ विचारों का भी घेरा? घेरा है तो दम घुटेगा।

मनुष्य विचारों का धनी है। उसके सम्मुख अनवरत विचारों का प्रवाह होता रहता है। वे विचार उसे बहुत कुछ देने की सामर्थ्य रखते हैं किन्तु व्यक्ति यदि मोह-ममता व स्वार्थपरता आदि भावों को अपना बैठे तो उन विचारों के प्रवाह में भी रुकावट आती है और विचार उसी घेरे में चक्कर काटने लगते हैं। तब व्यक्ति की दृष्टि का दायरा सीमित हो जाता है, वह सभी कार्य उन विचारों के अनुसार ही करने लगता है—यहाँ तक कि ईश्वर के लिये किये जाने वाले कार्य भी वह उसी घेरे में बँधा हुआ करता है। ऐ प्राणी! विचारों का धन, वह श्रेष्ठ धन है जिससे बड़ी से बड़ी उपलब्धि की जा सकती है किन्तु उन्हीं विचारों को संकीर्णता के घेरे में बाँध कर तू कष्ट पा रहा है। देख, तेरी यह स्थिति तेरे लिये ही भारी पड़ेगी, इस घेरे में बँधे रहने के कारण हमेशा तेरा दम घुटता रहेगा। अतः तू विचारों का धनी बन कि तू इस घेरे को तोड़ कर विचारों का आनन्द पाये।

१७६ शान्त कब बैठा? जब कल्पना न रही। नकल तो विकल बनाती।

ऐ प्राणी! तू जीवन में शान्ति पाना चाहता है तो तू निरर्थक कल्पना करनी छोड़ दे। ऊँची-ऊँची झूठी कल्पनाएँ, करते समय भली मालूम होती हैं किन्तु जब वे पूरी नहीं होतीं तो कष्टदायिनी बन जाती हैं। किसी की नकल करना तो उससे भी भयानक है—जैसा है नहीं, वैसा बनने का स्वाँग करना तो हृदय को ही विकल बना देगा। नकल करने वाला असल तो कभी बन पायेगा ही नहीं और वह जैसा है उसका भी आनन्द नहीं ले पायेगा, न

जीवन में प्रगति कर पायेगा। कल्पना व्यक्ति को कलपायेगी तथा नकल विकल बनायेगी—दोनों के चक्कर में पड़ा प्राणी शान्ति से कोसों दूर हो जायेगा। ऐसे में अशान्ति उसकी चिर संगिनी होगी जिसे अपना कर वह कष्ट पाता रहेगा।

१७७ किसका आधार? जरा सोच तो सही किसका आधार। खुद का आधार खुद, जिसे लोग कहते खुदा।

ऐ प्राणी! तेरा आधार तू ही है, अन्य (आधार) तेरा भाव जगाने में सहायक हो सकते हैं किन्तु आधार नहीं बन सकते। देख, ईश्वर भी यदि तेरे सम्मुख आकर खड़ा हो जाये तो वह भी तब तक तुझे कुछ नहीं दे सकता जब तक कि तेरे हृदय में भाव की जागृति नहीं हो जाती। अतः तू स्वयं की शक्ति को पहिचान, जो तेरे अन्तर में गुप्त है, सुप्त है। यदि तू उसे ऐसे न पहचान पाये तो उनके समीप बैठ जिन्होंने खुद को जाना है। उनका साथ तेरे भावों को भी जगा देगा, परिणाम—तू ईश्वर का प्रतिरूप है एवं अनुपम शक्ति का भण्डार है तथा तेरे भाव ही तुझे सब कुछ दे सकते हैं—तू इसे जान पायेगा। अन्यथा ईश्वर के नाम पर बाहर चक्कर काटता हुआ तू कुछ नहीं पा सकेगा।

१७८ हड़बड़ानेवाला—हरि बड़ा हर बड़ा कब कहता है।

ऐ प्राणी! हड़बड़ किसी भी स्थिति का आनन्द नहीं लेने देती। हड़बड़ में व्यक्ति न ठीक से खा सकता है, न पी सकता है, न सो सकता है और न अन्य कोई कार्य ही सम्पादित कर सकता है—यहाँ तक कि दो शब्द भी ठीक से नहीं सुन सकता। देख, हड़बड़ में रहनेवाला किसी भी समय शान्त नहीं देखा जाता, परिणाम शान्त स्थिति में जिन भाव विचारों को स्पष्ट देखा जा सकता है, उनसे वह दूर ही बना रह जाता है। जीवन में हरियाली देने वाला हरि है तथा वही हृदय का बोझ हरण करने वाला है—वह इस सत्य को भी नहीं जान पाता। ईश्वर के कार्यों को देखने वाले के हृदय में ईश्वर के प्रति कृतज्ञता होती है किन्तु हड़बड़ के कारण जिन्होंने उसे कभी जानने की इच्छा ही नहीं रक्खी, वे ईश्वर से उपकृत होते हुए भी उससे दूर बने रहते हैं।

१७९ कौन और क्यों? कौन और क्यों में ही सब राज है। राज चाहे तो राज पहिचान।

ऐ प्राणी! तू कौन है तथा यहाँ क्यों आया है—तू इसे भूल बैठा है,

इसीलिये तेरे सभी कार्य प्रारम्भ से ही गड़बड़ हैं और यही कारण है कि तुझे जो कुछ प्राप्त है उसका तू आनन्द नहीं ले पाता। देख, यदि तू चाहता है कि सब तेरे अपने बनें तथा सब पर तेरा राज हो, तो तू सब पर शासन न कर क्योंकि सब पर राज पाने का तरीका शासन नहीं, प्रेम है। तू अपने रूप को पहिचान कि "तू कौन है तथा यहाँ क्यों आया है?" खोजते-खोजते एक दिन तू देख पायेगा कि तू ईश्वर का दूसरा रूप है तथा यहाँ (संसार में) सभी तेरे अपने हैं—तू अपनों के बीच आनन्द की भावना प्रसारित करने आया है। जिस दिन यह भेद तेरे सम्मुख स्पष्ट होगा, उस दिन से सम्पूर्ण विश्व तेरा अपना होगा।

१८० मत मति—अब ? कब गति ?

ऐ प्राणी! ईश्वर एक है। उस एक ईश्वर को पाने की जो चाहना रखते हैं उन्हें उसकी प्राप्ति के साधन भी मिल जाते हैं—हृदय की विकलता ही उनके लिये साधन जुटाती है। यदि ईश्वर प्राप्ति के लिये प्राणों में विकलता न हो तो व्यक्ति अनेक मत मतान्तरों को देखते हुए चक्कर में पड़ जाता है तथा किसी मत विशेष के बाहरी तौर-तरीकों को अपना कर ही स्वयं को ईश्वर-भक्त मान बैठता है। ऐसे में वह ईश्वर के नाम पर दो-चार कार्य सम्पादित कर लेता है किन्तु उसके भीतर का प्रवाह ईश्वर के लिये नहीं हो पाता। देख, ईश्वर तेरे कार्यों को देखने वाला नहीं, उसे तेरे अन्तर के भाव चाहिये। अन्तर के भाव ही तेरे जीवन में वह गति भरेंगे जिनके सहारे तू ईश्वर को पा सकेगा।

१८१ सर की पगड़ी पैरों पर रगड़ी, अब भी अभिमान ?

सिर झुकाना अहंकार-शून्यता का प्रतीक है। झुकने वाले के अन्तर में कोमलता, नम्रता आदि अनेक सद्‌गुणों का प्रादुर्भाव होने लगता है तथा उन्हीं के सहारे बढ़ता हुआ वह एक दिन अभिमान रहित हो जाता है। ऐ प्राणी! तेरे जीवन काल में भी अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं जबकि तू जन जन का मोहताज बन कर पैरों पर पड़ता देखा गया है फिर भी तेरा अभिमान पूर्ववत् विद्यमान है। झुककर तो अहंकार-शून्यता पायी जाती है फिर तेरा अहंकार अभी तक क्यों कायम है? देख, इसका कारण यह है कि झुकना यदि केवल शरीर से हो तो वह पूरा झुकना नहीं, इसके लिये हृदय के भाव भी वैसे ही चाहिये। तेरा झुकना अभी तक स्वार्थ के कारण रहा है। स्वार्थपूर्ति के लिये

तू मनुष्य के सम्मुख ही नहीं, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-नाले किसी के सामने भी झुकने को तैयार है—यह झुकना तेरे स्वार्थ की पूर्ति कर सकता है किन्तु हृदय के भावों को नहीं बदल सकता।

१८२ अब न झुकूँ—न रुकूँ।

ऐ प्राणी ! जिस दिन तू सचमुच में ईश्वर के सम्मुख झुक जायेगा अर्थात् तू अहंकार-शून्य हो जायेगा, उस दिन से तेरी अवस्था अनुपम होगी। तुझे फिर स्वार्थपूर्ति के लिये किसी के सामने झुकना नहीं पड़ेगा क्योंकि तू देख पायेगा कि वे सभी कार्य जिनके लिये तू आज तक परेशान होता रहा है, वे स्वतः हो रहे हैं अर्थात् सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है—तेरा प्रवाह उस दिन से अन्तर की ओर होगा। तू विना स्वार्थ तथा बेरोक-टोक आगे बढ़ता जायेगा क्योंकि तेरे हृदय में झुकने के भावों का प्रादुर्भाव हो चुका है। अब वे भाव ही सदैव तेरा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

१८३ दश का रक्षक एक, दश का भक्षक एक (मन)।

ऐ प्राणी ! ये दशों इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय) एक मन के इशारे पर नाचती हैं। मन का झुकाव जिस ओर होता है ये इन्द्रियाँ भी उसी ओर बढ़ने लगती हैं, अतः इन्द्रियों की सुरक्षा के लिये मन का स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है। देख, मन की ओर यदि ध्यान नहीं दिया जाता है तो यह मन ही इन्द्रियों का भक्षक बन जाता है अर्थात् सभी इन्द्रियों का प्रयोग गलत तरीके से होने लगता है, परिणाम तन रोगी हो जाता है। तन को यह सजा मन के कारण मिलती है, यदि मन स्वस्थ होता तो तन की दुर्गति नहीं होती, अतः मन की सुरक्षा परमावश्यक है। अब मन की सुरक्षा के लिये तुझे जो भी रास्ता अपनाना पड़े, तू उसे अपना अर्थात् तू सत्संग कर कि तेरे मन के भाव-विचार सुन्दर बनें तथा स्वस्थ मन के साथ से तू इस तन का भी पूर्ण आनन्द ले सके।

१८४ विधि, निषेध का चक्कर खाये, प्यार की विधि तब कौन बताये ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर तू कुछ कार्यों (भजन, पूजन, व्रत, तीर्थाटन आदि) को अपना लेगा तथा कुछ कार्य (ऊँच-नीच, जाति-पाँति, छुआछूत आदि) को निषेध समझेगा, तो तू इसी घेरे में चक्कर काटता रह जायेगा,

ईश्वर के करीब भी नहीं जा पायेगा। देख, इनमें चक्कर खाने वाले के दिल दिमाग में ये ही भाव संस्कार बन कर बैठ जाते हैं—ऐसे में ईश्वर से प्यार करने की वह कल्पना भी नहीं कर पाता। यदि इत्तफाक से उसे किसी प्रेमी के दर्शन हो भी जाते हैं तो प्रेमी का भाव उसकी समझ के परे होता है। वह अपनी ही एक धूरी पर चक्कर काटता हुआ तथा उसी को उचित समझता हुआ अज्ञानता में ही चक्कर काटता रह जाता है। अतः तू विधि-निषेध का रास्ता न अपना, यदि हो सके तो प्यार कर और प्यार की प्राप्ति के लिये संत के समीप बैठ कि तेरा जीवन पाना सार्थक हो।

१८५ मौन मन मुनि—ध्वनि रहित धुनी।

ऐ प्राणी! मुख से मौन होना—मौन की अधूरी क्रिया है क्योंकि तन के कार्यों के साथ मन का सहयोग अति आवश्यक है। देख, केवल मुख से मौन होने वाला मुनि नहीं, मुनि वह है जिसका मन शान्त हो गया हो। जब तक मन शान्त नहीं हो जाता तब तक प्राणी किसी भी कार्य को स्थिर चित्त से सम्पादित नहीं कर पाता अतः उनका आनन्द भी नहीं ले पाता। मन की चञ्चलता उसे हर वक्त बेचैन बनाये रखती है—वह खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते सभी अवस्थाओं में बेचैन बना रहता है। किन्तु जिनका मन शान्त (मौन) है अर्थात जिन्होंने प्रभु-प्रेम का रसपान किया है, उनका मन सदा मनमोहन के चरण-कमलों का भँवरा बन रस पान करता रहता है। उनके अन्तर की स्थिति अवर्णनीय होती है—वे भीतर ही भीतर प्रभु-प्रेम में निमग्न रहते हैं। उनकी स्थिति बाहर के कार्यों द्वारा नहीं जानी जा सकती क्योंकि उनके भाव कार्यों में नहीं दिखलाई देते।

१८६ कारण का रण क्यों? मरण का रण क्यों? शरण का रण कहाँ? वरण का रण कहाँ?

ऐ प्राणी! तू स्वयं को कर्त्ता जानकर यदि ऐसा समझ बैठेगा कि जो कुछ तू सम्मुख देख रहा है, उनका कारण तू है तो तू प्रारम्भ से ही गलती पर है। ऐसे में तू कर्त्ता को भूलता जायेगा तथा उन वस्तु-व्यक्ति आदि से जुड़ता चला जायगा जो एक दिन मिटने वाली हैं। देख, मिटनेवालों से प्रेम बढ़ाकर एक दिन तू भी मिट जायेगा, अतः जिस शक्ति के सहारे वे (वस्तु-व्यक्ति आदि) टिके हैं, तू उस अज्ञात शक्ति की शरण ग्रहण कर तथा उसी को जीवन समर्पित कर कि यह संसार तेरे लिये रण क्षेत्र न बने और मृत्यु का भय

तुझे न सताये—तू यहाँ भी आनन्द ले पाये तथा आनन्द से ही एक दिन प्रिय में विलीन हो जाये ।

१८७ सन्त विद्वान ? यदि नहीं, अच्छा है । भाषा अलंकार से सत्य सजाया तो व्यर्थ ही आया ।

ऐ प्राणी ! पढ़-लिख कर विद्वान बना जा सकता है किन्तु सन्त नहीं । सन्त, सत्य के प्रतिरूप होते हैं, वे यदि विद्वान न हों तो कोई बात नहीं क्योंकि उन्होंने वह भाव पाया है जो विद्वान के पास फटकते भी नहीं । उनका भाव स्वतः सजा सजाया है, उसे भाषा अलंकार आदि से सजाने की जरूरत नहीं होती । सजावट, वस्तु को और अधिक आकर्षक बनाने के लिये की जाती है किन्तु 'भाव' स्वयं में पूर्ण है अतः उसे अलग से सजाने की आवश्यकता नहीं रहती । देख, सन्त यदि विद्वान नहीं है तो अच्छा है, तू उनके बाहरी कार्यों (गुणों) को न देख, उनसे भाव ग्रहण कर कि तू भी बाहरी आडम्बर से बच कर रह सके ।

१८८ मन को न मार, मन रो पड़ेगा । मनाना होगा, रिझाना होगा, तुम्हारा ही हो जायेगा ।

ऐ प्राणी ! मन बालक की तरह चञ्चल है । देख, बालक से हठपूर्वक कोई कार्य नहीं करवाये जा सकते किन्तु वे ही कार्य उसे भुलाकर, मनाकर करवाये जा सकते हैं । मन की भी यही अवस्था है—मन मार कर यदि कोई कार्य सम्पादित कर भी लिया जाय तो मन रो पड़ता है तथा मन के साथ के अभाव में उस कार्य का आनन्द भी नहीं लिया जा सकता । अतः तू मन पर जोर-जबर्दस्ती न कर, तू मन के कार्यों की ओर देख तथा मन को भले बुरे कार्यों का परिणाम बतला । तेरी प्यार भरी सही देख-रेख से मन तुम्हारा ही हो जायेगा और तू उसे जिधर भी लगाना चाहेगा वह तुम्हारे इशारे पर उधर ही चलता रहेगा—ऐसे मन के साथ से तू सदा आनन्द मनाता रहेगा ।

१८९ काया का भाव कायर । प्रेम का भाव शायर बन बैठा ।

ऐ प्राणी ! यह शरीर एक दिन मिट जाने वाला है तथा इसके साथ के सारे सम्बन्ध भी एक दिन मिट जाने वाले हैं । देख, शरीर को प्रधान मानकर जीने वाले के अन्तर में सदा एक भय सा बना रहता है तथा वह हमेशा घबड़ाता रहता है कि मुझे मिले हुए ये संगी-साथी, धन-जन, घर-परिवार

आदि कभी मुझसे बिछुड़ न जायें—ऐसे में वह काया का भाव लिये कायर बन जाता है। प्रेमी की दुनिया विलक्षण होती है, वह सर्वथा अहंकार-शून्य देखा जाता है। प्रेमी हमेशा प्रिय की दुनिया में जीता है, प्रिय के सिवा उसकी अपनी दुनिया ही नहीं होती। वह हमेशा प्रिय के प्यार में निमग्न होकर रस पान करता रहता है। रस का थोड़ा सा रूप उसकी वाणी द्वारा भी प्रवाहित होता देखा जाता है। उसका यह भाव केवल उसे ही आनन्द नहीं देता, जो प्रेम के पिपासु होते हैं उनको भी सरस बनाता है।

१९० आरत – आ रत। अर्थ यही है। कैसी जिज्ञासा? जब अति पासा। देख, जान, अब ज्ञान यही है।

ऐ प्राणी! तू यदि दुःखी है तो तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर तथा उसी में लीन होकर रह। देख, ईश्वर को कहीं दूर नहीं खोजना है, वह तेरे श्वासों-प्राणों में रमा हुआ सदा तेरे साथ है। जिस दिन उसे जानने की तेरे अन्तर में अभिलाषा होगी, उस दिन तू उसके कार्यों को देख सकेगा और जिस दिन तू उसके कार्यों को देख सकेगा तथा 'वह क्या है' इसे जान सकेगा, उस दिन से तेरी अवस्था अवर्णनीय होगी—तू पत्ते-पत्ते में 'हरि' को देख पायेगा एवं सब जगह तुझे उसी की सत्ता का आभास मिलता रहेगा। तब तेरी बन्द आँखें खुल जायेंगी, तू वह सब कुछ जान पायेगा जो आज तक तेरी आँखों से ओझल था।

१९१ उठ न सका तो कैसा भाव। जग न सका तो कैसा चाव?

ऐ प्राणी! 'भाव' क्षणिक आनन्द देने वाला नहीं, यह दिन-रात अभाव-जगत में रहने वाले प्राणी को ऊपर की ओर उठाने वाला है अर्थात् अन्तर्जगत से जोड़ने वाला है। देख, भाव पाकर भी यदि तेरी वृत्तियाँ ऊपर की ओर नहीं उठीं तो यही कहना होगा कि अभी तूने भाव पाया ही नहीं, केवल भावुकता पाई है। चाव, हृदय में उमंग, उल्लास भरने वाला है। चाव जब किसी के लिये होता है तो व्यक्ति के कार्य अटपटे होने लगते हैं—वह ठीक से सो भी नहीं पाता, बार-बार नींद में चौंक कर उठने लगता है। व्यक्ति-वस्तु का चाव समयोपरान्त खत्म हो जाता है किन्तु जब यह ईश्वर के लिये होता है तो तब तक खत्म नहीं होता जब तक व्यक्ति ईश्वर से मिल नहीं लेता। अब तू अपने अन्तर को टटोल ले कि तेरे अन्तर में भाव और चाव की जागृति हुई है या नहीं? यदि हुई है तो तूने अवश्य ही कुछ अनूठा भाव पाया होगा एवं तेरा जीवन आनन्द रस से परिपूर्ण भी हो गया होगा।

१९२ मिल न सका तो कैसा नाम। हँस न सका तो कैसा धाम।

ऐ प्राणी ! प्रिय की स्मृति नाम लेने को विवश करती है। नाम लेने वाला जब तक प्रिय से मिल नहीं लेता तब तक चैन नहीं पाता। देख, स्मृति के विना लिया हुआ नाम ईश्वर के नाम पर केवल काम है, जिस काम से बोझ ही बढ़ता है, मिलन का आनन्द नहीं मिलता। आराध्य के मिलन का स्थान—धाम कहलाता है। वहाँ पहुँचकर यदि हृदय प्रफ्फुलित नहीं होता तो धाम की यात्रा करना भी एक काम ही बन जाता है, जो केवल अहंकार की पुष्टि करता है। देख, प्रिय की स्मृति आनन्द का वर्षण करती है और प्रिय का मिलन तो जीवन को ही आह्लादित कर देता है। किन्तु उसका नाम और धाम तब तक कारगर नहीं होते जब तक वे हृदय की बेकली से सम्पादित न किये जायें—क्योंकि ईश्वर कार्यों वाला नहीं, भाव वाला है।

१९३ स्वर्ग-नरक की कथा पुरानी। छोड़ आज, कर तू मनमानी।

ऐ प्राणी ! तू पुरानी सुनी-सुनाई बातों के आधार पर स्वर्ग-नरक को प्रधान मानकर जीवन यापन न कर—इससे तेरा समय डरते ही बीतेगा, तू कोई भी कार्य निर्भय होकर सम्पादित नहीं कर पायेगा। देख, डर से प्रेम प्रस्फुटित नहीं हो सकता, प्रेम के लिये तो निर्भय भाव चाहिये। अतः तू प्रेम की जागृति के लिये—जिस रास्ते से भय का आगमन होता है, उसका परित्याग कर दे अर्थात् स्वर्ग-नरक की चर्चा छोड़ दे तथा प्रेमियों के समीप बैठकर उनके उन भावों को पा ले जिनसे उन्होंने मन मौज की जिन्दगी पाई है कि तू भी मनमौज की जिन्दगी बिता सके और वह पा जाये कि दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी तुझे हिला न सके। यदि उन भावों को तू नहीं पा सकेगा तो स्वर्ग-नरक की बातें करके ईश्वर के नाम पर केवल मन बहलायेगा इससे अधिक और कुछ नहीं पा सकेगा।

१९४ बाँह डाले तो वाह निकले। दूर तो अज्ञान के नशे में चूर।

ऐ प्राणी ! प्यार जीवन का शृंगार है। प्यार की जागृति जब हृदय में होने लगती है तो यही समझना होगा कि 'ईश्वर' जीवन पर छाने लगा है। देख, प्रेमी को किन्हीं कार्यों से हृदय को सजाना नहीं पड़ता, प्यार ही उसे सजाता चला जाता है। उसके हृदय में सुन्दर, सुखद व सुमधुर भाव डेरा जमाने लगते हैं और उसका जीवन सज जाता है, परिणाम—हृदय फूला नहीं समाता, वाह-वाह कर उठता है। प्यार (ईश्वर) की दुनिया से जो दूर हैं,

वे अभी अन्धेरे में हैं। जैसे अन्धेरे में कोई भी चीज साफ दिखलाई नहीं देती, वैसे ही अज्ञान अन्धकार में इस संसार की प्रत्येक वस्तु भ्रम पैदा करती है। भ्रमित हुआ प्राणी धन, जन व यौवन को स्थायी समझ कर अपने समान किसी को नहीं समझता, अज्ञानता के नशे में चूर होकर भटक जाता है—ईश्वर से दूर होने से ही उसकी यह अवस्था होती है। यदि उसने ईश्वर से प्रेम किया होता तो उसे ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता—वह प्रकाश पाता तथा आनन्द मनाता।

१९५ सब मिले तुम्हें सताने को—सत्य मिला तुम्हें रिझाने को।

ऐ प्राणी! एक सत्य (ईश्वर) के साथ से सब अपने हैं और उसे भुलाकर सब सपना है। देख, स्वप्न को सत्य जानने वाले का जीवन जैसे कष्ट से भर जाता है, वैसे ही इन्हें अपना मानने वाले का जीवन भी दुःखदायी बन जाता है। यहाँ मिले हुए प्रत्येक संगी-साथी उसे अज्ञात कष्ट पहुँचाते रहते हैं फिर भी वह इस भेद को नहीं जान पाता तथा उन्हीं में उलझा हुआ रोता रहता है। देख, ईश्वर को नकार कर तू यहाँ कभी सुख से नहीं रह सकेगा क्योंकि ईश्वर ही तेरा अपना है। ईश्वर का साथ तेरे हृदय पर पड़े आवरण को हटा देगा तथा तुम्हें वह दृष्टि प्रदान करेगा कि तुम रीझ जाओगे। तब तुम्हारे हृदय की पंखुड़ियाँ खिल जायेंगी, दिल बाग-बाग हो जायेगा और ऐसी अवस्था में तुझे मिले हुए धन-जन भी तेरा आनन्दवर्द्धन कर सकेंगे। अन्यथा एक ईश्वर को भूल जाने से तू सब कुछ पाकर भी रोता ही रहेगा।

१९६ सत्य भी एक नहीं? तो फिर एकता कहाँ?

ऐ प्राणी! ईश्वर (सत्य) एक है, उस एक ईश्वर को ही तू अनेक रूप में देख पाता है। वह जब, जिस रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है, तू उसी 'रूप' को प्रधान जानकर ईश्वर मान बैठता है। देख, ईश्वर को अनेक रूपों में देखकर अनेक जानना—भ्रान्ति है। जब तक तू 'ईश्वर एक है' यह नहीं जान जायेगा तब तक तेरी वृत्तियाँ बिखरी रहेंगी—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—चारों चार दिशा में चक्कर काटते रहेंगे तथा तू इन्हीं के पीछे परेशान बना घूमता रहेगा। ऐसे में सबके प्रति तेरे अन्तर में प्रेम की भावना उदय नहीं होगी क्योंकि अभी तेरे अन्तर की वृत्तियों में एकता नहीं। अतः तू यदि जीवन में ठहराव चाहता है तो एक सत्य को जान कि तेरी वृत्तियाँ सिमट जायें तथा तू सबसे प्रेम कर पाये।

१९७ अज्ञ, कृतज्ञ कब हुआ ।

ऐ प्राणी ! अज्ञान अन्धेरा है । अज्ञान अन्धकार में कुछ भी स्पष्ट दिखाई नहीं देता, सब कुछ भ्रम पैदा करता है और यही कारण है कि व्यक्ति स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है । देख, स्वयं को कर्त्ता जानने वाला, कर्त्तापन का बोझ ढोता रहेगा तथा चिन्ता, दुःख, कष्ट आदि अनेक भावों को गले लगाता रहेगा—ऐसे में वह 'कर्त्ता कोई और है' इससे अनजान ही बना रहेगा । यदि सुनी सुनायी बातों के आधार पर 'ईश्वर कर्त्ता है' यह जान भी लेगा तो भी उसके प्रति कृतज्ञ नहीं बन पायेगा क्योंकि ये भाव अभी उसके अपने नहीं हुए हैं । देख, सत्य भाव को अपनाने के लिये तुझे किसी सन्त का साथ लेना होगा क्योंकि सन्त की शरण ही तेरी अज्ञानता दूर कर सकती है तथा सत्य भावों को सम्मुख लाकर खड़ा कर सकती है । यह शक्ति सन्त को छोड़कर अन्य किसी में भी नहीं । अतः तू सन्त की शरण ले कि तेरे जीवन का अन्धेरा खत्म हो जाये और तू प्रत्येक कार्य का कर्त्ता ईश्वर को देख पाये तथा निश्चिन्त बनकर ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हो जाये ।

१९८ सजाने आया—फिर सजा क्यों पाया ? सजा पा रहा है, मजा पा रहा है ।

ऐ प्राणी ! तेरा इस धरा पर आने का उद्देश्य जीवन के प्रत्येक पल को ईश्वर के भावों से सजाना है किन्तु तू यहाँ आकर शरीर को ही देखने में लग गया अतः शरीर को ही वस्त्राभूषण आदि से सजाने लगा तथा शरीर की सुविधा के ही साधन जुटाने लगा । देख, शरीर की देखभाल करनी बुरी नहीं किन्तु अन्तर के भावों की उपेक्षा करके केवल शरीर को ही देखते रहना तो बुरा ही नहीं, बहुत बड़ी सजा है स्वयं के लिये । ऐसे में तू बाहर से घर शरीर सजाता रहेगा तथा अन्तर में सजा (कष्ट) पाता रहेगा तथा इसी को मजा समझता रहेगा । अरे पगले ! तू क्या करने आया था और किसमें लग गया—तू इस पर गौर कर कि तेरे भावों में परिवर्त्तन आये तथा तू जीने का आनन्द पाये ।

१९९ मिट्टी को पकड़नेवाला भी मजबूत, फिर सत्य के रूप को कौन हिला सकता है ? विचारों की हवा से व्यर्थ ही भयभीत ।

ऐ प्राणी ! सत्य का बल अन्य सभी बल (धन, जन, आदि के बल)

से बड़ा है। देख, धन-जन को अपनाने वाला भी शक्ति-सम्पन्न देखा जाता है—वह जल्दी से किसी के सामने झुकता नहीं—फिर सत्य के पुजारी की तो कथा ही निराली होगी। सम्पूर्ण दुनिया एक तरफ और सत्य का पुजारी अकेला एक तरफ, फिर भी कोई उसे हिलाने की क्षमता नहीं रखता। यह शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा और यह धन भी साथ नहीं जायेगा किन्तु सत्य कभी मिटने वाला नहीं अतः उसका साथ भी कभी मिटने वाला नहीं। देख, तू यदि सत्य का उपासक है तो व्यर्थ के विचारों से भयभीत न बन, तू सत्य भावों को लिए हुए सत्य-पथ पर तेजी से बढ़ता चल कि तू सत्य की शक्ति को प्रत्यक्ष देख पाये, भय के विचार तेरे समीप भी न आ पायें। अन्यथा ये विचार तुझे व्यर्थ ही परेशान करते रहेंगे तथा इनमें उलझा हुआ तू लक्ष्य से दूर ही रह जायेगा।

२०० मिट्टी में मिट्टी मिलने के पूर्व इसका सदुपयोग कर। सत् का योग ही सदुपयोग है।

ऐ प्राणी! यह शरीर मिट्टी है, यह एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा किन्तु मिट्टी में मिलने के पूर्व यदि इस शरीर द्वारा ईश्वरीय भावों को पा लिया जाये तो शरीर के मिट्टी में मिलने का गम नहीं रह जायेगा। देख, यह शरीर एक निश्चित अवधि के लिये तुम्हें मिला है, इस मिले हुए समय का तुम यदि सदुपयोग कर लोगे तो तुम्हारा शरीर पाना सार्थक हो जायेगा अन्यथा समय बीत जायेगा किन्तु तुम कोरे के कोरे रह जाओगे तथा समय बीतने पर इसके लिये पछताओगे। मिले हुए समय की कीमत नहीं कर पाने से तुम अनजाने में ही भटक जाओगे और इसका दुरुपयोग कर बैठोगे—होश में तब आओगे जब करने को कुछ शेष नहीं रह जायेगा। अतः तुम प्रारम्भ में ही इस रहस्य को जान लो कि यह शरीर क्यों मिला है? अन्तर की चाह तुम्हारी सहायक बनेगी एवं उसी के सहारे यह रहस्य रसपूर्ण बन कर तुम्हारे सम्मुख आ सकेगा और तभी तुम जीवन में चैन पा सकोगे।

२०१ प्यार को प्यार में खोज।

ऐ प्राणी! प्यार की चाह प्रत्येक प्राणी के अन्तर में समायी हुई है। वह प्यार की प्राप्ति के लिये जन-जन का मुँह देखा करता है—मां, बाप, भाई, बन्धु, संगी-साथी सभी से वह प्यार की आशा करता है। देख, जो स्वयं प्यार पाना चाहते हैं अर्थात् प्यार के भूखे हैं, वे किसी को प्यार कैसे दे

सकेंगे ? यदि वे देना भी चाहेंगे तो उनके प्यार से तृप्ति नहीं मिलेगी क्योंकि भूखा भूखे की भूख नहीं मिटा सकता। वे देने के साथ-साथ पाना भी चाहते हैं अतः उनका प्यार मोह, वासना व स्वार्थ में परिणित हो जाता है। देख, शुद्ध प्यार ईश्वर रूप है। यह ईश्वर रूप सन्त के द्वार पर मिलता है। यदि तू प्यार को उस प्यार के सागर में खोज पाये तो शायद तेरा हृदय भी प्यार से लबालब भर जाये और तू सबको प्यार बाँटने के लायक हो पाये। अतः तू प्यार को इधर-उधर खोजने में समय बरबाद न कर, तू प्यार को प्यार में खोज कि तेरा हृदय-घट प्यार से भर जाये, तू प्यार ही प्यार बन जाये।

२०२ याद के पूर्व और पश्चात् कुछ है।

ऐ प्राणी ! व्यक्ति ज्ञात-अज्ञात से जिन व्यक्ति, वस्तु, भाव, विचार आदि से जुड़ा रहता है, उसे उनकी ही याद आती है तथा जिनकी याद आती है, वैसे ही उसके भाव बनते जाते हैं—यह पूर्व और पश्चात् का सम्मेलन ही व्यक्ति का व्यक्तित्व बनाता है। देख, जिनको तू आज सन्त के रूप में देख पाता है उनका यह रूप याद का ही प्रतिफल है। वे प्रारम्भ से ही सत्य भावों से जुड़े रहते हैं, उनकी याद केवल सत्य के लिये होती है और यही कारण है कि वे सत्य रूप हो जाते हैं एवं सन्त के रूप में पूजित होते हैं। इस याद में अनुपम शक्ति होती है। यह हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति को हिला सकती है, इतना ही नहीं, जो 'शक्ति' आँखों से परे है उस शक्ति से भी व्यक्ति को मिला सकती है। अतः तू याद का धनी बन तथा सत्य की प्राप्ति के लिये ऐसे साथियों का साथ ले कि तुझे याद के लिये विवश होना पड़े और उसका प्रतिफल भी तू प्रत्यक्ष देख पाये।

२०३ हरि भक्ति का स्वाद साधु बनाता है।

ऐ प्राणी ! घर-द्वार छोड़ना तथा गेरूआ वस्त्र पहनना—साधुता का बाहरी रूप है, भीतरी रूप—हरि भक्ति का स्वाद पाकर अन्य आकर्षण छूट जाना तथा अन्तर में अनवरत सत्य ज्योति का प्रज्वलित होना है। देख, जो हरि भक्ति का स्वाद पाते हैं, उन्हें घर-द्वार छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, उनका हृदय साधु भाव से स्वतः सज जाता है। घर-द्वार उन्हें छोड़ना पड़ता है जो जोर-जबर्दस्ती से ईश्वर में मन लगाने की चेष्टा करते हैं और जिनका मन घर-द्वार में अटकता रहता है। भक्ति का स्वाद लेने वाले जहाँ भी रहते हैं—उनका भाव सदैव उनके साथ रहता है, वे प्रभु प्रेम में निमग्न रह

कर वहीं रस पाते रहते हैं। ऐसे जन प्रभु के प्यारों से छिप नहीं पाते, सदा आनन्द पाते तथा आनन्द लुटाते रहते हैं।

२०४ हरि ने हरी। क्या? शंका।

ऐ प्राणी! मनुष्य कमजोर विचारों वाला प्राणी है। कदम-कदम पर शंका-सन्देह उसे घेरे रहते हैं, वह उनसे कष्ट पाता रहता है फिर भी उन्हें छोड़ नहीं पाता। देख, जिस शंका को छोड़ना उसके वश की बात नहीं, उस शंका का निवारण हरि की शरण में जाने से सहज ही हो जाता है। हरि, जीवन में हरियाली भरने वाला है तथा दिल के निरर्थक कूड़े की सफाई करने वाला है। व्यक्ति जब ऐसे हरि की शरण पा जाता है तो उसका जीवन सज जाता है—बुद्धि की मेहरबानी से शंका-सन्देह आदि भाव जो आज तक उसके हृदय में डेरा जमाये हुए थे, वह उनसे भी छुटकारा पा जाता है क्योंकि अन्तर्प्रेरणा के सामने बुद्धि की एक नहीं चलती।

२०५ देकर लेना फिर भी आसान किन्तु यों? तो कैसे बने?

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व का संचालनकर्त्ता एक ईश्वर है, उस ईश्वर के सम्मुख याचना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि वह बिना याचना के ही सबको देता रहता है किन्तु तू उसकी इस अनुपम उदारता से अनजान है इसीलिये हमेशा उससे कुछ-कुछ चाहता रहता है। तू उससे हर समय पाता रहता है, देता कुछ भी नहीं, फिर भी और-और पाने की माला जपता है—यह सौदा गलत है। देख, प्रथम तो तुझे उससे कुछ माँगने की जरूरत ही नहीं है, फिर भी तू यदि माँगता है तो उसे कुछ देना भी सीख क्योंकि देकर ही तू उससे सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा और उसका देना देख सकेगा—यही वह समय होगा जब तुझे उससे माँगना नहीं पड़ेगा, तू प्रत्येक कार्य उसी के द्वारा सम्पादित होते देख सकेगा। अन्यथा तू बहुत कुछ पाकर भी उसका देना कभी देख नहीं सकेगा तथा उससे पाने की इच्छा में सदा अतृप्त ही बना रहेगा।

२०६ घिरे बादल न बरसे। क्यों? हवा में हवा हो गए—लीन विलीन हो गये।

ऐ प्राणी! समय-समय पर अनेक सुन्दर, सुखद भावों का आगमन हृदय-पटल पर होता है किन्तु व्यक्ति मोह, ममता आदि अनेक भावों से घिरे रहने के कारण उन्हें प्रश्रय नहीं दे पाता, बुद्धि के बहकावे में आकर या अन्य किन्हीं

परिस्थितियों से घिर कर उनसे मुख मोड़ लेता है। देख, सत्य भाव जीवन में तभी ठहर पाते हैं जब उनको प्रश्रय मिलता है। जब अन्य भाव उससे अधिक प्रधान हो जाते हैं तब वे (सत्य-भाव) टिक नहीं पाते, हवा हो जाते हैं। देख, जीवन-काल में अनेक परिस्थितियाँ तो आयेंगी ही किन्तु तू यदि उनमें ही उलझा रहेगा तथा मिले हुए भावों की कद्र नहीं करेगा तो उमड़-घुमड़ कर आये हुए सारे भाव विलीन हो जायेंगे—ऐसे विलीन हो जायेंगे जैसे जोरों की हवा चलने पर घिरे हुए बादल विलीन हो जाते हैं।

२०७ राम को मर्यादा में देखा, कृष्ण को योग और भोग में। अपने को अभाव में। सो तो, क्या ? सीमा उचित है ?

ऐ प्राणी ! जिन्हें तू ईश्वर रूप में देखता है वे (राम और कृष्ण) कार्यों द्वारा ईश्वर नहीं हुए हैं, वे भावों से ईश्वर हैं। यदि तू उनके कार्यों को प्रधानता देता रहेगा तो उनके भावों तक कभी नहीं पहुँच पायेगा। देख, तू राम को मर्यादा में रहने वाला समझता है, किन्तु "राम हृदय में रमण करने वाला है" यह नहीं जानता। कृष्ण ने गीता का ज्ञान दिया था तथा गोपियों के संग क्रीड़ा की थी—तू इसकी चर्चा करता है किन्तु "आकर्षण शक्ति का नाम कृष्ण है और आत्मा रूपी राधा ही प्रियतम (कृष्ण) के आकर्षण से खींची-खींची एक हो जाती है तथा प्रेम के छींटें हृदय-पटल पर जब पड़ते हैं तब जीवन ही प्रभु का भोग बन जाता है" यह नहीं जान पाता। ऐसे में ईश्वर की बातें करके भी तू अभाव से ही घिरा रह जायेगा। अरे पगले ! असीम ईश्वर को तू ने सीमा में क्यों बाँध दिया है ? देख, ईश्वर ही जब सीमा-बद्ध हो जायेगा तो तेरे बन्धन कौन तोड़ेगा ? अतः जो ईश्वर-तुल्य हैं, तू उनके कार्यों की ओर न देख, तू उनमें निहित असीम भावों की ओर देख कि तेरा बन्धन छूटे तथा तू उनसे आनन्द ले पाये।

२०८ काम क्रोध पर विजय चाहता है। अपने राम पर विजय पा, विजय ही विजय है।

ऐ प्राणी ! मनुष्य विचारों का पुतला है, उसके सम्मुख अनेक विचार-भाव आते-जाते रहते हैं। उन विचारों को यदि व्यक्ति देख न पाये तो वे विचार ही विकार (काम, क्रोध आदि) बन कर समीप ठहर जाते हैं तथा उसे कष्ट देते रहते हैं। अब यदि वह उन विकारों पर विजय पाना चाहे तो यह जोर-जबर्दस्ती से सम्भव नहीं क्योंकि बलपूर्वक कार्य सुधारे जा सकते हैं किन्तु भाव

नहीं बदले जा सकते। देख, भाव बदलने के लिये तुम्हें अपने आप को देखना होगा कि "तू कौन है तथा यहाँ क्यों आया है"? क्या खाना, पीना, सोना व बच्चे पैदा करना—यही तेरे जीवन का लक्ष्य है? यदि नहीं, तो और क्या है? जब तू अपने रूप को तथा लक्ष्य को जान पायेगा तो तेरी दृष्टि साफ हो जायेगी और साफ दृष्टि से तू सभी भले बुरे विचारों को देख पायेगा और वे विचार जो लक्ष्य प्राप्ति में तेरे लिये बाधक हैं, तू उनसे भी छुटकारा पा जायेगा।

२०९ अवस्था प्रधान नहीं, परिवर्त्तन ही जीवन का चक्र है। आज याद करता है, कल याद किया जायेगा।

ऐ प्राणी! जीवन काल में विभिन्न अवस्थाएँ आती हैं—आज जो बच्चा है, वह कल किशोर हो जाता है और कुछ समय पश्चात वही युवा होता देखा जाता है। यह परिवर्त्तन ही जीवन का चक्र है, यदि परिवर्त्तन नहीं तो जीवन भी नहीं। देख, जो ईश्वर को याद करते हैं उनके जीवन में भी ऐसे ही परिवर्त्तन आते रहते हैं। ईश्वर को याद करने वाला, आज याद करता है लेकिन एक दिन ऐसा आता है जब वह उसे समीप (श्वासों-प्राणों में) देख पाता है। याद करने वाला यदि याद से ही सन्तुष्ट हो जायेगा तो वह परिवर्त्तन की अवस्था का आनन्द नहीं पायेगा अर्थात ईश्वर की समीपता से वंचित रह जायेगा। अतः तू ईश्वर की स्मृति को हृदय में संजोये हुए ईश्वरीय भावों का अभिलाषी बन तथा आगे बढ़ता चल। आगे बढ़ने वाला आज ईश्वर को याद करता है किन्तु वह दिन दूर नहीं जब वह याद किया जायेगा।

२१० मेरा अपमान? तू माने तो मान भी है, अपमान भी है। नहीं तो कैसा मानपमान?

ऐ प्राणी! छोटी-छोटी बातें तुझे खिजाने के लिये पर्याप्त होती हैं। वे बातें ही तेरे स्वाभिमान में ठेस पहुँचाने वाली बन जाती हैं और तू अपमान की अग्नि में जलने लगता है। देख, अभी तूने 'स्व' का परिचय नहीं पाया है, अभी तू शरीर को ही सम्मुख देखता है तथा उसी में उलझा रहता है। जब तक तू शरीर को देखता रहेगा तब तक मान पाकर फूलता रहेगा तथा अपमान से कुढ़ता रहेगा किन्तु जिस दिन तू 'स्व' का परिचय पा जायेगा तथा यह जान जायेगा कि यह शरीर तो निमित्त है, इस शरीर को संचालित करने वाला

'स्व' है—उस दिन मान अपमान तेरे समीप नहीं रहेंगे, तू 'स्व' भाव में विचरण करता हुआ मौज मनायेगा।

२११ दिल में व्याकुलता क्यों ? शान्त नहीं हो पाया।

ऐ प्राणी ! शान्ति के लिये व्यक्ति अनेक साधन अपनाता है—घर बसाता है, उसके लिये अनेक सामान जुटाता है, मनोविनोद के साधन अपनाता है, पूजा-पाठ आदि भी करता है किन्तु शान्ति से तब भी दूर ही बना रह जाता है। देख, शान्ति कार्यों में नहीं, उन भावों में है जो तेरे अन्तर में सुप्त हैं और तू उसे कार्यों में खोज रहा है। जब तक तू शान्ति को कार्यों में खोजता रहेगा तब तक कभी शान्त नहीं हो पायेगा, परिणाम तेरे दिल में विकलता बनी रहेगी। देख, शान्ति तू उनके समीप बैठ कर पा सकेगा जो स्वभाव से ही शान्त हैं, जो प्रत्येक परिस्थिति में आनन्द-मग्न रहते हैं एवं जिनका हृदय 'कमल' की तरह खिला हुआ है। उनका साथ यदि तुझे भला लगेगा तो तेरा हृदय-कमल भी खिलने लगेगा और तू भी प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रह सकेगा। तू जान पायेगा कि उतराव-चढ़ाव का नाम जीवन है तथा ये आनन्द वृद्धि के लिये हैं और तभी तेरे दिल की विकलता शान्त हो सकेगी।

२१२ प्रिय के वियोग की तड़पन कब निरर्थक।

ऐ प्राणी ! जिन्होंने प्रियतम (प्रभु) के प्यार की आंशिक झलक भी पाई है, वे प्यार को भुला नहीं सकते क्योंकि प्रिय ऐसा ही होता है, प्यार ऐसा ही होता है। यदि किन्हीं कारणों से उनका कुछ समय के लिये प्रिय से वियोग हो भी जाता है तो वह अवस्था उनके लिये असहनीय हो जाती है। उनका हृदय तड़प जाता है, उन्हें प्रिय चाहिये—प्रिय के बिना वे जीने की कल्पना भी नहीं कर सकते। देख, प्रिय के लिये होने वाली तड़पन बेकार जाने वाली नहीं होती, वह प्रिय को और अधिक समीप लाकर खड़ा कर देती है—'प्रिय' प्रेमी के श्वासों-प्राणों में रम जाता है तथा बाहर-भीतर-सर्वत्र वह प्रिय ही प्रिय का जलवा देख पाता है।

२१३ आज की माला कल बन्धन मुक्त हो जाती है। माला भंग। माला—माल लाती है।

ऐ प्राणी ! याद की शक्ति अनुपम होती है। यह याद जब माला बन जाती है अर्थात् हर समय जब एक ही ध्यान रहने लगता है तब इसका अनुपम

रूप देखा जाता है—वे भाव-विचार जिनकी प्राप्ति असम्भव सी लगती है, वे सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। व्यक्ति जिसे आज तक याद करता आ रहा था, अभिष्ट की प्राप्ति के पश्चात उसके याद का क्रम टूट जाता है और वह उसे सम्मुख देख पाता है। देख, माला (याद) केवल प्रिय को ही सम्मुख लाकर खड़ा नहीं करती, सम्पूर्ण जीवन को ही बदल डालती है—वे वृत्तियाँ जो आज तक अन्धकार में चक्कर काटती थीं तथा कदम-कदम पर लड़खड़ाती थीं उनको प्रकाश के सम्मुख लाकर खड़ा कर देती है अर्थात उन्हें प्रकाश से भर देती है। अब अन्धकार में होने वाले अज्ञान-जनित सभी कार्य (मोह, वासना, स्वार्थ आदि) विदा हो जाते हैं। ऐसी है यह माला जो रोम-रोम को भावों से सुसज्जित कर देती है।

२१४ गाने में भी रोना ?

ऐ प्राणी ! तू अभाव की दुनिया में बैठा है अतः अभाव से घिर गया है और अभाव से घिरे रहने के कारण तेरा दिल हमेशा रोता रहता है। रोना तेरे दिल में इतना रच-पच गया है कि तू एक मिनट के लिये भी हँस नहीं पाता, यहाँ तक कि जब हँसने के अवसर आते हैं तब भी रोता रहता है। अरे पगले ! ऐसे तो तू रोता ही रहता है किन्तु जब हँसने-गाने के अवसर आते हैं तब तो हँसा कर, कभी तो अपनी सुस्ती को छोड़ा कर। देख, यदि रोना ही तेरे लिये प्रधान रहेगा तो तू कभी चैन नहीं पायेगा, हँसने का अवसर यदि तेरे जीवन में आ भी जायेगा तो भी तू उसे पहचान नहीं पायेगा। रोते-रोते ही तेरी जिन्दगी बीत जायेगी और तू रोते-रोते ही एक दिन संसार से चला जायेगा। अतः जितनी देर प्रसन्नता के क्षण तेरे सम्मुख आयें, तू उतनी देर के लिये तो कम से कम न रो। यदि प्रसन्नता को तू थोड़ा भी प्रश्रय देगा तो वह बार-बार तेरे समीप आयेगी अन्यथा रोना ही तेरा जीवन बन जायेगा।

२१५ रोना ही जानता है, गाना क्या जाने ?

ऐ प्राणी ! जिन्होंने रोना ही अपना रक्खा है अर्थात् जो बात-बात में रोते रहते हैं, वे रोना कभी नहीं छोड़ सकते और जो रोना नहीं छोड़ सकते, वे अन्य स्थिति को भी नहीं पा सकते। देख, रोना पकड़े हुए यदि कोई हँसना चाहेगा तो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? यह उसकी बालू से तेल निकालने की चेष्टा है, जो कभी पूरी नहीं हो सकती। जो प्रसन्न रहने की इच्छा रखते हैं उन्हें तो प्रसन्नता का ही रास्ता अपनाना पड़ेगा। जिन रास्तों पर बढ़कर

दिल दुःखित होता हो, उन रास्तों का उन्हें सर्वथा परित्याग करना होगा—तभी वे गाने (प्रसन्नता) के अधिकारी बन सकेंगे अन्यथा गाना उनसे कोसों दूर ही बना रहेगा।

२१६ चमक अन्धकार में थी। चमक में अन्धकार का पता कहाँ?

ऐ प्राणी! अन्धकार में चमकती हुई चीज अपनी ओर आकृष्ट करती है जैसे रात्रि के अन्धकार में टिमटिमाता हुआ दीपक। यह (दीपक) अन्धकार को प्रकाश में नहीं बदल सकता किन्तु जब सूर्योदय हो जाता है तो अन्धकार का कहीं नामोनिशान नहीं रह जाता, चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है। देख, अन्धकार भरे जीवन के लिये ईश्वर का नाम भी टिमटिमाते दीपक के समान है। ऐसे में ईश्वर का नाम क्षणिक सहारा बन सकता है किन्तु जीवन में प्रकाश नहीं दे सकता। जिसका नाम लिया जाता है उसके प्रति प्रेम उदय होने से जीवन में प्रकाश आता है क्योंकि प्रेम प्रकाश है। प्रेम प्रकाश का उदय जब अन्तर में हो जाता है तब बाहर-भीतर-सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है और जीवन का अन्धेरा खत्म हो जाता है।

२१७ प्राणों में गति नहीं तो शरीर का नाश। भावों में प्रेम नहीं, फिर निरर्थक आश।

ऐ प्राणी! यह शरीर प्राणों की गति पर ठहरा हुआ है, यदि प्राणों की गति रुक जाये तो प्राण पखेरु उड़ जायेंगे और यह शरीर धरा का धरा रह जायेगा—मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जायेगा! देख, अन्तर में चाहे अनेक भाव हों किन्तु प्रेम का जागरण नहीं हुआ हो तो ईश्वर-प्राप्ति के सारे प्रयास भी विफल हो जायेंगे क्योंकि प्रेम ही ईश्वर के समीप पहुँचाने वाले सभी भावों में गति देने वाला है। यदि भावों में प्रेम नहीं तो तू ईश्वर-प्राप्ति की निरर्थक आशा लेकर बैठा है जो कभी पूरी होने वाली नहीं। अतः प्रेम की प्राप्ति के लिये प्रथम तू प्रेमियों के समीप बैठ। जब प्रेम की जागृति तेरे हृदय में हो जायेगी तब ईश्वर का लिया हुआ एक नाम भी तुझे आनन्द देगा और ईश्वर-मिलन की आश भी तेरी तभी पूरी हो सकेगी।

२१८ जीर्ण शीर्ण बदलेगा, पहले ही काम बना।

ऐ प्राणी! जिस शरीर का तू आज गुमान कर रहा है, यह सदा टिकने वाला नहीं, यह तेरे देखते-देखते ही जीर्ण-शीर्ण हो जायेगा तथा एक समय

पश्चात् मृत्यु-मुख में भी समा जायेगा। देख, यह शरीर तुझे विशेष कार्य की पूर्णता के लिये मिला है, तू यदि वह कार्य सम्पादित नहीं कर पायेगा तो भी यह तेरी प्रतीक्षा करने वाला नहीं। अतः शरीर के जीर्ण-शीर्ण होने के पहले ही तू इसके द्वारा अपना काम बना ले अर्थात् इस तन के सहयोग से तू ईश्वर-मिलन के साज सजा ले कि न तो शरीर के जीर्ण-शीर्ण होने का ही तुझे गम रहे और न ही इसके जाने का भय रहे—तू आज भी मौज मनाता रहे तथा मौज से ही एक दिन लौट कर चला जाये।

२१९ काम में भ्रम पैदा न कर बुद्धि रोयेगी, तन सूखेगा। काम में आराम।

ऐ प्राणी! ईश्वर प्राप्ति के लिये कोई निर्दिष्ट कार्य नहीं होते, भाव होता है। देख, जिन कार्यों को करने से हृदय के भाव बदलने लग जाते हैं और अन्तर में आराम मिलने लगता है, वही ईश्वर का काम है। अतः तू ईश्वर के लिये "मैं कौन सा कार्य करूँ, मैं जो कार्य करता हूँ वह ठीक है या नहीं" यह भ्रम पैदा न कर, तू अन्तर की ओर देखते हुए आगे बढ़ता चल। यदि अन्तर की उपेक्षा करके तू केवल कार्यों को महत्व देगा तो कभी शान्ति-सन्तोष नहीं पा सकेगा और तेरे भ्रम का निराकरण भी नहीं हो सकेगा। ऐसे में तेरी बुद्धि रो देगी तथा विकलता के कारण तन सूख जायेगा और ईश्वर के लिये किये जाने वाले कार्य भी अन्य कार्यों की तरह भार ही बन जायेंगे—ऐसे कार्य तुझे कभी आराम नहीं दे सकेंगे जबकि ईश्वर के लिये किये जाने वाले कार्य आराम देने वाले होते हैं।

२२० जहाँ देखा राम, वहीं कहा आराम और लिया आराम।

ऐ प्राणी! हृदय में प्रत्येक पल रमण करने वाली शक्ति का नाम राम है, उस राम को देख पाने से ही जीवन में आराम मिलता है। जब तक व्यक्ति उसे देख नहीं पाता तब तक वह राम को खोजने के लिये चारों तरफ भटकता है—कभी उसे मन्दिरों में खोजता है, कभी पुस्तकों में खोजता है। यदि वह उसे सत्संग में खोजता तो शायद उसे देख पाता क्योंकि सत्संग आईना है। इस आईने के सम्मुख बैठने से अन्तर के सभी भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं अतः स्वच्छ हो जाते हैं परिणाम अन्तर में प्रतिष्ठित राम सम्मुख आ जाता है। देख, राम की यदि आंशिक झलक भी मिलती है तो आराम मिलने लगता है तथा वृत्तियों का चक्कर भी शान्त होने लगता है। अन्यथा व्यक्ति

अपने ही विचार भावों से परेशान बना हुआ दुनिया को एवं भगवान को कोसता रहता है।

२२१ चुप रह कर देख। चुप्पी में मजा है, बोले तो सजा है।

ऐ प्राणी ! सहनशक्ति के अभाव में व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में चुप नहीं रह पाता, कुछ बोल पड़ता है किन्तु यह बोलना उसके लिये बहुत भारी पड़ता है—बोलने से क्रिया की प्रतिक्रिया होती है परिणाम रोष और भी अधिक बढ़ता चला जाता है। ऐसे में व्यक्ति का अमन-चैन खत्म हो जाता है एवं वह किसी भी कार्य को शान्ति से सम्पादित नहीं कर पाता। यदि प्रतिकूल परिस्थिति में भी व्यक्ति चुप रह पाता तो यह चुप रहना उसकी साधना बन जाती और वह जीवन में बहुत बड़ी शान्ति का अनुभव कर पाता। देख, चुप्पी का मजा चुप रहकर ही देखा जा सकता है। किन्तु इसे सब नहीं अपना पाते, केवल शान्ति के उपासक ही अपना पाते हैं—अन्य तो स्वयं क्रोधाग्नि में जलते तथा अन्य को जलाते हुए ही समय बिताते हैं।

२२२ बोलेगा तो खो बैठेगा, क्या ? किसी का मन।

ऐ प्राणी ! प्यार से किसी का भी मन जीता जा सकता है। प्यार में वह अद्भुत शक्ति है जो देखते ही बनती है। देख, तू यदि सबसे प्यार करने की इच्छा रखता है तो किसी पर भी अधिकार न जता क्योंकि प्यार में अधिकार के लिये जगह नहीं होती। अधिकार से तू किसी के द्वारा अपने ढंग से कार्य करवा सकता है किन्तु उन्हें अपना नहीं बना सकता—अपना बनाना तो दूर की बात है, तू उनका मन भी नहीं जीत सकता। ऐसे में यह जीवन तेरे लिये भार पूर्ण होगा, सबको अपना कहता हुआ भी तू किसी का नहीं हो पायेगा और न कोई तेरा हो पायेगा, एकांकीपन का बोझ ढोता हुआ तू स्वयं में खीझ जायेगा। अतः तू अधिकार की दुनिया में न बैठ, प्यार की दुनिया में बैठ कि सब तेरे अपने बनें।

२२३ हृदय में गति (प्रेम) है तो गति है। लेकिन हृदय पर हाथ धर। हाथ पर हाथ धर तो निराधार न रहे।

ऐ प्राणी ! श्वाँस चलने का नाम ही जीवन नहीं, प्रेम पाने का नाम जीवन है। हृदय में यदि प्रेम की गति नहीं तो यह जीवन केवल चमड़े की धौंकनी के समान है। देख, ऐसा जीवन पाना कोई अर्थ नहीं रखता जिसमें

चाव नहीं, भाव नहीं, प्रेम का प्रवाह नहीं। अब तू अपने हृदय को टटोल कि तेरे हृदय में प्रेम प्रवाह है या नहीं ? यदि नहीं, तो तेरा हृदय निश्चित ही छटपटाता होगा। अतः तू किसी ऐसे का हाथ थाम ले अर्थात् किसी ऐसे को अपना जीवन सौंप दे जिसका हृदय प्यार से लबालब भरा हो। उसका आधार पाकर तू निराधार नहीं रहेगा और तेरे अन्तर में प्रेम का प्रवाह होने लगेगा। अन्यथा तू अनेकों से घिरा हुआ तथा सबको अपना कहता हुआ भी प्यार के लिये छटपटाता रहेगा।

२२४ झूमता है वह भी झड़ जाता है। ठीक है, किन्तु तुम तो झड़ते ही रहते हो, कभी झूमते भी नहीं।

ऐ प्राणी! यह प्रकृति परिवर्तनशील है, इसमें प्रत्येक चीज रूपान्तरित होती रहती है। यहाँ जिन पेड़-पौधों को तू आज हरा-भरा देख पाता है, वे सभी समयोपरान्त सूख जाते हैं। देख, इस परिवर्तनशील संसार में एक दिन मिटना तो निश्चित है किन्तु मिटने के पहले जो उन भावों से मिल लेते हैं जिनको पाकर जीवन हरा-भरा हो जाता है तो मिटने का गम नहीं रह जाता अन्यथा मिटने के पूर्व ही व्यक्ति हर पल मृतक तुल्य जीवन व्यतीत करता रहता है। ऐसा जीवन तो जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं रहता। अरे पगले! तुझसे तो ये पेड़-पौधे ही अच्छे हैं जो हरे-भरे रहकर हमेशा झूमते रहते हैं। इनका झूमना बेकार नहीं जाता, अन्य को भी झूमने के लिये प्रेरित करता है। अब यदि ये झड़ भी जायें तो कोई बात नहीं क्योंकि झूमने से उनका आगमन सार्थक हो गया। तू यदि इनको देखकर भी कुछ सीख पाता तो आने का आनन्द ले पाता तथा मौत का भय तुझे नहीं सताता।

२२५ दरवाजे पर दरवेश खड़ा है—वेश पर ध्यान न दे।

इस धरा पर सन्त का आगमन प्राणी के हृदय के उन दरवाजों को खोलने के लिये होता है जो अहंता, ममता से घिरे रहने के कारण बन्द हो गये हैं। मनुष्य ही वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है जो ईश्वर को पा सकता है और मनुष्य शरीर ही वह द्वार है जिसके द्वारा ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। किन्तु इस द्वार पर आकर भी व्यक्ति रोता रहता है, छटपटाता रहता है क्योंकि अन्य प्रलोभनों में फँस जाने के कारण उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं एवं वह लक्ष्य को भूल जाता है। ऐ प्राणी! सन्त तुझे जगाने के लिये सदा तेरे सम्मुख खड़े हैं किन्तु तू अपनी मैल भरी धुँधली आँखों के कारण उन्हें नहीं देख पाता है।

जब पश्चाताप की अग्नि तेरे हृदय में जलने लगेगी और तू तन-मन-धन (वेश) को भूलकर सत्य को पाने का पिपासु बनेगा तभी तू सन्त को सम्मुख देख पायेगा अन्यथा सन्त का साथ पाकर भी तू उनको नहीं पहचान सकेगा। देख, सन्त तुझे उपदेश नहीं देगा, वह तेरी आँखें खोल देगा और तेरा हाथ पकड़ कर उस देश तक ले जायेगा जिस देश का तू वासी है।

२२६ गूँज में याद छिपी है।

ऐ प्राणी! अन्तर में वे ही भाव गूँजते हैं जिन्हें व्यक्ति ज्ञात-अज्ञात से याद करता है। देख, याद में बहुत बड़ी शक्ति होती है, याद आये और इच्छित व्यक्ति, वस्तु, भाव आदि न मिलें—ऐसा नहीं देखा जाता। यदि याद में तीव्रता न हो तो देर सवेर हो सकती है अन्यथा सन्देह के लिये कोई गुंजाईश नहीं रहती। देख, याद में वह शक्ति है जो अदृश्य प्रभु को भी समक्ष लाकर खड़ा कर सकती है। किन्हीं कारणों से आने वाली याद व्यक्ति-वस्तु से मिलाती है किन्तु जब यह याद अकारण आने लगती है तब इसका अद्भुत रूप देखा जाता है—हृदय में रोमांच होने लगता है, आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलकने लगते हैं, वाणी गद्‌गद् हो जाती है। ऐसी अवस्था में स्वाभाविक ही प्रभु के भाव हृदय में गूँजने लगते हैं तथा उसी गूँज के अनुसार आनन्द रस की प्राप्ति होने लगती है।

२२७ संग कर— तो शंकर। नहीं तो तप भंग कर।

ऐ प्राणी! जिनके हृदय में स्वाभाविक ही ईश्वर-मिलन के लिये तड़पन है उनके द्वारा अनजाने में ही कुछ ऐसे कार्य होते हैं जो साधन कहलाते हैं, यथार्थ में अन्तर की वेचैनी ही उन्हें ईश्वरीय भावों का संग कराती है, वे साधन नहीं। ऐसे साधक ही ईश्वरीय भावों से सुसज्जित होकर सबके लिये कल्याणकारी होते हैं। जिनके हृदय में ईश्वर-मिलन के लिये सच्ची तड़पन नहीं एवं जो केवल क्लिष्ट साधना अपनाए हुए हैं, वे लाख चेष्टा के बावजूद भी ईश्वरीय भावों का साथ नहीं पा सकते। वे बाहरी कार्यकलापों द्वारा नाम-प्रसिद्धि की दुनिया पा सकते हैं, ईश्वर का सान्निध्य नहीं। उनकी जोर-जबर्दस्ती से की गई साधना कब उनका साथ छोड़ देगी—इसे वे जान भी नहीं पायेंगे और होश में तब आयेंगे जब ईश्वर को पाने का समय ही बीत जायेगा। अतः तू अपने अन्तर को टटोल कि ईश्वर को पाने के लिये तेरे अन्तर में सच्ची तड़पन है या तू केवल आडम्बर पूर्ण रास्ते को अपनाये हुए है? यदि केवल

आडम्बर अपनाये हुए है तो तू यह रास्ता छोड़ दे अन्यथा दस जन्म पाकर भी तू चैन नहीं पा सकेगा।

२२८ एक को छोड़ा तो अनेक से जोड़ा, फिर भी जुड़ा कहाँ ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर एक है, वह एक ही सबका पालक है। देख, अनेक रूप में ईश्वर की कल्पना करना भ्रान्ति है क्योंकि अनेक रूप तो वस्त्र हैं। एक व्यक्ति समय-समय पर अनेक वस्त्र पहनता है किन्तु उन वस्त्रों के पहनने से वह अनेक नहीं हो जाता, एक ही रहता है। अनेक रूपधारी ईश्वर की भी यही बात है—भिन्न-भिन्न समय में वह (एक) अनेक रूप धारण करता है किन्तु इससे वह अनेक नहीं हो जाता। देख, जब तक अभिन्न ईश्वर को तू भिन्न-भिन्न रूप में देखेगा तब तक तू उसे कभी नहीं देख पायेगा क्योंकि अभी तू उसके रूप में अटका हुआ है जबकि ईश्वर का रूप 'भाव' है ! रूप में अटक कर तू भाव को कैसे पायेगा ? ऐसी अवस्था में तू अनेकों से जुड़कर भी किसी का नहीं हो पायेगा। ईश्वर को जानने के लिये प्रथम तेरी भ्रान्ति का निवारण परम आवश्यक है। इसका निवारण सन्त के द्वार पर ही हो सकता है। अतः तू सन्त के समीप बैठ, वे तुझे अनेकों में उस एक को दिखायेंगे जो सबमें है, तुझमें है तथा सम्पूर्ण दृश्य-जगत में है, फिर भी वह एक है।

२२९ विषयों से पूजा की तो विष से यों ही पूजा की।

ऐ प्राणी ! तेरे पास तू जो कुछ भी देख पाता है वह ईश्वर द्वारा दिया हुआ है, ईश्वर को भुलाकर उनकी कल्पना करना अल्पज्ञता है। देख, तेरी इस अल्पज्ञता के कारण तू "मैं-मेरे" में फँस गया है तथा प्रत्येक मिली हुई वस्तु (विषयों) के आकर्षण में बँध गया है। अब यदि तू ईश्वर की पूजा भी करता है तो हृदय से नहीं कर पाता, इन विषयों से करता है क्योंकि ये (विषय) ही तुझे सत्य से लगते हैं। अरे पगले ! ईश्वर को भुलाने से ये विषय विष हैं। यदि तू इनके द्वारा, इनकी प्राप्ति के लिये ही ईश्वर की पूजा करता रहेगा तो तेरी पूजा निरर्थक होगी, तू पूजा का प्रतिफल (मानसिक शान्ति तथा प्रसन्नता) नहीं पा सकेगा। ऐसी अवस्था में तू पूजा करता सा दिखलाई देगा किन्तु तेरा तन-मन विषयों से भरा रहेगा और उसका विष तेरे रोम-रोम में समाया होगा।

२३० जाग्रत में रत होता है, स्वप्न में जिससे खेलता है। वही तेरा भगवान, सोच कौन है।

ऐ प्राणी ! जहाँ तू बैठा दिखलाई देता है, तू वहाँ नहीं है—जाग्रत

अवस्था में जिसमें तेरा ध्यान है, स्वप्न में भी तू जिसे नहीं छोड़ पाता—यथार्थ में तू वहाँ है। देख, जिसके हृदय में जो भाव घर कर लेते हैं उसके सभी कार्य उन्हीं भावों से आवेष्टित रहते हैं। मोही, प्रत्येक कार्यों को मोह से प्रेरित होकर करता है जबकि लोभी, लोभ के लिये। उनका सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना, बातचीत करना यहाँ तक कि पूजा-पाठ करना—सभी उन्हीं भावों के साथ होते हैं। ऐसी अवस्था में अन्य भगवान की कल्पना करना भी उनके लिये निरर्थक है। अभी उनके भगवान हृदय के वे भाव हैं जो जाग्रत व स्वप्न में उन्हें घेरे रहते हैं। अब तू एक बार सच्चाई से अपने अन्तर में देख कि जिसे तू भगवान कहता है वही तेरे लिये भगवान है या कोई अन्य भाव रात-दिन तेरे हृदय में डेरा जमाये हुए हैं? यदि अन्य भावों को प्रश्रय मिला हुआ है तो तू इस शरीर द्वारा ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य कर लेगा किन्तु ईश्वर को समीप नहीं पा सकेगा।

२३१ सत्गुरु ने तुझे सत् की जानकारी दी। अब? तू जान दे, जानकारों में जान दे।

ऐ प्राणी! सद्गुरु की कृपा से तुझे यदि सत्य की जानकारी हुई है तो तू अब चुप मत बैठ क्योंकि यह धन संचित करके रखने का नहीं। संचित करके रखने से यह घटता है और बाँटने से बढ़ता है। अतः तू सद्गुरु के प्रति कृतज्ञ रहकर इस धन को जी जान से बाँट। देख, बाँटने के लिये जब तू आगे बढ़ेगा तो तू देख पायेगा कि बहुत लोग ऐसे हैं जो ईश्वर के बारे में बहुत कुछ जानते तो हैं किन्तु उनमें अभी भाव की जागृति नहीं हुई है। भाव के बिना उनकी जानकारी निष्प्राण है अतः तू वाणी द्वारा ऐसों को भाव दे। भाव की जागृति उनमें नव-जागरण कर देगी और उनकी निष्प्राण साधना में प्राण फूँक देगी परिणाम वे कृत्य-कृत्य हो सकेंगे। सद्गुरु के द्वारा मिली हुई तेरी सत् की जानकारी भी तभी सार्थक होगी।

२३२ बुलाया, तो बू लाया, खुश बू लाया।

ऐ प्राणी! यों तो ईश्वर सबका है किन्तु कुछ पर ईश्वर की विशेष कृपा रहती है। उन कुछ लोगों को वह सद्गुरु के द्वारा सन्देश देकर अपना बना लेता है। अधिकांश प्राणी अभाव से घिरे रहने के कारण रोते रहते हैं किन्तु जिन्हें वह अपने समीप बुला लेता है वे रोते नहीं, उनके जीवन में प्रेम की

सुगन्ध भर जाती है। अभाव उनके जीवन से विदा हो जाता है एवं वे हमेशा प्रसन्न रहने लग जाते हैं। उनकी यह आभा दिन व दिन द्विगुणित होती जाती है। जैसे फूल की महक पूरे बगीचे को महका देती है वैसे ही उनके सुमधुर भावों की सुगन्ध चारों ओर फैलने लगती है तथा वातावरण को सुगन्धपूर्ण बना देती है। ऐसे होते हैं वे प्रभु-प्रेमी—जिनको वह अपनी शरण में लेता है।

२३३ भक्तों की पूजा भी भगवान की तरह की गई, किन्तु कहाँ? जहाँ चमत्कार देखा। पूजा भक्त की या भगवान की या चमत्कार की। यदि चमत्कार को नमस्कार तो पूजा बेकार।

ऐ प्राणी! ईश्वर की महिमा जब-जब घटने लगने लगती है तब-तब महिमा को बढ़ाने के लिये भक्तों का प्रादुर्भाव होता है। वे भक्त केवल ईश्वर को याद ही नहीं करते, उनके द्वारा बहुत कुछ अद्‌भुत कार्य होते हैं। देख, व्यक्ति की आँखें चूँकि अभी स्थूल हैं अतः वे स्थूल कार्यों को ही अधिक देख पाती हैं, उन कार्यों में निहित भाव को नहीं, परिणाम व्यक्ति उन अद्‌भुत कार्यों को देखकर ही भक्तों के प्रति आकृष्ट होता है तथा उनकी पूजा करने लगता है। भगवान के समान उन भक्तों के मन्दिर बनवाता है, भोग लगाता है, पूजा-पाठ का उपक्रम करता है किन्तु यह सब होता है चमत्कार के प्रति आकृष्ट होकर अतः वह उनसे लाभ नहीं उठा पाता। यदि व्यक्ति भक्त के भावों को देख पाता तो शायद उसे इतने आडम्बर की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसका दिल मन्दिर होता तथा वह प्रिय की मूर्त्ति को उसी में देख पाता।

२३४ युगों से उठ बैठ करता है। नम आज यही नमाज।

ऐ प्राणी! ईश्वर के नाम पर की गई क्रिया में जब तक भाव नहीं रहता तब तक वह अन्य क्रियाओं की तरह क्रिया ही रहती है, उस क्रिया से विशेष लाभ नहीं होता। देख, ईश्वर के नाम पर अनेक लोग अनेक कार्य-प्रणाली अपनाते हैं, युगों-युगों तक उसी के अनुसार चलते रहते हैं, किन्तु उनमें कोई परिवर्तन नहीं पाया जाता। यदि उनके कार्य जैसे हैं, वैसा ही उनके हृदय का भाव होता अर्थात् नमन करने के साथ-साथ झुकने का भाव भी रहता तो उनका झुकना सार्थक हो जाता—वे जिसके सम्मुख झुक रहे हैं, उसे सम्मुख देख पाते। उनकी पूजा करना (नमाज पढ़ना) भी तभी सार्थक होता।

२३५ रो रो कर रोक दिल को। दुनिया दिवानी हो, यदि रो दे। फिर हँसी तो हंस बना दे।

ऐ प्राणी ! दिल की छटपटाहट मिटाने का सरल रास्ता ईश्वर के सम्मुख प्रार्थना करना है। प्रार्थना दुःखी दिल को राहत देती है और राहत पाकर व्यक्ति ईश्वर की महिमा को जानने का अधिकारी बनता है। ईश्वर की महिमा को जान पाने से ही वह ईश्वर की निकटता पाने के लिये उत्साहित होता है, परिणाम विरह के भाव उसके अन्तर में उदीयमान होने लगते हैं। देख, विरह की अवस्था साधारण नहीं होती, यह विरही के हृदय को प्रकाशित करती हुई चारों ओर अपना प्रकाश फैलाती रहती है तथा सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। विरह के पश्चात् विरही के जीवन में मिलन की अवस्था आती है। मिलन की अवस्था में व्यक्ति उस अज्ञात शक्ति को, जो कण-कण में व्याप्त है, अपने अन्तर व बाहर सब जगह देख पाता है—उसका जीवन हँसी खुशी से भर जाता है, इतना ही नहीं, रोम-रोम ईश्वरीय भावों से सज जाता है।

२३६ मीठी मुस्कान—मस्त बनाती, फिक्र हटाती। नुकसान नहीं—मुस्कान, मुस्करा न।

ऐ प्राणी ! मुस्कुराना प्रसन्नता का प्रतीक है। जो व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति को मुस्कुरा कर स्वीकार करता है, वह मस्त रहना सीख जाता है—जीवन का आनन्द भी वही ले पाता है। चिन्ता, फिक्र आदि भाव उसके समीप नहीं ठहर पाते क्योंकि वह जानता है कि परिस्थितियों से मुकाबला चिन्तातुर होकर नहीं किया जा सकता। देख, प्रत्येक परिस्थिति में स्थित (शान्त) रहकर मुस्कराते रहने से परिस्थितियाँ भी आनन्दवर्द्धन करने लगती हैं। अतः तू मुस्कुराते हुए आगे बढ़ता चल क्योंकि इससे तेरा कुछ नुकसान होने वाला नहीं, जीवन ही सँवरने वाला है। यदि तू इसे अपनाकर मस्ती पा लेगा तो उस अवस्था को पा जायेगा जिसके लिये देवता भी तरसते हैं।

२३७ हटती नहीं, हटाती है—दिल की बेचैनी को, दिमाग की परेशानी को। गजब की हँसी है—अजब की हँसी है।

ऐ प्राणी ! हँसी के क्षण जीवन में कम ही आते हैं। ये क्षण जब आते हैं तब वे कष्टपूर्ण भाव जो हृदय में डेरा जमाये रहते हैं, उनका ध्यान भी नहीं रह

जाता। दिल की बेचैनी, दिमाग की परेशानी—सब इसके आगमन से हटते देखे जाते हैं। हँसी के क्षण यदि जीवन में ठहर जायें तो जीवन ही अनोखा बन जाये। देख, ऐसी हँसी के क्षण संयोग से तू कहीं पा जाये तो उसे सदा सहेज कर रखना और जहाँ बैठ कर उसे देख पाये, उन चरणों को कभी न भुलाना क्योंकि तूने उसे उन चरणों से ही पाया है। ऐसी हँसी असम्भव को भी सम्भव कर सकती है तथा जीवन को आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित कर सकती है। यह एक बार जब जीवन में घर कर लेती है तो लौट कर जाती नहीं। इसे पाने वाला निहाल हो जाता है एवं उसके रोम-रोम से आनन्द का वर्षण होने लगता है।

२३८ एक ओर अन्धेरा, दूसरी ओर प्रकाश। वाह रे खेल।

ऐ प्राणी! यह प्रकृति का नियम है कि जो भाग सूर्य के सम्मुख है वहाँ प्रकाश रहता है तथा जो भाग सूर्य से विमुख है वहाँ अन्धकार रहता है—प्राणी मात्र की भी यही बात है। देख, यों तो ईश्वर सबमें विद्यमान है किन्तु जो ईश्वर में विद्यमान हैं अर्थात् जो ईश्वर के सम्मुख हैं, प्रकाश वहीं पाया जाता है, अन्य जगह अन्धेरा ही अन्धेरा देखा जाता है, क्योंकि ईश्वर की समीपता ही बन्द आँखों को खोलती है तथा सत्य दुनिया से जोड़ती है। जो ईश्वर से विमुख हैं, वे अन्धकार (स्थूल संसार) को ही प्रकाश मान कर उसके पीछे भागते रहते हैं तथा कष्ट पाते रहते हैं। ईश्वर सबमें समान रूप से विद्यमान रहने पर भी एक ओर अन्धेरा रहता है और दूसरी ओर प्रकाश—ऐसा ही है ईश्वर का यह खेल जिसमें अनेक भ्रमित होते देखे जाते हैं।

२३९ कौन किसको मानता है? कब उसे पहिचानता है?

ऐ प्राणी! प्रत्येक व्यक्ति के भीतर की गति कुछ और होती है तथा बाहर के कार्य कुछ और होते हैं इसीलिये केवल बाहर के कार्यों को देखकर यह अन्दाज नहीं लगाया जा सकता कि उसका आराध्य कौन है? वह जागतिक व्यक्ति है या भक्त है? कौन से भावों से युक्त होकर वह कार्य सम्पादित कर रहा है? देख, व्यक्ति को फल की प्राप्ति केवल कार्यों से नहीं होती, भावों के अनुसार होती है। उच्चकोटि के एवं निम्नकोटि के व्यक्तियों के कार्य कई जगह एक जैसे देखने को मिलते हैं किन्तु उनके भावों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। व्यक्ति का हृदय जब तक शुद्ध नहीं हो जाता तब तक वह अपने अन्तर की इस स्थिति को नहीं जान पाता कि यह अन्तर कहाँ से

है अतः उस स्थिति को परिवर्तित भी नहीं कर पाता। हृदय के इन भावों को सत्संग में देखा जा सकता है। 'सत्संग' उसका नाम है जहाँ बैठकर हृदय शुद्ध होने लगे तथा अन्तर के भाव स्पष्ट दिखाई देने लगें। तभी व्यक्ति—आज तक किसे मानता आ रहा था तथा अब उसे किधर बढ़ना है—इसे जान सकेगा अन्यथा भटकते हुए ही उसकी जिन्दगी बीत जायेगी।

२४० जादू—दूजा नहीं यही जादू (गुरु का)

ऐ प्राणी ! सद्‌गुरु का सामीप्य पाना सौभाग्य की बात है क्योंकि भाव की जागृति सद्‌गुरु के द्वार पर ही होती है। यथार्थ में सत्संग का लाभ भी वे ही उठा पाते हैं जिन्होंने सद्‌गुरु को पाया है क्योंकि सत् पुरुष के संग का नाम ही सत्संग है। बिना सद्‌गुरु पाये भजन-पूजन किया जा सकता है, सत्संग नहीं मिलती। देख, सद्‌गुरु केवल ईश्वर का नाम लेना नहीं सिखाते, वे हृदय-परिवर्तन कर देते हैं—जो (हृदय) आज तक छटपटा रहा था—एवं भटकते प्राणी को सत्य दुनिया से जोड़ देते हैं। परिणाम व्यक्ति के सम्मुख अन्य दुनिया ही नहीं रह जाती, केवल एक सत्य की दुनिया रह जाती है—वह सम्पूर्ण विश्व को उस एक की सत्ता से आच्छादित देख पाता है।

२४१ (वेद ने) कहा है। लेकिन कहाँ है ? खोज।

ऐ प्राणी ! वेद-शास्त्र आदि तुझे ईश्वर का संकेत दे सकते हैं, ईश्वर तक नहीं पहुँचा सकते—ईश्वर तक तुझे तेरे हृदय की चाह ही पहुँचा सकती है। देख, तेरे अन्तर की चाह जब अति तीव्र हो जायेगी, अन्य सभी चाह से प्रधान बन जायेगी और सोते-जागते का ध्यान बन जायेगी तब तू ईश्वर का सामीप्य पा सकेगा। 'ईश्वर कहाँ है' यह तब तुझे पूछना नहीं पड़ेगा, तू देख पायेगा कि सम्पूर्ण जड़-चेतन संसार एक उसी का रूप है—तू प्रथम उसे अपने अन्तर में देख पायेगा तत्पश्चात् जर्रे-जर्रे में उसी का जलवा देख पायेगा। चाह के अभाव में तू पुस्तकों का पठन-पाठन करके बड़ी-बड़ी बातें ही बनायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

२४२ चोट क्यों ? चाह दो। राह दो।

ऐ प्राणी ! तू सबसे प्यार कर क्योंकि इस संसार प्रांगण में तेरा आगमन इसी हेतु हुआ है। देख, यहाँ तुझे विभिन्न प्रकार के साथी मिलेंगे—गुमराह भी मिलेंगे, हमराह भी मिलेंगे—किन्तु तू किसी को भी न दुतकारना, सबसे

प्यार करना। किसी को गलत मार्ग पर कदम बढ़ाते देखकर, तू उसे हीन न समझना अतः उसके लिये व्यंगात्मक शब्दों का प्रयोग भी न करना, हो सके तो उसे सही रास्ता दिखलाना तथा जीवन का चरम लक्ष्य बतलाना। तेरी सहृदयता उसकी बन्द आँखों को खोल देगी परिणाम वह चैन की जिन्दगी जी सकेगा। अन्यथा वह अनजाने में ही बहक जायेगा तथा जीवन के मर्म से अनभिज्ञ रहकर एक दिन यों ही लौट जायेगा और जब तक रहेगा तब तक कष्ट पाता तथा देता रहेगा।

२४३ एक पेड़ के इतने फल? फल चाहे, रस ले।

ऐ प्राणी! ईश्वर एक है, उस एक ईश्वर के अनेक रूप—जो प्रेम रस से लबालब भरे हैं—तू भक्तों के रूप में देख पाता है। इन भक्तों का सामीप्य बरबस एक ईश्वर की ओर देखने के लिये प्रेरित करता है। उनकी आँखों में ही वह एक दीख पड़ता है अन्यथा प्रत्येक क्षण के साथी (ईश्वर) को भी व्यक्ति समीप नहीं देख पाता। देख, तू भी यदि उन भक्तों का सा जीवन पाना चाहता है तो उनके सामीप्य से तू उस रस को ग्रहण कर जो उन्होंने पाया है। रस की प्राप्ति तुझे उस एक से मिला देगी जो उनका, तेरा तथा सबका है—उसका होकर ही तू आनन्दमग्न रह सकेगा।

२४४ रस का सर नहीं, समुद्र। वह भी दूर नहीं अति समीप।

ऐ प्राणी! तू रसपूर्ण संसार में बैठा है, यहाँ चारों ओर रस ही रस है। यह रस तेरे रोम-रोम में भी समाया हुआ है फिर भी तू उसे नहीं पा रहा है। देख, यह रस सीमित नहीं, अनन्त है, जितना भी खर्च किया जाये यह घटने वाला नहीं किन्तु इसे झुककर ही पाया जा सकता है। अहंकारी इसे कभी नहीं पा सकता क्योंकि अहंकारी की दुनिया स्थूल होती है। "स्थूल आँखों से परे भी कोई दुनिया है" इसे वह नहीं मानता—नहीं मानता, अतः वह रस से भी दूर ही रह जाता है। इस रस को पाने के अधिकारी वे ही हैं जिन्होंने पूर्णतया अहंकार शून्य होकर ईश्वर की शरण ग्रहण की है। उनका जीवन अनुपम होता है और वे ही रस के लहलहाते समुद्र को अपने आगे-पीछे व अन्तर में सर्वत्र देख पाते हैं तथा रस-विभोर हो आनन्द मनाते हैं।

२४५ मन का मल मलाई न जान। भलाई इसी में है। मन कोमल।

ऐ प्राणी! यह मन भोला है, इसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं, इसीलिये यह

(प्रतिफल से अनजान) चक्कर काटता रहता है और अनजाने में ही इधर-उधर की धूल चाटता रहता है। देख, तू इसके प्रत्येक कार्यों को सही जानता हुआ इसके पीछे-पीछे न दौड़ क्योंकि इसमें तेरी भलाई नहीं है। तेरी भलाई इसी में है कि तू शान्त रहकर मन की सही देखभाल कर। यह मन कोमल है, तेरी देखभाल से यह जल्दी ही पिघल जायेगा। इसका मल के पीछे दौड़ना तथा इस तन को दौड़ना दोनों छूट जायेंगे। किन्तु यह सब सम्भव होगा तभी जबकि मन के मैल को तू सुस्वादु व्यञ्जन समझ कर नहीं खाता रहेगा, शान्त होकर मन की देखभाल करेगा।

२४६ स्मृति विषयों की जागी। देने वाले को क्यों भुलाया।

ऐ प्राणी! तू तेरे सम्मुख जितना भी विषयों का पसारा देख पाता है तथा जिन विषयों की स्मृति तेरे रोम-रोम में समायी हुई है—वह सारा का सारा पसारा ईश्वर प्रदत्त है। तुझे इन विषयों की स्मृति खूब है किन्तु देनेवाले का बिल्कुल ध्यान नहीं। देनेवाले को भुलाकर उसकी देन का उपभोग तुझे कैसे खुशी दे सकेगा? देख, ईश्वर को बाद करने से ये विषय विष हैं। केवल विषयों की स्मृति तेरे तन-मन में जहर घोल देगी और तू जीते जी ही मर जायेगा। मौत का कष्ट तो एक बार भुगतना पड़ेगा किन्तु इन विषयों के संग से तू प्रतिपल मौत की पीड़ा का अनुभव करता रहेगा। अतः तू शान्त रहकर विचार कर कि जो कुछ तू सम्मुख देख रहा है, वह कहाँ से आ रहा है? तेरी शान्त दृष्टि 'देने वाले' को तेरे सम्मुख लाकर खड़ा कर देगी और तभी तू उसके प्रति कृतज्ञ बनकर प्रसन्नतापूर्वक जीवन यापन कर सकेगा।

२४७ ना मैं—नाम। मैं ना—नाम। नाम—मम प्राण।

ऐ प्राणी! ईश्वर की स्मृति झुकने का भाव देती है। झुकने वाले (भक्त) के भीतर 'मैं' के लिये स्थान नहीं रह जाता, वह सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर को देख पाता है। उसका यह भाव जब धीरे-धीरे और प्रगाढ़ होता चला जाता है तो वह सर्वथा 'मैं' से विलग हो जाता है। उसमें ईश्वरीय सत्ता का समावेश इतना अधिक हो जाता है कि उसके द्वारा किये गये सभी कार्य ईश्वर जनित लगने लगते हैं, उसमें और ईश्वर में भेद नहीं रह जाता। वह ईश्वर के साथ जीता है तथा ईश्वर उसके साथ से जी जाता है। ऐसा है यह नाम जिसे हृदय में प्रतिष्ठित पाने वाला सब कुछ (झूठी अहंता) खो देता है तथा सब कुछ (ईश्वर का भाव) पा जाता है।

२४८ चरण स्पर्श स्वीच है विराट का ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को सम्मुख देख पाने का सबसे सरल व सीधा रास्ता शरणागति है अर्थात् जो झुकना जानते हैं, ईश्वर को वे ही पा सकते हैं। झुकना (चरण स्पर्श) बहुत बड़ी साधना है। देख, प्रभु के चरणारविन्द में झुकने वाला भक्त अपना अस्तित्व ही भूलने लगता है, प्रभु के भाव उसके हृदय-पटल पर प्रकाशित होने लग जाते हैं। चातुर्दिक बिखरी हुई उसकी वृत्तियाँ सिमटने लगती हैं तथा वे अन्तर्मुखी बन कर प्रत्येक आते-जाते भावों को निहारने लगती हैं, परिणाम हृदय शुद्ध होता जाता है। जैसे-जैसे हृदय शुद्ध होता है वैसे-वैसे विराट प्रभु की सत्ता हृदय पर प्रकाशित होने लगती है। ऐसा है यह चरण स्पर्श जो एक दिन विराट प्रभु को समक्ष (अन्तर में) ला कर खड़ा कर देता है।

२४९ भय क्यों ? मय-प्रेममय। देख—रंग ही बदल जाए, कम्पित क्यों—विस्मित क्यों ?

जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों के साथ मनुष्य का इस धरा पर आगमन होता है इसीलिये वह कदम-कदम पर भयभीत बना रहता है। ऐ प्राणी ! तू ईश्वर (निर्भय) की सन्तान है, अपने पिता से बिछुड़ जाने के कारण तू संस्कारों से बद्ध हो गया है और भय से घिर गया है अन्यथा निर्भय की सन्तान के सम्मुख भय कैसा ? देख, अब भी समय है, तू अब भी चेत जा तथा परम पिता के साथ को जान ले कि तू उससे प्रेम कर पाये। प्रेममय होने से तेरी दुनिया बदल जायेगी, वे भाव जिन्हें अपनाकर तू कदम-कदम पर लड़खड़ाता था, स्वतः पलायन कर जायेंगे। अतः प्रेम की जागृति के लिये तू प्रेम के अवतार सन्त के समीप बैठ। उनके समीप बैठने में तू घबड़ा नहीं और न उन्हें आश्चर्य की दृष्टि से देख। वे सरलता की मूर्ति हैं, उनका सामीप्य तेरे प्रेम को जगा देगा, इतना ही नहीं, तुझे प्रेममय बना देगा।

२५० बजी सो सजी।

ऐ प्राणी ! यह जीवन हृदय तन्त्री के बजने से ही सजता है। जब हृदय वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं तब जीवन में एक नई तरंग पैदा हो जाती है जो सदैव मन मुग्ध करती रहती है। देख, संगीत साधारण नहीं होता—इससे मनुष्य ही नहीं, पशु तक आकृष्ट हो जाते हैं किन्तु जब तक प्राणी इससे अनभिज्ञ है तब तक इस कीमती धन को पाकर भी वह रोता रहता है। कुशल

वादक सद्गुरु हैं। उनकी हृदय वीणा के तार-तार झंकृत हैं। उनकी वाणी के आकर्षण से व्यक्ति यदि उन्हें पहिचान सका तथा जो उन्हें प्राप्त है उस आनन्द का अभिलाषी हो सका तो वह आनन्द पथ का पथिक बन सकेगा। उसके हृदय में आनन्द की तरंगें भी तभी उठ सकेंगी और वह उस आनन्द ध्वनि को भी तभी सुन सकेगा जो अन्तर वीणा पर प्रति मुहूर्त्त प्रतिध्वनित होती रहती है। यह ध्वनि ही उसके जीवन को फूल की तरह खिला देगी, महका देगी और एक दिन आनन्द में मिला देगी।

२५१ पूजा करते न मिला ? जप करते न झुका। बन्दना करते बन्द न हुआ। तो क्या पूजा क्या वन्दना ?

ऐ प्राणी ! तू यदि पूजा करके भी प्रभु को समीप नहीं देख पाता तो यही समझना होगा कि अभी तेरी पूजा शुरू नहीं हुई है। देख, प्रभु का नाम हृदय में श्रद्धा भरने वाला है तथा प्रभु की बन्दना मन में स्थिरता भरने वाली है। जब तक जप और बन्दना के द्वारा श्रद्धा व स्थिरता नहीं आ जाती तब तक पूजा करना सफल नहीं हो पाता क्योंकि पूजा से लाभ श्रद्धा व स्थिरता के पश्चात ही मिल सकता है। स्थिरता एक ईश्वर को सम्मुख लाकर खड़ा कर देती है तथा श्रद्धा उस एक के सम्मुख झुकने को विवश करती है—ऐसी अवस्था में पूजा के भाव स्वतः जागने लगते हैं। अन्यथा पूजा-वन्दना के कार्य व्यक्ति करता रहता है, उनसे नाम की दुनिया भी पा सकता है किन्तु उनको सम्पादित करने से जिन भावों का हृदय में प्रस्फुटन होना चाहिये उनसे दूर ही रह जाता है।

२५२ पाषाण में झरना झरा। हृदय न फटा ?

ऐ प्राणी ! हृदय में प्रेम के बीज अंकुरित होने के अभाव में व्यक्ति सरलता, कोमलता, स्निग्धता आदि अनेक भावों से वंचित रह जाता है और अनेक दुर्गुण उसके भीतर प्रवेश करने लगते हैं, कब काम-क्रोध आदि भावों से वह घिर जाता है—इसे वह जान भी नहीं पाता। दिन-रात इसी में रमण करते रहने के कारण उसका हृदय पत्थर सदृश्य हो जाता है। मनुष्य ऐसा था नहीं, अवस्था ने उसकी ऐसी अवस्था बना डाली। देख, पत्थर में भी झरने बहते देखे जाते हैं किन्तु ईश्वर के प्रतिरूप मनुष्य की आज ऐसी अवस्था हो रही है कि उसके हृदय में प्रेम का प्रवाह नहीं होता। यदि आज भी व्यक्ति होश में आये तथा स्वार्थ का पर्दा चीर पाये तो उसका जीवन ही बदल जाये।

वे भाव जो उसके हृदय में डेरा जमाये हुए हैं, वे स्वतः पलायन कर जायें तथा प्रेम का प्रवाह उसके जीवन में अनवरत होने लगे।

२५३ बिन्दु पर विश्वास। सिन्धु पर अविश्वास।

ऐ प्राणी! व्यक्ति का अस्तित्व उस बिन्दु की तरह है जो अभी दिखता है किन्तु कुछ क्षण बाद सूख जायेगा। व्यक्ति का सहारा भी ऐसा ही है, व्यक्ति का सहारा लेने वाला एक दिन बेसहारा हो जायेगा क्योंकि व्यक्ति भी आज दिखता है किन्तु कल नहीं रहेगा। देख, स्थूल में दिन-रात रमण करने वाला व्यक्ति स्थूल को ही समक्ष देखता है तथा उसी पर विश्वास करता है। स्थूल से परे भी कोई ऐसी शक्ति है जो सम्पूर्ण विश्व का संचालन कर रही है—यह न तो वह देखना चाहता है और न सुनना चाहता है। वह शरीर के साथियों को ही अपना मानता हुआ कष्ट पाता रहता है तथा देता रहता है। अरे पगले! बिन्दु पर विश्वास करके तू दिन व दिन कमजोर होता चला जायेगा अतः तू अपना रास्ता मोड़ और विश्वास की शक्ति के सहारे सिन्धु की खोज कर कि तू प्रत्येक बिन्दु में सिन्धु को देख पाये—तेरी जीवन नौका कभी न डगमगाये।

२५४ करुणा का रोना। इससे क्या होना? करुणा कर, करुणालय।

ऐ प्राणी! जीवन काल में अनेक उतराव-चढ़ाव आते हैं। तू इन (उतराव-चढ़ाव) को दुःख-सुख समझता हुआ तथा अधिकांश में दुःखी रहता हुआ रोता रहता है, जबकि प्रत्येक परिस्थिति में शान्त रहना अति आवश्यक है। छोटी-छोटी बातों में रोने वाला, रोकर कुछ पायेगा नहीं, समय ही व्यर्थ गँवायेगा क्योंकि उसका रोना सुनने वाला यहाँ कोई नहीं है। देख, तू यदि सचमुच दुःखी है तो उसके सामने रो जहाँ तेरे रोने की सुनवाई हो एवं जहाँ तेरा रोना हँसने में परिवर्तित हो जाये। ईश्वर करुणालय है अर्थात् उसके हृदय में करुणा स्थायी रूप से विद्यमान है। वह करुणालय ही करुणा कर सकता है तथा तेरे दुःख का निवारण भी कर सकता है। वह करुण पुकार सुनकर हृदय को स्वच्छ कर देता है परिणाम दृष्टि साफ हो जाती है और निरर्थक रोना बन्द हो जाता है—व्यक्ति देख पाता है कि ईश्वर के सभी कार्य आनन्दवर्द्धन के लिये होते हैं, रोने के लिये नहीं।

२५५ याद—फरियाद। की या फरियाद के लिये याद किया।

याद हृदय का उमड़ता प्यार है जो अकारण ही किसी के लिये, किसी भी

समय आ सकता है और फरियाद ? यह देखने में याद की तरह लगती है किन्तु भाव में भिन्नता रहती है। फरियाद में कारण रहता है, इसमें व्यक्ति याद करने वाले से बहुत कुछ चाहता है। यह चाह धन, जन वैभव आदि विभिन्न रूपों में पाई जाती है। देख, तू ईश्वर को याद कर, फरियाद के लिये ईश्वर को याद न कर क्योंकि ईश्वर तेरी फरियाद सुनकर देने वाला नहीं, वह स्वतः ही तुझे दे रहा है—देना ही उसका काम है। अतः तू उसे याद कर कि तू उसकी देन को देख सके तथा उसकी देन का आनन्द ले सके।

२५६ अच्छा होता—हृदय न होता। हृदय भी मिला—व्याकुलता ज्यों की त्यों ?

ऐ प्राणी ! हृदय रूपी धन प्रत्येक प्राणी को प्राप्त है। देख, हृदय वह अनुपम धन है जिसे व्यक्ति यदि जान पाये तो निहाल हो जाये। किन्तु इस कीमती धन को पाकर भी वह रोता रहता है, छटपटाता रहता है क्योंकि उसने अभी इस धन की कीमत नहीं जानी। वह इसकी उपेक्षा करके अभी स्थूल (धन-जन-वैभव) के पीछे भाग रहा है। देख, स्थूल साधन शरीर को सुख पहुँचा सकते हैं किन्तु हृदय में राहत नहीं दे सकते और जब तक हृदय में राहत नहीं मिलती तब तक जीवन में चैन भी नहीं मिलता। अतः तू हृदय की कीमत कर तथा हमेशा उन्हीं भावों को अपनाकर चल जिनसे दिल में राहत मिले। हृदय रूपी कीमती धन को पाकर भी तू यदि विकल ही बना रहा तो तेरे लिए यही अच्छा होता कि तुझे हृदय ही न मिलता क्योंकि इसे पाकर भी तू आज हृदयहीन बना हुआ है।

२५७ पहचाना कब ? पत्थर में खोजा, मनुष्य में कब खोजा। मनुष्य में अवगुण—वह है निर्गुण। खोज बढ़ी।

ऐ प्राणी ! यों तो ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है किन्तु पत्थर की अपेक्षा मनुष्य में वह सहजता से देखा जा सकता है, किन्तु व्यक्ति ईश्वर को पत्थर (मूर्तियों) में ही खोजता आया है, मनुष्य में नहीं क्योंकि मनुष्य में वह अनेक अवगुण देखता है। जहाँ अवगुण दिखलाई दे वहाँ (गुणों से रहित) ईश्वर विराजमान है—यह उसकी समझ से परे है अतः वह ईश्वर की खोज अन्यत्र करता रहता है। देख, जो सच्चे जिज्ञासु हैं वे ही ईश्वर को देख पाते हैं। उन्हें वे आँखें मिलती हैं जो स्थूल से परे भाव-जगत से जोड़ने वाली हैं। ऐसे जन ही मनुष्य में भागवदीय शक्ति (सन्त) का दर्शन कर पाते हैं तथा उनके सामीप्य

से हृदय के मल को धो पाते हैं। धीरे-धीरे जब उनकी आँखें स्वच्छ हो जाती हैं तब वे जन-जन में भी ईश्वर को देख पाते हैं।

२५८ तुमने खोजा भोग। भगवान कब खोजा। ले भोग, ले भोग।

ऐ प्राणी! तेरी दिन-रात की दौड़ विषय-भोगों की प्राप्ति के लिये है। इनके पीछे दौड़ते-दौड़ते जब शरीर थक जाता है तब भी तेरा मन नहीं थकता, वह निद्रावस्था में भी दौड़ता रहता है। देख, चाह के अनुसार ही राह मिलती है, तेरे चातुर्दिक भी जो विषय-भोगों का साम्राज्य फैला हुआ है, वह तेरी चाह ने ही फैलाया है क्योंकि अभी तुझे भोग ही प्रिय है, भगवान (प्रिय) नहीं। जब तक तुझे भोग प्रिय लगेंगे तब तक तुझे भोग की सामग्रियाँ ही मिलेंगी जिन्हें भोगता हुआ तथा कष्ट पाता हुआ तू भाग्य को कोसता रहेगा। अरे पगले! तेरा भाग्य बुरा नहीं, अभी तेरी दृष्टि बुरी है इसीलिए तू कष्ट पा रहा है। जिस दिन तेरी चाह का रूप बदल जायेगा अर्थात् तू ईश्वर की सत्ता को जानने का इच्छुक होगा उस दिन से तू कष्ट नहीं भोगेगा, तेरा जीवन प्रभु का भोग बन जायेगा और तू आनन्द मनायेगा।

२५९ भोग कर्म का भोग। भोग (कष्ट) को भगवान का भोग समझ, भोग बदल जाय।

ऐ प्राणी! भोग भोगते समय भले लगते हैं किन्तु तन-मन पर इनका असर बहुत बुरा पड़ता है—तन रोगी हो जाता है और मन क्षत-विक्षत हो जाता है। तन-मन की पीड़ा जब असहनीय हो जाती है तब व्यक्ति कराह उठता है और अपनी तकदीर को ही दोषी ठहराने लगता है। देख, तेरी तकदीर खराब नहीं, यदि खराब होती तो तुझे मनुष्य जन्म ही नसीब नहीं होता। मनुष्य जीवन तो श्रेष्ठ जीवन है, अतः तू पूर्व के कर्मों को भूल जा तथा आज प्रभु का बन कर जीवन यापन कर कि प्रत्येक परिस्थिति को तू प्रभु का दिया प्रसाद समझ पाये परिणाम तेरे जीवन का कष्ट खत्म हो जाये। प्रभु का बनने से ही व्यक्ति की दृष्टि साफ होती है, वह देख पाता है कि मां के थप्पड़ में जैसे बच्चे की भलाई छिपी है वैसे ही ईश्वर के प्रत्येक कार्य प्राणी मात्र की भलाई के लिये होते हैं। जो इसे समझ पाते हैं, उनका जीवन प्रभु का प्रसाद (भोग) बन जाता है।

२६० तेल कब स्नेह ? रूप नहीं, रंग नहीं। कष्ट को कष्ट न माना रूपान्तर को ही जीवन जाना।

ऐ प्राणी ! व्यक्ति असीम शक्ति सम्पन्न प्राणी है किन्तु उसकी वह शक्ति फलीभूत तभी होती है जब वह सर्वथा अहंकार शून्य हो जाता है। जब तक उसका अपना अस्तित्व कायम रहता है तब तक वह उस मिली हुई शक्ति का न स्वयं आनन्द ले पाता है और न अन्य ही उससे लाभान्वित हो पाते हैं। देख, तेल पौष्टिक पदार्थ है किन्तु उसकी पौष्टिकता रग-रग में शक्ति तभी भरती है जबकि तेल का रूप, रंग मिट जाता है और वह आग पर तप कर खाद्य पदार्थों में मिल कर एक हो जाता है। व्यक्ति में भी जब निःस्वार्थ प्रेम का आगमन होता है और जब उसमें स्व-सुख की कामना नहीं रह जाती तब उसके अन्तर में भी आनन्द की तरंगों का प्रवाह होने लगता है और वही (प्रवाह) जन-जन में आनन्दवर्द्धन करने वाला होता है।

२६१ फूलों की माला पहनाई। वरमाला हाथ में ही रही। दिल किसी को—माला किसी को। यह उपहास ? कहते उपहार।

ऐ प्राणी ! माला पहनाना वरण करने का प्रतीक है, माला पहनाये किन्तु जिसे पहनाये उसे वरण न कर पाये तो यह माला का उपहास है, इसमें व्यक्ति माला पहनाने वाले को धोखा नहीं दे रहा है, खुद धोखा खा रहा है। ईश्वर के नाम पर व्यक्ति प्रतिदिन यही खेल करता है—वह ईश्वर को माला तो पहनाता है किन्तु उसका हो नहीं पाता क्योंकि ईश्वर को उसने अभी दिल से नहीं चाहा है, दिल उसने उन संगी-साथियों को दे रखा है जिन्हें वह अपना मानता आया है। अभी वह इस राज को भी नहीं जान पाता कि वह माला के रूप में ईश्वर को जो भेंट चढ़ा रहा है, यह भेंट बिना भाव के उपहास मात्र है। देख, ईश्वर को माला पहनाने के पहले तू यह जान ले कि ईश्वर तेरा अपना है—तभी तू माला पहनाने का अधिकारी बनेगा और तभी माला पहनाने का आनन्द भी तू पा सकेगा।

२६२ मनुष्य का शरीर देखा—भगवान न देखा। मनुष्य में शरीर देखा—वाणी सुनी, उसे भगवानमय न देखा।

ऐ प्राणी ! सन्त सत्य की प्रत्यक्ष मूर्ति होते हैं किन्तु सन्त का साथ पाकर भी दृष्टि के अभाव में व्यक्ति उन्हें पहचान नहीं पाता, साधारण मनुष्य

की तरह ही देखता है। कुछ थोड़े से लोग जिन्हें उनसे कुछ अच्छा लगता है, वे भी उनके मुख से कुछ सुन लेते हैं, उनकी वाणी द्वारा समय विशेष के लिये दिल का बोझ हल्का कर लेते हैं किन्तु वे (सन्त) किन भावों से युक्त हैं और कौन सी शक्ति उनके भीतर समाहित है—न उसे देख पाते हैं और न उसके प्रति झुक ही पाते हैं। यदि वे सन्त के सम्मुख नमस्कार, प्रणाम भी करते हैं तो वह (नमस्कार) सम्मुख दिखलाई पड़ने वाले शरीर के लिये होता है, जिस भागवदीय शक्ति से वे युक्त हैं उसके लिये नहीं होता। परिणाम सन्त का साथ पाकर भी व्यक्ति सन्त का साथ नहीं पाता, अतः उनसे वह भाव भी नहीं पा सकता जिसे पाकर वह अभाव-जगत से छुटकारा पा सके एवं उसकी दुनिया भावमयी हो जाये।

२६३ आग से न खेल। आग में हवन कर।

ऐ प्राणी! मनुष्य विचारों का पुतला है, उसके सम्मुख हर क्षण अनेक विचार आते-जाते रहते हैं—यदि वह इसे न जान पाये एवं प्रत्येक उठते-बैठते विचारों के साथ खेलना शुरू कर दे अर्थात् उन विचारों के अनुसार चलने लग जाये तो उसका तन-मन झुलस जायेगा क्योंकि प्रत्येक विचार अपनाने के नहीं होते। देख, विचार अग्नि है, लापरवाही में अग्नि जलाकर खाक कर सकती है किन्तु तटस्थता में उसी अग्नि द्वारा हवन होता है जो बाहर-भीतर के वातावरण को शुद्ध करता है। विचारों पर भी जब तटस्थ रहकर विचार किया जाता है तब जीवन ही सँवर जाता है और व्यक्ति देख पाता है कि जिन्हें वह विकार (काम, क्रोध आदि) कहता आया है, विचार से उनका भी रूप बदल जाता है—व्यक्ति की शान्त दृष्टि से सृष्टि का रूप ही अनुपम बन जाता है।

२६४ यश चाहता है या रस। यश नचाता, रस भिगाता।

ऐ प्राणी! मान सम्मान की भूखी वृत्तियाँ जिस क्षेत्र की ओर बढ़ती हैं उधर ही रस पीना भूल कर यश पाने के लिये विकल हो जाती हैं। देख, यश चाहने वाला रस से दूर ही रह जाता है क्योंकि रस तल्लीनता में पाया जाता है और यश की पिपासा हमेशा उसे बहिर्मुखी बनाये रखती है। यश का भूखा प्राणी रस देखना भूल जाता है और यश की प्राप्ति के लिये ही वह जन-जन का मुँह देखा करता है। उसकी वृत्तियाँ चञ्चल बन जाती हैं और उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता। देख, प्रभु प्रेम का रस शान्त

बनाने वाला है, इसे प्राप्त कर जन्म-जन्मान्तर की भूखी वृत्तियाँ रस से सराबोर होकर शान्त हो जाती हैं और रस पाकर ऐसा कुछ भी नहीं अपना पातीं जो रस विहीन हो। ऐसे में व्यक्ति की दुनिया अन्तर्मुखी हो जाती है और उसके सभी कार्य रस के लिये होते हैं तथा रस के साथ होते हैं।

२६५ देह तक सन्देह। और भीतर गेह।

ऐ प्राणी! तू शरीर नहीं, तू शरीर के भीतर विद्यमान वह अदृश्य शक्ति है जो शरीर को गतिशील करती है, किन्तु तू इससे अनजान शरीर को ही 'मैं' समझ बैठा है तथा पग-पग पर सन्देह से घिर गया है। देख, देह को कर्त्ता मान बैठना अंधेरा है और अंधेरे में सन्देह होना स्वाभाविक है। अतः तू शान्त होकर अवलोकन कर कि "तू कौन है"? जब तेरी अन्तर की यात्रा शुरू होगी तभी तू शान्ति पा सकेगा जैसे बाहर भटकता प्राणी घर में आकर शान्ति (विश्राम) पाता है। विश्वास की शक्ति का जागरण तेरे अन्तर में तभी होगा और उसके सहारे ही तू अन्तर की ओर बढ़ता हुआ स्वयं को जान पायेगा। तेरे जीवन में पूर्ण ठहराव भी तभी आयेगा अन्यथा सन्देह से घिरा तू सदा कष्ट पाता रहेगा।

२६६ नीर बहता। पीर बहती।

ऐ प्राणी! दुःख के आँसू हृदय को गन्दा बनाते हैं और प्रेम के आँसू हृदय की गन्दगी को साफ करते हैं। प्रेम की जागृति के अभाव में हृदय कष्टों का डेरा बन जाता है और अनेक दुःख व्यक्ति को घेर लेते हैं। उनसे कष्ट पाते हुए भी व्यक्ति छुटकारा नहीं पा सकता, छुटकारा पाने की चेष्टा में रत हुआ वह और अधिक उलझता जाता है—उसकी अवस्था दयनीय हो जाती है किन्तु यह सब होता है प्रेम के अभाव में। देख, प्रेम यों तो सबके अन्तर में है किन्तु अन्य भावों का प्राबल्य रहने के कारण वह जल्दी कहीं दिखता नहीं। प्रेम का प्राकट्य रूप कहीं-कहीं दिखता है। ऐसी प्रेम की मूर्त्ति के दर्शन पाकर ही सोया प्रेम जागता है। उनके सम्पर्क से जब प्रेमाश्रु आँखों की शोभा बन जाते हैं तब हृदय की गन्दगी साफ होने लगती है और जीवन से कष्ट विदा हो जाता है—रहता है केवल प्रेम जो प्रतिक्षण जीवन में मधुरिमा भरते हुए प्रिय से मिलाकर एक करता है।

२६७ दर्शन या प्रदर्शन।

ऐ प्राणी! दर्शन और प्रदर्शन दोनों के कार्य बाहर से एक जैसे हो सकते

है किन्तु भीतर के भावों में सर्वथा भिन्नता रहती है। दर्शन से वृत्तियाँ शान्त होती हैं और अन्तरघट तृप्त होता जाता है। ऐसे में हृदय की बेकली खत्म होने लगती है तथा सुमधुर भावों का आगमन हृदय-पटल पर होने लगता है और नम्रता, कोमलता, सहृदयता आदि भावों से जीवन सज जाता है। देख, प्रदर्शन हृदय में उग्रता भरने वाला है। दर्शन में जो भाव स्वाभाविक पाये जाते हैं, प्रदर्शन में व्यक्ति उन्हें पाने का स्वाँग भरता है और प्रत्येक कार्य को बलपूर्वक सम्पादित करने की चेष्टा करता है। इन्द्रियाँ उसे बहिर्मुखी बनाये रखती हैं अतः वह सदा प्रशंसा सुनने का अभिलाषी बना रहता है। दर्शन का इच्छुक दर्शनीय बन जाता है और प्रदर्शन वाला कोरा का कोरा ही रह जाता है—सम्पूर्ण जीवन वह व्यर्थ ही गँवाता है।

२६८ अन्न दे। क्यों कहता है अन्धे ? क्या अन्न, मन, तन, धन, जन नहीं मिला ? अधिक ही धिक।

ऐ प्राणी ! ईश्वर ने तुझे सब तरह से परिपूर्ण बनाया है तथा आज भी तेरी सारी जरूरतें पूरी करता रहता है, फिर भी तू रोता रहता है तथा ईश्वर के सम्मुख कमी के गीत गाता रहता है। देख, ईश्वर ने तुझे जो कुछ दे रखा है तू यदि उससे खुश नहीं है तो और अधिक पाकर भी तू खुश नहीं हो सकेगा, रोता ही रहेगा। अतः तू ईश्वर से कुछ माँग नहीं, तू उससे नाता जोड़ तथा उसके कार्यों की ओर देख कि तू जान पाये कि "जब जैसी जरूरत होती है, वह स्वतः पूरी करता है" परिणाम तू आनन्द में रह पाये। अन्यथा तू लोभ से घिरे रहने के कारण, जो कुछ तुझे प्राप्त है उसे भी सुख से नहीं अपना सकेगा तथा और अधिक की माँग करता हुआ रोता ही रह जायेगा।

२६९ नाभी—न अभी। शरीर—तभी पीर। मन प्रेम में सन। बुद्धि अब शुद्धि ?

ऐ प्राणी ! प्रत्येक श्वाँस नाभी से आता है तथा शरीर को गतिशील करता है किन्तु तू इस रहस्य को अभी तक नहीं जान पाया कि "ये श्वाँस कहाँ से आ रहे हैं तथा इसे परिचालित करने वाला कौन है"। तू शरीर को सम्मुख देख पाता है तथा प्रत्येक कार्य का कर्त्ता इसे ही जानता हुआ कष्ट पाता रहता है—ऐसे में तेरा मन भी इधर-उधर चक्कर काटता रहता है। देख, मन प्रेम का भूखा है, प्रेम की प्राप्ति के लिये ही यह चारों ओर दौड़ा करता है। प्रेम का पिपासु मन यदि प्रेम के प्रतीक (सन्त) को कहीं पा

जाये तथा उनके चरण-कमलों का भँवरा बन रस पान करने में लग जाये तो व्यक्ति का जीवन ही बदल जाये; बुद्धि का भ्रम भी तब समीप नहीं रह जाये। बुद्धि तब शुद्ध होकर सहयोगी बन जाये तथा व्यक्ति यह जान पाये कि प्रत्येक श्वाँस को देने वाला एक ईश्वर है और सम्पूर्ण विश्व उसी एक सत्ता पर टिका हुआ है।

२७० घड़ी कहती—घड़ी का ख्याल है? प्रेम की लड़ी का ख्याल है।

ऐ प्राणी ! घड़ी टिक-टिक करके प्रति सेकेण्ड आगे बढ़ती रहती है तथा प्रत्येक प्राणी को सन्देश देती रहती है कि "जीवन की घड़ी बहुत कीमती है और यह बीतती चली जा रही है, अतः तू इसके प्रति सदा सतर्क रह अन्यथा समय बीत जायेगा फिर पीछे तू पछतायेगा"। देख, इसी संसार में कुछ ऐसे जन भी विद्यमान हैं जिनका जीवन प्रेममय है तथा जिनका प्रत्येक श्वाँस प्रेम के साथ है। उनको सतर्क होना नहीं पड़ता, वे प्रेम से सने हैं अतः समय उनसे सजता है। ऐसे जन का साथ ही समय को कीमती बनाता है अन्यथा समय बहता रहता है और व्यक्ति रोता रहता है। यदि घड़ी (समय) का ख्याल आता भी है तो व्यक्ति कुछ पूजा-पाठ आदि अपना लेता है किन्तु समय का पूरा सदुपयोग नहीं कर पाता जब तक कि प्रेम के जीते-जागते प्रवाह (सन्त) को प्रत्यक्ष नहीं पा जाता।

२७१ रास लीला? लीला आनन्दमयी—जब लाल पीला न हो। नस-नस में रस तभी रास।

ऐ प्राणी ! रास लीला देख कर आँखों को क्षणिक सुख मिल सकता है तथा कुछ समय के लिये मनोविनोद भी हो सकता है किन्तु उससे जीवन में आनन्द नहीं मिलता। जीवन में आनन्द तभी मिलता है जब बात-बात में आँखें क्रोध से लाल-पीली नहीं होतीं। देख, क्रोध जब प्रेम में परिणित हो जाता है, क्रोध की तरह नस-नस में प्रेम रस का प्रवाह शुरू हो जाता है तब रास का आनन्द प्रति मुहूर्त्त अन्तर में ही मिलने लगता है। अतः तू यदि रास देखने का इच्छुक है तो नस-नस में रस का अभिलाषी बन कि तू पूर्णतया प्रेम रस में डूब जाये—तेरा हृदय ही रास भूमि बन जाये।

२७२ मन की कही—मोहित हुआ। हित मन की में नहीं 'स्व' की में।

ऐ प्राणी ! तेरी मनचाही होती रहे—तेरी भलाई इसमें नहीं, तेरी भलाई

इसमें है कि किसी भी तरह से तू 'स्व' का परिचय पा जाये। देख, मनुष्य शरीर धारण करके भी तू यदि 'स्व' का परिचय नहीं पा सका तो तेरी यात्रा अधूरी ही रहेगी क्योंकि तू यहाँ मनमौज की जिन्दगी बिताने नहीं आया, 'स्व' का परिचय पाने के लिये आया है—तेरे आने का एकमात्र उद्देश्य यही है। यहाँ आकर तू कार्य को भूल गया तथा मन के बहकावे में आकर इधर-उधर भटकने लगा। ऐसी अवस्था में यदि कोई दो बातें तेरे मन की कहता है तो तू उसी पर रीझ जाता है। अरे पगले! तू मन के इशारे पर न नाच, मन को तू सही दिशा का बोध करा कि वह होश में आये तथा 'स्व-बोध' में सहायक बन सही मार्ग पर बढ़ता जाये। तेरी सतर्कता से यह सदा तेरा साथ देता रहेगा क्योंकि मन आनन्द का अभिलाषी है और आनन्द 'स्व-साक्षात्कार' में है।

२७३ ठग ठगी। ठगी छूटे।

'किसी को उल्लू बना कर अपना स्वार्थ पूरा करना' समय विशेष के लिये व्यक्ति को प्रसन्नता दे सकता है किन्तु हृदय में स्थायी प्रसन्नता नहीं भर सकता। ऐसे में व्यक्ति का हृदय कलुषित होता चला जाता है और कलुषित भाव उसे भीतर ही भीतर कष्ट देते रहते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति एकान्त के क्षणों में घबड़ा उठता है क्योंकि एकान्त के क्षणों में केवल भीतर के भाव ही सम्मुख रहते हैं। ऐ प्राणी! तू यदि ठगना ही चाहता है तो तेरे अन्तर में बसे ठगी के भावों को ठग अर्थात् तू ठगी के भावों पर विचार कर कि किसी को ठग कर तू क्या पा रहा है? तेरी दृष्टि जब अन्तर की ओर होगी तब तू देख पायेगा कि ठगी से तू (बाहर) स्थूल रूप में अवश्य कुछ पा रहा है किन्तु भीतर कुछ खोता चला जा रहा है। जब तू इस रहस्य को जान जायेगा तब तेरे भाव बदल जायेंगे, तेरा अन्तर-घट शुद्ध होता जायेगा तथा शुद्ध होकर वह तुझे सदा आनन्द देता रहेगा।

२७४ गम न कर। गमन कर। (लक्ष्य की ओर)

ऐ प्राणी! जीवन काल में ऊँच-नीच, उतराव-चढ़ाव आते ही रहते हैं, यदि तू इन्हें प्रधानता दे बैठेगा तो इन्हीं में अटक जायेगा तथा हमेशा कष्टमय जीवन व्यतीत करता रहेगा। देख, यात्रा पर चलने वाला यदि रास्ते की सुविधा-असुविधा को ही प्रधानता दे बैठे तो वह गन्तव्य तक नहीं पहुँच पायेगा और न ही यात्रा का आनन्द ले पायेगा क्योंकि सतर्क रह कर लक्ष्य की ओर

बढ़ने वाला ही गन्तव्य तक पहुँच पाता है तथा आनन्द मनाता है। अतः तू छोटी-छोटी बातों में उलझ कर गम में जीवन की अनमोल घड़ियाँ न खत्म कर, तू जीवन पाने के लक्ष्य को जान तथा तेजी से लक्ष्य की ओर गमन कर। लक्ष्य की ओर बढ़ने का रास्ता तू स्थूल आँखों से देख कर नहीं पा सकेगा, अन्तर की चाह ही तुझे वह पथ दिखलायेगी जिस पर बढ़ता हुआ तू मंजिल तक पहुँच पायेगा।

२७५ सींच सत्य को—सत्य पुरुष प्रस्फुटित हो। अश्रु नहीं—कर्म नहीं। प्रेम कर्म के मर्म से।

ऐ प्राणी! जिसे जिन भावों का दिन-रात ध्यान रहता है, समय पाकर वह उन्हीं भावों को सम्मुख देख पाता है। देख, ईश्वर (सत्य पुरुष) की प्राप्ति के लिये केवल कर्म करना तथा नहीं मिलने पर दुःख मान कर अश्रु बहाना ही यथेष्ट नहीं क्योंकि ईश्वर केवल कर्मों से रीझने वाला नहीं। वह हृदय के भावों से युक्त कर्मों से रीझने वाला है एवं मिलन के लिये तड़पते आँसुओं के सींचन से रीझने वाला है। अतः तू सत्य पुरुष को पाने के लिये कर्म को न अपना, उस भाव को अपना जिससे तू उसे अपना देख पाये तथा प्रत्येक श्वाँस से सत्य को सींच पाये। ऐसे में तू कर्म के मर्म से अवगत हो पायेगा तथा मर्म में ही रम जायेगा अर्थात् मर्म से तेरा प्यार हो जायेगा। सत्य पुरुष भी तेरे अन्तर में तभी प्रस्फुटित होगा अन्यथा असत्य से घिरा और उसी को सत्य जानता हुआ तू अज्ञानता में ही समय बितायेगा।

२७६ देखी प्रीति? सुनी प्रीति? प्रीति की क्या रीति?

ऐ प्राणी! प्रेम रीति नहीं जानता क्योंकि प्रेम बुद्धि का विषय नहीं अतः प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। यह किन्हीं कारणों से नहीं होता, कारणों से होने वाला प्रेम, प्रेम नहीं रहता। देख, तू ने यदि कहीं प्रेम को देखा होगा तो यह अवश्य अनुभव किया होगा कि प्रेम के कार्य अटपटे होते हैं। प्रेम तरीका नहीं जानता—कब, किस समय, कैसा भाव प्रेमी के हृदय में उदय हो जायेगा, इसका पता नहीं। प्रेम की कथाएँ भी कुछ ऐसी ही रहती हैं—उनमें सुना जाता है कि जिनका जीवन प्रेममय रहा है वे कभी नियम के बन्धन में नहीं बँध सके। बन्धन तोड़ कर तो प्रेम का प्रस्फुटन होता है फिर प्रेम बन्धन में कैसे बँधे? अतः तू भी यदि प्रेममय जीवन जीने के सपने देखता है तो प्रेम पगडण्डी पर सोच समझ कर कदम बढ़ाना क्योंकि इस पर

कदम रखने से रीति नीति छूट जायेगी और तू अपना आपा खो बैठेगा क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है।

२७७ क्रोध किस पर ? प्यार जिस पर। यों वृथा, क्यों व्यथा ?

ऐ प्राणी ! सब पर क्रोध करना उचित नहीं, क्रोध केवल प्रेमी के लिये ही ठीक है। देख, प्रेमी प्रिय के क्रोध की कीमत करेगा तथा उन भावों से सदा दूर रहने की इच्छा रक्खेगा जो प्रिय को नहीं सुहाते, किन्तु अन्य के लिये यह बात नहीं। अन्य जन केवल अनुकूल बातें सुनना पसन्द करते हैं, मन के प्रतिकूल बातें चाहें वे भले के लिये ही कही गई हों, सुनना पसन्द नहीं करते। ऐसे में क्रोध करना बेकार हो जाता है और क्रोध की प्रतिक्रिया स्वयं पर आती है अर्थात् मन दुःखित हो जाता है। अतः तू सब पर क्रोध न कर, यदि करे तो केवल उस पर कर जो तेरी भावना की कद्र करता है कि तू जान पाये कि क्रोध भी बुरा नहीं। अन्यथा तू क्रोध का दुरुपयोग करता रहेगा तथा क्रोध को ही दोषी ठहराता रहेगा।

२७८ संयोगवश संयोग। चक्रवत यह योग।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर कुछ-कुछ कार्य (पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, भजन-कीर्त्तन आदि) सभी प्राणी करते हैं किन्तु भाव की जागृति किसी-किसी में ही देखी जाती है। यह जागृति उनमें होती है जो संयोगवश सन्त का साथ पा जाते हैं तथा उन्हें पहचान कर उनके प्रति समर्पित हो पाते हैं। उनके हृदय की समर्पण की भावना उन्हें उन भावों से युक्त कर देती है जो सन्त के हृदय में प्रतिष्ठित हैं। ऐसी स्थिति में बड़ी से बड़ी रुकावटें (प्रलोभन) भी उन्हें रोक नहीं पातीं क्योंकि उनके सम्मुख वह भाव है जो अद्वितीय है। वे अन्य सभी कार्य करते हुए भी चक्रवत ईश्वर-मिलन के भावों से घिर जाते हैं और तब तक घिरे रहते हैं जब तक उससे मिल कर एक नहीं हो जाते। उनके जीवन में एक दिन ऐसा आता है कि उनकी अलग स्थिति ही नहीं रह जाती, रह जाता है वह एक जो सबका है।

२७९ चित्त ऐसा तौल—सुख दुःख सम हो जाये।

सभी कार्यों का कर्त्ता एक ईश्वर है। उसके सभी कार्य प्राणी मात्र की भलाई के लिये होते हैं किन्तु उनमें जो मन के अनुकूल होते हैं व्यक्ति उन्हें सुख कहता है तथा जो मन के प्रतिकूल होते हैं उन्हें दुःख कहता है। ऐ प्राणी !

चित्त की अस्थिरता से तेरी ऐसी स्थिति हो रही है कि तू किसी भी वस्तु या भाव विशेष का पूर्ण आनन्द नहीं ले पाता। अतः चित्त में स्थिरता पाने के लिये तू हृदय में उस छबि को धारण कर जिसके आगमन मात्र से चित्त की अस्थिरता खत्म हो जाये और तू प्रत्येक कार्यों को ईश्वर प्रदत्त समझता हुआ सम भाव से देख पाये अर्थात् सुख-दुःख दोनों तेरे लिये सम हो जायें। जब तक उस देने वाले की ओर तू उन्मुख नहीं होगा तब तक एक मिनट भी चैन से नहीं रह सकेगा, भाग्य को कोसता हुआ दुःख-सुख के गीत गाता रहेगा तथा रोते-रोते ही तेरी जिन्दगी गुजर जायेगी।

२८० ओ मेरी सूरत देखने वाले, मुझे देख। ओ कीर्त्ति गाने वाले, गा, ऐसा गा कि रत मुझी में।

ऐ प्राणी! सन्त के समीप जाकर भी प्राणी यदि सन्त के शरीर को ही देखने लगे, उनके भाव को न देख पाये तो सन्त का सम्पर्क पाकर भी वह सन्त से नहीं मिल पायेगा क्योंकि सन्त भाव की मूर्त्ति का नाम है। देख, तूने यदि सन्त का साथ पाया है तो तू उनके समीप बैठ कर वह भाव ग्रहण कर जो उन्होंने पाया है। भाव पाकर ही तू सन्त को देख सकेगा अन्यथा तू केवल उनकी लीला (कार्यों) के गीत गाता रहेगा। लीला के गीत गाने से तेरे हृदय की जलन कभी नहीं मिट पायेगी, तू सदा अभाव में जलता रहेगा। अतः तू भाव के गीत गा कि तेरे हृदय की जलन मिट जाये और तू भाव में लीन हो पाये।

२८१ सदा दास, कब उल्लास?

ऐ प्राणी! अन्य पर आश्रित रहने वाला कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। देख, तू अपनी शक्ति को भूल कर जन-जन पर आश्रित बन गया है और जरा-जरा सी बात के लिये अन्य का मुख देखा करता है। ऐसे में तू उल्लसित नहीं रह सकेगा क्योंकि तुझे मिले हुए तेरे संगी-साथी तथा धन-जन कोई भी स्थायी रहने वाले नहीं। वे मिट्टी में मिलने वाले हैं अतः उनकी दासता तुझे भी एक दिन मिट्टी में मिला देगी। उनका साथ लेकर तू आज भी प्रसन्न नहीं रह सकेगा और कल (भविष्य में) भी प्रसन्न नहीं हो पायेगा। अतः तू यदि जीवन में उल्लास देखना चाहता है तो तू व्यक्ति वस्तु के आधीन न हो, उस अज्ञात शक्ति के आधीन हो जो सदा सर्वदा तेरे साथ है। उसका बनकर

तू देख पायेगा कि आज तक तू जिनके आधीन रहा है वे सब उसी के रूप हैं, उसके बिना यह भ्रम जाल है जिसमें सभी तुझे अपने से लगते हैं।

२८२ सदा दास, रहे पास। कर विलास, नहीं विनाश।

ऐ प्राणी ! जो शक्ति अज्ञात रह कर तुझे गति दे रही है, यदि तू उसे जानने की इच्छा रखता है तो तू अहंकार-शून्य हो जा कि तू उसे (ईश्वर को) सदा साथ देख पाये एवं सभी कार्यों का कर्त्ता भी तू उसे ही जान पाये। ऐसे में दुःख, चिन्ता आदि भाव तेरे पास नहीं फटक पायेंगे और तू निश्चिन्त रह कर उसकी सृष्टि में मौज मनायेगा क्योंकि तेरे सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है। उसकी दुनिया तेरे सम्मुख जितनी फैलती जायेगी उतना ही तेरे जीवन का अन्धकार खत्म हो जायेगा और एक दिन ऐसा भी आयेगा जब केवल वही सम्मुख रह जायेगा अर्थात् तू सर्वथा अहंकार-शून्य हो जायेगा। ऐसी स्थिति को जिस दिन तू पा जायेगा उस दिन तू कभी नहीं मिट पायेगा क्योंकि तूने शरीर रहते वह भाव पा लिया है जो अविनाशी है।

२८३ पत्थर को क्या नमस्कार करता है ? मनुष्य को कर अहंकार दूर हो ?

मनुष्य संस्कार बद्ध प्राणी है। वह अनेक संस्कारों को लेकर पैदा हुआ है और कुछ नवीन संस्कारों से यहाँ आकर जुड़ता चला जा रहा है। मूर्त्ति पूजा के संस्कार भी उसमें विद्यमान हैं, इसीलिये वह मूर्त्ति के सम्मुख प्रतिदिन नमस्कार करता है किन्तु नमस्कार करके भी वह अहंकार शून्य नहीं हो पाता जबकि झुकना अहंकार शून्यता का प्रतीक है। देख, मूर्त्ति ईश्वर की प्रतीक है, ईश्वर नहीं। उसे ईश्वरीय भाव से प्रणाम करके व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार भाव लेता है किन्तु मूर्त्ति के सम्मुख बैठना उसके हृदय में नवीन भावों का सृजन नहीं करता। नवीन भावों के सृजन के लिये अर्थात् अहंकार शून्यता के लिये जीती-जागती मूर्त्ति (सन्त) सम्मुख चाहिये, जिसके सम्मुख बैठकर भाव बदलने लगें और अन्तर के प्रत्येक भाव प्रत्यक्ष दिखने लगें। ऐसे में ही व्यक्ति नमस्कार का पूरा आनन्द ले पाता है, उसका जीवन सज जाता है एवं जीवन पाने का वह रस ले पाता है।

२८४ मैं लजाऊँ तेरे लिये। कब बँधी। जो छूटने का नाम नहीं लेती। पत्नी नहीं, पतन-ई है।

ऐ प्राणी ! पति-पत्नी का सम्बन्ध एक दूसरे के सहारे के लिये होता है—

एक यदि किन्हीं कारणों में उलझ जाये तो दूसरा ज्ञात-अज्ञात से उसे सहारा देकर उसकी उलझन को सुलझा दे, किन्तु ऐसा होता नहीं। वे परस्पर मोह के बन्धन में बँध जाते हैं। परिणाम समस्याएँ सुलझने के बजाय और अधिक उलझती चली जाती हैं क्योंकि मोह अन्धा होता है। इसे अपनाकर व्यक्ति सही देखने की क्षमता खो बैठता है। देख, प्राणी जब सत्य भाव के लिये अग्रसर होता है तब भी वह इसी बन्धन के कारण सत्य-पथ पर नहीं बढ़ पाता, इस बन्धन में ही अन्तर से उलझा रहता है। अन्य बन्धनों से तो वह अलग हो भी जाता है किन्तु इससे अलग होने की सामर्थ्य उसमें नहीं पाई जाती। देख, पत्नी का यह रूप पतन की ओर ले जाने वाला है, अतः तू पति-पत्नी के सही रूप को जान कि तू बन्धन में न बँध पाये, इस सम्बन्ध को प्रिय की सौगात जान मंजिल की ओर बढ़ पाये।

२८५ प्रेम को लजाते—क्या, मजा आया ?

ऐ प्राणी ! प्रेम हृदय की विशालता है। प्रेम का सामीप्य पाकर भी यदि व्यक्ति हृदय की संकीर्णता को न छोड़े, अपने पुराने ढर्रे पर ही चलता रहे अर्थात् मैं-मेरे को अपनाकर छोटी-छोटी बातों पर रीझता व खीझता रहे तो वह प्रेम विशालता का आनन्द नहीं ले पायेगा। देख, प्रेम रूपी अनुपम धन सन्त की कृपा से मिलता है। तू संयोग से यदि प्रेम कहीं पा जाये तो सदा उसे सहेज कर रखना। प्रिय के चरणों का ध्यान ही इसे सहेजने का तरीका है। यदि उन चरणों को छोड़कर तेरा ध्यान इधर-उधर बिखर जायेगा तो तू प्रेमधन को पाकर भी निर्धन ही बना रहेगा। ऐसे में तुझे मिला हुआ प्रेम भी लजायेगा तथा जहाँ बैठकर तूने प्रेम पाया है वह प्रेम का अवतार (सन्त) भी लजायेगा। सन्त के सामीप्य का आनन्द तब तू नहीं ले पायेगा, केवल उनकी बातें सुन पायेगा किन्तु भाव के बिना आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

२८६ ओ, असीम—बना भीम।

जो शक्ति इस शरीर को चला रही है वह असीम है। व्यक्ति उस असीम शक्ति का स्वामी है किन्तु वह शरीर को सम्मुख देखता है अतः उसे भुलाकर शरीर को ही शक्तिशाली बनाने में लगा है। ऐ प्राणी ! असीम को भुलाकर तू कभी बली नहीं बन सकेगा। देख, तू यदि बलि बनना चाहता है तो तू उस शक्ति के सम्मुख झुक जा जो तेरे अन्तर में निहित है तथा हृदय से

प्रार्थना कर कि—"ओ असीम ! तुझसे एक रहकर भी मैं तुझसे बिछुड़ा हुआ हूँ इसीलिये कमजोर हो गया हूँ, तेरा साथ पाकर ही मैं पुनः शक्ति सम्पन्न हो सकूँगा। अतः तू मुझे वह भाव दे कि मैं तुझे पहचान पाऊँ और तुझसे युक्त होकर शक्ति-सम्पन्न बन जाऊँ—तभी मैं तेरा कहलाने के योग्य बन सकूँगा अन्यथा तेरा होकर भी मैं कमजोर भावों से घिरा रोते-रोते ही जिन्दगी के क्षण गुजार दूँगा।" देख, सच्चे हृदय से की गई तेरी प्रार्थना अवश्य सुनी जायेगी और तू वह भाव पा सकेगा जिसे पाकर तू शक्ति-सम्पन्न हो जायेगा।

२८७ तलवा चाटने वाला भी वार करता है किन्तु पहचानता कहाँ ?

ऐ प्राणी ! स्वार्थ से घिरा हुआ प्राणी जो भी कार्य करता है वह स्वार्थ की पूर्त्ति के लिये करता है। अनेक बार अनेक लोगों को स्वार्थ के वशीभूत होकर तलवा चाटते देखा जाता है—उनका यह तलवा चाटना प्रेम नहीं, प्रेम का नाटक है। ऐसे लोग स्वार्थ सिद्धि के लिये कुछ भी कर सकते हैं। देख, ऐसे लोगों के बहकावे में तू कभी न आना क्योंकि उनका साथ तुझे भ्रमित कर देगा। साथ उन्हीं का अच्छा होता है जिनके सम्पर्क से सद्भाव जाग्रत हो—जिनसे अभाव बढ़े, वह साथ त्याज्य है। अतः साथ की पहिचान तू अन्तर की तृप्ति से कर, कान में पड़ने वाले मृदु शब्दों से नहीं कि तू सही साथ पा सके तथा उसका प्रतिफल शान्ति, सन्तोष आदि पाकर सही राह पर बढ़ सके, अन्यथा तू गुमराह हो जायेगा तथा सदा कष्ट पाता रहेगा।

२८८ क्षुद्र वृति, शुद्ध कब ?

ऐ प्राणी ! जीवन में शुद्धता कार्यों से नहीं आती, शुद्ध भावों से आती है। जब तक भाव-विचार शुद्ध नहीं हो जाते, तब तक शरीर को कितना भी शुद्ध कर लिया जाये—गंगा में स्नान कर लिया जाये, तीर्थों में भ्रमण कर लिया जाये, व्रत-उपवास कर लिया जाये—तब भी हृदय-परिवर्तन नहीं हो पाता। देख, शुद्ध होने के लिये क्षुद्र नीति त्यागनी पड़ती है। क्षुद्र नीति जीवन में संकीर्णता लाती है और जब तक संकीर्णता है तब तक विशालता के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। शुद्धता विशालता है। अतः तू सचमुच शुद्धता चाहता है तो क्षुद्र वृत्ति का घेरा तोड़कर प्रभु की शरण ग्रहण कर। आनन्द कन्द प्रभु की दुनिया में बैठने से तेरा हृदय स्वतः शुद्ध होता चला जायेगा और तू आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत कर पायेगा।

२८९ क्यों चिल्लाता, जब चित्त नहीं लाता ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर केवल मुख की आवाज सुनने वाला नहीं, उसे हृदय का भाव भी चाहिये। देख, हृदय में स्थान दिये विना ईश्वर का नाम ले-लेकर कितनी ही जोर से ईश्वर को पुकारा जाये, तब भी वह आवाज कार्य नहीं करेगी—उस आवाज से ईश्वर को सम्मुख नहीं देखा जा सकेगा। अतः ईश्वर का नाम लेने के पहले "ईश्वर है या नहीं" तू इसे जान ले। लोगों के द्वारा सुनी-सुनाई बातों के आधार पर तू इसे न स्वीकारना अन्यथा ईश्वर से तू सदा दूर रह जायेगा। जब ईश्वर को जानने के लिये तेरे अन्तर में सच्ची चाह होगी तब तू उसकी छवि को चित्त पर अंकित देख पायेगा तथा उसी में समाहित हुआ आनन्द मनायेगा। अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर कुछ प्रदर्शन के कार्य अपना लेगा किन्तु यथार्थ में ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

२९० कौन रही ? कौन सही ?

ऐ प्राणी ! आँखों से दिखलाई पड़ने वाली कोई भी चीज (वस्तु, व्यक्ति, धन-जन आदि) स्थायी नहीं, इन्हें आज तक कोई भी नहीं पकड़ सका है। यहाँ सब खाली हाथ आये हैं, ये साधन व्यक्ति को यहीं प्राप्त हुए हैं और यहीं रह जाने वाले हैं। रहने वाली (स्थायी) वह सत्ता है जिस पर यह सम्पूर्ण विश्व टिका है—साथ वही रहने वाली है। अतः तू जाने वाले के पीछे न पड़, सदा साथ रहने वाले को पकड़, तभी तू आज भी मौज से रह सकेगा तथा मौज के साथ ही यहाँ से लौट कर जा सकेगा अन्यथा वस्तु-व्यक्ति के पीछे परेशान बना तू पग-पग पर ठोकर खाता रहेगा। ऐसी अवस्था में तू आज भी कष्ट पाता रहेगा तथा कष्ट लिये हुए ही तेरी जीवन-यात्रा पूर्ण हो जायेगी।

२९१ अमर को स्मर। अमर नाम, अमर काम। मर यदि नहीं जाने कौन अमर ?

ऐ प्राणी ! स्थूल वस्तु-व्यक्ति एक दिन मिट जायेंगे किन्तु इन्हें गति देने वाली शक्ति कभी नहीं मिटेगी क्योंकि वह शक्ति अमर है। सम्पूर्ण विश्व का संचालन उसी शक्ति के द्वारा हो रहा है अतः तू अमर रहने वाली उस सत्ता का स्मरण कर। देख, अमर का साथ पाकर तू स्थूल (मरने वाले व्यक्ति-वस्तु आदि) से ऊपर उठ जायेगा तथा तेरी अहंता व ममता अमर के प्रति समर्पित हो जायेगी। अमर का स्मरण यदि तेरे प्राणों में बस गया तो तू अमर हो

जायेगा तथा जिन भाव-युक्त कार्यों से तूने अमर को पाया है, तेरे वे काम भी अमर हो जायेंगे—लोग उन कार्यों (भावों) के द्वारा अमर तक पहुँचना चाहेंगे। यदि अमर को भुलाकर तू दिन-रात स्थूल जगत के पीछे भागता रहेगा तो दौड़ते-दौड़ते थक जायेगा फिर भी इन्हें स्थायी रूप से नहीं पा सकेगा और इनके लिये सदा चिन्तित व परेशान बना हुआ एक दिन मृत्यु-मुख में समा जायेगा। अतः तू विचार कर कि "कौन रहने वाला है तथा कौन जाने वाला है" और सदा रहने वाले का स्मरण कर कि तू भी याद किया जाये।

२९२ गुण में ऐंठ ? तो सीधा कब ?

मनुष्य ईश्वर की विशिष्ट कृति है, यदि मनुष्य में कुछ विशिष्टता दिखलाई देती है तो यह मनुष्य की विशेषता नहीं, उस ईश्वर की है जिसने उसे बनाया है। अतः ऐ प्राणी ! तू यदि ईश्वर को ऐसे न भी देख पाता हो तो स्वयं में जो कुछ गुण देख पाता है उनमें तो ईश्वर को देख। देख, गुण पाकर तू ऐंठ नहीं, तू सरलता धारण कर तथा उस देने वाले के प्रति कृतज्ञ बन जिसने तुझे इतना सुन्दर बनाया है अन्यथा ऐंठ तुझे अहंकारी बना देगी। अहंकार विनाशक है, अहंकार में फूला हुआ व्यक्ति भीतर ही भीतर खोखला होता जाता है तथा एक दिन ऐसा आता है जब उसका विध्वंश हो जाता है और उसे प्राप्त सारे गुण मटियामेट हो जाते हैं। अतः तू सरलता धारण कर तथा मिले हुए गुणों को सहेजता हुआ ईश्वर के प्रति कृतज्ञ बन कि तू रूप के अनुरूप हो पाये अर्थात् तुझे देख कर ऐसा आभास मिले कि तू ईश्वर की अनूठी कृति है।

२९३ रस्सी नहीं रास, जो मुख में नहीं हृदय में हो।

ऐ प्राणी ! केवल मुख से लिया हुआ ईश्वर का नाम काम बन जाता है और जैसे अन्य कार्यों में व्यक्ति बँधा रहता है वैसे ही इस काम से भी बँध जाता है। देख, ईश्वर का नाम काम बढ़ाने वाला नहीं, वह काम का बोझ हल्का करने वाला एवं हृदय में सरसता भरने वाला है किन्तु तब, जबकि वह केवल मुख से नहीं हृदय से लिया गया हो। हृदय से नाम प्यार की जागृति के पश्चात आता है और प्यार अपनेपन के आगमन से आता है। अतः तू उनके समीप बैठ जो ईश्वर को अपना जानते हैं। उनके समीप बैठकर शायद तू भी उसे अपना देख पाये तथा तेरा हृदय प्रेम रस से सराबोर हो जाये। ऐसी स्थिति पाने से रास की तुझे कल्पना नहीं करनी पड़ेगी, तू प्रति मुहूर्त्त आनन्द में विचरण करता रहेगा और तेरा हृदय रास भूमि बन जायेगा।

२९४ गाते-गाते रोने लगा। गोता लगा रोना धोना भी न रहा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का गीत क्षणिक सुख देने वाला नहीं, जीवन में आनन्द भरने वाला है किन्तु जिन्होंने ईश्वर के नाम को क्षणिक सुख का साधन बना लिया है वे ईश्वर के गीत भी गाते रहते हैं तथा अभाव से घिरे रहने के कारण रोते भी रहते हैं। देख, अभी तूने ईश्वर की महिमा नहीं जानी है, केवल दूर से ही ईश्वर के गीत गाये हैं। जिस दिन तू स्वयं को भूल कर गीत में डूब जायेगा उस दिन से तू गीतों का आनन्द पायेगा। उस दिन तू देख पायेगा कि ईश्वर ने आनन्द के लिये ही सृष्टि का सृजन किया है—वह सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में व्याप्त है। ईश्वर को भूल जाने के कारण ही तेरे सम्मुख अभाव की सृष्टि खड़ी है जिसके कारण तू रोता रहता है अन्यथा इस भाव जगत में अभाव का कहीं नाम लेश भी नहीं है—जब तू यह जान पायेगा तो तेरी दुनिया आनन्द से भर जायेगी एवं रोना धोना सदा के लिये विदा हो हो जायेगा।

२९५ बड़ी आँखें किस काम की, जब बड़े को न देखा।

आँखें प्रभु-दर्शन से ही सजती हैं। जब तक अदृश्य प्रभु की मनोहर मूर्त्ति आँखों में नहीं बस जाती तब तक आँखें पाकर भी व्यक्ति अन्धा रहता है, किसी भी दृश्य का सही अवलोकन नहीं कर पाता। प्रभु-दर्शन आँखों में नयी रोशनी दे देता है। जीवन तथा जगत का सही रूप भी व्यक्ति तभी देख पाता है अन्यथा बड़ी-बड़ी आँखें शरीर की सुन्दरता बढ़ा सकती हैं किन्तु हृदय को उल्लसित नहीं कर सकतीं और जब तक हृदय में उल्लास नहीं तब तक व्यक्ति केवल शरीर का बोझ ढोता है। ऐसे में ये आँखें भी उसे कोई लाभ नहीं पहुँचा पातीं, जो उसे आनन्द वर्द्धन के लिये मिली थीं। अतः ऐ प्राणी ! जीवन तथा जगत से आनन्द पाने के लिये तू उस बड़े को देख जो सम्पूर्ण विश्व में आच्छादित है कि तेरी आँखें सफल हों तथा तेरा रोम-रोम हर्षित हो जाये।

२९६ बड़ी रातें किस काम की, जब वह ध्यान में न आया।

ऐ प्राणी ! जिन भावों के साथ व्यक्ति जीता है, रात्रि में भी वे भाव उसके साथ रहते हैं। देख, जो प्रिय (ईश्वर) के स्मरण के साथ जीते हैं वे प्रत्येक कार्य का कर्त्ता ईश्वर को देख पाते हैं अतः आनन्द निमग्न हो प्रेम की नींद

सोते हैं। ऐसे जन प्रातःकाल प्रसन्नबदन उठते हैं तथा प्रत्येक कार्य को प्रसन्नचित्त से सम्पादित करते हैं। ईश्वर की स्मृति उनके रात-दिन को सजा देती है—प्रत्येक रात्रि उन्हें पूर्ण विश्राम देती हुई उनके तन-मन में स्फूर्ति भर देती है। दूसरी ओर जो ईश्वर से विमुख प्राणी हैं वे स्वयं को कर्त्ता जानने के कारण 'मैं' से घिर जाते हैं अतः दिन तो किसी प्रकार भाग-दौड़ कर काट लेते हैं किन्तु रात्रि का शान्त वातावरण उनके लिये काल के समान दुःखदायी होता है। उस शान्त वातावरण में अन्तर के कष्टपूर्ण भाव (दुःख चिन्ता आदि) उनके सम्मुख छा जाते हैं, परिणाम वे चैन से नहीं सो पाते, केवल करवटें बदलते रहते हैं। देख, बड़ी रात्रि विश्राम के लिये होती है किन्तु इसमें विश्राम उन्हें ही मिलता है जो बड़े को जानते हैं—बड़े को भुलाकर जो स्वयं ही बड़प्पन का बोझ ढोते हैं, वे न दिन में सुख से रह पाते हैं और न रात में चैन से सो सकते हैं। अतः तू उस बड़े को जान जिसका साया तुझ पर फैला हुआ है कि तू निश्चिन्त हो पाँव फैला कर सुख की नींद सो सके।

२९७ विश्वास नहीं तो विष बास।

ऐ प्राणी! शरीर के लिये केवल श्वाँस जरूरी नहीं, विश्वास भी जरूरी है। श्वाँस शरीर में गति देता है किन्तु विश्वास मन-प्राणों में गति देता है। यदि मन-प्राणों में गति न हो तो शरीर पाकर भी प्राणी मृतक के समान रहता है। देख, विश्वास के बिना व्यक्ति जहाँ भी रहता है, वह स्थान उसे काटने दौड़ता है, जैसे भी लोग उसे मिलते हैं, वे (लोग) उसे कष्ट देते रहते हैं अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति उसे विपरीत सी मालूम होती है—परिणाम जहर खाये व्यक्ति की तरह उसका दिल तड़पता रहता है। किन्तु यह रहस्य तब तक उसके सम्मुख रहस्य ही बना रहता है जब तक कि वह विश्वास नहीं पा जाता। विश्वास का जागरण साधारण से प्राणी को अनुपम शक्ति सम्पन्न बना देता है। कमजोर भाव विश्वासी के समीप नहीं आ पाते, यदि कभी भूले-भटके आ भी जाते हैं तो ठहर नहीं पाते क्योंकि उसके प्रत्येक कार्य विश्वास के साथ रहते हैं। ऐसा है यह विश्वास जिसे अपनाकर जिन्दगी ही सँवर जाती है।

२९८ श्वास निरर्थक, यदि नहीं विश्वास।

ऐ प्राणी! विश्वास के बिना जीवन पाना बेकार हो जाता है। ऐसा जीवन उस मूर्त्ति की तरह होता है जो देखने में सजी-धजी अति सुन्दर लगती

है किन्तु बेजान रहती है—कीमती श्वाँस ऐसे में निरर्थक हो जाते हैं। देख, तुझे मिले हुए ये श्वाँस गिनती के हैं, ये देखते-देखते ही खत्म हो जायेंगे अतः तू विश्वास पा ले कि श्वाँसों का सदुपयोग कर पाये, तेरा एक श्वाँस भी बेकार न जाये। विश्वास पाकर तू उस धन का धनी बन जायेगा जिसे पाने के लिये तू जन्म-जन्मान्तरों से तरस रहा है—ऐसे में शान्ति व तृप्ति तेरी सहचरी होगी और प्रत्येक श्वाँस तू विश्वास के साथ जी सकेगा। अन्यथा ये श्वाँस चलते रहेंगे किन्तु तू विश्वास के अभाव में इनसे लाभ नहीं उठा सकेगा और अधूरी आकांक्षा लिये हुए एक दिन संसार से कूच कर जायेगा।

२९९ विश्व निरर्थक, यदि नहीं विश्वास।

ऐ प्राणी! यह संसार एक रमणीय बगीचा है, इस बगीचे में सभी प्राणी मौज के लिये आते हैं किन्तु बगीचे का आनन्द वे ही ले पाते हैं जो प्रसन्नवदन हो बगीचे में घूमते हैं। देख, बगीचे में आकर भी तू हर समय रो रहा है एवं बगीचे के आनन्द की ओर नहीं देख पा रहा है क्योंकि तू प्रसन्न नहीं! प्रसन्नता विश्वासी के समीप रहती है। विश्वास के अभाव में क्षणिक प्रसन्नता मिल सकती है, स्थायी नहीं। अतः स्थायी प्रसन्नता पाने के लिये तू विश्वास ग्रहण कर कि तू प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रह पाये, तेरा विश्व हरी-भरी बगिया बन जाये। अन्यथा तू हमेशा अभाव में पलता रहेगा तथा तुझे चारों ओर अभाव ही अभाव नजर आयेगा क्योंकि जैसी दृष्टि रहती है सृष्टि भी वैसी ही रहती है।

३०० भक्त आये, वखत न आया। प्रिय को न लुभाया, फिर क्यों आया, क्या पाया?

ऐ प्राणी! भक्त की दुनिया हरी-भरी रहती है। देख, तू यदि ऐसे भक्त का साथ कहीं पा जाये, जिनकी दुनिया हरी-भरी है तो तू उनसे पूरा लाभ उठाना। यदि सौभाग्य से मिला हुआ ऐसा शुभ अवसर तेरे हाथ से निकल जायेगा तो तेरे जीवन में हरियाली पाने का अवसर फिर नहीं आयेगा। देख, ये धन-जन साधन हैं, ये शरीर को केवल सुख-सुविधा दे सकते हैं, जीवन में हरियाली नहीं भर सकते। जीवन में हरियाली भक्तों के साथ से ही आ सकती है क्योंकि वे हरे-भरे हैं तथा उनकी दुनिया हरि के साथ है। अतः उनके साथ से तू भी हरि का परिचय पा ले तथा हरि से प्रेम बढ़ा ले कि तेरा जीवन सज जाये। अन्यथा हरि के अभाव में तुझे हरियाली के दर्शन दुर्लभ होंगे, तुझे

चारों तरफ काँटे ही काँटे नजर आयेंगे और उन्हीं में उलझा हुआ तू रोता-गाता ही रह जायेगा।

३०१ खोल दरवाजा, दर-दर न भटक।

ऐ प्राणी! तू अनन्त शक्ति का स्वामी है, वह शक्ति सदा तेरे साथ है किन्तु तू अपनी उस अनन्त शक्ति को भूल बैठा तथा अपने शरीर की ओर ही देखने लगा। खुद को भुलाने के कारण तू कमजोर हो गया है तथा दर-दर भटक रहा है। तुझे कभी किसी का सहारा लेना पड़ता है, कभी किसी का सहारा लेना पड़ता है किन्तु अनेकों का सहारा लेने के पश्चात् भी तू असहाय बना हुआ है। देख, तू सहारे के लिये दर-दर न भटक, तू अपने रूप को पहचान कि तेरे अन्तर के बन्द दरवाजे खुलने लग जायें और तू अपनी शक्ति को सम्मुख देख पाये। जब तक तू बाहर की ओर देखता रहेगा तब तक अनन्त धन का स्वामी होते हुए भी जन-जन का मोहताज बना रहेगा। अतः तू वह साथ ग्रहण कर जिससे तू अन्तर की ओर देख सके, तेरे अन्तर घट का दरवाजा खुल जाये और तू अपने सच्चे साथी को देख पाये जो सदा तेरे साथ है तथा जिसके साथ से ही तू शक्ति-सम्पन्न है।

३०२ अब तक भोग के लिये मतवाला था। मत वाला कब था। भगवान के लिये मतवाला कब था?

ऐ प्राणी! भोग की लालसा वस्तु-व्यक्ति, धन-जन आदि में लपटाती है। ये धन-जन शरीर के लिये आवश्यक अवश्य हैं किन्तु प्रधान नहीं। देख, इन्हें प्रधान मानने से ये साधन ही तुझे भोगने लगेंगे और तू भीतर ही भीतर मिटता चला जायेगा। अतः स्वयं को सुरक्षित पाने के लिये तू ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर तथा ईश्वर को पाने के लिये व्यग्र बन। जब तेरा मत ईश्वर को पाना होगा तो ईश्वरीय भाव तेरे समक्ष आते चले जायेंगे और अनेक सद्भावों को तू सम्मुख देख पायेगा क्योंकि अब तेरा मत ईश्वर को पाना हो गया है। ईश्वरीय भावों को समक्ष पाकर ही तू ईश्वर के लिये मतवाला बन सकेगा और सदा-सदा प्रभु-प्रेम-रस का आस्वादन कर सकेगा।

३०३ कौन सुने, जब मन न माने।

ऐ प्राणी! ईश्वर की चर्चा केवल कानों से ही सुनने की नहीं, इसके लिये मन का सहयोग भी परम आवश्यक है। जब तक मन नहीं मानता तब

तक इन्द्रियों में शिथिलता रहती है परिणाम शरीर द्वारा लाख चेष्टा करने पर भी सफलता नहीं मिलती। देख, प्रथम तू मन को मना अर्थात् मन का सहयोग प्राप्त कर। तू मन से बातचीत कर कि—तुझे क्या चाहिये? मन रस का भूखा है इसीलिये इधर-उधर दौड़ता है किन्तु (रस) पाता नहीं अतः चक्कर काटता रहता है। तू यदि मन को प्रभु प्रेम रस पिला सका तो वह तेरे इशारे पर नाचने लगेगा और ऐसे में ही ईश्वर चर्चा तेरे लिये लाभदायक बनेगी अन्यथा तू ईश्वर के लिये बहुत कुछ करके भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

३०४ पुकार, कब बेकार? पुकार स्वीकार, दूर हो विकार।

ऐ प्राणी! हृदय में कष्टों का डेरा तब तक ही रहता है जब तक व्यक्ति ईश्वर को याद नहीं करता। ईश्वर की स्मृति के साथ जीने वाला हमेशा निश्चिन्त रहता है। देख, तू यदि कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है तो अवश्य ही तूने ईश्वर को भुलाया होगा अन्यथा आनन्दपूर्ण संसार में कष्ट का क्या काम है। अतः यदि तू उन कष्टों से निष्कृति चाहता है तो तू ईश्वर को पुकार, बार-बार पुकार, हरदम पुकार और इतना पुकार कि तेरी पुकार सुनी जाये। तेरी पुकार बेकार जाने वाली नहीं। जब तू सच्चे हृदय से ईश्वर को पुकारेगा तो तेरी पुकार अवश्य सुनी जायेगी तथा जिन विकारों से घिरा हुआ तू कष्ट पा रहा है उनसे भी छुटकारा पा जायेगा और तेरा हृदय स्वच्छ, सरल व निर्मल हो जायेगा।

३०५ शब्द नचाता। फिर भी शब्द निरर्थक शब्द। क्या हाथ आया?

ऐ प्राणी! शब्दों में बहुत बड़ी ताकत होती है, ये सम्पूर्ण विश्व को नचाने की क्षमता रखते हैं। जब शब्द निःस्वार्थ भाव से प्रेरित होकर सबकी भलाई के लिये होते हैं तो अत्यन्त बलशाली बन जाते हैं—ऐसे शब्द अद्‌भुत कार्य कर दिखाते हैं और जब ये (शब्द) प्रेम रस से सने तथा भाव रस में पगे होते हैं तब सबमें प्रेम का संचार करते हुए सबको अपना बना लेते हैं, सर्वत्र प्रेम की गंगा बहा देते हैं। देख, शब्द में इतना जादू होता है फिर भी तू शब्द का निरर्थक प्रयोग करता रहता है। ऐसे में तुझे मिला हुआ शब्द रूपी कीमती धन तेरे कोई काम का नहीं रहेगा, तू अनुपम धन का धनी होकर भी निर्धन ही रह जायेगा। अतः तू शब्दों की शक्ति को पहिचान तथा शब्दों

का निरर्थक प्रयोग न कर अन्यथा तू खाली हाथ आया है और खाली हाथ ही लौट जायेगा। यदि तू शब्दों के जादू को जान सका तो तू जो कुछ पायेगा वह अवर्णनीय होगा। वह तुझे आज भी आनन्द देता रहेगा और कल भी सदा तेरे साथ बना रहेगा।

३०६ मर या रम। मर बाबा के लिये जो अमर कर दे रम राम में जो बन वास न करना पड़े। इसे तन कह, बन कह, मन कह।

ऐ प्राणी! इस दृश्य जगत की सभी वस्तुएँ मिटने वाली हैं, ये तेरे देखते-देखते ही एक दिन खत्म हो जायेंगी अतः तू मिटने वाली वस्तुओं के पीछे न मर, तू उस भाव को ग्रहण कर जो अमर है। देख, वे भाव सन्त के द्वार की शोभा हैं, तू यदि उन भावों को पाना चाहता है तो सन्त के लिये मर। सन्त के सम्मुख जब तू पूर्णतया झुक जायेगा तो तू उन भावों को पा सकेगा जो सन्त के द्वार पर सुशोभित हैं। ऐसे में तेरी दुनिया स्थूल से ऊपर उठ जायेगी और तू भीतर ही भीतर आनन्द में मग्न रह सकेगा। तेरा अन्तर घट जब रस से पूर्णतया परिपूर्ण हो जायेगा तब तुझे ईश्वर को पाने के लिये अन्यत्र जाने की कल्पना नहीं करनी पड़ेगी, तू जहाँ भी रहेगा ईश्वर का बन कर रहेगा—तेरा तन ईश्वर की सेवा में लग जायेगा, हृदय निर्जन वन बन जायेगा तथा उसमें प्रिय की मूर्त्ति विराजमान होगी और मन भ्रमर बनकर प्रभु के चरणारविन्द का रस पान करता रहेगा। ऐसा तन ही तन कहलाने के योग्य है, ऐसा बनकर ही संसार प्रांगण में आने का आनन्द मिलता है तथा ऐसा मन ही मनमोहन से मिलाने वाला होता है।

३०७ ध्यान में खोया तो ध्यान में खोज।

ऐ प्राणी! ईश्वर कार्यों से मिलने वाला नहीं, ध्यान से मिलने वाला है और ध्यान लगाने से नहीं लगता, ध्यान स्वाभाविक क्रिया है। जिन वस्तु-व्यक्ति-भाव आदि के लिये हृदय में आकर्षण रहता है उनका ध्यान स्वतः रहता है। अतः तू इस बात पर ध्यान दे कि "तेरा ध्यान कहाँ है"। जब तक ध्यान अन्यत्र रहेगा तब तक तू ईश्वर के नाम पर ध्यान की क्रिया ही करता रहेगा किन्तु ईश्वर का तुझे ध्यान भी नहीं रहेगा। देख, तू यदि ध्यान की स्वाभाविक क्रिया चाहता है तो तू ईश्वर से प्रेम बढ़ा अतः प्रेमियों के समीप बैठ कि तुझे ध्यान लगाना न पड़े, ध्यान की स्वाभाविक क्रिया तेरे अन्तर में प्रारम्भ हो जाये, हाथ से अन्य कार्य करते रहने पर भी तेरा ध्यान बना रहे।

ध्यान के बिखरने से ईश्वर तुझसे दूर हो गया था और केन्द्रित होने से तू उसे पुनः पास देख पायेगा। अन्य ध्यान रहने से तूने उसे खोया था और जब अन्य ध्यान नहीं रह जायेंगे, ईश्वर ही तेरा अपना होगा तब तेरा ध्यान स्वाभाविक होगा जिसमें तू ईश्वर को देख पायेगा।

३०८ गीत गा, रोना बन्द हो। रोने के गीत न गा। गा ऐसा गीत गा और मीत में समा।

ऐ प्राणी! अभाव के गीत अभाव बढ़ाते हैं, मिटाते नहीं—अभाव मिटाने के लिये भाव (प्रसन्नता) के गीत चाहिये। देख, यदि तू रोने के गीत ही गाता रहेगा तो रोने से कभी छुटकारा नहीं पा सकेगा। अतः तू अभाव को देखने की आदत छोड़ दे और यदि तुझे कहीं कुछ भी भाव के कण मिलें तो तू उसी के गीत गा। प्रसन्नता के गीतों से तेरी प्रसन्नता बढ़ती जायेगी तथा तेरा रोने की ओर ध्यान भी नहीं जायेगा। प्रसन्नता के गीत तुझे हमेशा प्रसन्न रहने के लिये प्रेरित करते रहेंगे परिणाम तू प्रिय को कभी नहीं भुला पायेगा क्योंकि स्थायी प्रसन्नता प्रिय के चरणों में मिलती है। उन प्रसन्नता के गीतों में जब तू खो जायेगा तो तेरी दुनिया बदल जायेगी—तू सदा स्वयं को प्रिय की दुनिया (गोद) में ही पायेगा, प्रिय तेरे मन-प्राणों का मीत बन जायेगा।

३०९ कामरस लोगे या राम रस? काम रस काम न आयेगा और राम रस? आराम देगा।

ऐ प्राणी! हृदय में रमण करने वाले राम को जाने बिना, काम बोझ बन जाता है और केवल शरीर के ही इर्द-गिर्द चक्कर कटवाता है। ऐसे काम से क्षणिक तृप्ति मिल सकती है किन्तु दूसरे ही क्षण भूख अत्यधिक बढ़ जाती है, बहुत कुछ पाकर भी प्राणी भूखा ही बना रहता है। अतः तू प्रथम रामरस का पान कर कि तेरी भाग-दौड़ खत्म हो जाये, तू हमेशा ईश्वर को सम्मुख देखता हुआ जो कार्य भी करे उसमें आराम पाये। तू देख पाये कि—सम्पूर्ण कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है तथा प्रत्येक मिली हुई वस्तु ईश्वर का प्रसाद है। यदि तू रामरस को प्राप्त नहीं कर पायेगा तो तू हमेशा भूखा ही बना रहेगा तथा इस भूख की पूर्त्ति में लगा हुआ तेरा तन-मन-धन सब जर्जर हो जायेगा, फिर भी तू आराम नहीं पा सकेगा।

३१० फाटक तक फटकने न पायेगा यदि यों ही गला बाजी करता रहा।

ऐ प्राणी ! गले की आवाज ईश्वर तक नहीं पहुँचती क्योंकि ईश्वर व्यक्ति नहीं, ईश्वर वह शक्ति है जो सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में समायी हुई है तथा सबको गति दे रही है। देख, ईश्वर अन्तर में उठते-बैठते भावों को देखने वाला है—तेरे अन्तर के कोई भी भाव उससे छुपे नहीं। यदि तेरे दिल के भाव दूसरे होंगे तथा मुख के शब्द दूसरे होंगे तो वे (मुख के शब्द) ईश्वर को कभी नहीं रिझा सकेंगे। ऐसे शब्दों से तू गला बाजी करता हुआ व्यक्ति को रिझा सकता है, व्यक्ति की प्रशंसा पा सकता है किन्तु ईश्वर के दरवाजे तक भी नहीं पहुँच सकता और जब तक तू ईश्वर से विमुख बना हुआ है तब तक शान्ति नहीं पा सकता। देख, ईश्वर तुझे हर पल देख रहा है किन्तु तू उसकी दुनिया में बैठा हुआ भी उसे नहीं देख पा रहा है। अतः ईश्वरीय सत्ता का आनन्द पाने के लिये तू तेरी दुनिया में ईश्वर को स्थान दे कि ईश्वर तेरा अपना बन जाये और ईश्वर के लिये प्यार भरे शब्द तेरे मुख से मुखरित हो उठें।

३११ अर्जुन सरल था, ज्ञान का अधिकारी हुआ। और राधा? राधा तो वह आधा अंग था कृष्ण का, जिसके अभाव में कृष्ण आकर्षण न कर पाते।

ऐ प्राणी ! जानकारी का ही दूसरा नाम ज्ञान है और सरल ही इसे पाने का अधिकारी होता है। जहाँ सरलता नहीं पाई जाती वहाँ ज्ञान पाने की अनेक चेष्टाएँ करके भी (ज्ञान) पाना कठिन रहता है। देख, अर्जुन का हृदय सरल था तथा उसके अन्तर में सत्य को जानने की अभिलाषा थी तभी भगवान श्री कृष्ण की वाणी द्वारा उसने ईश्वर तथा जगत के सही रूप का दर्शन पाया। और राधा ? राधा तो कुछ और ही थी। वह कुछ जानना नहीं चाहती थी, प्रिय में समाना चाहती थी, एक होना चाहती थी। देख, जहाँ ईश्वर से एक होने की अभिलाषा प्रतिष्ठित रहती है वहाँ देखने में दो (भक्त और भगवान) रहते हैं, यथार्थ में वे एक रहते हैं। उनमें से एक को बाद करके एक को पूरा देखा नहीं जा सकता अर्थात् वे दो मिलकर ही एक होते हैं। राधा प्रेम की धारा का नाम है तो उसे अपनी ओर खींचने वाले आकर्षण का नाम कृष्ण है। प्रेम का बहाव राधा है तो मिलन का स्थान कृष्ण है। देखने में वे दो हैं, यों एक हैं—एक ही दो, दो ही एक।

३१२ लोग कहते हैं राधा कल्पना थी। भई कल्पना ही तो राधा की तरह प्रिय है।

ऐ प्राणी ! जिन्हें कल्पना करते रहना ही प्रिय है उनके लिये कल्पना ही राधा की तरह प्रिय बनी रहती है—ऐसे लोगों का प्रत्येक कार्य कल्पना से ही सम्पादित होता है। देख, दिन-रात स्थूल में विचरण करने वाले लोग प्रेम की गहनता को नहीं जान सकते। स्थूल से अलग 'भाव' की भी कोई दुनिया होती है—यह उनकी समझ से परे की बात है। ऐसे लोगों के सम्मुख यदि राधा के प्यार का वर्णन आता भी है तो वह प्रेम उनके लिये अविश्वसनीय होता है। वे कह बैठते हैं कि राधा का प्यार केवल मनगढ़न्त कल्पना है, यथार्थ जगत में ऐसा प्यार नहीं पाया जा सकता। किन्तु ऐसा कहने वाले भूल करते हैं क्योंकि जब तक उस स्थिति में डूबा न जाये तब तक उसके विषय में कुछ कहना गलत है। अभी वे प्रेम पथ पर बढ़े नहीं, जिस दिन वे प्रेम पथ को पा जायेंगे उस दिन उनकी दुनिया दूसरी होगी और वे राधा के प्यार को जान पायेंगे। वे देख पायेंगे कि अनवरत बहते प्रेम के उस प्रवाह का नाम राधा है जिसे हर पल का आकर्षण (कृष्ण) अपनी ओर खींचता रहता है। दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी उस प्रवाह को रोकने का सामर्थ्य नहीं रखती।

३१३ कृष्ण की कल्पना, राधा बन कर करो। कल्पना साकार हो। अपनी कल्पना निराकार हो।

ऐ प्राणी ! कृष्ण में ऐसा कौन सा जादू था कि राधा उस पर समर्पित हो गई, राधा का अलग अस्तित्व ही नहीं रह गया—इस कल्पना को तू राधा का प्रेम अपनाकर अर्थात् राधा बनकर जान सकेगा। जब प्रेम का प्रवाह तेरे हृदय में हिलोरे मारने लगेगा, अपना कहने को तेरे पास कुछ भी नहीं रह जायेगा तब "कृष्ण क्या है" इसे तू जान पायेगा। तू देख पायेगा कि कृष्ण है तो प्रेम का प्रवाह भी है अन्यथा प्रेम का नाम भी नहीं। ऐसे में तेरी अन्य कल्पनायें धरी की धरी रह जायेंगी, उनका कोई अलग अस्तित्व नहीं रह जायेगा, रह जायेगा केवल कृष्ण—वही तेरे हर पल-क्षण पर छा जायेगा।

३१४ आज वचन सुनता है, कल बच न सकेगा। सावधान।

ऐ प्राणी ! तू यदि प्रेम पगडण्डी पर कदम बढ़ाना नहीं चाहता तो न तो

तू प्रेम की कथा सुन और न प्रेमियों के समीप बैठ क्योंकि प्रेम की बातें व प्रेम के संग-साथ से कब प्रेम तुझ पर आच्छादित हो जायेगा—इसे तू जान भी नहीं पायेगा और जब होश में आयेगा तब तक बहुत देर हो चुकी होगी, तब तेरे पास बचने का कोई चारा नहीं रह जायेगा। अतः तू प्रारम्भ से ही सावधान रह अर्थात ईश्वर के नाम पर भजन-पूजन करता रह किन्तु प्रेमियों का साथ कभी भूल कर भी न कर। देख, प्रेमी के कार्य अटपटे रहते हैं—प्रेमी की अपनी दुनिया नहीं रहती, प्रिय की दुनिया ही उसकी दुनिया रहती है। उनकी बातें बुद्धि के दायरे के बाहर रहती हैं किन्तु अत्यधिक हृदय स्पर्शी होती हैं। हृदय स्पर्शी भाव दूर से ही अपनी ओर खींचते हैं और करीब जाकर तो उनसे बचना ही कठिन हो जाता है। ऐसे भावों से बचने के लिये तुझे बुद्धि हमेशा सावधान करती रहेगी फिर भी तू बच नहीं पायेगा क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है।

३१५ प्यार, कोई खेल नहीं, यद्यपि खेल के लिये प्यार करता है।

ऐ प्राणी! प्यार खेल नहीं, प्यार दो हृदयों का मेल है—उन दो हृदयों का, जो कहने को दो रहते हैं, यथार्थ में एक रहते हैं। देख, ऐसे प्यार को तू खेल न बना। यदि तू प्यार के नाम पर स्थूल से खेलता रहेगा तो प्यार का कुछ नहीं बिगड़ेगा, तू कोरा का कोरा रह जायेगा। ऐसा खेल तुझे प्यार के नजदीक भी नहीं जाने देगा। प्यार देना जानता है, पाना नहीं—जहाँ पाने की चाहना बनी रहती है, वहाँ प्यार नहीं, स्वार्थ है। अतः तू यदि प्यार पाने का सच्चा अभिलाषी है तो अहंता, ममता, स्वार्थपरता आदि का परित्याग करके समर्पण के साज सजा कि तेरा प्यार खेल न रह जाये, तेरा हृदय प्यार से सज जाय।

३१६ यह कैसा ध्यान है जो लगाना पड़ता है। ध्यान कैसा होता है यह मां से पूछो, बच्चे से पूछो। ध्यान सहज है।

ऐ प्राणी! ध्यान स्वाभाविक क्रिया है। देख, बच्चा पैदा होने के साथ-साथ मां का ध्यान बच्चे में लग जाता है, वह घर के दस अन्य कार्य करती हुई भी बच्चे से जुड़ी रहती है, उसे खूब ख्याल रहता है कि—बच्चा नीचे न उतर जाये, आग के समीप न चला जाये आदि। ऐसी ही बच्चे की अवस्था रहती है। वह खेलते कूदते रहने पर भी बार-बार मां को खोजता रहता है, मां नहीं मिलने पर रोता रहता है, मां के बिना उसे खेल भी नहीं सुहाता—

ध्यान इसी का नाम है। जो ध्यान लगाना पड़ता है फिर भी लगता नहीं वह ध्यान नहीं केवल ध्यान की क्रिया है। ऐसे ध्यान से यदि कोई ईश्वर को पाना चाहे तो यह कभी सम्भव नहीं क्योंकि व्यक्ति का प्यार ही स्वाभाविक ध्यान के बिना नहीं मिलता फिर ईश्वर तो वह अदृश्य शक्ति है जो स्थूल से सम्बन्धित ही नहीं—फिर उसे कृत्रिम ध्यान से कैसे पाया जा सकता है। अतः ईश्वर की प्राप्ति के लिये तू ध्यान की स्वाभाविक क्रिया अपना कि तू ध्यान का आनन्द पाये और ईश्वर तेरा अपना बन जाये।

३१७ बसाना या बसना—पूछ दिल से।

ईश्वर को भुलाने से अनेकों को अपनी दुनिया में बसाने पर भी अन्तर की दुनिया बसती नहीं, खाली ही रह जाती है। यही कारण है कि खाली क्षणों में व्यक्ति घबड़ा उठता है और खालीपन से छुटकारा पाने के लिये उसे किसी-किसी का सहारा ढूँढ़ना पड़ता है। यदि व्यक्ति ईश्वर को भूलता नहीं तो उसकी दुनिया बस जाती क्योंकि वह ईश्वर की दुनिया का वासी है—उस ईश्वर की दुनिया का जो एक क्षण के लिये भी साथ छोड़ने वाला नहीं। ऐ प्राणी ! तू अब अपने दिल से पूछ कि तुझे अनेकों को अपनी दुनिया में बसाना है या एक ईश्वर की दुनिया में तुझे बसना है ? यदि तुझे अनेक चाहिए तो तू सदा अतृप्त बना रहेगा और यदि एक (ईश्वर) चाहिये तो तू उस धन का धनी बन जायेगा जो धन कभी खत्म होने वाला नहीं और उसी अवस्था में अनेक भी तेरे आनन्दवर्द्धन का कारण बन सकेंगे।

३१८ हवा कहती है—है। फिर क्यों तबाह ?

ऐ प्राणी ! प्रतिक्षण बहती हवा तुझे सन्देश दे रही है कि "कोई है"—वही अज्ञात रह कर सदा तेरी देखभाल कर रहा है। देख, प्राणदायिनी हवा यदि साथ नहीं रहती तो तेरे प्राण भी नहीं रहते, फिर भी तू उस अज्ञात साथी को नहीं पहचान रहा है तथा उसे भुलाकर चिन्तित व परेशान बना हुआ है। तुझे छोटी-छोटी बातें चिन्तित बनाये रखती हैं और तू उसी की पूर्त्ति में संलग्न परेशान बना रहता है। यदि हवा खाकर तू यह जान पाता कि "जो तेरी रक्षा कर रहा है, सबकी रक्षा भी वही कर रहा है" तो तू कर्त्तापन के बोझ से अलग हो जाता—तेरे विचारों का निरर्थक कष्ट भी तब तेरे समीप नहीं रह पाता, तू सदा ईश्वर को कर्त्ता जान आनन्द मनाता तथा आनन्द के साथ ही एक दिन आनन्द में समा जाता।

३१९. क्यों चिल्लाता है ? क्यों ? चित् जाता है, या यों ही चिल्लाता है ।

ऐ प्राणी ! छोटे-छोटे कीट पतंगों से लेकर बड़े से बड़े जीवधारी प्राणियों में एक ईश्वर समाया हुआ है । वह सबके अन्तर की जानने वाला है । ऐसे ईश्वर के लिये यदि केवल मुख के शब्द प्रयोग किये जायें तो यह अपने आप को धोखा देना है । देख, हृदय प्राणों में प्रतिष्ठित प्रभु को सम्मुख पाने के लिये तू प्रथम चित्त पर उसकी छवि को अंकित कर, फिर उसे पुकार, तब तेरी पुकार सुनी जायेगी । जब तक चित्त पर उसकी छवि अंकित नहीं होगी तब तेरी आवाज उस तक नहीं पहुँच पायेगी । ऐसे में तू अंधेरे में तीर चलाता रहेगा, तेरे सभी वार खाली जायेंगे और तू अपने को तीरंदाज समझ बैठेगा । यह अवस्था तेरे लिये दयनीय होगी, चिल्ला-चिल्ला कर ईश्वर को आवाज देने पर भी तू कभी उसे सम्मुख नहीं पा सकेगा—पायेगा केवल अहंकार और वही तेरा ईश्वर बनेगा, ईश्वर का तो केवल नाम रहेगा ।

३२० कहाँ, कहाँ की बातें ? यहाँ, यहाँ की बातें ? यहाँ, कहाँ ? यहाँ जानता तो कहाँ क्यों कहता ? बोल और कुछ बोल ।

ऐ प्राणी ! यह संसार आनन्द-भूमि है किन्तु यह आनन्द-भूमि उनके लिये है जिन्होंने आनन्द-कन्द प्रभु को जाना है । आनन्द-कन्द प्रभु का विस्मरण आनन्द-भूमि को ही क्रन्दन-भूमि बना देता है जिस क्रन्दन-भूमि में बैठा प्राणी प्रत्येक परिस्थिति में अपने भाग्य को कोसता हुआ रोता रहता है । अब स्वयं को बिलमाने के लिये उसे कहाँ-कहाँ की बातें करनी पड़ती हैं । उनमें से एक बात भी सत्य के लिये नहीं रहती, सभी अहंकार व स्वार्थ से सनीं यहाँ (धन-जन, घर-परिवार आदि) के लिये रहती हैं अतः यहीं रह जाने वाली रहती हैं । देख, आनन्द-भूमि में आनन्द मनाने के लिये आया प्राणी आज क्रन्दन कर रहा है । यदि उसने आनन्द की बातें की होतीं एवं आनन्दकन्द प्रभु के दर्शन पाये होते तो उसकी यह अवस्था न होती—यही संसार उसे सदा आनन्द देता रहता, किसी एक से भी उसे शिकायत नहीं रहती ।

३२१ बोलती बन्द, अब आनन्द ।

ऐ प्राणी ! मन बुद्धि के द्वारा ईश्वर को नहीं जाना जा सकता । भजन पूजन करते करते जिज्ञासु प्राणी के जीवन में संयोगवश ऐसा अवसर भी आता

है जब उसे ऐसे साथी का साथ मिलता है जिसके सम्पर्क से वाणी मूक हो जाती है, हृदय में आनन्द की अनुभूति होने लगती है, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ रस से आप्लावित हो जाती हैं तथा मन बुद्धि का अलग अस्तित्व नहीं रह जाता—वही सम्पर्क ईश्वरीय सम्पर्क होता है। ऐसे सम्पर्क को पाने से व्यक्ति अन्तर से झुक जाता है, उसकी सभी जिज्ञासा शान्त हो जाती है। प्रत्येक भाव रसपूर्ण बनकर उसके समक्ष मुखर हो उठते हैं। दुनिया का बड़े से बड़ा आकर्षण भी उसे न तो अपनी ओर खींच पाता है और न वह रस प्रदान कर पाता है जो उसे उन चरणों में मिलता है। जब तक ऐसे दर्शन प्राणी को सुलभ नहीं होते तब तक वह चातुर्दिक चक्कर काटता रहता है फिर भी अतृप्त बना रहता है।

३२२ यही प्रेम की खान है। खा, न, मान, खा, न, कान।

अपने को ऊँचा-बड़ा समझना तथा सबके सम्मुख शेखी बघारना—यह ऐसा दलदल है जिसमें व्यक्ति बचने की चेष्टा करके भी फँसता जाता है। ऐ प्राणी! अपने को ऊँचा-बड़ा समझने वाला कभी किसी से प्यार नहीं कर सकता जबकि प्यार का लहलहाता समुद्र प्राणी मात्र के अन्तर में बह रहा है। यही कारण है कि प्रत्येक प्राणी प्यार से लबालब भरा रहने पर भी प्यार के लिये तरस रहा है। देख, अहंकार ने तेरी कैसी दुर्गति बना दी है। अब भी समय है, यदि तू आज भी चेत जाये तथा इस झूठे मान का पान कर ले तो तेरी दुनिया बदल जाये। ऐसे में तू किसी को प्यार भरे दो बोल ही कहेगा, निरर्थक बातों द्वारा कान नहीं खायेगा—हमेशा प्यार बाँटेगा और प्यार ही पायेगा।

३२३ बार-बार क्यों आते? बार, एक बार, दिल बार, दिमाग बार। फिर न बार बार।

ऐ प्राणी! इस संसार में बार-बार उसे ही आना पड़ता है जिसका कुछ अटकाव रह जाता है। ईश्वर की समीपता पाने के लिये आया हुआ प्राणी जब ईश्वर को भुलाकर अहंकारी बन जाता है तब उसका पेट कभी नहीं भरता, बहुत कुछ पाकर भी वह कुछ नहीं पाता। प्रत्येक वस्तु-व्यक्ति, धन-जन उसे अपने में बाँध लेते हैं और उनमें अटका हुआ वह एक दिन मृत्यु-मुख में समा जाता है। आने वाला यदि आने के कारण को जान पाता और (वह) कारण उसे याद रहता तो वह ऐसी निम्नतर अवस्था को प्राप्त नहीं होता। देख, अहंकार का खेल तो तूने देख लिया है, अब एक बार समर्पण का खेल

देख ले। तू एक बार दिल, दिमाग सब प्रभु के चरणारविन्द पर अर्पित करके देख—ऐसे में तू तृप्ति का आनन्द पायेगा, आज भी मौज मनायेगा तथा मौज के साथ ही प्रिय के समीप लौट जायेगा। बार-बार तेरे आने जाने का क्रम भी तब खत्म हो जायेगा क्योंकि तूने तृप्ति का आनन्द पा लिया है।

३२४ काले को भजा। काल छूटा, जंजाल छूटा।

ऐ प्राणी! स्थायी आकर्षण रूप में नहीं, भाव में है। रूप एक दिन मिट जायेगा किन्तु भाव कभी मिटने वाला नहीं। यही कारण है कि कृष्ण काला होकर भी आकृष्ट करता है। देख, यह आकर्षण जब दिन-रात का ध्यान (भजन) बन जाता है, इसके बिना रहना मुश्किल हो जाता है तब साधारण सा दिखाई देने वाला व्यक्ति ऐसा शक्ति-सम्पन्न बन जाता है कि मृत्यु भी उसे भयभीत नहीं कर सकती। उसके तन-मन के बन्धन टूटने लगते हैं एवं प्रत्येक पल पर उसका साथी (ईश्वर) छा जाता है। सभी कार्य वह ईश्वर द्वारा सम्पादित देख पाता है अतः उसके 'मैं-मेरे' का जञ्जाल भी छूट जाता है। ऐसा है यह भजन जो तिल मात्र भी वजन दिल पर रहने नहीं देता, देता है निर्भय भाव जिसे अपनाकर व्यक्ति उन्मुक्त विचरण करता है।

३२५ कहाँ से प्यार करूँ, प्यार अमृत हो जाय? अमर आत्मा, नश्वर शरीर। आत्मा में प्यार कहाँ? शरीर में प्यार कहाँ?

यह शरीर नश्वर है किन्तु आत्मा अमर है। प्यार जब व्यक्ति द्वारा व्यक्ति को पाने के लिये होता है तब एक दिन मिट जाता है क्योंकि शरीर मिटने वाला है। किन्तु जब यह प्यार सत्य से प्रेरित होकर सत्य की प्राप्ति के लिये होता है तो कभी मिटता नहीं, सम्मुख दिखलाई पड़ने वाले शरीर मिट जाते हैं किन्तु प्यार अमिट हो जाता है—ऐसा प्यार युगों-युगों तक आनन्द की अनुभूति देता रहता है। ऐ प्राणी! प्यार शृंगार है, प्यार के शृंगार से जब जीवन सज जाता है तब जिन्दगी पाने का मजा आ जाता है। देख, शरीर का प्यार, प्यार नहीं क्योंकि शरीर के प्यार में अहंता-ममता की गंध रहती है किन्तु आत्मा का प्यार तो आत्म-भान भी नहीं रहने देता—ऐसा प्यार ही अमर प्यार है।

३२६ बहाना क्यों? बहा, दुःख बहा, चिन्ता बहा न, बहाना क्यों?

ऐ प्राणी! तूने अभी ईश्वर की समीपता का आनन्द नहीं पाया है

इसीलिये ईश्वरीय सामीप्य से घबड़ाता है। तू समझता है कि ईश्वर को याद करने से तू संसार के सुखों को नहीं भोग सकेगा किन्तु बात इसके विपरीत है। ईश्वर को भुलाने से तो तू कर्त्तापन के बोझ से घिर जायेगा और दुःख चिन्ता आदि अनेक भाव तेरे आगे-पीछे मँडराने लगेंगे। ऐसे में तू मिली हुई वस्तुओं व संसार से सुख नहीं ले पायेगा। अतः तू बहाना न लगा, तू प्रत्येक क्षण के साथी ईश्वर को जान कि तू दुःख बहा सके, चिन्ता बहा सके और निश्चिन्त रहकर संसार में आने का आनन्द ले सके।

३२७ तप या ताप (जलन) ताप रहेगी, संताप रहेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर के लिये की गई तपस्या अनेक भावों से प्रेरित होकर होती है। ईश्वर की समीपता पाने की व्याकुलता में भी कुछ अटपटे कार्य होते हैं जिन्हें तपस्या कहा जाता है तथा किसी को आगे बढ़ते देखकर जलन ईर्ष्या के कारण भी ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य होते हैं, वे भी तपस्या कहलाते हैं। देख, यह ईश्वर की दुनिया है, यहाँ जो जिस भाव से कार्य करता है (चाहे बाहर से देखने में वे कार्य एक जैसे ही क्यों न हों) उसे वैसा ही फल मिलता है। जलन-ईर्ष्या से सम्पादित तपस्या का फल बड़ा दुःखदायी होता है—ऐसी तपस्या करने वाला हमेशा अन्तर से बेचैन बना रहता है तथा अनेक दुविधाओं से घिरा हुआ कष्ट पाता रहता है। यदि उसकी तपस्या प्रेम के साथ प्रभु के लिये हुई होती तो ताप-संताप उसके निकट भी न आ पाते, वह हमेशा उसकी दुनिया में बैठा हुआ सुन्दर, सुमधुर भावों से सजकर आनन्द मनाता।

३२८ वेश—केवल वेश ? प्रेम नहीं लेश, फिर वेश, कैसा वेश ?

ऐ प्राणी! ईश्वर-प्राप्ति का सरल, सहज व सुगम रास्ता प्रेम है, प्रेम के बिना कितने ही स्वाँग रचा लिये जायें, उनसे ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। देख, जिन्होंने भी ईश्वर को पाया है, प्रेम से पाया है। प्रेम पगडण्डी पर कदम बढ़ाने के लिये उन्हें यदि किसी वेश को अपनाना भी पड़ा तो उन्होंने शीश झुका कर अपनाया किन्तु प्रेम के लिये ही अपनाया क्योंकि प्रेम ने ही उन्हें प्रिय प्रभु से मिलाया है। यदि उनके भावों को न देख केवल उनके कार्यों को अपना लिया जाये तो व्यक्ति धोखा खायेगा। ऐसा वेश जहाँ प्रेम का लेश भी नहीं, वेश को लजायेगा—ऐसे में प्राणी के हाथ कुछ नहीं आयेगा, उसका समय ही व्यर्थ जायेगा।

३२९ नमन कर, न मन और न तन।

ऐ प्राणी ! नमस्कार साधारण नहीं होता, नमस्कार के द्वारा व्यक्ति जिसके सम्मुख झुकता है उसमें निहित शक्ति को झुका लेता है। यदि उसका झुकना सत्य से प्रेरित होकर सत्य के लिये होता है तो साधारण सा दिखलाई पड़ने वाला प्राणी अलौकिक भावों से युक्त हो जाता है। उसे न मन परेशान करता है और न तन चिन्तित बनाता है। मन, चरण कमलों का भँवरा बन रस पान करने में लग जाता है तथा तन सभी इन्द्रियों के सहयोग से सेवा में रत हो जाता है। तन के द्वारा किये गये उसके सभी कार्य ईश्वर की सेवा बन जाते हैं क्योंकि वह ईश्वर को कण-कण में आच्छादित देख पाता है। ऐसा है यह नमस्कार जो तन-मन जीवन सभी पर सम्पूर्ण छा जाता है।

३३० दुर्बल—आज भी दुर्बादल। अब भी सँभल।

ऐ प्राणी ! तू कमजोर है नहीं, कमजोर विचारों से घिरा हुआ है इसीलिये कमजोर हो गया है। अब छोटी-छोटी बातें तुझे अपने में उलझा लेती हैं। छोटी-छोटी बातों में अटक कर बैठने वाला कमजोर ही रह जाता है। उसकी अवस्था उस दूब की तरह हो जाती है जो कभी ज्यादा बढ़ नहीं पाती। देख, तू यदि जीवन में प्रगति चाहता है तो उन विचारों का परित्याग कर जो तुझे कमजोर बनाते हैं कि तू जीवन में उन्नति कर पाये। तू वह भाव पा जाये कि तुझे दुनिया की बड़ी से बड़ी शक्ति भी हिला न पाये।

३३१ सम—समीप। और ? भीत।

ऐ प्राणी ! ईश्वर यों तो सबके अन्तर में समाया है किन्तु सब उसे समीप नहीं देख पाते। ईश्वर को वे ही समीप देख पाते हैं जो ईश्वर के सम्मुख हैं। देख, ईश्वर को सम्मुख देखने वाले का हृदय ईश्वरीय भावों से सजने लगता है एवं श्रद्धा प्रेम आदि भावों का जागरण उसके हृदय-पटल पर होने लगता है। उसके अन्तर में प्रथम ये भाव ईश्वर के लिये रहते हैं, धीरे-धीरे जब वह ईश्वर को कण-कण में समाया देख पाता है तब सबके लिये हो जाते हैं। ऐसे में वह प्रत्येक परिस्थिति को ईश्वर का प्रसाद जानते हुए सम भाव से देख पाता है। किन्तु जो ईश्वर की दुनिया में आकर भी ईश्वर से विमुख हैं उनकी तो अवस्था ही विचित्र रहती है, वे हर क्षण भय से घिरे रहते हैं। हर समय अनिष्ट की आशंका उन्हें घेरे रहती है अतः वे किसी भी परिस्थिति का

आनन्द नहीं ले पाते—जब तक धरा पर रहते हैं, रोते रहते हैं तथा एक दिन रोते-रोते ही विदा हो जाते हैं।

३३२ रूक्ष किया वेश, रूक्ष किया केश। पाया? अब भी नहीं आया।

ऐ प्राणी! ईश्वर तन की दुनिया उजाड़ने वाला नहीं, दिल की उजड़ी दुनिया बसाने वाला है। देख, तन को अनेक कष्ट देकर जोर-जबर्दस्ती द्वारा तू इन्द्रियों को नियंत्रित करने की चेष्टा कर सकता है किन्तु ईश्वर को नहीं पा सकता, ईश्वर को तू हृदय के सुमधुर भावों से पा सकता है। जब तेरा हृदय ईश्वर की प्राप्ति के लिये छटपटाने लगेगा तब तेरे दिल के भाव स्वतः ईश्वर की ओर उन्मुख होने लगेंगे, नहीं तो तन की अनेक चेष्टाएँ भी तुझे ईश्वर से नहीं मिला सकेंगी—चाहे तू बालों को जटाजूट बना लेना, चाहे शरीर को कृषकाय कर लेना। ये बाहर की क्रियायें तेरा अहंकार ही बढ़ायेंगी, इससे अधिक और कुछ न दे पायेंगी। अतः तू सीधा रास्ता पकड़ अर्थात् दिल के साज सजा कि तू सचमुच कुछ पा सके।

३३३ खोया सा खोज रहा है।

ऐ प्राणी! ईश्वर-भक्त की अवस्था बड़ी निराली होती है। ईश्वर-भक्त को बड़े से बड़ा प्रलोभन भी अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता। उसके सम्मुख यदि अतुल सम्पदा व मान-सम्मान आदि का अम्बार लगा दिया जाये तो भी वह किसी के सामने नहीं झुकता। उसकी खोज सदा 'ईश्वर' रहती है, वह खोया-खोया सा ईश्वर को ही खोजता रहता है। उसे वे ही प्रिय लगते हैं जो ईश्वर-मिलन में सहायक होते हैं। जो ईश्वर-मिलन में बाधक हैं—ऐसे संग-साथ से वह दूर ही रहना पसन्द करता है। देख, चाह के साथ राह होती है, अतः ऐसे ईश्वर-भक्त अवश्य ही एक दिन ईश्वर को देख पाते हैं।

३३४ प्राप्ति ही समाप्ति।

ऐ प्राणी! इस धरा पर प्रत्येक प्राणी का आगमन ईश्वर की प्राप्ति के लिये होता है किन्तु इस संसार का खेल कुछ ऐसा है कि यहाँ आकर व्यक्ति आने के कारण को भूल जाता है तथा एक दिन उसे लौट कर भी जाना है—इसे भी याद नहीं रख पाता। देख, ईश्वर को पाये बिना इस यात्रा की समाप्ति

होने वाली नहीं। यदि उसे पा लिया जाये तो एक बार में ही यात्रा का अन्त आ जायेगा और यदि ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो बार-बार आने व जाने का क्रम जारी रहेगा। यात्रा की समाप्ति उनकी ही होती है जिनका जीवन प्रभु के लिये है एवं प्रभु को छोड़ कर जो एक श्वाँस भी लेना पसन्द नहीं करते। जो जोर जबर्दस्ती से ईश्वर की भक्ति करते हैं, उन्होंने शायद ही ईश्वर को पाया होगा किन्तु जो उसके लिये ही जीते हैं—ऐसे प्रेमी जन से वह दूर नहीं रह पाता। ऐसे प्रेमी जन तृप्ति का आनन्द लेते हुए उसकी दुनिया में रहते हैं तथा एक दिन उसी के समीप लौट कर चले जाते हैं जिसे लोग मृत्यु कहते हैं। ऐसे जन अटके हुए बार-बार धरा पर नहीं आते, यदि आते हैं तो प्रभु प्रेम का वितरण करने के लिये ही आते हैं।

३३५ मानव तू नव नहीं, चिर पुरातन है।

ऐ प्राणी! इस धरा पर तेरा आगमन अनादि काल से हो रहा है। तू यहाँ के लिये नया नहीं, यहाँ की सारी क्रियाएँ तेरी जानी सुनी हैं इसीलिये भूमिष्ठ होने के पश्चात् समयानुसार वे तुझे याद आ जाती हैं। देख, बालक में प्रत्येक भावों का सृजन स्वाभाविक रूप से देखा जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि भाव परिस्थितियों के अनुसार उसके अन्तर में शीघ्रता से प्रगट होने लगते हैं। ये कोई भी भाव उसे सिखलाने नहीं पड़ते क्योंकि वह सदा से इन भावों में ही जीता आया है। देख, तेरे आगमन का उद्देश्य इतना ही नहीं, कुछ और भी है—वह है सृजनकर्त्ता को जानना। जब तक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी तब तक अन्य सारे कार्य करते हुए भी तू शान्ति नहीं पा सकेगा। शान्ति और प्रेम भी तेरे चिर पुरातन भाव हैं जिन्हें स्वार्थ से आबद्ध रहने के कारण तू खो बैठा है। प्रभु-प्राप्ति के पश्चात् ही तू शान्ति व प्रेम रूपी धन को पा सकेगा और तभी तेरा आवागमन का पुराना चक्र भी समाप्त हो सकेगा।

३३६ लकड़ी की तरह जलता रहा। मकड़ी की तरह जाल बिछाता रहा। कड़ी-विचारों की लड़ी में योग करता, स्वतन्त्र होता। विचार का व्यापार शान्त होता।

ऐ प्राणी! ईश्वर गर्भकाल से तेरी रक्षा करता आया है तथा आज भी प्रत्येक समय तेरी रक्षा कर रहा है किन्तु तूने उसकी तरफ से मुख मोड़ रक्खा है अतः उसके कार्यों को देख नहीं पाता, सदा आगे-पीछे की चिन्ता करता

रहता है। चिन्ता चिता है, यह हर पल लकड़ी की तरह जलाती रहती है। लकड़ी में यदि एक बार आग लगा दी जाये तो वह तब तक धीरे-धीरे जलती रहती है जब तक खत्म नहीं हो जाती—तेरी भी यही अवस्था हो रही है। तू हर पल चिन्ता की अग्नि में जलता रहता है तथा अधिक से अधिक 'मैं-मेरे' का जाल बिछाता रहता है। देख, जाल बिछाना आसान था किन्तु समेटना अब तेरे वश के बाहर हो गया है। तेरी यह स्थिति ईश्वर-प्रदत्त नहीं, तेरे द्वारा ही निर्मित है। यदि तू आज भी इस पर गहनता से विचार कर पाता, तेरी वृत्तियाँ अन्तर की ओर उन्मुख हो पातीं तो तू शायद इन बन्धनों से छुटकारा पा जाता। कर्त्ता को भी तू तभी सम्मुख देख पाता और तेरे कष्टपूर्ण विचारों का व्यापार भी तभी शान्त हो पाता।

३३७ मर्यादा पुरुषोत्तम राम। राम कहते मर, याद आ तभी पुरुषोत्तम।

ऐ प्राणी! तू केवल मर्यादा पुरुषोत्तम राम की लीला के गीत न गा, इससे तू राम को समीप नहीं देख पायेगा। यदि तू राम को समीप देखना चाहता है तो तू हृदय में बसे राम को देख। उसे हृदय में देख पाने से तेरे जीने की प्रक्रिया ही बदल जायेगी। ऐसे में तू राम को केवल तेरे हृदय पर ही नहीं, प्रत्येक हृदय पर आच्छादित देख पायेगा अर्थात् तू घट-घट में उसी का जलवा देख पायेगा। तू राम को कभी भूल नहीं पायेगा, मरते दम तक राम तेरे साथ बना रहेगा। देख, राम की स्मृति के साथ जीने वाला मरने पर भी नहीं मरता, सदा याद किया जाता है क्योंकि वह अन्य साधारण जन की तरह ही नहीं रह जाता, वह कुछ ऐसे उत्तम भावों से सज जाता है कि राम की तरह ही पूजनीय बन जाता है।

३३८ प्यार तो प्यास है। फिर प्यार का अभ्यास कैसा?

प्रत्येक प्राणी के अन्तर की प्यास 'प्यार' है। सर्व सम्पन्न प्राणी भी प्यार के अभाव में प्यासा ही देखा जाता है। प्यार की प्यास ही प्राणी को इधर-उधर दौड़ने को बाध्य करती है किन्तु वह प्यार कहीं पाता नहीं अतः रोता व छटपटाता रहता है। जिन साथियों के समीप वह प्यार के लिये हाथ बढ़ाता है, उनसे भी वह धोखा खाता है क्योंकि वे स्वयं प्यार के प्यासे हैं। अब वह इस प्यास को बुझाने के लिये ईश्वर की ओर उन्मुख होता है और ईश्वर से प्रेम बढ़ाने की अनेक चेष्टाएँ (पूजा-पाठ आदि के रूप में) करता

है। ऐ प्राणी ! प्यार अभ्यास से उमड़ने वाला नहीं, यह प्रिय प्रभु के साथ से उमड़ने वाला है। देख, प्रभु का साथ सन्त के द्वार पर ही सम्भव है। जब तक तू सन्त का द्वार नहीं पायेगा तब तक प्रिय प्रभु को हृदय पटल पर आच्छादित भी नहीं देख पायेगा और न तेरा प्यार ही उमड़ पायेगा। अतः प्यार की जागृति के लिये तू सन्त की शरण ग्रहण कर। यदि उनके चरणों में बैठकर तू उनके भावों का अभिलाषी हो सका तो तेरे अन्तर का सोया प्यार उमड़ जायेगा जिसके वियोग में तू जन्मों से तरसता आ रहा है।

३३९. आस करे अभ्यास। पास का अभ्यास कैसा ?

ऐ प्राणी ! जब तक तू ईश्वर को अपने से बहुत दूर देखेगा तब तक तेरे अन्तर का प्यार जागृत नहीं होगा। ऐसे में तू प्रत्येक कार्य का कर्त्ता भी ईश्वर को नहीं देख पायेगा, तेरे कुछ कार्यों को ईश्वर पूरा कर दे—यही आश लगायेगा। जहाँ ईश्वर से आश है वहाँ उसे पास बुलाने के लिये अभ्यास करना पड़ता है किन्तु जहाँ ईश्वर सदा पास है वहाँ अभ्यास कैसा, वहाँ तो स्वतः प्यार उमड़ता रहता है। ऐसी अवस्था में उसे भुलाने की चेष्टा करके भी नहीं भुलाया जा सकता। यदि उसे भुला दिया जाये तो प्रेमी के पास अपना कहने को कुछ भी नहीं रह जायेगा क्योंकि ईश्वर के साथ से उसके जीवन में उल्लास है, सम्पूर्ण विश्व प्रेम का विलास है।

३४० पास हो या प्यास। कहाँ अभ्यास ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर की प्राप्ति के लिये जहाँ प्यास है वहाँ ईश्वर सदा पास है, या यों कह दिया जाये कि जिन्हें ईश्वर की समीपता का आभास मिलता है उन्हें ही ईश्वर-मिलन की प्यास सताती है। देख, ईश्वर पास हो या हृदय में उसके लिये प्यास हो—दोनों अवस्था में ही अभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती, प्यार स्वतः उमड़ता है। प्यार के लिये अभ्यास की जरूरत उन्हें पड़ती है जिन्होंने प्रिय (ईश्वर) को अभी जाना नहीं, देखा नहीं, केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर के लिये कुछ कार्य किये हैं। उनका अभ्यास बालू से तेल निकालने की चेष्टा के समान है, जब तक वे प्यार की मूर्त्ति को सम्मुख नहीं देख पाते। अब तू अपनी ओर देख—यदि तू प्रिय को समीप नहीं देख पाता है तो उसके लिये तू अभ्यास न कर, प्रभु-प्रेमियों का संग कर। प्रभु-प्रेमियों का संग ही तेरे हृदय में प्रिय के लिये स्वाभाविक प्यास की जागृति कर देगा और तभी तू प्रिय प्रभु को पास देख पायेगा।

३४१ आँख की बंद। यही हुआ फंद।

ऐ प्राणी ! तेरे अन्तर में सत्य प्रतिष्ठित है, वह सदा तुझे सत्य निर्देश देता रहता है किन्तु तूने उसकी तरफ से आँखें बन्द कर रक्खी हैं क्योंकि सत्य के निर्देशानुसार चलने से तेरे स्वार्थ में बाधा आती है। देख, जब व्यक्ति सत्य से विमुख हो जाता है तो उसका संसार भी विकृत हो जाता है। कदम-कदम पर भ्रम उसे घेर लेता है, किसी भी चीज का वह सही रूप नहीं देख पाता परिणाम उनमें फँसता जाता है। सत्य के संग से जो संसार क्रीड़ा-स्थल है, सत्य की उपेक्षा से वही संसार फन्दा बन जाता है जिसमें फँसा हुआ व्यक्ति निकलने की चेष्टा करता हुआ भी और अधिक फँसता जाता है जब तक कि सत्य की ओर पुनः उन्मुख नहीं हो जाता।

३४२ घर नहीं। घरं घरं। कान की रक्षा कहाँ ?

ऐ प्राणी ! घर शरीर के विश्राम का स्थान है। इसका निर्माण इसलिये होता है कि तन-मन से थका हारा व्यक्ति इसमें आकर विश्राम कर पाये तथा तन-मन की थकावट भूल जाये। ये शरीर के साथी भी इसी उद्देश्य से मिले हैं कि इनका साथ पाकर व्यक्ति लक्ष्य की ओर सुगमता से बढ़ पाये। किन्तु तूने तो घर का रूप ही बदल डाला, तू तो इन संगी-साथियों को ही त्राता जान इन्हीं के पीछे दीवाना हो गया और ये ही तेरे दिन-रात का चिन्तन बन गये। तू इनकी खुशी में खुश रहने लगा तथा इनके दुःख से दुःखी हो गया। तेरे कानों में सदा इनकी आवाज ही गूँजने लगी—तेरा अपना अस्तित्व ही नहीं रहा, तेरी अपनी दुनिया ही उजड़ गयी। अरे पगले ! तेरा त्राता कौन है—तू आज भी इसे जान ले कि तू घर तथा मिले हुए साथियों से लाभान्वित हो सके।

३४३ जैसा सजा। वैसा मजा।

व्यक्ति सदा वैसा ही पाता है जैसे उसके दिल के भाव रहते हैं अर्थात व्यक्ति के भीतर के भाव (विचार) ही उसे सजाते हैं। ऐ प्राणी ! तू कभी शिष्टता के नाम पर केवल कार्यों को सजाने की चेष्टा न करना क्योंकि कार्य समय विशेष के लिये तेरे बाहर की दुनिया को ही सजा पायेंगे, दिल में मजा नहीं दे पायेंगे। तू सदा भावों को ही सजाना—भाव तेरे कार्यों को भी सजा देंगे तथा दिल में भी मजा देंगे। सुन्दर भावों से युक्त होकर तू जहाँ बैठेगा, जो कुछ पायेगा, जितना भी पायेगा उसे पाकर मौज मनायेगा किन्तु केवल कार्यों को सजाने से बाहर से तू मौज मनायेगा, भीतर ही भीतर कष्ट पायेगा

तथा एक समय पश्चात तेरे भीतर का कष्ट बाहर भी छा जायेगा। अतः तू अपनी ओर देख कि तेरे भीतर के भाव व बाहर के कार्य एक जैसे हैं न? यदि नहीं, तो तू उन्हें एक कर क्योंकि उनका एक होना ही सच्ची सजावट है। उस सजावट के पश्चात जीवन में और कुछ पाना बाकी नहीं रह जाता।

३४४ उसी के लिये मर, उसी को याद कर, उसी को कह आ, यही मर्यादा।

ऐ प्राणी! सत्य पथ के राही की मर्यादा सत्य की ओर देखते रहने में है, एक श्वाँस भी सत्य से अलग होने पर उसकी रक्षा सम्भव नहीं, वह पतन की ओर उन्मुख होने लगता है। देख, सत्य की दुनिया ही सच्ची दुनिया है। सत्य को छोड़कर जीने वाला केवल श्वाँस लेता है, जीने का आनन्द नहीं पाता। अतः तू यदि जीना चाहता है तथा बाहरी परिस्थितियों से अपनी रक्षा चाहता है तो तू ईश्वर की शरणागति ले तथा उसी को सदा याद रख। तेरी छोटी सी दुनिया में जब ईश्वर का आगमन हो जायेगा तो तेरी दुनिया बड़ी हो जायेगी और तू उसे सम्मुख देखता हुआ जीवन का आनन्द पायेगा—यही सही मायने में तेरी मर्यादा होगी।

३४५ आस पास (आश, पास) यही अभ्यास। आस पास (अति समीप) नहीं अभ्यास।

ऐ प्राणी! जब तक तू ईश्वर को दूर मानेगा तब तक तुझे उससे आशा बाँधनी पड़ेगी और आशा को पूरी करने के लिये (ईश्वर से) अनेक प्रार्थनाएँ करनी पड़ेंगी। देख, बच्चे को माँ से किसी काम के लिये कहना नहीं पड़ता, मां को बच्चे के सभी कामों का स्वतः ख्याल रहता है। ईश्वर भी तेरा अपना है तथा तेरे अति समीप है। तुझे किसी भी कार्य के लिये उसे कहने की जरूरत नहीं, वह समयानुसार तेरे कार्यों को स्वतः करता है। अतः तू उसको पराया जानकर उससे कुछ पाने की इच्छा न रख, तू उसे अपना मान और उसकी ओर देख कि तू उसकी देन को देख पाये। जब तू उसे अपने आस पास देख पायेगा तो तुझे उससे माँगना नहीं होगा, तू सभी कार्यों का कर्त्ता उसे ही देख पायेगा।

३४६ ऐसी वायु जो युवा बनावे, जरा जरा भी नहीं।

ऐ प्राणी! यह शरीर हवा पर ठहरा हुआ है, मन को भी बलिष्ठ भाव

वायुमण्डल से ही मिलते हैं। व्यक्ति जैसे वायुमण्डल में रहता है वैसे ही कमजोर व बलिष्ठ भावों को वह पाता है। देख, तू हमेशा उसी स्थान पर बैठना जहाँ बैठकर तेरे भीतर में नवीन चेतना का जागरण हो तथा तुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहे। जहाँ बैठकर शिथिलता, कायरता आदि भावों का आगमन हो, वह स्थान तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं। वायुमण्डल के कण जब अन्तर में प्रविष्ट होते हैं तो वे जिन भावों से युक्त रहते हैं, मनुष्य की मनोवृत्ति भी वैसी ही बन जाती है। वायुमण्डल के प्रभाव से ही साधारण सा व्यक्ति अतुल शक्ति-सम्पन्न बन जाता है तथा अत्यन्त बलशाली व्यक्ति भी बुजदिल देखा जाता है। अतः तू सदा ऐसी वायु का सेवन करना अर्थात् ऐसे भावों को ग्रहण करना जो तुझे शक्ति-सम्पन्न बनाये, तेरा शरीर वृद्ध हो जाये किन्तु शिथिलता तेरे समीप भी न आ पाये।

३४७ अभी अज्ञ है तभी बाहरी यज्ञ है।

ऐ प्राणी! जब तक व्यक्ति ईश्वर को अपने से बहुत दूर देखता है तब तक वह ईश्वर के प्रति मुहूर्त्त के सम्बन्ध को नहीं जान पाता। वह केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर यह कहता देखा जाता है कि "सम्पूर्ण कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है"। ऐसे लोग जब विपत्ति से घिर जाते हैं तो उससे रक्षा पाने के लिये ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य भी करते देखे जाते हैं—यज्ञ भी उन्हीं कार्यों का एक छोटा सा रूप है। ईश्वर के लिये किये गये उनके सभी कार्य अज्ञान जनित होते हैं। यदि वे हर पल के साथी को हर पल साथ देख पाते तो शायद उन्हें बाहरी कार्य (यज्ञ) नहीं अपनाने पड़ते, वे देख पाते कि यज्ञ तो हो रहा है—यह संसार एक हवन कुण्ड है जिसमें प्रतिमुहूर्त्त श्वासों की आहुति पड़ रही है। ऐसे में उनके श्वाँस सुन्दर भावों से सज जाते तथा उनका संसार भी सुगन्धपूर्ण हो जाता।

३४८ निरन्तर खोज, निरन्तर जाने।

ऐ प्राणी! आँखों से दिखलाई पड़ने वाली चीजें निरन्तर रहने वाली नहीं किन्तु इन्हें गति देने वाली सत्ता निरन्तर है, वह सत्ता (ईश्वर) ही सत्य है। देख, सत्य का साथ सत्य भावों से जोड़ता है किन्तु झूठे का साथ भयप्रद भावों को सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है। झूठे को अपनाकर व्यक्ति दिन-ब-दिन कमजोर होता जाता है जबकि सत्य का साथ पाकर वह दृढ़तर भावों को अपनाता जाता है। अतः तू तेरा समय झूठे के पीछे न बरबाद कर, तू निरन्तर

सत्य की खोज में रत रह कि निरन्तर रहने वाली शक्ति से तू युक्त हो पाये तथा उन सुदृढ़ भावों को पा जाये जिसे दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी न हिला पाये।

३४९ यह यान नया? नहीं। यह गाथा? नहीं। यह संसार? नहीं। नया—न यह न वह। सभी पुरातन।

ऐ प्राणी! तू हमेशा से एक ही ढर्रे पर चलता आ रहा है—तू बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेता है, वही 'मैं-मेरे' के गीत गाता है तथा उनमें उलझ कर जब कष्ट पाता है तो संसार को भला-बुरा कहता है। तू इन पुरातन भावों से कष्ट पाता रहता है फिर भी इनको कभी छोड़ना नहीं चाहता। देख, तेरा आगमन यहाँ रोने के लिये नहीं हुआ, आनन्द मनाने के लिये हुआ है किन्तु जब तक तू नवीन भावों को नहीं अपनायेगा तब तक आनन्द नहीं पा सकेगा। नवीन भावों का सृजन तेरी दृष्टि बदल देगा। नवीन दृष्टि पाकर तू इसी शरीर द्वारा, इसी संसार में नवीन सन्देश सुनायेगा। तेरे पुराने साथी भी नवीन भावों से सज जायेंगे जब वे तेरा साथ पायेंगे। अतः तू शरीर व संसार से घबड़ा कर दूर न भाग, तू इनके समीप रह किन्तु नवीन भावों से युक्त होकर रह कि तू इन मिले हुए साधनों का सही रूप जान पाये।

३५० संदेह तो देह। दाह नहीं तो कहाँ देह कहाँ दाह।

विश्वास के अभाव में हृदय पटल पर संदेह का सृजन होता है। सन्देह से जलन प्रारम्भ हो जाती है और वह जलन तब तक साथ नहीं छोड़ती जब तक व्यक्ति सन्देह को नहीं छोड़ता। सन्देह की अग्नि में जलता हुआ व्यक्ति विश्वास की शक्ति को खो बैठता है तथा अधिक से अधिक शरीर रक्षा में संलग्न हो जाता है। ऐ प्राणी! यह सन्देह की दाह तुझे कहीं का न छोड़ेगी, इसे अपनाकर तू अपनी शक्ति को भूलता जायेगा अतः तू इसे प्रश्रय न दे। देख, शंका-सन्देह आदि भाव गुमराह करने के लिये तेरे समीप आयेंगे अवश्य किन्तु तू यदि मौज में रहने का इच्छुक रहा तो (तेरे समीप) ठहर नहीं पायेंगे, लौट कर चले जायेंगे। ऐसे में विश्वास के साथ से तू मौज मनायेगा, कैसी भी परिस्थितियाँ तेरे सामने क्यों न आयें, तू प्रत्येक परिस्थिति में स्थित रह पायेगा एवं अनुपम शक्ति पुञ्ज बन जायेगा।

३५१ विश्व खो। विश्वास न खो।

ऐ प्राणी! विश्वास विश्व से भी बड़ा है। विश्व के सहयोग के बिना

रहा जा सकता है किन्तु विश्वास के बिना तो सम्पूर्ण विश्व काटने दौड़ता है, श्वाँस लेना भी कठिन हो जाता है। देख, ऐसे विश्वास रूपी धन को तू किसी भी मूल्य पर न छोड़ना। इसे पाकर ही जो कुछ मिलता है उसका आनन्द लिया जा सकता है। यदि तू इसे छोड़ बैठेगा तो तेरे पास अपना कहने को कुछ भी नहीं रह जायेगा, तू अपने आप से भी अलग हो जायेगा, तेरा जीवन जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं रह जायेगा। अतः तू इस विश्वास रूपी धन को हमेशा सहेज कर रखना, यदि यह ऐसे न टिकता दिखे तो तू विश्वासी का साथ ग्रहण करना कि विश्वास की सम्पत्ति सदा तेरे साथ बनी रहे।

३५२ आज वर की रव और वधू का धुआँ फैल रहा है शान्ति कहाँ?

ऐ प्राणी! आज विज्ञान युग है जिसमें स्थूल की प्रधानता है। व्यक्ति जितना स्थूल की ओर उन्मुख होता जाता है उतना ही वह विषयों से भी घिरता जाता है क्योंकि उसके चारों ओर विषयों का ही बोलबाला है। ये विषय देखने में बड़े मनमोहक होते हैं, भोगते समय भी बहुत भले लगते हैं किन्तु इनका प्रभाव मन-मस्तिष्क पर बहुत खराब पड़ता है। इन्हें अपनाकर दिल-दिमाग विकृत हो जाते हैं, अन्तर की शान्ति खत्म हो जाती है। देख, विषय जब वर (प्रधान) हो जाते हैं तो अन्तर-आत्मा जलने लगती है और उसके धुँए से अन्तर-घट भर जाता है—ऐसे में सब कुछ पाकर भी व्यक्ति कुछ नहीं देख पाता, केवल कराहता रहता है। अतः वधु (अन्तरात्मा) की सुरक्षा के लिये तू शान्ति का रास्ता पकड़ अर्थात् अन्तरात्मा की आवाज सुन कि तू झूठे प्रलोभनों से बच पाये।

३५३ दल न कर। दलन कर। दलदल है।

ऐ प्राणी! ईश्वर की समीपता आनन्द देने वाली है एवं सत्य आँखें खोलने वाली है। सत्य आँखें मिलने से निरर्थक भावों का आगमन हृदय पटल पर नहीं हो पाता तथा जो कुछ (निरर्थक भाव) पहले से रहते हैं उनका भी दलन होने लगता है। किन्तु ईश्वर के नाम पर चलने वाला व्यक्ति भी जब नाम-प्रसिद्धि के चक्कर में पड़ जाता है तब उसकी वृत्तियाँ जो अन्तर्मुखी थीं, बहिर्मुखी हो जाती हैं। वह अपना एक पंथ बनाने लगता है तथा उसके लिये दल बाँधना शुरू कर देता है अर्थात् जिस मत को वह मान कर चलता है उसी के अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में लग जाता है। देख, ईश्वर के नाम पर तू कहाँ आकर अटक गया है। सत्संग तो सत्य का साथ ग्रहण करने के लिये

की जाती है और तू कुछ लोगों का ही संग करके एवं उसी को सत्संग समझ कर नाम-प्रसिद्धि पाने के चक्कर में दलदल में फँसता चला जा रहा है। अरे पगले! सत्संग वन्दन के लिये होती है किन्तु तू बन्धन में बँधता जा रहा है। अतः तू सत्संग की शक्ति को बाहर के कार्यों में अपव्यय न कर, इसके साथ से अन्तर की ओर बढ़ कि तू सत्य का साथ पा जाये और तेरा जीवन सफल हो जाये।

३५४ हाथ नहीं दिल जोड़।

ऐ प्राणी! नमस्कार करना श्रद्धा का प्रतीक है। श्रद्धा जब हृदय में जाग्रत होती है तब हाथ भी स्वतः जुड़ जाते हैं—ऐसा नमस्कार दिल को राहत पहुँचाता है। यदि श्रद्धा के जागरण के बिना ही हाथ जोड़े जायें तो हाथ जोड़ना केवल शिष्टाचार बन जाता है। ऐसे हाथ जोड़ने से दिल खाली रह जाता है, वहाँ कुछ नहीं पहुँच पाता। देख, ईश्वर के सामने तू केवल हाथ न जोड़—ऐसे में तू ईश्वर के समीप बैठकर भी ईश्वर से कुछ नहीं पायेगा, ईश्वर से दूर ही रह जायेगा क्योंकि ईश्वर की दुनिया सच्ची दुनिया है, वहाँ बैठकर जैसा तेरा भाव होगा वैसा ही तू पायेगा। अतः तू ईश्वर से दिल जोड़। ईश्वर जब तेरा अपना होगा तो तू तेरे दिल के जैसे भी भले-बुरे भाव हैं उन्हें ईश्वर के सम्मुख सहजता से रख पायेगा, नकली हाथ जोड़कर ईश्वर को नहीं दिखायेगा। ऐसे में ही तू ईश्वर को तेरे समीप पायेगा तथा दिल से सदा खाली रह मौज मनायेगा।

३५५ कौन रस चाहता है? तन, मन, बुद्धि या अहंकार। खोज स्वयं तो रसमय ही है।

ऐ प्राणी! तू अनन्त रस का भण्डार है किन्तु अपने अन्तर के रस को भूल कर तू बाहर ही बाहर रस के लिये भटक रहा है। देख, अभी तेरी रस की खोज शरीर के लिये है, तेरे अपने लिये नहीं, यदि वह तेरे लिये होती तो तू तेरे अन्तर का रस अवश्य ही समक्ष पा जाता। अभी तेरा तन रस का प्यासा है अतः वह विषयों की ओर भागता है, तेरा मन रस का प्यासा है अतः वह मनोविनोद के साधन खोजता है, तेरी बुद्धि रस की प्यासी है अतः वह बाहर के अनेक साज सजाती है, तेरा अहंकार रस का प्यासा है अतः वह मान-सम्मान के पीछे भागता है। जब ये तन, मन, बुद्धि व अहंकार सब दौड़कर थक जायेंगे फिर भी तृप्ति नहीं पायेंगे तब तू शायद अपने अन्तर के रस का अभिलाषी बन

पाये। जिस दिन तू उस रस का अभिलाषी होगा उस दिन देर-सवेर तू अवश्य ही वह रस पा जायेगा। तब तुझे रस पाने के लिये दौड़ना नहीं होगा, तू जहाँ बैठेगा रस के साथ बैठेगा।

३५६ प्यार वार। तेरा वारा न्यारा हो जाये।

ऐ प्राणी! प्यार तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। प्यार लेकर तू पैदा हुआ है किन्तु मोह-ममता व स्वार्थपरता आदि से घिर जाने के कारण तेरा प्यार संकुचित हो गया है और अब तू प्यार के लिये तरसता है। अरे पगले! प्यार को तू घेरे में न बाँध, तू सबसे प्यार कर। प्यार को घेरे में बाँध कर तू ही बन्धन में बँध जायेगा, चिन्ता-दुःख आदि अनेक भाव तुझे चारों तरफ से घेर लेंगे। किन्तु तू जब सबसे प्यार कर पायेगा तब तेरे बन्धन कट जायेंगे क्योंकि प्यार बन्धन काटने वाला है। देख, अनजाने में भी तू यदि प्यार के नाम पर मोह-ममता को प्रश्रय दे बैठा है तथा कष्ट पा रहा है तो अब भी सचेत हो जा और जिन्होंने प्यार का सही रूप जाना है उनसे तू प्यार कर कि तू अज्ञानतावश जिस बन्धन में बँध गया है उससे छुटकारा पा सके एवं सबसे प्यार कर पाये।

३५७ ला, पी नहीं तो पीला पड़ जाएगा।

ऐ प्राणी! सिर ऊँचा करके चलने वाला जीवन का आनन्द नहीं ले पाता, वह सदा कष्ट देता तथा पाता रहता है। चिन्ता फिक्र आदि अनेक भाव उसे घेर लेते हैं जिनके कारण उसकी शक्ति क्षीण होती जाती है। देख, इनसे उबरने का रास्ता प्रभु की शरण ग्रहण करना है। जब तेरा 'मैं' प्रभु के चरणों में अर्पित हो जायेगा तब तू प्रेम रस का पान कर सकेगा। प्रेम झुक कर ही पाया जा सकता है, जब तक झुकने के भावों का हृदय में आगमन नहीं होता तब तक प्रेम बगल से भी नहीं गुजरता। अतः तू यदि प्रेम रस का पान करके जीवन हरा-भरा देखना चाहता है तो 'मैं' को प्रभु के चरणों में अर्पित कर दे कि तेरी सुस्ती गायब हो जाये और तेरे जीवन में मस्ती छा जाये।

३५८ क्यों बाँधता है, चिल्ला उठेगा।

ऐ प्राणी! शक्ति के अनुसार बोझ यदि हाथ में लिया जाये तो ठीक है किन्तु शक्ति से अधिक बोझ ले लिया जाये तो वह कष्टदायी बन जाता है।

देख, तेरी बोझ बाँधने की आदत हो गई है—तू प्रत्येक कदम के साथ बँध जाता है, जो कुछ (वस्तु-व्यक्ति, धन-जन, मान-सम्मान) तुझे राह में मिलते हैं तेरी दृष्टि उन्हीं में अटक जाती है और वे तेरे साथ चलने लगते हैं। लम्बी सफर पर थोड़ा बोझ भी लेकर चलना कष्टदायी होता है और तू है कि बोझ पर बोझ बाँधे चले जा रहा है। इतना बोझ एक समय तक तू सहन कर लेगा किन्तु वह दिन दूर नहीं जबकि वह तेरी सहन शक्ति के बाहर हो जायेगा और तब तू चिल्ला उठेगा। देख, एक समय पश्चात् व्यक्ति ऐसी स्थिति में आ जाता है कि जिन संस्कारों के बीच वह पलता है उस दायरे से बाहर कदम रखना ही उसके लिये नामुमकिन हो जाता है। अतः तेरी भलाई इसी में है कि तू राह में मिली चकमक की ओर ध्यान न दे, तू एक-एक कदम करके आगे बढ़ता चल, तभी तू मंजिल तक पहुँच पायेगा अन्यथा बन्धन के कष्ट से सदा कराहता रहेगा।

३५९ प्रसन्नता उनके लिये जो नत हों—नहीं तो सन्न सा रह जाता है मन।

ऐ प्राणी! यह संसार एक है किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले प्राणियों को यह भिन्न-भिन्न रूप में दिखलाई देता है। जो स्वभाव से ही नम्र हैं एवं सदा झुक कर चलते हैं उनके लिये यह संसार प्रसन्नता प्रदान करने वाला बन जाता है किन्तु जो नम्रता को भूल अहंकार में ही जीवन बिताते हैं एवं मन से सदा बोझिल बने रहते हैं उन्हें यह संसार दुःखप्रद दिखलाई देता है। देख, तू यदि यहाँ कष्ट देखता है तो वह (कष्ट) संसार में नहीं, तेरे अन्तर में है—तेरे अन्तर का कष्ट ही तू बाहर देख पाता है। अब यदि तू यहाँ प्रसन्नता पाना चाहता है तो जिन भावों को अपनाकर तू कष्ट पा रहा है उन्हें प्रभु के चरणों में अर्पित कर दे कि नम्रता, कोमलता, आदि भाव तेरे जीवन में आ जायें और तेरा संसार सज जाये।

३६० गले की आवाज हृदय के उस स्तर को स्पर्श नहीं करती जहाँ दर्शन के लिये व्याकुलता है।

गले की आवाज चाहे कितनी भी सुरीली क्यों न हो, वह केवल कान को स्पर्श करती है, हृदय को नहीं किन्तु उस आवाज के साथ यदि भाव मिश्रित हो तो वह हृदय के उस स्तर को छेड़ देती है जहाँ कुछ पाने की विकलता है। जिनके हृदय में ईश्वर-मिलन की चाह है, ऐसे जन गले की आवाज से कभी

नहीं रीझ पाते, केवल गले की आवाज से उन्हें कुछ खाली-खाली सा लगता है। वे उस भावपूर्ण आवाज को सुनने के लिये तरसते रहते हैं जो उनके हृदय को झकझोर दे—ऐसी आवाज ही उन्हें राहत देती है। ऐ प्राणी! ईश्वर भी उसी आवाज से रीझने वाला है। जब तक गाकर तू झूमने नहीं लगेगा तब तक तू गाने का आनन्द नहीं पायेगा और तब तक उससे न ईश्वर रीझ पायेगा, न ही जो ईश्वर के हैं वे ही रीझ पायेंगे।

३६१ क्यों नींद? लय में लय हो रहा है। जागृत जाग, रत हो जा, तल्लीन हो जा।

ऐ प्राणी! यह समय बड़ा कीमती है, यह बड़ी तेजी से विलीन होता जा रहा है। देख, तू यदि इसकी कद्र नहीं करेगा तो यह तेरे लिये रुकने वाला नहीं, यह आगे बढ़ता ही रहेगा। अतः तू इसकी तरफ से आँखें न फेर अर्थात् बदहोशी में ही समय व्यतीत न कर, तू सतर्क रहकर इसका सदुपयोग कर। केवल कार्यों द्वारा तू इसका सदुपयोग नहीं कर पायेगा, इसके सदुपयोग के लिये तुझे तेरे भावों की भी कद्र करनी होगी। जब सत्य की प्राप्ति के लिये तू सचेष्ट हो जायेगा तब तेरे कार्य व भाव दोनों सजे होंगे। उस दिन से तेरा समय व्यर्थ नहीं जायेगा, वह तुझे कुछ ऐसा दे जायेगा जिससे तू सदा आनन्द पाता रहेगा तथा आनन्द के साथ ही एक दिन अनन्त में विलीन हो जायेगा।

३६२ क्या सीधी क्या टेढ़ी, जब मर्म न जाने, धर्म न जाने। चिल्लाना—ला कुछ ला नहीं तो ले और दे, चिल्लाना बेकार।

ऐ प्राणी! ईश्वर-मिलन की वही राह सही है जिस पर बढ़कर जीवन तथा जगत का मर्म समझ में आये तथा जिसे अपनाकर धर्म की गुत्थी सुलझ जाये एवं जो भीतर ही भीतर रस-विभोर करती हुई प्राणी को लक्ष्य की ओर खींच कर ले जाये। देख, बाहरी कार्यों से दीखने वाली वे सीधी व टेढ़ी राहें तेरे कोई काम की नहीं जिनसे तू कुछ लाभ न उठा पाये। उन राहों को पकड़ कर तू धार्मिक ही कहलायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा। ऐसे में तू चिल्ला-चिल्ला कर भी ईश्वर को याद करेगा तो भी केवल मुँह दुःखायेगा। देख, ईश्वर तेरे दिल का बोझ लेने वाला है अतः तू केवल ईश्वर का नाम न ले, तू उसे अपना बना तथा उसे अपने दिल का बोझ दे डाल। जब तू ईश्वर की

शरण में होगा तब तू आगे बढ़ने की सही राह पा जायेगा तथा उस पर बढ़ता हुआ धर्म के मर्म को भी जान पायेगा।

३६३ कल तक अज्ञात था। आज पकड़ा, तो मिटा झगड़ा।

ऐ प्राणी! ईश्वर अज्ञात है किन्तु अज्ञेय नहीं अर्थात् ईश्वर आज तेरी आंखों से ओझल है किन्तु 'तू उसे पा ही नहीं सकता' ऐसी बात नहीं है। देख, जिसके हृदय में ईश्वर-मिलन की प्यास है उससे वह दूर नहीं रह सकता, उसके जीवन में एक दिन अवश्य ही ऐसा आता है जब ईश्वर को वह सम्मुख देख पाता है—ऐसे जन का जीवन ही अनुपम होता है। मैं-मेरे का झगड़ा उसके समीप नहीं रहता, रह जाता है एक 'ईश्वर' जो कल तक अज्ञात बना हुआ था—वही सदा उसे आनन्द देता रहता है।

३६४ लय में लीन और भिन्न। ताल बेताल का झगड़ा।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व का संचालन कर्त्ता एक ईश्वर है। जो इस रहस्य को जानते हैं एवं प्रत्येक कार्यों को उसी के द्वारा सम्पादित देख पाते हैं वे जीवन का आनन्द पाते हैं। अन्य जन तो मैं-मेरे की अपनी दुनिया बसाकर भिन्न मार्ग पर बढ़ते जाते हैं एवं कष्ट पाते रहते हैं। देख, सही राह को छोड़कर भिन्न मार्ग को अपनाने वाला तो कष्ट पायेगा ही क्योंकि वह उस राह पर बढ़ रहा है जो भ्रमवश उसे सही नजर आ रही है। देख, लय में गाने वाला स्वयं संगीत का आनन्द ले पाता है तथा अन्य को भी आनन्दित कर पाता है किन्तु वह यदि ताल को छोड़कर बेताला हो जाये तो संगीत का मजा ही किरकिरा कर देता है। अतः जीवन को संगीतमय बनाने के लिये तू लय में गा और ताल पर चल अर्थात् ईश्वर को दिल में बसाकर उसकी दुनिया में आगे बढ़ कि तू उसकी सृष्टि का आनन्द ले पाये।

३६५ एक-सी बात। नहीं, एक ही बात, एक की बात, एक बात।

ऐ प्राणी! जिन्होंने ईश्वर से प्यार किया है तू केवल उनकी बातों को न अपना, उनके भावों को अपना। उनकी बातें सुनने में एक सी लग सकती हैं किन्तु वे सभी बातें एक के लिये होती हैं अतः एक के लिये भाव जगाने वाली होती हैं। यदि तू उनका वह भाव पा जायेगा तो ईश्वर को अवश्य ही सम्मुख देख पायेगा। देख, ईश्वर से मिलने के लिये हृदय की सुदृढ़ भावना चाहिये, प्यार चाहिये व समर्पण चाहिये। जब तेरे हृदय में इन भावों

का प्रादुर्भाव हो जायेगा तब तेरे लिये ईश्वर अज्ञात नहीं रह जायेगा, तू उसे प्रत्यक्ष देख पायेगा। जब ये भाव तेरे अपने होंगे तब तेरे इन भावों को तुझसे कोई नहीं छीन पायेगा। तेरी सदा एक ही बात रहेगी अर्थात् तेरा कदम आगे बढ़कर कभी पीछे नहीं लौटेगा, तू सदा एक की बात करेगा अर्थात् तू उस एक का ही बनकर रहेगा तथा तेरी सभी बातें एक (ईश्वर) के लिये ही होंगी।

३६६ बोल, कुछ ऐसे बोल, दिल को खोल, मन को तोल, रस घोल कि बोल, बोल न रहे, बोल गोल न रहे, बोल में पोल न रहे।

ऐ प्राणी! तुझे मिली हुई प्रत्येक चीजें बहुत कीमती हैं, उनमें वाणी का तो विशेष महत्व है। देख, इस कीमती उपहार की तू सदा कद्र करना कि इससे तू सदा आनन्द पाता रहे तथा अन्य को भी देता रहे। तू वाणी द्वारा ऐसी बातें ही करना जिससे तेरे दिल की सुरक्षा हो तथा तेरे मन को भी प्रसन्नता मिले। तू प्रेम से जब उन बातों को कहेगा तब प्रेम-रस में सनीं तेरी वे बातें अन्य बातों की तरह केवल बात नहीं रह जायेगी, वह तेरे दिल को शुद्ध कर देगी तथा झूठे आडम्बर से भी तुझे मुक्त कर देगी। ऐसे में तू बहकावे की बातें नहीं कर सकेगा और न दिखावे की बातें कर सकेगा—करेगा हमेशा सत्य की बातें जो आनन्द रस को बरसाने वाली होंगी।

३६७ गीत में गति है, संगीत में पति है, योग में यति है, भोग में भगवान, कब पहचान?

ऐ प्राणी! जिन्हें तू प्रसन्नवदन देख पाता है उन्होंने अवश्य ही सत्य का रास्ता पाया है अन्यथा इस अभाव जगत में प्रसन्नता कहाँ दिखलाई देती है। जिनका जीवन तू संगीतमय देख पाता है उन्होंने तो केवल सत्य का रास्ता ही नहीं पाया, सत्य का प्रत्यक्ष साथ पाया है अन्यथा परिवर्तनशील जगत में हमेशा आनन्दित रहना कठिन है। जिनको तू ईश्वर से जुड़ा हुआ देख पाता है वे ही साधु पुरुष हैं, ईश्वर को छोड़कर उनकी न्यारी दुनिया ही नहीं रह जाती एवं जिनका जीवन प्रभु के प्रसाद (भोग) की तरह शुद्ध व निर्मल बन जाता है वे तो ईश्वर के प्रतिरूप ही हो जाते हैं। देख, ऐसे जन को तू केवल बाहर से नहीं देखना, उन्हें तू पहचानने की चेष्टा करना कि वे भाव तेरे जीवन में भी आ जायें तथा तेरा जीवन भी प्रभु का प्रसाद बन जाये।

३६८ स्थिति और गति दो रूप, जहाँ दोनों का रूप लापता, सोच।

ऐ प्राणी ! जैसी स्थिति होती है उसी के अनुसार गति रहती है तथा जैसी गति रहती है वैसी ही स्थिति बनती है अर्थात् विना स्थिति के गति नहीं शुरू होती और विना गति के स्थायी स्थिति नहीं बनती। जहाँ गति और स्थिति दोनों में तीव्रता पाई जाती है वहाँ लक्ष्य की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात् स्थिति और गति दोनों की ही स्थिति नहीं रह जाती, रह जाता है केवल लक्ष्य (सत्य), उसी में व्यक्ति का व्यक्तित्व समा जाता है। देख, ऐसी स्थिति जो पाते हैं उनके हृदय में प्रारम्भ से ही विकलता रहती है। दुनिया के कोई भी प्रलोभन उन्हें नहीं रिझा सकते, उनकी गति सदा सत्य की ओर ही रहती है, उसी की ओर वे तेजी से बढ़ते रहते हैं तथा एक दिन उसी में स्थित होते देखे जाते हैं।

३६९ क्यों मुझे सताया—जब सत न आया। चित्त ने चिन्तन न किया। आनन्द में स्थिति न हुई।

सन्त की शरण से लाभ वे ही उठा पाते हैं जिनके हृदय में सत्य को जानने की जिज्ञासा है। जिनके हृदय में सत्य की जिज्ञासा नहीं, वे सन्त को सम्मुख पाकर भी प्यासे ही बने रहते हैं। ऐसे जन का साथ सन्त के लिये दुःखदायी बन जाता है क्योंकि वे प्रत्येक आगत प्राणी के अन्तर में सत्य की झाँकी देखने को उत्सुक रहते हैं। ऐ प्राणी ! तू सन्त के समीप जाने के पूर्व अपने हृदय को टटोल ले कि तू अपनी पूर्व स्थिति से सन्तुष्ट है या तुझे और कुछ चाहिये ? यदि तेरे अन्तर में सत्य को पाने की अभिलाषा है तो तू सन्त के समीप बैठकर बहुत कुछ पा सकेगा—तेरे अन्तर में दिन ब दिन सत्य की निकटता पाने के लिये बेचैनी हो जायेगी, चित्त में उसी का चिन्तन चलने लगेगा तथा एक दिन ऐसा आयेगा जब तू आनन्दपूर्ण स्थिति पा जायेगा।

३७० आह—राह। देख शाह।

ईश्वर-मिलन की एकमात्र राह 'आह' है, जहाँ आह (तड़पन) नहीं वहाँ राह भी नहीं। वहाँ ईश्वर के नाम पर केवल कुछ कार्य किये जा सकते हैं, ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। देख, आज जहाँ चलने के लिये पगडण्डी नहीं दिखलाई पड़ती, आह से वहाँ चौड़े रास्ते खुलते देखे जाते हैं—उन्हीं राहों पर बढ़कर सत्य का जिज्ञासु एक दिन सत्य से मिल पाता है। उसके हृदय की दिन-रात की बेकली उसे तब तक चैन नहीं लेने देती जब तक सत्य

को वह प्रत्यक्ष नहीं पा जाता। ऐसे जिज्ञासु जन के लिये वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब वह सब पर शासन करने वाले शाह (ईश्वर) को देख पाता है।

३७१ आज—आजा। कल काल की चिन्ता न रहे।

ऐ प्राणी ! तू आज का समय गफलत में न विता अन्यथा तू मौत से सदा भयभीत बना रहेगा। देख, मौत से वे ही डरते हैं जो मिले हुए समय के प्रति सजग नहीं रहते तथा जिस कार्य के लिये आये हुए हैं, उसे पूरा नहीं करते। अतः तू आज, अभी से ही ईश्वर की शरण ग्रहण कर ले। तू जब प्रभु के चरणों में आश्रय पा जायेगा तब तू कार्य व भाव सभी के प्रति सावधान रहेगा। तेरी आँखें पहरेदार बन जायेंगी, न वे किसी गलत कार्य को होने देंगी और न ही गलत भाव को अपनाने देंगी परिणाम तू सदा मौज में रह पायेगा। ऐसे में तेरा भविष्य उज्ज्वल रहेगा—न तुझे कभी भविष्य की चिन्ता रहेगी और न मौत का भय ही तेरे सम्मुख रह जायेगा।

३७२ लीला में ही मन मिला, जरा देख भी।

ऐ प्राणी ! तू धर्म के नाम पर अवतारी भगवान की लीला के गीत गाता रहता है, इससे तू उनके कार्यों में ही अटक जायेगा, उनके भाव से दूर ही रह जायेगा। देख, उसकी लीला आज भी हो रही है। तू तेरे चारों तरफ जितना भी पसारा देख पाता है, यह सब उसी की लीला है। जब तू प्रत्येक समय हो रही उसकी लीला को देख पायेगा तब ईश्वर को सदा साथ देख पायेगा अन्यथा केवल भाव विहीन रहकर उनके कार्यों के गीत गाता हुआ मन बहलायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा—तू ईश्वर के द्वार पर आकर भी कोरा का कोरा रह जायेगा। अतः तू उनकी लीला में मन न मिला, लीला में कौन सा ऐसा भाव छुपा था जिसके कारण उनकी लीला आज भी गाई जाती है, उन भावों में मन मिला कि उसे सदा सर्वदा साथ देख पाये।

३७३ निगाहें नीची। प्रेम सींची। यही ध्यान—क्यों अभिमान ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर प्रेमी सर्वथा अहंकार शून्य होता है, उसकी दृष्टि हमेशा प्रभु चरणों में लगी रहती है। वह किसी भी कार्य को अपने द्वारा सम्पादित नहीं देखता, सभी कार्य ईश्वर द्वारा अनुबन्धित देख पाता है। ईश्वर की लीला का पसारा सर्वत्र देख पाने से उसकी आँखें हमेशा प्रेम रस में पगी

रहती हैं, उसको ईश्वर का ध्यान लगाना नहीं पड़ता, ध्यान स्वतः रहता है। देख, जिन्होंने ईश्वर को देखा नहीं, वे ध्यान की क्रिया कर सकते हैं, ईश्वर का ध्यान नहीं लगा सकते क्योंकि ईश्वर को देखे बिना उसका ध्यान आना कठिन है—ऐसे जन ही ध्यान का अभिमान भी करते देखे जाते हैं। जो ध्यान अभिमान दे, वह ध्यान ध्यान नहीं केवल ध्यान की क्रिया है। अतः तू यदि प्रेम पथ का इच्छुक है तो अपना रास्ता बदल डाल। तू प्रभु की शरण ग्रहण कर तथा प्रभु प्रेमियों के समीप बैठकर प्रेम रस का पान कर। जिस दिन ईश्वर तेरा अपना हो जायेगा उस दिन तू स्वाभाविक ध्यान को पा जायेगा।

३७४ रंग में रंग। भंग में भंग। रंग में भंग क्यों?

ऐ प्राणी! यह संसार रंग भूमि है, यहाँ हर समय रंग की बौछार हो रही है। यहाँ प्रत्येक चीज का अपना एक रंग है, फिर भी तू रंग विहीन घूम रहा है। देख, इस रंग भूमि में तू ऐसे न घूम, तू हर समय हो रही रंग की बौछार की ओर देख कि तू भी एक रंग पा जाये। तेरी अहंता, ममता तुझे उससे दूर किये हुए है, जिस दिन तू रँग की ओर उन्मुख होगा उस दिन उनका परित्याग हो जायेगा और तू रंग में रंग जायेगा। रँग का नशा तेरे तन-मन-प्राणों में छा जायेगा, तू हमेशा प्रभु प्रेम में उन्मत्त हुआ आनन्द मनायेगा। यदि तू यहाँ आकर भी रंग विहीन ही घूमता रहेगा तो ये स्थूल आकर्षण तेरा रंग नहीं टिकने देंगे—यह रंगभूमि ही तेरे लिये कंटकाकीर्ण बन जायेगी।

३७५ राख देख कर्म का अन्त? नहीं। रख चरणों में नहीं तो राख से भी भूत बन बैठेगा।

ऐ प्राणी! तू समझता है कि शरीर खत्म होने से तेरे दुःखों का भी अन्त हो जायेगा—किन्तु बात ऐसी नहीं। शरीर जाने से वे दुःख खत्म नहीं होंगे, वे तुझे पुनः शरीर धारण करने को बाध्य करेंगे और जब तक तू उनसे शरीर रहते छुटकारा नहीं पा लेगा तब तक तेरे साथ बने रहेंगे। देख, इनसे छुटकारा पाने का रास्ता शरणागति है। ईश्वर की शरण तेरी बन्द आँखें खोल देगी और तब तू देख पायेगा कि सभी कार्य ईश्वर-प्रदत्त हैं एवं तेरी भलाई के लिये हो रहे हैं। बदली हुई दृष्टि तुझे सभी परिस्थितियों में आनन्द देती रहेगी अन्यथा तू अपनी संकुचित दृष्टि से संसार को देखता हुआ कष्ट पाता रहेगा। तू यदि संसार का आनन्द लिये बिना अधूरे में ही चला गया तो सदा इन्हीं विषयों के चातुर्दिक मँडराता रहेगा।

३७६ घर पर मिले—घर बाहर मिले—बाहर बाहर रहे।

ऐ प्राणी ! ईश्वर बाहर नहीं, तेरे भीतर है। तू भीतर वाले को बाहर न खोज अन्यथा तू खोज-खोज कर थक जायेगा फिर भी तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा। देख, अन्तर में अनुभूति पाये बिना बाहर तेरे सम्मुख साक्षात ईश्वर भी खड़ा हो जायेगा तो भी तू उसे नहीं पहचान पायेगा। अतः तू उसे घर पर (भीतर) खोज। जब तू उसे घर में देख पायेगा तब बाहर भी देख पायेगा तथा सर्वत्र भी उसी का जलवा देख पायेगा। भीतर-बाहर का यह आकर्षण तेरे रोम-रोम को पुलकित कर देगा अन्यथा तू ईश्वर को सदा बाहर (मन्दिरों में, तीर्थों में) ढूँढ़ता रहेगा फिर भी ईश्वर को कभी नहीं पायेगा, ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

३७७ नाच नहीं तो नाश, तन नाश, मन नाश।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर की दुनिया में मौज मनाने आया है। देख, तू यदि इस मिले हुए समय की कद्र नहीं करेगा तो तुझे मिला हुआ यह कीमती समय बह जायेगा और तू आनन्द नहीं ले पायेगा। अतः तू इस कीमती समय को इधर-उधर में न खो, तू ईश्वर की अनुपम देन को सम्मुख देखते हुए सदा प्रसन्न रह तथा देख कि वह सदा तेरे साथ रहकर तेरे सभी कार्य सम्पादित कर रहा है। उसकी देन को देख पाने से तू सदा नाचता रहेगा अन्यथा नाश की ओर बढ़ता जायेगा। चिन्ता और दुःख से घिर जाने के कारण तेरे तन का नाश हो जायेगा तथा भले-बुरे विचारों के आक्रमण से तेरा मन विक्षिप्त हो जायेगा। तन-मन की संयुक्त क्रिया तुझे बेचैन बना देगी परिणाम तू एक पल के लिये भी प्रमुदित नहीं हो पायेगा। अतः झूठे झगड़ों में न पड़कर तू उसके कार्यों को देख कि तेरा रोम-रोम खिल जाये तथा पोर-पोर नाच उठे।

३७८ नाचते नाचते मोह लिया त्रिलोक को। नाश तो हताश। शिव नाचे—भूत जागे—भय भूत भागे।

ऐ प्राणी ! प्रसन्नवदन रहने में बहुत बड़ी शक्ति है, प्रसन्नवदन रहने वाले का हृदय नाचने लगता है। हमेशा प्रसन्नवदन रहने वाले शिव ने भूमण्डल के सभी प्राणियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। देख, सबकी कल्याण कामना चाहने वाले तथा हमेशा प्रमुदित रहने वाले का साथ पाकर प्राणी में नवीन चेतना का जागरण हो जाता है। ऐसे में व्यक्ति सोया नहीं रह सकता

एवं जिन कमजोर भावों से वह घिरा हुआ है वे कमजोर भाव भी उसके समीप नहीं रह सकते। देख, तू यदि प्रमुदित भाव नहीं अपना सकेगा तो नाश की ओर बढ़ता जायेगा, तेरे तन-मन सब विक्षिप्त हो जायेंगे और तू जीवन से हताश हो जायेगा—ऐसे में जीवन व जगत किसी भी चीज का आनन्द तू नहीं ले पायेगा।

३७९ सब शेष, जब शेष पर सो, गणेश, महेश, रमेश को रमाया और द्वन्द मिटाया।

ऐ प्राणी! विषय भोगों का आकर्षण शेषनाग की तरह डसने वाला है। विषयों के आकर्षण में बँधा प्राणी अनेक द्वन्दों से घिर जाता है, न वह सुख की नींद सो सकता है और न सुख से खा-पी सकता है। किन्तु जो जीवन की श्रेष्ठता को जानते हैं तथा सबके कल्याण की भावना हृदय में धारण कर, सबका भला चाहते हैं उन्हें विषय रूपी सर्प डस नहीं सकते, वे इन्हीं विषयों के बीच, इसी भूमि पर आनन्द मनाते हैं। उनके समीप दुःख, चिन्ता आदि कोई भी भाव ठहर नहीं सकते और न ही अन्य कोई भाव उन्हें सता सकते हैं। वे आज भी मौज में रहते हैं तथा कल भी मौज मनाते हैं तथा एक दिन मौज के साथ ही विदा हो जाते हैं।

३८० डरता क्यों है? अनिष्ट के लिये? निरर्थक। प्रिय का अनिष्ट नहीं। घटना हो तो घटे, बढ़ना, बढ़ाना क्यों?

ऐ प्राणी! तू यदि मेरा है तो तू अपने अनिष्ट की आशंका से घबड़ा नहीं क्योंकि जो मेरे हैं उनका कभी अनिष्ट नहीं होता। देख, देखने में बहुत से काम तुझे विपरीत से लग सकते हैं किन्तु वे सब तेरी भलाई के लिये हैं अतः तू उन सभी कार्यों को मेरे द्वारा सम्पादित जानकर निर्भय विचरण कर। जब तू सभी कार्यों का कर्त्ता मुझे देख पायेगा तब सभी कार्यों में अपनी भलाई देखता हुआ आनन्द मनायेगा, भय-चिन्ता-दुःख आदि तेरे समीप नहीं ठहर पायेंगे। जैसे-जैसे तू मुझे अपने करीब देखेगा वैसे-वैसे तू डर-भय से मुक्त होता जायेगा तथा एक समय ऐसा आयेगा जब भय के लिये तेरे हृदय में स्थान नहीं रह जायेगा, तू निर्भय हो मेरी गोद में बैठा आनन्द मनायेगा।

३८१ अक्षत चढ़ाते चढ़ाते अक्षत न हो सका तो क्या अक्षत चढ़ाये?

ऐ प्राणी! ईश्वर की पूजा के लिये काम में लायी जाने वाली वस्तुएँ

प्रतीक होती हैं हृदय के भावों की। ईश्वर-भक्त ईश्वर से जो कुछ चाहता है उसे ही ईश्वर के सम्मुख भाव से अर्पित करता है। अक्षत का अर्थ है—जिसका कभी नाश न हो। भक्त ईश्वर को अक्षत चढ़ाकर उन भावों को पाना चाहता है जो अजर, अमर हैं। देख, भाव की दृष्टि पाये बिना अक्षत चढ़ाना केवल पूजा का एक काम बन जायेगा, अक्षत जिस भाव की प्राप्ति का प्रतीक है उससे तू दूर ही रह जायेगा। अतः पूजा को तू काम न बना, तू भाव से पूजा कर कि अमर भाव पा जाये।

३८२ माला पहनाई फिर भी बाँध न सका प्रेम बन्धन में, पिरो न सका हृदय को, खिल न सका फूल की तरह तो कैसी पूजा?

ऐ प्राणी! ईश्वर को माला पहनाना ईश्वर को अपनाने व ईश्वर का हो जाने का प्रतीक है किन्तु पूजा करने वाला यदि माला पहना कर ही खुश हो जाये तो वह माला का प्रतिफल नहीं पा सकेगा। देख, ईश्वर को माला अर्पित करने के पूर्व हृदय का प्रस्फुटित होना अति आवश्यक है। अतः तू उन भावों को ग्रहण कर जिनसे तेरा हृदय फूल की तरह खिल जाये। अब हृदय के उन भावों को प्रेम सूत्र में पिरोकर तू प्रभु को पहना दे कि ईश्वर तेरा अपना बन जाये, वह तुझसे दूर न रह पाये, तू ईश्वर को सोते-जागते हर समय साथ देख पाये—ऐसी अवस्था में ही तेरी पूजा सार्थक होगी।

३८३ चन्दन रगड़ा सुगन्ध फैली किन्तु कह न सका "प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी" तो कैसा चन्दन?

ऐ प्राणी! तू ईश्वर की पूजा के निमित्त जो चन्दन रगड़ता है उससे सुगन्ध फैलते देखता है किन्तु तू इसे पूजा के समय ईश्वर के मस्तक पर लगा कर ही खुश हो जाता है, उसकी सुगन्ध को जीवन में धारण करके सुगन्ध से परिपूर्ण नहीं हो पाता। देख, चन्दन सुगन्ध का प्रेरक है, तू इसे केवल पूजा का कार्य न बना—कार्य बनाने से तू पूजा करके भी सुगन्ध से दूर ही रह जायेगा किन्तु तू यदि उसका भाव पा सका तो तेरा जीवन सुगन्ध से भर जायेगा। देख, जल का सम्पर्क पाकर चन्दन सुगन्ध बिखेरता है, तेरा हृदय भी जब शुद्ध जलवत् होकर प्रभु के अर्पित हो जायेगा तो चन्दनवत् ईश्वर-प्रेम सुगन्ध बनकर तेरे रोम-रोम में पैर जायेगा—यथार्थ में चन्दन रगड़ना तथा प्रभु के मस्तक पर लगाना दोनों ही तेरे तभी सार्थक होंगे।

३८४ तो क्या यों ही चावल, फूल माला, चन्दन का अर्पण हुआ ? नहीं—संकेत लक्ष्य की ओर हो तो पूजा सजीव ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर-मिलन की व्याकुलता के बिना चावल, फूलमाला, चन्दन का अर्पण केवल कार्य बनकर रह जाता है, हृदय में भाव की जागृति नहीं कर पाता । किन्तु हृदय की व्याकुलता से जब पूजा की विधि सम्पन्न की जाती है तब इन्हीं वस्तुओं का अर्पण अद्भुत भाव की सृष्टि कर देता है । देख, तेरी पूजा जिस दिन से सजीव हो जायेगी उस दिन से तू ईश्वर को सदा प्रत्यक्ष देख पायेगा । तब तेरा ईश्वर मूर्त्ति नहीं रह जायेगा, स्वयं में भी तू उसे ही प्रतिष्ठित देख पायेगा तथा विश्व के कण-कण में भी उसी को आच्छादित देख पायेगा ।

३८५ गुरु पर वार—आज गुरुवार ।

ऐ प्राणी ! गुरु वह है जिसकी शरण अन्धकार खत्म कर दे तथा प्रकाश की ओर उन्मुख करे । गुरु की शरण पाये बिना व्यक्ति अनजानी राहों पर अन्धेरे में ही भटकता रहता है, 'सही क्या है' इसे नहीं जान पाता । देख, संसार का स्थूल रूप देखने के लिये जैसे स्थूल आँखों की जरूरत है वैसे ही संसार का सही रूप जानने के लिये सत्य आँखों की जरूरत है । सत्य आँखें पाकर ही शरीर तथा संसार का आनन्द लिया जा सकता है । अतः तू आज ही गुरु की शरण ग्रहण कर क्योंकि आज गुरुवार है । आज का दिन संकेत दे रहा है कि गुरु की शरण में ही तुझे सही दृष्टि मिलेगी । जीवन का गुर भी तू गुरु की शरण में ही पा सकेगा ।

३८६ अनहद की बाँसुरी बजा, राधा सुनेगी, मूर्छित हो जायगी—कृष्ण में रम जायगी ।

ऐ प्राणी ! प्रेम असीम भाव है । प्रेम की चाह यों तो सबमें है किन्तु कुछ के जीवन का लक्ष्य ही प्रेम को पाना होता है । देख, प्रेम तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है । जब अन्य भाव (स्वार्थ, मोह आदि) तेरे हृदय में प्रश्रय नहीं पायेंगे तब तू प्रेम से सज जायेगा । ऐसे में तेरी वाणी का जादू अपूर्व होगा । तेरी प्रेममयी वाणी तब सबका मन लुभाने वाली होगी—राधा (हृदय) तो ऐसी वाणी सुन सुध-बुध ही भूल जायेगी । अन्य आकर्षण उसके सम्मुख नहीं रह जायेंगे, केवल आकृष्ट करने वाला प्रेम (कृष्ण) ही उसका सर्वस्व होगा तथा वह उसी में रम कर एक हो जायेगी ।

३८७ **ज्ञान तो शान है**
भक्ति है तो शक्ति है
नहीं तो अनजान है
कम बख्ती है ।

ऐ प्राणी ! ज्ञान जानकारी का नाम है, यह सत्य की जानकारी देता है । जीवन में चमक जानकारी (ज्ञान) से ही आती है अन्यथा प्राणी जीवित ही मृतक तुल्य रहता है । भक्ति साधारण से प्राणी में अनुपम शक्ति भर देती है, अहंता ममता से शून्य भक्त ईश्वर के चरणों में झुककर ईश्वरीय शक्ति से सज जाता है । ज्ञान के बिना व्यक्ति सदा सत्य से अनजान ही बना रह जाता है तथा असत्य को सत्य जानता हुआ कष्ट पाता रहता है । भक्ति के बिना तो उसे पग-पग पर लांछित होना पड़ता है, वह स्वयं को हर कदम पर कमजोर महसूस करता है । भीतर बाहर से उसकी अवस्था दयनीय हो जाती है, अपने आपको भाग्यहीन समझने के कारण वह सुचारु रूप से किसी भी कार्य को सम्पादित नहीं कर पाता । देख, भक्ति और ज्ञान दो आँखें हैं, इनके साथ से ही तेरी जीवन यात्रा सुगम होगी और तू शान से आगे बढ़ता हुआ अक्षुण्ण शक्ति का स्वामी बन सकेगा ।

३८८ **सन्त अवतारी से महान हैं । अवतारी आते हैं किसी को दंड देने किन्तु यह सन्त ही है जो रावण और राम को गोद में बैठाते हैं । सन्त बादलों की तरह छाया करते हैं और जीवन सुखमय बना देते हैं ।**

ऐ प्राणी ! अवतारी भगवान (राम, कृष्ण आदि) जब-जब धरा पर आये तब-तब उन्होंने पाश्विक शक्ति का संहार किया किन्तु सन्त ने कभी किसी का संहार नहीं किया, उन्होंने तो प्रेम की भावना से उनका पाश्विक भाव ही बदल दिया अर्थात् उनका शृङ्गार किया । सन्त ने भले बुरे सभी को गले से लगाया, कभी किसी में दोष नहीं खोजा । जैसे बादल सभी पर छाया करते हैं, सभी जगह वृष्टि करते हैं, सभी का जीवन सुखमय बनाते हैं वैसे ही सन्त ने भी सबके प्रति प्रेम की भावना रक्खी तथा सभी पर प्रेम का वर्षण किया । देख, अवतारी भगवान के गीत गाकर तू जो कुछ नहीं पा सकेगा वह सन्त की शरण में बैठकर पा जायेगा । अवतारी भगवान को तू अपनी

दृष्टि से देखेगा किन्तु सन्त की शरण तो तेरी दृष्टि ही बदल देगी। जब तेरी दृष्टि बदल जायेगी तब तेरी सृष्टि भी बदल जायेगी—तू इसी सृष्टि में, इन्हीं लोगों के बीच रहता हुआ आनन्द मनायेगा।

३८९ सन्त को तन दे—सन्तन ढिग बैठ जायगा।
सन्त को मन दे—मन का शमन हो जायगा।
सन्त को बुद्धि दे—सम बुद्धि में समा जायगा।
सन्त को अहंकार दे—सोऽहं में हो जा।
सन्त को रूप में देख—स्वरूप में लीन हो।

ऐ प्राणी! जब सन्त के लिये तेरे हृदय में श्रद्धा होगी और तू उनकी सेवा में अपना सौभाग्य जानेगा उस दिन तू सही मायने में उनकी शरण पायेगा। उनकी शरण में जब तेरे मन को रस मिलने लगेगा तब मन का अन्यत्र भ्रमण छूट जायेगा, वह उन्हीं की वाणी का रसपान करता हुआ आनन्द मगन हो विचरण करता रहेगा। उनकी शरण में बुद्धि समता को प्राप्त होगी, वह भ्रमित नहीं कर पायेगी, सम भाव से सज जायेगी। सन्त की ओर देखते-देखते जब तू सर्वथा अहंकार-शून्य हो जायेगा, तुझे 'मैं' का भान भी नहीं रह जायेगा उस दिन तू ईश्वर रूप हो जायेगा। देख, यह सन्त ही है जिसकी ओर देखते-देखते एक दिन शरीर का भान नहीं रह जाता—उसी दिन साधारण सा प्राणी आनन्द रूप बन जाता है।

३९० जो स्वयं सरल है उसके लिये क्लिष्ट कल्पना क्यों? सरल है इसलिये वह नहीं हो सकता ऐसी भावना क्यों? ये मुद्रा, यह आँखें बन्द करना कब तक? सरल को सरल ही पाता है।

ऐ प्राणी! जो जैसा रहता है उसको पाने के तरीके भी वैसे ही अपनाने पड़ते हैं, अतः तू ईश्वर को पाने के लिये ऐसी कल्पना न कर कि वह कड़ी साधना के द्वारा ही पाया जा सकता है। यदि तू ऐसा समझ बैठेगा तो अपनी कल्पना के कारण तू साधना में ही अटक जायेगा, ईश्वर को कभी करीब नहीं देख पायेगा। सरलता में तू यदि कहीं उसका आभास भी पायेगा तो भी तू उसे भ्रमवश नहीं अपना पायेगा क्योंकि ईश्वर को पाने के लिये तू अभी क्लिष्ट कल्पना करता है। आसन जमाना, ध्यान लगाना आदि अनेक

क्रियाओं में ही तू यदि उलझा रहेगा तो जीवन पर्यन्त उन्हीं को दोहराता रहेगा। देख, ईश्वर सरलता की मूर्त्ति है, तू उसे अनेक कार्यों से नहीं, सरलता से ही पा सकेगा। जब तेरा हृदय सरल हो जायेगा, छल-कपट-स्वार्थ आदि भाव तेरे समीप प्रश्रय नहीं पायेंगे तथा तेरे जीवन का चरम लक्ष्य प्रभु की शरण पाना हो जायेगा तभी तू उसे रोम-रोम में आच्छादित देख पायेगा और उसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर पायेगा।

३९१ रक्षा उसी की जो क्षार हो जाये। क्षार बना आँखों का सुरमा बना। बन्धन की क्षार, विचारों के बन्धन की क्षार तो गुरु ही करते हैं। आज रक्षा का बन्धन गुरु के चरणों में अर्पण करो।

ऐ प्राणी! संसार में रक्षा उसी की सम्भव होती है जो गुरु के चरणों की रज बन जाते हैं तथा जिनके जीवन का सर्वस्व सद्गुरु होते हैं। देख, गुरु के चरणों की रज बनने वाला गुरु के भावों को पा जाता है, उन भावों को जो गुमराही को राह दिखाने वाले हैं एवं जीवन में ज्योति जगाने वाले हैं। जब तक गुरु की शरण नहीं मिलती तब तक व्यक्ति मोह-ममता व स्वार्थपरता आदि अनेक बन्धनों में जकड़ा रहता है तथा उसके अपने ही विचार बन्धन के कारण बने रहते हैं। सद्गुरु कब बन्धनों को काट देते हैं—इसे व्यक्ति जान भी नहीं पाता और बन्धन रहित हो जाता है। अतः तू रक्षा के लिये अन्य की ओर न देख, तू सद्गुरु की शरण ग्रहण कर कि तेरे प्रत्येक पल की रक्षा होती रहे।

**३९२ कुछ भी करो मालिक से मिलो।
मन मुनीम की एक न सुनो।**

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व का मालिक एक ईश्वर है। मन केवल मुनीम है, यह मालिक की सलाह से ही ठीक-ठीक काम कर सकता है। देख, मालिक की निगरानी के बिना काम करने वाले मुनीम की नीयत सही नहीं होती, ईश्वर से मिले बिना मन का भी निर्देशन सही नहीं होता, वह सदा भटकता रहता है एवं भटकाता रहता है। अतः तू मन के इशारे पर न नाच, प्रथम तू ईश्वर से मिल। जब तेरे हृदय में ईश्वर-मिलन की चाह होगी तब तू ईश्वर-मिलन की राह पा जायेगा क्योंकि ईश्वर-मिलन की राह केवल व्याकुलता से ही पाई जा सकती है। अब हृदय में व्याकुलता लिये हुए तू कुछ भी कर, राह में कोई

भी बाधा आये तो भी तू उसकी तरफ न देख, तू केवल आगे बढ़ता चल और तब तक बढ़ता चल जब तक मालिक को पा न जाये।

३९३ समीप के लिये तीव्र घोष क्यों? यदि दूर समझो तो भले ही पुकारो।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरे अति समीप है, वह तेरे श्वासों-प्राणों से भी निकट है। देख, जो दूर रहते हैं उन्हें जोर से आवाज देकर बुलाना पड़ता है किन्तु जो समीप हैं उन्हें बुलाना नहीं पड़ता। ईश्वर को भी तुझे जोर से आवाज देकर बुलाने की जरूरत नहीं क्योंकि वह तेरे अन्तर में बसा तेरे अन्तर की प्रत्येक गतिविधि को देखने वाला है। अभी तेरी दृष्टि बाहर की ओर है तभी तुझे उसको आवाज देनी पड़ती है। जब तेरी दृष्टि अन्तर की ओर उन्मुख होगी तब तू उसको अति समीप देख पायेगा, प्रत्येक श्वाँस भी उसी के द्वारा परिचालित देख पायेगा। अन्यथा उसे भुलाकर तू कष्ट पाता रहेगा और जब कष्टों से घबड़ा जायेगा तब उसका नाम ले-लेकर पुकारता रहेगा फिर भी उससे दूर ही बना रह जायेगा।

३९४ रण से शरण में आ,

रण करते करते उऋण कब?

आ, आ, आनन्द में समा,

आज नन्द के घर आनन्द।

ला, ला, मन मुरली ला,

नन्द लाला के सम्मुख बजा।

ऐ प्राणी! तू जब तक ईश्वर की शरण नहीं ग्रहण करेगा तब तक परिस्थितियों से जूझता रहेगा तथा भाग्य को कोसता रहेगा। ऐसे में तुझे मिला हुआ समय अशान्ति में ही खत्म हो जायेगा तथा तू ईश्वर के ऋण से उऋण नहीं हो पायेगा। यह मनुष्य-जन्म ईश्वर कृपा का फल है, तू यदि उसकी कृपा को नहीं जान पायेगा तो कृपा के रूप में मिला हुआ तेरा यह जन्म बेकार ही चला जायेगा। देख, आज भी समय है आज भी तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर ले एवं 'ईश्वर ही तेरा अपना है' इसे पहिचान ले। जब तू ईश्वर की ओर उन्मुख होगा तब केवल तू ही प्रसन्न नहीं होगा, ईश्वर (आनन्द बाँटने वाला) भी आनन्द मनायेगा। अतः तू विलम्ब न कर, तू मन को मुरली

बनाकर प्रभु-प्रेम के गीत गाता रह कि तू भी रीझ जाये तथा तेरा प्रिय भी रीझ पाये—तेरा मन अन्यत्र नहीं भटके, हमेशा प्रभु के चरण कमलों का भँवरा बन रसपान करता रहे।

३९५ गोपाल की, मसीहा की, व्यापारी की, यहाँ तक की जुलाहे की बातें चली आ रही है। क्या तेरी न सुनी जायगी?

ऐ प्राणी! ईश्वर को जब भी किसी ने याद किया है उसकी बातें सुनी गई हैं—चाहे वह किसी भी उम्र का रहा हो, किसी भी धर्म का रहा हो, कोई भी कार्य करता रहा हो या किसी भी जाति का रहा हो। देख, ईश्वर सबका है, वह सब पर समान रूप से दृष्टि रखता है किन्तु उससे लाभ वे ही उठा पाते हैं जिनके लिये ईश्वर अपना है। जब-जब किसी ने ईश्वर को याद किया है तब-तब उसकी सुनी गई है, तू भी जब उसे प्यार से याद करेगा तो तेरी भी जरूर सुनी जायेगी, केवल सुनी ही नहीं जायेगी, तू वह भाव पा जायेगा कि सदा याद किया जायेगा क्योंकि ईश्वर की शरण ऐसी ही होती है।

३९६ अब भी मान? अभिमान?

अभी, मान न कर
मान मेरी बात मान,
अभिमान, मान लीला,
नाम लीला में न फँस
अब तो हँस, तेरा प्रियतम आया,
मनमोहन आया, नन्द ने बुलाया
कृष्ण आया, बलदेव भाया।

ऐ प्राणी! ईश्वर की शरण नम्रता देने वाली है और तू है कि ईश्वर का नाम लेता हुआ भी मान, अभिमान से घिरा हुआ है। देख, मान-अभिमान तुझे शोभा नहीं देते क्योंकि तूने ईश्वर की शरण ली है। अतः तू तेरी भलाई चाहता है तो अभी से ही मान करना छोड़ दे। अवतारी भगवान की कथा (नाम लीला, मान लीला व अभिमान लीला) सुनकर तू उन्हीं में फँस जायेगा, उससे नम्रता नहीं पायेगा। नम्रता पाने के लिये एवं ईश्वर का होने के लिये भीतर व बाहर का समान आकर्षण चाहिये, वह आकर्षण सन्त-वाणी में मिलता है। सन्त-वाणी जब तेरे मन को मोहित कर लेगी और तुझे अपनी

ओर आकृष्ट करती रहेगी तब तू सन्त-वाणी से लाभ उठा सकेगा। ऐसी वाणी का आश्रय पाकर ही तू प्रियतम प्रभु को सदा साथ पायेगा एवं प्रसन्नता से तेरा जीवन भर जायेगा।

३९७ लोग कहते हैं—

किसकी बनी रही है ?
किसकी बनी रहेगी ?
किन्तु बात कुछ दूसरी है—
तेरी बनी हुई है,
मेरी बनी रहेगी।

ऐ प्राणी ! जीवन में उतराव-चढ़ाव आते ही रहते हैं, समान स्थिति किसी की नहीं रहती—शरीर, धन, जन, मान-सम्मान सभी की यही बात है किन्तु ईश्वर की दुनिया सच्ची दुनिया है उसकी यह बात नहीं। जो ईश्वर की दुनिया में बैठ जाते हैं, वे जीवन का आनन्द मनाते हैं—वे शरीर जाने पर भी नहीं जाते क्योंकि ईश्वर सदा रहने वाला है। देख, भक्त की हमेशा एक जैसी बनी रहती है, दिन व दिन उसके भावों में वृद्धि ही होती है, न्यूनता नहीं आती क्योंकि वह जिसका है वह (ईश्वर) अविनाशी है। देख, विनाशी में परिवर्तन होता रहता है किन्तु अविनाशी में परिवर्तन कैसा ? उसका सामीप्य तो अविनाशी भाव को बढ़ाता रहता है। अतः भक्त की सदा बनी रहती है क्योंकि वह भगवान का है और भगवान तो सदा था, है और सदा बना रहेगा किन्तु वह सदा देखा जायेगा भक्त की आँखो से ही।

३९८ शान एक नशा है। दिल को प्रेम में सान। नशा नाश हुआ।

ऐ प्राणी ! स्थूल में विचरण करते करते तू झूठी शान-शौकत में फँस गया है। शान एक ऐसा नशा है कि जब यह चढ़ जाता है तब जल्दी उतरता नहीं। इसमें वृत्तियाँ बाहर ही बाहर चक्कर काटने लग जाती हैं और व्यक्ति भीतर से दूर होता जाता है, उसके पास अपना कहने को कुछ नहीं रह जाता, वह भीतर ही भीतर टूटने लगता है। देख, इस नशे से बचने का एक ही रास्ता है, वह है 'प्रेम'। तू कहीं यदि प्रेम की मूर्त्ति (सन्त) को पा जाये तथा तेरा दिल प्रेम रस का पान करता हुआ उसी में सन जाये तो शायद तेरा नशा भी उतर सके और तू देख पाये कि जिनके पीछे तू दौड़ रहा है वह सब

कुछ एक दिन मिट जाने वाला है—तभी तू भीतर की दुनिया (सच्ची दुनिया) को पाकर दुनिया में आने का आनन्द ले सकेगा अन्यथा स्थूल में भटकता एवं झूठी शान-शौकत को ही सर्वस्व मानता हुआ तू जीवन का आनन्द खो बैठेगा ।

३९९ गुरु तो तुम्हारी रूह है (आत्मा है) शरीर तो शरारत से भरा समझो, जब तक गुरु के दर्शन न हो ।

ऐ प्राणी ! जब तक गुरु के दर्शन नहीं होते तब तक प्राणी शरीर में ही उलझा रहता है । वह सभी कार्य शरीर के लिये ही करता रहता है तथा शरीर को ही कर्त्ता समझ बैठता है । शरीर के आकर्षण में बँधा व्यक्ति एक मिनट भी शान्त होकर नहीं बैठ पाता, उसकी जरूरतों की पूर्ति में ही लगा रहता है । देख, अन्तर की ओर उन्मुख करने वाली शक्ति का नाम ही 'गुरु' है । गुरु केवल अन्तर की ओर ही नहीं ले जाता, उस सत्ता से भी सम्बन्ध स्थापित कर देता है जो अजर, अमर है एवं शरीर जिसके सहारे गतिशील है । अतः तू गुरु की शरण ग्रहण कर क्योंकि गुरु ही तेरी आँखें हैं तथा गुरु ही तुझे जीवन दान देने वाली आत्मा है । गुरु के बिना तू आत्मा का साथ पाकर भी शरीर के पीछे ही दौड़ता रहेगा तथा उसका कुपरिणाम भोगता रहेगा ।

४०० तंग क्यों ? संग कर । तंगी न रहे, यदि सत्संगी मिल जाय ।

ऐ प्राणी ! तू हृदय में संकीर्ण भावों को प्रश्रय न दे, यदि वे तेरे समीप आ रहे हैं तो तू ऐसा साथ ग्रहण कर कि जिनका साथ उन्हें न आने दे अन्यथा तू दिन ब दिन संकीर्णता से घिरता चला जायेगा तथा भीतर ही भीतर घुटता रहेगा । संयोगवश यदि तुझे सत्य के संगी (सत्संगी) का साथ मिल जायेगा तो तेरे हृदय में संकीर्ण भाव रह ही नहीं पायेंगे, छोटे-छोटी बातों में उलझने की तेरी जो मनोवृत्ति है, वह ऐसे उड़ जायेगी जैसे सूर्य के आगमन से अन्धेरा विलीन हो जाता है । देख, सत्संगी वे हैं जिनका जीवन सत्य के लिये है, जो हर श्वाँस सत्य के लिये लेते हैं । उनका साथ तुझे भी सत्य दुनिया से जोड़ देगा । सत्य दुनिया में बैठने से ही तेरे जीवन से अन्धकारपूर्ण रात्रि विदा होगी ।

४०१ ताव में न आओ। भाव में आओ। ताव स्वयं बेताब हो जायगा, झल्ला कर रह जायगा, भाव में आओ।

ऐ प्राणी! तू क्रोध को हृदय में प्रश्रय न दे, तू भाव ग्रहण कर। देख, भाव की जाग्रति आनन्दवर्द्धन करने वाली है। जब तू 'भाव' को एक बार पा जायेगा तब किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने को तैयार नहीं होगा। भाव में बाधा पहुँचाने वाली भावनाएँ तब स्वतः तेरे समीप नहीं ठहर सकेंगी, यदि समय विशेष के लिये आयेंगी तो भी लौटकर चली जायेंगी क्योंकि उन्हें अब प्रश्रय नहीं मिल पायेगा। अतः तू हमेशा वहाँ बैठ जहाँ बैठने से ईश्वर तेरा अपना बन जाये तथा तू भाव का आनन्द ले पाये।

४०२ मोर कहता है नृत्य में रमो। पी कहो, पी कहो घनश्याम को पी कहो।

ऐ प्राणी! तूने मोर को नृत्य करते देखा होगा, मोर का नृत्य मन को मुग्ध करने वाला होता है। जब आकाश में घने बादल छा जाते हैं तब उनकी ओर देखता हुआ वह सुध-बुध भूल जाता है, केवल नृत्य में ही रम जाता है। देख, मोर के नृत्य से तू भी भाव ग्रहण कर। मोर बादलों की ओर देखता है और तू आनन्द की वृष्टि करने वाले घनश्याम की ओर देख। जब घनश्याम तेरा प्रिय होगा तब तेरा मन मोर की तरह नाच उठेगा। तेरे हृदय-पटल पर प्रिय की मूर्त्ति विराजमान होगी और तू उसी की ओर देखता हुआ नृत्य (आनन्द) में सदा मगन रहेगा। ऐसे में कोई भी कष्टप्रद भाव तेरे समीप आने का साहस नहीं करेंगे, तू हमेशा प्रिय की ओर देखते हुए मौज मनाता रहेगा।

४०३ झुका, कब रुका?

ऐ प्राणी! झुकने में बहुत बड़ी ताकत है। झुकने वाला उस स्थिति को पा जाता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह अनवरत नदी की तरह बढ़ता जाता है जब तक कि सत्य में समाहित नहीं हो जाता। उसकी यह गति दिखलाई भी नहीं देती क्योंकि बढ़ने के लिये वह कार्यों को नहीं अपनाता, केवल झुकने के भावों से हृदय सजाता है। देख, झुकना साधारण नहीं होता, इसे अपनाकर भक्त ही एक दिन भगवान रूप हो जाता है। प्रभु के चरणारविन्द पर झुककर भक्त अपनी हस्ती ही मिटा देता है, उसकी दुनिया में ईश्वर के सिवा अपना कहने को कुछ भी नहीं रह जाता।

४०४ अरे मन, पाप पुण्य से परे परम पिता परमेश्वर की प्रार्थना प्रारम्भ कर, पिता, पुत्र, पत्नी, पति के प्यार को परिवर्तित रूप से, प्रियतम को अर्पित कर, अनन्त की कथा कहते हुए अनन्त में शान्त हो जा।

ऐ प्राणी ! तू मन से बातचीत कर और उसे समझा कि "अरे मन ! तू पाप पुण्य की कथा में समय व्यतीत न कर, इससे तू इन्हीं में उलझ जायेगा, ईश्वर की दुनिया में बैठकर भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। देख, पाप पुण्य के झगड़ों में न पड़कर तू परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना कर। तूने जो प्यार शरीर के सम्बन्धियों को अपना जानकर दे रक्खा है, उसे प्रभु के चरणों में अर्पित कर। शरीर के साथियों में अटकने से प्यार ही मोह बन गया था और जब तू ईश्वर की ओर देखेगा तो यह पुनः प्यार के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। ईश्वर ही तेरा सच्चा साथी है, उसके साथ से ही ये मिले हुए साथी भी तुझे आनन्द दे सकेंगे अन्यथा तू इनमें ही अटक जायेगा, तेरे पास अपना कुछ भी नहीं रह जायेगा। अतः प्रियतम प्रभु को अपना जानते हुए तू सदा उसी की चर्चा में रत रह कि जब लौट कर जाने का समय आये तो तू अनन्त में ही समाहित हो जाये।" यदि मन तेरी बातों को सुनेगा तो तेरा जीवन पाना सार्थक हो जायेगा और तू प्रभु के गीत गाते हुए आनन्द मनायेगा।

४०५ हृदय की चेन खींच, बेचैनी की गाड़ी रुक जायेगी, प्रेम की कली खिल जायेगी।

ऐ प्राणी ! तू हृदय की कद्र करना सीख। देख, तू हमेशा ही ऊल-जलूल बातों में समय व्यतीत करके कष्ट बटोरता है। तेरा हृदय रोता रहता है फिर भी तू इसकी नहीं सुनता, इसे अनेक कष्ट पहुँचाता रहता है। दिल की उपेक्षा करने से तू कभी चैन नहीं पा सकेगा। चैन पाने के लिये तुझे हृदय की चेन खींचनी होगी अर्थात् हृदय की कद्र करनी होगी। जब तू हृदय की ओर देखना शुरू कर देगा तब बेचैनीपूर्ण उन भावों से, जिनसे हृदय दुःखित होता है, तू बच जायेगा एवं ऐसा कोई भी कार्य व भाव नहीं अपना पायेगा जिनसे दिल को दर्द मिले, तू हमेशा उन्हीं राहों पर बढ़ पायेगा जिन पर बढ़ने से तेरे दिल को राहत मिले। जब बेचैनी की गाड़ी रुक जायेगी, हृदय तक नहीं पहुँच पायेगी तब तेरे हृदय में प्रेम कली का प्रस्फुटन होगा और वह धीरे-धीरे बढ़ता

हुआ एक दिन प्रस्फुटित पुष्प का रूप धारण कर लेगा तथा सर्वत्र सुगन्ध फैलाता रहेगा।

४०६ कामना को शान्त करने वन गया, बनारस गया, बद्रिकाश्रम गया, रामेश्वर पहुँचा, द्वारिका का द्वार खटखटाया किन्तु निष्काम कब हुआ ?

ऐ प्राणी ! कामना को शान्त करने के लिये घर-द्वार छोड़ना आवश्यक नहीं, 'मैं' को प्रभु के चरणों पर न्योछावर करना आवश्यक है। जिस दिन 'मैं' पूर्णतया प्रभु चरणों में झुक जाता है, ईश्वर के सिवा अपना कुछ भी नहीं रह जाता उस दिन कामना शान्त हो जाती है। देख, वन में जाकर एकान्त-सेवन इसलिये किया जाता है कि शायद वहाँ वृत्तियाँ सिमट पायें तथा एक प्रभु में ही लग जायें, अनेक तीर्थों का भ्रमण भी इसी हेतु किया जाता है कि जहाँ-जहाँ ईश्वर-भक्त पहुँचे हैं उन स्थानों में पहुँच कर शायद ईश्वर की उद्दीपना अधिक हो, किन्तु वन जाना तथा तीर्थाटन करना आदि यदि कर्म बन कर ही रह जायें तो कर्म का बन्धन बढ़ता ही है, घटता नहीं। देख, कार्य करना प्रधान नहीं, 'भाव' प्रधान है। कार्य सम्पादित करते समय जैसे भाव तेरे हृदय में प्रतिष्ठित होंगे तू वैसा ही फल पायेगा। अतः तू यदि कामना को शान्त करना चाहता है तो बाहर की दौड़-धूप को न अपना, तू भाव ग्रहण कर कि तेरा 'मैं' झुक जाये और तू प्रत्येक कार्य ईश्वर द्वारा सम्पादित देख पाये। जब तू ईश्वर की दुनिया में बैठेगा तब तू निष्काम बन जायेगा तथा उसकी दुनिया का आनन्द पायेगा।

४०७ विषाद क्यों ? प्रसाद पा, प्रसन्न हो।

ऐ प्राणी ! छोटी-छोटी बातों में कष्ट मानना एवं कष्ट की बातें करना तुझे कष्ट से छुटकारा नहीं दिला सकेगा, ऐसे में तेरा कष्ट और बढ़ेगा। कष्ट मिटाने के लिये तुझे ईश्वर की दुनिया में बैठना होगा। उसकी दुनिया में बैठकर तू देख पायेगा कि जब जिस समय, जैसी जरूरत रहती है ईश्वर पूरी करता है। ईश्वर को भुलाने से ही अनेक कुविचारों का हृदय पर आगमन होता है तथा उसका कुपरिणाम भी भुगतना पड़ता है अन्यथा कष्ट कहीं है नहीं। देख, ईश्वर को सम्मुख देख पाने से तेरा जीवन प्रसाद बन जायेगा और तू हर समय, हर अवस्था में प्रसन्न रह पायेगा। ऐसे में विषाद तेरे समीप नहीं आ सकेगा, वह तेरी प्रसन्नता देख कर लौट जायेगा।

४०८ प्रेम पा, गल न गया—पागल ही रहा।

ऐ प्राणी ! प्रेम प्रकाश है, प्रेम प्रकाश पाने से जीवन का अन्धकार विलीन होने लगता है। किन्तु प्रेम के दर्शन प्रेम पिपासु को ही हो सकते हैं, सबको सुलभ नहीं होते। देख, तू प्रेम को कहीं देख पाये और उसके छींटें तेरे हृदय में कहीं लग जायें तो तू प्रेम को किसी भी कीमत पर अपना लेना, यदि उसे पाने के लिये तुझे अपनी हस्ती भी मिटानी पड़े तो भी यह सस्ता सौदा होगा। तू प्रेम को सम्मुख पाकर भी यदि मुख मोड़ लेगा तो यही कहना होगा कि तू अभी पागल है। ऐसे में तेरे बन्धन कभी नहीं कट पायेंगे, तू विषयों के पीछे पागल बना हुआ, मोह स्वार्थ में रत रहकर कराहता रहेगा तथा संसार को दोषी ठहराता रहेगा। अतः तू बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये प्रेम पा तथा उसे सर्वांगीन रूप से पाने के लिये अपनी हस्ती मिटा दे कि तू केवल प्रेम ही प्रेम रह जाये।

४०९ वह कब दूर—यदि पाना जरूर।

ऐ प्राणी ! ईश्वर उनसे दूर है जो ईश्वर को पाना नहीं चाहते, जो ईश्वर को पाना चाहते हैं तथा पाये बिना जिनको चैन नहीं मिलता, उनसे वह दूर नहीं रह सकता—वे ईश्वर को जर्रे-जर्रे में देख पाते हैं। वे हमेशा उसी राह पर कदम बढ़ाते हैं जिस पर बढ़ कर ईश्वर को पाया जा सकता है, जो संग-साथ ईश्वर-मिलन में बाधक होता है ऐसे साथ से वे दूर ही रहते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टा ईश्वर-मिलन के लिये होती है। ईश्वर ऐसे प्रेमी जनों के सदा साथ रहता है। देख, चाह में बहुत बड़ी शक्ति होती है। चाहत की चीज अवश्य मिलती है, भावना के अनुसार देर-सबेर हो सकती है किन्तु मिलती अवश्य है। अतः तू अपने अन्तर को टटोल कि तू केवल ईश्वर के लिये कार्य करता है या तुझमें उसे पाने की बेचैनी भी है ? यदि केवल कार्य हैं तो तू बातें बनायेगा और यदि चाह है तो ईश्वर को जरूर समक्ष देख पायेगा।

४१० आप को पा, कहाँ पाप ?
आप ही आप, फिर कहाँ शाप ?
कहाँ ताप ? कहाँ जाप ?

ऐ प्राणी ! जो ईश्वर से विमुख हैं, गलत कार्य वे ही कर पाते हैं तथा पाप भी उन्हें ही घेरता है। किन्तु जिन्होंने ईश्वर की शरण ग्रहण की है तथा

ईश्वर की छत्र-छाया में स्वयं को पाया है, उनके समीप पाप नहीं रहता, रहता है केवल ईश्वर, उसी की गोद में बैठे वे मौज मनाते हैं। देख, उनके जीवन से दुःख, कष्ट विदा हो जाते हैं, वे अपने जीवन को अभिशाप नहीं जानते, न संसार में कष्ट ही कष्ट देख पाते हैं। वे सदा ईश्वर को सम्मुख देखते हुए तथा प्रत्येक कार्य उसी के द्वारा सम्पादित जानते हुए, आनन्द में रहते हैं। उनको अलग से नाम जप द्वारा ईश्वर को याद नहीं करना पड़ता, वे अहर्निश उसकी स्मृति के साथ जीते हैं तथा आनन्द मनाते हैं।

४११ क्यों न वारी ? यों ही हारी।

ऐ प्राणी ! तू समय रहते-रहते जीवन को प्रभु के चरणों पर न्योछावर कर दे। जब तू इसे प्रभु के चरणों पर न्योछावर कर देगा तब तेरा जीवन दूसरा होगा तब तू ईश्वर के कर्तृत्व का आनन्द लेते हुए इस संसार में आनन्द मनायेगा। तू यदि जीवन को प्रभु-चरणों पर नहीं रख पायेगा तो तेरा जीवन बोझ बन जायेगा, तू कदम-कदम पर लड़खड़ाता रहेगा एवं हताश व निराश होकर जीवन की गाड़ी खींचता रहेगा। अरे पगले ! तू संसार में आनन्द मनाने आया है अतः तू यहाँ से हार कर न जा, हार पहन कर अर्थात् विजेता बनकर जा और यह तभी सम्भव होगा जबकि तू प्रभु के चरणों में झुक जायेगा। झुक कर ही तू संसार का सही रूप देख पायेगा—जब तक यहाँ रहेगा तब तक मौज से रहेगा तथा एक दिन मौज के साथ लौट जायेगा।

४१२ पुकार सुन। हुँकार न भर

ऐ प्राणी ! ईश्वर की बातें केवल कान से सुनने की नहीं होतीं, हृदय में धारण करने की होती हैं। कान से सुनने से मन, मस्तिष्क को कुछ मिल सकता है किन्तु हृदय खाली ही रह जाता है और हृदय में कुछ पाये बिना जीवन परिवर्तित नहीं हो पाता। अतः तू यदि कहीं सत्य चर्चा सुन पाये तो उसे केवल कान से सुनकर हुँकार न भरना, उसे ठहराने के लिये दिल के दरवाजे खोल देना कि तेरा रोम-रोम सत्य भावों से सज जाये, तेरा एक कदम भी सत्य से विपरीत न जाये। देख, सन्त वाणी में सन्त हृदय की पुकार प्रतिष्ठित रहती है, वह प्रत्येक प्राणी के जागरण के लिये होती है। तू यदि उनकी बातें सुनकर ही सन्तोष मान लेगा तो उन (बातों) में निहित पुकार से दूर रह जायेगा। उस पुकार को सुनने के लिये तू सन्त के भावों की ओर

देख अन्यथा तू उनका सामीप्य पाकर भी बातें ही सुन पायेगा, उनकी वाणी से लाभ नहीं उठा पायेगा।

४१३ यदि भूखा, तो क्यों रुका ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर यों तो सबका है किन्तु सब उसका आनन्द नहीं ले पाते, उससे आनन्द वे ही ले पाते हैं जिनके हृदय में ईश्वर मिलन की भूख जग जाती है। देख, भजन, पूजन, सत्संग आदि ईश्वर का ऐश्वर्य जानने तथा उसे अपनाने की भूख बढ़ाने के रास्ते हैं, इन रास्तों पर बढ़ने से 'जो ईश्वर-मिलन के भूखे थे' उनकी चर्चा सम्मुख आती है तथा कुछ नये भूखे (भक्त) दिखलाई देते हैं। संग का एक रंग होता है अतः भूखों को देखकर भूख बढ़ती है। यदि उनका साथ पाकर तेरी भूख भी जग गई तो तू रुकना नहीं। चाह असम्भव को भी सम्भव कर सकती है। जब तू सच्ची चाह से आगे बढ़ेगा तब तेरी भूख अवश्य मिटेगी, तू ईश्वर को केवल समक्ष ही नहीं, श्वासों-प्राणों में भी रमा देख पायेगा।

४१४ बातें न बनाओ। सीधी राह पर आओ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को जाने बिना ईश्वर के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करने से तू भी कोरा का कोरा रह जायेगा तथा अन्य को भी कुछ नहीं दे पायेगा। देख, पहले उन बातों को हृदय में धारण करने के लिये तू सरलता ग्रहण कर। सरलता धारण करके जब तू उन्हें पाना चाहेगा तब जो बातें तू मुख से कहता है वे बातें तेरी अपनी हो जायेंगी, तब उनका आनन्द तू भी ले पायेगा तथा सब भी उससे लाभान्वित हो पायेंगे। अन्यथा बड़ी-बड़ी बातें करके तू अहंकार ही बढ़ायेगा एवं ईश्वर की बातें करता हुआ भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

४१५ हाय यहाँ, तो बाँह कहाँ ?

ऐ प्राणी ! रोने वाला यदि हँसना चाहे तो उसे रोने का मोह छोड़ना होगा तथा हँसने वालों का साथ अपनाना होगा। रोता भी जाये और हँसना भी चाहे—यह सम्भव नहीं। तेरी भी यही अवस्था है। तू एक तरफ तो ईश्वर प्रेम की बातें करता है और दूसरी तरफ धन, ऐश्वर्य, मान-सम्मान के पीछे भागता हुआ हाय-हाय करता रहता है। देख, ईश्वर सबकी सारी जरूरतें पूरी करता है किन्तु जो जानते हुए भी इससे अनजान हैं एवं हाय-हाय में समय बिता रहे हैं, वे सदा दुःखी बने रहते हैं। ऐसे जन ईश्वर का नाम लेते

हुए भी ईश्वर से दूर रह जाते हैं। दूर रह जाते हैं अतः उसके प्यार से भी वंचित रह जाते हैं एवं एक दिन विना प्यार पाये ही संसार से अधूरे में चले जाते हैं।

४१६ **क्यों फूला ?**
क्यों भूला ?
जग भुला।
दे धूला।

ऐ प्राणी ! तू अपने पास जो कुछ भी देख पाता है वह तेरा नहीं, किसी का दिया हुआ है। तू उन्हें पाकर अभिमान न कर और न 'जिसने तुझे दिया है तथा हर समय दे रहा है' उसे ही भूल। देनेवाले को भुलाकर यदि तू उसकी वस्तुओं को अपनी जानता हुआ उपभोग करता रहेगा तो तू उपभोग के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा। अतः तू ईश्वर को भुलाकर अभिमान में न फूल, तू सदा ईश्वर की ओर देखते हुए नम्र वनकर चल कि तू जग के प्रलोभनों में फँस न पाये, जग का आकर्षण तेरे सामने धूल की तरह हो जाये और तू सम्पूर्ण विश्व में एक ईश्वर का ही साम्राज्य आच्छादित देख पाये।

४१७ **क्षण क्षण क्षय क्षय**
रण का क्यों भय
तू है निर्भय, तू है निर्भय।

ऐ प्राणी ! तेरे जीवन के एक-एक क्षण वहुमूल्य हैं, ये क्षण रुकने वाले नहीं, ये भागते ही जायेंगे। तू इस मिले हुए समय में यदि परिस्थितियों से ही लड़ता रहेगा और आने वाली परिस्थितियों की कल्पना करके सदा उनसे भयभीत बना रहेगा तो ये क्षण क्षय होते जायेंगे, कीमती होने पर भी ये तेरे लिये बेकार हो जायेंगे। तेरे काम के ये तव होंगे जव तू अपनी शक्ति को पहचानेगा। देख, तू निर्भय की सन्तान है अतः तू अपने रूप को पहिचान, आगे-पीछे की कल्पना करके भयभीत न हो और न ही विचारों का रण उपस्थित कर। तू ईश्वर को अपना सर्वस्व जानते हुए तथा सभी कार्य उसी के द्वारा सम्पादित देखते हुए निर्भय विचरण कर। ऐसे में तेरे प्रत्येक क्षण सज जायेंगे, वे तुझे कुछ दे जायेंगे—वे क्षय होकर भी क्षय नहीं हो पायेंगे क्योंकि तूने उनसे कुछ पा लिया है।

४१८ बन तू रेणु, बजे अब वेणु।

ऐ प्राणी ! फल, फूल, अन्न, धन सब मिट्टी से पैदा होते हैं। यह मिट्टी की महिमा है कि यह सबके पाँवों तले रौंदी जाती है फिर भी हमेशा हरी-भरी रहकर सबको प्रमुदित करती रहती है। तू भी यदि जीवन में आनन्द का वर्षण चाहता है तो तू रेणु (मिट्टीवत्) बन जा। देख, मिट्टी का काम देना है, लेना नहीं। वह कभी किसी से लेती नहीं, सदा सबको देती रहती है, भले-बुरे सभी उसकी गोद में आश्रय पाते हैं। तू भी जब मिट्टीवत् भावों को अपनायेगा तब सबसे पाने की अभिलाषा छोड़कर हमेशा देना शुरू कर देगा और तब तेरा जीवन मधुर भावों से झंकृत हो उठेगा। तेरे वे भाव अन्य के लिये ही सुखदायी नहीं बनेंगे, तू भी उनसे भीतर ही भीतर प्रमुदित रहकर मौज मनाता रहेगा।

४१९ अब मूक हो जा, अब तो सो जा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का सामीप्य 'गूंगे के गुड़' की तरह है, उसे केवल अनुभव किया जा सकता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ईश्वर का सामीप्य पाने से दिन रात बेचैन रहने वाले प्राणी के जीवन में निश्चिन्तता आ जाती है। देख, तूने उस अमृत रस का पान यदि किया होता तो तुझे ईश्वर से कुछ माँगने की जरूरत नहीं होती, तू केवल ईश्वर के कार्यों को मूक रहकर देखता तथा उनसे आनन्द लेता। आगे-पीछे की चिन्ता वे करते हैं जिन्होंने ईश्वर को अपना जाना नहीं तथा उसे कभी सम्मुख देखा नहीं। ईश्वर के कार्यों को अहर्निश देखने वाले तो बोझ रहित हो जाते हैं एवं उसी की गोद में निश्चिन्त सो पाते हैं। अतः तू ईश्वर की दुनिया में ईश्वर से विलग होकर न रह, तू उसे हृदय में प्रश्रय दे एवं उसकी ओर देखता हुआ आनन्दमग्न रह कि तू निश्चिन्त जीवन व्यतीत कर सके।

४२० वास में सना, वासना में बहा
वह वासुदेव, वा, सुदेव क्या जाने क्या माने ?
पुकार में भी वासना, प्रसाद में भी वासना।

ऐ प्राणी ! तू इस पृथ्वी पर सदा रहने के लिये नहीं आया, तू यहाँ कुछ समय के लिये आनन्द मनाने के लिये आया है किन्तु यहाँ आकर तू आनन्द को भूलने लगा तथा इसे ही स्थायी वासस्थान समझ कर इसमें ही लपटने

लगा । अब शरीर व शरीर के साथी तेरे लिये प्रधान बन गये और तू इनकी भूख पूरी करने में ही लग गया । देख, जिसके लिये शरीर व संसार ही प्रधान बन जाते हैं, वे ईश्वर से विमुख होते जाते हैं । वे नहीं जान पाते कि "ईश्वर ही मेरा अपना है तथा उसके साथ से ही मेरी रक्षा है" । वे थक हार कर यदि ईश्वर को पुकारते भी हैं तो स्थूल की पूर्त्ति के लिये और यदि प्रसाद भी अर्पित करते हैं तो भी स्थूल की पूर्त्ति के लिये । वे स्थूल से इतने अधिक घिर जाते हैं कि वे यह नहीं जान पाते कि स्थूल के लिये ही ईश्वर की आवश्यकता नहीं, जीवन में बहार ही ईश्वर के साथ से आती है ।

४२१ क्या कह दूँ अपना हाल ?
मैं हूँ—तेरे सवाल का जवाब ।

इस संसार में रहने वाला प्रत्येक प्राणी दुःखी है क्योंकि ईश्वर को भूल जाने से यहाँ सुख है ही नहीं । यहाँ केवल वे ही सुखी (मौज में) हैं जिन्होंने ईश्वर को जाना है । स्थूल व्यक्ति-वस्तु का आकर्षण कुछ ऐसा है कि कब व्यक्ति उनसे जुड़ता चला जाता है तथा कैसे ईश्वर से विमुख हो जाता है—इसे वह जान नहीं पाता और यही कारण है कि यहाँ सर्वसाधन सम्पन्न व्यक्ति भी दुःखी देखा जाता है । वह यदि अपने दिल का हाल सुनाने चले तो कष्ट के सिवा उसके पास कुछ नहीं रहता । ऐ प्राणी ! देख, तू जितने भी दुःख अपने पास देख पाता है उन सारे दुःखों की दवा एक है, जितने भी सवाल तेरे अन्तर में उठते हैं उन सब सवालों का एक ही जवाब है—वह यह है कि "तू मेरा बन । मेरा बनकर ही तू यहाँ मौज से रह सकता है अन्यथा कोई न कोई काँटा तेरे हृदय में चुभता ही रहेगा और तू यहाँ रोता रहेगा । जिस दिन से तू मेरा हो जायेगा उस दिन से तेरी दुनिया सजने लगेगी एवं तेरी बगिया में फूल ही फूल होंगे" ।

४२२ प्रिय की साधना का नाम प्रेम है ।

ऐ प्राणी ! हृदय में जब प्रेम का आकर्षण छा जाता है तब प्राणी की प्रत्येक चेष्टा प्रिय की प्राप्ति के लिये होने लगती है । वह प्रिय की स्मृति में विकल बना हुआ कुछ अटपटे कार्य करने लगता है, उसके वे अटपटे कार्य ही साधना कहलाते हैं—यथार्थ में साधना कुछ और नहीं, प्रेम है । देख, प्रिय को जाने बिना एवं प्रिय की स्मृति पाये बिना ईश्वर के नाम पर जो कार्य किये जाते हैं उन्हें साधना का नाम दिया जा सकता है किन्तु वे अभी साधना नहीं

हैं। साधना में प्रिय की प्राप्ति के सिवा अन्य साध ही नहीं रह जाती, रह जाता है केवल एक प्रिय और वही जीवन का परम लक्ष्य बनकर श्वासों-प्राणों में रम जाता है।

४२३ दम लेते लेते छद्म
क्या यह तेरा नहीं सद्म ?

ऐ प्राणी ! जिनके हृदय में ईश्वर को पाने की तड़पन है, वे अनायास ही सन्त का संग पा जाते हैं एवं उनके सान्निध्य से अज्ञात प्रभु को समक्ष देख पाते हैं। सन्त का संग उनके लिये परम सुखकारी होता है क्योंकि सन्त सत्य के प्रत्यक्ष रूप होते हैं। एक समय पश्चात् जब सन्त का शरीर तिरोहित हो जाता है तब वह दर्द उनके लिये असहनीय हो जाता है, उस दर्द में कराहते हुए वे सन्त को अनेक उलाहने देने लगते हैं। अनायास ही उनके मुँह से कुछ अटपटे शब्द निकलने लगते हैं, वे कहते हैं—"देखते-देखते तू आँखों से ओझल हो गया (छुप गया) किन्तु तू चला जाये यह कैसे सम्भव हो सकता है ? तू तो सदा-सदा रहने वाला है, कभी जाने वाला नहीं। यह सम्पूर्ण विश्व तेरा वासस्थान है और मेरा हृदय भी तो तेरा अपना घर है, फिर तू इसे छोड़कर जायेगा कहाँ ? देख, तू मुझसे झगड़ा न कर, तू मेरी आँखों से ओझल न हो क्योंकि तेरे बिना मैं जीने की कल्पना भी नहीं कर सकता। तुम हो तो इस जहाँ में मेरे लिये सब कुछ है, तुम्हें बाद करके यहाँ अपना कहने के लिये कुछ भी नहीं। अतः तुम सदा मेरे सम्मुख बने रहो कि तुम्हें निहारते-निहारते जीवन की अवधि आनन्द में गुजर जाये"। ऐसे जन से वह छुपा नहीं रह सकता, वे भीतर व बाहर सर्वत्र उसी का जलवा देख पाते हैं।

४२४ यम नियम का दम भरना,
एक प्रकार का मद है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर यम-नियम के बन्धन में बँधने वाला नहीं। इनसे इन्द्रियों पर अनुशासन (संयम) किया जा सकता है एवं जीने का जो तरीका अच्छा लगता है, उस नियम को अपनाया जा सकता है किन्तु ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। देख, ईश्वर भीतर के भावों से मिलने वाला है, बाहर के कार्यों से नहीं। बाहर के कार्यों को तू यदि प्रधानता देगा तो केवल अहंकार से घिरता चला जायेगा और ईश्वर से दूर होता जायेगा। अतः तू यम-नियम को प्रश्रय देकर उसके लिये डींगे न हाँक, तू हृदय को प्रभु चरणों पर

न्योछावर करके आगे बढ़ता चल कि तू अहंकार-शून्य हो पाये तथा तेरा जीवन प्रभु प्रेम से सज जाये।

४२५ दम रहते शक्ति का प्रयोग कम क्यों ?

ऐ प्राणी ! तू अनुपम शक्ति सम्पन्न प्राणी है किन्तु तू इधर-उधर देखता हुआ अपनी शक्ति को भूल बैठा है तथा छोटी-छोटी बातों से परेशान बना रहता है। देख, तू श्वाँस रहते-रहते अपनी शक्ति को पहिचान ले, नहीं तो तुझे मिले हुए ये गिनती के श्वाँस खत्म हो जायेंगे और तू कमजोर भावों से घिरा कष्ट ही पाता रहेगा। यदि अपनी शक्ति को पहचाने बिना तू यहाँ से लौट जायेगा तो तेरे ये श्वाँस निरर्थक ही हो जायेंगे। ऐसे में मृत्यु-मुख में समाने से पहले ही तू मृत्यु के समान यातना पाता रहेगा। अतः तू सन्त के समीप बैठकर अपनी शक्ति को पहिचान ले एवं उसी के सहारे आगे बढ़ता चल कि तू स्वयं को कहीं कमजोर न पाये—सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा आदि शक्तियों को तू हृदय में जागृत देख पाये एवं उनसे आनन्द लेते व देते हुए एक दिन तू सत्य में ही समाहित हो जाये।

४२६ विचार—सार का विचार,

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विचार,
आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी का विचार,
ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान का विचार,
ध्याता, ध्येय, ध्यान का विचार,
यह विचार वह विचार,
सब लाचार कैसे विचार।

ऐ प्राणी ! किसी भी भाव पर विचार करने के लिए साफ दृष्टि चाहिये तथा साफ दृष्टि पाने के लिये हृदय की शुद्धता चाहिये। हृदय जैसे-जैसे शुद्ध होता जाता है वैसे-वैसे प्रत्येक चीजें स्पष्ट होकर सामने आने लगती हैं एवं आनन्द प्रदान करने लगती हैं। देख, साफ दृष्टि पाकर ही तू धर्म को प्रधान देख पायेगा और धर्म के साथ सदा अर्थ की प्राप्ति करता रहेगा। ऐसे में तू सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर को जान पायेगा अतः उनके बन्धन में भी नहीं बँध पायेगा। भिन्न-भिन्न भक्तों के रूप को भी तू तभी जान पायेगा। तू देख पायेगा कि आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी सभी अलग-अलग

दिखलाई देते हुए भी अलग-अलग स्तर से एक ईश्वर को ही पुकार रहे हैं तथा अपनी भावना के अनुसार ही प्रतिफल पा रहे हैं। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ये तीन नहीं, एक हैं अर्थात् ईश्वर को जानने की इच्छा, ईश्वर को जानना तथा उसे पा जाना ये सब एक के ही तीन रूप हैं। ऐसे ही ईश्वर की स्मृति, ईश्वर का ध्यान तथा ईश्वर ये तीनों भी एक (ईश्वर) के ही विभिन्न रूप हैं। किन्तु जब तक व्यक्ति अपने विचारों से लाचार है तब तक वह विचार ही करता रह जाता है इनका सही रूप नहीं जान पाता। सन्त की शरण में ही उसकी दृष्टि शुद्ध होती है तभी वह प्रत्येक भाव पर शान्त दृष्टि से विचार कर पाता है तथा सभी के मर्म से अवगत हो पाता है।

४२७ भीतर को देख कर, भीत न हो, तर को जान, हरिहर को जान। जान और पहचान, तभी तेरा ज्ञान, तभी तेरी शान।

ऐ प्राणी ! यदि तेरे भीतर की स्थिति दुःखपूर्ण है तो तू घबड़ा नहीं, तू उस ईश्वर को जान जो हृदय में तरी देने वाला है एवं जीवन में हरियाली भरने वाला है। उसका साथ तेरे भावों को परिवर्तित कर देगा—दुःखपूर्ण विचार तब ठहर नहीं पायेंगे, वे पलायन कर जायेंगे। देख, उसको जानने से ही तू जीवन का मर्म जान सकेगा अतः तू उसका परिचय पा ले और उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ा दे। उसे पाकर तू कुछ दूसरा होगा, देखने में पहले जैसा ही रहेगा किन्तु तेरे भीतर की अवस्था बदल जायेगी—तू निश्चिन्त रहकर शान से निर्भय विचरण कर पायेगा।

४२८ चतुर वह, जो चतुर्भुज को भजे।

ऐ प्राणी ! तू चार पैसे इकट्ठे करके अपने को बहुत चतुर न जान क्योंकि इससे तू केवल शरीर को सुविधा दे सकता है, मन-प्राणों में तृप्ति नहीं भर सकता। देख, तू चतुर तब होगा जब तू उसे जान पायेगा जो चारों ओर हाथ फैलाये तेरी रक्षा कर रहा है। उसका भजन ही तेरे दिल के वजन को कम कर सकता है अन्यथा तू शरीर के कार्यों में भ्रमित हुआ स्वयं को ही कर्त्ता मान बैठेगा और भीतर ही भीतर रोता रहेगा। 'बाहर से सजता रहे किन्तु भीतर ही भीतर रोता रहे'—यह तो चतुराई नहीं। चतुर वह है जो भीतर की प्रसन्नता पहले पाना चाहे और बाहर की पीछे अपनाये! अतः तू जीवन को भीतर-बाहर से सजाने के लिये उस चतुर्भुज को भज जो चार भुजा से तुझे दे रहा है कि तू एक क्षण के लिये भी विक्षिप्त न हो पाये।

४२९ कायर वह जो काया को ही सब कुछ माने, माया को ही जाने।

ऐ प्राणी ! जिनके लिये शरीर प्रधान है एवं जो शरीर के ही इर्द गिर्द चक्कर काटते रहते हैं, वे भीरू वन जाते हैं, छोटी-छोटी बातें उन्हें डराती रहती हैं। वे काया की सुरक्षा में अपना पूरा समय गँवा देते हैं, 'इस काया को संचालित करने वाला भी कोई है' इसे सर्वथा भूल जाते हैं—ऐसे जन ईश्वर से दूर होते जाते हैं। उनकी आँखों पर 'मैं' की ऐसी पट्टी बँध जाती है कि वे जो कुछ भी सम्मुख देखते हैं उसे ईश्वर की नहीं जान पाते, अपनी ही समझ बैठते हैं। देख, ईश्वर की माया कुछ ऐसी ही है कि जिनके हृदय में ईश्वर को देख पाने की विकलता नहीं, वे ईश्वर के बीच रहकर भी ईश्वर को नहीं देख पाते, देख पाते हैं केवल 'मैं-मेरे' का संसार (माया) और उसी में उलझे हुए कायरता को अपना बैठते हैं।

४३० मूर्ख वह जो मोह रखे।

ऐ प्राणी ! मूर्ख वे नहीं जिनको दुनियादारी का ज्ञान नहीं एवं जो बुद्धिहीन हैं, मूर्ख वे हैं जो ईश्वर से बिछुड़ गये हैं एवं उसके द्वारा दिये गये कुछ शरीर के साथियों से ही मोह कर बैठे हैं। देख, तू तेरे सम्मुख जो कुछ भी देख पाता है, वह सारा का सारा प्रबन्ध ईश्वर द्वारा किया हुआ है। ईश्वर ही सम्पूर्ण विश्व का सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता है किन्तु तू सृजन-कर्त्ता स्वयं को मानता है इसीलिये मिले हुए संगी-साथियों के भरण-पोषण की चिन्ता में संलग्न हो जाता है तथा मोह के कारण उनके बिछुड़ने के नाम से भी घबराता है। मोह ने तेरी ऐसी अवस्था बना डाली कि तू उनके सिवा कुछ भी नहीं देख पाता। देख, तू यदि मोह में जकड़ा हुआ ही यहाँ से लौट जायेगा तो यह तेरी मूर्खता होगी। अतः जाने के पहले तू उसे जान ले 'जिसने इस विश्व की रचना की है और जो सभी को हर समय देख रहा है' कि तू सत्य आँखें पा जाये और मोह से भी बच पाये।

४३१ कपूर की तरह जला काया, माया को यही आरती है।

ऐ प्राणी ! आरती प्रकाश का प्रतीक है, जब आरती से जीवन में प्रकाश भरने लगता है तभी वह आरती है। देख, आरती के लिये तू केवल दीपक का प्रयोग न कर क्योंकि दीपक का प्रकाश बाहर ही रह जाता है, हृदय को प्रकाशित नहीं कर पाता। इसके लिये तू हृदय दीप जला एवं काया, माया

जगत मिथ्या नहीं है। सब कुछ ईश्वर रूप है

का भान भूलकर प्रभु चरणों में बैठ। ऐसे में तेरी दुनिया दूसरी होगी, तू भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश देख पायेगा। एक बार जब तू उस प्रकाश को देख पायेगा तब शायद बार-बार उसे पाने को तेरा हृदय तरसे। हृदय की सच्ची तड़प से ही तू उसे हमेशा पास देख सकेगा। यह काया तब प्रभु प्रसाद बनेगी और माया का पर्दा हट जायेगा एवं प्रभु की लीला सदा तेरे सम्मुख होगी।

४३२ एक का काम, दो का फेर (क्या काम ?)

ऐ प्राणी ! यह सम्पूर्ण विश्व एक ईश्वर की कृति है, उस एक के साथ यहाँ आनन्द ही आनन्द है किन्तु उस एक की दुनिया में जब दूसरा अर्थात् 'मैं' आ जाता है तब फेर शुरू हो जाता है। एक की दुनिया निश्चिन्तता देती है किन्तु दो में चिन्ता शुरू हो जाती है। एक में बहार आती है किन्तु दो में भार आता है। एक में आनन्द मिलता है किन्तु दो में दुःख-सुख मिलते हैं तथा दुःख ही अधिक रूप से छाया रहता है। अतः तू एक की दुनिया में आ तथा एक का काम देख। तू यदि एक को नहीं जान सकेगा तो आनन्द के लिये मिला तेरा जीवन अभिशाप बन जायेगा—'मैं' के फेर में 'तेरे-मेरे' का जञ्जाल शुरू हो जायेगा जिसमें उलझता हुआ तू कहीं का नहीं रह जायेगा।

४३३ चरण धर—आचरण सुधरा।

ईश्वर को भुलाने से व्यक्ति गलत आचार-विचारों को अपना बैठता है, सही देखने की उसकी दृष्टि मर जाती है परिणाम वह प्रसन्न नहीं रह पाता, किन्तु ईश्वर की शरण अद्भुत परिवर्तन करने वाली है। भूला-भटका प्राणी जब ईश्वर के चरणों का आश्रय पा जाता है तब उसके जीवन का अभाव खत्म होने लगता है, सही दृष्टि मिलने के कारण उसका आचरण भी सुधरने लगता है। ऐ प्राणी ! देख, ऐसे प्रभु को तू एक क्षण के लिये भी न भुला, तू प्रभु की शरण ग्रहण कर कि तुझे बलपूर्वक जीवन को बदलने की चेष्टा न करनी पड़े, तेरा हृदय स्वतः सुन्दर भावों से सज जाये तथा उसी के अनुरूप तेरे कार्य भी हो जायें।

४३४ भूख भी क्या खूब ? चाटती है, नाचती है।

ऐ प्राणी ! शरीर की भूख मिट जाती है किन्तु वासना की भूख कभी

मिटती नहीं, इसकी जितनी पूर्त्ति की जाती है, यह उतनी ही अधिक भड़कती है। यह जहाँ डेरा जमाती है उस (व्यक्ति) को कहीं का नहीं छोड़ती क्योंकि अपनी भूख मिटाने के लिये यह किसी के भी तलवे चाटने को तैयार रहती है तथा किसी के इशारे पर भी नाच सकती है। इसे (वासना को) स्थान देकर प्राणी व्यक्ति, वस्तु का मोहताज बन जाता है, वह उन्हें नहीं भोगता, वे व्यक्ति-वस्तु ही उसे भोगने लगते हैं। ऐसी है यह वासना की भूख जिसे अपनाकर प्राणी स्वयं से ही दूर होता जाता है। अतः तू इससे बचकर रह कि तू होश में रह पाये और जीवन पाने का आनन्द ले पाये।

४३५ चिलमन हटने के ताव को सह सकेगा? सहने के भाव में आ।

ऐ प्राणी! तू लोगों के द्वारा सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर से अनेक प्रार्थनाएँ करता है तथा उनमें कहता है कि "हे ईश्वर! मेरी आँखों पर से द्वैत का पर्दा उठा दो एवं मुझे अपनी रूप माधुरी का पान करा दो"। किन्तु किसी की बातों को कहने का अधिकारी तू तब तक नहीं है जब तक कि तेरे हृदय की गति उस ओर नहीं हो जाती। देख, चिलमन हटने से तेरे 'मैं-मेरे' का संसार छूटने लगेगा, केवल ईश्वर ही तेरा अपना होगा, अन्य जन भी ईश्वर के साथ से ही अपने होंगे। अतः एक बार तू उलट कर अपनी ओर देख कि जो कुछ तू मुख से कह रहा है, सचमुच तू उस उपलब्धि के लिये तैयार है? यदि नहीं तो पहले तू उस उपलब्धि के लिये तैयार हो जा। जैसे-जैसे तेरे हृदय में ईश्वर को देखने की विकलता होगी वैसे-वैसे तू उसे समक्ष देख पायेगा। ऐसे में चिलमन (पर्दा) तेरी आँखों के सामने रह नहीं पायेगा, एक दिन ऐसा आयेगा कि तू वही हो जायेगा, तुझमें और उसमें भेद नहीं रह जायेगा—तू सबको आनन्द प्रदान करता हुआ एक दिन उसी में समा जायेगा।

४३६ व्याकुल को कूल किनारा कहाँ?

ऐ प्राणी! तू जब तक धन-जन के लिये व्याकुल रहेगा तब तक शान्ति नहीं पा सकेगा क्योंकि शान्ति धन-जन में नहीं, शान्ति प्रभु की शरण में है! देख, यों तो तू हमेशा ईश्वर की गोद में बैठा है किन्तु अभी तू उसकी गोद को जानता नहीं इसीलिये गोद का मोद भी नहीं पा रहा है और व्याकुल बना रहता है। अतः जो ईश्वर की गोद में बैठे हैं, तू उनका साथ ग्रहण

कर। उनको तू बाहर के कार्यों से नहीं पहिचान पायेगा, अन्तर की तृप्ति से पहिचान पायेगा क्योंकि जो ईश्वर के हैं वे बाहर के आडम्बर नहीं अपनाते, हृदय के साज सजाते हैं। उनका भाव तेरे अशान्त जीवन में राहत दे देगा परिणाम तू भीतर ही भीतर तृप्ति का अनुभव करने लगेगा। उनके साथ से तेरा जीवन कब और कैसे बदल जायेगा—इसे तू जान भी न पायेगा। उनके साथ के अभाव में तू सम्पूर्ण संसार में चक्कर काटता हुआ भी बेचैन बना रहेगा, शान्ति नहीं पा सकेगा।

४३७ छमछम करने वाली छमी को लख, यही लक्ष्मी है। देखने वाला, लेने वाला छमछमाने लगता है। ऐसी है लक्ष्मी।

ऐ प्राणी! लक्ष्मी वह है जो हमेशा नारायण के साथ विराजती है, आनन्द में रहती है, स्वभाव से ही शान्त है, सर्व समर्थ है एवं जिसे देखकर व पाकर हृदय में आनन्द की अनुभूति होने लगती है। जो चञ्चल है, अशान्त है, अस्थिर है तथा जिसका साथ जीवन को ही अशान्त बना डालता है, वह लक्ष्मी तो केवल सुचारु रूप से जीवन जीने के लिये साधन है। अतः तू नारायण के साथ शोभने वाली तथा सदा नारायण के साथ विराजने वाली उस क्षमाशील लक्ष्मी को लख कि उसकी ओर देखते हुए तू भी नारायण का बन पाये तथा लक्ष्मी के सभी सद्भाव पा जाये—तेरा ध्यान हमेशा नारायण के चरण बन जायें, नारायण के बिना तू एक श्वाँस भी न जी पाये। देख, नारायण की ओर देखने वाला ही लक्ष्मी की तरह शोभता है, वही सबसे बड़ा धनी है क्योंकि उसने वह धन पाया है जो कभी खत्म होने वाला नहीं।

४३८

शर्मा—शर्म कर
वर्मा—वर्म पहन (भक्ति का)
गुप्ता—गुप्त आ
शुद्र—तेरी कद्र
नाम का काम
नाम पहचान
कर काम—ले आराम।

ऐ प्राणी! नाम केवल सम्बोधन सूचक संज्ञा नहीं, प्रत्येक नाम के साथ एक काम का संकेत रहता है। यदि उस काम की ओर ध्यान नहीं दिया

जाये तो व्यक्ति नाम के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा। देख, शर्मा शब्द कहता है कि तू गलत राह पर कदम बढ़ाने के पूर्व शर्म कर, यदि तुझे शर्म होगी तो तू सही मार्ग का ही अवलम्बन कर पायेगा। वर्मा शब्द संकेत देता है कि तू भक्ति का कवच पहन क्योंकि इस संसार में बचे हुए वे ही हैं जिन्होंने भक्ति को अपनाया है। गुप्ता शब्द बतलाता है कि तेरे अन्तर में अनेक भाव गुप्त हैं, तू उन्हें जान तथा उनका आनन्द ले। शूद्र शब्द कहता है कि तू हृदय का मैल धो एवं जीवन की कद्र कर, तू साधारण प्राणी नहीं, तू सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। अतः तू नाम में छुपे भाव को पहिचान तथा उसी के अनुरूप चल कि तू आराम पाये, काम करते हुए भी तू हल्का-फुल्का रह पाये।

४३९ मधु से मीठा मैं।

ऐ प्राणी! जिसे जो भाव प्रिय होते हैं, उन्हीं के अनुसार उसका जीवन रहता है। देख, अभी तेरे लिये मधु से भी अधिक मीठा 'मैं' (शरीर) हो रहा है इसीलिये तेरे सभी कार्य भी शरीर के लिये ही हो रहे हैं। अरे पगले! तू शरीर के 'मैं' से क्या पायेगा—इसे अपनाकर तो तू दिन व दिन पतन की ओर ही बढ़ता जायेगा। यदि तुझे 'मैं' मीठा ही लगता है तो तू मुझे पहिचान। देख, तू मुझसे ही गतिशील है, यदि मैं नहीं तो तू भी नहीं। जिस दिन तू मुझे देख पायेगा, उस दिन से तू शरीर का ध्यान भूल जायेगा, तेरा 'मैं' का सम्बोधन भी उस दिन से कुछ दूसरा होगा। तू कल तक शरीर को 'मैं' कहता था किन्तु अब वह सम्बोधन मेरे लिये होगा। मुझसे प्रेम करने से तेरा सम्पूर्ण जीवन मीठा हो जायेगा। अतः जीवन को मीठा बनाने के लिये तू मुझसे प्रेम कर कि तू मुझे पहिचान पाये एवं तेरी दुनिया सज जाये।

४४० **वाणी की सेज सजा**
स्वभाव के भाव में आ।
जहाँ मेल ही मेल सदा।
सखी, प्रियतम का पता।

ऐ प्राणी! यदि तेरे हृदय में ईश्वर को पाने की सच्ची लालसा है तो तू स्वयं का भान भूलकर (तल्लीन होकर) ईश्वर की बातें कर। जब बातें करते-करते तू अपने आपको भूल जायेगा, 'जहाँ से बातें निकलती हैं' तू उस उद्गम (स्वभाव) से जुड़ जायेगा तब तू ईश्वर को जान पायेगा। देख,

ईश्वर का क्षणिक मिलन भी ईश्वर की ओर बढ़ने के लिये प्रेरित करता है और स्वभाव का भाव पाकर तो तू ईश्वर को भुला ही नहीं पायेगा। ऐसे में ईश्वर से तेरा मेल बढ़ता जायेगा और यह मेल तब तक बढ़ता रहेगा जब तक उसमें मिलकर तू एक नहीं हो जायेगा। देख, प्रेम कुछ ऐसा ही होता है, इसमें केवल एक (ईश्वर) के लिये ही स्थान रहता है, 'मैं' के लिये नहीं। वहाँ पूर्णतया प्रेम का साम्राज्य छाया रहता है एवं प्रियतम प्रभु के दर्शन भी वहीं पाये जाते हैं।

४४१ नीचे क्यों ? ऊपर देखें।

ऐ प्राणी ! नीचे दुनिया का व्यवहार है और ऊपर ईश्वर का प्यार है। देख, तू नीचे अर्थात् झूठे व्यवहार की ओर न देख, व्यवहार की ओर देखते-देखते तू भी झूठा हो जायेगा। तू उन विभूतियों की ओर देख जिन्होंने सच्चे प्यार को अपनाया है। उनकी ओर देखते-देखते एक दिन तू भी प्यार पा जायेगा और झूठे व्यवहारों से ऊपर उठ जायेगा। नीचे की ओर देखने से तू ईश्वर को भूलता जायेगा और दुःख-चिन्ता आदि अनेक भावों से घिर जायेगा किन्तु ऊपर की ओर देखकर तू निश्चिन्तता पायेगा। तेरे प्रत्येक श्वासों का स्वामी तब ईश्वर होगा और तू ईश्वर के कार्यों को देखते हुए मौज मनायेगा। नीचे तू अभाव ही अभाव देख पायेगा जबकि ऊपर की ओर भाव ही भाव पायेगा। अतः तू नीचे नहीं, ऊपर देख कि तू नीचे रहते हुए भी ऊपर उठ पाये, तेरी दुनिया भाव से सज जाये।

४४२ आग जलाता है अपने लिये। हवन करता है उसके लिये।

ऐ प्राणी ! तुझे स्वयं का हर समय ध्यान रहता है किन्तु ईश्वर को तू कभी-कभी याद करता है—ऐसे में तू यदि ईश्वर को जानना चाहेगा तो यह कैसे सम्भव हो सकता है। देख, सम्मुख उसे ही देखा जा सकता है जिसका हमेशा ध्यान रहे। अतः तू यदि ईश्वर को सम्मुख देखना चाहता है तो तू ईश्वर को अपना बना, जब वह तेरा अपना होगा तब उसका ध्यान तुझे सदा रहेगा। अभी तुझे शरीर का खूब ध्यान है, तू प्रतिदिन इसी की देखभाल में संलग्न रहता है, इसी की सुरक्षा के साधन (खिलाना, पिलाना आदि) जुटाता रहता है। ईश्वर को तो तू भूले-भटके ही कभी याद करता है अर्थात् कभी-कभी उसके नाम पर हवन आदि कुछ कार्य कर लेता है। देख, जिस

जिस दिन से ईश्वर तेरा अपना होगा उस दिन से तेरे प्रत्येक कार्य ईश्वर के लिये होंगे, शरीर को खिलाना-पिलाना भी उस दिन ईश्वर की सेवा बन जायेगा क्योंकि यह जीवन तू उसी का देख पायेगा, ईश्वर के सिवा तेरा कुछ भी नहीं रह जायेगा।

४४३ खेला ऐसा खेल, बस हो गया उससे मेल।

ऐ प्राणी! यह संसार एक खेल का मैदान है। इसमें प्रत्येक प्राणी खेलने के लिये आते हैं किन्तु यहाँ आकर खेलने का आनन्द वे ही ले पाते हैं जो सृष्टिकर्त्ता को जान पाते हैं। उसकी ओर देखते हुए खेल खेलने वाले खेल में ही नहीं खो जाते, वे ऊँची-नीची व भली-बुरी सभी स्थितियों में ईश्वर को स्थित देख पाते हैं अतः खेल खेल में ही ईश्वर को पा जाते हैं। 'जो चारों तरफ छाया हुआ है' उस ईश्वर को उन्हें याद करना नहीं पड़ता, वे हर पल उसकी लीला को देखते रहते हैं अतः उसकी याद भुलानी ही उनके लिये कठिन हो जाती है। ऐसा है यह खेल जिसे देखने वाला, खेलने वाला सदा-सदा के लिये ईश्वर का ही हो जाता है।

४४४ मैंने एक दिन कहा था—दीन न बन। किसी दिन का न रहेगा। वीणा बजा, बजाता चला जा, बाधा राधा बनेगी, रस में रास होता रहेगा।

ऐ प्राणी! तू दीन नहीं, अतः तू दीन-हीन बनकर जन-जन का मुखापेक्षी न बन। यदि तू दीनता धारण कर लेगा तो तेरा सारा समय रोते-रोते बीतेगा, तू हमेशा अभाव से घिरा रहेगा एवं क्षण भर के लिये भी निश्चिन्त नहीं रह सकेगा। देख, तू आनन्द रूप है, तू आनन्द की वीणा बजा! तेरे सम्मुख जैसी भी परिस्थितियाँ आयें, उनसे तू घबड़ा नहीं, तू आनन्द में रह। ऐसे में जो बाधायें तेरे सम्मुख आयेंगी वे भी तुझे कुछ दे जायेंगी, वह भाव दे जायेंगी जिनसे तू और अधिक रस पा सकेगा। रस पा सकेगा अतः रास को भी देख सकेगा क्योंकि जहाँ रस है वहीं रास है अर्थात् जहाँ प्रेम रस का वर्षण होता रहता है उसी हृदय में आनन्द की अनुभूति भी होती है, जिसे रास कहते हैं।

४४५ रमण में भ्रमण करने वाली वृत्ति वृत्ताकार बन चक्कर काटती रही—सरल रेखा बन वृत्त दूर हो, चक्कर चकनाचूर हो।

ऐ प्राणी! यह संसार भ्रमण का स्थान है। देख, भ्रमण आनन्द के

लिये किया जाता है, रमण के लिये नहीं। इसमें दुःख-सुख पाते हुए भी व्यक्ति भ्रमण का आनन्द लेना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि उसे वहाँ हमेशा नहीं रहना है, वह कुछ समय के लिये ही वहाँ आया है। वह यदि इस सत्य को भूल जाये तो भ्रमण को भूलकर रमण में ही लग जायेगा और ऐसे घेरे में फँस जायेगा जिससे निकलना उसके लिये कठिन हो जायेगा क्योंकि घेरे का कहीं अन्त नहीं होता। ऐसे में वह थक कर चूर-चूर हो जायेगा। देख, सरलता सीधी रेखा की तरह है, इसमें कहीं चक्कर नहीं। सरल व्यक्ति को सरलता के साथ जो कुछ मिल जाता है उसे ग्रहण करता हुआ वह आगे बढ़ता जाता है। वह चक्कर में नहीं फँसता और न ही चक्कर उसे फँसा सकते हैं, वह सरलता से सीधी राह पर बढ़ता हुआ आनन्द मनाता है।

४४६ देवी की बलि वेदी पर अहंकार महिषासुर की बलि दो। सुर असुर का भाव दूर हो।

ऐ प्राणी ! अहंकार, महिषासुर राक्षस से भी अधिक दुःखदायी है, इसे अपनाकर मनुष्य का जीवन ही नारकीय बन जाता है। अहंकार में सना हुआ व्यक्ति कुछ भी सही नहीं देख पाता, सबसे ऊँचा-बड़ा स्वयं ही बन बैठता है। उसके जीवन की शान्ति छिन जाती है, वह अशान्त होकर सदा अहंकार की पूर्त्ति में लगा रहता है। अहंकार की पूर्त्ति के लिये वह गलत से गलत भावों को भी प्रश्रय दे डालता है—ऐसा है यह अहंकार जिसे अपनाकर मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, राक्षस हो जाता है। देख, बलि देने के योग्य यह अहंकार है अतः तू यदि ईश्वरीय शक्ति के सम्मुख बलि चढ़ाना ही चाहता है तो इस अहंकार की बलि चढ़ा दे कि तेरा हृदय शुद्ध हो जाये, तेरे अन्तर के भेद-भाव व ऊँच-नीच खत्म हो जायें और तू मनुष्य कहलाने के योग्य बन सके तथा मनुष्य जीवन का आनन्द पा सके।

४४७ एक से दो हुए तो रो मत, किन्तु तीन हुए तीन तेरह हुए।

ऐ प्राणी ! संसार में आकर यदि तू ईश्वर से अलग हो गया है तो घबड़ाने की कोई बात नहीं, तू उसे पुनः पा जायेगा। उसे पाने के लिये तू भक्ति को अपना, भक्ति तुझे उससे पुनः जोड़ देगी। यदि तू भक्ति को नहीं अपनायेगा तो 'मैं' तुझे ईश्वर से विलग करता जायेगा परिणाम ईश्वर के संसार में ही तेरा एक दूसरा संसार बस जायेगा। उस छोटे से संसार में तीसरे लोग तेरे अपने

बन जायेंगे जिनकी चिन्ता में संलग्न तू कहीं का नहीं रह जायेगा। ऐसे में तू उनमें ही अटक जायेगा व उनमें ही बिखर जायेगा। देख, एक से दो हुए तब तक रक्षा सम्भव है किन्तु जब तीसरा (दुनिया) प्रधान हो जाता है तब जीवन ही अभिशाप बन जाता है।

४४८ किससे मन मिला ? मन मन न रहा। किससे तन मिला ? तन तन न रहा। मैं था तू न था।

ऐ प्राणी ! तुझे जो कुछ मिला हुआ है वह सब आनन्द के लिये मिला है किन्तु 'मैं' के कारण तू यहाँ आकर आनन्द लेना भूल गया तथा कुछ ऐसे साथ को अपना बैठा जिसे नहीं अपनाना ही तेरे लिये उचित था। देख, जो मन तुझे आनन्द के लिये मिला था वह 'मैं' के कारण निरर्थक भ्रमण में लग गया एवं जो वस्तुएँ कष्ट प्रदान करने वाली हैं उनसे कष्ट पाता हुआ भी वह बार-बार उन्हीं में उलझने लगा परिणाम मन का आनन्द खत्म हो गया और अब जो मन तेरे सम्मुख है वह 'मन' कहलाने के योग्य नहीं। ऐसे ही तन की अवस्था है। जिस तन को पाने के लिये देवता तरसते हैं ऐसे तन का साथ पाकर भी तू आज रो रहा है क्योंकि तूने कभी इस तन की कद्र न की, परिणाम यह तन विषयों का दास बन गया और दिन ब दिन पतन की ओर उन्मुख होने लगा। देख, तन-मन की ऐसी गति का जिम्मेदार तेरा 'मैं' है। यदि तू ईश्वर की शरण ग्रहण करता तो तेरे तन-मन की ऐसी अवस्था न होती, तब तेरा मन सदा प्रभु-चरणों का भँवरा बन रसपान करता रहता तथा तन प्रभु-चरणों में नत हुआ आनन्द मनाता।

४४९ मेला और मन मैला ?
मेला और तन मैला ?
मेला—मेल
तन का खेल
प्रेम की बेल
तन पर झेल।

ऐ प्राणी ! मेला आनन्द के लिये होता है। मेले में जाकर भी व्यक्ति यदि मन मैला ही करे तथा तन की थकावट लेकर ही लौटे तो यही कहना होगा कि वह मेले में जाकर भी मेले के आनन्द से वंचित ही रह गया है। देख, यह

संसार रूपी मेला ईश्वर से मेल के लिये है। यहाँ तुझे अनेक संगी-साथी प्रेम के लिये मिले हुए हैं तथा अनेक साधन तन के खेल के लिये मिले हुए हैं। तू यदि इनमें ही अटक जायेगा तो यहाँ आने का आनन्द नहीं ले पायेगा अन्यथा तू सबसे प्रेम करता हुआ आगे बढ़ता जायेगा। ऐसे में प्रेम की बेल तेरे हृदय में विकसित होती चली जायेगी और तू सर्वत्र प्रेम ही प्रेम देख पायेगा। देख, ऐसी स्थिति पाने के लिये यदि तुझे कुछ कष्ट भी झेलने पड़ें तो तू उन्हें सहर्ष स्वीकार करना किन्तु रुकना नहीं, सदा आगे बढ़ते जाना—तभी तू मेले में आने का आनन्द ले पायेगा तथा मेले के कण-कण में समाये प्रभु से मेल कर पायेगा।

४५० कोमल है—इसमें मल कहाँ ? मल नहीं, तभी तो कोमल।

ऐ प्राणी ! जहाँ तू कोमलता देख पाता है वहाँ तू यदि मल भी देखता है तो यह तेरी आँखों का धोखा है क्योंकि कोमलता और गन्दगी की एक साथ स्थिति नहीं रहती। देख, कोमलता यूँ ही नहीं आती तथा सब इसे अपना भी नहीं पाते, इसे वे ही अपना पाते हैं जो स्वभाव से ही सरल हैं एवं जिनके हृदय में मल के लिये स्थान नहीं रहता। ऐसे जन स्वभाव से ही कोमल होते हैं, उनका कोमलता पर जन्मसिद्ध अधिकार होता है, वे किसी भी परिस्थिति में कोमलता को नहीं छोड़ पाते। उनका यह भाव (कोमलता) केवल उन्हें ही सुख नहीं पहुँचाता, उस छाया के तले भले-बुरे जो भी बैठते हैं वे राहत पाते हैं।

४५१ लिखना, बोलना। लिख कर यदि खिल सके तो लिख। बोल कर यदि भूल सके तो बोल, नहीं तो चुप रहो।

जो ईश्वर की समीपता पाना चाहते हैं उनके सभी कार्य ईश्वर की समीपता पाने के लिये होते हैं। उनके कोई कार्य निर्धारित नहीं होते, उनके लिये वे ही कार्य उचित होते हैं जिन्हें करने से अन्तर में तृप्ति मिलती है। उनका लिखना व बोलना भी काम नहीं होते, ईश्वर की समीपता पाने के लिये होते हैं। ऐ प्राणी ! तू यदि जीवन का आनन्द पाना चाहता है तो तू जो भी कर आनन्द के लिये कर। यदि लिख कर तुझे आनन्द मिले तथा तेरा हृदय-कमल खिल जाये तो तू ईश्वर के लिये दो बातें लिख डाल और बोल कर यदि तू खुद को भूल सके तथा केवल एक ईश्वर ही तेरे सम्मुख रह जाये तो तू कुछ बोल। यदि लिख बोल कर तेरी ऐसी अवस्था नहीं होती तो तू

चुप रह तथा चुप रहकर ईश्वर के कार्यों को देख क्योंकि लिखना व बोलना खिलने और भूलने से ही सजते हैं अन्यथा बोलना, गलाबाजी है तथा लिखना, श्वेत पर कालिमा का खेल है।

४५२ दिल है तो फिक्र क्यों लगी ? दिल है खिल, खेल, आनन्द मना।

ऐ प्राणी ! तुझे जो यह दिल की दौलत मिली हुई है, वह साधारण नहीं। यह दिल बड़ा कोमल है, यह थोड़ी सी भी कठोरता बर्दाश्त नहीं कर पाता, यदि लाचार होकर इसे कठोरता सहनी पड़ती है तो यह भीतर ही भीतर रो देता है। इसकी मेहरबानी से ही कभी-कभी कठोर व्यक्ति भी कोमल होता देखा जाता है (रत्नाकर डाकू)। अतः तू दिल की कद्र करना सीख ले तथा फिक्र करना छोड़ दे। जब तू दिल की कद्र करना सीख जायेगा तब तू उन कठोर भाव-विचारों को नहीं अपना पायेगा जो दिल को ठेस पहुँचाने वाले हैं, तू हमेशा उन्हीं सरल व सहज भावों को अपनायेगा जो दिल को सहलाने वाले हैं। देख, जब तेरा दिल खिल जायेगा तब यह संसार तेरे खेल का मैदान बन जायेगा जिसमें खेलता हुआ तू खेल का मजा पायेगा। उस दिन तेरी दुनिया आनन्दमयी होगी, तू हर अवस्था का आनन्द लेता हुआ मौज मनायेगा।

४५३ खून तो दूर, नाखून भी देना नहीं चाहता, वह क्या भक्ति करेगा, क्या ज्ञान के गुण गायेगा।

ऐ प्राणी ! अपने आप को प्रभु के चरणों पर अर्पित करने वाला 'भक्त' है तथा स्वयं की हस्ती मिटाकर ईश्वर को पा जाने वाला 'ज्ञानी' है। भक्ति और ज्ञान ये दो भाव अलग-अलग दिखलाई पड़ते हुए भी एक हैं क्योंकि दोनों का लक्ष्य एक ईश्वर को जानना है। भक्त और ज्ञानी दोनों ही दो भिन्न मार्गों को अपनाकर 'मैं' का पूर्ण समर्पण करते हैं। किन्तु भक्ति और ज्ञान की बातें करने वाले, बातें ही बनाते रह जाते हैं, उस स्थिति को नहीं पाते। ऐसे जन ईश्वर के नाम पर खून देने की (मर मिटने की) बातें कर सकते हैं, कुछ दे नहीं पाते। वे उन निरर्थक भावों (दुःख, चिन्ता आदि) को भी नहीं छोड़ पाते जो बढ़े हुए नाखून की तरह काट कर फेकने योग्य हैं—भक्ति और ज्ञान का भाव ऐसे जन से दूर ही रह जाता है। वे भक्ति और ज्ञान के नाम पर

केवल कुछ कार्यों को अपनाकर अपना मन बहला लेते हैं, इससे अधिक और कुछ नहीं पाते ।

४५४ राम रमता है, मरता नहीं, अमर बनाता है । मरता है वह जो रमता नहीं—राम में जो रमता नहीं ।

ऐ प्राणी ! 'राम' एक शरीरधारी व्यक्ति नहीं, 'राम' वह शक्ति है जो रोम-रोम में रमण कर रही है एवं जो कभी मरने वाली नहीं । राम की स्मृति, राम का स्मरण व राम का भाव जो पा जाता है वह भी कभी मरता नहीं । दिखलाई पड़ने वाले शरीर मिट जाते हैं किन्तु शरीर रहते जिन्होंने राम को पा लिया है, वे कभी नहीं मिटते । देख, जो संसार में आकर भी राम से विमुख रह जाते हैं, राम में नहीं रमते एवं अन्तर में प्रतिष्ठित राम को नहीं पहचान पाते, वे यों ही आते हैं तथा रोते-गाते यों ही चले जाते हैं । उनका संसार में आगमन वृथा हो जाता है, वे जब तक जीते हैं भू-भार बनकर ही जीते हैं ।

४५५ आकाश में प्रकाश देखता है, दिल में नहीं । दिल का प्रकाश ऐसा आकाश बनायेगा, जहाँ करोड़ों सूर्य चन्द्र लजायेंगे ।

ऐ प्राणी ! प्रकाश केवल आकाश में ही नहीं, तेरे दिल में भी है । देख, आकाश का प्रकाश तेरी आँखों को रोशनी देगा किन्तु दिल का प्रकाश तेरी दुनिया ही रोशन कर देगा । आकाश के प्रकाश से तू बाहर का संसार देख सकेगा किन्तु हृदयाकाश के प्रकाश में तू अन्तर के एक-एक भाव देख पायेगा परिणाम तेरा हृदय ही बदल जायेगा—हृदय बदल जायेगा अतः तेरी दुनिया भी बदल जायेगी । तू प्रत्येक मिले हुए साधनों (व्यक्ति-वस्तु, धन-जन आदि) को तब भिन्न रूप में पायेगा । ये तब तुझे बाँधने वाले नहीं होंगे, तू इन्हें ईश्वर के प्रसाद के रूप में देख पायेगा । इस प्रकाश को पाकर तेरा रोम-रोम रोशन हो जायेगा, तू जर्रे-जर्रे में ईश्वर को देख पायेगा । करोड़ों सूर्य-चन्द्र भी इस प्रकाश के सम्मुख झुक जायेंगे क्योंकि उनमें वह शक्ति नहीं, जो स्व-प्रकाश में है ।

४५६ नाभी के बाहर के ब्रह्मा को देखकर चकित हुआ । नाभी के भीतर के ब्रह्मा की सृष्टि देखता तो जानता कि बाहरी सृष्टि तो अति नगण्य है ।

ऐ प्राणी ! एक सृष्टि बाहर है और एक सृष्टि तेरे भीतर है । तू ब्रह्मा

द्वारा निर्मित बाहर की सृष्टि को ही देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है, भीतर की सृष्टि नहीं देख पाता। देख, भीतर की सृष्टि के सम्मुख यह बाहर की सृष्टि अति नगण्य है। भीतर की सृष्टि हृदय सजाती है जबकि बाहर की सृष्टि केवल आँखों को भाती है। भीतर की सृष्टि बन्धन तोड़ती है तथा सत्य से जोड़ती है और बाहर की सृष्टि बन्धन में बाँधती है तथा असत्य का संग देती है। भीतर की सृष्टि सूक्ष्म भावों को सजाती है जबकि बाहर की सृष्टि स्थूल के साज सजाती है। देख, जब तक हृदय सज नहीं जाता तब तक बाहर की सृष्टि आनन्द नहीं दे पाती, बाहरी सृष्टि भीतर के साज सजने से ही सजती है। अतः तू नाभी के भीतर के ब्रह्मा की सृष्टि देख कि तू बाहरी सृष्टि में ही न लुभ जाये, तू सृष्टि के कण-कण में ब्रह्मा (बनाने वाले) को देख पाये।

४५७ कान में आवाज आई, क्षीण अति क्षीण। कान लगा कर सुनो, कहाँ की आवाज है ?

ऐ प्राणी ! तेरे कान में सदा एक अति क्षीण आवाज आती रहती है, वह हमेशा तुझे सत्य निर्देश देती है किन्तु तू बाहर की ओर देखता हुआ उस ओर ध्यान नहीं देता, सदा उसकी अवहेलना करता रहता है। देख, तू यदि उस आवाज पर ध्यान देगा तो जान पायेगा कि वह भीतर वाला ही तेरा सच्चा साथी है एवं वही तेरे अति समीप व सदा साथ है। जिन बाहर के साथ को अपनाकर (सच्चा मानकर) तू उसकी अवहेलना कर रहा है, वे बाहर के साथ छूट जायेंगे और जब तक रहेंगे तब तक भी तुझे मोह, स्वार्थ व वासना से घेरे रहेंगे, उनके आकर्षण में बँधा हुआ तू सच्चे साथी की उपेक्षा करता रहेगा। अतः तू समय रहते-रहते उस साथी को पहिचान ले जो सदा तेरे साथ रहता हुआ तुझे सत्य निर्देश देता रहता है कि तू उसके साथ से लाभान्वित हो पाये तथा स्वयं को कभी बेसहारा न पाये।

४५८ पात्र के अनुसार पात्रता। पात्र यदि पत्र पुष्प बन अर्पित हो जाये तो पात्रता, पात्र दोनों एक में हो जाय।

ऐ प्राणी ! बर्तन की क्षमता के अनुसार ही उसमें वस्तु रखी जाती है, ऐसे ही जैसा व्यक्ति का हृदय होता है उसी के अनुसार उसे भाव प्राप्त होते हैं तथा संग-साथ मिलता है। देख, तू विराट की सन्तान है अतः विराट है।

तुझमें वहुत वड़ी क्षमता है किन्तु जव तेरा हृदय उसे प्राप्त करने के लिये विकल होगा तब तू उसे प्राप्त कर पायेगा। उसे प्राप्त करने के लिये तुझे दीन-हीन बनकर ईश्वर के सम्मुख झुकना होगा। जिस दिन भक्ति-भाव से तू ईश्वर के सम्मुख झुक जायेगा उस दिन तू उस विराट भाव को प्राप्त होगा। उस दिन तुझे ईश्वर से कुछ माँगना नहीं होगा, ईश्वर का रचा हुआ विश्व तेरे हृदय में स्थान पायेगा। उस दिन पात्र और पात्रता भी अलग-अलग नहीं रह जायेंगे अर्थात् वह भाव जिसे तू पाना चाहता है वह तुझसे अलग नहीं रह जायेगा, वह तेरे श्वासों-प्राणों में रम कर एक हो जायेगा।

४५९ भोग देख मोहन भोग वाले को क्यों भूलते हो ?

ऐ प्राणी ! तू तेरे सम्मुख जितना ऐश्वर्य भोग देख पाता है वह सारा का सारा किसी का दिया हुआ है। तू उस देने वाले को न भूल क्योंकि वही तेरे भोगों (कष्टों) को मोहन भोग (प्रसाद) बनाने वाला है तथा वही तेरे भोग के साधन जुटाने वाला है। तू यदि उस भोग वाले मोहन को भूल जायेगा तो तुझे मिले हुए सारे भोग, भोग (कष्ट) देने वाले बन जायेंगे। अतः अज्ञात रहकर जो हमेशा तेरी सुरक्षा कर रहा है एवं तेरे खाने-पीने के साधन जुटा रहा है, तू उस मोहन भोग वाले (ईश्वर) को न भूल अन्यथा तू भूल की शूल से हमेशा कष्ट पाता रहेगा और यदि उसे देख पायेगा तो सदा आनन्द मनाता रहेगा।

४६० भोग कहीं शोक का कारण न बन जाय। भोग का भोग लगाओ ठाकुर को।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को भुलाकर भोगों को अपनाना, कष्ट को आमंत्रण देना है। ऐसे में ये भोग तन-मन में शिथिलता देने वाले बन जाते हैं। ये भोगते समय बहुत भले लगते हैं किन्तु इनका परिणाम बहुत भयंकर होता है। इनमें लिप्त हुआ प्राणी शरीर का दास बन जाता है, उसके प्रत्येक कार्य शरीर के दायरे के भीतर ही होने लगते हैं। जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं तब तक वह इन्हें भोगने से बाज नहीं आता किन्तु जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, भोग भोगने के योग्य नहीं रह जातीं तब वह रोता है। देख, जिन भोगों के पीछे तू रात-दिन भाग रहा है, वे तेरे शोक का कारण बन जायें इसके पहले ही तू सम्हल ले। तू इन्हें ईश्वर-प्रदत्त जानते हुए ग्रहण कर कि ये भोग, ईश्वर का भोग (प्रसाद) बन जायें और तेरे शोक का कारण न वनें।

४६१ मिलन का आनन्द, मिल न, हिल मिल जा, आनन्द, फिर जाये कहाँ आनन्द ?

ऐ प्राणी ! मिलन में कौन सा आनन्द है यह मिलकर ही जाना जा सकता है, मिलने के पूर्व तो केवल आनन्द की कल्पना की जा सकती है। देख, तू यदि ईश्वर-मिलन का आनन्द पाना चाहता है तो पहले तू उनसे मिल ले जो ईश्वर से मिले हुए हैं। उनसे मिलकर तू उनके भावों को ग्रहण कर ले अर्थात उनसे हिल मिल कर एक हो ले, फिर मिलन में कौन सा आनन्द है—तू उसे स्वतः देख पायेगा। एक बार इस आनन्द को पाकर तू कभी नहीं खोयेगा, वह सदा के लिये तेरी धरोहर बन जायेगा, तू हमेशा हर परिस्थिति में उसे साथ देख पायेगा क्योंकि वह खरचने से भी खत्म होने वाला नहीं, दिन-ब-दिन बढ़ने वाला है।

४६२ भ्रमण—भ्रम के लिये या भ्रम दूर के लिये ? भ्रमर बन भ्रमण करता रहा, रस संचय हुआ, रस में वह रस जो नीरस को भी रसमय बना दे।

ऐ प्राणी ! जब तेरे हृदय में ईश्वर-मिलन की तड़प होगी एवं तू सत्य को जानने का जिज्ञासु होगा तब तेरा हर कदम भ्रम-निवारण के लिये होगा, उस दिन तू उन संगी-साथियों को पा जायेगा जिनका साथ भ्रम का पर्दा हटा सके। यदि तू ईश्वर को भुलाकर भ्रमण करेगा तो तुझे पग-पग पर भ्रम घेर लेगा। ऐसे में तू जीवन तथा जगत किसी का भी आनन्द नहीं ले सकेगा। देख, भँवरा हमेशा फूलों का रसपान करता है अतः उसे फूलों का साथ मिल ही जाता है। जब भँवरों की तरह तू भी मधुर भावों को संग्रहित करने को उत्सुक होगा तब भ्रम तेरे समीप नहीं रह जायेगा, तू वह रस पा सकेगा, जिसे पान करके तेरा जीवन रसमय हो जायेगा। देख, यह रस ऐसा ही होता है—इसे पाकर व्यक्ति नीरस नहीं रह जाता, रसमय हो जाता है।

४६३ ये भाव रात दिन उठते बैठते हैं, परिश्रम ही करते रहते हैं, विश्राम कहाँ लेते हैं ? बिसरा राम—राम को बिसारा तो विश्राम कहाँ ?

अनेक भाव-विचार दिल व दिमाग में दिन-रात उठते बैठते रहते हैं, वे न स्वयं शान्त होकर बैठते हैं और न व्यक्ति को (शान्त होकर) बैठने देते

हैं। उनका परिश्रम (आना-जाना) सदा चालू रहता है, वे क्षण भर के लिये भी विश्राम नहीं लेते। ऐ प्राणी ! जो राम से बिछुड़ गये हैं तथा भूले-भटके भी राम को याद नहीं करते—ऐसे जन उन भाव-विचारों के साथ-साथ अशान्त बने रहते हैं। सही दृष्टि के अभाव में वे सही निर्देश नहीं पाते अतः उनमें ही उलझे रहते हैं। देख, राम की स्मृति व राम की शरण आँखें खोलने वाली हैं, उन्हें पाकर ही व्यक्ति उन भाव-विचारों को अपना पाता है जो आनन्दवर्द्धन करने वाले हैं। उन्हें अपनाकर जब वह आनन्द में रहने लगता है तब अन्य विचार उसे परेशान नहीं करते, यदि आते भी हैं तो लौट कर चले जाते हैं—ऐसे में ही व्यक्ति विश्राम पाता है।

४६४ यह कोलाहल—कभी जीवन प्रश्न हल भी करेगा या केवल कानों को कष्ट देता रहेगा ?

ईश्वर को पाये बिना जो ईश्वर के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं वे खुद भी धोखे में रहते हैं और अन्य को भी धोखे में रखते हैं। उनकी वाणी के द्वारा किसी का भी भला होने वाला नहीं क्योंकि भलाई के लिये केवल मुख की बातें नहीं चाहिये, दिल का वैसा भाव भी चाहिये। ईश्वर के नाम पर केवल बातें करने वाले अहंकारी बन जाते हैं, उनके दिल की मधुरिमा खत्म हो जाती है। उन बातों के द्वारा उनका तो मन बहलाव हो जाता है जो केवल बातें सुनकर खुश होने वाले हैं किन्तु सत्य के पिपासुओं को कुछ नहीं मिलता और जिन्होंने सत्य की एक झलक भी देखी है उनको तो अपार कष्ट होता है—उनका हृदय तो रो देता है। अतः ऐ प्राणी ! तू यदि जीवन प्रश्न हल करना चाहता है तो बाहर की आवाज पर कान न दे, तू उस आवाज पर ध्यान दे जो तेरे अन्तर में प्रतिध्वनित हो रही है—तभी तू उस राह का पथिक होगा जिस पर बढ़ता हुआ मंजिल को पा सकेगा अन्यथा ईश्वर के नाम पर तू भाषण आदि ही सुनता रहेगा किन्तु तेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा।

४६५ रात तारे देखते-देखते बीती, आँखों का तारा उन तारों में कहाँ दीख पड़ा। शांति ली कब, जब दिन रात एक ही का भाव रहा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर-मिलन की बेचैनी जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, ईश्वर को पाने के सिवा सम्मुख और कुछ नहीं रह जाता, दिन-रात एक ही भाव रह जाता है तब ईश्वर की अनुभूति पायी जाती है। देख, ईश्वर को

पाने के भाव हृदय पर आच्छादित होने के साथ-साथ ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं होती। ये भाव जब धीरे-धीरे रोम-रोम में पैर जाते हैं, उसे पाना ही जीवन का उद्देश्य बन जाता है, कितनी ही रातें विकलता में बीत जाती हैं, उसे पाये बिना रहा नहीं जाता तब कहीं वह स्थिति होती है जिसके द्वारा ईश्वर को पाया जा सकता है। ऐसे जन से ईश्वर दूर नहीं रह सकता, वह उनके श्वासों-प्राणों में रम कर एक हो जाता है। उनमें ईश्वर इतना घुलमिल जाता है कि उनसे अलग ईश्वर की कल्पना करते ही नहीं बनती।

४६६ समय रहते-रहते समेट
मन मन्दिर में पैठ
कर ठाकुर से भेंट।

ऐ प्राणी! तुझे यह जीवन देखने में लम्बा सा लगता है किन्तु है यह बहुत छोटा, यह देखते-देखते ही खत्म हो जायेगा। तू इसे लम्बा समझ कर बरबाद न कर। देख, बाहरी झंझटों से घिरे रहने के कारण तेरी वृत्तियाँ बिखर गई हैं अतः तू यदि जीवन में आनन्द पाना चाहता है तो समय रहते-रहते उन बिखरी हुई वृत्तियों को समेट ले तथा मन-मन्दिर में प्रवेश कर क्योंकि ठाकुर की मूर्त्ति मन-मन्दिर में ही विराजमान है। यदि तू मन-मन्दिर की उपेक्षा करेगा तो सम्पूर्ण विश्व में चक्कर काट कर भी कुछ नहीं पा सकेगा। देख, जो वाणी तुझे अन्तर की ओर उन्मुख करे, तू उस वाणी की खोज कर। वह वाणी तुझे सत्य से जोड़ देगी तथा असत्य से तेरा मुख मोड़ देगी। उसी के साथ से तू मन-मन्दिर में प्रवेश करके उस देवता से मिल पायेगा जिसके साथ से ही यह जीवन जीवन है—तुझे मिला हुआ यह जीवन भी तभी सार्थक होगा।

४६७ पत्ते-पत्ते पर उसका पता है फिर भी पता पूछता है?

ऐ प्राणी! ईश्वर को जब तू जानने को उत्सुक होगा तब तुझे ईश्वर का पता पूछना नहीं पड़ेगा, पत्ते-पत्ते पर तू उसका पता देख पायेगा। देख, तू जहाँ भी आज हरियाली देख पाता है वह हरियाली ईश्वर के साथ से है। वह हरियाली ही बताती है—ईश्वर है, ईश्वर है, ईश्वर है। किन्तु उस पते को तू पढ़ पायेगा सन्त की आँखों से ही। सन्त की शरण तेरी आँखें खोल देगी और तब तू ईश्वर को सर्वत्र देख पायेगा। अन्यथा सदा-सर्वदा ईश्वर के साथ रहते हुए भी तू उसका पता ही पूछता रहेगा, उसे पहिचान नहीं पायेगा।

४६८ पहुँच कर पहुँच लिखना वह ऐसी पहुँच है जो सब की पहुँच के परे है।

ऐ प्राणी ! किसी स्थान पर पहुँच कर वहाँ की पहुँच लिखी जा सकती है किन्तु ईश्वर-मिलन का आनन्द लिख कर नहीं बताया जा सकता। देख, ईश्वर असीम है अतः ईश्वर का वर्णन शब्दों में अथवा लेखनी में नहीं आ सकता। शब्दों व लेखनी के द्वारा ईश्वर का संकेत मिल सकता है, उस तक पहुँचा नहीं जा सकता। ईश्वर तक पहुँचने के लिये सद्‌गुरु कृपा का सहारा चाहिये। जब सद्‌गुरु की कृपा सहायक होती है तब लेखनी भी सहायक बन सकती है अन्यथा ईश्वर की बातें केवल बुद्धि विलास बनकर रह जाती हैं। अतः तू यदि सत्य मार्ग का अवलम्बन करना चाहता है तो सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर। सद्‌गुरु की शरण तथा तेरे हृदय की विकलता—दोनों का जब सम्मिश्रण होगा तब तू उस अवस्था में पहुँच जायेगा जो वर्णनातीत है।

४६९ तो कैसे जानूँ ? देखते-देखते चला तो पहुँचा ही समझो।

ऐ प्राणी ! तेरे मन में जिज्ञासा हो सकती है कि जब ईश्वर अवर्णनीय है, उसकी सही जानकारी पुस्तकों व उपदेशों से नहीं मिल सकती तब उसे कैसे जाना जाय ? देख, ईश्वर तक पहुँचने का सही रास्ता हृदय की विकलता है। जब तेरा हृदय ईश्वर-मिलन के लिये तड़प उठेगा तब उसकी ओर बढ़ने के रास्ते भी तुझे स्वतः मिल जायेंगे। ऐसे में तू सच्चे सद्‌गुरु का साथ पा जायेगा। सद्‌गुरु मन-प्राणों का साथी है। वह उपदेश सुनाने वाला नहीं, सत्य तक पहुँचाने वाला है—वह सत्य का सन्देश सुनाने ही यहाँ आया है। ऐसे सद्‌गुरु के भावों की ओर देखते-देखते जब तू चलेगा तब एक न एक दिन अवश्य सत्य मंजिल तक पहुँच जायेगा।

४७० शेष कर विशेष क्यों ?

ऐ प्राणी ! तू यदि सचमुच ईश्वर दर्शन करना चाहता है तो तू झूठे झंझटों को हृदय में प्रश्रय न दे। यदि तू झंझटों को भी विशेष रूप से प्रश्रय देता रहेगा तथा ईश्वर दर्शन की भी कामना करेगा तो तू केवल ईश्वर के नाम पर शरीर की क्रिया ही अपना सकेगा, ईश्वर को सम्मुख नहीं देख पायेगा। देख, मान, बड़ाई, धन-ऐश्वर्य आदि झंझटों में पड़ने से तेरी वृत्तियाँ बिखर जायेंगी और तू ईश्वर दर्शन के योग्य नहीं रह जायेगा। अतः तू उन कार्यों व भावों को शेष कर जिनसे तेरा हृदय कलुषित हो रहा है एवं उन

भावों को शिरोधार्य कर जिनसे तेरा हृदय निर्मल हो जाये। अन्यथा तू ईश्वर दर्शन के नाम पर स्वयं को भुलावा ही देता रहेगा, ईश्वर को कभी पा नहीं सकेगा।

४७१ कर तलाश नहीं विनाश।

ऐ प्राणी! तेरे जीवन पाने का उद्देश्य केवल खाना, पीना, सोना, रोना ही नहीं, कुछ और भी है। यदि तू जीवन को इनमें ही बिता देगा तो तू विनाश को प्राप्त होगा क्योंकि ये साधन स्थूल की ही पूर्ति करते हैं तथा स्थूल में ही विलमाये रखते हैं। स्थूल विनाशी है और जब प्राणी स्थूल में ही रम जाता है तो वह विनाश को प्राप्त होता है। देख, तूने यह जीवन विनाश की ओर बढ़ने के लिये नहीं पाया है अतः तू उस सत्ता की तलाश कर जो अविनाशी है। जिस दिन तू उसे खोज पायेगा उस दिन तेरा विनाश नहीं होगा, उस दिन तू इसी विनाशी शरीर द्वारा तथा इसी संसार में रहता हुआ अविनाशी भावों के साथ आनन्द मनायेगा तथा एक दिन आनन्द में ही समा जायेगा।

४७२ हँस-हँस कर रम,
न शम और न दम।

ऐ प्राणी! ईश्वर की प्राप्ति कठिन साधनों को अपनाने से ही होगी—यह बात नहीं है। देख, अभी तू ईश्वर को दूर, अति दूर मान कर बैठा है इसीलिये ईश्वर के लिये कठिन कल्पना करता है। जिस दिन ईश्वर तेरा अपना होगा उस दिन तू ईश्वर को सहज ही पा जायेगा। अतः तू यदि ईश्वर को सम्मुख देखना चाहता है तो तू उन प्रेमियों के समीप बैठ जिन्होंने ईश्वर को दिल में बसाया है। उनके समीप बैठकर ईश्वर तेरा भी अपना बन जायेगा। ईश्वर जिस दिन तेरा अपना बन जायेगा उस दिन तुझे ईश्वर प्राप्ति के लिये कठिन साधना नहीं करनी होगी, शमन-दमन द्वारा इन्द्रियों को वश में नहीं करना होगा, उस दिन तू उसे हँसते-हँसते (सहज में) ही पा जायेगा। ऐसे में तुझे हमेशा उसका ध्यान रहेगा क्योंकि वह तेरा अपना जो है।

४७३ अधिकारी कौन? जो अधिकार न जताये। सीधा शरण आये।

ऐ प्राणी! 'मैं' की दुनिया में जीने वाला तथा सब पर अधिकार जताने

वाला ईश्वर को नहीं पा सकता, ईश्वर को पाने का अधिकारी वही है जो सर्वथा अहंकार शून्य है एवं जो ईश्वर के चरण कमलों का भँवरा बन सदा रसपान करने का इच्छुक है। देख, अधिकार माँगने की चीज नहीं, जो जैसे भावों से सुसज्जित है उसे उतना अधिकार मिल ही जाता है! अयोग्य यदि ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य अपनाकर लोगों के द्वारा प्रशंसा भी पा जाता है तो वह प्रशंसा उसे ले डूबती है। उससे वह ईश्वर को तो पाता ही नहीं, ईश्वर-प्राप्ति के रास्ते भी उसके लिये बन्द हो जाते हैं। अतः तू इधर-उधर देखना छोड़कर सीधा ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि ईश्वर तेरा अपना बन जाये, तू ईश्वर को सदा साथ देख पाये।

४७४ आगे क्या है? पीछे क्या था? जो पीछे था वह आगे है।

ऐ प्राणी! आगे वही मिलता है जैसी बीते हुए समय में (पीछे) चाहना रहती है। देख, तू आज जो भी है और जैसा भी है उसके लिये तू भाग्य को अथवा ईश्वर को भला-बुरा न कह क्योंकि तेरी आज की स्थिति का कारण भाग्य व ईश्वर नहीं, तेरी कल की भावना है अर्थात् जो भाव कल तेरे साथ थे उन्हीं को तू आज प्रत्यक्ष देख पा रहा है। अतः तू ईश्वर पर दोषारोपण करना छोड़कर स्वस्थ भावों का धनी बन कि तेरा जीवन सज जाये। अन्यथा धन-वैभव, मान-सम्मान, घर-परिवार आदि पाकर भी तू चैन नहीं पा सकेगा क्योंकि चैन इनमें नहीं, हृदय के सुमधुर भावों में है।

४७५ भीतर में तरी तो बाहर में हरी।

ऐ प्राणी! 'ईश्वर' स्थूल चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, हृदय की आँखों (अन्तर चक्षु) से अनुभव किया जा सकता है। देख, जिस सम्पर्क से हृदय परिवर्तित होने लग जाये, वृतियाँ शान्त हो कर रस विभोर होने लगें—उसी सम्पर्क से तू एक दिन ईश्वर दर्शन का मार्ग पा सकेगा। उस मार्ग पर बढ़ते रहने से तेरे भीतर में तरी आयेगी और जब भीतर में तरी आयेगी तब तू बाहर सर्वत्र हरि ही हरि देख पायेगा। जब तक भीतर में तरी नहीं आ जाती अर्थात् हृदय परिवर्तित नहीं हो जाता तब तक ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य किये जा सकते हैं, ईश्वर को सम्मुख नहीं पाया जा सकता। अतः तू यदि सचमुच में ईश्वर का जलवा देखना चाहता है तो तू तेरे अन्तर को टटोल कि जो कुछ तू कर रहा है उससे तुझे तृप्ति मिल रही है या तू केवल कार्य ही कर रहा है? यदि भीतर तरी है तो तू बाहर भी हरी देख पायेगा

अन्यथा ईश्वर के नाम पर कुछ करके मन बहलाव ही कर सकेगा, ईश्वर को कभी नहीं पायेगा।

४७६ सेतु, किस हेतु ? तुलने वाले के लिये पुल।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को पाने की लालसा अति अल्प में ही पायी जाती है और जिनमें पायी जाती है उनके जीवन में अनेक बाधायें व प्रतिबन्ध देखे जाते हैं। देख, जो रुकावटें उनके सम्मुख देखी जाती हैं वे उन्हें रोकती नहीं, उनके भावों को और अधिक सुदृढ़ बनाती हैं क्योंकि साधक का कोई बाधक नहीं होता। वे प्रतिबन्ध व बन्धन व्यक्ति की स्थिति का माप तौल भी करते हैं। यदि व्यक्ति आगे बढ़ने के योग्य नहीं है तो ऐसी अवस्था में वह वहीं रुक जायेगा और यदि उसके जीवन का परम लक्ष्य सत्य है तो वे प्रतिबन्ध उसे रोक नहीं पायेंगे, वह और अधिक तेजी से आगे बढ़ता जायेगा अर्थात वे बाधायें ही उसके लिये पुल बन जायेंगी। अतः तूने यदि ईश्वर के मार्ग पर कदम रखा है तो तू रास्ते में मिली हुई बाधाओं से घबड़ाना नहीं, तू हमेशा सत्य की ओर देखते हुए आगे बढ़ते जाना। लक्ष्य की ओर देखते रहने से वे बाधायें तुझे और अधिक मजबूत बनायेंगी तथा तेजी से लक्ष्य की ओर ले जायेंगी। अन्यथा उनकी ओर देखता हुआ तू वहीं का वहीं खड़ा रह जायेगा, कभी आगे नहीं बढ़ पायेगा।

४७७ भीतर बहता है तो बाहर आता है।

भीतर की स्थिति (विचार-भाव) के अनुसार ही बाहर के कार्य होते हैं। यदि भीतर के भाव समय विशेष के लिये दबा कर रख लिये जाते हैं तो भी वे एक समय पश्चात् निश्चित ही उभर कर बाहर आते हैं। ऐ प्राणी ! तू जैसा भी तेरा जीवन देखना चाहता है तथा अन्य को दिखाना चाहता है, उसके लिये तू केवल बाहर के कार्य सजाने की चेष्टा न कर, भीतर के भाव सजाने की इच्छा रख। केवल कार्य सजाकर तू खुद ही धोखा खा जायेगा क्योंकि जो तेरे भीतर बहता है वह निश्चित ही एक दिन बाहर आ जायेगा। अतः तू भीतर की दुनिया की ओर उन्मुख हो तथा बाहर के कार्यों की तरह सच्चाई से भीतर के एक-एक भावों को देख कि तेरे भीतर वाला सज जाये एवं बाहर भी बहार आ जाये।

४७८ मान कर चला, चाल बन्द हुई। मानना छोड़ा, असीम हुआ।

ऐ प्राणी ! तू व्यक्ति का सहारा लेकर न चल, तू ईश्वर का सहारा

लेकर चल। तू यदि व्यक्ति का सहारा लेकर चलेगा तो एक दिन तेरी चाल बन्द हो जायेगी, तू अपने को असहाय, निर्बल व दीन-हीन पायेगा क्योंकि व्यक्ति का सहारा एक हद तक ही साथ देता है। किन्तु तू यदि ईश्वर का साथ पा जायेगा तो तुझे कभी निराश व हताश नहीं होना पड़ेगा। देख, ईश्वर कहीं बाहर नहीं, तेरे भीतर है अतः ईश्वर का साथ कभी छूटने वाला नहीं, हमेशा साथ रहने वाला है। ईश्वर का साथ पाकर तू असीम शक्ति का स्वामी बन जायेगा। ऐसे में मन-बल, तन-बल, धन बल कोई भी तुझे अपने सम्मुख नहीं झुका सकेंगे, तू सदा-सर्वदा अपने साथ ईश्वर को देखता हुआ तीव्रगति से आगे बढ़ता जायेगा तथा एक दिन असीम भाव को प्राप्त होगा।

४७९ प्यार क्या था? प्यार क्या है? किसी को यार समझ रखा था।

ऐ प्राणी! प्यार ईश्वर है। प्यार का आगमन जब हृदय-पटल पर होने लगता है तब यही समझना होगा कि ईश्वर का प्रादुर्भाव जीवन में होने लगा है। देख, प्यार अशरीरी भाव है, जब इसकी उद्दीपना होती है तब शरीर का ध्यान नहीं रह जाता, रहता है केवल प्यार और वही श्वासों-प्राणों पर छा जाता है। किन्तु प्यार में जब 'स्व-सुख' की कामना आ जाती है तब प्यार का रूप विकृत हो जाता है। तब प्यार प्यार नहीं रह जाता, वासना बन जाता है। ऐसे प्यार में शरीर की गन्ध रहती है तथा वह व्यक्ति की ओर इंगित करता है और बाहर के साज सजाता है, हृदय को आलोकित नहीं कर पाता। यथार्थ में वह प्यार नहीं रहता, उसे केवल प्यार का नाम दिया जाता है।

**४८० पाकर नहीं पिया—पापी
अन्तर आत्मा में धारण किया—धर्मात्मा।**

ऐ प्राणी! यह मनुष्य जन्म साधारण नहीं, यह ईश्वर-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस जन्म को पाकर भी यदि प्रेम रस का पान नहीं किया जाये तो मनुष्य-जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। अतः तू मनुष्य-जीवन की कीमत पहिचान कर प्रेम रस का पान कर ले, नहीं तो अनुपम धन का धनी होकर भी तू पापी बना रहेगा अर्थात भीतर ही भीतर कष्ट पाता रहेगा। देख, तू यदि अन्तर आत्मा में ईश्वर प्रेम को धारण कर सका तो तेरा अन्तर-घट सुमधुर व सुललित भावों से सज जायेगा, इतना ही नहीं, धर्म का मर्म भी सही मायने

में तू तभी जान पायेगा और धर्म को धारण करके धर्मात्मा भी तू तभी बन पायेगा। अन्यथा बाहर के क्रिया-कलापों को अपनाकर तू पापी और धर्मात्मा की झूठी व्याख्या ही करता रहेगा, धर्मात्मा कभी बन नहीं पायेगा।

४८१ सोया तो जगा, चिर जाग्रत को स्वप्न कहाँ ?

ऐ प्राणी ! जो अज्ञान अन्धकार के कारण विषयों के आकर्षण में फँसकर सो रहे हैं, उनको यदि ज्ञान का प्रकाश मिल जाये तो वे जाग सकते हैं किन्तु जो अहंकार में सने अपने आपको जगा हुआ ही समझते हैं, ऐसे जन जाग तो सकेंगे ही नहीं, जागने का स्वप्न भी नहीं देख सकेंगे। देख, अहंकार का खेल बड़ा टेढ़ा है। अहंकारी अपने समान किसी को नहीं समझता अतः वह किसी के द्वारा कही गई दो भली बातें भी सुनने को तैयार नहीं होता—ऐसे में उसके जागने का तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। जाग वे ही सकते हैं जो अनजाने में सो रहे हैं। ऐसे जन को कोई जगा हुआ यदि जगा दे तो वे निश्चित ही जाग जायेंगे, इतना ही नहीं, सत्य की ओर देखते हुए वे सत्यमय जीवन बितायेंगे क्योंकि उनको आज वह धन मिल गया है जो आज तक उनकी आँखों से ओझल था।

४८२ प्यार को सेवा में खोजा,
प्यार को भक्ति में खोजा।
प्यार को प्यार में खोजा,
प्यार को त्याग में खोजा।
प्यार इन सब में था, इन सब में न था। प्यार था यार में
और यार था स्वयं।

ऐ प्राणी ! प्यार का आंशिक रूप सेवा में भी दिखलाई देता है, ईश्वर की भक्ति में भी दिखलाई देता है, सबसे प्यार करने में भी दिखलाई देता है तथा त्याग में भी दिखलाई देता है किन्तु इन्हें अपनाकर भी हृदय प्यार पाने के लिये तड़पता रहता है। देख, प्यार इन सब में है किन्तु जब तक प्रेम की मूर्त्ति के तू प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर पायेगा और वह प्रेम की मूर्त्ति तेरे श्वासों-प्राणों में रम कर एक नहीं हो जायेगी एवं तेरा व्यक्तित्व उसमें लीन-विलीन नहीं हो जायेगा तब तक तू प्यार को नहीं जान पायेगा। अतः तू यदि सचमुच प्यार पाना चाहता है तो उसे खोज जो प्यार का सन्देश बाँटने यहाँ

आया है, जो प्यार ही प्यार है। ऐसे प्रिय के दर्शन पाकर जब तू उसे प्राणों में प्रतिष्ठित देख पायेगा तब तेरी खोज सफल होगी। उस दिन से तू प्यार-रूप बन जायेगा, प्यार तुझसे अलग नहीं रह जायेगा।

४८३ वह कौन सा प्यार है, जो शरीर तक सीमित है? शरीर का प्यार क्या प्यार? स्थूल में स्थूल की लालसा। प्यार अशरीरी। जहाँ चाह नहीं—आगे बढ़ने की राह है।

ऐ प्राणी! जब तक तू प्यार को बाहर खोजता रहेगा तथा अन्य से पाने की लालसा रक्खेगा तब तक तू प्यार का सही रूप नहीं जान सकेगा। प्यार अशरीरी भाव है। जब इसकी जाग्रति होती है तब शरीर का भान भी नहीं रह जाता, प्यार के आकर्षण में प्रेमी खिंचा-खिंचा चला जाता है। देख, प्यार को पाकर जब तक तेरी ऐसी अवस्था नहीं हो जाती तब तक जिसे तू प्यार कहता है, वह प्यार नहीं। शरीर तक सीमित रखने वाला प्यार केवल स्थूल की लालसा पूर्त्ति कर सकता है, प्यार तक नहीं पहुँचा सकता। प्यार में चाह नहीं रह जाती, रह जाता है केवल प्यार और वही उसे आगे बढ़ाता रहता है।

४८४ कपट में पट है—कपट रखा, पट पहनो और बदलो, फुरसत नहीं।

ऐ प्राणी! कपट रखने से दिल गन्दा हो जाता है, जिसे हमेशा अन्य के सम्मुख ढक कर रखना पड़ता है। देख, जब तक वे भाव—जो तुझे औरों से छुपाने पड़ते हैं—तेरे भीतर रहेंगे तब तक तुझे बार-बार इस संसार में आना-जाना पड़ेगा। तेरा यह (आवगमन का) चक्र तब तक खत्म नहीं होगा जब तक कि तेरा हृदय शुद्ध नहीं हो जायेगा। अतः तू यदि इस आवगमन से फुरसत चाहता है तो तू हृदय को शुद्ध रख एवं जिन भाव-विचारों को तुझे छुपाना व सजाना पड़े, उन्हें तू हृदय में प्रश्रय न दे—तभी तू यहाँ आने का आनन्द पा सकेगा तथा तृप्त होकर यहाँ से लौट सकेगा। ऐसे में तुझे बार-बार लौट कर यहाँ आना नहीं पड़ेगा क्योंकि बार-बार आने का कारण अतृप्ति है।

४८५ महान की बातें—महान बनाती हैं। बनो मत—बन जाओगे।

ऐ प्राणी! महान ईश्वर की बातें बातें बनाने के लिये नहीं होतीं, अन्य

से प्रशंसा पाने के लिये नहीं होतीं—महान भावों को हृदय में प्रश्रय देने के लिये होती हैं। यदि तू केवल महान की बातें करके महान बनना चाहेगा तो यह बालू से तेल निकालने की चेष्टा होगी, तू महान कभी नहीं बन पायेगा। महान बनने के लिये महान के भावों का दिग्दर्शन करना होगा। जब उनके भाव तेरे अपने होंगे, तू कोमलता, नम्रता आदि सद्भावों से सज जायेगा तब तू भी महान हो जायेगा। देख, महान भीतर-बाहर से एक रहते हैं। जैसे उनके भाव-विचार होते हैं वैसे ही उनके कार्य भी रहते हैं तथा जैसे कार्य होते हैं वैसे ही भाव-विचार रहते हैं। यथार्थ में जो भीतर-बाहर से एक हैं, वे ही महान हैं।

४८६ भार बना, बहार नहीं।

ऐ प्राणी! यह जिन्दगी तुझे भार के लिये नहीं मिली, बहार के लिये मिली है अतः तू छोटे-छोटे कामों के पीछे परेशान रहकर इसे भार न बना। देख, कार्य में भार नहीं होता, 'मैं-मेरे' में भार होता है। 'मैं-मेरे' में व्यक्ति जितना जकड़ता चला जाता है उतना ही उसका जीवन बोझिल होता जाता है और बोझिल व्यक्ति को कुछ भी क्यों न मिल जाये वह उसका आनन्द नहीं ले सकता। समय विशेष के लिये उनमें खो कर वह स्वयं को भुलावा दे सकता है किन्तु बोझ से अलग नहीं हो पाता। जीवन में बहार पाने के लिये, भार से मुक्त होना पड़ता है और भार से मुक्त होने के लिये ऐसे साथी का साथ करना पड़ता है जो भार-मुक्त है एवं जो सबके भार को हटाने की सामर्थ्य रखता है—वह साथी सद्गुरु है। सद्गुरु भार लेता नहीं, सत्य वाणी रूपी हाथों से भार हटा देता है परिणाम दृष्टि साफ हो जाती है। दृष्टि साफ हो जाती है अतः सृष्टि भी साफ हो जाती अर्थात् व्यक्ति इस सृष्टि के कण-कण का आनन्द ले पाता है।

४८७ पहचान, नहीं ध्यान, नहीं ज्ञान।

ऐ प्राणी! जब तक ईश्वर की अनुभूति प्राप्त नहीं होती तब तक ईश्वर के नाम पर साधक अनेक क्रियाएँ करता है—कभी ध्यान लगाता है और कभी बुद्धि बल द्वारा उसे जानने की चेष्टा करता है किन्तु ये क्रियाएँ वह तब तक ही कर पाता है जब तक कि ईश्वर को पहचानता नहीं। ईश्वर को पहिचानने के पश्चात् याद करने के लिये उसे कुछ क्रियाओं का सहारा नहीं लेना पड़ता, हमेशा उसकी याद रहती है। देख, ऐसी है यह पहिचान जिसके पश्चात् ध्यान,

ज्ञान की बातें खत्म हो जाती हैं और यथार्थ में ध्यान रहने लग जाता है तथा जानने के लिये अलग से कुछ और सम्मुख ही नहीं रह जाता, रह जाता है एक उसी का ज्ञान, वही रोम-रोम में समा जाता है।

४८८ ज्ञान, नहीं नाम, नहीं धाम।

ऐ प्राणी! जब एक बार व्यक्ति ईश्वर की झलक पा जाता है तब ईश्वर को और अधिक जानने की जिज्ञासा उसके हृदय में उत्पन्न हो जाती है। उसकी यह जिज्ञासा ही उसे ईश्वर से मिलाती है। देख, जानकारी के पूर्व नाम जपना तथा तीर्थाटन करना आदि अनेक कार्यों को वह सम्पादित करता रहता है किन्तु जानकारी के पश्चात् नाम हृदय में बस जाता है तथा उसके चरण-कमल ही धाम बन जाते हैं—उसके सिवा जीवन में कुछ नहीं रह जाता। 'मैं, मेरा घर, मेरे बाल-बच्चे, मेरा नाम' सब उसके चरणों पर न्योछावर हो जाते हैं अर्थात् सभी का कर्त्ता एक ईश्वर हो जाता है।

४८९ क्यों घूमता है? चैन की बाँसुरी बजा। जिसके स्वर, सुनने सुनाने वाले के भाव को मिटा दें।

ऐ प्राणी! चैन तुझे कहीं बाहर नहीं मिलेगा, तेरे भीतर मिलेगा। जब तू बाहर घूमते-घूमते थक जायेगा, चैन नहीं पायेगा और तेरा दिल चैन पाने के लिये छटपटा जायेगा तब तू वह भाव अवश्य पा जायेगा, जिससे चैन मिलता है। देख, चैन की बाँसुरी दिल, दिमाग सब को राहत देती है। जब यह बजती है तब श्रोता और वक्ता दोनों मुग्ध हो जाते हैं, बाँसुरी के स्वरों में ही खो जाते हैं क्योंकि बाँसुरी के स्वरों में वक्ता नहीं रहता, चैन देने वाला रहता है—वक्ता और श्रोता तो रसपान करने वाले होते हैं। अतः तू चैन पाने के लिये बाहर चक्कर न काट, तू अपने हृदय को टटोल कि तू ईश्वर के नाम पर जो कुछ कर रहा है उससे तुझे चैन मिल रहा है या नहीं? यदि नहीं, तो तू उस साथी की खोज कर जिसके समीप बैठकर तू चैन पाये। जिस दिन से तू चैन पायेगा उस दिन से तेरी वाणी दूसरी हो जायेगी, वह वाणी उस अज्ञात साथी की होगी जो तुझे चैन दे रहा है। उस वाणी को सुनकर तू भी मुग्ध होगा तथा जो उस वाणी को सुन पायेगा—वह भी मुग्ध हो जायेगा।

४९० प्रेम के आँसू, कीमत आँसू की या प्रेम की?

ऐ प्राणी! प्रेम अमूल्य धन है। यह धन एक बार मिलने के पश्चात्

कभी खत्म नहीं होता, दिन दूना-रात चौगुना बढ़ता जाता है। देख, यों तो प्रेम अरूपी है, आँख से दिखलाई नहीं देता फिर भी आँसुओं में इसकी झलक मिलती है। प्रेम की झलक जब भा जाती है और प्राणी उसे प्राण-प्रण से पाने की इच्छा रखता है तब वह प्रेम को प्रगट रूप में भी देख पाता है और एक समय ऐसा आता है जब वह उसे पा जाता है। पाने के पश्चात् भी प्रेमी की आँखों में कृतज्ञता के आँसू होते हैं किन्तु कीमत आँसू की नहीं होती, कीमत प्रेम की होती है। ऐसा है यह प्रेम जिसे देखते ही बनता है। यह प्रेमी के प्रत्येक हाव-भाव व क्रिया-कलाप में दिखता है, फिर भी सबसे परे है।

४९१ अवतार का तार खटखटाते हैं—बेतार का तार कहाँ ?

ऐ प्राणी ! जब तक तू राम और कृष्ण को बाहर देखता रहेगा तब तक तेरी आवाज उन तक नहीं पहुँचेगी। राम और कृष्ण जिनकी तू लीला गाता है, वे शरीरधारी व्यक्ति नहीं—'राम' तेरे हृदय में रमण करने वाली शक्ति का नाम है तथा 'कृष्ण' अपनी ओर खींचने वाली शक्ति का नाम है। जिस दिन आकृष्ट करने वाले श्याम को तू प्रत्यक्ष देख पायेगा उस दिन रमण करने वाले राम को भी तू जान जायेगा, दोनों के आकर्षण में बँधा तेरा जीवन अनुपम बन जायेगा। ऐसे में तुझे अवतारी भगवान का तार नहीं खटखटाना होगा अर्थात् उनकी लीला के गीतों को नहीं गाना होगा, तेरी हृदय-वीणा के बेतार के तार छिड़ जायेंगे और तू अन्तर में उसे समक्ष देख पायेगा, तेरा जीवन ईश्वर से आच्छादित हो जायेगा।

४९२ हंस में सना ? तो हँसना। नहीं तो क्या हँसना।

ऐ प्राणी ! दिखलाई पड़ने वाला यह शरीर मिटने वाला है किन्तु इसमें रहने वाला 'हंस' कभी मिटने वाला नहीं। तू यदि उस हंस (आत्मा) को जान लेगा तो कर्त्तापन के मैं से मुक्त हो जायेगा—तभी तेरे जीवन में हँसी का प्रादुर्भाव होगा अन्यथा तेरी हँसी सामयिक होगी, तू छोटी-छोटी बातों में बेअर्थ ही हँसता रहेगा जिस हँसने का कोई उद्देश्य नहीं होगा। देख, अविनाशी आत्मा का साथ पाकर भी यदि तू उससे दूर ही बना रहा तो तू कभी नहीं हँस पायेगा—रोते-रोते ही तेरी जिन्दगी गुजर जायेगी, यहाँ तक कि तेरे हँसने के क्षण भी रोने में ही गुजर जायेंगे। अतः तू उसको श्वाँस रहते-रहते ही प्रत्यक्ष पा ले कि तू उसके साथ हो जाये, तेरा जीवन हँसते-हँसते बीत जाये, शरीर जाने पर भी तू शरीर के साथ न जाये।

४९३ तरी में तर, भरी में बह।

ऐ प्राणी ! थोड़ा सा रस मिले तो तरी आती है किन्तु भरपूर मिल जाये तो अन्तर-घट भर जाता है तथा बाहर भी बहने लगता है। देख, ईश्वर की स्मृति तरी देती है, उसे पाकर जीवन हल्का-फुल्का हो जाता है किन्तु भाव तो रस से सराबोर कर देता है। भाव का प्रवाह जब अन्तर-घट में होने लगता है तब वह (प्रवाह) भीतर नहीं समाता, बाहर भी बह कर आ जाता है। अतः तू थोड़ा सा भाव पाकर ही तृप्त न हो, भाव का अथाह सागर पाने के लिये प्रभु के चरणों पर पूर्णतया झुक जा कि तू भाव का आनन्द पा जाये, केवल तू ही नहीं, भाव के पिपासु भी इसे पान करके तृप्त हो पायें।

४९४ सखा, साख किसकी ? साक्षी की।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर चलते अनेक हैं किन्तु साख (प्रतिष्ठा) उनकी ही बनती है जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन ईश्वर के लिये न्योछावर किया है एवं जिनके प्रत्येक श्वाँस पर ईश्वर का आधिपत्य है। उनमें ईश्वर इतना घुल मिल जाता है कि ईश्वर से अलग उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती—उनकी प्रत्येक गति-विधि ईश्वरमयी हो जाती है। देख, ईश्वर के नाम पर चलने वाले समय विशेष के लिये नामी हो सकते हैं परन्तु उनकी यह प्रतिष्ठा स्थायी नहीं होती क्योंकि उन्होंने अभी ईश्वर को स्वयं से अलग देखा है, रोम-रोम में प्रतिष्ठित नहीं पाया है। यदि उन्होंने सर्वत्र ईश्वर का जलवा देखा होता तो उन्हें साख बनानी नहीं पड़ती, उनकी साख बन जाती क्योंकि साख उनकी ही बनती है जिन्होंने ईश्वर को कण-कण पर आच्छादित पाया है।

४९५ काला पहन, काल को मिटा सका ?
पीला पहन, प्रीतम को पा सका ?
भगवा पहन, भेद, भाव, भय भगा सका ?
तब श्वेत किसका हेतु।

ऐ प्राणी ! रंग प्रधान नहीं, 'भाव' प्रधान है। यदि भाव के साथ रंग हैं तो रंग भी उद्दीपना का कारण बन सकते हैं अन्यथा रंग में खेलता प्राणी बाहर ही रह जाता है, भाव का आनन्द नहीं ले पाता। देख, काला रंग काल का संकेत देता है, पीला रंग प्रियतम प्रभु के रूप का आभास देता है, भगवा रंग हृदय के अन्धकार को मिटाकर प्रकाश की ओर जाने का संकेत

देता है—किन्तु न तो तू अमरता जान सका और न प्रियतम प्रभु की छवि निहार सका और न ऊँच-नीच, भेद-भाव को मिटाकर हृदय शुद्ध कर सका। ऐसे में यदि तू सफेद वस्त्र जो शुद्धता के प्रतीक हैं उनको भी धारण कर लेगा तो भी कोई लाभ नहीं होगा। अतः तू कपड़े न रँग, दिल रँग कि तेरे जीवन में बहार आये—तेरा जीवन श्वेत वस्त्र की तरह उज्ज्वल हो जाये, भेद-भाव-भय आदि तेरे समीप ठहर न पायें, प्रियतम प्रभु ही तेरा सर्वस्व बन जाये। अब यदि मृत्यु भी तुझे लेने आये तो शरीर को ही ले जाये, तुझे न ले जा पाये।

४९६ सुख स्वप्न भंग नहीं, खोज आनन्द कन्द।

ऐ प्राणी ! तू कल्पना करता है कि तू सदा सुखी बना रहे, तेरे सुख के दिन कभी खत्म न हों। देख, तेरा यह स्वप्न साकार हो सकता है किन्तु यह साकार होगा तभी जब तू आनन्द-कन्द प्रभु को खोज लेगा। देख, आनन्द कन्द प्रभु की खोज ही तुझे आनन्दमय जीवन जीने का मार्ग दिखायेगी। जब तक तू उसकी खोज नहीं कर लेगा तब तक वह दृष्टि नहीं पा सकेगा जिससे इस जगत तथा जीवन का रहस्य जाना जा सकता है परिणाम तू अँधेरे में सुख की खोज करता हुआ दुःखी ही बना रहेगा। अतः तू यदि अपना स्वप्न साकार देखना चाहता है तो तू प्रथम ईश्वर की खोज कर। ईश्वर का साथ पाकर ही तेरा सुख चिरस्थायी बन सकेगा, तू जर्रे-जर्रे से आनन्द पा सकेगा क्योंकि यह सम्पूर्ण दृश्य जगत एक उसी का खेल है।

४९७ भाग्य भागा, जब तू भागा।

ऐ प्राणी ! तू अपने भाग्य को न कोस क्योंकि तेरा भाग्य खराबन हीं, यदि तेरा भाग्य खराब होता तो तुझे मनुष्य जन्म ही नसीब नहीं होता। यह मनुष्य जन्म भाग्यशाली को मिलता है, इस जन्म के लिये देवता भी तरसते हैं। देख, जीवन यात्रा में छोटी-मोटी उलझनें आती ही रहती हैं, ये हताश-निराश करने के लिये नहीं आतीं, और अधिक सुदृढ़ बनाकर तेजी से आगे बढ़ाने के लिये आती हैं। यदि तू इनकी ओर देखता हुआ हताश-निराश हो जायेगा तो तेरा भाग्य साथ नहीं दे पायेगा क्योंकि भाग्य उनका ही साथ देता है जो प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न-वदन रहकर आगे बढ़ते जाते हैं, जो परिस्थितियों के गुलाम होकर भाग्य को नहीं कोसते—ऐसे नर ही भाग्यशाली होते हैं।

किन्तु जो छोटी-छोटी बातों के कारण जीवन से ऊब जाते हैं, वे सब कुछ पाकर भी रोते रहते हैं—वे भाग्यशाली होकर भी भाग्यहीन ही बने रहते हैं।

४९८ मार से बचा यदि रमा से बचा।

ऐ प्राणी! शरीर को सुचारु रूप से चलाने के लिये लक्ष्मी (रमा) साधन है। साधन का जब तक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है तब तक साधन कष्ट नहीं देता किन्तु साधन ही जब साध्य बन जाता है तब कष्टों का मुकाबला करना कठिन हो जाता है। देख, आज साधन (धन) ही तेरे लिये साध्य बन गया है, तेरे मूल में ही भूल प्रारम्भ हो गई है और मूल में जब भूल प्रारम्भ हो जाती है तब भूल का सुधार होना कठिन हो जाता है। इसमें सुधार लाने के लिये तुझे प्रारम्भ की ओर मुड़ना होगा अर्थात् तुझे अपना लक्ष्य बदलना होगा। तेरा लक्ष्य जब शान्ति पाना होगा तब तू शान्ति के रास्ते पर बढ़ पायेगा और शान्ति के रास्ते पर बढ़ने से तू वे कार्य जो जीवन में अशान्ति देने वाले हैं उनको नहीं अपनायेगा परिणाम तू उनकी मार से भी बच जायेगा। अन्यथा धन के पीछे भागता हुआ तू अनेक कुकर्म करता रहेगा तथा उनसे कष्ट पाता व रोता रहेगा।

४९९ रस टपकता, सर्वस्व अर्पण करता।

ऐ प्राणी! रस का वर्षण अनवरत हो रहा है किन्तु तू अभी उस रस से वंचित है। देख, रस को पाने के लिये तुझे मिटना होगा। एक छोटे से बीज का भी रूप जब तक कायम रहता है तब तक वह वृक्ष के रूप में नहीं पनपता। जिस दिन उसका रूप मिट जाता है, वह मिट्टी में मिलकर मिट्टीवत् हो जाता है तब कहीं माली के संरक्षण में बढ़ता हुआ वह वृक्ष का रूप पाता है। तू भी जिस दिन सद्गुरु के संरक्षण में पलता हुआ सर्वथा अहंकार शून्य हो जायेगा, अपना आपा प्रभु के चरणों पर न्योछावर देख पायेगा उस दिन तेरे सम्मुख भी रस का वर्षण होने लगेगा। तब रस ही तेरा सर्वस्व होगा, तू एक-एक श्वाँस में रस का वर्षण देख पायेगा।

५०० गौरी के रोगी तो देखे, शंकर का संग करनेवाले कहाँ?

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है किन्तु इसमें भी 'स्त्री' असाधारण है। स्त्री (गौरी) में स्वाभाविक आकर्षण होता है, वह यदि रूपवती न भी हो तो भी आकृष्ट करती है किन्तु ईश्वर की इस विशिष्ट कृति का व्यक्ति

आनन्द नहीं ले पाता। स्त्री उसके लिये विलासिता की सामाग्री वन जाती है, वह उसकी रूपशिखा पर मँडराने लगता है एवं एक दिन उसी में जलकर खत्म हो जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि जिस स्त्री (शक्ति) के साथ से पुरुष के जीवन में पूर्णता आ सकती है, ईश्वर को भूल जाने से वही स्त्री उसके लिये पथ-भ्रष्ट करने वाली वन जाती है। अतः ऐ प्राणी! ईश्वर की सृष्टि का उपभोग करने के पूर्व तू ईश्वर का संग कर ले। वह वड़ा दयालु है। तू जिस दिन उसका होगा उस दिन तेरी दृष्टि दूसरी होगी, उस दिन स्त्री तेरे लिये वन्धन नहीं होगी, तू उसे देख कर ईश्वर को अधिक याद कर पायेगा क्योंकि स्त्री ईश्वर की अनुपम देन जो है।

५०१ भजन तो प्रेम पूर्वक, वल पूर्वक नहीं।

ऐ प्राणी! भजन वलपूर्वक करने की चीज नहीं, प्रेमपूर्वक करने की चीज है। वलपूर्वक किया हुआ भजन काम वन जाता है जवकि प्रेमपूर्वक किया हुआ भजन काम से थके हुए प्राणी को आराम देता है। देख, वलपूर्वक कुछ समय के लिये भजन किया जा सकता है किन्तु प्रेमपूर्वक भजन करने के लिये समय निर्धारित नहीं, वह हर समय किया जा सकता है। अतः तू भजन करने के लिये वल का प्रयोग न कर, तू 'भाव' ग्रहण कर एवं उन साथियों के समीप वैठ जिनके साथ से तेरे हृदय में प्रेम का प्रस्फुटन हो। प्रेम का प्रस्फुटन ईश्वर को तेरा अपना वना देगा—ऐसे में भजन करने के लिये तुझे चेष्टा नहीं करनी होगी, तू ईश्वर के विना रह नहीं पायेगा और तभी तू प्रेमपूर्वक ईश्वर का भजन कर पायेगा।

५०२ नाच गा कर भी समझते, समा जाते।

ऐ प्राणी! तू यदि ईश्वर के नाम पर नाचता-गाता है तो कोई वात नहीं, तू खूब नाच ले, गा ले किन्तु उस नाच-गान के द्वारा भी ईश्वर को पाने की इच्छा रख। जव तेरा उद्देश्य ईश्वर को जानना होगा तव तू नाचते गाते हुए भी उसे पा लेगा। देख, जो ईश्वर को जानने की अभिलाषा रखते हैं, वे जिस कार्य को भी सम्पादित करते हैं उसमें ईश्वर को जान पाने की अभिलाषा छिपी रहती है—उनकी यह अभिलाषा ही उन्हें ईश्वर से मिलाती है। अभिलाषा के विना कुछ भी क्यों न कर लिया जाये, ईश्वर को नहीं जाना जा सकता। अतः तू किसी भी कार्य द्वारा उसकी ओर वढ़ किन्तु उसे जानने की इच्छा रख कि तू उससे दूर न रहे, उसी में समा जाये। परिणाम तेरी दुनिया ही वदल जाये, तू इसी दुनिया में रहता हुआ आनन्द मनाये।

५०३ भाव में भगवान, अभाव में शैतान।

ऐ प्राणी! 'भाव' भागवद्‌यी शक्ति को सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है। वह शक्ति जो जर्रे-जर्रे में समायी हुई है किन्तु स्थूल आँखों से ओझल है, वह भाव की आँखों से ओझल नहीं रह सकती। भाव में अदृश्य प्रभु की मनोहर मूर्त्ति दृश्यमान हो उठती है और भीतर-बाहर-सर्वत्र भगवान का साम्राज्य फैल जाता है। किन्तु अभाव की तो दुनिया ही न्यारी है। अभाव में शैतान आकर हृदय में डेरा जमा लेता है, सारी व्यवस्था अपने प्रतिकूल दिखने लगती है। जो हितैषी हैं वे बैरी बन जाते हैं और जो अहित करने वाले हैं वे हृदय में स्थान पाते हैं परिणाम चारों ओर कष्ट का साम्राज्य फैल जाता है। अतः तू हमेशा उन भावों से बचकर चल जो तेरे हृदय में अभाव की वृद्धि करने वाले हैं और हमेशा उनका स्वागत कर जिनसे तेरे भाव में वृद्धि हो कि तेरी दुनिया भगवानमयी हो जाये, तू सर्वत्र उसी एक को देख पाये।

५०४ मन मिला, तन रीझे।

ऐ प्राणी! मन, तन का अटूट सम्बन्ध है। तन को जब मन का सहयोग मिल जाता है तब इसकी गति बढ़ जाती है, यदि नहीं मिलता तो यह (तन) किसी तरह से चलता रहता है किन्तु इसके चलने में तेजी नहीं रहती। देख, ईश्वर की प्राप्ति के लिये कोई भी कार्य करने से पहले तू ईश्वर से मन मिला ले। जब तक ईश्वर से तेरा मन नहीं मिलेगा तब तक तू तन से ईश्वर के लिये कार्य करता रहेगा किन्तु तेरा मन अन्यत्र चक्कर काटता रहेगा—ऐसे में तू ईश्वर के भजन का आनन्द नहीं ले पायेगा। अतः तू मन को इधर-उधर चक्कर में न लगा, तू इसे मनमोहन की छवि दिखा। जब यह एक बार उस छबि को देख लेगा तब इसका अन्यत्र भ्रमण छूट जायेगा, यह प्रभु के चरण-कमलों का भँवरा बन उसी पर मँडराता रहेगा—ऐसे में ईश्वर के लिये किये जाने वाले कार्यों को अपनाकर तन रीझ जायेगा, मन के साथ से आनन्द मनायेगा।

५०५ जीवन भार, यदि नहीं आधार।

ऐ प्राणी! आधार के बिना जीवन भार होता है, बेकार होता है। देख, बोझ लेकर तो थोड़ा समय काटना भी कठिन होता है और (बोझ लेकर) पूरा जीवन बिताना तो मर जाने से भी अधिक दुःखदायी है—ऐसा जीवन चमड़े की धौंकनी बनकर रह जाता है, न उसमें कोई चाव रहता है और न

भाव ही रह जाता है। अरे पगले! यह जीवन तुझे भार के लिये नहीं मिला वहार के लिये मिला है किन्तु ईश्वर को भुलाने मात्र से तेरी यह दुर्गति हो रही है। देख, अब भी समय है, तू आज भी होश में आजा तथा आधार को पहिचान ले कि तेरे सिर का बोझ चरणों पर गिर जाये और तू हल्का-फुल्का रहकर आगे बढ़ पाये।

५०६ बात थी? जीवन की सौगात थी।

ऐ प्राणी! सद्‌गुरु की वाणी अन्य बातों की तरह साधारण बात नहीं रहती, वह जीवन को बदलने वाली रहती है, भ्रम-शंका-सन्देह का निवारण कर सत्य की ओर ले जाने वाली रहती है। देख, सद्‌गुरु सत्य के प्रत्यक्ष रूप होते हैं। वे अपने जीवन काल में जो कुछ अर्जित करते हैं, उसी को वाणी द्वारा कहते हैं अर्थात् वाणी उनके जीवन की सौगात है। उनकी वाणी साधारण प्राणी के लिये भी सौगात बन जाती है। तन, मन, धन की चेष्टा से व्यक्ति जो कुछ नहीं पाता, वह अनुपम धन उनकी वाणी से पा जाता है। धन, यौवन, मान-प्रतिष्ठा कुछ भी साथ नहीं जाते किन्तु उनसे मिली हुई सौगात सदा साथ रहती है, शरीर जाने पर भी उसका साथ नहीं छूटता—ऐसी है यह वाणी की सौगात। इसे पाने के पश्चात् व्यक्ति कभी निर्धन नहीं होता, शान्ति, सन्तोष, दया, क्षमा आदि भावों से उसका जीवन सज जाता है।

**५०७ गाता जा, गीत सुनाता जा। गति बन्द, यदि गीत बन्द।
गति ही गीत, गति ही मीत।**

ऐ प्राणी! ईश्वर के मार्ग पर चलने से तुझे जो कुछ मिले उसे पाकर तू हमेशा मौज में रह तथा उस मौज को सबमें बाँटता चल। मौज में रहने से तेरा हृदय गुनगुनाने लगेगा, वह गुनगुनाना केवल तुझे ही सुख नहीं देगा, उसे जो सुनेगा वह भी मोहित हो जायेगा। तू यदि आनन्द के गीत नहीं गायेगा तो तेरी गति रुक जायेगी, तू आनन्द नहीं पायेगा क्योंकि गीत गाने वाले के जीवन में ही आनन्द की लहर उमड़ती है। देख, तू यदि तेरे जीवन में आनन्दवर्द्धन देख पाता है तो यही समझना होगा कि तेरे जीवन में गीत प्रारम्भ हो गया है और तू यदि प्रिय प्रभु की मनोहर छवि हृदय-पटल पर अंकित देख पाता है तो यह कहना होगा कि तू सत्य की ओर बढ़ रहा है। यदि ऐसा नहीं है तो अभी तेरे जीवन में गीत का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। ऐसे में तू जहाँ खड़ा है वहीं का वहीं खड़ा रह जायेगा, ईश्वर का नाम लेते हुए भी तू एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पायेगा।

५०८ व्याकुलता में क्या पाते हो ? कूल किनारा भी नहीं ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की समीपता पाने के इच्छुक प्राणी को भीतर-बाहर की सभी गतिविधियों को शान्त रहकर देखना पड़ता है । यदि वह शान्त नहीं रह पायेगा, उन परिस्थितियों से व्याकुल हो जायेगा तो जीवन में कभी शान्ति नहीं पा सकेगा—ऐसे जन का जीवन व्याकुलता में ही गुजर जायेगा । देख, ईश्वर की समीपता नदी के उस किनारे की तरह है जहाँ शीतल मन्द बयार बहती रहती है किन्तु नदी के किनारे रहने वाला भी यदि दरवाजा बन्द करके बैठ जाये तो वह उस रमणीय वातावरण के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा । अतः तू यदि जीवन की घड़ियों को शान्त रहकर आनन्द में बिताना चाहता है तो तू उस साथी की खोज कर जिसकी वाणी से तेरे दिल को ठण्डक मिले और तू व्याकुलता से बच पाये अन्यथा तुझे मिला हुआ यह कीमती अवसर विकलता में ही बीत जायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा ।

५०९ तस्वीर में दूर । क्यों हुजूर ?

ईश्वर-भक्त ईश्वर की कल्पना केवल तस्वीर में नहीं कर सकते, वे रोम-रोम में उसका जलवा देखते हैं । ईश्वर को बाद करके उनका जीना कठिन होता है । उन्हें सदा वही संग-साथ सुहाता है जो ईश्वर की याद दिलाए, जो ईश्वर को भुलाने वाला है, वह साथ उनको एक क्षण के लिये भी नहीं भाता । केवल तस्वीर में ईश्वर की कल्पना वे ही कर पाते हैं जिन्होंने अभी ईश्वर को देखा नहीं है । जिन्होंने ईश्वर की आंशिक झलक भी पाई है, वे केवल तस्वीर में ईश्वर को नहीं देखते, उनका चित्त चित्रपट बन जाता है और उसमें वह तस्वीर उतर जाती है । ऐ प्राणी ! जिन्होंने ईश्वर को देखा है वे कहते देखे जाते हैं कि—मेरा दिल ही तेरा घर है, यदि तू केवल तस्वीर में ही रह जायेगा तो तू मुझसे दूर रह जायेगा और यह मुझे गँवारा नहीं होगा । देख, मेरा हर एक श्वाँस तेरा है अर्थात् तू है तो ये श्वाँस हैं । तेरे बिना मैं इस जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता क्योंकि तू नहीं तो कुछ नहीं—तेरे से ही सब कुछ है ।

५१० मन को मनाना आसान भी कठिन भी । मन मनन में लगा, शान्त हुआ । कठिन तब, जब विकल हो भ्रमण करे ।

ऐ प्राणी ! मन के खेल बड़े अनोखे हैं, यह हर समय चक्कर काटता रहता है । इसका चक्कर काटना तब तक जारी रहता है जब तक कि यह रस नहीं

पा जाता। देख, मन रस का अभिलाषी है, रस की चाह में यह कहाँ कहाँ नहीं भटकता। जब यह चक्कर काटता रहता है तब इसे मनाना कठिन हो जाता है। इसके पीछे नाचते-नाचते तन परेशान हो जाता है फिर भी इसका नाचना खत्म नहीं होता। किन्तु दूसरी ओर इसे मनाना बहुत आसान भी है। मन की चाह 'रस' है, इसकी चाह (रस) के साधन जब जुट जाते हैं तब इसे इधर-उधर कुछ भी नहीं दिखता, यह उसी में खो जाता है। अतः तू जोर-जबर्दस्ती से मन को मनाने की चेष्टा न कर, तू मन के लिये उन साधनों को अपना जिनका संग-साथ पाकर मन तृप्त हो जाये, उसी में खो जाये और शान्त हो जाये। ऐसे में ही तू मन से आनन्द पा सकेगा अन्यथा मन के साथ चक्कर काटते-काटते तू थक जायेगा फिर भी मन तेरे कहने के अनुसार नहीं चलेगा।

५११ भक्ति, मुक्ति नहीं चाहती। सामीप्य चाहती है, जो नाचता रहे, नचाता रहे।

ऐ प्राणी! जिन्होंने भक्ति को हृदय में धारण किया है, वे ईश्वर-भक्त जीवन मरण के चक्र से मुक्त नहीं होना चाहते, वे ईश्वर का सामीप्य पाना चाहते हैं। ईश्वर का बनकर उन्हें बार-बार भी यदि संसार में आना पड़े तो इसे वे अपना सौभाग्य समझते हैं। देख, ईश्वर-भक्त के कार्य अटपटे रहते हैं—वे ईश्वर के दर्शन में ही सुख पाते हैं, उसका स्मरण करके ही चैन पाते हैं एवं उसकी सेवा में ही जीवन बिताना चाहते हैं। ईश्वर भी ऐसे भक्तों के आधीन हो जाता है एवं उनके इशारे पर चलने लगता है। जिस ईश्वर के इशारे पर सम्पूर्ण विश्व नाच रहा है, वही ईश्वर भक्त के इशारे पर नाचने लगता है। ऐसी है यह भक्ति, जिसकी महिमा को केवल बातों से नहीं जाना जा सकता, भक्ति करके ही जाना जा सकता है।

५१२ शक्ति (मानसिक) से भक्ति मुक्ति? युक्ति का प्रयोग सफल।

ऐ प्राणी! भक्ति जोर लगाकर करने की चीज नहीं, जोर लगाकर की गई क्रिया भक्ति नहीं रह जाती, भक्ति के नाम पर काम बन जाती है। ऐसे काम से न भक्ति को अपनाया जा सकता है और न मुक्ति का द्वार ही पाया जा सकता है। देख, भक्ति हृदय का मधुर (सहज) भाव है। इसमें कार्य प्रधान नहीं होते, भाव प्रधान होता है, कार्य तो केवल भाव के संकेत के लिये रहते हैं। अतः तू ईश्वर से युक्त होकर भक्ति कर, यदि युक्त होना ऐसे नहीं

जानता तो यह युक्ति सत्संग में खोज। जब तू वह युक्ति (शरणागति के भाव) पा जायेगा तब भक्ति को प्रत्यक्ष देख पायेगा। मुक्ति के लिये तब तुझे प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा, तू प्रारम्भ से ही जीवन-मुक्त रहेगा अर्थात् कोई भी बन्धन तुझे बाँध नहीं पायेंगे।

५१३ उषा सूर्य का आगमन सूचित करती है—मधुर भाव प्रेम का।

ऐ प्राणी! प्रभात होने के पूर्व आकाश में लालिमा फैल जाती है, चारों ओर का वातावरण स्निग्ध हो उठता है—यह बेला (उषाकाल) बतलाती है कि अब सूर्योदय होने वाला है। ऐसे ही जब हृदय-पटल पर प्रेम का प्रादुर्भाव होने वाला रहता है तब हृदय में कोमलता, स्निग्धता आदि भावों का आगमन होने लगता है और जीवन मधुर भावों से सजने लगता है। वृत्तियाँ सिमट जाती हैं, वे प्रभु-प्रेम का रसास्वादन करने में लग जाती हैं। जन्म जन्मान्तरों के संस्कार कट जाते हैं, केवल एक ईश्वर-प्रेम ही सम्मुख रह जाता है। ये मधुर भाव संकेत देते हैं कि जीवन में प्रेम का प्रादुर्भाव हो रहा है। प्रेम का आगमन होने के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में प्रेम छा जाता है एवं रोम-रोम में उसी का वास हो जाता है, प्रेम के सिवा जीवन में और कुछ नहीं रह जाता।

५१४ झुका, खोजता है। खड़ा, चढ़ा। पड़ा, लड़ा।

ऐ प्राणी! ईश्वर को वे ही खोज पाते हैं जो स्वभाव से ही नम्र हैं एवं जो सर्वथा अहंकार-शून्य हैं। ईश्वर ऐसे जन से छिपा नहीं रह सकता, वे दिल के आइने में एक दिन ईश्वर की तस्वीर जरूर देख पाते हैं। देख, जिन्होंने ईश्वर को सदा अपने साथ देखा है, वे अपनी जगह अडिग खड़े रहते हैं। दुनिया की बड़ी से बड़ी हस्ती भी उन्हें अपने सम्मुख झुका नहीं सकती—वे हमेशा आगे की ओर बढ़ते जाते हैं, उन्हें न परिस्थितियाँ रोक पाती हैं, न विचार ही अशान्त बना पाते हैं। किन्तु जो प्रमाद में पड़े सो रहे हैं तथा अहंकार में खो रहे हैं, वे विचारों से ही झगड़ते रह जाते हैं, कभी शान्ति-सन्तोष का दर्शन नहीं कर पाते।

५१५ बोलता, बोलता चला।

ऐ प्राणी! तू यदि ईश्वर-तुल्य सन्त के समीप बैठकर अपना दिल खोल देगा, अपने दिल के एक-एक भाव सच्चाई से वाणी के द्वारा कह देगा तो तेरा हृदय निर्मल हो जायेगा। देख, निर्मल हृदय में ईश्वर का वास रहता है।

जब तेरा हृदय निर्मल हो जायेगा तब तू वाणी का वह प्रवाह पा जायेगा जो तुझे आनन्द देता हुआ सबको आनन्द दे सकेगा। तब तेरे सभी कार्य बदल जायेंगे—देखना, सुनना, बोलना आदि सभी ईश्वर प्रदत्त हो जायेंगे। तेरी वाणी तब दूसरी होगी, तू जो कुछ भी कहेगा वह सत्य के लिये होगा और जितना भी कहेगा, वह कम होगा। तेरी वाणी का प्रवाह अनन्त हो जायेगा क्योंकि वह वाणी अनन्त की होगी।

५१६ परिछाई (प्रतिमा प्रेम) से व्याकुल, छाया तेरी ही थी, श्वान न बन, जल से न डर।

प्रतिमा को व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार सजाता है, खिलाता है, पिलाता है एवं अनिष्ट की आशंका से डरता भी है। ये सारे के सारे भाव उसे संस्कार से प्राप्त होते हैं, ईश्वर-प्रेम के प्राकट्य से नहीं। किन्तु व्यक्ति इन्हें ही ईश्वर-प्रेम का नाम देने लगता है परिणाम यथार्थ प्रेम से दूर ही रह जाता है। ऐ प्राणी ! कुत्ता जल में अपनी ही परिछाई देखकर घबड़ा जाता है, वह समझ बैठता है कि मेरा प्रतिद्वन्दी मुझ पर आक्रमण कर रहा है—तेरी भी यही अवस्था है। तू भी अपनी ही भावना का प्रतिरूप मूर्त्ति में देखता है एवं उससे घबड़ाता रहता है— तू यही समझता है कि यदि कार्यों में किसी प्रकार की चूक रह गई तो ईश्वर मुझे दण्ड देगा। अरे पगले ! ईश्वर प्रेम का जागरण देने वाला है, दण्ड देने वाला नहीं। अतः तू ईश्वर को पहिचान कि तू भय से मुक्त हो जाये तथा आनन्द में विचरण कर पाये।

५१७ चित्त चारों खाना चित्त हो जाये। अहंकार की हार हो तो सत् चित् आनन्द में गोता लगाये।

ऐ प्राणी ! जब तक अनेक आकर्षण अपनी ओर लुभाते हैं, अहंकार सिर उठाये रहता है तब तक ईश्वर का नाम लेने पर भी ईश्वर को सम्मुख नहीं पाया जा सकता। देख, ईश्वर का एक नाम सत्-चित्-आनन्द है। सच्चिदानन्द प्रभु की मनोहर मूर्त्ति के चित्त में प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात् ही जीवन में आनन्द आता है। उस मनोहर मूर्त्ति के सम्मुख सारे आकर्षण फीके हो जाते हैं, अहंकार नतमस्तक हो जाता है एवं चित्त हमेशा उस छबि को देखने के लिये ही आतुर बना रहता है। ऐसे में दुःख, चिन्ता, शोक आदि कोई भी भाव समीप नहीं ठहर पाते, रहता है केवल आनन्द उसी में निमग्न हुआ प्राणी मौज मनाता है।

५१८ रंग ले रंगीले। प्राणों का प्रिय रंग ले। रग रग में राग रंग ले। फाग में सुहाग यहीं।

ऐ प्राणी ! जीवन को रंगीन बनाने के लिये शरीर को रँगना ही पर्याप्त नहीं, दिल को भी रँगना आवश्यक है। दिल रंगीन हुए बिना बाहर का रंग बाहर ही रह जाता है, भीतर आनन्द नहीं दे पाता। देख, तू यदि फागुन के रंग की बौछार रग-रग में देखने का इच्छुक है तो रंग को हृदय में धारण कर। इसके लिये तू प्राणों से प्रिय प्रभु की शरण ग्रहण कर एवं रग-रग में उसके प्रेम की प्रतिष्ठा कर। उसका प्रेम जब तेरे हृदय में बस जायेगा तब तू वह रंग पा जायेगा जो कभी उतरने वाला नहीं। देख, शरीर के साथी एक दिन बिछुड़ जायेंगे किन्तु प्राणों का साथी मिलने के पश्चात् कभी बिछुड़ने वाला नहीं। उसे पाकर तेरा सौभाग्य अमर हो जायेगा क्योंकि वह अमर साथी है। उसे पाने से ही तू फागुन (रंग) के आनन्द को जान पायेगा।

५१९ पिता का प्यार पी। माता का मोह पी। पी, ऐसा पी, प्यास न रहे, तलाश न रहे।

ऐ प्राणी ! तू माता-पिता का जो साया प्यार के रूप में सर पर देख पाता है, वह सारा का सारा खेल ईश्वर द्वारा रचा हुआ है। ईश्वर ही तेरे प्रत्येक गति विधि की व्यवस्था रखता है। जिस दिन तू इस सत्य को जान जायेगा, उस दिन तेरी दुनिया सुनहली हो जायेगी, तू प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वर के कार्य देखता हुआ प्रसन्नवदन रह पायेगा, ईश्वर ही तेरा माता, पिता, भाई, बहन आदि सब कुछ हो जायेगा। अब यदि माता-पिता का साया तेरे सर पर से उठ भी जाये तो भी तू प्यार से वंचित नहीं रहेगा क्योंकि तूने उसे पा लिया है जो तेरा सर्वस्व है तथा जिसने तेरी देखभाल के लिये इतने साज सजाये हैं। प्यार के लिये तब तुझे तलाश नहीं करनी होगी, प्यार का झरना हमेशा तेरे सम्मुख झरता रहेगा और उसके नीचे बैठा तू हमेशा तृप्ति पाता रहेगा।

५२० प्यारे को प्यार से जीत।

ऐ प्राणी ! प्यार का नाम ही ईश्वर है, ईश्वर का नाम ही प्यार है एवं उस प्यार को पाना ही जीवन का सार है। देख, जो प्यार ही प्यार है, उसे प्यार से ही पाया (जीता) जा सकता है, अन्य अनेक चेष्टाओं (पूजा-पाठ

जप-तप, ध्यान-धारणा आदि) के द्वारा नहीं। अतः तू प्यार को हृदय में प्रश्रय दे, यदि ऐसे नहीं दे सकता तो प्रेमियों के समीप बैठ कि तू प्यार पा जाये। जैसे-जैसे तेरा हृदय प्यार से सजता जायेगा वैसे-वैसे तू ईश्वर को मन प्राणों पर प्रतिष्ठित देख पायेगा और जिस दिन तू प्यार रूप हो जायेगा उस दिन ईश्वर तेरे रोम-रोम पर छा जायेगा क्योंकि वह प्यार से ही पाया जा सकता है।

५२१ हाथी सा शरीर, चींटी सी चेष्टा। हाथी पर हाथ मार। कर विचार, हो पार।

ऐ प्राणी! तुझे मिली हुई यह काया (मनुष्य शरीर) ईश्वर-मिलन का प्रमुख साधन है किन्तु तूने इसे ही प्रधान मान लिया है परिणाम यह तेरे लिये हाथी के सदृश्य हो गया है और तू दिन-रात इसी में लगा रहता है। अभी ईश्वर-मिलन की तेरी चेष्टा चींटी के समान है। देख, इस चींटी की सी चेष्टा (नाम, जप, ध्यान आदि) से तू ईश्वर को नहीं पा सकेगा, इसे अपनाकर तू कर्त्तापन के मैं से ही घिरता चला जायेगा। अतः तू ईश्वर को कार्यों द्वारा पाने की चेष्टा न कर, उसे पाने के लिये तू प्रेम को हृदय में प्रश्रय दे कि तेरे लिये शरीर प्रधान न रह जाये, तू शरीर की स्थिति से उबर पाये। ऐसे में ही तू शान्त रहकर विचार कर सकेगा तथा प्रभु-मिलन की राह पकड़ कर आगे बढ़ सकेगा और तभी तेरा बेड़ा पार हो सकेगा।

५२२ गीत न गा। दिल में समा।

ऐ प्राणी! ईश्वर कार्यों को देखने वाला नहीं, दिल के भावों को देखने वाला है। कार्य देखकर व्यक्ति धोखा खा सकता है किन्तु ईश्वर नहीं। ईश्वर सर्वव्यापी है, वह दिल में उठते-बैठते छोटे से छोटे भाव को भी देखने वाला है। अतः तू ईश्वर के लिये केवल गीत न गा, तू तेरे दिल में प्रवेश कर तथा दिल के भावों को सजा। दिल की सुरक्षा के लिये तू तेरा-मेरा, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान सबसे बचकर चल। जब अन्य आकर्षण से तू बच पायेगा तब तेरा दिल शुद्ध होने लगेगा और जैसे-जैसे तेरा दिल साफ होता जायेगा वैसे-वैसे तू ईश्वर को निकट देख पायेगा। ऐसे में तुझे गीत गाने नहीं पड़ेंगे, तेरे मुख पर स्वतः आनन्द के गीत होंगे।

५२३ रंग से खेलता रहा—रंगा कब? रंगा तो चंगा। सिर गंगा, दिल भंगा, भव व्याधि भगा।

ऐ प्राणी! तू रंगभूमि में बैठा हुआ है, यहाँ तेरे चारों तरफ रंग ही रंग

है। तू रंग में दिन-रात खेलता रहता है तथा शरीर पर भी विभिन्न प्रकार के रंग (वस्त्रों के रूप में) धारण करता है फिर भी तेरा दिल अभी रंगीन नहीं। देख, दिल जब तक रंगीन नहीं हो जाता तब तक बाहर का रंग आनन्द नहीं दे पाता, वह बाहर का बाहर ही रह जाता है। अतः तू रंग को हृदय में धारण कर। जब तेरा हृदय रंगीन हो जायेगा तब तू हमेशा प्रसन्न-वदन रह पायेगा। तब तेरे दिल व दिमाग सभी तरोताजा रहेंगे—दिमाग में सदा सुन्दर भावों का प्रादुर्भाव होता रहेगा, दिल में भाव की मस्ती रहेगी और संसार के दुःख-सुख से दूर तू आनन्द में विचरण करता रहेगा।

५२४ भिखारी पेट के लिये या प्रभु के लिये। प्रभु भूख भगाता, भीख छुटाता।

ऐ प्राणी! ईश्वर को तू पेट के लिये न याद कर, यदि पेट के लिये ही तू ईश्वर को पुकारता रहेगा तो तू उसकी महिमा को कभी नहीं जान पायेगा। ईश्वर को भूलाकर तू जितना भी पायेगा वह तेरे लिये कम होगा अर्थात् तू सदा भूखा ही बना रहेगा। भूखा बना रहेगा अतः और पाने के लिये तू जन-जन का मुँह देखता रहेगा। देख, ईश्वर की शरण जन्म-जन्मान्तर की भूख मिटाने वाली है। उसकी शरण पाने के पश्चात पेट परेशान करने का कारण नहीं बनता, व्यक्ति देख पाता है कि हर समय हरेक की रक्षा वही कर रहा है, व्यक्ति तो निमित्त मात्र है। अतः तू ईश्वर को अकारण याद कर क्योंकि वही तेरा अपना है, उसे पाकर तुझे किसी के पीछे भागना नहीं होगा, तू जहाँ भी रहेगा, जैसे भी रहेगा सदा मौज में रहेगा।

५२५ पुकार—नहीं बेकार। पुकार—बार बार, हो सुधार।

ऐ प्राणी! ईश्वर सबका त्राता, माता, पिता, भ्राता है। ईश्वर को जब भी कोई किसी भी भाव से पुकारता है तब वह उसकी अवश्य सुनता है। देख, पुकार कभी बेकार नहीं जाती, पुकारने वाला निश्चित ही पाता है। जो ईश्वर को भुलाकर अपनी दुनिया में बैठे हैं, वे बाहरी सारी व्यवस्था ठीक रहने के पश्चात् भी अन्तर में कहीं कष्ट पाते रहते हैं और उनमें तब तक कोई सुधार नहीं हो पाता जब तक कि वे ईश्वर को याद नहीं करते। अन्तर की जलन मिटाने के लिये एवं हृदय के दूषित भावों को सजाने के लिये पुकार ही सबसे बड़ा साधन है। अतः तू जीवन में सुधार लाने के लिये ईश्वर को

बार-बार पुकार कि तू चैन की बंसी बजा पाये, तेरे रोम-रोम में सुधारस (अमृत) भर जाये।

५२६ छेड़ कर देख। बजता है ? मिलता है ?

ऐ प्राणी ! तेरे अन्तर में अनन्त भाव हैं किन्तु वे अभी सुप्त हैं। जब तेरी गति अन्तर की ओर होगी तब तेरी अन्तर-वीणा के वे तार छिड़ जायेंगे जो अभी तक तक सुप्त हैं। देख, जब तक तू अन्तर की ओर उन्मुख नहीं होगा तब तक ईश्वर को बाहर कार्यों में खोजता रहेगा किन्तु उसे देख नहीं पायेगा। अतः तू अन्तर-वीणा के तार छेड़। तेरी अन्तर-वीणा के तार जब झंकृत हो उठेंगे तब तेरा दिल बाग-बाग हो जायेगा। ऐसे में ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह पायेगा, तू सर्वत्र उसी का जलवा देख पायेगा क्योंकि तेरा हृदय आज ईश्वर का वासस्थान बन गया है।

५२७ दर्श-स्पर्श। विमर्ष क्यों ? हर्ष।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के दर्शन इन आँखों से नहीं होते क्योंकि ईश्वर-दर्शन अन्य दर्शनों की तरह नहीं—ईश्वर को भाव की आँखों से देखा जा सकता है। जिस दर्शन के पश्चात् हृदय भाव विभोर हो जाये, इन्द्रियाँ रस से आप्लावित हो जायें, अन्तर घट में दर्शन के भाव स्पर्श करते रहें—वही दर्शन ईश्वर दर्शन है। देख, ऐसे दरसन सबको सुलभ नहीं होते, जिन्हें होते हैं वे भाग्यशाली नर होते हैं। अतः तू यदि कहीं ऐसे दरशन पा जाये तो उस पर विचार-विमर्ष न करना, तू उसका आनन्द लेना। यदि तू उसके लिये बुद्धि-बल का प्रयोग करेगा तो वे भाव तेरे समीप ठहर नहीं पायेंगे, लौट कर चले जायेंगे। अतः तू उनको हृदय के उल्लसित भाव के साथ स्वीकारना कि तेरा जीवन हर्ष ही हर्ष से भर जाये, तू क्षण भर के लिये भी उसे भुला न पाये।

५२८ पद चूम— धूम मचे, रंग बने—संग चले।

ऐ प्राणी ! तू यदि जीवन में परिवर्तन देखना चाहता है तो तू सन्त की शरण में जा। सन्त की शरण जब तुझे मिल जायेगी तब तेरे हृदय में परिवर्तन आने लगेगा, तेरी दृष्टि बदल जायेगी—अभी तक तू बाहर देखता था किन्तु अब अन्तर की ओर मुड़ जायेगा। तेरे अन्तर के भाव सजने लगेंगे अतः तेरे बाहर का संसार भी सज जायेगा क्योंकि जैसी दृष्टि रहती है वैसी ही सृष्टि होती है। ऐसे में तू ईश्वर को सदा तेरे साथ देख पायेगा, एक कदम

भी तेरा उस सत्ता से अलग नहीं रह जायेगा। ऐसी है यह सन्त की शरण, जिसे पाने के पश्चात् भीतर-वाहर-सर्वत्र आनन्द की धूम मच जाती है!

५२९ पद चूम—पद्म खिले—छद्म छूटे।

ऐ प्राणी! सद्गुरु के दर्शन सौभाग्य से किसी-किसी को ही प्राप्त होते हैं। सद्गुरु का सम्बोधन किसी व्यक्ति के लिये नहीं, उस भाव की मूर्त्ति के लिये है जो सत्य की प्रतिरूप है। देख, ऐसे सद्गुरु का दर्शन तू जब पा जाये तब उन चरणों का आश्रय कभी नहीं छोड़ना, तू हमेशा भँवरा बन उन चरण कमलों का रसपान करते रहना। ऐसे में तेरा हृदय कमल खिलने लगेगा, ईश्वर को भूल जाने के कारण तू जो अनेक कुत्सित भाव विचारों से घिर गया था, वे भाव पलायन करने लगेंगे एवं तेरा हृदय निर्मल जलवत् हो जायेगा। चरणों की महिमा ऐसी ही है, जिसे चरणों में बैठकर ही जाना जा सकता है।

५३० पद चूम—भ्रम भागे—भाग्य जागे।

ऐ प्राणी! सद्गुरु के चरणों की महिमा जितनी भी गायी जाये वह कम होगी क्योंकि शब्द सीमित हैं तथा महिमा असीम है, अतः 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाना पड़ता है। देख, मनुष्य पग-पग पर भ्रमित रहता है किन्तु वह इस भ्रम से अलग नहीं हो पाता जब तक कि सद्गुरु की शरण नहीं पा जाता। सद्गुरु की शरण पाये बिना वह कितने ही देवी-देवताओं की मनौती क्यों न कर ले किन्तु भ्रम अन्धकार को भगा नहीं पाता। सद्गुरु की शरण जन्म-जन्मान्तर के अन्धकार को दूर कर हृदय में प्रकाश फैला देती है परिणाम व्यक्ति जीवन पाने का आनन्द पा जाता है एवं ईश्वर की दुनिया में बैठा हुआ मौज मनाता है।

५३१ पद चूम—मस्त झूम।

ऐ प्राणी! ईश्वर की रची हुई सृष्टि का आनन्द उपभोग करने का एकमात्र रास्ता 'सन्त की शरण' है। सन्त की शरण आँखें खोल देती है परिणाम ईश्वर की सृष्टि का कण-कण रसपूर्ण हो उठता है। देख, सृष्टि का सृजन रस के लिये ही हुआ है किन्तु जब तक आँखें बन्द रहती हैं तब तक व्यक्ति भटकता रहता है। सन्त की शरण पाकर जब आँखें खुल जाती हैं तब उसकी सृष्टि ही दूसरी हो जाती है, सृष्टि की प्रत्येक चीजें उसे मस्ती देने लगती हैं। प्रत्येक सजीव व हरी-भरी चीजों में उसे ईश्वर लहराता दिखलाई पड़ने लगता है, पत्ता-पत्ता ईश्वर का सन्देश बाँटने लगता है—ईश्वर

के ऐसे अद्भुत रूप, लावण्य को देखकर रोम-रोम मस्त होकर झूमने लगता है।

५३२ कुछ ऊपर देखा—कुछ नीचे—देखने वाले को न देखा।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर के नाम पर कदम बढ़ाता है किन्तु ईश्वर को देखना भूल जाता है, ऊपर नीचे ही देखता रह जाता है। देख, अभी तू धन-ऐश्वर्य, मान-सम्मान को ही ऊँचा-बड़ा समझता है अतः जहाँ इसकी अधिकता देखता है उन्हें ही उच्च दृष्टि से देखने लगता है तथा जहाँ इसका अभाव देखता है उन्हें ही हेय दृष्टि से देखने लगता है। अरे पगले ! केवल बाहर की उपलब्धि ही सब कुछ नहीं होती, केवल उसी को पाने से कोई ऊँचा-बड़ा नहीं बन जाता। ऊँचे वे भाव हैं जिन्हें पाने के पश्चात् अभाव के लिये जीवन में स्थान नहीं रह जाता। किन्तु बाहर देखते-देखते तेरी दृष्टि इतनी बाह्य हो गई कि तू भीतर वाले को देखना ही भूल गया। देख, देखने योग्य अन्तर के वे भाव हैं जो प्राणी को महान बनाते हैं अतः तू भाव की दृष्टि अपना कि बाहर की बातें तेरे लिये प्रधान न रह जायें। जब तेरी दृष्टि भावमयी हो जायेगी तब तेरे कार्य स्वतः सज जायेंगे और तब तुझे सब जगह आनन्द मिलेगा।

५३३ तेरा प्रेम शरीर से या प्रेम से ? प्रेम स्वयं सूक्ष्म, फिर स्थूल की आसक्ति क्यों ?

शरीर नाशवान है और प्रेम अविनाशी है, किन्तु प्रेम जब नाशवान शरीर को प्राप्त करने के लिये उद्यत होता है तब प्रेम का रूप विकृत हो जाता है, वह मोह-वासना का रूप धारण कर प्राणी के अन्तर में अभाव की सृष्टि उत्पन्न करने का कारण बन जाता है—ऐसे में प्राणी प्रेम से दूर ही रह जाता है। ऐ प्राणी ! प्रेम तो स्वयं सूक्ष्म है फिर इससे तू स्थूल को पाने की आकांक्षा क्यों रखता है ? देख, स्थूल को पकड़ने से तू कभी तृप्त नहीं हो सकेगा अतः जिसे देखकर तेरे हृदय में प्रेम का जागरण हो तू उस रूप के प्रति आसक्त न हो, उसमें निहित प्रेम से प्रेम कर कि तेरा प्रेम अमर हो जाये। परिणाम शरीर जाने के पश्चात् भी प्रेम नहीं मिट पाये क्योंकि प्रेम अशरीरी है, अविनाशी है एवं यह शरीर की अपेक्षा नहीं रखता।

५३४ आसक्ति यदि आ सकती है तो कभी जा भी सकती है। आने जाने को जान।

ऐ प्राणी ! स्थूल की आसक्ति प्रेम नहीं, इसे केवल प्रेम का नाम दिया जा

सकता है। प्रेम आसक्ति से परे है, यह बन्धन में बाँधने वाला भाव नहीं, बन्धन काटने वाला है अर्थात् उन्मुक्त भाव है। आसक्ति शरीर की भूख है, यह तब तक ही स्थित रहती है जब तक कि प्रेम का जागरण नहीं हो जाता, प्रेम के प्रादुर्भाव के पश्चात् ही इससे विलग हुआ जा सकता है। यह शरीर से आबद्ध रहने के कारण आ जाती है और प्रेम के प्रस्फुटन से चली भी जाती है। अतः तू आसक्ति की ओर न देख, प्रेम की ओर देख कि आसक्ति तुझे छोड़नी न पड़े, वह स्वतः विदा हो जाये और तू प्रेम ही प्रेम रह जाये।

५३५ नकल करता है, चिढ़ाने के लिये या रिझाने के लिये। अपने लिये या दूसरे के लिये। सोच।

ऐ प्राणी ! तू यदि किसी में कुछ भी उन्नतशील भाव देख पाता है तो तू उन्हें देख कर ईर्ष्या न कर, तू उनसे प्यार कर। यदि तू ईर्ष्या करेगा तो तू उनकी नकल उन्हें चिढ़ाने के लिये करेगा और यदि प्रेम करेगा तो उनकी नकल स्वयं को रिझाने के लिये करेगा। इसमें उनका कुछ लाभ या नुकसान होने वाला नहीं किन्तु तेरा बहुत बड़ा हित व अहित छिपा हुआ है। देख, प्रेम से तू बहुत कुछ पा जायेगा किन्तु ईर्ष्या करके तू खुद तो गर्त्त में गिरेगा ही, अनेकों को भी ले डूबेगा। अतः तू विचार कर कि तू सही दिशा की ओर कदम रख रहा है या गुमराह हो रहा है ? यदि सही है तो कदम बढ़ाता चल, यदि गुमराह है तो रास्ता बदल डाल और हमराही बन कि तू जीवन का आनन्द ले पाये।

५३६ एक महन्त था। साधना की सन्त हुआ और शान्त हुआ। भोगी ने भोग चाहा, रोगी ने रोग मुक्ति। वह हँसता था। क्यों ? राजा से राज्य न चाहा (शान्ति का, भक्ति का)।

ऐ प्राणी ! जो ईश्वर को पाने की इच्छा रखते हैं, ऐसे साधक को न महन्त पद भाता है और न अन्य आकर्षण ही सुहाते हैं। वह तब तक चैन नहीं पाता जब तक कि सत्य की अनुभूति प्रत्यक्ष रूप में नहीं पा जाता। उसकी चाह ही उसे एक दिन सन्त भाव से सुसज्जित कर देती है। ततपश्चात् उसे साधना नहीं करनी पड़ती, वह शान्त रहकर आनन्द में विचरण करता रहता है। ऐसे सन्त का साथ जन्म-जन्मान्तरों के अभाव को मिटाकर शान्ति व भक्ति का साम्राज्य प्रदान करने वाला होता है किन्तु भ्रमित प्राणी ऐसे साथ को पाकर भी स्थूल की पिपासा रखता है—उनसे भोग की सामग्रियाँ

चाहता है तथा रोग से मुक्ति चाहता है। अरे पगले! उनके समीप जाकर तू क्यों छोटी-छोटी माँगें करता है? वे बहुत कुछ देने में समर्थ हैं, तू उनसे धन-जन न माँग, वह भाव माँग जो दुनिया में कहीं नहीं मिले। वह भाव शान्ति है, भक्ति है। इन्हें पाकर ही तू उनकी समीपता का लाभ उठा सकेगा अन्यथा उनका साथ पाकर भी तू अधूरे में ही चक्कर काटता रहेगा।

५३७ जीवन से हार कर राम भजा तो क्या भजा? हार में उत्साह कहाँ?

ऐ प्राणी! ईश्वर को याद रखना दैनिक कार्यों से भी अधिक आवश्यक है। ईश्वर की स्मृति के बिना यह जीवन लाशवत् हो जाता है। किन्तु व्यक्ति इस सत्य से अनजान है अतः ईश्वर को बाद करके जीवन-यापन करता रहता है। परिणाम उसके सम्मुख वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब वह जीवन से हताश-निराश हो जाता है। जब उसे बचने का और कोई चारा नहीं दिखलाई देता तब वह हार कर राम भजन में लगता है। अरे पगले! ईश्वर तेरा अपना है, वह प्यार से याद करने के लिये है, लाचारी से याद करने के लिये नहीं। देख, तू यदि उसे लाचार होकर ही याद करेगा तो तू उसके नाम का आनन्द कभी नहीं पा सकेगा। अतः तू ईश्वर को हार कर न याद कर, तू प्रारम्भ से ही उससे प्यार कर ले कि तुझे हार का मुख ही न देखना पड़े, तू राम की महिमा को जान पाये तथा राम के साथ का आनन्द पा सके।

५३८ अंग अंग सत्य संग यह सत्संग।

ऐ प्राणी! कुछ देर बैठकर ईश्वर का नाम ले लेने से सत्संग नहीं हो जाती, सत्संग सत्य का संग पाने से होती है। देख, जहाँ बैठकर तेरे अभाव खत्म होने लगें, भाव का जागरण होने लगे एवं तुझे सत्य की सत्ता दिखलाई देने लगे—वही सत्संग का स्थान है। जब ये भाव तुझे रास आयेंगे और तू जी जान से उन्हें पाने के लिये विकल हो जायेगा तब वे भाव शायद तेरे अपने बन जायें। जब वे भाव तेरे अपने बन जायेंगे तब तू उन भावों के साथ जहाँ भी बैठेगा सत्य के लिये बैठेगा, सत्य के साथ बैठेगा। ऐसे में सत्संग तेरे रोम-रोम में रम जायेगी, तू किसी भी ऐसे कार्य व भाव को नहीं अपना पायेगा जो सत्य से विलग करने वाले हैं। देख, जब अंग अंग सत्य का संग पा जाता है तभी सही मायने में सत्संग होती है।

५३९ मट्टी की हरियाली—आँखें हुईं निराली। मन की हरियाली में हरि हरि सर्वत्र।

हरियाली मनमुग्धकारी होती है। थोड़ी देर के लिये भी प्राणी यदि इसके बीच बैठता है तो सुध-बुध भूल जाता है, उसे आगे-पीछे का ध्यान नहीं रह जाता। किन्तु बाहर की हरियाली का साथ कुछ देर के लिये ही मिल सकता है, हमेशा के लिये नहीं। ऐ प्राणी! मन की हरियाली सदा साथ रहने वाली है अतः तू मन को हरा-भरा कर ले। मन को हरा-भरा रखने के लिये तुझे जो कुछ भी अपनाना पड़े, तू उसे अपना ले। देख, सत्संग पाकर ही मन हरा-भरा रह सकता है, अन्य बड़ी से बड़ी उपलब्धियों से भी नहीं। अतः तू सत्संग के लिये सन्त के समीप बैठ। जिस दिन सत्संग में बैठकर तू हरि को साथ देख पायेगा उस दिन से तेरा मन हरा-भरा रहने लगेगा और तू सर्वत्र भी हरि ही हरि को देख पायेगा।

५४० शान्त हो, कान्त पुकार रहा है।

ऐ प्राणी! ईश्वर सदा तेरे साथ है। वह हमेशा साथ रहकर तेरी प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण करता रहता है किन्तु तू अभी उसके साथ से अनजान है इसीलिये उससे विमुख बना बाहर की ओर देखता रहता है। देख, उसे भुलाकर तू बाहर कितना भी घूम फिर लेगा, कितना भी कुछ पा लेगा तब भी शान्ति नहीं पा सकेगा। शान्ति पाने के लिये तुझे उसकी ओर ही देखना होगा। अतः तू उस साथी की खोज कर जो सदा तेरे साथ है। वह तुझे आवाज देकर अपनी ओर बुला रहा है किन्तु बाहरी शोरगुल के कारण अभी तू उसकी आवाज नहीं सुन पा रहा है। जिस दिन तू उसे पाने के लिये व्यग्र होगा उस दिन तेरी वृत्तियाँ शान्त हो जायेंगी और तू उस मृदु आवाज को सुन पायेगा जो मन को मोहने वाली है तथा जिसे सुनने के पश्चात् मन का अन्यत्र भ्रमण छूट जाता है।

५४१ विकार और संहार में ही कथा समाप्त और कही भी तो लीला।

ऐ प्राणी! ईश्वर की प्रेमपूर्ण बातें कहीं-कहीं ही सुनने को मिलती हैं, अधिकतर ईश्वर की लीला के गीत ही सुने जाते हैं। ईश्वर की लीला में भी अधिकांश उन पात्रों की चर्चा अधिक मिलती है जिन्होंने विकारयुक्त भावों

को धारण किया था (रावण, कंस आदि) या फिर उनके संहार की बातें सुनने को मिलती हैं। देख, विकार और संहार से प्रेम का जागरण नहीं हो सकता। हृदय में प्रेम के जागरण के लिये प्रेम की चर्चा चाहिये, भाव की चर्चा चाहिये। लीला में इनका सर्वथा अभाव पाया जाता है। अतः तू यदि जीवन में प्रेम का जागरण देखना चाहता है तो ईश्वर की बातें कथा वाचक से न सुन, उन प्रेमियों से सुन जिनकी प्रेम भरी वाणी तेरे हृदय के प्रेम को जगा दे अन्यथा ईश्वर के नाम पर समय लगाकर भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

५४२ मिटी जंग, हुआ संग।

ऐ प्राणी! सद्‌गुरु पारस पत्थर के सदृश्य होते हैं। जैसे पारस पत्थर लोहे को सोना बना देता है वैसे ही सद्‌गुरु की वाणी साधारण से प्राणी के जीवन को सुनहला बना देती है। देख, पारस के स्पर्श से वही लोहा सोना बनता है जिसमें जंग नहीं लगी रहती। ऐसे ही अनेक संस्कारों से बद्ध मनुष्य भी जब तक सद्‌गुरु के चरणों की रज नहीं बन जाता तब तक उसमें पूर्ण परिवर्तन सम्भव नहीं होता। अतः तू यदि ईश्वर का संग पाना चाहता है तो सद्‌गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण कर ले अर्थात् पूर्णतया उनके चरणों पर झुक जा। जिस दिन तू सर्वथा अहंकारशून्य हो जायेगा उस दिन 'मैं-मेरे' के कारण तेरे हृदय पर जो जंग लग गई है वह स्वतः दूर हो जायेगी और तभी तू सद्‌गुरु की शरण में बैठकर ईश्वर-दर्शन का आनन्द पा सकेगा।

५४३ यात्रा मांगलिक है फिर संशय क्यों ?

ऐ प्राणी! तू सत्य की ओर कदम बढ़ाने के पूर्व संशय में न पड़ कि तुझे सफलता प्राप्त होगी या नहीं, तू मंजिल तक पहुँच पायेगा या नहीं ? देख, तू भाग्यहीन नहीं है, तू भाग्यवान नर है, यदि तू भाग्यवान नहीं होता तो तुझे मनुष्य जन्म ही नहीं प्राप्त होता। अतः तू निर्भय रहकर सत्य-पथ पर चल पड़ क्योंकि जीवन व जगत का आनन्द तू सत्य-पथ का पथिक बनकर ही ले सकेगा। यदि संशय तुझे आगे बढ़ने से रोकता है तो तू सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर। सद्‌गुरु परम दयालु होते हैं। वे संशय-भ्रम को छिन्न-भिन्न कर तुझे सत्य प्रकाश की झलक दिखा देंगे, परिणाम तू निर्द्वन्द आगे बढ़ने में सफल होगा और एक दिन सत्य मंजिल को पा जायेगा।

५४४ लक्ष्य है ? समक्ष है।

ऐ प्राणी ! किसी भी वस्तु, विचार व भाव को प्राप्त करने में सफलता तभी मिलती है जब वे जीवन का परम लक्ष्य बन जाते हैं एवं उन्हें पाना ही जीवन का सर्वस्व हो जाता है। जब तक ऐसी स्थिति नहीं हो जाती तब तक व्यक्ति किसी भी विषय की बातें कर सकता है किन्तु उन्हें पाना उसके लिये सम्भव नहीं होता। अतः तू अपने अन्तर में झाँक कर देख कि तू ईश्वर के बारे में बड़ी-बड़ी बातें ही करता है या ईश्वर को पाना भी चाहता है। यदि तेरे जीवन का लक्ष्य सत्य की प्राप्ति है तो तू एक दिन निश्चित ही सत्य को समक्ष देख पायेगा। ऐसे में सत्य तुझसे विलग नहीं रह सकेगा, तू प्रत्येक गतिविधि को सत्य के साथ देख पायेगा।

५४५ बुरा कहकर शांत न हुआ, भला कहकर अपना न सका ? कैसा तेरा धर्म है ?

ऐ प्राणी ! किसी भी चीज से अलग होने के लिये या उन्हें अपनाने के लिये केवल बातें पर्याप्त नहीं, हृदय का भाव चाहिये। यदि कुभाव से भी व्यक्ति उनसे जुड़ा हुआ है तो वह उनसे अलग नहीं हो सकता। यही कारण है कि व्यक्ति जिन्हें 'बुरा' कहता है उनसे अलग नहीं हो पाता और न जिन्हें 'भला' कहता है उन्हें अपना पाता है। देख, धर्म के नाम पर चलने वालों की भी यदि भीतर-बाहर की अवस्था एक न रहे तो वे दयनीय हैं। ऐसे में वे खुद तो कुछ पायेंगे ही नहीं, वाणी द्वारा किसी का भला भी नहीं कर पायेंगे क्योंकि वाणी के प्रभाव से अधिक भाव का प्रभाव होता है। अतः तू यदि धर्म पथ पर आरूढ़ है तो तू वे ही बातें कह जिन्हें तू जीवन में देख पाता है अर्थात् जो तेरी अपनी बन गई हैं तथा उन भावों से बचकर रह जिन्हें तू नहीं अपनाना चाहता—तभी तू सही मायने में धर्मावलम्बी होगा।

५४६ यह विधि यह निषेध, तेरी समस्या हल न कर सके ? यह तो साधन है, साध्य तो कोई और ही है।

ऐ प्राणी ! हृदय में ईश्वर को पाने की विकलता जब जाग्रत हो जाती है तब स्वाभाविक ही कुछ छूटने लगता है तथा कुछ को अपनाकर साधक आगे बढ़ता जाता है। यथार्थ में वे साधन प्रधान नहीं रहते (जिन्हें वह पकड़ता व छोड़ता है) प्रधान ईश्वर की प्राप्ति रहती है और वही उसे ईश्वर के समीप

ले जाती है। देख, साधक के हृदय के उन भावों को न अपनाकर व्यक्ति यदि उन साधनों को ही प्रधान मान बैठे जो साधक ने साधनाकाल में अपनाये थे तो वह कभी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेगा। अतः तू इन बाहरी तौर-तरीकों को प्रधान न जान, इससे तेरी समस्या कभी हल नहीं हो सकेगी, तू वह भाव पा ले जो साध्य प्राप्ति के लिये साधक हृदय में चाहिये। फिर 'क्या पकड़ूँ अथवा क्या छोड़ूँ' तुझे इस पर विचार नहीं करना पड़ेगा, तू स्वतः वह मार्ग पा जायेगा जिस पर बढ़कर ईश्वर के समीप पहुँचा जा सकता है।

५४७ प्यार निभायेगा तो दूर रह। प्यार करना तो स्वयं का स्वयंवर है।

ऐ प्राणी! प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है। जो करना पड़ता है, वह प्यार नहीं कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य निभाया जाता है किन्तु प्यार में यह बात नहीं, प्यार हृदय का सुललित भाव है, वह स्वतः रहता है। देख, जब तक प्यार निभाना पड़ता है तब तक प्रिय दूर ही रहता है, उसकी स्मृति श्वाँसों-प्राणों में नहीं रमती। प्यार मिटने का नाम है, उसमें स्वयं का भान भी नहीं रह जाता, रहता है केवल प्रिय, वही रोम-रोम का अधिष्ठाता बन जाता है। जब तक प्यार में पूर्ण समर्पण का भाव नहीं आ जाता, अपनापन का ध्यान रह जाता है तब तक प्यार की बातें केवल बातें ही बनकर रह जाती हैं, उसका रूप जीवन में प्रत्यक्ष नहीं देखा जाता। अतः तू यदि प्यार का जलवा देखना चाहता है तो मिटने के लिये तैयार हो जा कि 'प्यार क्या है' तू यह जान पाये—प्रिय को एक क्षण के लिए भी विलग न देख पाये।

५४८ प्रश्न पर प्रश्न करता रहा—कहा नहीं मैं तुम्हें देखते ही प्रसन्न हो गया।

ऐ प्राणी! सन्त के समीप जाकर तू उनकी योग्यता को अनेक प्रश्नों से न परखना, यदि तू प्रश्न ही करता रह जायेगा तो न उन्हें देख पायेगा और न उनसे कुछ ले ही पायेगा। सन्त के दर्शन व उनकी वाणी हृदय में राहत देने वाले होते हैं। उनके समीप बैठकर जब तेरा चित्त स्थिर हो जायेगा, मन की विकलता मिट जायेगी, वृत्तियाँ शान्त हो जायेंगी तभी तू उनके दर्शन का आनन्द ले पायेगा। देख, ऐसे सन्त समागम को तू यूँ ही न खोना, तू सदा उनको प्रेम की दृष्टि से निहारना कि उनसे कुछ पा सके, तेरा व उनका मिलन बेकार न जाये, वह उस भाव का वर्षण करे जिसे पान कर तू

तृप्त हो जाये। ऐसे में उनका साथ तुझे सत्य से जोड़ देगा परिणाम तेरी सभी जिज्ञासाएँ शान्त हो जायेंगी, तू उनका उत्तर अन्तर में ही पा जायेगा।

५४९ प्रसन्न हुआ—प्रश्न प्रश्न न रहा।

ऐ प्राणी! सद्गुरु जब शिष्य के हृदय पटल पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, गुरु और शिष्य के बीच भाव का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब सद्गुरु के दर्शन प्रसन्नता प्रदान करने वाले होते हैं, उनके दर्शन से हृदय में आनन्द की अनुभूति होने लगती है। शिष्य को तब सद्गुरु के सम्मुख अनेक प्रश्न नहीं करने पड़ते, वह सभी प्रश्नों का हल उनके समीप बैठकर ही पा जाता है या सद्गुरु-कृपा से वे उत्तर उसके अन्तर से ही आ जाते हैं। ऐसी है सद्गुरु की शरण जिसे पाकर अन्धकार (अभाव) टिक नहीं पाता, प्रकाशमय जीवन हो जाता है।

५५० तू ने मेरा मान किया, अपमान किया। मैं अभिमान करूँ तो ?

ऐ प्राणी! तू जब तेरे अनुकूल परिस्थिति पाता है तब मेरा मान करता है और प्रतिकूल परिस्थिति पाते ही मुझे भला बुरा कहने लगता है। अरे पगले! मैं तेरा अपना हूँ, मैं जो कुछ भी करता हूँ उसमें तेरा अहित नहीं रहता, सभी में तेरी भलाई छिपी रहती है किन्तु तू उनके प्रतिफल से अनजान है अतः कभी तेरे दिल में मेरे लिये सम्मान की भावना रहती है और कभी अपमान के भाव आ जाते हैं। देख, तेरे बदलते भावों को देखकर यदि मैं तुझसे रूठ जाऊँ तो तू कहीं का नहीं रह जायेगा, तू मटियामेट हो जायेगा। किन्तु मैं तुझसे कभी रूठने वाला नहीं क्योंकि तू मेरा अपना है। अतः तू मान अपमान के चक्कर में न पड़कर मुझसे प्रेम बढ़ा कि तू मेरे कार्यों को जान पाये अन्यथा तेरी इस प्रवृति के कारण तू सदा कष्ट पाता रहेगा।

५५१ सरलता है धोखा नहीं। अति सरल भ्रम की सृष्टि क्यों करे ?

ऐ प्राणी! सन्त स्वभाव से ही सरल होते हैं। उनका साथ दिल व दिमाग सबको राहत देने वाला होता है। ऐसे सन्त को तू संशय की दृष्टि से न देखना अन्यथा तू उनसे कुछ भी नहीं ले पायेगा, केवल तेरे हृदय पटल पर भ्रम ही आच्छादित रहेगा और उसके कारण तू धोखा ही धोखा खायेगा। देख, सरलता जहाँ अधिक मात्रा में पायी जाती है वहाँ इस स्वार्थी संसार में संशय

आ ही जाता है किन्तु तू उसे कभी प्रश्रय न देना। यदि भ्रम तेरे समीप प्रश्रय पा जायेगा तो तू सन्त के अति समीप रहता हुआ भी उनसे बहुत दूर हो जायेगा। अतः सरल को देखने के लिये तू सरलता धारण कर कि तू उन्हें सही दृष्टि से देख सके तथा उनका भाव पा सके।

५५२ मान कर अभिमान किया। अभिमान का पतन है।

भक्ति नम्रता से सजती है। यदि भक्ति भी करे और अभिमान भी रखे तो भक्ति लजाती है और अभिमानी कहीं का नहीं रह जाता। अतः ऐ प्राणी! तूने यदि भक्ति पथ पर कदम बढ़ाया है तो अभिमान को तनिक भी प्रश्रय न देना। जिस क्षण तू अभिमान को प्रश्रय देगा उसी क्षण से तेरी प्रगति रुक जायेगी, तू ईश्वर को मानता हुआ भी पतन की ओर बढ़ता जायेगा—ऐसे में भगवान भी तेरी रक्षा नहीं कर पायेगा। अतः तू यदि ईश्वर का है तो अन्तर के प्रत्येक भावों को सच्चाई से देखते रहना तथा उन्हीं भावों को हृदय में प्रश्रय देना जो उत्थान की ओर ले जाने वाले हैं। देख, इसके लिये कोमलता, नम्रता आदि भाव ही सहायक बन सकेंगे, उन्हें अपनाकर ही तू अहंकारशून्य रहकर ईश्वर को मानने का आनन्द पा सकेगा।

३५३ चरण स्पर्श कर रस न पा सका तो मिट्टी हो गया रस, स्पर्श और चरण।

ऐ प्राणी! चरण स्पर्श की महिमा अवर्णनीय है। चरण स्पर्श पत्थर हृदय में भी रस का संचार करने वाला होता है। इसे जो भी अपना लेता है, वह कोई भी क्यों न हो—किसी भी कुल का हो, किसी भी जाति का हो, किसी भी कार्य का करने वाला हो—उसी के हृदय में रस का संचार होने लगता है। देख, चरण स्पर्श करके भी यदि रस नहीं मिलता तो यही कहना होगा कि अभी तूने चरणों की महिमा ही नहीं जानी है, केवल शिष्टाचार से ही चरण छूए हैं। ऐसे में तेरा चरण स्पर्श करना निरर्थक ही हो जायेगा और तू चरण स्पर्श के रस से भी वंचित ही रह जायेगा। अतः तू चरण स्पर्श करने के पहले श्रद्धा अवनत हो जा कि तू चरण स्पर्श से रस पा सके।

५५४ देर को अंधेर समझ अनर्गल प्रलाप करने लगा। धैर्य रख विश्वास बेकार नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर के घर न देर है और न अंधेर है। ईश्वर को जो जिस

भाव से, जब भी पुकारता है उसी के अनुसार वह देर-सबेर उसका प्रतिफल देख पाता है। किन्तु व्यक्ति धीरज के अभाव में ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह करने लगता है तथा उसे भला-बुरा कहने में भी नहीं चूकता। देख, विश्वास में बहुत बड़ी शक्ति है, विश्वास कभी बेकार जाने वाला नहीं। यदि तू विश्वास के साथ आगे बढ़ता जायेगा तो तेरी चाहत एक दिन अवश्य रंग लायेगी, तू इच्छित वस्तु को निश्चित ही सम्मुख देख पायेगा अन्यथा धीरज के अभाव में देर को अंधेर समझ कर तू निरर्थक कष्ट पाता रहेगा। अतः तू प्रतिफल को भुलाकर धीरज धारण करके आगे बढ़ता चल कि तेरे बढ़ने में तेजी आ जाये और तू लक्ष्य तक शीघ्र ही पहुँच जाये। अन्यथा तेरी चाहत में तीव्रता नहीं रहेगी और उसी के कारण तू लक्ष्य से दूर बना रहेगा तथा उसका दोषारोपण ईश्वर पर करता रहेगा।

५५५ अभी चाहता है, सभी चाहता है। कभी से घबड़ाता है।

ऐ प्राणी! तेरी जैसी कल्पना रहती है तथा जितनी भी कल्पनाएँ रहती हैं तू उन सभी की पूर्त्ति हाथों हाथ चाहता है। अभी तुझमें धीरज का अभाव है अतः 'वे तुझे धीरे-धीरे मिल जायेंगी' तू इस नाम से भी घबड़ाता है—ऐसे में तू निराश व हताश हो जाता है। देख, समय आने पर अन्तर की प्रत्येक चाहत रंग लाती है किन्तु उसके लिये धीरज की बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ती है। जो धीरज से सतत प्रयत्नशील हो एक-एक कदम आगे रखते जाते हैं उनकी चाह एक दिन अवश्य पूरी होती है और जो इच्छाएँ चाह सी दिखाई देती हैं उनका रूप बदल जाता है। अतः चाह की पूर्त्ति के लिये तू धीरज धारण कर कि तुझे कभी निराश-हताश न होना पड़े।

५५६ यह क्या बनाया? खेल भी जेल भी।

ऐ प्राणी! ईश्वर का रचा हुआ यह संसार अद्भुत है। जिन्होंने यहाँ आने का उद्देश्य जाना है उनके लिये यह संसार खेल का मैदान बन जाता है। वे यहाँ प्रत्येक मिली हुई चीज को ईश्वर-प्रदत्त जानते हुए खेल का आनन्द लेते हैं और समयोपरान्त जब लौटने का समय होता है तब मौज के साथ लौट जाते हैं। किन्तु जो यहाँ आकर आने के उद्देश्य को ही भूल जाते हैं उनके लिये यह संसार जेल बन जाता है। वे यहाँ की प्रत्येक चीजों के बन्धन में बँधते जाते हैं और इतना बँध जाते हैं कि उनके बिछुड़ने पर भी उनसे अलग नहीं हो पाते, बँधे रहते हैं। ऐसे में खेल के लिये मिला हुआ यह संसार ही

उनके लिये जेल बन जाता है। वे जितने समय तक यहाँ रहते हैं रोते रहते हैं और एक दिन रोते-रोते ही चले जाते हैं। यदि उन्होंने आने के उद्देश्य को जाना होता तो इस रमणीय स्थान का आनन्द पाया होता और प्रत्येक वस्तु-व्यक्ति को खेल के लिये मिली हुई जानकर आनन्द लिया होता।

५५७ खोजने वाले ने शरीर में प्रेम और मिट्टी में भगवान खोजा फिर भी शांत न हो सका। क्यों? दूसरे में खोजा।

ऐ प्राणी! खोजी अवश्य पाता है। देख, जब प्राणी का हृदय प्रेम के लिये छटपटाने लगा तब उसने सन्त शरीर में प्रेम के दर्शन किये और जब ईश्वर को देखने की अभिलाषा जगी तब मिट्टी में भगवान के दर्शन किये। किन्तु प्रेम व भगवान के दर्शन करने के पश्चात भी उसे शान्ति नहीं मिली क्योंकि अभी उसने उन्हें दूसरे में देखा। देख, प्रेम सबके लिये है, तू प्रेम को सन्त में देखकर ही खुश न हो, तू सन्त के समीप बैठकर सन्त के भाव ग्रहण कर कि तेरा हृदय भी प्रेम से सज जाये। जब प्रेम तेरे हृदय में प्रतिष्ठित होगा तब तेरा भगवान बाहर मन्दिरों में नहीं होगा, तेरा हृदय ही मन्दिर बन जायेगा जिसमें प्रिय प्रभु की मूर्त्ति विराजमान होगी। तब तू जर्रे-जर्रे में उसे ही देख पायेगा, सच्ची शान्ति भी तू तभी पा सकेगा।

५५८ छोटी सी बात तुझे रिझाती और खिझाती है क्या तू इतना छोटा है?

ऐ प्राणी! तू छोटा नहीं, तू बड़े (ईश्वर) की सन्तान है किन्तु तू छोटी-छोटी बातों में ही उलझा रहता है अतः अपने रूप को भूल बैठा है। देख, तू छोटी-छोटी बातों में न उलझ, तू यदि उनसे ही रीझता व खीझता रहेगा तो कभी रोता रहेगा और कभी हँसता रहेगा और रोने-हँसने में ही तेरा सारा समय व्यतीत हो जायेगा। ऐसे में तू शरीर के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटता रह जायेगा, कभी अपने रूप को नहीं पहिचान पायेगा। अतः अपने रूप को तथा अपने परम पिता को पाने के लिए तू छोटी-छोटी बातों को अनदेखा करते हुए आगे बढ़ता चल कि तू अपने घर का रास्ता पा जाये तथा वहाँ पहुँच कर परम पिता की गोद का मोद पा आनन्द मनाये। उसे पाने के पश्चात ही तू सबसे प्रेम कर पायेगा क्योंकि सब उसी एक परम पिता की सन्तान हैं।

५५९ दुनियाबी धर्म की चर्चा क्यों करता है ? अपना धर्म, कर्म तो प्रेम है।

ऐ प्राणी ! तू धर्म के नाम पर यदि अनेक धर्मों की चर्चा ही करता रहेगा तो धर्म के मर्म से अनभिज्ञ ही रह जायेगा। देख, धर्म कोई ऐसा कर्म नहीं जिसे कार्यों द्वारा अपनाया जा सके। धर्म वह है जो अनजाने में ही हृदय में बस जाता है तथा कब प्रेम का जागरण कर देता है इसका पता भी नहीं लगने देता। ऐसे प्रेम के जागरण से ही धर्ममय जीवन बनता है तथा सर्वत्र प्रभु का साम्राज्य दिखलाई देता है। जब तक प्रेम का जागरण नहीं हो जाता तब तक अनेक धर्मों की चर्चा करके ही व्यक्ति अपने को धार्मिक समझता रहता है, यथार्थ में वह धर्म से दूर ही रह जाता है।

५६० खिंचा चला जाता है क्या प्रिय की पुकार है ?

ऐ प्राणी ! आकर्षण पर ही यह शरीर टिका हुआ है, यदि आकर्षण खत्म हो जाये तो शरीर का टिकना कठिन हो जायेगा। देख, आकर्षण जिस ओर रहता है वैसे ही मनुष्य के भाव, विचार व कार्य होते हैं तथा उसी ओर व्यक्ति बढ़ता देखा जाता है। अतः तू जिस ओर खिंचा चला जा रहा है, तू उसका अवलोकन कर। तू देख कि प्रिय की पुकार तुझे खींच रही है या तू व्यक्ति-वस्तु के आकर्षण में बँधा खिंचा चला जा रहा है ? यदि व्यक्ति-वस्तु ही आज तुझे प्रिय हैं तो कोई बात नहीं, तू उन्हीं को पकड़ ले किन्तु उनसे जब तेरे हृदय की विकलता नहीं मिट पाये तब तू प्रिय प्रभु को याद कर लेना। अन्त में एक दिन तू देख पायेगा कि प्रिय की ओर बढ़ते जाने में ही सच्ची शान्ति है।

५६१ दिल से देख खिल उठेगा विश्व। प्रेम पराग मोह लेगा संसार को।

ऐ प्राणी ! प्रेम के जागरण के पश्चात् यह संसार रमणीय बन जाता है, इसका कण-कण खिल उठता है, जीव मात्र के प्रति प्रेम का जागरण होने लगता है। देख, प्रेम की सुगन्ध ऐसी ही है, यह सबको आकृष्ट करने वाली होती है। साधारण प्राणी जब इसे पाता है तब वह इसी में खो जाता है। इसे पाकर अनेक निहाल हो जाते हैं, उनकी दुनिया बदलने लगती है, अभाव जीवन से विदा होने लगता है तथा भाव का आगमन हृदय पटल पर होने

लगता है। अतः तू प्रथम प्रेम पा फिर प्रेम (दिल) से इस संसार को देख कि तू विश्व का सुनहला रूप देख पाये।

५६२ गुरु को क्या देगा और क्या उससे लेगा? दे अभाव ले भाव पूर्ण ही पूर्ण है।

ऐ प्राणी! गुरु को तुझसे और कुछ नहीं चाहिये, केवल तुम्हारे हृदय का अभाव चाहिये। देख, तुझे दुनिया में जितने भी साथी मिलेंगे वे अभाव बढ़ाने वाले मिलेंगे, अभाव लेने वाला साथी तो केवल एक सद्गुरु ही मिलेगा। जिस दिन गुरु के चरणों में बैठकर तू अपने सारे अभाव उन्हें दे देगा, उस दिन से तेरी दुनिया भाव से सजती चली जायेगी। जैसे-जैसे भाव का प्रादुर्भाव तेरे हृदय में होता जायेगा वैसे-वैसे तू पूर्णता की ओर अग्रसर होता जायेगा और जिस दिन पूर्ण समर्पण के भाव तेरे भीतर आ जायेंगे अर्थात् तेरा आपा मिट जायेगा उस दिन पूर्ण ही पूर्ण रह जायेगा, तू पूर्ण के सिवा कहीं कुछ भी नहीं देख पायेगा।

५६३ घड़ा खाली कि भरा यह घड़ा नहीं जानता, भरने वाला जानता है।

ऐ प्राणी! ईश्वर की शरण लेने के पश्चात् तुझे आगे-पीछे की चिन्ता नहीं करनी होगी और न किसी भी भाव-विचार व कार्य की पूर्त्ति के लिये ईश्वर को कहना होगा—ईश्वर सदा तेरा रखवाला होगा, तेरी चिन्ता उसकी चिन्ता बनेगी और तू निश्चिन्त रहेगा। देख, तेरी यह निश्चिन्तता केवल घर-परिवार के लिये ही नहीं होगी, विचार भाव के लिये भी होगी। तेरा ध्यान केवल ईश्वर के चरण होंगे, भाव-विचारों को सजाने के लिये चिन्तित रहना नहीं। यदि तू भाव-विचारों को सजाने चलेगा तो उन्हें सजाने के चक्कर में और बिगाड़ ही देगा क्योंकि विचार-भाव कार्यों से नहीं सजते, हृदय परिवर्तन से सजते हैं। ईश्वर की शरण पाकर तेरे कार्य, भाव व विचार सभी सजते चले जायेंगे और तू इससे अनजान मौज मनाता रहेगा।

५६४ विश्वास प्रेम बन गया, स्थिरता में समा गया—साधना सफल।

ऐ प्राणी! छोटा सा बीज मिट्टी का सम्पर्क पाकर कब अंकुरित होने लगता है, पता भी नहीं लगता। माली का सतत् ध्यान ही उसे पल्लवित

करने में सहायक बनता है अन्यथा बीज मिट जाता है, पनप नहीं पाता। विश्वास की भावना भी कब सत्संग का साथ पाकर पनपने लगती है तथा कब सद्गुरु की वाणी से प्रेम में परिणत हो जाती है, इसका भी पता नहीं लगता। देख, विश्वास जब प्रेम में परिणत हो जाता है तब स्थिरता आ जाती है। फिर साधक डगमगाता नहीं, उसी में (स्थिरता में) लीन-विलीन हो जाता है। साधक की साधना भी तभी सफल होती है अन्यथा ईश्वर-दर्शन की चाह लिये साधक अनजाने में ही भटकता रहता है।

५६५ नहा कर धोयेगा दिल का मैल? निरर्थक चेष्टा। फूल, चन्दन से भी तेरी भावना कोमल है, शीतल है।

ऐ प्राणी! नहा कर शरीर को प्रतिदिन साफ कर लिया जाये, गंगा स्नान कर लिया जाये एवं अनेक तीर्थों में भी डुबकी लगा ली जाये तो भी इनसे दिल का मैल साफ होने वाला नहीं क्योंकि शरीर के कार्यों की पहुँच दिल तक नहीं होती। दिल की सफाई के लिये तुझे अन्तर के एक-एक भावों की कद्र करनी होगी और इसके लिये अन्तर की ओर उन्मुख होना होगा। अन्तर की ओर उन्मुख होने का रास्ता सत्संग है। सत्संग भाव गंगा है, इसमें स्नान करने से हृदय स्वच्छ होने लगता है, कमल की तरह खिलने लगता है एवं कोमल होता जाता है। उसमें चन्दन की तरह शीतलता आ जाती है एवं वह सुगन्ध बिखेरने लगता है। देख, सत्संग के अभाव में ही व्यक्ति इन भावों से दूर बना रहता है यथार्थ में उसका रूप यही है।

५६६ शरीर को कृश कर मन पर विजय पाई। असम्भव है। मन कृश, तन कृश संसार दुःख का भण्डार है तो छोड़ दुनिया को। फूल में काँटा न खोज, सुगन्ध में तुष्ट हो, पुष्ट हो।

ऐ प्राणी! शरीर को अनेक कष्ट देकर मन को वश में नहीं किया जा सकता। शरीर को कष्ट देने से तन-मन दोनों ही कृश हो जाते हैं। देख, जब तेरे मन व तन दोनों कृश हो जायेंगे तब संसार में तुझे दुःख ही दुःख दिखाई देने लगेगा, तू यहाँ हमेशा कष्ट पाता रहेगा, न तू संसार को छोड़ ही पायेगा और न इससे कुछ ले ही पायेगा—तेरी स्थिति दयनीय हो जायेगी। अरे पगले! शरीर व संसार का सृजन तेरे आनन्द के लिये हुआ है अतः तू यहाँ आने का आनन्द ले। आनन्द पाने के लिये तू 'आनन्दी' का साथ ग्रहण कर, उनका साथ तुझे सुमधुर भाव प्रदान करेगा। उन्हें अपनाकर तेरे अभाव खत्म

हो जायेंगे और तू भाव का साथ पा सकेगा। तभी तू संसार का आनन्द ले पायेगा तथा उन भावों से बच पायेगा जो आनन्दवर्द्धन में बाधक हैं और तभी तन-मन की क्रियाओं में अटक कर जीवन को व्यर्थ गँवाने से भी तू बच पायेगा।

५६७ भय ही यम है। प्रेम ही परमेश्वर है। प्रेम हुआ, भय भागा।

ऐ प्राणी! शरीर जाने के पश्चात् व्यक्ति यम से यंत्रणा पाने की कल्पना करता है किन्तु उसे मालूम नहीं कि भय से घिरे रहने के कारण यम की यंत्रणा वह यहाँ अहर्निश भोगता रहता है क्योंकि भय ही यम है। जीवन में मौत एक बार आती है किन्तु भय बार-बार उसे मृत्यु सम पीड़ा देता रहता है। ईश्वर की प्राप्ति भी शरीर जाने के पश्चात् नहीं होती, जीते जी ही होती है। देख, जिस दिन प्रेम का प्रादुर्भाव तेरे हृदय पटल पर हो जायेगा उस दिन परमेश्वर को तू सदा साथ देख पायेगा क्योंकि प्रेम ही परमेश्वर है। अतः तू प्रेम को प्रश्रय दे कि भय तेरे समीप न आ पाये, तू ईश्वर की दुनिया में निर्भय विचरण करता हुआ मौज मनाये।

५६८ कैसा सुधार? अपने को पहचान। आनन्द ही आनन्द है।

ऐ प्राणी! जीवन में परिवर्तन लाने के लिये तू बड़ी-बड़ी बातों को प्रश्रय न दे एवं कुछ कार्यों का सहारा न ले—यह तेरी मात्र बालू से तेल निकालने की चेष्टा होगी। इससे तेरा सुधार तो होगा ही नहीं, तू अहंकारी जरूर बन जायेगा। देख, तू ईश्वर रूप है, अपने में परिवर्तन पाने के लिये तुझे अपनी ओर ही देखना होगा। जब "मैं कौन हूँ एवं यहाँ क्यों आया हूँ" ये भाव तेरे हृदय पटल पर होंगे तब एक दिन जरूर ऐसा आयेगा जब तू स्वयं को जान पायेगा और उस दिन तेरे रोम-रोम में तू ईश्वर का जलवा देख पायेगा। उस दिन तुझे सुधार की बातें करनी नहीं होंगी, तेरा प्रत्येक श्वाँस सजा होगा—तू भी आनन्द पाता रहेगा तथा अन्य को भी लुटाता रहेगा।

५६९ प्रण कर, अर्पण कर फिर—जन्म नहीं, मृत्यु कहाँ?

ऐ प्राणी! ईश्वर ही तेरा अपना है और सारा दृश्य जगत सपना है। यह दृश्य जगत आज दिखता है लेकिन कल नहीं दिखेगा अतः तू प्रण कर कि ईश्वर को तुझे पाना है। देख, हृदय में जब किसी चीज को पाने का संकल्प हो जाता है तब सारी चेष्टाएँ उसी के लिये होने लगती हैं, अन्तर के प्रत्येक

भाव उसे पाने के लिये उद्यत हो जाते हैं एवं व्यक्ति सब कुछ अर्पण करने को तत्पर हो जाता है। ईश्वर को पाने के लिये जब तेरी ऐसी स्थिति हो जायेगी तब तू जन्म-मृत्यु से परे हो जायेगा क्योंकि जनमते वे ही हैं जिनकी कुछ इच्छाएँ बाकी रह जाती हैं। जो ईश्वर की दुनिया में जीते हैं, सब कार्य उसी के द्वारा सम्पादित देख पाते हैं—वे न जन्म लेते हैं और न मरते हैं, उनका जीवन अनुपम होता है।

५७० कीचड़ में कमल। फिर शुद्ध बुद्ध क्यों विचारों के कीचड़ में।

ऐ प्राणी! कमल कीचड़ में रहता है फिर भी खिला रहता है और तू शुद्ध बुद्ध होते हुए भी कीचड़ में फँसता जा रहा है। देख, विचार कीचड़ हैं, तू अपने ही द्वारा विचारों का जाल बुनता है फिर उसमें स्वयं ही फँस कर बैठ जाता है। ये बन्धन तेरे अपने द्वारा ही लगाये हुए रहते हैं, यथार्थ में नहीं रहते। इन्हें कोई अन्य काट भी नहीं सकता, ये विचारों द्वारा ही कटेंगे। अतः तू सत्संग कर कि तू स्वस्थ विचारों का धनी बन पाये परिणाम तेरे बन्धन कट जायें और तू अपने रूप को पहचान पाये। जिस दिन तू अपने रूप को पहचान लेगा उस दिन तेरी दुनिया दूसरी होगी, तू सदा कमलवत् खिला रहेगा तथा सबको खिलाता रहेगा।

५७१ मन मलीन तो मन लीन कैसे हो?

ऐ प्राणी! निर्मल मन के द्वारा ही ईश्वर को पाया जा सकता है। देख, जब तक मन मैला रहता है तब तक बाहर के कार्य दूसरे रहते हैं तथा भीतर के भाव दूसरे रहते हैं, शरीर के द्वारा ईश्वर के कार्य होते रहते हैं और मन में विषयों का चिन्तन चलता रहता है। ऐसे में ईश्वर की बातें ही की जा सकती हैं, ईश्वर बहुत दूर रह जाता है। अतः तू यदि सचमुच में ईश्वर की भक्ति करना चाहता है तो तू मन को शुद्ध कर और इसके लिये तू सर्वप्रथम ईश्वर को अपने मन का मैल ही सौंप दे। जैसे-जैसे तेरा हृदय निर्मल होता जायेगा वैसे वैसे तू प्रिय प्रभु की मनोहर मूर्त्ति को अपने हृदय पटल पर अंकित देख पायेगा। तेरा मन भी तब अन्यत्र चक्कर काटना भूल जायेगा, वह हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित प्रभु के चरण कमलों का भँवरा बन वहीं रसपान करता रहेगा।

५७२ भोग में भी योग यदि प्रेम योगी हो।

ऐ प्राणी! योग और भोग को बाहर की क्रियाओं से नहीं जाना जा

सकता क्योंकि ये कार्यों के विषय नहीं, भाव के विषय हैं। देख, जिन्हें योग कहा जाता है उन क्रियाओं को करने वाला भी भोगी हो सकता है और जिन्हें भोग समझा जाता है उन क्रियाओं को सम्पादित करने वाला भी योगी हो सकता है क्योंकि योग और भोग के कोई निश्चित कार्य नहीं होते, भाव होता है। जो कार्य प्रभु-मिलन की भावना को हृदय में संजोये हुए किये जाते हैं, वे ही योग हैं तथा जो तन-मन की भूख मिटाने के लिये होते हैं, वे ही भोग हैं। अतः तू कार्यों के चक्कर में न पड़, तू मिलन के साज सजा कि तेरी भोग की आकांक्षा योग में परिणित हो जाये अर्थात् भोग ही योग बन जाये।

५७३ विष को अमृत बनाता स्पर्श मात्र से।

ऐ प्राणी! जिस विषय रूपी विष को पान करके व्यक्ति मृतक तुल्य जीवन विताता रहता है उन्हीं विषय भोगों के बीच रहते हुए प्रेम योगी अमर हो जाता है। प्रेम योगी का स्पर्श विष को अमृत बना देता है। देख, जब वस्तु-व्यक्ति का प्रयोग शरीर की भूख मिटाने के लिये किया जाता है तब वह भोग विष बन जाता है और जब उनको परमात्मा का प्रसाद जानकर प्रभु-मिलन के लिये ग्रहण किया जाता है तब वही अमृत बन जाता है अर्थात् विषयी का स्पर्श उन्हें विष बना देता है और प्रेम योगी का स्पर्श अमृत बना देता है। उन्हें ग्रहण कर एक मरता है किन्तु एक अमर हो जाता है और सबको भी अमरता का भाव दे जाता है।

५७४ भाव में भी भोग की भावना तो शान्त रह अभी दुर्बल है भावना।

ऐ प्राणी! भोग केवल तन-मन को तृप्ति देता है किन्तु भाव शरीर से परे आनन्द लोक में पहुँचाने वाला है और अन्तर घट को तृप्ति से भरने वाला है। दिन रात शरीर में रमण करने वाला प्राणी भाव पाकर भी जब अन्तर तृप्ति को नहीं जान पाता तब उसके लिये भाव भी भोग बन जाता है। ऐसे जन की दृष्टि अभी स्थूल (शरीर) में अटकी हुई है, उनकी भोग की आकांक्षा पूरी नहीं हुई है अतः भाव को भी वे भोग की दृष्टि से अपनाते हैं। अभी उनकी भावना दुर्बल है, उन्हें सद्गुरु-कृपा का सहारा चाहिये क्योंकि सद्गुरु ही निर्बल को सबल भावों से युक्त करने वाले हैं। सद्गुरु-कृपा ही उनके भाव परिवर्तन में सहायक बन सकेगी अन्यथा वे भाव से दूर ही रह जायेंगे।

५७५ बिन्दु समझ कर अपमान न कर। इस बिन्दु में क्या नहीं समाया हुआ है ?

ऐ प्राणी ! जो तुझे आज बहुत छोटे नजर आते हैं अर्थात् जिनकी हस्ती उस बिन्दु के समान है जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं, तू उनका अपमान न कर। वे जिस दिन एक ईश्वर का सहारा पा जायेंगे उस दिन उन्हें बढ़ते देर नहीं लगेगी, वे उस बिन्दु की तरह बढ़ जायेंगे जो किसी एक संख्या का सहारा पाकर बढ़ता जाता है। देख, बिन्दु संख्या के सहारे बढ़ता है और संख्या बिन्दु का साथ पाकर बड़ा से बड़ा रूप धारण कर लेती है। अतः तू बिन्दु की कीमत कर अर्थात् नम्र बनकर अश्रुपूरित नेत्रों (बिन्दु) से एक ईश्वर को पा ले कि तू स्वयं में विशाल सिन्धु के दर्शन कर पाये—तू ईश्वर का साथ पाकर जी जाये और ईश्वर तेरा साथ पाकर जी उठे।

५७६ यह कैसा अभाव है जो भाव सा प्रतीत होता है।

ऐ प्राणी ! आँसू अभाव में भी आते हैं एवं भाव में भी आते हैं। बाहर से देखने में दोनों एक जैसे होते हैं जिन्हें देखकर कभी-कभी अभाव में भी भाव का भ्रम हो जाता है। देख, अभाव और भाव का प्रभाव हृदय पटल पर होता है और उनका अन्तर भी वहीं से जाना जा सकता है। भाव स्थूल से ऊपर उठा कर आनन्द की स्थिति में ले जाता है और अभाव स्थूल के आस-पास ही चक्कर कटवाता है। एक में आनन्द के अश्रु रहते हैं तथा दूसरे में दुःख के आँसू होते हैं। अतः तू आँखों में आँसुओं को देखकर ही भाव मत समझ बैठना अन्यथा तू भाव से दूर ही रह जायेगा। तू सदा अपने अन्तर में झाँकना कि तू सत्य से जुड़ता जा रहा है या अभाव में ही चक्कर काट रहा है—तभी तू भाव का आनन्द पा सकेगा।

५७७ कब तक मनाऊँ मन को ? भगवान भी मन का है। मन न माने तो भगवान कैसे जानें ?

ऐ प्राणी ! जब तक तेरे मन का चक्कर खत्म नहीं होगा तब तक तू ईश्वर को नहीं पा सकेगा, अतः तू सर्वप्रथम मन को ही मना। यदि तू उसे मनाने में असमर्थ है तो वह संग साथ ग्रहण कर जहाँ बैठकर तेरा मन शान्त हो जाये। जब तेरा मन शान्त हो जायेगा, उसका चक्कर काटना छूट जायेगा तब तू भगवान को भी पा जायेगा क्योंकि भगवान भी मन के साथ से ही पाया जा सकता है। जब तक वृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती हैं तब तक ईश्वर यदि

सम्मुख भी खड़ा हो जाये तो भी उसे नहीं देखा जा सकता। अतः जब तक तेरा मन स्थिर न हो जाये, उसका निरर्थक भ्रमण छूट न जाये तब तक तू उसे देखता रह। तेरी सतर्कता एक दिन रंग लायेगी, तू मन को भी शान्त देख पायेगा तथा ईश्वर को भी प्रत्यक्ष देख पायेगा।

५७८ ग्रंथों में उलझा मन। सुलझा, जब मनमोहन मिला।

ऐ प्राणी! ग्रंथ ईश्वर की ओर जाने का संकेत देते हैं, हृदय में पड़ी ग्रन्थियों (गाँठ) को नहीं सुलझा सकते और जब तक ग्रन्थियाँ (संशय भ्रम आदि) नहीं सुलझतीं तब तक व्यक्ति संकेत के अनुसार चल नहीं सकता, उनमें उलझता ही जाता है। देख, ईश्वर की ओर बढ़ने के लिये प्रथम सद्गुरु की कृपा चाहिये। सद्गुरु की कृपा ही मन की उलझन को सुलझाने में सक्षम है। सद्गुरु की वाणी प्राणी की अन्तर्चेतना में प्रविष्ट कर उसे सचेत करती रहती है एवं संशय-भ्रम आदि से छुटकारा दिलाती है। जब तक सद्गुरु के दर्शन नहीं हो जाते तब तक व्यक्ति ईश्वर को पुस्तकों में ही ढूँढ़ता रहता है, ईश्वर के नाम पर कुछ कर्म ही करता रहता है, यथार्थ में ईश्वर को नहीं देख पाता और न उसके मन की उलझन ही खत्म होती है।

५७९ दान कर नादान। प्रिय को प्राणदान, जग को द्रव्य दान। धर्म को अज्ञान, कर्म को सद्ज्ञान।

ऐ प्राणी! पाने में जो आनन्द नहीं वह देने में है अर्थात् देना ही पाना है अतः तू दान कर। देख, ये प्राण प्रिय प्रभु के साथ से ही सजते हैं, प्रिय को भुलाकर ये केवल धौंकनी बन कर रह जाते हैं। अतः तू प्रिय को प्राण दान कर अर्थात् प्रिय के लिये तुझे प्राण भी अर्पण करने पड़ें तो भी तू हँसते-हँसते कर डाल। जग को तू द्रव्य दान कर क्योंकि अभी उसकी जरूरत द्रव्य है। जब तक व्यक्ति की स्थूल जरूरतें पूरी नहीं हो जातीं तब तक वह उन्हीं में अटका रहता है, ईश्वर की ओर नहीं बढ़ पाता। ऐसे में तू यदि उनसे दो सत्य बातें कहेगा तो वे उसे ग्रहण नहीं कर पायेंगे। धर्म अज्ञान अन्धकार को मिटाकर प्रकाश की ओर ले जाने वाला है अतः धर्म को तू अज्ञान दे डाल। धर्म पथ पर बढ़ता हुआ भी तू यदि अज्ञानता को पकड़ कर बैठा रहेगा तो धर्म के मर्म से तू कभी अवगत नहीं हो पायेगा। धर्म को धारण करके अब तू कर्म पथ पर आगे बढ़ कि तेरे कर्म सद्ज्ञान से युक्त हों और वे जन-जन के लिये प्रेरणावर्द्धक बन जायें।

५८० मन न लीन तो मन मलीन । तन न लीन तो तल्लीन कैसे हो ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर की ओर बढ़ने के लिये तन-मन का सहयोग अति आवश्यक है, यदि तन-मन का सहयोग न मिले तो ईश्वर को पाना कठिन होगा । देख, मन के सहयोग के अभाव में मन लीन नहीं हो पायेगा अतः मैला ही रह जायेगा और तन का सहयोग नहीं मिलेगा तो तल्लीन होने का अवसर ही नहीं आयेगा । अतः तू तन-मन की उपेक्षा न कर, तू इनकी कीमत कर । तू मन की सुरक्षा के साधन जुटा कि तेरा मन मैला होने से बच जाये और तू तन-मन दोनों का साथ पा जाये । जब तू इनका साथ पा जायेगा तब ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह सकेगा क्योंकि ईश्वर को निर्मल मन के आइने में ही देखा जा सकता है और तभी तन की तल्लीनता का आनन्द भी लिया जा सकता है ।

५८१ प्राणी में नव प्राण जागृत जब वाणी प्रवाहित हुई ।

ऐ प्राणी ! सत्य वाणी जब सन्त मुख से मुखरित होती है तब उस वाणी का प्रभाव अद्‌भुत होता है । सन्त सत्य की प्रत्यक्ष मूर्त्ति होते हैं, उनकी वाणी प्रेम रस में सनी, भाव रस में पगी तथा सबके हित की होती है । ऐसी वाणी जब प्रवाहित होती है तब प्राणी जन्म-जन्मान्तर के अभाव को भूल उसी में खो जाता है, उसमें नव चेतना का जागरण हो जाता है । वाणी के अभाव में प्राणी प्राण रहते हुए भी निष्प्राण जीवन जीता है किन्तु वाणी उसे निष्प्राण नहीं रहने देती, वह अभाव को धोती हुई उसे भाव जगत में पहुँचा देती है । परिणाम प्राणी पुनः जीवन पा जाता है, ऐसा जीवन पाता है जो यथार्थ में जीवन कहलाने के योग्य होता है अर्थात् आनन्द प्रदान करने वाला होता है ।

५८२ वाणी दी, सुनकर शांत होता, कहकर प्रसन्न होता । अभागा लड़ने लगा, झगड़ने लगा, भ्रम फैलाने लगा ।

ऐ प्राणी ! तुझे वाणी रूपी अमूल्य धन प्राप्त है किन्तु तूने वाणी की कभी कीमत नहीं की, तूने उसे केवल स्वार्थ पूर्त्ति का साधन बनाया । यदि तू वाणी की कीमत करता तो तेरे मुख से जो वाणी प्रवाहित होती उसे सुनकर तू शान्त हो जाता और कहकर तेरा मन प्रसन्नता से भर जाता । किन्तु तूने कभी सत्य की ओर कदम नहीं बढ़ाये, सदा स्वार्थ के वशीभूत होकर वाणी का दुरुपयोग ही किया—या तो उसका प्रयोग लड़ाई झगड़ों के लिये किया या फिर भ्रम फैलाने के लिये ही उसका व्यवहार करता रहा । ऐसे में वाणी की

शक्ति क्षीण हो गई और वाणी का धन पाकर भी तू निर्धन ही रह गया। देख, आज भी तू यदि वाणी की कद्र करने लगे तो उसकी शक्ति को जान जाये और उसके साथ का आनन्द ले पाये।

५८३ मौन रह, देख, कौन पुकार रहा है ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर तेरा सच्चा साथी है। वह सदा तेरे साथ है और सदा तुझे आवाज देकर अपनी ओर बुला रहा है किन्तु बाहरी शोरगुल में फँसे रहने के कारण न तो तू उसकी ओर देख पा रहा है और न उसकी आवाज ही सुन पा रहा है। देख, बाहर की आवाज कर्कश है और उसकी आवाज सुरीली है। कर्कश आवाज जब तीव्र घोष करती है तब सुरीली आवाज उसी में खो जाती है, अलग से कानों में नहीं पड़ती किन्तु बाहर की आवाज जब नहीं रह जाती तब वह (सुरीली आवाज) मन को मोहित करने लगती है। अतः तू उस आवाज को सुनने के लिये शान्त हो। जब बाहर की आवाज तुझे परेशान नहीं करेगी, तेरे भीतर नहीं गूँजेगी तब तू उस सुमधुर आवाज को जरूर सुन पायेगा जो हमेशा तेरे साथ रहकर तुझे अन्तर्प्रेरणा देती रहती है और तभी तू उस साथी के साथ का आनन्द ले पायेगा।

५८४ हरि न देखा। हरियाली तो देखी है फिर शुष्क क्यों ?

ऐ प्राणी ! हरि है तो हरियाली है, यदि हरि नहीं तो हरियाली के दर्शन भी नहीं। देख, तू जहाँ हरियाली देख पाता है वहाँ हरि भी अवश्य है। यदि तूने अभी हरि के दर्शन नहीं पाये हैं तो तुझे निराश होने की आवश्यकता नहीं, शुष्कता अपनाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हरि न सही, तूने हरियाली तो देखी है। देख, तू जहाँ हरियाली देखता है वहीं हरि की खोज कर। तेरी खोज बेकार नहीं जायेगी, तू एक दिन वहीं हरि को पा जायेगा और जिस दिन हरि को पा जायेगा उस दिन तेरी शुष्कता नहीं रह जायेगी, वह भी हरियाली में परिणत हो जायेगी। यदि तू प्रथम ही हताश-निराश हो जायेगा तो हरि की दुनिया में सदा हरि के साथ रहता हुआ भी उससे अनजान बना रहेगा और खुश्क-शुष्क जीवन बिताता रहेगा।

५८५ तन मय हुआ। तन्मय न हुआ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को पाने के लिये केवल तन से लीन होना ही पर्याप्त नहीं, ईश्वर के लिये अपनेपन का एहसास भी चाहिये। जब तक अपनापन

नहीं आ जाता तब तक यदि दिन-रात ध्यान लगा लिया जाये, व्रत-उपवास-तीर्थाटन आदि कर लिये जायें, पूजा-पाठ की पद्धति भी अपना ली जाये तब भी तन्मयता नहीं पायी जा सकती। अतः तू केवल तन से ईश्वर को पाने की चेष्टा न कर, तू सत्संग कर कि वह भाव पा जाये जिसे पाकर ईश्वर तेरा अपना बन जाये और तेरे मन प्राणों में बस जाये—तभी तू ईश्वर में तन्मय रह पायेगा अन्यथा ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य करता हुआ भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

५८६ सन्तोष कैसे हो? जब सन्त न मिला, शांति न मिली।

ऐ प्राणी! ईश्वर जो कुछ करता है उसमें व्यक्ति की भलाई छिपी रहती है किन्तु इस सत्य को व्यक्ति नहीं जानता, वह उन्हें अपनी दृष्टि से ही उचित अनुचित ठहराता है अतः कष्ट पाता रहता है। देख, सन्तोष रूपी धन सन्त की कृपा प्राप्त प्राणी को मिलता है। जब तक सन्त की कृपा प्राप्त नहीं होती तब तक प्राणी अशान्त बना चक्कर काटता रहता है। सन्त की शरण भ्रमित प्राणी को सही दृष्टि प्रदान करती है परिणाम प्राणी सही-सही देखने की क्षमता पा जाता है। ऐसे में जन्म-जन्मान्तर से भटकता हुआ उसका मन प्रभु-चरणों का आश्रय पा शान्त हो जाता है। वह देख पाता है कि "ईश्वर द्वारा अनुप्राणित सभी कार्य मेरी भलाई के लिये हो रहे हैं"। अब सन्तोष उसका अपना धन बन जाता है, वह प्रत्येक श्वाँस सन्तोष के साथ जीता है।

५८७ अलिप्त और अतृप्त। अलिप्त रहता है भाव से। अतृप्त है अभाव से।

ऐ प्राणी! अलिप्त और अतृप्त इन दोनों शब्दों में देखने में बहुत समानता है किन्तु भाव में जमीन आसमान का अन्तर है। देख, अलिप्त भाव पाकर रहा जा सकता है और अतृप्त अभाव से घिरा रहने के कारण रहता है। भाव ऐसी स्थिति है जो स्थूल का भान भी नहीं रहने देती, देती है रोम-रोम में आनन्द की भावना जिसे पा व्यक्ति आनन्द सागर में गोते लगाने लगता है। किन्तु अभाव में शरीर ही प्रधान रहता है, इसमें शरीर की पूर्त्ति के लिये प्राणी दिन-रात प्रयत्नशील रहता है फिर भी तृप्ति नहीं पाता, सदा अतृप्त ही बना रहता है। भाव पाकर इसी संसार में एक मौज मनाता है तथा अभाव पकड़ कर इसी संसार में एक रोता रहता है।

५८८ कपड़ों में धर्म है। कंठी में धर्म है। तिलक छापे और पुस्तक पढ़ने में धर्म है। अब धर्म की क्या आवश्यकता है? धर्म इतना सरल नहीं।

ऐ प्राणी! धर्म हृदय में धारण करने का भाव है, कर्म से अपनाने का भाव नहीं। यदि तू कुछ कर्मों को ही धर्म मान बैठेगा तो धर्म की धज्जियाँ उड़ जायेंगी और तू कुछ नहीं पायेगा। देख, धर्म पथ पर आगे बढ़ने वाला जिन साधनों को अपनाकर आगे बढ़ता है, तू उन साधनों को ही धर्म मान बैठता है, उसने कौन से भाव पाये थे उन पर दृष्टि नहीं डालता। अतः कपड़ों में धर्म समझता है, कंठी धारण करने में धर्म समझता है, तिलक छापे लगाकर स्वयं को धार्मिक समझता है तथा कुछ पुस्तकों का अध्ययन करके धार्मिक बन बैठता है। अरे पगले! तू इन साधनों को साध्य न जान क्योंकि धर्म इतना सरल नहीं कि कुछ करके उसे पा लिया जाये। देख, जब तेरे हृदय में धर्म के प्रति आस्था होगी तब वह आस्था ही तुझे धर्म को पाने के लिए विवश कर देगी और जब तक धर्म तेरे हृदय में प्रतिष्ठित नहीं हो जायेगा तब तक तुझे चैन नहीं लेने देगी। अतः तू इन आडम्बरों में न अटक, तू धर्म पथ पर कदम बढ़ा कि धर्म का सही रूप जान पाये।

५८९ पद पद पर सन्देह अब कैसे रहे देह, नेह, गेह?

ऐ प्राणी! जब हृदय पटल पर सन्देह का साम्राज्य छा जाता है तब पद पद पर सन्देह होने लगता है। उस समय भलाई भी बुराई सी प्रतीत होने लगती है और अपनी ही छाया से व्यक्ति घबड़ाने लगता है। ऐसे में न वह सुख से खा सकता है, न सो सकता है, न किसी से प्रेम की दो बातें कर सकता है। घर उसे काटने दौड़ता है, कोई भी उसे नहीं सुहाता, उसका जीना ही दूभर हो जाता है। देख, केवल सन्देह को स्थान देने से व्यक्ति कैसी निम्नतर अवस्था में पहुँच जाता है। अतः तू उन भाव विचारों को प्रश्रय न दे जिन्हें अपनाने से तेरा जीवन दुःखदायी बनता है। यदि तू उनसे ऐसे न बच पाये तो संत समागम कर कि तेरी दृष्टि बदल जाये और वह गलत भावों से तुझे बचाती रहे।

५९० अमंगल—अनचाही। मंगल मन चाही। राही राह चले—यह क्रम बना रहेगा जब तक चाह बनी है।

ऐ प्राणी! तूने अपनी दृष्टि का एक मापदण्ड बना रखा है और उसी से

सभी परिस्थितियों को तौलता रहता है। जो तेरी अनचाही होती है उसमें तू अमंगल देखता है तथा जो मनचाही होती है उसमें मंगल समझता है। अरे पगले ! सम्पूर्ण विश्व का नियामक एक ईश्वर है, उसी के इशारे पर यह विश्व गतिशील है। तू यहाँ जो कुछ भी देखता है वह सब उसी की मनचाही हो रही है। अतः तू इनमें मंगल, अमंगल न खोज, सीधी राह पकड़ कर सत्य पथ पर बढ़ता जा कि तू सभी स्थितियों में अपनी भलाई देखता हुआ मौज में रह सके। अन्यथा मनचाही होने से तू गाता रहेगा और अनचाही होने से तेरा सारा समय रोते-रोते ही बीत जायेगा।

५९१ करुणावश सिद्धि का अभाव न ले। शान्ति बरसा कि दुःख दरिद्र का भाव न रहे।

ऐ प्राणी ! तूने यदि ईश्वर की शरण में बैठकर शान्ति-सन्तोष के दर्शन किये हैं तो तू अन्य के सम्मुख भी सरल शब्दों में ईश्वर की महिमा का बखान कर कि वे भी तेरी तरह शान्ति-सन्तोष के दर्शन कर पायें। यदि वे दुःख दरिद्री से घिरे हुए हैं फिर भी तू उनसे सिद्धि की बातें नहीं कर पाता है तो तू अभाव न ले क्योंकि सिद्धि से उनके दुःखों का अन्त नहीं आयेगा, शान्ति रूपी जल का पान करने से ही वे उनसे छुटकारा पा सकेंगे। देख, शान्ति वस्तु की प्राप्ति में नहीं, भाव की प्राप्ति में है अतः तू उनपर वाणी द्वारा शान्ति रूपी जल की वर्षा कर कि उनके भीतर दुःख दरिद्र की भावना ही न रह जाये।

५९२ काया कामिनी के लिये मन कंचन कंचनी बना बेचैन। कामिनी कंचन ने सबको मोहित किया। भक्त भागे, जगत अनुरागे। (अनुराग)

ऐ प्राणी ! जब शरीर प्रधान हो जाता है तब उज्ज्वल मन मैला होने लगता है, वह दिन-रात शरीर की चिन्ता में संलग्न जन-जन का मोहताज बन जाता है। ऐसी अवस्था में बेचैनी उसकी सहचरी हो जाती है और कामिनी कांचन ही उसके लिये प्रधान हो जाते हैं। देख, कामिनी और कांचन सबको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं क्योंकि इनका आकर्षण ही कुछ ऐसा है। इनके आकर्षण से भक्त भी नहीं बच पाते अतः इनसे दूर एकान्त में ईश्वर-भजन करना चाहते हैं। अन्य साधारण प्राणी के लिये तो कामिनी कांचन

ही जीवन प्राण रहते हैं। अरे पगले! यह शरीर ईश्वर मिलन का साधन है और तू इसी में उलझ कर मन को मैला करता जा रहा है तथा संसार का रूप विकृत बनाता जा रहा है। तेरी मूल की भूल के कारण ही कामिनी, जो कदम-कदम पर तेरा साथ देने वाली है, तेरे भोग विलास का साधन बन गई और कांचन, जो शरीर की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये साधन है, मान-सम्मान व झूठी शान बढ़ाने का कारण बन गया। आज भी तू यदि ईश्वर की देन को जान पाये तो तेरा संसार सज जाये और कामिनी कांचन तेरे लिये बाधक न रह जायें।

५९३ काम बुरा तो काम से क्या काम ? राम भला तो कर आराम, कह आ राम।

ऐ प्राणी! तू काम (कामना-वासना) को बुरा कहता है और राम को भला कहता है फिर भी काम से ही चिपका रहता है। देख, जो चीज बुरी है उसकी अधिक चर्चा अच्छी नहीं होती, अधिक चर्चा से वे भाव सदा सम्मुख बने रहते हैं। अतः तू यदि काम को बुरा समझता है तो तू अपना रास्ता ही बदल डाल अर्थात् तू राम का स्मरण कर तथा राम के कार्यों को देखते हुए निश्चिन्त जीवन बिता अन्यथा 'काम' की बातों में लगा हुआ तू 'काम' के ही चातुर्दिक चक्कर काटता रहेगा। राम को जानने के पश्चात् तू काम को भला-बुरा नहीं कहेगा, तू काम का काम (उपयोग) जानकर उसका प्रयोग करता रहेगा परिणाम काम तेरे लिये बुरा नहीं रह जायेगा, तू राम की दुनिया में बैठा सभी काम करते हुए आराम पायेगा।

५९४ लहर पर लहर विपत्तियों की। ले हर, अब कहाँ विपत्ति ?

ऐ प्राणी! ईश्वर को भुलाने से अनेक विपत्तियाँ सम्मुख दिखाई देने लगती हैं। एक से व्यक्ति छुटकारा पाता है तो दूसरी सम्मुख आ जाती है—विपत्तियों का कहीं अन्त ही नहीं आता। देख, ये सारी विपत्तियाँ तेरी अपनी एकत्रित की हुई हैं, कर्त्तापन के मैं से ये तेरे सम्मुख उपस्थित हुई हैं। अतः तू इस मैं को ही प्रभु चरणों में रख दे अर्थात् तू प्रभु के चरणारविन्द पर अपना आपा सौंप दे। जब तेरा आपा नहीं रह जायेगा तब प्रत्येक कार्यों का कर्त्ता तू ईश्वर को देख पायेगा। उस दिन विपत्तियों से भी तू छुटकारा पा जायेगा क्योंकि उस दिन तेरी दृष्टि बदल जायेगी अतः सभी कार्यों में तू तेरी भलाई देख पायेगा।

५९५ प्रथम पीछा कर, फिर पीछे पड़, देख अब जायगा कहाँ ?

ऐ प्राणी ! सत्संग हृदय में ईश्वर मिलन की उत्सुकता भरने का स्थान है, वहीं बैठकर ईश्वर का पीछा किया जा सकता है अतः तू सत्संग कर। सत्संग करते-करते जब तेरा हृदय शुद्ध होने लगे तथा ईश्वर ही तुझे अपना लगने लग जाये तब तू जी जान से उसे पाने के लिये तत्पर हो जाना। ईश्वर को पाने के लिये जब तेरा मन बेचैन हो जायेगा, तुझे खाना, पीना, सोना कुछ भी नहीं सुहायेगा तब ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह सकेगा, वह तेरे अति समीप अर्थात् अन्तर-बाहर-सर्वत्र साथ रहेगा—तू ईश्वर के सिवा कुछ भी नहीं देख पायेगा।

५९६ बीमार तो मार पर मार। भला चंगा तो बहा प्रेम गंगा।

ऐ प्राणी ! शरीर का रोग एक समय पश्चात् मिट सकता है किन्तु मन का रोग बड़ा भयानक होता है, यह जल्दी नहीं मिटता। मन से जब व्यक्ति बीमार हो जाता है तब उसका तन भी साथ नहीं देता। उसे सभी परिस्थितियाँ प्रतिकूल दिखने लगती हैं, वह सदा परिस्थितियों से ही जूझता रहता है। किन्तु जिसका मन स्वस्थ रहता है, वह सदा प्रसन्नवदन रह स्वयं भी मौज में रहता है तथा औरों को भी मौज बाँटता रहता है। देख, स्वस्थ मन सबको नसीब नहीं होता, यह उनको ही मिलता है जो सत्य की दुनिया में जीते हैं अथवा जिन्हें सद्‌गुरु का साथ मिलता है। ऐसे जन की वाणी के द्वारा अनेकों का उद्धार होता है, अनेक उनकी प्रेममयी वाणी में स्नान कर शुद्ध हो जाते हैं।

५९७ अभाव वाला मन मारता है। भाव वाला तो मस्त हो जाता है। मन शांत अब कौन भ्रांत ?

ऐ प्राणी ! बाहर के क्रिया-कलापों से अन्तर के भाव विचारों का दिग्दर्शन नहीं किया जा सकता। देख, अभाव में रहने वाला व्यक्ति प्रत्येक वस्तु, स्थिति में अभाव ही देखता है एवं उनसे हार कर एक दिन मन मारकर बैठ जाता है किन्तु भाव वाला जो कुछ पाता है उसे पाकर मस्त रहता है। दोनों ही बाहर से शान्त से दिखलाई देते हैं किन्तु एक के अन्तर में सुस्ती और एक के अन्तर में मस्ती रहती है। एक कुछ खोकर शान्त है तथा एक पाकर शान्त है। जब कुछ (भाव) पाकर शान्ति आती है तब व्यक्ति को कोई भ्रमित नहीं कर सकता। दुनिया के बड़े से बड़े प्रलोभन भी तब उसे

भ्रमित करने के कारण नहीं बन पाते क्योंकि भाव वाला वह भाव पा जाता है जहाँ अभाव की पहुँच ही नहीं रहती ।

५९८ नई दृष्टि नहीं, नई सृष्टि, जहाँ मन चंचल नहीं, मन लीन ।

ऐ प्राणी ! सन्त की दुनिया सम्पूर्ण दुनिया से न्यारी होती है। उस दुनिया को व्यक्ति दूर बैठकर अपनी आँखों से नहीं देख सकता, उनके समीप जाकर ही देख सकता है। सन्त के आस पास का वातावरण ही कुछ ऐसा रहता है कि नई दृष्टि पाये बिना ही व्यक्ति उनके समीप जाकर शान्त हो जाता है और उस नई सृष्टि का आनन्द पाने लगता है। वहाँ बैठकर व्यक्ति के मन की चञ्चलता खत्म हो जाती है, वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं एवं उस वातावरण में ही लीन हो जाती हैं—ऐसी है सन्त की दुनिया जिसे देखते ही बनता है। उनका भाव व्यक्ति जब कुछ भी ग्रहण कर पाता है तब वह वहाँ से खाली हाथ नहीं आता, कुछ ऐसा ले आता है कि उसकी दृष्टि भी बदलने लगती है और उसका संसार भी सजने लगता है।

५९९ गिरधारी, गिर धारण कर। मन का पहाड़ कण बन चरण में लोटने लगे।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का एक नाम गिरधारी है, वह तेरे हृदय पर पड़े पहाड़ के समान बोझ का हरण करने वाला है। देख, तू गिरधारी के चरणों पर गिर जा तथा उसकी चरण रज को मस्तक पर धारण कर ले अर्थात् तू अहंकार शून्य होकर उसकी शरण ग्रहण कर ले। जब तू उसकी शरण ले लेगा तब तेरे दिल पर पड़ा पहाड़ के समान बोझ हटने लगेगा क्योंकि वह बोझ तेरे लिये पहाड़ के सदृश्य है किन्तु उसके सम्मुख कण के सदृश्य भी नहीं। तू यदि बोझ लेकर चलेगा तो थक जायेगा, टूट जायेगा, आनन्द के लिये आया हुआ आनन्द से वंचित ही रह जायेगा किन्तु बोझ यदि उन चरणों पर रख देगा तो उसकी कृपा से जुड़ जायेगा और आनन्द मनायेगा—थकावट के तू दर्शन भी नहीं कर पायेगा।

६०० दुःख की बात तो भगवान सुनेगा या संत। मैं तो इन्सान हूँ, सुख की बात कर।

ऐ प्राणी ! अथाह जल में भरपूर कूड़ा डाला जा सकता है किन्तु थोड़े से जल (तालाब) में डालने से वह जल गन्दा हो जायेगा और किसी काम का

नहीं रह जायेगा। देख, दुःख की बातें भी सबके सामने करने से लाभ नहीं क्योंकि साधारण प्राणी उन बातों को सुनकर दुःखी ही बनेगा, तेरा दुःख निवारण नहीं कर सकेगा। अतः तेरे पास यदि दो अच्छी बातें हैं तो सबसे तू वही कर, यदि केवल दुःख ही दुःख है तो तू उस दुःख की बातों को सन्त के समीप कह या तेरे हृदय पटल पर प्रतिष्ठित ईश्वर से कह। उनकी शरण में बैठकर ही तू दुःखों से छुटकारा पा सकेगा क्योंकि उनका हृदय समुद्रवत् विशाल है। ऐसे में तू दुःख से छुटकारा भी पा जायेगा तथा शीतलता व शान्ति का दिग्दर्शन भी कर पायेगा।

६०१ अरे भाग्यवान भगवान बन कि दृष्टि सृष्टि का आनंद आये।

ऐ प्राणी! तू भाग्यवान है इसीलिये तुझे मनुष्य जन्म मिला है। मनुष्य जन्म साधारण नहीं होता, इस जन्म में ही ईश्वर को पाया जा सकता है—केवल पाया ही नहीं जा सकता, ईश्वर रूप बना जा सकता है। देख, तू ईश्वर रूप है किन्तु अपने रूप को भूला हुआ है। शरीर को देखते-देखते एवं लोगों से सुनते-सुनते तू शरीर को ही 'मैं' समझने लगा परिणाम अपने रूप (ईश्वर) से दूर होता गया। अरे पगले! तुझे बार-बार मनुष्य जन्म इसीलिये मिलता है कि तू अपने आप को पहिचान पाये। जिस दिन तेरे हृदय में स्वयं को जानने की उत्सुकता पैदा हो जायेगी उस दिन ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह जायेगा, वह तुझे अति करीब श्वासों प्राणों में ही मिल जायेगा। देख, उसे पाने के पश्चात अपनापन नहीं भाता और उसे अलग देखना भी नहीं सुहाता। ऐसे में 'मैं' पूर्णतया मिट जाता है, हृदय विशाल हो जाता है और दृष्टि बदल जाती है—दृष्टि बदल जाती है अतः सृष्टि भी आनन्द देने लगती है।

६०२ भगवा न रंग भगवान बन कि रंग ही रंग रहे।

ऐ प्राणी! घर छोड़ने वाले ईश्वर को पा ही जाते हैं, यह निश्चित नहीं क्योंकि ईश्वर कपड़े रँगने से नहीं मिलता, दिल रँगने से मिलता है। अतः तू यदि ईश्वर को पाना चाहता है तो कपड़े न रँग, वह भाव पा जिसे पाने से ईश्वर तुझसे दूर न रह जाये। देख, वह भाव प्रेम है। तेरा हृदय जैसे-जैसे प्रेम रस से सराबोर होता जायेगा वैसे-वैसे तू ईश्वर को निकट देख पायेगा और जिस दिन तेरा हृदय प्रेम से लबालब भर जायेगा उस दिन तू ईश्वर को भीतर-बाहर-सर्वत्र आच्छादित देख पायेगा, तू ही ईश्वर रूप हो

जायेगा। तब तेरे चारों ओर रंग ही रंग होगा और तू रंग रंगीली दुनिया में बैठा मौज मनायेगा।

६०३ धैर्य रति तो धरती। नहीं तो परती धरती।

ऐ प्राणी! धरती रत्नगर्भा है किन्तु उससे अन्न-फल-फूल आदि तभी पाये जाते हैं जब वह जोती बोयी जाती है। देख, तेरे भीतर भी अनन्त भाव हैं किन्तु तू उन्हें सम्मुख तभी देख पायेगा जब तुझमें धीरज होगा एवं उन्हें पाने की तीव्र लालसा होगी। तेरा धैर्य जब पराकाष्ठा पर पहुँच जायेगा तब तू अपने अन्तर के अनन्त खजाने को अवश्य पा जायेगा। उस दिन से तेरा जीवन दूसरा होगा—तू इसी संसार में, इसी शरीर द्वारा, इन्हीं साथियों के बीच रहता हुआ आनन्द मनायेगा। यदि तुझमें धीरज का अभाव रहेगा तो अनन्त धन का स्वामी होते हुए भी तू उस परती धरती की तरह होगा जो जोतने बोने के अभाव में कभी फलती फूलती नहीं।

६०४ पत्तों में मुस्कराने वाले भगवान ने कहा—बच्चों, हँसो और आनन्द मनाओ। साकार, निराकार का प्रश्न क्यों?

ऐ प्राणी! 'ईश्वर साकार है या निराकार' तू इस विवाद में न पड़ क्योंकि विवाद करने से तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। देख, पत्ते-पत्ते में ईश्वर मुस्कुरा रहा है, यदि ईश्वर न हो तो हरियाली (सजीवता) के दर्शन भी नहीं हो पायेंगे। किन्तु जर्रे-जर्रे में समाये ईश्वर को वे ही देख पाते हैं जिनका हृदय बच्चों की तरह सरल होता है। अतः तू दिल से बच्चा बन अर्थात् सरलता धारण कर कि तू हरा-भरा हो जाये और सब जगह उसी का जलवा देख पाये। ईश्वर साकार है या निराकार—तू इन सब विवादों से बच जाये, हमेशा हँसते खेलते हुए उसे अन्तर के भावों में भी देख पाये तथा सभी रूपों में भी देख पाये।

६०५ निन्दा से घबड़ाने वाला बन्दा, बन्द कर घबड़ाना। वन्दना कर कि तेरी ही आवाज सर्वत्र गूँज उठे।

ऐ प्राणी! तू यदि सत्य पथ का राही है तो हो सकता है कि तेरी खूब निन्दा आलोचना हो क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि जो दो कदम आगे बढ़ना चाहता है प्रकृति उसे रोकती है। किन्तु व्यक्ति की चाह यदि तीव्र

रहती है तो वह प्रकृति के अवरोध के बावजूद भी आगे बढ़ता जाता है अन्यथा वहीं रुक जाता है। देख, तू यदि निन्दा से घबड़ा जायेगा तो तू चलते-चलते रुक जायेगा। अतः तू अपना समय निन्दा सुनने में व्यर्थ बरबाद न कर, तू उस कीमती समय को बन्दगी करने में लगा। जब तेरा जीवन ईश्वर की बन्दगी के लिये होगा तब तेरे हृदय में गन्दगी नहीं रह जायेगी और तेरा हृदय शुभ्र आलोक से प्रज्वलित हो उठेगा। वह प्रकाश केवल तुझे ही प्रकाशित नहीं करेगा, वह कितनों का ही जीवन आलोक से भर देगा।

६०६ पूज कर अपना न सका, क्या पूजा की?

ऐ प्राणी! पूजा श्रद्धा का प्रतीक है। श्रद्धा करे और श्रद्धेय के प्रति झुक न सके, उसे अपना बना न सके तो वह श्रद्धा केवल शिष्टाचार बन कर रह जाती है। देख, श्रद्धा कार्यों का विषय नहीं, यह हृदय का भाव है—बड़े के सम्मान में यह स्वतः हृदय में उमड़ती है। यह जब उमड़ती है तब कार्यों में भी आ जाती है—उसी का छोटा सा रूप पूजा है। पूजा करके व्यक्ति ईश्वर को अपनाना चाहता है किन्तु पूजा करते समय यदि ईश्वर का ऐश्वर्य सम्मुख न रहे और उसे अपनाने के भाव हृदय में न रहें तो वह पूजा संस्कार का एक रूप बनकर रह जाती है। ऐसे में पूजा का प्रतिफल अर्थात् ईश्वरीय भावों का आगमन हृदय पटल पर नहीं होता। अतः तू यदि पूजा से लाभान्वित होना चाहता है तो तू ईश्वर के ऐश्वर्य को जान। जैसे-जैसे ईश्वर की महिमा से तू अवगत होगा वैसे-वैसे उसे अपनाने के भाव भी तू पा जायेगा। तब तेरी पूजा सजीव होगी और तेरा पूजन भी उसी दिन सार्थक होगा।

६०७ शरीर व्याधि मन्दिर। शरीर तब प्रेम मन्दिर।

ऐ प्राणी! ईश्वर-मिलन का प्रमुख साधन यह मानव तन है किन्तु इसकी महिमा से अनजान व्यक्ति इस शरीर को हमेशा कोसता रहता है। देख, जो शरीर को कोसते हैं वे अभी ईश्वर से अनजान हैं, वे ईश्वर को भुलाकर अभी शरीर की दुनिया में जीते हैं। जब शरीर प्रधान हो जाता है तब दुःख चिन्ता आदि अनेक भाव आकर व्यक्ति को घेर लेते हैं। दिन-रात घर परिवार की चिन्ता में लगा प्राणी भीतर ही भीतर टूटता जाता है परिणाम उसका शरीर व्याधि मन्दिर बन जाता है। किन्तु जो ईश्वर की दुनिया जीते हैं उनकी अवस्था विपरीत रहती है। वे शरीर को ईश्वर प्राप्ति का साधन जानते हैं अतः हृदय मन्दिर में प्रिय प्रभु की मूर्त्ति देखने के इच्छुक रहते हैं।

वे कहते हैं "मैं तुझे मन्दिर में देखने का इच्छुक नहीं क्योंकि मन्दिर में रहने से तू मुझसे दूर हो जायेगा। तू मेरे हृदय पर विराजमान हो, यह हृदय नहीं तेरा प्रेम मन्दिर है। जिस दिन तू इसमें विराजमान हो जायेगा उसी दिन यह शरीर धारण करना सार्थक होगा"—ऐसी भावना रखने वाले एक दिन अवश्य ही हृदय मन्दिर में प्रभु को प्रतिष्ठित देख पाते हैं। शरीर यही रहता है किन्तु ईश्वर को भुलाने से एक के लिये व्याधि मन्दिर होता है और दूसरे के लिये—जो ईश्वर की दुनिया में जीते हैं—प्रेम मन्दिर बन जाता है।

६०८ शांति अब और यहाँ जब तन, मन मेरा हो। साधना मेरी पूर्ण जब तू पूर्ण को जान पाया।

ऐ प्राणी ! शान्ति की बातें करना एक बात है किन्तु शान्ति चाहना दूसरी बात है। शान्ति चाहने वाले को शान्ति का रास्ता मिल ही जाता है जिस पर बढ़ता हुआ वह (शान्ति का उपासक) शान्ति पाता है। देख, शान्ति सन्त की शरण में मिलती है। दुनिया से हारा-थका प्राणी जब भूले-भटके सन्त की शरण पा जाता है एवं तन, मन उन्हें समर्पित कर देता है तब वह शान्ति के दर्शन कर पाता है। ऐसे में केवल शान्ति पाने वाला ही राहत नहीं पाता, शान्ति देने वाला (सन्त) भी राहत पाता है। वह कहता है—मेरे बच्चे ! मेरी वर्षों से की हुई साधना आज पूरी हुई क्योंकि आज तूने यहाँ बैठकर शान्ति के दर्शन किये हैं और जीवन के चरम लक्ष्य (पूर्ण) को पाया है। इस उपलब्धि का यदि केवल मैं ही उपभोग करता रहता तो मुझे वह सन्तोष नहीं मिलता जो मैं आज तुझे तृप्त देखकर पा रहा हूँ।

६०९ किसने कहा कि कर्म का भोग भोगने के लिये आया ? मेरे प्यार ने तुझे महामानव बनाया।

ऐ प्राणी ! जब शरीर पर कुछ आपद-विपद आती है तब व्यक्ति यही कहते देखा जाता है कि "मैं अपने कर्मों का भोग भोग रहा हूँ" या "मेरा जन्म ही दुःख भोगने के लिये हुआ है"। देख, जो ऐसा कहते हैं वे अभी मेरे प्यार से अनजान हैं, उन्हें मालूम नहीं कि मेरे प्यार से ही उनकी उत्पत्ति हुई है और उनमें ही यह क्षमता है कि वे मेरी ओर देख सकें, मुझे पा सकें। जिस दिन वे मेरे प्यार को जान जायेंगे उस दिन वे जीवन की कद्र करना सीख जायेंगे। तब वे मानव नहीं रहेंगे, महामानव हो जायेंगे—देवता भी उनके दर्शन को तरसेंगे। अतः तू भ्रम में पड़कर इस शरीर को तुच्छ न

जान, तू उसको जान जिसने तेरी रचना की है कि तू जीवन पाने का उद्देश्य जान पाये तथा जीवन की कीमत कर पाये।

६१० किसी ने कहा—यह तन शैतान है। किसी ने कहा—यह मन परेशान करता है। सोच कौन बाधक है और कौन साधक? बातों में न आ, खुद देख। जब तू मेरा तो पाप पुण्य भी मेरा।

ऐ प्राणी! तन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते-करते जब व्यक्ति थक जाता है तब वह शरीर को कोसने लगता है और जब मन के इशारे पर नाचते-नाचते थक जाता है तब मन को भला-बुरा कहने लगता है जबकि तन-मन दोनों ही बुरे नहीं हैं। देख, जब तक प्रयोग करने की विधि नहीं मालूम होती तब तक कितनी ही कीमती वस्तु क्यों न मिल जाये, वह बेकार ही रहती है। तन, मन की उपयोगिता से अनजान व्यक्ति तन, मन से भी इसीलिये परेशान रहता है। अरे पगले! तू आज भी होश में आजा और अपने जीवन के लक्ष्य को जान ले। जब तेरा लक्ष्य सत्य की प्राप्ति होगा तब तेरा बाधक कोई नहीं होगा—न तन बाधक होगा और न मन बाधक बनेगा और न तू पाप-पुण्य के बन्धन में ही बँधेगा—तू मेरी ओर देखता हुआ निर्द्वन्द आगे बढ़ता जायेगा और एक दिन मुझमें ही समा जायेगा।

६११ घर छोड़ा तो बाहर ही घर बना। छोटा घर बड़ा बना। मैं विराट तो तू क्षुद्र कैसे?

ऐ प्राणी! सत्संग करते-करते जैसे-जैसे हृदय की सफाई होती जाती है और ईश्वर अपना दिखने लगता है वैसे-वैसे संकीर्णता का घेरा टूटता जाता है। पहले कुछ लोग (शरीर के सम्बन्धी) ही अपने रहते हैं किन्तु हृदय की शुद्धता उस घेरे को तोड़कर बाहर की दुनिया को भी अपना बना देती है। देख, ईश्वर की दुनिया के खेल विचित्र हैं। ईश्वर की शरण सब ग्रहण नहीं करते, जो करते हैं उनकी दुनिया दूसरी हो जाती है। ईश्वर उन्हें सद्गुरु रूप में अपनाकर उनकी क्षुद्रता को विशालता में परिणत कर देता है एवं उन्हें अपने समान बना देता है। वह कहता है—तू छोटा तब तक था जब तक मुझे भूला हुआ था। जिस दिन से तूने मेरी शरण ली उस दिन से तू मेरा हो गया और जब मैं विराट हूँ तब तू क्षुद्र रह नहीं सकता क्योंकि तू मेरा है।

६१२ प्रतीक्षा किसे सताती है जो योग में ही अंत समझता हो। अनन्त की प्रतीक्षा और योग अनन्त।

ऐ प्राणी! 'सद्‌गुरु' शब्द शरीरधारी व्यक्ति का संकेत नहीं देता, उस अज्ञात सत्ता का संकेत देता है जो शरीर के माध्यम से प्रत्यक्ष दिखलाई देती है। वह सत्ता सबमें विद्यमान है किन्तु अव्यक्त है—सद्‌गुरु उस सत्ता का जीता-जागता रूप है। ऐसे सद्‌गुरु के समीप बैठकर भी यदि भाव की आँखें न खुल पायें तो वह उन्हें एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में ही देख पायेगा। वह उनकी प्रतीक्षा में विकल हो जायेगा और मिलन में प्रसन्न हो जायेगा। यदि व्यक्ति उन्हें भाव से देख पाता अर्थात् वे जो हैं उसे जानना व पाना चाहता तो शरीर से उनके समीप जाकर तृप्त नहीं हो जाता, (उनके समीप जाकर) उन्हें पूर्ण रूप से पाने की प्यास उसमें और अधिक भड़क जाती। उसके हर समय का चिन्तन-मनन अनन्त के लिये होता और वह हर क्षण अनन्त में समाहित होता रहता।

६१३ मानव तन में वियोग माना तो मानव तन व्याकुल हुआ। संयोग तो सम योग से होता है।

ऐ प्राणी! तू सद्‌गुरु के समीप जाकर भी यदि सत्य की झलक न पा सके, तेरा रोम-रोम सत्य को पाने के लिये न तड़प उठे तो तेरा सद्‌गुरु से मिलन ही व्यर्थ हो जायेगा। देख, सद्‌गुरु सत्य के प्रत्यक्ष रूप हैं, वे शरीर से तिरोहित होने के पश्चात् भी लुप्त नहीं होते। किन्तु जो उन्हें केवल शरीरधारी व्यक्ति के रूप में ही देख पाते हैं वे उनके शरीर के वियोग में ही दुःखी बनकर रह जाते हैं, उनको भाव से साथ नहीं पा सकते। ऐसे जन के हृदय की विकलता कम नहीं हो पाती। देख, सद्‌गुरु से मिलन उनके भावों को पाने से ही हो सकता है। जिस दिन उनके समीप बैठकर तेरे हृदय में भाव की जाग्रत होगी और जैसे-जैसे उनके भाव तेरे हृदय में उतरते जायेंगे वैसे-वैसे तू उन्हें समक्ष देख पायेगा। अन्यथा आँखों से समक्ष देखते हुए भी तू उनसे दूर ही रह जायेगा तथा उनके तन के बिछोह की पीड़ा से कष्ट पाता रहेगा।

६१४ कल्पना के घोड़े दौड़ाने वाला—चुप क्यों होता? वह तो गाता गया, चिल्लाता गया। कोई सुने या न सुने।

ऐ प्राणी! 'ईश्वर' कल्पना का विषय नहीं। कल्पना द्वारा ऊँची-ऊँची

उड़ान भर कर ईश्वर के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है, बहुत कुछ गाया भी जा सकता है किन्तु वह आवाज हृदय की नहीं होती अतः किसी हृदय में जाकर स्पर्श भी नहीं करती। किन्तु कल्पना करने वाला इसपर क्यों ध्यान देने लगा। वह तो ईश्वर के नाम पर चिल्लाता जाता है, गाता जाता है—भले ही कोई उसकी बातें सुने या न सुने। अरे पगले! अब भी समय है, तू अब भी चेत जा और हमेशा ईश्वर के लिये वे ही बातें कह जो तेरे हृदय की हों तथा जिनसे तुझे रस मिलता हो। जब तू रस से सराबोर होकर उन बातों को अन्य के सम्मुख रखेगा तब उनका हृदय भी झूम उठेगा क्योंकि ईश्वर शब्दों से नहीं दिखता, प्यार भरे हृदय में प्रत्यक्ष दिखलाई देता है।

६१५ प्रीति में प्रीतम बसता है, फिर क्यों तरसता है?

ऐ प्राणी! प्यार जीवन का उपहार है। प्यार का प्रादुर्भाव जब हृदय-पटल पर हो जाता है तब जीवन सजने लगता है, जीवन में बहार आ जाती है। देख, यदि तूने प्यार के दर्शन किये हैं तो अब तुझे घबड़ाने की जरूरत नहीं और न ईश्वर दर्शन के लिये तरसने की जरूरत है। तू आज जहाँ प्यार देख पाता है वहीं कल प्रियतम प्रभु को देख पायेगा क्योंकि वह प्यार में बसता है। अतः तू प्रियतम की खोज के लिये परेशान न हो, तू प्यार के दर्शन कर। जैसे-जैसे तेरा हृदय प्यार से सजता जायेगा वैसे-वैसे तू प्रियतम प्रभु को पास देख पायेगा और जिस दिन तू प्यार ही प्यार हो जायेगा उस दिन ईश्वर तुझसे जुदा नहीं रह जायेगा अर्थात् तुझमें ही ईश्वर बस जायेगा।

६१६ सूत्र नहीं ये पुष्प हैं जो सूत्र में बिंधे हैं। भ्रमर मन अघाता नहीं इनसे।

ऐ प्राणी! इन सूत्रों (वाणियों) में उपदेश की बातें नहीं हैं, जिन भावों को पाकर हृदय कमल विकसित हुआ है वे भाव बिंधे हुए हैं। ये किसी धर्म विशेष से आवद्ध नहीं, सत्य भाव से युक्त हैं। देख, इस पुस्तक को जो केवल धर्म ग्रन्थ समझ कर पढ़ेंगे वे इससे पूरा लाभ नहीं ले पायेंगे, इसका लाभ वे ही ले पायेंगे जिनका मन भँवरे की तरह फूलों का रसपान करने का इच्छुक है एवं जिन्हें अन्य रस भाते ही नहीं। उनका मन, इन सूत्रों में जो पुष्प पिरोये हुए हैं, उसकी केवल सुगन्ध ही नहीं लेगा, सदा उन भावों के चातुर्दिक मँडराता रहेगा। इनका रसपान करता हुआ भी वह कभी तृप्त नहीं हो पायेगा क्योंकि इनमें अनन्त के अनन्त भाव हैं, इनके रस का कहीं अन्त नहीं।

६१७ किसने कहा कि बन्धन कैसे छूटे? दिल की पकड़ सब बन्धन ढीले ही नहीं कर देती, प्रेम बन्धन में बाँध भी देती है।

ऐ प्राणी! लोगों के द्वारा सुनते-सुनते तेरी यह धारणा बन गई है कि "जिन बन्धनों में मैं बँधा हुआ हूँ उन बन्धनों से छुटकारा पाया ही नहीं जा सकता" किन्तु बात ऐसी नहीं है। ऊपर चढ़ने में थोड़ा जोर लगाना पड़ता है और नीचे उतरना सहज है इसीलिये लोगों द्वारा कही हुई बातें तेरे भीतर बैठ जाती हैं। देख, दिल की पकड़ में बहुत बड़ी शक्ति होती है। जब यह पकड़ सत्य के लिये होती है तब जन्म-जन्मान्तरों के बन्धन सहज में कट जाते हैं, इतना ही नहीं, साधारण सा दिखने वाला प्राणी उस पकड़ के द्वारा ऐसे प्रेम बन्धन में बँध जाता है जो कभी छूटने वाला नहीं। वह प्रेम बन्धन ही अमर बन्धन है, वही सब बन्धनों को काटने वाला एवं आनन्द की दुनिया देने वाला है।

६१८ ज्ञान, भक्ति के गीत कैसे? 'मिलन' के प्रकृति गीत गाती। सुनो, आनन्द की वर्षा हो रही है।

ऐ प्राणी! यह प्रकृति का नियम है कि जिसे जो कुछ भी प्राप्त होता है प्रकृति उसे छिपा नहीं रहने देती, वह उसे चारों ओर बिखेर देती है। देख, तूने यहाँ आकर यदि ज्ञान का आलोक पाया है या भक्ति की सरसता पाई है तो अन्य के सम्मुख तुझे इसकी घोषणा करने की जरूरत नहीं, तू तो उस ज्ञान के आलोक तले बैठकर भक्ति का आनन्द लेता रह और उसमें इतना डूब जा कि तेरा रोम-रोम आनन्द की वर्षा से भीज जाये। ऐसे में ज्ञान, भक्ति के इच्छुक प्राणी स्वतः तेरे समीप दौड़े चले आयेंगे क्योंकि सत्य छुपता नहीं। जिस प्रकार प्रकृति फूल की सुगन्ध को वातावरण में बिखेर देती है उसी प्रकार जब व्यक्ति सत्य को धारण करता है तब प्रकृति सत्य-मिलन के गीत गाने लगती है। देख, वे गीत अन्य को ही आनन्दित नहीं करेंगे, तुझे भी ईश्वर की निकटता का अधिक आभास देंगे। उसमें डूबा हुआ तू भी प्रमुदित होता रहेगा और अन्य भी प्रमुदित होते रहेंगे।

६१९ भय न कर, बाधा मन की। मन मिला, दिल खिला।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर के हाथ की कठपुतली है एवं तेरे सभी कार्य ईश्वर

द्वारा अनुबन्धित हैं—तू आगे-पीछे की व्यर्थ कल्पना करके भयभीत न हो। देख, भय मन के लिये बाधक है। भय के कारण मन में अनेक कल्पनायें आती रहती हैं परिणाम व्यक्ति का सुख-चैन छिन जाता है, न वह ठीक से खा सकता है और न सो सकता है। अतः तू ईश्वर की दुनिया में निर्भय होकर बैठ कि तू देख पाये कि जिस समय जैसी जरूरत रहती है उस समय उस जरूरत को ईश्वर स्वतः पूरी करता है। जैसे पैदा होते ही बच्चे को माँ चाहिये तो माँ सम्मुख रहती है, दूध चाहिये तो दूध माँ के स्तन से मिल जाता है और जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे उसकी अन्य जरूरतें भी पूरी होती रहती हैं। जब तू ईश्वर के कार्यों को देख पायेगा तथा तेरा मन ईश्वर के चरण कमलों का भँवरा बन जायेगा तब तेरा दिल हमेशा खिला-खिला रहने लगेगा।

६२० बात न कर, शांत रह कर खेल देख। ये निन्दक क्या जानें कि क्या हो रहा है।

ऐ प्राणी! तू इधर-उधर की बातों में कान न लगा, यदि तू उनमें ही कान लगाये रखेगा तो तेरा बहुत सा समय उसी में बीत जायेगा परिणाम तू मिले हुए समय के लाभ से वंचित ही रह जायेगा। तू यदि सत्य मंजिल का राही है तो तू सभी स्थितियों में शान्त बने रहना तथा लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना, तभी तू एक दिन सत्य की प्राप्ति कर पायेगा। देख, जो निन्दा में लगे हैं वे सत्य को नहीं जानते क्योंकि निन्दक की दृष्टि केवल स्थूल तक रहती है, 'स्थूल से परे भी कुछ भाव होते हैं' यह उनकी समझ के परे होता है। अतः तू अपने कीमती समय को व्यर्थ की बातों में न गँवा, तू शान्त रहकर प्रकृति के खेल देख तथा आगे बढ़ता चल कि तू तेजी से आगे बढ़ पाये और एक दिन सत्य को जान पाये।

६२१ धर्म एक मान्यता है। एक को माने, सब धर्मों का समन्वय हुआ।

ऐ प्राणी! धर्म बुद्धि से समझने का विषय नहीं, धर्म एक मान्यता है। जब धर्म के लिये हृदय में आस्था हो जाती है और एक ईश्वर को मानकर व्यक्ति किसी एक पथ पर आगे बढ़ता है तब धर्म का मर्म उसके सम्मुख आने लगता है। वह देख पाता है कि 'सब धर्मों का लक्ष्य एक ईश्वर को पाना है'। तब अनेक धर्म का विभेद भी उसके सम्मुख नहीं रह जाता, वह सभी

धर्मों में एक ईश्वर को देख पाता है। देख, धर्म पथ पर चलकर भी यदि विचार शान्त न हो पायें, कण-कण में व्यक्ति ईश्वर को न देख पाये तो वह अभी कर्म पथ पर है, धर्म पथ पर नहीं। धर्म पथ तो विचारों का झगड़ा मिटाकर एक से मिलता है, उस एक से जो सर्वत्र व्याप्त है।

६२२ घृणा प्रभु के प्यारों से ? तो शान्ति कहाँ ?

ऐ प्राणी ! घृणा जीवन को नरक बना देती है, इसे अपनाकर व्यक्ति भीतर ही भीतर कुढ़ता रहता है। यह जब प्रभु के प्यारों के लिये भी आ जाती है तब तो प्राणी की रक्षा ही सम्भव नहीं होती। ऐसे में वह तीनों लोकों में चक्कर काटकर भी शान्त नहीं हो सकता। जब किसी भी तरह उसके भाव बदलते हैं तभी वह चैन पाता है। अतः तू भूल से भी प्रभु के प्यारों के प्रति घृणा न अपना बैठना अन्यथा तेरा पल-पल भारी हो जायेगा, तू सोते-उठते-बैठते कैसे भी चैन नहीं पायेगा। देख, प्रभु के प्यारों के प्रति तू सदा नतमस्तक होना, उन्हें सदा हृदय में स्थान देना और यदि उनके भावों को ग्रहण न भी कर सके तब भी उनके भावों की कद्र करना—ऐसे में तेरा हृदय स्वच्छ होता रहेगा, तू किसी भी गलत कार्य व भाव को नहीं अपना पायेगा और यदि संयोग हुआ तो एक दिन ऐसा आयेगा जब वे भाव तेरे अपने भी बन सकेंगे।

६२३ याद में भी बाधा ? फिर शान्ति कहाँ ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर की याद ईश्वर से प्रेम की प्रतीक है। यदि ईश्वर को याद करते समय मन इधर-उधर दौड़े अर्थात् याद में बाधा आये तो यही कहना होगा कि अभी ईश्वर से प्रेम नहीं हुआ है। देख, जो प्रिय लगते हैं उन्हें याद करना नहीं पड़ता, उनकी याद आती है। ऐसे ही ईश्वर से भी जब तेरा प्रेम हो जायेगा तब तुझे ईश्वर को याद करना नहीं पड़ेगा, ईश्वर के लिये तेरे हृदय में स्थान बन जायेगा। अतः तू ईश्वर को याद करने की चेष्टा न कर, तू ईश्वर से प्रेम बढ़ा और जिस साथ को अपनाकर ईश्वर से प्रेम बढ़े, तू वह संग साथ ग्रहण कर कि याद सदा बनी रहे, याद में बाधा न आये—तभी तू सच्ची शान्ति पा सकेगा।

६२४ प्यार कर स्वयं को कि यम नियम की साधना स्वतः सिद्ध हो जाये।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर को यम नियम द्वारा नहीं पा सकेगा अर्थात् इन्द्रियों

इन्द्रियों को वश में करके या कुछ नियम उपनियम अपनाकर ईश्वर को वश में नहीं कर सकेगा। देख, ईश्वर को अपना बनाने का रास्ता प्यार है। ईश्वर से प्यार करने के लिये तुझे स्वयं से प्यार करना होगा अतः वे भाव जो हृदय में कष्ट पहुँचाने वाले हैं उनसे तुझे बचना होगा और वे भाव जो हृदय को उल्लसित करने वाले हैं उनसे तुझे जुड़ना होगा। जब तेरा हृदय तेरी प्यारी भरी देख-रेख से शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल हो जायेगा तब तू ईश्वर को तेरे अति निकट देख पायेगा। उस दिन इन्द्रियों को वश में करने के लिये तुम्हें चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, सभी भाव-विचार व कार्य स्वतः ईश्वर मिलन में तेरे सहायक बनेंगे।

६२५ कल्पित प्यार चाहे राधा का हो या कृष्ण का, कल्पित है। कर और देख, खेल ही अनोखा है।

ऐ प्राणी! तू राधा कृष्ण के प्रेम की बातें करके प्रेम की कल्पना न कर। कल्पना कल्पना है, वह चाहे किसी के लिये भी क्यों न हो। कल्पना का आनन्द दूसरा होता है और प्रत्यक्ष का आनन्द दूसरा रहता है। कल्पना बहुत थोड़े को भी ज्यादा मान सकती है और बहुत को भी थोड़ा मान सकती है अतः तू जितना भी पा यथार्थ में पा। यथार्थ में तू जितना भी पायेगा, वही तेरा अपना होगा। देख, जब यथार्थ में राधा के भाव तेरे हृदय पटल पर होंगे तभी कृष्ण तेरे रोम-रोम पर आच्छादित होगा, उस दिन तेरा जीवन प्रेम के सिवा कुछ नहीं रह जायेगा। अतः कृष्ण को पाने के लिये तू राधा का प्यार (भाव) ग्रहण कर कि 'कृष्ण क्या है और प्रेम में कैसी अवस्था होती है' इस अनोखे खेल को तू प्रत्यक्ष देख पाये।

६२६ प्यार दिल का या शरीर का? प्यार? यार ही बना देता है।

ऐ प्राणी! प्यार बाहरी किन्हीं कारणों से नहीं होता, वह अकारण ही दिल में जगह बनाने लगता है—यथार्थ में प्यार वही होता है। बाहरी किन्हीं कारणों (रूप, गुण आदि) से होने वाला प्यार प्यार नहीं है, वह तो स्थूल का स्थूल के प्रति लिंग विभेद के कारण खिंचाव होता है। देख, शरीर का प्यार स्थायी नहीं क्योंकि शरीर ही स्थायी रहने वाला नहीं। अतः तू शरीर के आकर्षण को प्यार का नाम देकर धोखे में न रह जाना अन्यथा एक न एक दिन तुझे रोना पड़ेगा। प्यार अशरीरी भाव है, इसका प्रादुर्भाव जब हृदय पर होने लगता है तब प्रिय की मूर्त्ति हृदय में बस जाती है और हृदय में बसी

वह आनन्द देने लगती है। अन्य आकर्षण धीरे-धीरे छूटने लगते हैं, यहाँ तक कि अपना अस्तित्व भी खत्म होने लगता है—रह जाता है केवल प्रिय (यार) और वही श्वासों-प्राणों में रमा आनन्द देता रहता है।

६२७ **जीवन में सादगी हो—मन की।**
जीवन में आनन्द हो—आत्मा का।
जीवन में भोग हो—त्याग का।
जीवन में जीवन हो—प्रभु का।

ऐ प्राणी! श्वाँस लेने का नाम ही जीवन नहीं, वही जीवन जीवन कहलाने के योग्य है जिसे देखकर आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा जीवन उनका होता है जहाँ मन की सादगी रहती है। मन की सादगी स्थायी सादगी है, इसमें कृत्रिमता नहीं रहती, स्वाभाविकता रहती है और स्वाभाविकता में सहज आकर्षण होता है। देख, जीवन से आनन्द भी वे ही पाते हैं जिनका आत्मा से योग हो गया है। आत्मा अजर, अमर है। व्यक्ति जब आत्मा पर ही शरीर को ठहरा हुआ देख पाता है तब शरीर रहते वह भाव पा जाता है जो शरीर जाने पर भी मिटने वाला नहीं। जीवन में भोग का आनन्द भी वे ही ले पाते हैं जिन्होंने त्याग का सुख पाया है। त्याग में जो सुख (भोग) है उसे त्यागी ही जान सकता है। स्थूल की बड़ी से बड़ी उपलब्धि भी जो सुख नहीं दे सकती उस सुख की उपलब्धि त्याग से होती है। यथार्थ में त्यागी ही सच्चा भोगी है। किन्तु ऐसा जीवन उनका ही होता है जिनके जीवन का परम लक्ष्य प्रभु को पाना है। जब जीवन प्रभु का बन जाता है तब सभी सद्भावों का आगमन हृदय में होने लगता है और ऐसा जीवन ही जीवन कहलाने के योग्य होता है।

६२८ अपराध मेरा कि तेरा, क्यों पश्चाताप अपनाया? प्रेम पर विश्वास नहीं?

ऐ प्राणी! जीवन से दुःखी वे होते हैं एवं पछताना उन्हें पड़ता है जो प्रेम पर विश्वास नहीं करते। देख, प्रेम से ही ईश्वर को सन्निकट पाया जा सकता है। प्रेम पर यदि विश्वास नहीं तो अनेक साधन करने के पश्चात् भी ईश्वर को सम्मुख नहीं देखा जा सकता। ऐसे में जीवन के अन्तिम क्षणों में पश्चाताप ही पल्ले पड़ता है एवं जीवनकाल में भी व्यक्ति सुखी नहीं रहता।

यदि व्यक्ति इस पश्चाताप व दुःख का दोषारोपण ईश्वर पर करे तो यह उसकी नासमझी है क्योंकि ये कष्ट ईश्वर प्रदत्त नहीं, प्रेम पर विश्वास के अभाव में स्वयं द्वारा संकलित हैं। यदि प्रेम का महत्व उसने जाना होता तो उसकी दुनिया ही दूसरी होती, वह मौज की दुनिया में जीता तथा आनन्द से जीवन यापन करता।

६२९ न राज तो नाराज। न स्वराज्य तो नाराज, न जाना राज (रहस्य) तो नाराज। मिला ताज अब क्यों नाराज ?

ऐ प्राणी! जीवन से असन्तुष्ट (नाराज) वे रहते हैं जो शरीर को ही कर्त्ता मानते हैं एवं जिनकी 'मैं' की खुराक पूरी नहीं होती। उनकी यह नाराजगी 'स्व' को जानने के अभाव में है। यदि वे स्व का परिचय पा जाते एवं स्व के राज्य को जान पाते तो देख पाते कि जो कुछ हो रहा है वह स्वतः हो रहा है। तब रहस्य की बहुत सी बातें उनके सम्मुख स्पष्ट हो जातीं, वे कर्त्तापन के अभिमान से कष्ट नहीं पाते। देख, जीवन की सार्थकता ईश्वर की शरण पाने में है। सन्त के समीप बैठकर व्यक्ति शरणागति के भाव पाता है एवं जीवन को श्रेष्ठ देख पाता है। सन्त उसे भाव का ताज पहना देते हैं और तभी वह अपने आपको भाग्यशाली नर देख पाता है। जीवन से उदासीनता भी उसकी तभी खत्म होती है, वह प्रभु की दुनिया में बैठा मौज मनाता है।

६३० अरे तू भार नहीं, गले का हार है।

ऐ प्राणी! तू अपने आपको बोझ न मान क्योंकि तू पृथ्वी पर बोझ बढ़ाने नहीं आया है। तू सब प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी है एवं ईश्वर का दूसरा रूप है—तू यहाँ बोझ हल्का करने आया है। किन्तु अपने रूप को भूल जाने के कारण तू सदा रोता रहता है। देख, दिल दिमाग के बोझ को हल्का करने का एवं अपने रूप को पहिचानने का स्थान सत्संग है। जिस दिन संयोग से तू सत्संग पा जायेगा उस दिन से तेरे दिल का बोझ कम होने लगेगा और तू सत्य की ओर उन्मुख होने लगेगा। अतः अपने रूप को पहिचानने के लिये तू सत्संग कर अर्थात् वह साथ ग्रहण कर जहाँ बैठकर तेरी वृत्तियाँ शान्त होने लगें तथा तू अपनी ओर देख सके। वहीं बैठकर तू हल्का-फुल्का हो पायेगा और एक दिन अपने रूप को पहिचान पायेगा।

६३१ दाता भिखारी ? प्यार ऐसा ही है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर दाता ही नहीं, भिखारी भी है। वह सबको सब कुछ देने वाला है किन्तु प्यार के लिये तो वह भी तरसता रहता है। प्यार ऐसा ही है यह सबको आकृष्ट करता है। सब चीजों से अनजान बच्चा भी इसे पहिचानता है तथा इसी को पाकर बढ़ता है। देख, तू ईश्वर को कार्यों द्वारा नहीं रिझा सकेगा, न धन-दौलत द्वारा किये गये हवन यज्ञ आदि से और न पूजा के नाम पर की गई अन्य क्रियाओं से—उसे तू प्रेम से ही पा सकेगा। तू प्रेम पायेगा भी उसी के द्वार पर और उसे रिझा भी पायेगा प्रेम के ही द्वारा। अतः तू प्यार पाने के लिये दिल से आह्वाहन कर कि तू सन्त के दर्शन कर पाये। उनके समीप बैठकर तेरा हृदय प्यार से सज जायेगा और प्रिय प्रभु को तू प्यार द्वारा प्यार में ही हृदय पटल पर आच्छादित देख पायेगा !

६३२ क्रन्दन न सुन, विनोद न सुन। सुन तेरा प्राण किसे पुकार रहा है ?

ऐ प्राणी ! स्थूल जगत के प्रलोभनों में फँसकर अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में तू कभी हँसता है और कभी रोता है। ये बाहर के आकर्षण तुझे इतने अधिक बिलमाये हुए हैं कि इनसे अलग भी तेरी अपनी कोई दुनिया है—तू इसे ही भूल बैठा है। देख, तू यदि बाहर की आवाज पर ही मरता रहेगा अर्थात् कभी रोना सुनता रहेगा तथा कभी हँसना सुनता रहेगा तो तू भीतर की आवाज कभी नहीं सुन पायेगा। अतः तू शान्त होकर भीतर की आवाज सुन। इसके लिये तू भीतर की दुनिया में प्रवेश कर और तेरे प्राणों की पुकार सुन कि तेरे प्राणों को क्या चाहिये। जिस दिन तू प्राणों की पुकार सुन पायेगा तथा उसकी पूर्त्ति के लिये तत्पर हो जायेगा उसी दिन तू सच्ची शान्ति पा सकेगा अन्यथा स्थूल के पीछे भागता हुआ तू सदा रोता ही रहेगा !

६३३ मेले में झमेले में पड़ा। मेल का बेमेल देखा। शांत हो किस किस को खुश करेगा।

ऐ प्राणी ! यह संसार एक मेला है जो मेल के लिये है। यहाँ विभिन्न भाव-विचार के लोग एकत्रित हैं। यहाँ रहने वाले सब प्राणियों की आकृति में जैसे अन्तर है वैसे ही प्रकृति में भी अन्तर है। परिणाम मेल के स्थान में

रहकर भी सब एक दूसरे से बेमेल हो रहे हैं। देख, इन बेमेल प्राणियों को देखकर तू मेल कराने के झमेले में न पड़ जाना। तू यदि सबको खुश करने के झमेले में पड़ जायेगा तो उनको खुश करते-करते खुद ही नाखुश हो जायेगा। अतः तू अन्य की चिन्ता न करके खुद खुश रहने का रास्ता अपना। इसके लिये तू उस एक की ओर देख जो सबका है और जिसे भूलने के कारण ही सब बेमेल हो रहे हैं। उस एक को देखकर ही तू शान्त रह सकेगा। तू जब शान्त हो जायेगा तब तेरे भाव शायद अन्य को भी भाने लगें और वे भी शान्त रहने के इच्छुक बन जायें एवं शान्ति का रास्ता अपनाकर खुश रहने लगें। अन्यथा तेरा प्रयास विफल सिद्ध होगा अर्थात् उन्हें शान्त करने की चेष्टा में तू ही अशान्त बन जायेगा।

६३४ परमात्मा ने आत्मा से कहा—अभी तो शर्म है, भ्रम है अन्तःकरण में। निरर्थक प्रार्थना क्यों?

ऐ प्राणी! आत्मा परमात्मा का मिलन केवल प्रार्थना पूजा आदि से सम्भव नहीं, उसके लिये अन्तःकरण की शुद्धि चाहिये। देख, जब तक अन्तःकरण पूर्णतया शुद्ध नहीं हो जाता अर्थात् उसमें छिपाने के लिये कुछ भी रह जाता है अथवा भ्रम के लिये स्थान बना रहता है तब तक आत्मा परमात्मा का मिलन नहीं होता। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये पूरा खाली होना आवश्यक है और खाली होने के लिये संकोच व भ्रम का पूर्णतया हट जाना आवश्यक है। अतः तू वह भाव अपना जिससे शर्म व भ्रम का निराकरण हो। उस भाव को प्रदान करने की शक्ति सद्गुरु की वाणी में है। उनकी भावभरी वाणी का साथ तेरा हृदय परिष्कृत कर देगा और तभी आत्मा परमात्मा का मिलन सम्भव होगा।

६३५ तुष्ट हुआ न पुष्ट। रुष्ट होता रहा भाग्य से भगवान से।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर रूप है, सर्व समर्थ है, अतुल सम्पदा (शान्ति, दया, क्षमा आदि सद्भाव) का स्वामी है किन्तु अपने रूप से अनजान है। स्थूल धन एक दिन खत्म हो जायेगा किन्तु तेरा धन कभी खत्म होने वाला नहीं क्योंकि वह स्थूल नहीं। देख, तू अपने धन को भूला हुआ है अतः स्थूल सहारा खोजता रहता है और जब वह मनचाहे ढंग से नहीं मिलता तब भाग्य को कोसता है। इतने से भी जब सन्तुष्टि नहीं मिलती तब तू भगवान को भी भला-बुरा कहने लगता है। अरे पगले! अतुल सम्पदा का स्वामी होते

हुए भी तू असन्तुष्ट जीवन जी रहा है—यह तेरे लिये शोभनीय नहीं। तू आज भी अपने धन को पहिचान ले कि तू अपनी शक्ति को पहिचान पाये तथा अपने रूप को जान जाये। अन्यथा तू सर्व समर्थ होते हुए भी न तुष्ट हो सकेगा और न पुष्ट हो सकेगा—सदा जीवन से असन्तुष्ट ही बना रहेगा।

६३६ उत्सव मना। शव में प्राण आ रहे हैं।

ऐ प्राणी! बाहर की उपलब्धि पर व्यक्ति हमेशा उत्सव मनाते देखा जाता है किन्तु उसका यह उत्साह स्थायी नहीं रहता क्योंकि बाहरी संग साथ ही स्थायी रहने वाला नहीं। देख, उत्सव मनाने योग्य वे भाव हैं जिनके आगमन से जीवन में नव चेतना का उदय हो। मनुष्य का जीवन उनके अभाव में मुर्दे की तरह हो रहा है, फरक केवल इतना है कि मुर्दे में श्वाँस नहीं और प्राणी श्वाँस ले रहा है। अतः तू कहीं बैठकर तेरे अन्तर में भावों का जागरण देख पाये एवं तेरा दिल जिन्दा देख पाये तो यह तेरी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी—यथार्थ में उसी दिन तूने प्राण पाये हैं। वही दिन तेरे लिये सबसे बड़ा दिन है और वही दिन उत्सव मनाने के योग्य भी है क्योंकि तूने वह भाव पा लिया है जो कभी लौट कर जाने वाला नहीं।

६३७ प्रभात की प्रभा देखी—प्रभु न देखा। सन्ध्या को मिलते देखा रात्रि और दिवस में। किन्तु आत्मा परमात्मा का मिलन कब देखा? फिर क्या देखा?

ऐ प्राणी! तू प्रतिदिन प्रभात में प्रकाश के दर्शन करता है किन्तु प्रकाश फैलाने वाले को कभी नहीं देखता। जिस दिन तू उसे देख पायेगा उस दिन प्रकाश केवल बाहर नहीं होगा, तेरे भीतर भी फैल जायेगा। देख, तू प्रतिदिन सन्ध्या समय रात्रि व दिवस को मिलते देखता है किन्तु उससे भी ईश्वर मिलन के भावों को नहीं ले पाता। जिस दिन तू मिलन के भावों को ले पायेगा उस दिन आत्मा परमात्मा के मिलन को भी जान जायेगा। तब प्रियतम प्रभु ही तेरा सर्वस्व हो जायेगा, तू उसे कण-कण पर आच्छादित देख पायेगा। अन्यथा भाव की जागृति के अभाव में तू रोज सूर्योदय होते भी देखता रहेगा और सन्ध्या होते भी देखता रहेगा किन्तु न तू प्रकाश देख पायेगा और न मिलन को ही जान पायेगा—तेरा सारा समय अभाव में रोते-रोते ही व्यतीत हो जायेगा।

६३८ बच्चे उत्सुक थे ऋषि वेद पाठ करते थे। आये सन्त उन्होंने पाठ को जीवन में स्पष्ट कर दिखलाया। उत्सुकता शान्त, सन्त प्रसन्न।

ऐ प्राणी ! ऋषि मुनि स्वयं का कल्याण करने आते हैं। वे पूजा अर्चना में संलग्न हो अपना सारा समय वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन में लगा देते हैं। किन्तु सन्त का आगमन अपने लिये नहीं होता, वे बालकवत् सरल हृदय प्राणियों को जगाने के लिये आते हैं। सन्त ज्ञान-ध्यान की बातें नहीं बताते, वे भाव भरी वाणी का वर्षण उन बच्चों पर करते हैं जो सत्य के पिपासु हैं। उनकी भाव भरी वाणी से ईश्वर-मिलन के भाव स्वतः हृदय में जागृत होने लगते हैं। वेद शास्त्र में जो बातें पाई जाती हैं वे भाव उनकी वाणी के वर्षण से स्वतः हृदय में उमड़ने लगते हैं। उत्सुक प्राणी की उत्सुकता सन्त का साथ पाकर ही शान्त होती है। सन्त भी भाव का ऐसा अद्भुत प्रभाव देखकर प्रमुदित हो जाते हैं।

६३९ हँसकर प्रकृति ने पूछा—कुछ मर्म समझा? जब प्रकृति ही न जान पाया तो मर्म क्या जाने?

ऐ प्राणी ! प्रकृति रूप धारण करके सदा अपनी ओर लुभाती रहती है। सब इसके इशारे पर नाचते रहते हैं फिर भी इस रहस्य को नहीं जान पाते कि प्रकृति ने इतना मोहक रूप कहाँ से पाया है। यह प्रकृति कभी हँसाती है, कभी रुलाती है, कभी उग्र बनाती है, कभी शान्त बनाती है तब भी व्यक्ति इसे सुख-दुःख का ही नाम देता है—'ये प्रकृति के खेल हैं' इसे नहीं जान पाता। देख, प्रकृति का यह रहस्योद्घाटन तब तक नहीं होता जब तक कि प्राणी का पुरुष (प्रभु) से साक्षात्कार नहीं हो जाता। प्रभु की शरण पाकर ही व्यक्ति प्रकृति के खेल का आनन्द पाता है एवं इस मर्म से अवगत हो पाता है कि यह रंग-रंगीली प्रकृति चूँकि ईश्वर द्वारा अनुप्राणित है इसीलिये इतनी सजीव है।

६४० बहुत भ्रमण के पश्चात् भी विश्राम न ले सका तो व्यर्थ ही घूमा और कष्ट उठाया।

ऐ प्राणी ! भ्रमण हमेशा किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है। यदि भ्रमण के पश्चात् भी उद्देश्य ज्यों का त्यों बना रह जाये तो भ्रमण व्यर्थ

हो जाता है, भ्रमण से केवल कष्ट ही मिलता है। अनेक तीर्थों का भ्रमण भी ईश्वर दर्शन की प्राप्ति हेतु किया जाता है। यदि तीर्थाटन करने के पश्चात् भी दरशन सुख का आनन्द न मिले तथा बहकते जीवन में विश्राम न आये तो तीर्थाटन करना भी तन-मन की पीड़ा ही बढ़ाता है। ऐसे में तन व्यवस्थित साधनों के अभाव में कष्ट पाता है और मन प्रचुर धन-राशि अपव्यय होने से कष्ट पाता है। देख, ईश्वर-दर्शन के सम्मुख तन-मन-धन सब गौण हैं। यदि वहाँ जाकर व्यक्ति सचमुच ईश्वर दर्शन की अनुभूति पा जाता तो उसका भ्रमण बेकार नहीं होता, वह जन्म-जन्मान्तर के चक्कर से छुटकारा पा जाता अर्थात् विश्राम ले पाता।

६४१ गई इज्जत—मैं मरा। जरा सोच—गई इज्जत में मरा।

ऐ प्राणी! तेरे सभी कार्य इज्जत बनाये रखने के लिये होते हैं, इज्जत के लिये तू कुछ भी दिखावा करने को तैयार रहता है। तेरी इज्जत जिसमें कम होती है वह सत्य बात भी तू किसी के सामने स्वीकारने के लिये तैयार नहीं होता। तू समझता है कि जब इज्जत ही चली जायेगी तब जीने का क्या अर्थ रह जायेगा। अरे पगले! तू इस झूठी इज्जत के पीछे परेशान न हो, तू सत्य-पथ का पथिक बन एवं सत्य भाव ग्रहण कर तथा उन्हीं भावों के अनुसार कार्य कर। भीतर के सत्य भावों की उपेक्षा करके तू यदि केवल बाहर के कार्य सजायेगा तो समय विशेष के लिये मान-बड़ाई पा लेगा किन्तु तेरा दिल रोता रहेगा। ऐसी इज्जत बालू की भीत की तरह होगी जो किसी भी समय ढह जायेगी। अतः तू इस पर विचार कर। देख, जिस दिन तू सत्य भाव को अपना लेगा उस दिन तुझे झूठी इज्जत का ध्यान भी नहीं रह जायेगा, तू जो कुछ भी करेगा वह प्यार से करेगा। ऐसे में तू भी आनन्द पाता रहेगा तथा औरों को भी देता रहेगा—'मैं' का तुझमें सर्वथा अभाव हो जायेगा। यथार्थ में ऐसा जीवन ही जीवन कहलाने के योग्य होगा।

६४२ प्रणाम कर। प्राणों में नाम तो प्रणाम, नहीं तो शिष्टाचार ही रहा।

ऐ प्राणी! ईश्वर के सम्मुख प्रायः सभी झुकते हैं तथा अन्य को झुकने की शिक्षा भी देते हैं किन्तु झुकना यदि केवल शरीर से हो तो वह शिष्टाचार ही बन कर रह जाता है। देख, 'प्रणाम' प्रेम व श्रद्धा का प्रतीक है। प्रणाम करने के पूर्व जब तक प्रिय प्रभु की मनोहर मूर्त्ति हृदय पटल पर नहीं छा जाती

एवं श्रद्धा के भाव हृदय में नहीं उमड़ने लगते तब तक प्रणाम का आनन्द नहीं मिलता। अतः तू यदि प्रणाम का प्रतिफल देखने का इच्छुक है तो ईश्वर से प्यार कर। ईश्वर से प्रेम बढ़ाने का रास्ता हृदय की सरलता है जिसे तू सत्संग में पा सकेगा। सत्संग करते-करते जब तेरा हृदय शुद्ध, सरल व निश्छल हो जायेगा तब तू ईश्वर को प्राणों पर प्रतिष्ठित देख पायेगा और उसी दिन तू प्रणाम का भी आनन्द ले पायेगा।

६४३ बात कौन सुने, कौन माने? तू मान, कहने मानने का झगड़ा खत्म हो?

ऐ प्राणी! तूने यदि ईश्वर की महिमा जानी है तो तू ईश्वर को मानकर चल कि तेरा मानना तुझे आनन्द देता रहे। यदि तू स्वयं आनन्द लेना छोड़कर ईश्वर की बातें अन्य को सुनाने चलेगा तो तेरा बहुत सा समय अन्य का मुख देखने में ही गुजर जायेगा फिर भी तेरी बातें न कोई सुनने को तैयार होगा और न मानने के लिये तैयार होगा। जब तेरी कही हुई बातो को कहीं प्रश्रय नहीं मिलेगा तब उसका प्रतिफल 'दुःख' तुझे आ घेरेगा। अतः तू सत्य बात को भी किसी को सुनाने व मनवाने के फेर में न पड़, तू स्वयं सत्य पथ पर बढ़ कि तेरे हृदयाकाश पर आनन्द के बादल छा जायें। अब जिनके भीतर सत्य को जानने की पिपासा है वे स्वतः दौड़े-दौड़े तेरे पास आयेंगे और ऐसे लोगों के सम्मुख जब तू अपने दिल के भावों को रखेगा तब तू भी आनन्द पायेगा और वे भी आनन्द पा सकेंगे।

६४४ अभागे—भागता है कभी कर्म से, कभी धर्म से। ठहर कि स्थिति का पता चले। गति में गति कहाँ?

ऐ प्राणी! यह संसार कर्मभूमि है एवं धर्मभूमि है। तू यहाँ आकर कर्म को झंझट समझ कर कर्म से दूर न भाग और न अनेक धर्मों का झगड़ा देखकर धर्म से घबड़ा कर भाग। इनसे दूर भागकर तू कुछ भी करके शान्ति नहीं पा सकेगा। देख, तू शान्त रहकर कर्म व धर्म के मर्म को जान। शान्त अवस्था में तू देख पायेगा कि कर्म करते रहना आवश्यक है और धर्म को धारण करना उससे भी अधिक आवश्यक है। धर्म किसी पंथ विशेष को अपनाने का नाम नहीं, धर्म वह है जो हृदय में प्रतिष्ठित होकर सत्य से जोड़ता रहे एवं असत्य से बचाता रहे। जब धर्म को धारण करके तू कर्म करेगा तब कर्म तेरे लिये बन्धन नहीं रह जायेंगे, वे भी सत्य प्राप्ति में तेरे सहायक बनेंगे।

यदि तू धर्म, कर्म से घबड़ा कर भागता ही रहेगा तो इनकी उपादेयता को कभी नहीं जान पायेगा—तू जहाँ खड़ा है वहीं का वहीं खड़ा रह जायेगा।

६४५ वस्तु, विषय पर भी अमृत की किरणें पड़ीं। वह भी आकर्षक बन गया। पाप पुण्य क्यों खोजते हो।

ऐ प्राणी! इस संसार में कुछ भी खराब नहीं, खराब वह दृष्टि है जो दूषित भावों से युक्त है। जब दूषित भावों को प्रश्रय देकर किसी भी वस्तु विषय को देखा जाता है तब दोष दृष्टि में नहीं दिखलाई देता, वस्तु विषय में दिखलाई देता है। अतः तू वस्तु, विषय में पाप पुण्य न खोज, न उन्हें पकड़ने व छोड़ने की ही चेष्टा कर, तू वह भाव ग्रहण कर जो अमर है। तू जब अमर भावों की प्राप्ति का इच्छुक बन जायेगा तब वे भाव जो गुमराह करने वाले हैं उनसे तू स्वतः बच जायेगा एवं अमर भावों से तेरा हृदय सजता चला जायेगा। देख, अमृत की किरणें जिस पर भी पड़ती हैं उसे ही सजा देती हैं—अमर भावों को पाकर तेरा विश्व भी सुनहला हो जायेगा।

६४६ खुद अच्छा है तो अन्य बुरा क्यों मानता है? सभी रंग रंग हैं। काले सफेद तो तू देखता है।

ऐ प्राणी! तेरी दृष्टि से तुझे जो भाव-विचार व कार्य ठीक लगते हैं तू उन्हें ठीक समझता है और जो तेरी दृष्टि में उचित नहीं जँचते उन्हें तू बुरा कहता है। यही कारण है कि तू खुद को अच्छा समझता है और अन्य को बुरा कहता है किन्तु तेरी यह धारणा ठीक नहीं है। देख, जैसे सभी रंग रंग होते हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न प्रकृति भी ईश्वर द्वारा रचित विभिन्न रंग हैं अतः तू इन्हें 'भला-बुरा' नाम न दे। तू उस रंगसाज की ओर देख जिसने इन्हें रंग दिया है कि तू इन रंगों का खेल देख पाये और तेरा संसार रंग-रंगीला बन जाये। ऐसे में तुझे केवल तू ही नहीं भायेगा, सब भाने लगेंगे। तेरी दुनिया बड़ी हो जायेगी क्योंकि तूने आज उसको देखा है जिसने सम्पूर्ण विश्व को बनाया है।

६४७ नाम लेने लगा तो काम आया। काम में नाम क्यों नहीं आता? यही तो खेल है, जो शान्त नहीं होता।

ऐ प्राणी! स्थूल जगत में रहते-रहते तू स्थूल से इतना आबद्ध हो गया

कि जब तू सूक्ष्म भावों का दिग्दर्शन करना चाहता है अर्थात् ईश्वर का नाम लेने के लिये बैठता है तब भी स्थूल आकर्षण (काम) तुझे घेरे रहते हैं। किन्तु जब तू स्थूल के पीछे भागता रहता है तब तुझे ईश्वर की याद बिल्कुल नहीं आती। अरे पगले! अन्तर वाले को भुलाकर तू स्थूल भोगों से कभी तृप्त नहीं हो सकेगा क्योंकि सूक्ष्म पर ही स्थूल टिका हुआ है। अतः पहले तू अन्तर वाले को जान, तब उसकी सृष्टि का उपभोग कर कि काम तेरे लिये बन्धन न बने, तू काम करते हुए आनन्द में रह पाये। जब तक तू अन्तर वाले की उपेक्षा करेगा तब तक ईश्वर का नाम रात-दिन लेने पर भी तेरा ध्यान अन्यत्र (काम में) लगा रहेगा।

६४८ उधार और उद्धार की वार्ता क्यों? नगद में प्रत्यक्ष। उधार में उद्धार की भावना है।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर के नाम पर (पूजा-पाठ, दान-धर्म आदि) कुछ कार्य इस भावना से करता है कि इनको करने से मरते समय तेरा उद्धार हो जायेगा अथवा अगले जन्म में तुझे सुख मिलेगा। अरे पगले! ईश्वर का नाम उधार के लिये नहीं होता, उधार की कल्पना से व्यक्ति धोखे में ही रह जाता है। अतः तू भविष्य में पाने की कल्पना को छोड़ कर आज में जी क्योंकि ईश्वर का नाम आज ही आनन्द देने वाला है। देख, जब तू प्रसन्न-वदन होकर प्यार से ईश्वर का नाम लेगा तब तू उसका प्रतिफल 'मानसिक शान्ति' हाथों हाथ पायेगा, इतना ही नहीं, तेरा हृदय सुललित भावों से सजने लगेगा एवं तू सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर को देख पायेगा। अन्यथा तू उद्धार की भावना को कल्पना में संजोये ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य ही करता रह जायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

६४९ मैं भी जाना, मन भी पहचाना। हूँ, को जाने तो रहस्योद्घाटन हो।

ऐ प्राणी! शरीर का खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना आदि देखते देखते तू शरीर को ही "मैं" कहने लगा एवं शरीर से ही जुड़ता चला गया और मन के अनेक खेलों को देखते देखते तू मन को भी खूब पहचानने लगा। किन्तु वह कौन है जो पुकारने पर 'हूँ' कह कर उत्तर देता है, तू उसे नहीं जानता। देख, जिस दिन तू उस उत्तरदाता को जान जायेगा उस दिन

बहुत सी रहस्यपूर्ण बातें तेरे सम्मुख स्पष्ट हो जायेंगी। उस दिन 'इस शरीर को चलाने वाला कौन है' तू इसे जान पायेगा। उस दिन से तेरा 'मैं' का सम्बोधन शरीर के लिये नहीं होगा, उस गति देने वाले के लिये होगा अर्थात् वह गति देने वाला तुझसे अलग नहीं रह जायेगा, तू उसके साथ का सदा आनन्द पाता रहेगा।

६५० खटमल खून चूस रहा था, मनुष्य गालियाँ दे रहा था। खटमल ने कहा—मैं तो शरीर को ही कष्ट देता हूँ और तुम तो तन, मन में आग लगा कर घूम रहे हो।

ऐ प्राणी ! गन्दगी के कारण जब छोटे-छोटे कीड़े (खटमल) एकत्रित हो जाते हैं और वे खून चूसने लगते हैं तब वे तुझे बुरे लगते हैं। देख, ये खटमल तो केवल शरीर को कष्ट देते हैं किन्तु तूने हृदय की गन्दगी के कारण जो खटमल (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) पाल रखे हैं वे तेरे तन मन दोनों में आग लगाये हुए हैं। अतः तू शरीर को ही प्रधान न जान, तू हृदय में एकत्रित हो रही गन्दगी से बच। देख, जैसे सफाई का ध्यान जब हो जाता है तब गन्दगी रह नहीं सकती वैसे ही तू जब शान्ति सन्तोष से जीवन व्यतीत करने का इच्छुक होगा तब ये षट मल भी तेरे समीप ठहर नहीं पायेंगे, स्वतः लौटकर चले जायेंगे। अतः तू हृदय की स्वच्छता का उपासक बन कि तू शान्ति सन्तोष के दर्शन कर पाये, इतना ही नहीं, ईश्वर को भी तू हृदय पटल पर आच्छादित देख पाये।

६५१ युगों तक बातें सुनीं, फल ? बातें बनाने लगा। स्थिति तो तब न होती जब केवल बातें न होतीं।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की बातें ईश्वर के बारे में बौद्धिक ज्ञान देने के लिये नहीं होतीं, हृदय परिवर्तन के लिये होती हैं। बातों की गहराई में न जाकर एवं उनसे भाव न लेकर केवल उन्हें धार्मिक चर्चा समझ कर सुन लिया जाये तो बातें सुनते-सुनते एक दिन सुनने वाला भी बहुत सी बातें करने लग जाता है किन्तु उसका जीवन वैसा नहीं बन पाता। देख, ईश्वर की दुनिया सच्ची दुनिया है, उस दुनिया में रहने वाला कल्पना में नहीं जीता, यथार्थता में जीता है। उसकी दुनिया भीतर-बाहर से एक जैसी होती है, वह 'ईश्वर है' इस अनुभूति को भी कल्पना के आधार पर नहीं कहता। अतः ईश्वर के नाम पर

तू जो कुछ सुनता है उसका भाव पा कि सुनी हुई बातों के अनुसार तेरी स्थिति बन जाये अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें करने लगेगा किन्तु ईश्वर के सामीप्य के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

६५२ विद्वानों की कलम चली ग्रन्थ बने। अनुभव अल्प, कल्पना अधिक। भक्तों ने पद रचे। प्राणों में नव सञ्चार हुआ, दिल का क्या कहना?

ऐ प्राणी! विद्वान कल्पना के आधार पर ईश्वर के बारे में बहुत कुछ लिखते हैं, बड़े-बड़े ग्रन्थ रच डालते हैं। उनके ग्रन्थों में अनुभव की बातें अल्प होती हैं, कल्पना का अंश अधिक रहता है। उन रचनाओं के द्वारा उन्हें नाम प्रसिद्धि तो खूब मिल जाती है किन्तु ईश्वर की अनुभूति में जो भाव का वर्षण होता है, उससे वे वंचित ही रह जाते हैं। देख, भक्त कल्पना नहीं करता, वह ईश्वर के चरणों पर अपना जीवन न्योछावर करता है परिणाम उसके प्राणों में नव चेतना जागृत हो जाती है। प्राणों का वह जागरण ही पद बन कर उसके मुखारविन्द से प्रवाहित होकर बहने लगता है। वे पद चूँकि व्यक्ति को रिझाने के लिये नहीं रहते अतः उन्हें सुनकर वह भी मस्त हो जाता है और जो उन्हें सुनता है वह भी मस्ती पाता है।

६५३ क्यों भूलता है कि तेरा कौन है? समीप से अति समीप प्राणों की आवाज अधिक सुनता है।

ऐ प्राणी! तू कभी अकेला नहीं। ईश्वर तेरे प्राणों-श्वासों से भी अधिक करीब है एवं सदा तेरे साथ है। वह तेरे अन्तर में उठती हुई छोटी से छोटी बात को भी सुनता रहता है। यदि तू उस अज्ञात साथी के साथ को भूल जायेगा तो अनेकों को अपना मानने के पश्चात् भी एक दिन तू देख पायेगा कि तेरा अपना कोई नहीं है। जो तुझे साथी से लगते हैं एवं तेरे इर्द-गिर्द तू जितना भी पसारा देख पाता है, वह सारा का सारा तुझे कुछ अवधि के लिये मिला है। देख, ये बाहर के सहारे केवल शरीर तक तेरा साथ दे पायेंगे क्योंकि इनकी पहुँच स्थूल तक ही है। अतः जो तेरा है तथा जिसकी पहुँच तेरे प्राणों तक है—तू उस साथी को पहिचान एवं उससे प्रेम बढ़ा कि तू कभी स्वयं को अकेला न पाये।

६५४ चिन्ह मानें मांगलिक अमांगलिक। मंगल तभी जब सत्संग हो।

ऐ प्राणी! तू कई चिन्हों को शगुन की दृष्टि से मांगलिक अमांगलिक मानता आया है अतः मांगलिक चिन्हों को देख कर खुश हो जाता है और अमांगलिक को देखकर अनिष्ट की आशंका से घबड़ाने लगता है। देख, इन चिन्हों के संकेत के अनुसार तू यदि कुछ पा भी लेगा तो उससे तेरा मंगल होने वाला नहीं क्योंकि मंगल स्थूल उपलब्धि से नहीं होता। तेरा मंगल सत्संग के द्वारा सम्भव हो सकता है क्योंकि सत्संग सत्य भाव से जोड़ती है और असत्य (स्थूल) के बन्धन तोड़ती है। सत्संग पाकर व्यक्ति की बन्द आँखें खुलने लगती हैं परिणाम वह मंगलकारी कार्यों को ही अपना पाता है— जो रास्ते अमंगल की ओर ले जाने वाले हैं उसकी ओर उसका एक कदम भी नहीं बढ़ पाता।

६५५ भय रोग, भव रोग की दवा? भाव।

भूमिष्ठ होते ही प्राणी अभाव से घिरने लगता है और उसी अभाव के कारण वह जिन्दगी भर रोता रहता है। अभाव की पूर्ति के लिये वह अनेक चेष्टायें करता है—वस्तु-व्यक्ति, धन-जन, मान-सम्मान आदि बटोरता है, संसार की अधिक से अधिक चीजें अपनी बनाने की चेष्टा करता है फिर भी शान्त नहीं हो पाता क्योंकि उसे सदा भय बना रहता है कि मुझे मिला हुआ धन-जन कभी मुझसे बिछुड़ न जाये। ऐ प्राणी! जब तक तू अभाव से घिरा हुआ है तब तक न भय से छुटकारा पा सकेगा और न तेरी वस्तु-व्यक्ति की भूख ही शान्त हो सकेगी। तू यदि इनसे छुटकारा पाना चाहता है तो तू भाव में आ। भाव तुझे सद्गुरु की वाणी से मिलेगा। उनकी भाव भरी वाणी तेरे हृदय में भाव की वर्षा कर देगी। जब भाव तेरा अपना धन होगा तब अभाव तेरे समीप ठहर नहीं पायेगा जैसे प्रकाश के आगमन पर अन्धेरा नहीं टिक पाता। उसी दिन निर्भय विचरण करता हुआ तू संसार का आनन्द ले पायेगा।

६५६ चर्चा में धर्म कर्म रह गया। शर्म नहीं आती।

ऐ प्राणी! ईश्वर की चर्चा धर्म की गुत्थी सुलझाने एवं कर्म के मर्म को जानने के लिये की जाती है। यदि धर्म, कर्म उपेक्षित ही रह जायें और व्यक्ति

केवल बातें बनाने में ही रह जाये तो वह अपने आपको बहुत बड़ा धार्मिक समझ सकता है किन्तु वास्तव में वह अभी धर्म से बहुत दूर है। देख, धर्म धारण करना केवल कार्यों द्वारा सम्भव नहीं क्योंकि धर्म के कार्य नहीं होते, भाव होता है। जब धर्म के भाव हृदय में प्रतिष्ठित होते हैं तब व्यक्ति धर्मच्युत करने वाले कोई भी कार्य नहीं कर पाता अर्थात् उसके सभी कार्यों में धर्म निहित रहता है। जो धर्म का सहारा लेकर भी केवल बातें बनाने में ही रह जाते हैं उनके लिये यह शर्म की बात है कि वे धर्मपथ पर चलकर भी गुमराह हो रहे हैं। उनका भला इसी में है कि वे अहंकारशून्य होकर सद्गुरु के चरणों के सहारे धर्म, कर्म के मर्म को जानने की इच्छा रक्खें।

६५७ क्या बार-बार समर्पण की बातें करता है? प्रण कर कि सम ही में समाऊँ। न आऊँ न जाऊँ।

ऐ प्राणी! ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में 'भाव' प्रधान है, बिना भाव के ईश्वर-मिलन के लिये कही गई बड़ी से बड़ी बातें भी विशेष अर्थ नहीं रखतीं। अतः तू बार-बार समर्पण की बातें न कर, तू भाव प्राप्त कर कि ईश्वर तेरा अपना बन जाये। जब ईश्वर तेरा अपना बन जायेगा तब तेरी आँखों के सामने एक ईश्वर ही रह जायेगा और समर्पण के भाव तेरे हृदय में स्वतः उमड़ने लगेंगे। अब भाव भरी वाणी से तू ईश्वर के सामने वचनबद्ध हो कि "हे प्रभो! मैं तेरा हूँ और तेरा ही रहूँगा। तू मेरा हृदय अपने भावों से सजा दे कि मैं तुझमें मिलकर एक हो जाऊँ, तुझसे अलग मेरा अस्तित्व ही न रह जाये। जब तक आकांक्षा है तब तक आने जाने का भी चक्कर है, जिस दिन तू ही सर्वस्व होगा उस दिन इस चक्कर से भी छुटकारा मिल जायेगा—रह जायेगा केवल तू और तेरी ओर देखते हुए मैं सम भाव का आनन्द पाता रहूँगा"।

६५८ युगों की गिनती कैसी? न तू बदला न मैं। फिर भ्रम क्यों?

ऐ प्राणी! युग परिवर्तन उनके लिये होता है जो प्रकृति में रमण करते हैं अर्थात् युग के साथ बदलते रहते हैं। जिनका जीवन सत्य के लिये है उन पर युग का प्रभाव नहीं देखा जाता। वे जिस युग में भी आते हैं उनके लिये उसी समय सतयुग रहता है। अतः तू युगों के चक्कर में न पड़, तू ईश्वर

की शरण ग्रहण कर। जब तू ईश्वर की शरण पा जायेगा तब देख पायेगा कि परिवर्तन प्रकृति में है, प्रभु में नहीं—प्रभु को भूल जाने के कारण ही तू भ्रम में पड़ा हुआ है। जिस दिन ईश्वर की याद ताजा हो जायेगी उस दिन तेरे जीवन का अन्धेरा खत्म होने लगेगा और भ्रम के लिये तेरे समीप थोड़ा भी स्थान नहीं रह जायेगा। तू देख पायेगा कि ईश्वर कण-कण में समाया हुआ है, स्थूल में आबद्ध होने के कारण तूने ही उससे मुख मोड़ रक्खा है और दोष युग में दिखलाता है। जिस दिन तू उसकी ओर देखने लगेगा उस दिन न युग तुझे बाँधेगा और न भ्रम सम्मुख रहेगा—रहेगा केवल ईश्वर, वही तेरा सर्वस्व होगा।

६५९ सहज भाव को सहज समझ उपहास करने लगा। सहज को जानना भी सहज नहीं। महज बातें हैं।

ऐ प्राणी! ईश्वर को पाने के लिये जप, तप, ध्यान, धारणा आदि की जरूरत नहीं, अपनापन की जरूरत है। मां को बच्चे के लिये कभी ध्यान लगाना नहीं पड़ता, उसे बच्चे का ध्यान सहज ही रहता है। ईश्वर को पाने के लिये भी ऐसा सहज भाव ही चाहिये। किन्तु इतनी सहजता से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है यह व्यक्ति के लिये अविश्वसनीय हो जाता है अतः वह सहजता का उपहास करता है। देख, कठिन साधना करनी सहज है किन्तु सहज भाव को बिना भावयोगी की कृपा के पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। बिना सहज भाव के व्यक्ति ईश्वर के बारे में कल्पना के आधार पर महज बातें बना सकता है किन्तु ईश्वर की हर समय की अनुभूति नहीं पा सकता। अतः तू भाव का उपहास न कर, भावयोगी के चरणों में बैठकर भाव पा कि तू सहजता से ही ईश्वर को सम्मुख देख पाये।

६६० ब्रह्मा की पूजा की जिसका मन्दिर नहीं। विष्णु की आराधना थी लक्ष्मी के लिये। किन्तु शिव का कल्याण मन्त्र कब जाना?

ऐ प्राणी! ब्रह्मा को सृजनकर्त्ता, विष्णु को पालनकर्त्ता एवं शिव को कल्याणकर्त्ता कहा गया है। व्यक्ति सृजनकर्त्ता के रूप में ब्रह्मा को मानता है फिर भी उसे हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित नहीं कर पाता, स्वयं ही कर्त्ता बन बैठता है और इसीलिये ब्रह्मा के मन्दिर नहीं पाये जाते। अब स्वयं को कर्त्ता जानने के कारण भरण-पोषण के लिये वह पालनकर्त्ता विष्णु की अराधना करता

है। देख, जो मां के गर्भ में भी अज्ञात रहकर रक्षा करता है उसी विष्णु से व्यक्ति रक्षा के निमित्त धन की याचना करता रहता है, प्रेम से उसे याद नहीं कर पाता। यही कारण है कि तन, धन पाकर भी उसका मन छटपटाता रहता है। उसकी यह छटपटाहट तब तक नहीं मिटती जब तक कि वह शिव की स्मृति नहीं पा जाता। देख, कल्याण करने वाला शिव के समान कोई दूसरा नहीं। जब तक व्यक्ति भोले-भाले शिव की शरण नहीं पा जाता तब तक वह भटकता ही रहता है। अतः तू उस शिव (ईश्वर) को पहिचान जो अनेक रूपों में तेरी देखभाल कर रहा है—ब्रह्मा रूप में तेरा सृजन करता है, विष्णु रूप में पालन और शिव रूप में कल्याण करने वाला है—तभी तू सच्ची शान्ति पा सकेगा।

६६१ कौतुकी सृष्टि में कुछ सिद्धियाँ देखीं, फूल कर कुप्पा हो गया। जानता नहीं? यहाँ कौतुक ही कौतुक है।

ऐ प्राणी! यह संसार कौतुकों से भरा है, यहाँ पग-पग पर कौतुक है किन्तु दिन-रात इनके बीच रहते-रहते तेरा इनमें ध्यान ही नहीं जाता। देख, इसी संसार में तू जब किसी सिद्ध पुरुष के द्वारा कुछ चमत्कारिक कार्य देखता है तब फूला नहीं समाता और आश्चर्यचकित हो उन्हीं में खो जाता है। अरे पगले! चमत्कारों से तो यह सृष्टि भरी पड़ी है फिर तू मनुष्य द्वारा दिखाये गये कुछ चमत्कारों को ही प्रधानता क्यों देता है? देख, जिसने इस कौतुकी सृष्टि का सृजन किया है और इन सिद्ध पुरुषों को भी जन्म दिया है तू उसकी ओर देख कि ये छोटे-मोटे चमत्कार तेरे आकर्षण के केन्द्र न बनें, तू पग-पग पर ईश्वर का कौतुक देख पाये और तेरी सृष्टि आनन्द से भर जाये।

६६२ किसी का नाम लेकर बदनाम किया नाम? नाम बदनाम न कर।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर को किसी भी नाम से पुकार किन्तु उसके नाम को बदनाम न कर। देख, ईश्वर का नाम हृदय में शान्ति भरने वाला है। भक्त जब एक बार उसके नाम से शान्ति पाता है तब बार-बार शान्ति पाने का इच्छुक हो जाता है। शान्ति पाने की उसकी जिज्ञासा उसे उन कार्यों एवं भावों को नहीं अपनाने देती जो अशान्त बनाने वाले हैं अतः वह हमेशा ईश्वर की शरण में ही जीना चाहता है। किन्तु जो ईश्वर का नाम भी लेते रहते

हैं और अशान्ति को भी नहीं छोड़ते—ऐसे जन ईश्वर के नाम को बदनाम करते हैं। उन्होंने अभी ईश्वर का नाम मुख से ही लिया है ईश्वर की महिमा नहीं जानी है। यदि उन्होंने ईश्वर की महिमा जानी होती तो ईश्वर उनके दिल में बसता और तब शान्ति-सन्तोष उनका अपना धन हो जाता। उनका ईश्वर का नाम लेना भी तभी सार्थक होता।

६६३ बीज वृक्ष का कारण है या वृक्ष बीज का। झूलन की गति है जो आनन्द से ओत-प्रोत है।

ऐ प्राणी! ईश्वर द्वारा रची हुई यह सृष्टि विचित्र कौतुकों से भरी हुई है। यहाँ आज तक कोई इस रहस्य को नहीं जान सका कि बीज की उत्पत्ति पहले हुई या वृक्ष पहले हुआ। ऐसे-ऐसे कितने ही आश्चर्य इसमें भरे पड़े हैं। देख, इस कौतुकी सृष्टि के रहस्य को तू अल्पबुद्धि से नहीं समझ सकेगा अतः तू अपना समय इसे समझने में व्यर्थ न बरबाद कर, तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू यहाँ आने का आनन्द पाये। तू जब ईश्वर की दुनिया में बैठेगा तब यह संसार तुझे उस झूलन की तरह दिखाई देगा जो ऊपर नीचे घूमता हुआ आनन्द देता रहता है—इस संसार में तेरा आना उसी दिन सार्थक होगा।

६६४ प्रकृति के ब्रह्मा ने उत्पादन किया, विष्णु ने रस पिला कर पालन। किन्तु शिव की शान्ति धारण न कर सका तो मृत्यु कष्ट से मुक्त कैसे हो।

ऐ प्राणी! तू मनुष्य (माता-पिता) द्वारा निर्मित नहीं, तेरा निर्माण करने वाला ब्रह्मा है, उसी ने पञ्च तत्वों (पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि) द्वारा तेरा निर्माण किया है। देख, तेरा रक्षक भी तू या तेरे साथी नहीं, वही (विष्णु) है। उसी ने प्रकृति द्वारा अन्न जल के रूप में तेरे लिये सारे प्रबन्ध कर रक्खे हैं। किन्तु तू सदा इस रहस्य से अनभिज्ञ ही रहा अतः स्वयं को कर्त्ता मान बैठा परिणाम कभी शान्ति न पा सका। देख, आनन्द के लिये आया हुआ तू किस अवस्था में पहुँच गया है। यदि तेरी यही अवस्था रही अर्थात तू ईश्वर के कार्यों से अनभिज्ञ ही रहा तो तू मृत्यु कष्ट से कभी छुटकारा नहीं पा सकेगा। अतः इस अवस्था से उबरने के लिये तू शिव सदृश्य सद्गुरु की शरण ग्रहण कर कि तू कर्त्तापन के मैं से मुक्त हो पाये तथा शान्ति तेरी सहचरी बने।

६६५ भोग लगाऊँ या भोगूँ। एक ओर समर्पण दूसरी ओर संग्रह वासना का। सोच—मार्ग दिखलाई दे।

ऐ प्राणी ! भक्त जो कुछ भी पाता है उसे वह ईश्वर का दिया प्रसाद समझ कर ग्रहण करता है परिणाम उन वस्तुओं का उपभोग उसे आनन्द देता रहता है। किन्तु उन्हीं वस्तुओं का उपभोग भोगी शरीर की भूख मिटाने के लिये करता है परिणाम उसका हृदय जलन से भर जाता है। देख, एक ही वस्तु 'भाव' की भिन्नता के कारण एक का हृदय समर्पण के भावों से सजाती है किन्तु दूसरे के हृदय में वासना की अग्नि प्रज्वलित कर देती है जिसमें जलता हुआ व्यक्ति कभी चैन से बैठ नहीं पाता। अतः तू शान्ति से विचार कर कि तुझे जलनपूर्ण जीवन चाहिये या सुमधुर भावों से सजा हुआ हृदय चाहिये ? यदि आनन्द चाहिये तो तू प्रत्येक मिली हुई वस्तु को ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण कर कि तू यहाँ मौज में रह सके।

६६६ जब भक्त की वाणी में इतना प्रेम और शान्ति है तो भगवान की वाणी ? पागल यह भगवान की ही वाणी है।

ऐ प्राणी ! भक्त की वाणी अपनी नहीं होती, भगवान की होती है। देख, यों तो ईश्वर प्रत्येक के भीतर वास करता है किन्तु प्रत्येक ईश्वर के चरणों में वास नहीं करते अतः ईश्वर सब में नहीं दिखलाई देता। भक्त का हृदय जल की तरह शुद्ध व निर्मल होता है तथा ईश्वर के लिये समर्पित होता है अतः उसके हृदय पर ईश्वर प्रतिष्ठित दिखलाई देता है। ऐसे भक्त की वाणी से सदैव प्रेम व शान्ति का वर्षण होता रहता है। अतः तू यदि भक्त की वाणी में प्रेम देख पाता है तो तू ईश्वर को कहीं अलग न खोज, तू वहीं ईश्वर को खोज। एक दिन तू वहीं ईश्वर को देख पायेगा क्योंकि भक्त का हृदय ही ईश्वर का वासस्थान है।

६६७ प्रिय की रीति—प्रीति। वहाँ वेद कहाँ शास्त्र कहाँ ? प्रीतम का राज्य—वहाँ और नहीं काज।

ऐ प्राणी ! वेद शास्त्र में ईश्वर प्राप्ति के लिये संकेत मिल सकते हैं किन्तु वेद शास्त्रों को पढ़कर ईश्वर को पाया नहीं जा सकता। ईश्वर को पाने की रीति, प्रीति है—प्रीति में ही प्रियतम बसता है। अतः तू वह संग साथ ग्रहण कर जहाँ बैठकर तेरे भाव बदलने लगें अर्थात् प्रेम का प्रवाह तेरे अन्तर में

होने लगे। ऐसे में तुझे ईश्वर को याद करना नहीं पड़ेगा, ईश्वर सदा तेरे साथ होगा और वेद-शास्त्रों में ईश्वर मिलन के जो वर्णन पाये जाते हैं वे तेरे अन्तर में बसे होंगे। देख, जब हृदय प्रियतम प्रभु का मन्दिर बन जाता है तब वृत्तियाँ चारों ओर से सिमट कर एक प्रभु के चरणारविन्द का रसपान करने में लग जाती हैं, उनका अन्यत्र भ्रमण छूट जाता है। अतः तू प्यार कर कि प्रिय प्रभु को सदा साथ देख पाये, प्रियतम को पाने के सभी भाव तेरे अन्तर में स्वतः जाग्रत हो जायें।

६६८ व्यक्त करना सख्त है, जब तक भक्त न हो। भक्त करे व्यक्त अदृश्य का प्यार।

ऐ प्राणी! ईश्वर की बातें करने का सच्चा अधिकारी वही है जिसने ईश्वर की अनुभूति पायी है। देख, ईश्वर स्थूल चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता क्योंकि स्थूल चक्षुओं का पसारा स्थूल तक ही है। स्थूल चीजों में ईश्वर झलकता अवश्य है किन्तु ईश्वर स्थूल नहीं, वह अदृश्य शक्ति है जिस पर यह संसार टिका हुआ है। उस अदृश्य सत्ता को भक्त बनकर ही देखा जा सकता है। भक्त कण-कण में उसी का जलवा देखता है क्योंकि उसका रोम-रोम प्रभु दर्शन का इच्छुक रहता है। ऐसा भक्त ही अदृश्य प्रभु के प्यार को व्यक्त कर सकता है। भक्त की केवल वाणी ही ईश्वर के प्यार का वर्णन नहीं करती, भक्त के प्रत्येक कार्य में ईश्वर झलकता है या यों कहा जाय कि अदृश्य प्रभु भक्त के द्वारा ही दृश्यमान होता है। अन्य जन ईश्वर की बातें करके स्वयं को भुलावा देते हैं तथा अन्य को भी भुलावे में ही डालते हैं। अतः ईश्वर की बातें करने के पहले तू हृदय को प्रेमपूर्ण कर ले कि तू ईश्वर की बातें करने का अधिकारी बने।

६६९ कुछ चमत्कार पूर्ण बात कही, तो अचरज करने लगा। जान न सका यह किसका चमत्कार है। कर्त्ता छिपा हुआ कर्म दिखला रहा था।

ऐ प्राणी! समर्पित भक्तों का जीवन अनुपम होता है, उनकी वाणी आश्चर्यचकित करने वाली होती है। साधारण प्राणी जब उनकी वाणी सुनता है तब घोर आश्चर्य में पड़ जाता है क्योंकि ऐसी वाणी उसने आज तक कहीं नहीं सुनी थी। किन्तु उसे मालूम नहीं कि वह जो चमत्कार पूर्ण बातें सुन

रहा है वे उस व्यक्ति की नहीं जिसे वह आँख से सम्मुख देख पा रहा है, वे उस कर्त्ता की हैं जिसके लिये वह (भक्त) समर्पित है अतः कर्त्ता ही छिपा हुआ उस शरीर के माध्यम से कर्म दिखला रहा है। यदि रहस्य की ये बातें प्राणी जान जाता तो वह भक्त में ही कर्त्ता को देख पाता तथा भक्त के भावों को अपनाकर स्वयं में भी उसी अनुभूति को पाने का इच्छुक बनता।

६७० सिद्ध कर। सिद्ध हूँ। करूँ क्या? मान न मान यह तेरी पहचान।

ऐ प्राणी! भक्त ही भक्ति करते-करते एक दिन सन्त भाव को पा जाता है। भक्त भक्ति में भगवान को अपने से अलग देखता है किन्तु जब वह सन्त भाव से सुसज्जित होता है तब भगवान उससे अलग नहीं रह जाता, उसी में घुलमिल कर एक हो जाता है। तब जिस भगवान को वह आज तक बाहर देखता था उसको स्वयं में देख पाता है, स्वयं का उसे अलग भान भी नहीं रह जाता। ऐसे सन्त वाणी द्वारा ईश्वर को सिद्ध नहीं करते, वे स्वतः सिद्ध रहते हैं। उन्हें कोई माने या न माने वे इस पर ध्यान नहीं देते, वे सदा मौज की दुनिया में विचरण करते हैं। किन्तु सत्य के जिज्ञासु उन्हें पा ही जाते हैं जैसे रसपान करने के लिये भँवरा फूलों का रस पा जाता है। उनके समीप जाकर भी यदि व्यक्ति उन्हें नहीं पहिचान पाये, उनके बाहरी परिवेश में ही अटक जाये तो यही कहना होगा कि वह सत्य का जिज्ञासु नहीं। यदि व्यक्ति सत्य का जिज्ञासु होता तो भाव उसे आकृष्ट करता और वह उसी में घुलमिल कर एक हो जाता।

६७१ बातें ही प्रिय हैं। अवस्था होती तो बातें न होतीं, आनन्द ही आनन्द होता।

ऐ प्राणी! जो ईश्वर की दुनिया का आनन्द लेना चाहते हैं वे निरर्थक बातों में अपना समय व्यतीत नहीं करते, वे जो कुछ भी करते हैं उसके द्वारा हृदय परिवर्तन की इच्छा रखते हैं। उनकी चाह ही उनका मार्ग प्रशस्त करती रहती है जिस पर बढ़ते हुए वे उस अवस्था को प्राप्त करते हैं, जहाँ आनन्द ही आनन्द है। किन्तु जिन्हें बातें ही प्रिय हैं, बातों में निहित भाव प्राप्ति की कोई आवश्यकता नहीं—ऐसे जन ईश्वर पथ पर चलते हुए से दिखलाई देते हैं फिर भी ईश्वर से दूर ही रह जाते हैं। वे बड़ी-बड़ी बातों में ही अपना सारा समय व्यतीत कर देते हैं। उन्हें अभी मालूम नहीं कि

बातें बनाकर वे केवल नाम-प्रसिद्धि पा सकेंगे किन्तु भाव पाकर उनका हृदय बदल जायेगा और हृदय परिवर्तन उनकी दुनिया ही बदल देगा। ऐसे में वे बातें बनाना भूल जायेंगे और आनन्द की दुनिया में बैठे मौज मनायेंगे।

६७२ रो कर पूछा—जगत किस लिये है ? हँस कर कहा—जगत हँसने के लिये।

ऐ प्राणी ! इस संसार में आकर जिनके लिये केवल शरीर प्रधान हो जाता है ऐसे जन अभाव से घिरे सदा रोते रहते हैं। उन्हें संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख नजर आता है, अतः वे कह बैठते हैं—'इस संसार में क्या रक्खा है'। किन्तु यहाँ आकर जिसने आने के उद्देश्य को जाना है और जो ईश्वर को 'कर्त्ता' देख पाते हैं वे सदा हँसते रहते हैं। वे ईश्वर द्वारा रची हुई प्रत्येक रचना का आनन्द लेते हैं एवं सभी स्थिति-परिस्थिति को ईश्वर द्वारा अनुबन्धित देखते हुए प्रसन्नवदन रहते हैं। वे सदैव यही कहते पाये जाते हैं कि "यह संसार एक बगीचा है जिसमें तुम प्रेमपूर्वक खेलो और खिलो, इसका सृजन तुम्हें प्रसन्नता देने के लिये हुआ है"। देख, एक ही संसार रोने वाले के लिये दुःख का भण्डार हो जाता है किन्तु वही हँसने वाले के लिये आनन्द का बगीचा बन जाता है।

६७३ फिर रोते क्यों हैं ? हँसना नहीं आता।

ऐ प्राणी ! रमणीय संसार में रहकर भी जिन्हें हँसना नहीं आता, उनके पास रोने के सिवा कुछ भी नहीं रह जाता। वे हँसने के क्षणों में भी हँस नहीं पाते—ऊपर से हँसते रहते हैं किन्तु उनका दिल रोता रहता है और प्रत्येक परिस्थिति के लिये वे ईश्वर को ही दोषी ठहराते हैं। उनके रोने के क्षण हँसने में भी परिवर्तित हो सकते हैं—यह उनकी समझ से परे रहता है अतः वे रोते-रोते ही जिन्दगी गुजार देते हैं। देख, हँसने के लिये आया हुआ प्राणी जानकारी के अभाव में किस अवस्था में पहुँच जाता है। अरे पगले ! तू अब भी होश में आजा और जिन्होंने हँसी पायी है उनका साथ ग्रहण कर ले कि संसार को देखने की तेरी दृष्टि ही बदल जाये परिणाम तेरा रोना भी हँसने में परिवर्तित हो जाये।

६७४ पास है तो प्रकाश है। दूर है तो देर है अन्धेर है।

ऐ प्राणी ! सूर्य का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है किन्तु

जिनके हृदयाकाश में अन्धेरा है उनका जीवन अन्धकारपूर्ण ही रहता है। वे न ठीक से खा सकते हैं, न पी सकते हैं, न सो सकते हैं, न जाग सकते हैं— केवल चिन्ता में संलग्न हमेशा रोते रहते हैं और दोषी ईश्वर को ठहराते हैं। वे यही कहते देखे जाते हैं कि 'ईश्वर के घर में भी अन्धेर है'। किन्तु उन्हें मालूम नहीं कि ईश्वर के यहाँ न देर है और न अन्धेर है, अन्धेरा अभी उनके हृदय में है क्योंकि उन्होंने अभी ईश्वर से बहुत दूरी बना रक्खी है और दूरी के कारण ही उनमें ईश्वर के कार्यों को सही रूप से देखने की क्षमता नहीं है। जैसे-जैसे वे ईश्वर के निकट होंगे वैसे-वैसे उनके जीवन का अन्धेरा खत्म हो जायेगा और वे ईश्वर की सृष्टि का आनन्द ले पायेंगे। देख, ईश्वर को समीप पाने का स्थान सत्संग है। सत्संग हृदय को निर्मल करती है परिणाम व्यक्ति सत्य दृष्टि पा जाता है एवं ईश्वर की दुनिया में बैठा मौज मनाता है।

६७५ अन्दर ही अन्धेरी दुनिया में खोज। प्रकाश ही प्रकाश। अब—शाबाश-शाबाश।

ऐ प्राणी! ईश्वर तुझे जब भी मिलेगा तेरे अन्दर मिलेगा। बाहर से तुझे भाव परिवर्तन के लिये संकेत मिलेंगे किन्तु उन संकेतों के अनुसार चलना तुझे ही पड़ेगा। जब तेरे भाव बदल जायेंगे तब तेरी अन्धेरी दुनिया रोशन हो जायेगी क्योंकि जब भीतर उजाला हो जाता है तब बाहर-भीतर-सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है। अतः प्रकाश पाने के लिये तू सद्गुरु की शरण ग्रहण कर कि उनकी वाणी से संकेत पाकर तू भीतर की ओर उन्मुख हो पाये, तेरे भीतर प्रकाश ही प्रकाश छा जाये। देख, प्रकाश के साथ तू जहाँ भी बैठेगा वहाँ मौज में रहेगा—न तुझे स्थूल आकर्षण अपनी ओर खींच सकेंगे और न अन्य प्रलोभन अपने में बिलमा सकेंगे—तू सत्य की दुनिया में बैठा सृष्टि का आनन्द पाता रहेगा।

६७६ पुर में पूरा—नहीं तो बुरा।

ऐ प्राणी! जब तक तेरी वृत्तियाँ अन्तर की ओर नहीं मुड़ेंगी तब तक तू पूजा-पाठ आदि साधन अपना भी लेगा तो भी तृप्ति नहीं पा सकेगा। तेरे अन्तर की बेचैनी ज्यों की त्यों बनी रहेगी क्योंकि तृप्ति कार्यों से नहीं मिलती, भाव परिवर्तन से मिलती है। देख, केवल कार्य हमेशा अतृप्ति बढ़ाने वाले होते हैं अतः तू बाहर चक्कर न काट, अन्तर की दुनिया की ओर चल कि तू अज्ञात शक्ति के कार्य से परिचित हो पाये और उस सर्वशक्तिमान प्रभु का

परिचय पा जाये। अन्यथा तू थक कर चूर-चूर हो जायेगा और पायेगा केवल मान-सम्मान की भावना जिसके मद में फूला हुआ और अधिक बुरा बनता जायेगा अर्थात् निम्नतर अवस्था में पहुँच जायेगा।

६७७ नारायण ने कहा—लक्ष्मी के पुजारी को कैसे सन्तोष हो? वह तो मुझे भी गिरवी रखने को तैयार।

ऐ प्राणी! लक्ष्मी हमेशा नारायण के साथ शोभती है। जो नारायण के बिना लक्ष्मी पाने की कल्पना रखते हैं उनकी मति भ्रष्ट हो जाती है। ऐसे लक्ष्मी के पुजारी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये कुछ भी करने को तैयार रहते हैं—वे इमान भी बेच सकते हैं, धर्म की झूठी दुहाई भी दे सकते हैं, ईश्वर की सौगन्ध भी खा सकते हैं क्योंकि उनके लिये इमान, धर्म व ईश्वर बड़े नहीं, लक्ष्मी बड़ी है। देख, धन साधन है जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिये किन्तु साधन को ही यदि साध्य बना लिया जाये तो शान्ति दुर्लभ हो जाती है। अतः तू लक्ष्मी को साध्य न बना, तू नारायणको पहिचान कि तेरी विकृति दूर हो और तू स्वस्थ मन का धनी बने तथा सन्तोष धन को प्राप्त कर पाये।

६७८ देख कर भी जान न सका, जा न सका, बन्धन तोड़ कर। फिर मुक्ति के गीत, गीत मात्र हैं।

ऐ प्राणी! ईश्वर का साकार रूप यदि कहीं है तो वह सन्त है। देख, सन्त के दरशन के पश्चात् भी तू यदि उन्हें जान न पाये तो यही कहना होगा कि तूने अभी यथार्थ में सन्त के दरशन नहीं किये हैं, तेरी आँखों पर अभी भ्रम की पट्टी है। जिस दिन तू सन्त के दरशन पा जायेगा उस दिन तेरी अवस्था दूसरी होगी—तेरे बन्धन कटने लगेंगे और तू मौज की जिन्दगी पा जायेगा। देख, तेरे बन्धन काटने की सामर्थ्य सन्त के सिवा किसी दूसरे में नहीं। उनको पाये बिना तेरी ईश्वर मिलन की सारी चेष्टा केवल चेष्टा ही बनी रहेगी, तू उसका प्रतिफल कभी नहीं पायेगा। अतः तू सन्त की महिमा को जान कि उनकी शरण में बैठकर तू बन्धन मुक्त हो जाये और युक्त हो जाये उस अज्ञात सत्ता से जिससे युक्त होने के पश्चात् तुझे मुक्ति की चिन्ता न करनी पड़े।

६७९ योग में भोग देखा। भोग में योग। सन्देह दूर, देह दूर।

ऐ प्राणी! योग शरीर द्वारा की जाने वाली क्रिया को नहीं कहते, योग

आत्मा परमात्मा के मिलन को कहते हैं और यह (योग) क्रिया को सम्पादित करते समय मिलन के जो भाव साधक के हृदय में रहते हैं उनसे होता है। योग होने के पश्चात् जीवन प्रभु का भोग बन जाता है, प्रत्येक वस्तु, स्थिति से आनन्द मिलने लगता है। यथार्थ में योगी ही सच्चा भोगी है। योगी प्रभु-मिलन में जो सुख पाता है वह संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं के उपभोग में भी नहीं। देख, ऐसे योगी के प्रत्येक श्वाँस पर ईश्वर का अधिकार रहता है, ईश्वर को बाद करके उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। उसके कोई भी कार्य स्व सुख के लिये नहीं होते, ईश्वर के लिये रहते हैं, यहाँ तक कि उसका खाना, पीना, सोना, जागना, वस्तु-व्यक्ति का उपभोग करना आदि भी ईश्वर (योग) के लिये होते हैं। जब व्यक्ति इस अवस्था को पा जाता है तब उसका जीवन अनोखा होता है—तब उसकी दुनिया में शरीर व संसार दोनों की पहुँच नहीं रहती, रहता है केवल प्रेम और वही उसे आनन्द देता रहता है।

६८० क्या प्यार भी वासना का कारण है। प्यार तो न्योछावर होना है। वासना तो गन्धपूर्ण है।

ऐ प्राणी! प्यार हृदय का समर्पण है और वासना शरीर की भूख है। प्यार शरीर के माध्यम से दिखलाई देता है किन्तु है यह अशरीरी भाव। इसका जागरण जब होता है तब हृदय सुमधुर भावों से सजने लगता है, स्व सुख की कामना मिटने लगती है एवं समर्पण के भाव जाग्रत होने लगते हैं। तब एक दिन ऐसा भी आ जाता है जब अपना कहने को कुछ भी नहीं रह जाता, रह जाता है केवल प्रियतम और उसी का जलवा सर्वत्र फैल जाता है। देख, वासना शरीर की अतृप्त आकांक्षा का नाम है। इसमें शरीर प्रधान रहता है, जो कुछ भी व्यक्ति करता है वह शरीर की भूख मिटाने के लिये करता है। इसे अपनाकर व्यक्ति हर समय जलता रहता है, जितना भी पाता है वह उसके लिये कम पड़ता है अतः उसका अन्तर रोता रहता है। प्यार और वासना में समय विशेष के लिये बाहर से साम्यता दिखलाई पड़ सकती है, किन्तु यथार्थ में कहीं साम्यता नहीं रहती अर्थात् जहाँ प्यार है वहाँ वासना नहीं और जहाँ वासना है वहाँ प्यार नहीं।

६८१ कमा नहीं पाता कामना को तो क्या कमाया?

ऐ प्राणी! व्यक्ति जितना स्थूल से घिरता जाता है उतनी ही उसकी

कामनायें बढ़ती जाती हैं परिणाम जो कुछ भी उसे मिलता है वह उसके लिये कम होता है। कामना से घिरे रहने के कारण वह तृप्ति का आनन्द कभी नहीं ले पाता, अन्तर से अतृप्त बना सदा कराहता रहता है एवं उसकी पूर्त्ति के लिये दिन-रात भागता रहता है। देख, सम्पूर्ण विश्व की वस्तुएँ पाने पर भी तेरी यह अतृप्ति कभी मिटने वाली नहीं क्योंकि तृप्ति वस्तुओं में नहीं। अतः तू वह भाव प्राप्त कर जिसे अपनाकर तू सन्तोष धन को प्राप्त कर पाये अर्थात् तेरी कामना कम हो पाये—उसी दिन तू सच्चा धनी होगा अन्यथा तू स्थूल वस्तुओं का खजाना पाकर भी सदा अभाव से ही घिरा (गरीब) रहेगा।

६८२ रंग ही रंग जब रंगनाथ का साथ हुआ।

ऐ प्राणी ! यह संसार एक रंगभूमि है, यहाँ प्रत्येक चीज रंग रंगीली है। यहाँ चारों तरफ रंग ही रंग है फिर भी तू शुष्क है। देख, इसके रंगीन होने का राज रंगनाथ है, रंगनाथ ने ही इसे रंगीन बनाया है। इसका रंग ही बता रहा है कि 'कोई है' जिसने इसे रंग दिया है अतः तू उस रंगनाथ को जान कि तू भी रंगीन हो जाये। रंगनाथ से विमुख होने के कारण ही तू शुष्क होता चला जा रहा है एवं किसी भी प्राप्त वस्तु का आनन्द नहीं पा रहा है—केवल दुःख, चिन्ता से घिरा आँसू बहा रहा है। जिस दिन तू रंगनाथ को देख पायेगा तथा अपना आपा उसे सौंप पायेगा उस दिन तू भी रंगीन हो जायेगा और रंगनाथ का रंग तुझमें भी दिखलाई देने लगेगा—चारों तरफ जो रंग बिखरा हुआ है, तू उसका आनन्द भी तभी ले पायेगा।

६८३ आह्लाद की प्रहलाद की रक्षा रस रूप राम करता है। राक्षसी चिन्ता जली, आनन्द ही आनन्द।

ऐ प्राणी ! हृदय में रमण करने वाला राम यों तो सबमें बसा है किन्तु भक्त उसे प्रत्यक्ष देख पाता है अतः वह (राम) भक्त हृदय को हमेशा आह्लादित करता रहता है और भक्त आनन्द में निमग्न राम रस का सदा पान करता रहता है। अनेक राक्षसी भाव उसे पथभ्रष्ट करने की चेष्टा करते हैं किन्तु भक्त हृदय के सम्मुख सभी असफल हो जाते हैं एवं निराश लौट जाते हैं। चिन्ता जो सबसे भयानक राक्षसी है और जो जल्दी से पीछा छोड़ने वाली नहीं, वह भी भक्त के समीप नहीं टिक पाती, जल कर भस्मीभूत हो जाती है। भक्त तो सदा राम को देखते हुए राम की ही गोद में बैठा हुआ आह्लादित

होता रहता है। कोई भी शक्ति उसको राम से विलग नहीं कर पाती क्योंकि भक्त की एवं भक्त के भावों की रक्षा करने वाला सदा साथ रहता है अर्थात् हृदय में रमण करता रहता है।

६८४ धूलि से तो खेलता ही आया, अब रंग से खेल। कपड़ा ही रंगा, दिल रंग कि फिर आवागमन से अवकाश मिले।

ऐ प्राणी! स्थूल वस्तुओं के पीछे भागकर तूने बहुत सा समय गँवा दिया किन्तु पाया कुछ भी नहीं, केवल मन की मलिनता पाई। देख, ये वस्तु-विषय धूल के समान हैं, इनका साथ तन-मन को मैला करने वाला है अतः तू इनके पीछे न दौड़, तू रंग से खेल। एक रंग वह है जो (बाहर) कपड़े रँगता है किन्तु दूसरा रंग वह है जो दिल को ही रंग डालता है—वह रंग प्रेम है। देख, बाहर का रंग बाहर ही रह जायेगा किन्तु प्रेम रंग कभी छूटने वाला नहीं। दिल जब प्रेम रंग में रंग जायेगा तब जीवन ही रंगीन बन जायेगा। इसे अपनाकर तू बन्धन मुक्त हो जायेगा—जब तक यहाँ रहेगा तब तक मौज में रहेगा और एक दिन मौज के साथ ही विदा हो जायेगा।

६८५ कितने अबीर लेकर आये कायर ही थे। वीर होते प्रेम वीर होते तो प्रभु को ही रंग डालते। जीवन रंगीन बन जाता।

ऐ प्राणी! इस संसार में अनेक लोग कुछ विशेष शक्ति (चमक) लेकर आते हैं किन्तु काया प्रधान रहने के कारण वे काया में ही उलझे रह जाते हैं और दुःख-चिन्ता आदि अनेक कष्टों से घिर जाते हैं—न वे खुद चमक पाते हैं, न किसी अन्य को चमका पाते हैं। परिणाम उनकी चमक धूमिल पड़ने लगती है और वे भीरू बन कर रह जाते हैं। यदि उनके लिये शरीर प्रधान न होता तो वे अपनी चमक को देख पाते, इतना ही नहीं, उसके सहारे कुछ ऐसे भाव (प्रेम) को पा जाते जिसे पाकर वे सबसे प्रेम कर पाते। देख, प्रेम वह शक्ति है जो हिंसक पशु का भी रूप बदल देती है। 'ईश्वर' जो सर्वशक्तिमान है और जिसे जप-तप के द्वारा भी पाना कठिन है, उस ईश्वर को भी प्रेम रंग भाता है इसीलिये वह प्रेमी के वश में होता देखा जाता है। अतः तू अपनी शक्ति को पहिचान और जिसने तुझे यह जन्म दिया है उससे प्यार कर कि तेरा जीवन रंगीन बन जाये।

६८६ कुछ गुल गपाड़ा करते हुए आये गुलाल लेकर। गुल की तरह खिला नहीं। हाथ मलता रह गया।

ऐ प्राणी! रंग खेलने वाले का दिल यदि रंगीन न हो पाये तो उसने अभी रंग की महिमा नहीं जानी। देख, गुलाल गुलाब की तरह लाल रंग का होता है अतः यह गुलाब की तरह सुगन्धपूर्ण होने के लिये एवं खिलने के लिये प्रेरित करता है और यह तभी सम्भव है जब गुलाल (रंग) शरीर पर नहीं, दिल में लग जाये। ऐसा रंग जीवन को ही रंगीन बना देता है एवं प्रत्येक पल को सुगन्ध से भर देता है। किन्तु रंग की महिमा से अनजान व्यक्ति यदि शोरगुल में ही कीमती समय को बरबाद कर डाले एवं प्रेम रंग से वंचित ही रह जाये तो वह जीवन के अन्तिम क्षणों में पछताता ही रहेगा, पश्चाताप के सिवा उसके हाथ कुछ नहीं आयेगा।

६८७ फूल ऐंठ रहा था रूप पर, सुगन्ध पर, मूल ने कहा—अरे पागल! वायु ने सुगन्ध फैलाई, सूर्य ने रूप दिया। मैं छिप कर तुझे खिला रही हूँ। अभिमान कैसा?

ऐ प्राणी! तू तेरे पास रूप, गुण आदि जो कुछ भी देख पाता है उसे देने वाला कोई है, वही अज्ञात रहकर तुझे सब कुछ प्रदान कर रहा है। देख, उस देने वाले को भुलाकर तू यदि अपने रूप व गुण का अभिमान करेगा तो एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा। किन्तु तू यदि उस सत्ता को पहिचान पायेगा जो विश्व के कण-कण में समायी हुई तुझे चेतना दे रही है तो तू उस अज्ञात साथी को समक्ष देख पायेगा। तब तू उसे केवल बाहर ही नहीं देखेगा अपने अन्तर में भी उसी का जलवा देख पायेगा। उस दिन तेरा जीवन उस खिले हुए फूल की तरह होगा जो बगिया को महका देता है। पृथ्वी भी उस दिन तुझे पाकर धन्य हो जायेगी अन्यथा तू अभिमान करता हुआ इतना बोझिल हो जायेगा कि तेरा एक-एक क्षण पहाड़ के समान होगा।

६८८ भस्म होगा या वश में होगा? जरा सोच।

ऐ प्राणी! इस पृथ्वी पर आकर जो प्रभु के चरणों की रज (अहंकार-शून्य) होकर जीना चाहते हैं उनका जीवन उस हरी-भरी दूब की तरह होता है जो बारहों मास हरी-भरी रहती है। किन्तु जो अपना कीमती समय वस्तु-

विषय की प्राप्ति में ही लगा देते हैं वे सावन-भादो की घास की तरह एक बार हरे-भरे से दिखलाई देते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण मुरझाते देखे जाते हैं क्योंकि वस्तु-विषय स्थायी रहने वाले नहीं अतः उनसे मिलने वाला सुख भी स्थायी नहीं। अतः तू विचार कर कि तुझे नम्रता धारण करनी है या धन-जन के वश में होना है। यदि नम्रता को अपनाना है तो तू दिन-दूना रात-चौगुना फलता फूलता रहेगा और यदि विषयों के आधीन रहना है तो एक दिन ऐसा आयेगा कि तू विषयों को नहीं भोगेगा, विषय ही तुझे निगल जायेंगे।

६८९ निराशा के बादल डरावने थे। आशा कहीं जा छिपी थी। दया की बिजली चमकती थी। किन्तु काम हुआ जब भाव की वृष्टि हुई।

ऐ प्राणी! इस संसार का खेल कुछ ऐसा है कि अच्छे-अच्छे इसके चक्कर में फँस जाते हैं। इसके चक्कर में फँसना सहज है किन्तु निकलना अति कठिन है। देख, इस चक्कर में फँसने वाले को प्रत्येक अवस्था प्रतिकूल दिखाई देने लगती है—उसके चारों ओर निराशा के बादल छा जाते हैं एवं आशा का कहीं नामोनिशान भी नहीं रह जाता। जब वह इस अवस्था से घबड़ा उठता है तथा शान्ति की खोज करता है तब उदेपश के कुछ शब्द भी उसके कान में पड़ते हैं किन्तु इतने से ही उसका काम नहीं बनता अर्थात् हृदय परिवर्तन नहीं होता। हृदय परिवर्तन तब होता है जब उसे सन्त के दरशन होते हैं। सन्त भाव भरी वाणी की वर्षा करके तन, मन व प्राणों को तृप्ति प्रदान करते हैं। उस भाव की वृष्टि में प्राणी के जन्म-जन्मान्तर के अभाव विदा हो जाते हैं और वह चैन की वंशी बजाता है।

६९० कष्ट सह कर काया साधी। मन मारकर भक्ति की। तो क्या किया? काया माया का पता नहीं—मन लीन हो गया स्वरूप में, जब भाव आया।

ऐ प्राणी! भक्ति जोर-जबर्दस्ती से करने की चीज नहीं, भक्ति सहज भाव है। जब तक ईश्वर अपना नहीं होता तब तक अनेक कष्ट उठाकर इन्द्रियों को वश में करने की चेष्टा करनी पड़ती है तथा चञ्चल मन को वश में रखने के लिये मन को मारना पड़ता है। देख, यह भक्ति का स्वाभाविक रूप नहीं। भाव की जागृति के पश्चात् भक्ति तो स्वतः होती है। भाव की

दुनिया में अभाव के लिये स्थान नहीं रह जाता, रह जाता है केवल प्रिय और वही श्वासों-प्राणों में रमा आनन्द देता रहता है। ऐसे में 'मैं और मेरा' अर्थात् काया-माया का भाव लुप्त हो जाता है और मन प्रभु के चरण कमलों का भँवरा बन रसपान करने में लग जाता है—यथार्थ में यही भक्ति है। अतः तू यदि ईश्वर की समीपता का इच्छुक है तो जहाँ भाव का वर्षण होता है वहाँ बैठ कि तेरे अन्तर में भाव की जागृति हो जाये और तू भक्ति मार्ग पर कदम बढ़ा पाये।

६९१ देखता है, क्या? अभी दिल नहीं भरा? भूल बैठेगा रास्ता। फिर? फिर ये धर्मवाले, बाँधेंगे कण्ठी में, माला में, जाप में।

ऐ प्राणी! तूने अपनी आयु का बहुत बड़ा हिस्सा स्थूल भोगों के पीछे दौड़कर खत्म कर दिया फिर भी तेरा दिल अभी भरा नहीं। अरे पगले! इनके पीछे दौड़ते-दौड़ते तू आने के कारण को ही भूल बैठेगा और फिर तू कितना भी, कुछ भी पा लेगा तो भी चैन नहीं पा सकेगा क्योंकि गुमराही को चैन नहीं मिलता। एक समय पश्चात् तू यदि इनसे घबड़ाकर चैन पाना भी चाहेगा तो भी नहीं पा सकेगा क्योंकि तब तक तू संस्कारों से इतना आबद्ध हो चुका होगा कि उन्हें काटना तेरे लिये असम्भव होगा। तब ये धर्मवाले तुझे कभी कण्ठी पहनायेंगे, कभी माला फेरने के लिये कहेंगे, कभी जप करने के लिये कहेंगे और ईश्वर-मिलन का रास्ता इसे ही बतलायेंगे किन्तु तेरा दिल नहीं बदल पायेंगे और तू इन्हीं को धर्म समझता हुआ इनके पीछे भागता रहेगा। अतः तू समय रहते-रहते होश में आजा और लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा ले कि तू गुमराह न हो पाये और चैन से जिन्दगी बसर कर पाये।

६९२ ये संस्कार। कर नमस्कार। अब पुकार—दिल से, पुकार— ओ मेरे यार, तेरे बिना यह जीवन बेकार। फिर संस्कार? नहीं संस्कार, नहीं नमस्कार, बार एक बार।

ऐ प्राणी! तू यथार्थ में कहीं से बँधा हुआ नहीं है, तू केवल संस्कारों से बँधा हुआ है। देख, अन्य बन्धन कटने सहज हैं किन्तु संस्कारों के बन्धन बिना प्रभु कृपा के कटने असम्भव हैं। अतः तू इन संस्कारों को, जो धर्म-कर्म के नाम पर तुझे बाँधे हुए हैं, नमस्कार कर अर्थात् इनकी ओर से मुख मोड़ ले और ईश्वर को दिल से याद कर। जब तू सच्चे दिल से ईश्वर को

याद करेगा तब ईश्वर को पाने के लिये तेरा हृदय तड़प उठेगा। तब तुझे संस्कारों से मुँह छिपाना नहीं पड़ेगा, वे तेरे सामने टिक नहीं पायेंगे, स्वतः विदा हो जायेंगे। अतः तू सब धर्म कर्म के ढकोसलों को छोड़कर एक बार अपने आपको प्रभु के चरणों पर अर्पित कर दे कि तू समर्पण की महिमा को जान पाये और संस्कारों से सहज में ही मुक्त हो जाये।

६९३ योग भोग में बदला जब विषय रस की प्रधानता रही। भोग योग का उपासक, कारण बिना योग गति कहाँ?

ऐ प्राणी! जब तक तेरी वृत्तियाँ स्थूल रस की प्यासी रहेंगी तब तक तेरी योग की क्रिया भी भोग के लिये होगी क्योंकि क्रिया प्रधान नहीं, क्रिया को सम्पादित करते समय जो कारण हृदय में छुपे रहते हैं वे प्रधान हैं एवं उन्हीं के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। देख, जो सच्चे योगी होते हैं यथार्थ में वे ही सच्चे भोगी होते हैं, भोग का आनन्द वे ही ले पाते हैं। उनके भीतर प्रारम्भ से योग की प्रबल इच्छा रहती है और वही इच्छा उन्हें योग की ओर अग्रसर करती है—ऐसे जन का जीवन प्रभु का भोग बन जाता है। अतः तू यह निश्चित समझ ले कि कुछ कार्य अपनाकर तू ईश्वर को समीप नहीं पा सकेगा, तुझे वह भाव पाना होगा जिससे तेरे कदम योग की ओर बढ़ जायें। देख, इसके लिये तू सत्संग कर कि तेरी भावना बदल जाये और वह तुझे योग की ओर ले जाये।

६९४ ज्ञान तो था किन्तु मैं का? तू का ज्ञान भक्ति बन गई।

ऐ प्राणी! ज्ञान तेरे पास है किन्तु वह 'मैं' अर्थात शरीर का ज्ञान है, यह तुझे स्थूल वस्तु-व्यक्ति आदि की जानकारी दे सकता है, इससे आगे इसकी गति नहीं। देख, बाहर की वस्तुओं का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भी तेरा अन्तरघट रस से सराबोर नहीं हो सकेगा, वहाँ सदा बेचैनी ही बनी रहेगी। अन्तर की बेचैनी मिटाने के लिये तुझे 'तू' का ज्ञान पाना होगा अर्थात् जो तुझे गतिशील कर रहा है उस ईश्वर का परिचय पाना होगा। जिस दिन तू उसे देख पायेगा उस दिन तेरा हृदय सरस हो जायेगा, तेरे हृदय में भक्ति की धारा फूट पड़ेगी। तेरे हृदय की विकलता भी उसी दिन कम होगी जो स्थूल ज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् भी तेरे अन्तर में बनी हुई थी। अतः तू केवल स्थूल के पीछे न भाग, तू सूक्ष्म की भी कीमत कर अन्यथा तू बहुत कुछ पाकर भी कोरा का कोरा रह जायेगा।

६९५ शेष श्य्या पर भगवान देखता रहा। आज शेष श्य्या पर भगवान ही है। निश्चिन्त समा जा (भगवान) अनन्त में।

ऐ प्राणी ! तू चित्र में शेष शय्या पर भगवान को देखता है किन्तु प्रत्यक्ष में भगवान को सम्मुख नहीं देख पाता। देख, तेरा यह मनुष्य जीवन आखिरी जीवन है अर्थात् शेष श्य्या है। इस जन्म में ही तू ईश्वर को भीतर-बाहर-सर्वत्र देख सकता है किन्तु भ्रम की पट्टी बँधी रहने के कारण तू उसे नहीं देख पा रहा है। जिस दिन तेरे आँखों की पट्टी खुल जायेगी उस दिन तेरी दुनिया दूसरी होगी, उस दिन भगवान चित्र में नहीं होंगे तेरा चित्त चित्रपट होगा और उसमें ईश्वर की छवि विराजमान होगी—उसी दिन तू तेरे चारों ओर भी ईश्वर का जलवा देख पायेगा। अतः तू सद्गुरु की शरण ग्रहण कर कि तेरे भ्रम का पर्दा उठ जाये और तू जीवन काल में ही ईश्वर को सम्मुख देख पाये। उस दिन ईश्वर मिलन के लिये तुझे प्रयास करना नहीं पड़ेगा, तू ईश्वर की गोद में बैठा निश्चिन्त जीवन बितायेगा और जब अन्तिम समय आयेगा अर्थात् तू शेष शय्या पर होगा तब उसी में समाकर एक हो जायेगा।

६९६ क्रोध भी देखता है, शान्ति प्रेम नहीं देखता ? बच्चा, जो पाप पुण्य से बचा, नरक स्वर्ग से बचा।

ऐ प्राणी ! आज स्थूल प्रधान युग है, इसमें क्रोध कदम-कदम पर दिखलाई देता है किन्तु शान्ति व प्रेम उस रूप में नहीं दिखलाई देते। यहाँ शान्ति व प्रेम वे ही देख पाते हैं जो इनके इच्छुक हैं। देख, शान्ति व प्रेम सन्त में पाये जाते हैं क्योंकि वे बच्चों की तरह दिल से सरल होते हैं। अतः तू भी बच्चा बन दिल से कि तू सरल हृदय का धनी बने। जिस दिन तेरा हृदय सरल हो जायेगा उस दिन न तुझे पाप-पुण्य स्पर्श करेंगे और न नरक-स्वर्ग छू सकेंगे—तू सर पर सदा परम पिता का साया देखता हुआ निश्चिन्त जिन्दगी बितायेगा और सबसे प्यार कर पायेगा। अन्यथा सरलता के अभाव में तेरा हर पल डरते ही बीतेगा, तू चैन की सांस कभी नहीं ले सकेगा।

६९७ कोई दिल से पुकारा आजा। आ और जा तो कहाँ मजा।

ऐ प्राणी ! इस संसार का आनन्द वे ही ले पाते हैं जिनकी अपनी दुनिया में ईश्वर का भी स्थान रहता है। अन्य संगी साथियों की तरह जो ईश्वर को भी दिल में स्थान देते हैं एवं जो दिल से ईश्वर को याद करते हैं—ऐसे प्रेमी

जन का हृदय प्यार से सजने लगता है तथा उनके बन्धन कटने लगते हैं। जब तक ईश्वर से प्रेम नहीं हो जाता तब तक व्यक्ति दुनिया से घबड़ाया हुआ ईश्वर का नाम तो लेता रहता है किन्तु ईश्वर को समक्ष नहीं देख पाता। ऐसे में यह संसार उसके लिये बन्धन बन जाता है और वह जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ ही रह जाता है। परिणाम वह बार-बार संसार में आता जाता रहता है अर्थात् उसके जीवन मृत्यु का चक्र कभी खत्म नहीं होता और वह अभाव में सना सदा रोता रहता है।

६९८ अच्छा—आ और बस जा। स्वार्थी! कहता है आ और बस जा। फिर क्यों पुकारा? यही तो खेल है।

ऐ प्राणी! ईश्वर को तू स्वार्थ से न पुकार, स्वार्थ से पुकार कर तू ईश्वर से कुछ वस्तु लाभ कर लेगा किन्तु उससे मिलने का आनन्द नहीं ले पायेगा। देख, स्वार्थ से किया हुआ भजन भजन नहीं, यह जिस कार्य के लिये ईश्वर को याद किया जा रहा है उस कार्य का भजन है। ऐसा भजन दिल का वजन कम नहीं करता। दिल का वजन कम करने के लिये ईश्वर से प्यार करना पड़ता है। प्यार का प्रादुर्भाव जब हो जाता है तब दिल का वजन स्वतः कम होने लगता है क्योंकि प्यार जीवन का शृंगार है अतः तू ईश्वर के सम्मुख फरियाद न कर, तू उसे याद कर, बार-बार याद कर कि तू ईश्वर के कार्यों को देख पाये। अन्यथा तू स्वार्थ से आबद्ध रोते-रोते ही जिन्दगी बिता देगा, ईश्वर की तुझे कभी याद आयेगी भी तो स्वार्थ पूर्त्ति के लिये—ऐसी याद से तो नहीं याद करना ही अच्छा है।

६९९ प्राण देकर प्रेम की रक्षा कर प्राण प्रिय के बल पर।

ऐ प्राणी! प्रेम प्राण से भी अधिक कीमती है। देख, प्राण प्रत्येक प्राणी को मिले हुए हैं किन्तु प्राण पाकर भी प्राणी प्राण धारण करने का लाभ नहीं उठा पाता। उसका प्राण पाना सार्थक तभी होता है जब वह प्रेम पाता है। प्रेम के बिना प्राणी प्राण पाकर भी निष्प्राण सा रहता है अर्थात् केवल श्वाँस लेता है किन्तु जीवन का आनन्द नहीं पाता। अतः तू प्रेम पा कि तेरा प्राण पाना सार्थक हो। देख, प्रेम तुझे प्रभु के द्वार पर मिलेगा। प्रेम की रक्षा के लिये तुझे प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो तू प्रिय (प्रभु) के बल पर हँसते-हँसते दे देना किन्तु प्रेम को कभी नहीं छोड़ना। तू यदि प्रेम को भुला देगा तो तेरे पास अपना कहने को कुछ नहीं रह जायेगा, रहेगा केवल शरीर जिसका

बोझ ढोते-ढोते तू एक दिन टूट जायेगा परिणाम मौज के लिये आया हुआ रोते-रोते यहाँ से जायेगा।

७०० भरोसा नहीं तो भय रोष आयेगा। आयेगा और जायेगा क्योंकि भरोसा नहीं।

ऐ प्राणी! भरोसा एक बहुत बड़ी शक्ति है, यह जिसे मिल जाती है वह निश्चिन्त रहता है। वह जानता है कि सभी कार्य समयानुसार स्वतः हो रहे हैं। भरोसा रखने वाला कल की चिन्ता नहीं करता, आज स्वस्थ भावों के साथ जीता है और जिसके भाव व कार्य आज स्वस्थ हैं उसका कल स्वतः ठीक रहता है। देख, जो भरोसा नहीं रखते वे पग-पग पर भयभीत रहते हैं अतः वे स्वस्थ भी नहीं रह पाते—उनका जीवन कड़ुवाहट से भर जाता है और वे चिड़चिड़े हो जाते हैं। ऐसे जन का संसार में आना बेकार हो जाता है, वे खाली हाथ आते हैं और खाली ही लौट जाते हैं। उनका इस संसार में आवागमन का चक्र कभी खत्म नहीं होता क्योंकि वे विश्वास के साथ नहीं जी पाते। यदि सत्संग में बैठकर उन्होंने विश्वास धन को पाया होता तो उनका जीवन निरुद्देश्य व्यतीत नहीं होता, वे उसे पा जाते जो सदा उनके साथ है। तब वे खाली नहीं जाते, उनका दिल सुमधुर भावों से सजा होता और उसी को हृदय में संजोये हुए वे प्रिय के पास लौट जाते।

७०१ मिल न आज मिलन घड़ी, शुभ घड़ी।

ऐ प्राणी! तू आज का कीमती समय आगे-पीछे की बातों में न खो, तू आज उससे मिल जो तेरा है एवं सदा तेरे साथ है। देख, यहाँ तेरा आगमन उससे मिलने के लिये ही हुआ है। यदि तू आज का समय इधर उधर (विषय-भोगों) में लगा देगा तो तेरे लिये वह दिन कभी नहीं आयेगा जब तू अपने सच्चे साथी (ईश्वर) से मिल सकेगा क्योंकि एक समय पश्चात् तू स्थूल आकर्षणों से इतना अधिक घिर जायेगा कि शरीर से इनका साथ छोड़ने पर भी तू इन्हें नहीं छोड़ पायेगा। अतः तू आज, अभी से ही ईश्वर मिलन के साज सजा। जिस दिन तेरे कदम उसके लिये उठने लगेंगे वह दिन ही शुभ दिन होगा और उसी दिन तेरा शरीर धारण करना भी सार्थक होगा।

७०२ ऐसा मिल कि मैल न रहे, दुनियाबी खेल न रहे।

ऐ प्राणी! ईश्वर मिलन की अनुभूति हृदय में होती है, बाहर उसके कोई

चिन्ह नहीं दिखलाई देते। जैसे-जैसे व्यक्ति अपना व्यक्तित्व भूल कर ईश्वर की निकटता पाता जाता है वैसे-वैसे उसका हृदय शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल होता जाता है। उसका सोना, जागना, उठना, बैठना सब ईश्वर की दुनिया में होने लगते हैं, वह स्वयं को ईश्वर से अलग नहीं देख पाता और कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर पाता जो छिपाने के योग्य हो अर्थात् गलत हो। देख, ऐसा मिलन ही ईश्वर मिलन है। जब तक व्यक्ति ऐसा भाव नहीं पा जाता तब तक उसके हृदय का मैल साफ नहीं हो पाता और उसके स्थूल आकर्षण भी कम नहीं हो पाते। ऐसे में वह ईश्वर मिलन की राह पर बढ़ता हुआ सा दिखलाई देते हुए भी ईश्वर से दूर ही रह जाता है। अतः तू ईश्वर मिलन के कार्य न कर, तू वह भाव पा जिसे पाने के पश्चात् हृदय में मैल नहीं रह जाता, दिखावा नहीं रह जाता—रह जाता है केवल सत्य भाव और उसी के साथ साधक जीता है।

७०३ कौन बड़ा ? जो झुके और झुकाये। कौन छोटा ? जो न नमें न नमाये केवल सिर घुमाये।

ऐ प्राणी ! बड़े छोटे की परिभाषा न उम्र से की जा सकती है न धन-वैभव से। देख, बड़ा वह है जो स्वभाव से ही नम्र है अर्थात् जो अहंकार शून्य है एवं ईश्वर के चरणों की रज बनकर जीने की इच्छा रखता है। उसका झुकना केवल उसके लिये ही लाभप्रद नहीं होता, उससे औरों को भी झुकने की प्रेरणा मिलती रहती है क्योंकि झुकने में जो आनन्द है वह अन्य किसी भी उपलब्धि में नहीं। देख, छोटा वह है जो अपने समान किसी को नहीं समझता अर्थात् जो नमना नहीं जानता और ईश्वर को भुलाकर स्वार्थपूर्ण भावों से घिर जाता है। ऐसा व्यक्ति साधारण जन को तो गिनता ही नहीं, ईश्वर जो सर्वशक्तिमान है एवं जिसके सहारे यह संसार गतिशील है उसे भी मानने को तैयार नहीं होता। नम्रता की भावना उससे कोसों दूर हो जाती है और मद के नशे में चूर वह सब पर शासन करना चाहता है। अहंकारी को एक दिन उसका अभिमान ही ले डूबता है और जो नम्र है वह सदा अपने कार्य व भाव से खुद भी सुख पाता है तथा सबको भी सुख पहुँचाता है।

७०४ सर और लता के उपासक सरलता चाहते हैं। वह (सर) चाहता है हृदय कमल खिले। और वह (लता) चाहती है प्रियतम से लिपट कर भूल जाय अपने को।

ऐ प्राणी ! तू यदि कमल की तरह खिल कर रहना चाहता है और लता की

तरह बढ़ते रहना चाहता है तो सरल बन क्योंकि जो सरल होते हैं हृदय परिवर्तन उनका ही होता है। जहाँ सरलता का अभाव रहता है वहाँ कार्य परिवर्तित हो सकते हैं हृदय परिवर्तन सम्भव नहीं। अतः तू सरलता धारण करके प्रभु की शरण ग्रहण कर एवं प्रभु को अपना सर्वस्व जानते हुए उसी को सच्चा साथी मान कि तू अनेक झंझटों से घिरे रहने पर भी खिल कर रह सके तथा प्रियतम प्रभु को अपने चारों ओर आच्छादित देख सके। ऐसे में तू प्रति मुहूर्त खिलता रहेगा और आगे बढ़ता जायेगा—यथार्थ में तू सर और लता का उपासक भी तभी होगा।

७०५ दे कुछ दे। नहीं तो ले कुछ ले।

ऐ प्राणी ! या तो तू तेरे अन्तर के सारे अभावों को प्रभु के चरणों पर रख दे कि तू हल्का फुल्का रह पाये या प्रभु के भावों को ग्रहण कर ले कि तेरे जीवन में प्रकाश छा जाये। देख, जैसे-जैसे तू तेरे भावों को ईश्वर के समक्ष रखता जायेगा अथवा प्रभु के भावों को ग्रहण करने की इच्छा रक्खेगा वैसे-वैसे तू देख पायेगा कि ईश्वर तेरे समीप आता जा रहा है और जैसे-जैसे ईश्वर की महिमा तुझे दिखलाई देने लगेगी वैसे-वैसे तू अपना आपा भूलता जायेगा। अतः तू कोई भी राह से ईश्वर की समीपता पा ले—देकर पा ले या लेकर पा ले किन्तु पा ले—तभी तू ईश्वर को समीप देख पायेगा अन्यथा ईश्वर के नाम पर तू केवल बातें बनायेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं पायेगा।

७०६ राधा तू बाधा न बन। भय रत को अभय करना है।

ऐ प्राणी ! कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो प्यार की प्यास लेकर आते हैं, उनकी प्यास कुदरती होती है। जहाँ प्यार की ऐसी स्वाभाविक प्यास रहती है यथार्थ में वहीं राधा भाव है। देख, प्यार रुकना नहीं जानता, अनवरत बहना जानता है। यह मिल कर ही दम लेता है, जब तक मिलता (समाता) नहीं तब तक बहता ही रहता है। राधा भाव सबको प्रेम पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देता है। छोटे-छोटे बाहरी कारणों से भयभीत होकर जो रुक जाते हैं उनमें भी यह गति भरता है, उन्हें अभय बनाता है। देख, जिन्हें ऐसा भाव प्राप्त है उन्हें भी प्रकृति नहीं छोड़ती, उनके सम्मुख अनेक बाधायें उपस्थित करती है। किन्तु राधा भी यदि बाधा (भय) में अटकेगी तो वह सबको बाधा पहुँचायेगी। अतः राधा ! तू बाधा न बन, तू गंगा प्रवाहवत् आगे बढ़ती

जा कि सबके लिये प्रेरणा प्रदात्री बने अर्थात् भययुक्त प्राणी तुझे देखकर अभय भाव पा सकें ।

७०७ साधक को देख कर भी धक सा रह गया । तो या तो साधक नहीं या पहिचान नहीं ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की ओर बढ़ने वाले सभी साधक नहीं होते क्योंकि कुछ कार्यों को अपनाकर ईश्वर की ओर नहीं बढ़ा जा सकता, भाव से ही उसे पाया जा सकता है । देख, जिनके हृदय में भाव की जागृति हो जाती है वे ईश्वर भक्त अन्य धार्मिक कहलाने वालों से भिन्न होते हैं, उनके कार्य कुछ अटपटे रहते हैं । उनको वे ही पहिचान पाते हैं जो सत्य को जानने की जिज्ञासा रखते हैं, अन्य जन उन्हें सम्मुख देखते हुए भी नहीं पहिचान पाते । जो कार्यों के द्वारा ईश्वर को पाने की चेष्टा करते हैं उनके कार्य तो पूर्णतया सजे रहते हैं किन्तु उनका मन चञ्चल रहता है । वे ईश्वर के कार्य करते से दिखलाई देते हैं किन्तु उनकी वृत्तियाँ बाहर बिखरी रहती हैं । ऐसे जन सत्य के जिज्ञासु को आकृष्ट नहीं कर पाते, साधारण जन ही उनके कार्यों को देखकर भ्रम में पड़ सकते हैं । देख, साधक को देखने के लिये सत्य दृष्टि चाहिये अन्यथा साधक को पहिचानना कठिन होता है ।

७०८ मिल न सका जहाँ मेल था । कथन मात्र है । मेल क्या इतना सरल है ?

ऐ प्राणी ! जिसकी जैसी चाह होती है उसके अनुसार ही वह राह पाता है और उसी पर बढ़ता हुआ अभीष्ट को सम्मुख देख पाता है । कहीं-कहीं बातें अधिक होती हैं किन्तु चाह उस रूप से नहीं होती—वहाँ अभीष्ट की पूर्त्ति भी नहीं देखी जाती । यही कारण है कि जहाँ ईश्वर प्राप्ति की केवल बड़ी-बड़ी बातें रहती हैं वहाँ ईश्वर मिलन की स्थिति नहीं पाई जाती । देख, ईश्वर मिलन केवल बातों का विषय नहीं, ईश्वर की प्राप्ति के लिये तो पूर्णतया मिटना पड़ता है । जब तक अहं किंचित मात्र भी रह जाता है तब तक ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता । अतः तू बातें न बना, तू वह भाव प्राप्त कर जिसे अपनाकर ईश्वर से तेरा मेल हो जाये । अन्यथा तू बातें करके स्वयं को भी भुलावा देता रहेगा तथा अन्य के सम्मुख भी शेखी बघारता रहेगा ।

७०९ राम को पुकारना कैसा ? राम में आराम करे तो कहना न पड़े आ, राम।

ऐ प्राणी ! राम को पुकारना उन्हें पड़ता है जिन्होंने रमण करने वाले राम को जाना नहीं। जिन्होंने राम का परिचय पाया है एवं राम को अपना जाना है वे राम की दुनिया में बैठे आराम करते हैं, उन्हें राम को आवाज देकर बुलाना नहीं पड़ता, वे सर्वदा राम को साथ देखते हैं। देख, व्यक्ति जिन शरीर के साथियों को अपना मानता है उन्हें भी उसे नाम ले लेकर याद नहीं करना पड़ता उनकी याद रहती है फिर ईश्वर को ही नाम लेकर क्यों बुलाना पड़ता है ? देख, जब तक व्यक्ति ईश्वर को अपना नहीं जानता अर्थात् ईश्वर के लिये उसमें अपनापन नहीं आ जाता तब तक उसे ईश्वर के नाम पर अनेक क्रियायें करनी पड़ती हैं। किन्तु जिस दिन ईश्वर उसका अपना बन जाता है उस दिन ईश्वर की गोद में बैठा वह आराम पाता है।

७१० प्रार्थना—प्रथम में ना कहूँ तो प्रार्थना प्रारम्भ। ऐसा क्यों ? प्रेम के लिये या अर्थ के लिये—यह प्रार्थना ?

ऐ प्राणी ! प्रार्थना किसी कारण से नहीं की जाती, प्रार्थना करके भक्त का हृदय प्रमुदित होता है, वह उतनी देर के लिये अपने को भूल ईश्वर की दुनिया का आनन्द पाता है। प्रार्थना करते समय जब तक 'मुझे यह चाहिये और यह नहीं चाहिये' आदि ध्यान साथ रहते हैं तब तक यही समझना होगा कि अभी प्रार्थना प्रधान नहीं, उन वस्तु, व्यक्ति व भाव का ध्यान प्रधान है जिन्हें पकड़ने व छोड़ने की व्यक्ति बातें करता है। देख, प्रभु के लिये प्रार्थना करते समय केवल प्रभु ही सम्मुख चाहिये। ऐसे में प्रेम तुझे माँगना नहीं होगा प्रेम का प्रादुर्भाव स्वतः हृदय में होने लगेगा और वस्तु-व्यक्ति का ध्यान भी तुझे छोड़ना नहीं होगा, तू प्रत्येक कार्य करते हुए भी उनसे अलग रह सकेगा। अतः तू यदि प्रार्थना का आनन्द पाना चाहता है तो प्रार्थना में ही डूब जा कि तू ईश्वर की दुनिया की सच्ची अनुभूति पा सके। एक बार तू उस दुनिया का आनन्द पा जायेगा तो बार-बार उसे पाने के लिये तेरा मन ललचेगा और जिस दिन उस दुनिया को पाना ही तेरे लिये प्रधान हो जायेगा उस दिन तू सर्वथा अहंकार शून्य होकर प्रभु की दुनिया में ही बैठा मौज मनायेगा।

७११ पाप की कथा कह कर समय बरबाद न कर। यदि कथा से ही प्रेम—तो प्रेम की कह। भले मानुष कह कर क्या पायेगा ? कर कि जीवन ही बदल जाये।

ऐ प्राणी ! पाप की बातें करके ईश्वर को समीप नहीं पाया जा सकता,

इनके द्वारा तो केवल भय को अपनाया जा सकता है। अतः तू ईश्वर को करीब देखना चाहता है तो पाप की कथा में समय न गँवा, यदि तुझे कथा ही करनी है तो प्रेम की कर। प्रेम की कथा से तू प्रेम न भी पा सकेगा तो कम से कम ऊल-जलूल बातों से बचा रहेगा क्योंकि कथा चाहे पाप की हो चाहे प्रेम की हो, दोनों ही कथा है—कथा कभी दिल की व्यथा नहीं हरती। देख, हृदय की व्यथा मिटाने के लिये प्रेम करना पड़ता है। अतः तू प्रेम पथ का अभिलाषी बन एवं प्रभु से प्यार कर कि तू केवल बातों में समय न गँवाये, ईश्वर तेरे हर पल का साथी बन जाये और तू उसकी दुनिया में निश्चिन्त रह पाये।

७१२ पौंडीचेरी में ऐसा कमल खिला कि प्रेम चेरी हो गई। पौंड की चेरी तो कैसी पौंडी चेरी?

ऐ प्राणी! सत्य के पिपासु जहाँ भी बैठते हैं वहाँ का वातावरण रमणीय हो जाता है, वहाँ चारों ओर प्रेम का साम्राज्य फैल जाता है। उस वातावरण में जो भी प्रेम की इच्छा लेकर जाते हैं वे तृप्त होकर आते हैं। किन्तु ऐसा स्थान भी गन्दा हो जाता है जब प्रेम भिक्षुक के स्थान पर वहाँ धन इच्छुक एकत्रित होने लगते हैं। देख, स्थान विशेष का वातावरण तभी तक स्थायी रह सकता है जब तक प्रेम के पिपासु वहाँ रहते हैं। जब भिन्न-भिन्न प्रकार की भावना रखने वाले वहाँ एकत्रित हो जाते हैं तब पूर्व भाव वहाँ नहीं रह जाता क्योंकि स्थान का वातावरण सत्य के पिपासु के आगमन से प्रेमपूर्ण होता है और दृश्य जगत के आकर्षणों के पीछे मोहित होने वालों के आगमन से दूषित हो जाता है।

७१३ बेचैन को चैन कहाँ। गले की चेन ने ही बाँध रखा है, फिर दिल की चेन तो खींचने वाला ही जाने।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी के भीतर एक अज्ञात बेचैनी है, वह सब कुछ करते हुए भी एक जगह बेचैन है। इस बेचैनी को मिटाने के लिये अनजाने में ही उसके द्वारा अनेक उपक्रम होते हैं। कभी वह धन के पीछे भागता है, कभी जन के पीछे दौड़ता है, कभी मनोविनोद के साधन ढूँढ़ता है फिर भी उसकी बेचैनी ज्यों की त्यों बनी रह जाती है। ऐ प्राणी! धन-जन को देखते-देखते तू इनमें इतना धुल मिल गया कि दिल की कद्र करना ही भूल

गया। अब दिल यदि रोता भी रहे तो भी तू उसकी कद्र नहीं करता, केवल धन-द्रव्य जुटाने में ही लगा रहता है। अरे पगले! जहाँ दिल ही जिन्दा नहीं वह भी कोई जिन्दगी है। देख, तू आज भी जिन्दगी जीने के साज सजा ले अर्थात् दिल की कद्र करना सीख ले और इसके लिये तू उनके समीप बैठ जो जिन्दा दिल हैं। उनके समीप बैठकर शायद तू भी दिल की कद्र करना सीख जाये। तब तेरे लिये शरीर प्रधान नहीं होगा, तू उन्हीं भावों को प्रश्रय देगा जिनसे तेरे दिल में खरोंच भी न आये और तभी तेरे हृदय की विकलता भी शान्त हो सकेगी।

७१४ कहा कृष्ण से रथ चलाओ। कहा कृष्ण ने सारथी तो बनाया, स्वार्थी न बन जाओ।

ऐ प्राणी! ईश्वर की शरण ग्रहण करना एक बात है किन्तु ईश्वर के लिये समर्पित होना दूसरी बात है। देख, यों तो ईश्वर सबका संचालक है, एक पत्ता भी उसकी इच्छा के बिना नहीं हिलता किन्तु ईश्वर को संचालक के रूप में देख वे ही पाते हैं जो अपनी चिन्ता खुद नहीं करते अर्थात् जो ईश्वर के चरणों पर समर्पित हैं। जब तक व्यक्ति अपनी चिन्ता खुद करता है और ईश्वर से केवल सहायता चाहता है तब तक वह ईश्वर की शरण ग्रहण करने का पूर्ण आनन्द नहीं पाता। अतः तू यदि निश्चिन्त जीवन बिताना चाहता है तो उस कृष्ण को जान जो तेरे जीवन रूपी रथ को चला रहा है। जिस दिन तू उसे सारथी के रूप में देख पायेगा उस दिन तुझे उसके सम्मुख कुछ कहना नहीं होगा, तेरी चिन्ता उसकी चिन्ता होगी और तू निश्चिन्त रहकर गन्तव्य की ओर बढ़ता जायेगा।

७१५ प्रेमी देखे, प्रेमिकायें देखीं। प्रेम न पाया आनन में, हृद कानन में। कैसे प्रेमी? प्रेम ही जिनका जीवन मरण है। वे ही प्रेम में रमण करते हैं।

ऐ प्राणी! किन्हीं स्थूल कारणों (रूप, गुण, धन, ऐश्वर्य आदि) से आकृष्ट होकर होने वाला प्रेम प्रेम नहीं, यह तो स्थूल में स्थूल की पिपासा मात्र है। ऐसा प्रेम स्थायी नहीं होता, एक समय पश्चात् मिटता देखा जाता है। देख, प्रेम ईश्वर है, प्रेम का प्रादुर्भाव जब हृदय पटल पर होने लगता है तब जीवन प्रकाशित होने लगता है। वृत्तियाँ सत्य की ओर उन्मुख होने लगती

हैं और उन भावों से छुटकारा मिल जाता है जो अज्ञानता के कारण हृदय पटल पर छाये हुये थे। सुख मण्डल देदीप्यमान हो उठता है एवं हृदय कानन सुमधुर भावों से सज जाता है। प्रेमी जीता भी प्रेम के साथ है और मरता भी है प्रेम के लिये—ऐसा प्रेमी ही सच्चा प्रेमी है। जहाँ प्रेम का ऐसा रूप नहीं, वहाँ प्रेम का नाम है यथार्थ में प्रेम का स्पर्श भी नहीं।

७१६ प्रेम तुझ में, प्रेम मुझ में। जगा प्रेम समुद्र कि सीमा न रहे। पाँचों (समुद्र) एक में ही रम जायँ।

ऐ प्राणी! प्रेम कहीं से लाना नहीं है प्रेम लेकर तो प्रत्येक प्राणी पैदा हुआ है, किन्तु स्थूल आकर्षणों में खो जाने के कारण वह प्रेम को देख नहीं पाता। देख, प्रकृति का खेल कुछ ऐसा ही है, यह अपने में ही प्राणी को बिलमा लेती है। भूमिष्ठ होते ही प्राणी इसके चक्कर में ऐसा फँसता है कि पुरुष (प्रभु) की ओर देखना ही भूल जाता है। उसकी दृष्टि केवल पाँच तत्वों से बने शरीर के ही ईर्द-गिर्द चक्कर काटने लगती है। सौभाग्य से प्रेम की पिपासा यदि आज भी उसके हृदय में जागृत हो जाये तो उसका सोया प्रेम जाग जाये और वह प्रेम समुद्र को प्रत्यक्ष देख पाये। उस दिन इस शरीर का उसे अलग से ध्यान भी नहीं रखना होगा, प्रेम उसके रोम-रोम में हिलोरे मारने लगेगा और वह प्रेम समुद्र में अवगाहन का आनन्द भी ले पायेगा—सबसे प्रेम भी वह उसी दिन कर पायेगा।

७१७ सजा कर लाया है दिल ? फूल तो प्रकृति ने ही सजाये। हाथ की सफाई से कहीं दिल खिलता है ?

ऐ प्राणी! ईश्वर फूलों से खुश होने वाला नहीं उसे तो फूल की तरह खिला हुआ तेरा दिल चाहिये। देख, जिस दिन तू ईश्वर को अपना देख पायेगा और तेरे हृदय के भावों को उसके सम्मुख अर्पित कर पायेगा उसी दिन से यथार्थ में तेरी पूजा शुरू होगी। इसके पूर्व तो तू पूजा के कार्य करेगा, पूजा नहीं। अभी तू जो कुछ भी ईश्वर के नाम पर अर्पित करता है उसमें तेरा अपना कुछ भी नहीं है। देख, दिल के भाव ही तेरे अपने हैं, उन भावों से ही तू उसे पा सकेगा। अतः तू हाथ के कार्यों से अर्थात अक्षत माला फूल चन्दन आदि चढ़ाकर ईश्वर को खुश करने की चेष्टा न कर, तू वह भाव अपना जिससे तू दिल की कद्र कर पाये। उस दिन तेरा दिल फूल की तरह खिल जायेगा और चन्दन की तरह सुमधुर भावों से सुगन्धपूर्ण हो जायेगा। उन

भावों को प्रभु के चरणों में अर्पित करके ही तू वह भाव पा सकेगा जो अक्षत है अर्थात् जिसका नाश नहीं।

७१८ कहता था मैं तेरा हूँ। अब कहता है मैं मेरा हूँ। स्वार्थी ! तो तू स्वार्थ के लिये आया था, परमार्थ के लिये नहीं ? अब चलते चलाते क्यों पश्चाताप ?

ऐ प्राणी ! तू यहाँ आया तो था आनन्द लेने किन्तु आज तू रो रहा है। इसका कारण यह है कि तू जब यहाँ आया था तब कहता था 'मैं तेरा हूँ' किन्तु आज मुझे भूल गया है और कहता है 'मैं मेरा हूँ'। अब तू 'मैं-मेरे' के लिये परेशान हुआ चक्कर काट रहा है। तेरी भूख इतनी अधिक बढ़ गई है कि तू कुछ भी पाकर शान्त नहीं होता। देख, यह शरीर शरीर (शैतान) है, जब यह प्रधान हो जाता है तब इसके पीछे नाचते-नाचते प्राणी थक जाता है फिर भी यह शान्त नहीं बैठने देता। अतः तू इसे प्रधान न बना, तू जिस हेतु यहाँ आया था उसे याद कर कि यहाँ आने का आनन्द ले पाये। अन्यथा स्वार्थ के कारण तेरी आँखें बन्द हो जायेंगी और बन्द आँखों से शरीर के लिये दौड़ते-दौड़ते तू भीतर से टूट जायेगा और अन्तिम समय जब होश में आयेगा तब रक्षा के लिये तेरे पास कोई चारा नहीं रहेगा।

७१९ पत्थर पर न सो। पत्र पर न सो। यह तो मेरा प्रथम और अन्तिम शयन स्थान है। (पत्थर-मूर्त्ति, पत्र—कमल पत्र—बाल मुकुन्द)।

ईश्वर यों तो सर्वत्र व्याप्त है किन्तु दिन रात स्थूल में विचरण करते-करते व्यक्ति की दृष्टि इतनी स्थूल हो गई है कि वह सर्वत्र व्याप्त ईश्वर को देख नहीं पाता। उसके हृदय में जब ईश्वर दर्शन की अभिलाषा जागृत होती है तब वह प्रथम ईश्वर को मूर्त्ति के रूप में ही देखता है। जैसे-जैसे उसकी ईश्वर दर्शन की अभिलाषा तीव्र होती है वैसे-वैसे वह ईश्वर को विभिन्न रूपों में भी देख पाता है। ऐ प्राणी ! ईश्वर की मूर्त्तियाँ एवं चित्र ईश्वर की उद्दीपना के लिये होते हैं एवं विभिन्न भावों का दिग्दर्शन कराते हैं किन्तु व्यक्ति यदि उनमें निहित भावों की ओर न देख उनको देखने में ही रह जाये तो वह ईश्वर की महिमा से दूर ही रह जायेगा। देख, इन मूर्त्तियों में बसा भगवान कहता है कि "मैं पत्थर नहीं, मैं कोमल हूँ, कमल हूँ। यह चित्र

(कमल पत्र पर बालमुकुन्द) मेरा सन्देश देता है कि मैं कोमल हृदय में वास करता हूँ । जिनका हृदय स्थूल में रमण करते-करते पत्थर सदृश्य हो गया है उनके लिये मैं पत्थर ही रह जाता हूँ किन्तु जो मुझे मूर्त्तियों व चित्रों में देखकर ही तृप्त नहीं होते और सब प्रलोभनों को छोड़कर केवल मुझे पाना चाहते हैं वे मुझे चित्र में नहीं देखते, हृदय में देख पाते हैं । उस दिन मैं चित्र में निवास नहीं करता, भक्त का हृदय ही मेरा वासस्थान होता है ।

७२० वस्तु में बसा तेरा दिल, फिर क्यों कहता है बस तू मेरा है ? मैं तेरा यदि तू जाने तू माने । न कर बहाने, पछतायेगा, क्या पायेगा ?

ऐ प्राणी ! मैं सदा तेरे साथ हूँ किन्तु अभी तू मेरे साथ नहीं । तेरी दृष्टि अभी स्थूल जगत में लगी हुई है, स्थूल प्रलोभन तुझे अपने में बिलमाये हुए हैं । तू मुझे भूले-भटके भी याद करता है तो केवल स्वार्थपूर्त्ति के लिये, मुझे याद करते समय भी अभी तेरा ध्यान वस्तुओं में ही लगा रहता है । तू मुख से कहता है 'बस तू मेरा है' किन्तु तेरे दिल में यही रहता है कि ये धन-जन मेरे हैं अतः तू इनको कुछ देर के लिये भी नहीं भूल पाता । देख, मैं तेरा हूँ किन्तु तू मेरे साथ का आनन्द उसी दिन पा सकेगा जिस दिन तू मेरे साथ को जान जायेगा तथा जब मेरे लिये ही तेरा जीवन होगा । अरे पगले ! तुझे मिला हुआ समय बहुत कुछ बीत चुका है और जो कुछ बचा है वह बहुत कम है । तू इस बचे हुए समय का आज भी सदुपयोग कर ले और सब बहानों को छोड़कर मुझे याद कर ले अन्यथा तेरे पल्ले पछतावा ही शेष रहेगा, तू कीमती जीवन पाकर भी कोरा का कोरा ही रह जायेगा ।

७२१ अनोखी वही जो देखी नहीं, सुनी नहीं, कल्पना में आई नहीं । आज देख दिल को, कैसा अनोखा बैठा है, जिसे तू भूले वह तब भी तुझे याद करता, प्यार करता, क्योंकि उसका प्यार अनोखा, काम अनोखा ।

ऐ प्राणी ! तेरी दृष्टि में अनोखी वे वस्तुएँ हैं जिन्हें आँखों से तूने कभी देखा नहीं, जिनका नाम कभी सुना नहीं और जहाँ तेरी कल्पना पहुँच सकती नहीं । तेरी पहुँच अभी स्थूल तक है, तू स्थूल जगत के चमत्कारों में ही खोया हुआ है । तुझे मालूम नहीं कि सत्य जगत के चमत्कारों के सामने ये चमत्कार

जुगनू की चमक के समान हैं। देख, स्थूल जगत के चमत्कारों को तूने बहुत देख लिया, अब आज तू दिल की ओर भी देख। जब बाहर देखना छोड़कर तू भीतर की ओर देखेगा तब तेरी दुनिया बदल जायेगी। तू देख पायेगा कि तेरे दिल में एक ऐसा अनोखा साथी बैठा है जिसे तू भूल जाये तो भी वह तुझे याद करता है, केवल याद ही नहीं करता, सदा प्यार करता है क्योंकि उसका प्यार अनोखा है। उसका प्यार पाकर तेरी जिन्दगी ही सँवर जायेगी—बन्द आँखें खुलने लगेंगी एवं तुझे संसार का सही रूप दिखाई देने लगेगा—उसके अनोखे प्रेम को भी तू तभी देख पायेगा। अन्यथा उससे बिछुड़ा हुआ तू स्थूल के पीछे ही भागता रहेगा और एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा।

७२२ पानी से क्या नहीं धुलता ? प्रेम में क्या नहीं घुलता ? पत्थर। जरा हरिद्वार जाकर देख।

ऐ प्राणी! जैसे स्थूल जगत के लिये पानी की बहुत बड़ी आवश्यकता है वैसे ही सूक्ष्म जगत के लिये प्रेम की बहुत बड़ी आवश्यकता है। पानी की ताकत असीम होती है, यह केवल शरीर के मैल को ही नहीं धोता, पत्थर तक को भी घिस देता है—हरिद्वार की गंगा इसका ज्वलन्त उदाहरण है—प्रेम की भी यही बात है। प्रेम हृदय को केवल शुद्ध ही नहीं करता, प्रेम का स्पर्श जीवन ही बदल देता है, कठोर हृदय प्रेम को पाकर कोमल हो जाता है। अतः तू प्रेम पा, जैसे भी पा किन्तु प्रेम पा। देख, ऐसा प्रेम स्थूल सम्बन्धों में नहीं पाया जा सकता, हरि के द्वार पर ही पाया जा सकता है। तेरे हृदय की सच्ची चाह से ही तू प्रेम को पा सकेगा। जैसे-जैसे तू प्रेम बन्धन में बँधता जायेगा वैसे-वैसे तेरे अन्य बन्धन कटते जायेंगे और जिस दिन तू पूर्णतया प्रेम के लिये समर्पित हो जायेगा उस दिन तू ही नहीं, सब भी तुझसे लाभान्वित हो सकेंगे क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है।

७२३ प्रेम के जलन देखी ? देखी नहीं रे पागल, अनुभव की।

ऐ प्राणी! प्रेमी के हृदय में प्रति मुहूर्त्त प्रिय से मिलन के लिये जलन (बेचैनी) बनी रहती है। बाहर से वह सभी कार्य व्यवस्थित रूप से करता सा दिखलाई देता है किन्तु उसका हृदय घट बेचैनी से परिपूर्ण रहता है। उसे सोते-जागते, उठते-बैठते सभी अवस्था में बेचैनी घेरे रहती है जब तक कि वह प्रिय को पा नहीं जाता, प्रिय के चरणों में समा नहीं जाता। जब तक अपना थोड़ा भी अस्तित्व रहता है तब तक प्रेम को पूर्णतया नहीं पाया जा सकता,

प्रेम के लिये तो मिटना पड़ता है। जब अहं का सर्वथा अभाव हो जाता है तभी प्रेम का प्राकट्य होता है। देख, ऐसा प्रेम देखने के लिये नहीं होता, अपनाने के लिये होता है। अतः तू यदि कहीं ऐसे प्रेम के दर्शन कर पाये तो उसे केवल देखते न रहना, तू उन चरणों में झुक जाना। झुक कर तू देख पायेगा कि प्रेम तेरे सम्मुख ही नहीं, तेरे हृदय में भी विराजमान है। उसी दिन तू सही मायने में प्रेम का दरशन कर पायेगा अर्थात् प्रेम तत्व का अनुभव कर पायेगा।

७२४ अंगुली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा। पकड़ा नहीं। पहुँचनेवाला पकड़ता कब है वासना को। वह तो प्यार के हाथ बेच डालता है अपने को।

ऐ प्राणी! व्यवहार जगत में तो तू बहुत चतुर है, उसमें तुझे यदि अंगुली का सहारा भी मिलता है तो उसके सहारे तू पहुँचे तक पहुँच जाता है किन्तु सत्य जगत के लिये तुझमें वह बात नहीं। सत्य की ओर जब तेरे कदम उठते हैं तब तू थोड़ा सा पाकर ही तृप्ति मान लेता है परिणाम तुझमें तीव्रता नहीं रहती अतः सत्य पथ पर चलकर भी तू सत्य तक नहीं पहुँच पाता। देख, जिस दिन तेरा लक्ष्य सत्य की प्राप्ति हो जायेगा एवं तू सत्य भाव को पा जायेगा उस दिन तेरा जीवन प्यार के लिये होगा। तब तू स्थूल आकर्षणों को नहीं पकड़ेगा—जो तुझे कदम-कदम पर रोकते हैं तथा जिनके लिये तू मर मिटता है—तब प्यार ही तेरे जीवन का शृंगार होगा। प्यार का बिछोह तुझे एक पल के लिये भी नहीं भायेगा, इतना ही नहीं, प्यार के लिये तुझे मिटना भी पड़े तो तू हँसते-हँसते मिट जायेगा। अतः तू यदि सत्य पथ का पथिक है तो दो कदम चलकर ही सन्तोष न मान, तू अनवरत लक्ष्य की ओर बढ़ता चल कि तू प्यार की निधि पा जाये।

७२५ ये बासी हैं अब ताजी नहीं बासी हैं। तरो ताजा रहना है तो आजा सहज भाव में। तर भीतर, ताजा बाहर। बाहर की बहार चार दिन की।

ऐ प्राणी! जो इस संसार में आकर इसी को सत्य मान बैठते हैं और यहीं के हो जाते हैं वे तरोताजा नहीं रह पाते। वे ईश्वर के अस्तित्व को भूल जाते हैं एवं स्वयं को ही कर्त्ता मानकर दुःख-चिन्ता आदि अनेक भावों से

घिर जाते हैं। ऐसे जन के मुख की कान्ति खत्म हो जाती है और उनका जीवन जीवित लाश के सदृश्य हो जाता है। देख, ईश्वर को भुलाकर इस संसार में कहीं कुछ भी नहीं है। यदि समय विशेष के लिये व्यक्ति स्थूल आकर्षणों में खोकर अपने को भुलाने की चेष्टा भी करेगा तो भी वह खुश नहीं रह पायेगा, उसे उदासी फिर घेर लेगी क्योंकि बाहर की चकाचौंध स्थायी नहीं होती। अतः तू यदि हमेशा तरोताजा रहना चाहता है तो तू वह भाव पा जिसे पाकर तेरी खुशी अक्षुण्ण हो जाये। भीतर के उस भाव को पाकर ही तू बाहर भी तरोताजा बना रहेगा अन्यथा जोर-जबर्दस्ती करके तू स्वयं को खुश रखने की चेष्टा करता रहेगा यथार्थ में खुश नहीं रह सकेगा।

७२६ प्यार को क्या पार करेगा ? जब वासना में ही बसा हुआ है मन।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर चलकर भी तू जब तक शरीर का पुजारी है तब तक तू हाथ से ईश्वर के कार्य करता रहेगा किन्तु तेरा ध्यान धन-जन, मान-सम्मान आदि में लगा रहेगा, यहाँ तक कि तेरी पूजा भी प्रसिद्धि पाने के लिये होगी। ऐसी अवस्था में तू प्रेम का दरशन भी नहीं कर पायेगा। देख, ईश्वर तेरे हृदय के भाव देखता है एवं उसी के अनुरूप देता भी है। तेरे हाथ के कर्म तथा तेरे मुख की बातें ईश्वर नहीं सुनता उन्हें तो तू ही देखता सुनता है और तू ही फूलता भी है। अरे पगले ! तू सचमुच में प्रेम पाना चाहता है तो ईश्वर को बाहर नहीं तेरे भीतर देख। जिस दिन तू ईश्वर को भीतर देख पायेगा उस दिन तेरे बाहर भीतर के कार्य एक होने लगेंगे अर्थात् तू ईश्वर के सम्मुख तेरे दिल के भाव ही रख पायेगा। ऐसे में ईश्वर से तुझे प्यार हो जायेगा और यथार्थ में उसी दिन तू प्रेम पथ का पथिक होगा। प्रेम के अभाव में तू ईश्वर के नाम का सहारा लेकर भी सदा वासना पूर्त्ति में ही लगा रहेगा।

७२७ क्षेत्रज्ञ बना, जब क्षेत्र जाना कर्म मर्म का। छत्र धारण किया जब मन का राजा हुआ। देव, देवी अराधना में लगे उसके, आज वह राजा है प्रेम राज्य का, जहाँ भगवान भी भिक्षुक बनें। प्रेम किसे अप्रिय है ? अप्रिय उसके लिये, जिसके प्रिय न हो राम बैदेही।

ऐ प्राणी ! सच्चा ज्ञान उन्हें ही प्राप्त है जिन्होंने इस कर्मभूमि में आने के

मर्म को जान लिया है। उनका आगमन यहाँ शरीर रक्षा के लिये नहीं होता, जनहित के लिये होता है। उनके लिये सभी अपने होते हैं अतः उनके द्वारा जो भी कर्म होते हैं वे सबके हित के होते हैं। वे मन के इशारे पर नहीं चलते, मन उनके इशारे पर चलता है क्योंकि वे अन्तर की प्रत्येक गतिविधि को बाहर की वस्तुओं की तरह देख पाते हैं—ऐसे जन ही श्रेष्ठत्व को पाते हैं। उनकी आराधना व्यक्ति ही नहीं करते, देवी-देवता भी उनके दरशन को तरसते हैं क्योंकि उनको जो प्रेम राज्य प्राप्त है वह देवी-देवताओं को भी नहीं। देख, प्रेम के भिक्षुक तो भगवान भी हैं। भगवान सदा प्रेम के लिये तरसते रहते हैं। भगवान को धन-जन देने वाले तो बहुत रहते हैं किन्तु प्रेम से हृदय में बसाने वाला एक सन्त ही होता है। ऐसा प्रेम किसे नहीं भाता, सभी ऐसे प्रेम के लिये तरसते हैं। किन्तु जिनकी आँखें अभी ईश्वर से विमुख हैं एवं जो स्थूल प्रलोभनों के पीछे भाग रहे हैं वे ही अज्ञानतावश प्रेम से कतराते हैं। अभी उन्हें मालूम नहीं कि प्रेम कुछ छीनता नहीं, जीवन दान करता है—यथार्थ में प्रेमी ही जीता है।

७२८ अरी सीता, राम का प्यार देखा ? तू तो धरती में समा गई लाज से किन्तु अब राम कहाँ समाये ? वह जल समाधि लेगा तेरे वियोग में।

ऐ प्राणी ! प्रेमी भक्त का जीवन प्रिय के लिये होता है, प्रिय के बिना वह जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। वह प्रिय की प्रत्येक गतिविधि से प्रेम का आभास पाता रहता है, यहाँ तक कि प्रिय की अप्रिय वारदात भी उसे प्रेम का सन्देश देती है। उसे कोई भी चेष्टा (साम, दाम, दण्ड, भेद) प्रिय से अलग नहीं कर सकती क्योंकि प्रिय ही उसके लिये सर्वस्व होता है, प्रिय को बाद करके उसकी अपनी अलग कोई हस्ती ही नहीं होती। ऐसा प्रेमी लोगों के सम्मुख ही आदर्श नहीं होता, प्रिय भी उसका साथ पाकर निहाल हो जाता है। किन्तु प्रेम के साथ ही जीने मरने वाले की दुनिया में भी जब लोक लज्जा प्रवेश कर जाती है तब प्रिय का हृदय रोने लगता है। वह भीतर ही भीतर तड़प उठता है पर अपने दिल की व्यथा वह किसे सुनाये, किसे दिखाये ? देख, 'ईश्वर' जो प्रेम का दाता है, जिसे कोई भी बन्धन नहीं बाँध सकते वह भी प्रेम का भिखारी है, प्रेम का वियोग उसके लिये असहनीय होता है। अतः तू यदि ऐसा प्रेम पा जाये तो बाहर की बातों पर ध्यान देकर कभी प्रिय से

दूर न हो जाना चाहे तुझे कितनी भी यातनाएँ क्यों न सहनी पड़े—तभी तेरा प्रेम सार्थक होगा।

७२९ राम के पास लक्ष्य था लक्ष्मण था। भरत तो भक्ति में रत था, वहाँ शत्रुघ्न भी सेवा में लगा था। दास और दासी तो थे हनुमान और सीता। एक ने दिल चिर कर दिखलाया राम को और एक ने दिल में बसाया राम को। दिखाती किसे, धरती में समा गई। दुनिया देखे प्यार कैसा होता है।

ऐ प्राणी! राम का साहचर्य वे ही पा सकते हैं जिनका मन राम के चरणों में लगा रहता है एवं राम को पाना ही जिनके जीवन का लक्ष्य रहता है। अन्य जन दूर से ही ईश्वर की भक्ति, सेवा, पूजा आदि कर सकते हैं, ईश्वर की समीपता का आनन्द नहीं ले पाते। राम के चरणों में बैठ कर सेवा करने का सुअवसर उन्हें भी मिलता है जिनके रोम-रोम में राम बसा हुआ है। चूँकि उनका जीवन राम के लिये ही होता है अतः वे राम की शरण पा ही जाते हैं। देख, प्यार दिखाने का नहीं होता फिर भी प्यार छुपता नहीं, वह किसी न किसी तरह, कोई न कोई कारण से दुनिया के सम्मुख आ ही जाता है। दुनिया आश्चर्यचकित हो ऐसे प्यार को देखती रह जाती है, इतना ही नहीं, ऐसा प्यार सदा-सदा के लिये पूजनीय हो जाता है।

७३० धन की कहानी में हानि है या लाभ यह तुम्हीं जानों। तुम धन्य हो जिसने प्राण धन पाया।

ऐ प्राणी! धन साधन है, तू इसे साध्य बना कर अपना कीमती समय बरबाद न कर अन्यथा यहाँ कुछ पाने के लिये आया हुआ तू सब कुछ खोकर चला जायेगा। देख, इसे लक्ष्य बनाकर तू अन्तिम समय ही कष्ट नहीं पायेगा, तू आज ही विचार भावों से गिर जायेगा और आज से ही कष्ट पाता रहेगा। सब कुछ मिलते रहने के पश्चात् भी तेरा हृदय अभाव से घिरा रहेगा जिसके कारण तेरी बेचैनी बढ़ती जायेगी। अतः तू विचार कर कि धन की कहानी में हानि है या लाभ? यदि हानि है तो तू जीवन की कीमत कर। देख, तुझे मिला हुआ यह जीवन साधारण नहीं, यही वह जीवन है जिसके द्वारा प्राण धन (ईश्वर) को पाया जा सकता है। अतः तू प्राणों की कीमत कर कि तू अपने रूप को जान पाये तथा रूप के अनुरूप हो जाये। सच्चे धन को पाने के

पश्चात् ही अन्य आकर्षण भी तुझे लुभा न सकेंगे और तभी तेरा जीवन आनन्द रूप हो सकेगा।

७३१ खुशामद मनुष्य की नहीं। खुश हो तो आमद हो आनन्द की।

ऐ प्राणी! देने वाला व्यक्ति नहीं, देने वाली वह शक्ति है जो सदा तेरे साथ है। तू उस शक्ति को भुलाकर जन-जन का मुखापेक्षी न बन। देख, मनुष्य की ताकत ससीम है और उस अज्ञात सत्ता की ताकत असीम है। यदि तू असीम को भुलाकर ससीम की ओर देखने लगेगा तो तू जो कुछ पा सकता है या जो कुछ तेरे पास है उसे नहीं जान सकेगा, तू दिन ब दिन निर्बल, असहाय व कमजोर होता चला जायेगा और तेरी खुशी खत्म हो जायेगी। अतः तू जरा जरा सी बातों के लिये दूसरों की खुशामद न कर, तू शान्त रहकर प्रत्येक स्थिति का अवलोकन कर कि तू स्वस्थ भावों का धनी बने और खुश रह पाये। देख, ऊँची-नीची सभी परिस्थितियों में खुश रहने वाला आनन्द का अधिकारी होता है। वह सभी स्थितियों का कर्त्ता ईश्वर को देख पाता है अतः ईश्वर की दुनिया का आनन्द पाता है। अन्य जन भाग्य को व ईश्वर को कोसते रहते हैं एवं सहारे के लिये मनुष्य की ओर देखते रहते हैं।

७३२ सुदामा के पास दाम थे प्रेम के, तभी तो कृष्ण ने चरण पखारे।

ऐ प्राणी! प्रेम धन सब धन से बड़ा है, प्रेम धन के सामने अन्य सभी धन छोटे हैं। स्थूल धन की पहुँच स्थूल तक ही है किन्तु प्रेम धन की पहुँच शरीर से परे है। जहाँ अन्य धन साथ नहीं देते वहाँ प्रेम धन साथ देता है। देख, जिसे बड़े-बड़े जपी, तपी नहीं पा सकते, वह ईश्वर भी इस प्रेम धन के आधीन है। वह अन्य ऐश्वर्य को नहीं देखता, केवल प्रेम को देखता है। प्रेमी के चरणों तले वह अपना हृदय बिछा देता है और यही कारण है कि निर्धन सुदामा ने भगवान कृष्ण का प्यार पाया। देख, प्रिय का प्यार पाकर प्रेमी भक्त के सम्मुख अभाव नहीं रह जाते, वह प्रिय की दुनिया में बैठा, प्रिय के गुणानुवाद गाता हुआ जीवन व्यतीत करता है।

७३३ बेच न मन को शान्ति रोती रहेगी।

यह मन मुक्त भी करता है एवं बन्धन में भी बाँधता है। जब यह स्थूल

के पीछे दौड़ना शुरू करता है तब इसके साथ दौड़ते-दौड़ते तन थक जाता है किन्तु मन नहीं थकता। मन की दौड़ से थक हार कर व्यक्ति अशान्त हो जाता है, उसका जीवन पशुवत् बन जाता है। ऐसे में वह शान्ति चाहते हुए भी शान्त नहीं हो पाता, शान्ति दूर खड़ी उसके समीप आने के लिये रोती रहती है। इस अवस्था का जिम्मेदार उसका मन रहता है, केवल मन के इशारे पर नाचते रहने के कारण वह बन्धनों में बँधता जाता है। ऐ प्राणी! मन की दौड़ मस्ती पाने के लिए होती है किन्तु उसे मालूम नहीं कि मस्ती मिलेगी कहाँ? अतः वह अनजाने में ही भटक जाता है। देख, मन को जब तेरी देखरेख व तेरा प्रेम प्राप्त होगा तब उसकी दौड़ बदल जायेगी, तब मन तेरा सहयोगी होगा और तेरे साथ उन्हीं रास्तों पर कदम बढ़ायेगा जहाँ मस्ती पायेगा। ऐसे मन का साथ पाकर शान्ति तेरी चिर संगिनी होगी और तू मुक्ति का आनन्द पायेगा।

७३४ पूजा प्रेम श्रद्धा का प्रकाश रूप है यदि ऐसी मान्यता है तो पूजा यथार्थ पूजा, यदि प्रदर्शन है तो दर्शन दुर्लभ प्रिय का।

ऐ प्राणी! पूजा अन्य कार्यों की तरह काम नहीं, पूजा एक ऐसा काम (भाव) है जो सही दृष्टि देता है। पूजा करने से कर्त्तापन के भाव लुप्त होने लगते हैं एवं ईश्वर ही कर्त्ता के रूप में दिखलाई देने लगता है। ऐसे में हृदय में प्रेम के भाव उत्पन्न होने लगते हैं एवं श्रद्धा के भावों का आगमन होने लगता है। यदि पूजा में इन भावों का उदय नहीं होता तो पूजा भी अन्य कामों की तरह एक काम बनकर रह जाती है। ऐसी पूजा से ख्याति पायी जा सकती है किन्तु ईश्वर को समक्ष नहीं पाया जा सकता। कण-कण में व्याप्त ईश्वर तब आँखों से ओझल ही रह जाता है और जब ईश्वर आँखों से ओझल रहता है तब प्रेम श्रद्धा के स्थान पर अनेक कुत्सित भाव हृदय में स्थान पाने लगते हैं। अतः तू प्रजा को कभी प्रदर्शन के लिये सम्पादित न करना, सदैव प्रेम श्रद्धा को पाने के लिये पूजा करना कि तेरा हृदय प्रेम पा जाये तथा श्रद्धा से सज जाये—उसी दिन तू पूजा के महत्व को जान सकेगा।

७३५ खिल न सका तो कैसा फूल? बना हुआ क्यों दिल का शूल? क्यों बकता है ऊल जलूल? पा जाये तो है मशगूल।

ऐ प्राणी! तेरा यह जीवन फूल की तरह है और यह तुझे खिलने के लिये मिला है किन्तु खिलने के लिये आया हुआ तू यदि खिल न सका तथा घर-

परिवार, धन-जन आदि में ही लगा रहा तो तू मुरझाता ही चला जायेगा। देख, यहाँ हृदय कमल उनका ही खिलता है जो हृदय की कद्र करते हैं अर्थात् उन भावों को नहीं अपनाते जिन्हें अपनाकर दिल रोता है और सदा उसी राह पर बढ़ते हैं जिस पर चलकर उनके दिल की सुरक्षा होती है। यदि तू स्वार्थ के वशीभूत होकर उस राह को छोड़ बैठेगा तो तेरा दिल रोता रहेगा और तू चार चीजें इकट्ठी करके अपने आपको ऊँचा-बड़ा समझता रहेगा। अरे पगले! ईश्वर से विमुख होकर तू अपनी ही नजरों से गिर जायेगा, तू एक मिनट भी चैन नहीं पायेगा केवल अपने आपको भुलावा देता रहेगा। अतः तू उसे पा ले जो तेरा सच्चा साथी है। उसका साथ पाकर तेरा हृदय कमल खिल जायेगा, इतना ही नहीं, तू वह भाव पा जायेगा जिसे पाकर तृप्ति तेरी साथिन बनेगी।

७३६ गैर में रमी तो गर्मी, सर लगा प्रेम का तो सर्दी न तरसा तो बरसा, सिर दे तो शरद, है नहीं अन्त तो हेमन्त। बस अन्त माने तो बसन्त।

ऐ प्राणी! ऋतु परिवर्तन प्रकृति का नियम है। ये विभिन्न ऋतुएँ समय-समय पर अपना भिन्न-भिन्न रूप लेकर उपस्थित होती हैं। ये ऋतुएँ बाहर (प्रकृति में) ही नहीं, अन्तर में भी देखी जाती हैं। जो प्राणी गैर में रमा होता है अर्थात् सहारे के लिये अन्य का मुख देखा करता है वह सदा अस्त-व्यस्त (गर्मी में) रहता है। जिसके हृदय में सन्त की प्रेम भरी वाणी का वाण लग जाता है वह चैन से रहता है। जैसे जाड़े में खाना, पहनना व सोना सभी का आनन्द मिलता है वैसे ही वह प्रत्येक स्थिति का आनन्द पाता है। ईश्वर को जो सदा साथ देख पाते हैं उनके जीवन में अभाव का नामोनिशान नहीं रह जाता, वे स्वयं भी आनन्द में रहते हैं एवं वाणी द्वारा सब पर भी आनन्द की वृष्टि करते रहते हैं। जो सर्वथा अहंकारशून्य होकर जीते हैं उनका जीवन शरद ऋतु की तरह सुहावना हो जाता है। वे सर्वदा ईश्वर की महिमा देखते रहते हैं, उसका कहीं अन्त नहीं पाते परिणाम उनके जीर्ण-शीर्ण विचार स्वतः झड़ जाते हैं। उनके जीवन काल में एक दिन ऐसा भी आ जाता है जब ईश्वर के सिवा अन्य आकर्षण सम्मुख नहीं रह जाते। देख, जब सभी आकर्षणों का अन्त हो जाता है और ईश्वर को पाना ही जीवन का लक्ष्य होता है तभी जीवन में बसन्त (हरियाली) का आगमन होता है।

७३७ बाज आ हरकतों से, आवाज आ रही है प्रिय की।

प्रत्येक प्राणी के भीतर सत्य विराजमान है, वह हमेशा सबके अन्तर की गतिविधि को देख रहा है तथा सदा सत्य निर्देश देता रहता है। उसका निर्देश सच्चा रहता है तथा प्राणी मात्र की भलाई के लिये होता है किन्तु स्वार्थ से आवद्ध प्राणी उसकी आवाज को सुनकर भी अनसुनी करता रहता है। ऐ प्राणी ! उस सच्चे साथी की आवाज को तू कभी न नकार, उसे नकार कर तू कहीं का नहीं रहेगा। देख, वह तुझे गुमराही से हमराही बनाने वाला है। उसका साथ पाकर तेरी स्वार्थ पूर्ण हरकतें खत्म हो जायेंगी। अतः तू उसे अपना मानकर उसकी आवाज सुन। जब वह तेरा अपना होगा तब तू उससे सदा प्रेरणा पाता रहेगा। उसके संरक्षण में रहकर तू कभी गलत कार्य नहीं कर पायेगा और न गलत भावों को हृदय में प्रश्रय दे पायेगा। तेरी उल्टी सीधी हरकतें भी उस दिन खत्म हो जायेंगी और तू अन्तर की उस आवाज के सहारे सदा आगे बढ़ता जायेगा।

७३८ न रख (प्रेम) तो नरक। स्वयं गर्क तो स्वर्ग।

ऐ प्राणी ! वस्तु-व्यक्ति, धन-जन आदि का सुख शरीर को मिलता है, ये केवल स्थूल की जरूरतें पूरी करते हैं। इनको पाकर ऐसा लगता है कि 'अब पाने के लिये कुछ भी नहीं रह गया, सारे सुख मेरी मुट्ठी में आ गये हैं' किन्तु दूसरे ही क्षण हृदय विकल हो जाता है क्योंकि इनको पाने के पश्चात् भी हृदय खाली ही रह जाता है। देख, हृदय प्रेम का भूखा है, इसे प्रेम चाहिये ! प्रेम के अभाव में यह भीतर ही भीतर रोता रहता है, छटपटाता रहता है परिणाम जीवन नरक बन जाता है—ऐसा जीवन तो जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं होता। अतः तू यदि सुख से जीना चाहता है तो केवल स्थूल के पीछे न दौड़, उन भावों (प्रेम) को भी ग्रहण कर जिन्हें अपनाकर तेरा हृदय सज जाये। जिस दिन बाहर की ओर देखना छोड़कर तू हृदय की कद्र करना सीख जायेगा, भीतर डूब पायेगा उस दिन तू सच्चा सुखी होगा अर्थात् तू स्वर्ग में होगा।

७३९ कुछ बह आया तो दिल बहलाया।

ऐ प्राणी ! हृदय परिवर्तन अपने बल पर सम्भव नहीं है। अपने बल पर व्यक्ति कुछ कार्य बदल सकता है, भाव नहीं बदल सकता और 'भाव बदले बिना

हृदय परिवर्तन नहीं होता। हृदय बदलने के लिये सन्त का साथ चाहिये। सन्त का हृदय शुद्ध, सरल व प्रेम से लबालब भरा रहता है। देख, जब तुझमें उनके चरणों के प्रति सच्ची निष्ठा होगी तथा उनके भावों को पाने के लिये ललक होगी तब उनके भाव उनके समीप ही नहीं रह जायेंगे वे तेरे समीप भी बह कर आ जायेंगे। उन भावों को पाकर ही तू तृप्त हो सकेगा अन्यथा अतुल धन-सम्पदा का स्वामी होने पर भी तेरा दिल रोता रहेगा। अतः तू झुक कर सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर कि तू वह भाव पा जाये जिसे पाकर हृदय में प्रेम का प्रवाह होने लगे तथा तेरा दिल सज जाये।

७४० वह लाया (प्रेम संदेश) तो दिल बहलाया।

ऐ प्राणी! सन्त प्रेम की मूर्त्ति होते हैं, उनका इस संसार में पदार्पण प्रेम वितरण के हेतु होता है। जो यहाँ आकर यहीं के हो गये हैं, अपने रूप को, अपने घर को एवं अपने प्रेम को भूल बैठे हैं उनमें प्रेम की ज्योति जलाकर उनकी खोई सुध-बुध को याद दिलाने के लिये ही वे आते हैं। जब ऐसी प्रेम की मूर्त्ति के दरशन व्यक्ति पा जाता है तब उसकी दुनिया ही बदलने लगती है। उसका दिल जो कुछ भी पाकर तृप्त नहीं होता था, वह उन चरणों का आश्रय पाकर तृप्ति पाता है। खाली जीवन भरने लगता है एवं श्रद्धा प्रेम आदि भाव हृदय पटल पर आच्छादित होकर सदैव सुख पहुँचाने लगते हैं। किन्तु यह सब होता है तभी जब सन्त उसके हृदयासन पर विराजमान होता है। अतः तू यदि कहीं ऐसी प्रेम भरी वाणी सुन पाये तो उस वाणी को केवल कान में स्थान न देना, उसमें निहित भाव को हृदय में जगह देना कि तू सन्त वाणी का लाभ उठा पाये।

७४१ मेहरी कहता है? मैं हरि। मैं मेहरी उनकी जो हरि को जानें हरि को मानें।

ऐ प्राणी! ईश्वर को 'दास' कहने के अधिकारी वे ही भाग्यवान नर हैं जिन्होंने ईश्वर की महिमा को जाना है एवं ईश्वर को जीवन अर्पण किया है। ईश्वर ऐसे भक्तों का दास होता है। देख, ईश्वर को कोई बन्धन नहीं बाँध सकते किन्तु प्रेमी भक्तों के हाथ तो वह बिक जाता है। उनके लिये जब जिस रूप की जरूरत रहती है उसे वही रूप धारण करना पड़ता है। अतः जब तक तू ईश्वर का अपना न बन जाये तब तक ईश्वर को दास न कह अन्यथा तू ईश्वर का वह 'दास' रूप कभी नहीं देख पायेगा। इसके लिये प्रथम तू

हरि की शरण ग्रहण कर, फिर उसकी हरियाली को रोम-रोम में अनुभव कर, तत्पश्चात् उसके प्रति समर्पित हो कि तू ईश्वर की मेहरबानी देख पाये, ईश्वर तेरी मेहरी (दास) बन जाये ।

७४२ साधक ! प्रेम रोग—प्रेम योग—पूर्ण योग । साधना अवस्था विशेष ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का नाम सभी लेते हैं किन्तु कुछ के जीवन का लक्ष्य ही ईश्वर को पाना रहता है । उन्हें स्थूल आकर्षण अपनी ओर खींच नहीं सकते, उनके अन्तर में सदैव सत्य प्राप्ति की चाह बनी रहती है । उनकी यह चाह ही उनके लिये रास्ते बनाती है जिन पर बढ़ते हुए वे सत्य तक पहुँचते हैं । उनकी चाह विभिन्न रूपों में सम्मुख आती है । प्रथम उनके अन्तर में तड़प पैदा हो जाती है और वह तड़प उन्हें तब तक चैन नहीं लेने देती जब तक कि वे प्रेम के अवतार (सन्त) के दर्शन पा नहीं जाते । प्रभु को सम्मुख पाने के पश्चात् भी उनके भीतर एक अज्ञात बेचैनी रहती है, वह बेचैनी पूर्ण योग होने के लिये होती है । देख, साधक को पहले प्रेम रोग लगता है, फिर प्रेम योगी के दर्शन होते हैं किन्तु प्रेम के अवतार को सम्मुख पाकर भी अर्थात् प्रेम योग होने के पश्चात् भी वह बेचैन रहता है जब तक कि वह प्रेम को रोम-रोम में व्याप्त नहीं देख पाता अर्थात् ईश्वर से उसका पूर्ण योग नहीं हो जाता । साधना की अवस्था विशेष में वह दिन भी जल्दी ही आ जाता है जब उसका अस्तित्व पूर्णतया मिट जाता है अर्थात् वह ईश्वर रूप हो जाता है । प्रारम्भ में साधक, साधन व साध्य तीन दिखाई देते हैं किन्तु अन्त में केवल एक साध्य ही शेष रह जाता है ।

७४३ पानी में प्राण देखा । पत्थर में आग । मनुष्य में भगवान । किन्तु तुझ में प्राण है, अग्नि है, भगवान है फिर भी पत्थर बना बैठा है ।

मनुष्य विवेकशील प्राणी है । प्राण प्रत्येक जीव को प्राप्त है किन्तु विवेक केवल मनुष्य को प्राप्त है । इस विवेक के द्वारा मनुष्य ने स्थूल जगत में बड़े-बड़े अनुसन्धान किये हैं । उसने पानी में प्राण देखे हैं, पत्थर में आग पाई है, इतना ही नहीं, मनुष्य में भगवान देखा है । किन्तु बाहर देखते देखते वह बाहर में इतना मशगूल हो गया कि स्वयं को देखना ही भूल गया है । उसे मालूम

नहीं कि जिन्हें वह बाहर देखता है वे प्राण, अग्नि व भगवान उसमें भी विद्यमान हैं। प्राणों से उसमें चेतना है तथा अग्नि (तेज) उसे कुछ कर गुजरने को प्रेरित कर रही है तथा ईश्वर सत्य निर्देश दे रहा है। ऐ प्राणी ! तू अपनी शक्ति को भूल गया है और जड़ वस्तुओं के पीछे भाग रहा है इसीलिये तेरी भावनाएँ भी जड़वत् (पत्थर सदृश्य) हो गई हैं। आज भी तू यदि होश में आ जाये तो अपनी खोई शक्ति को पुनः पा जाये। अतः अपनी शक्ति के जागरण के लिये तू भावयोगी के समीप बैठ कि तू स्थूल से ऊपर उठ पाये तथा अपने भावों को जागृत देख पाये—उसी दिन तेरा मनुष्य होना सार्थक होगा।

७४४ जल पवित्र, स्थल पवित्र, नभ पवित्र, अनल पवित्र, प्राणदायक वायु पवित्र फिर तू क्यों अपवित्र ? कारण बता।

ऐ प्राणी ! यह शरीर जिन पाँच तत्वों से बना है वे पाँचों के पाँचों तत्व (पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि) पवित्र हैं। इन पाँच तत्वों के द्वारा ही यह शरीर गतिमान है और इन पाँच तत्वों पर ही यह ठहरा हुआ है फिर भी मनुष्य अपने को अपवित्र मानता है। देख, तू अपवित्र है नहीं, तू अपवित्र भावों से घिर गया है और इसी कारण तू स्वयं को अपवित्र समझता है। अतः भाव बदलने के लिये तू उनका साथ ग्रहण कर जो शुद्ध बुद्ध हैं। उनका साथ तेरी सोयी भावना को जगा देगा, फिर तू देख पायेगा कि तू अपवित्र नहीं तू शुद्ध बुद्ध (पवित्र) है। अपने रूप को पहिचान कर तू साधारण नहीं होगा, तू उस शक्ति का मालिक होगा जो कभी क्षीण होने वाली नहीं और उसी दिन इन पञ्च तत्वों का साथ पाना भी तेरे लिये शुभकारी बनेगा।

७४५ पाप पुण्य का जिम्मेदार तू है तो तेरा भगवान क्या घास छीलेगा ?

ऐ प्राणी ! तू अनन्य भाव से ईश्वर की शरण ग्रहण कर क्योंकि ईश्वर ही तेरा अपना है। ईश्वर की ओर देखना छोड़कर तू यदि अपनी ओर देखने लगेगा तो अभाव से घिरता चला जायेगा तथा धर्म के नाम पर अनेक कर्मों को अपना बैठेगा। किसी कार्य में तू पुण्य देखेगा तथा किसी में पाप खोजेगा और इन पाप पुण्य के झगड़ों में पड़ा हुआ तू ईश्वर के अस्तित्व से दूर होता चला जायेगा। ऐसे में केवल शरीर तथा शरीर द्वारा किये गये कर्म ही तेरे लिये प्रधान रह जायेंगे। देख, जो ईश्वर से दूर होते चले जाते हैं, पाप

में उसके हृदय की मधुरता खत्म होने लगती है। देख, मधुरता 'मैं' में नहीं तू (शरणागति) में है। अतः तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू ईश्वर की रचना को जान पाये। तब वे भाव जो मधुरता में बाधक हैं तेरे समीप नहीं होंगे, रहेगी केवल मधुरता जिसका आनन्द तू भी पाता रहेगा तथा वे भी पाते रहेंगे जो मधुरता के इच्छुक हैं।

७६७ वेश देखकर ही आवेश में आ गया। भाव नहीं, भावावेश में नहीं तो वेश की शोभा कैसी ?

ईश्वर मिलन के लिये वेश सजाना ही पर्याप्त नहीं हृदय का प्रेम पूर्ण भाव भी चाहिये, जब तक प्रेम पूर्ण भाव नहीं तब तक वेश केवल साधन है। ऐ प्राणी ! तू वेश देखकर या वेश सजाकर कहीं उनमें ही न अटक जाना अन्यथा तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। देख, तू हमेशा वेश की कीमत भाव से करना, भाव की कीमत करने से तू कभी धोखा नहीं खायेगा। तब तू न किसी वेशधारी को देखकर ही आवेश में आयेगा और न कभी झूठा वेश ही धारण कर पायेगा—तू उन्हीं चरणों में सर झुकायेगा जहाँ तुझे भाव मिलेगा और उसी वेश को अपनायेगा जिसे अपनाने से भाव की उद्दीपना होती हो। उसी दिन तू यह भी देख पायेगा कि जहाँ भाव नहीं, भावावेश नहीं ऐसा वेश तो केवल साधन है जिसे साध्य मानकर प्राणी केवल बाहर के साज सजाता है किन्तु सत्य से दूर ही रह जाता है।

७६८ दो का झगड़ा कैसे मिटे ? जब दो रहेंगे तो झगड़ा भी रहेगा और प्यार भी।

ऐ प्राणी ! 'भक्त और भगवान' कहने के लिये दो रहते हैं यथार्थ में एक होते हैं। यदि भक्त न आये तो भगवान को जानेगा ही कौन और भगवान न रहे तो भक्ति का जागरण होगा ही कैसे। भक्त का इस धरा पर आगमन केवल लोक शिक्षण के लिये होता है। भक्त साधारण प्राणी की तरह खाते-पीते, सोते-जागते व उठते बैठते हुए कुछ ऐसे भावों को हृदय में धारण किये रहता है जो उसे आनन्द देते रहते हैं। ईश्वर प्रेम भी उसमें अन्य भावों की तरह सहज रहता है। वह शरीर के साथियों की तरह ईश्वर से कभी प्यार करता है एवं कभी झगड़ा करता है। उसका यह सहज प्रेम भक्ति के इच्छुक प्राणियों में नवचेतना भरता है, वे ऐसे सहज प्रेम को देखकर प्रेम पाने के लिए

उत्सुक होते हैं। देख, भक्त का भगवान से यह प्रेमपूर्ण झगड़ा एक अरसे तक ही रहता है। कुछ समय पश्चात् वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब भक्त के रोम-रोम में ईश्वर का आधिपत्य छा जाता है। उस दिन झगड़ा खत्म हो जाता है या यों कहा जाय कि भक्त ही भगवान हो जाता है।

७६९ उम्मीद उससे जो पूरी करे। जो अधूरा हो, चक्कर काटे, उससे उम्मीद कैसी ?

ऐ प्राणी ! उम्मीद उससे ही रखनी चाहिये जो पूरी कर सकता हो, जो पूरी न कर सके उससे उम्मीद रखना अल्पज्ञता है। देख, जिन साथायों से तू उम्मीद रखता है वे तो स्वयं किसी की उम्मीद के सहारे जीते हैं। वे अभी मझधार में हैं, उनका सहारा लेकर तू भी मझधार में होगा। अतः तू यदि उम्मीद ही रखता है तो पूरे (ईश्वर) से रख जिससे तेरी उम्मीदों पर पानी न फिरे। अन्यथा जो अधूरे हैं एवं स्वयं चक्कर काट रहे हैं उनके पीछे भागता दौड़ता हुआ तू भी चक्कर में पड़ जायेगा। उनकी ओर देखने से तेरे दिल के अरमान दिल में ही धरे रह जायेंगे किन्तु तू यदि पूरे की शरण पा गया तो तेरी दुनिया बदल जायेगी। उसकी शरण में बैठकर तृप्ति तेरी साथिन बनेगी और तेरे जन्म-जन्मान्तर के चक्र खत्म हो जायेंगे क्योंकि आज तूने उसे पा लिया है जिसे पाने के लिये तेरा आगमन हुआ था।

७७० मेरा दिल न तोड़, आँखें न ले, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? तै ने दिल लिया, आँखें लीं और देखा पर समझ कर। मैंने बिगाड़ा नहीं, समय दे रहा हूँ जिसे तू मृत्यु समझता है।

जो पूरी जिन्दगी विषय भोगों के पीछे दौड़कर व्यतीत कर देते हैं उनके समीप जब बुढ़ापा आता है तब वह उनके लिये बहुत कष्टकारी होता है अतः वे ईश्वर को कोसने लगते हैं। बुढ़ापे में सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं कुछ भी नया अर्जित करने की शक्ति मनुष्य में नहीं रह जाती, पूरी जिन्दगी जिन भाव विचारों के साथ व्यक्ति जीता है केवल वे ही भाव सम्मुख रह जाते हैं। किन्तु ईश्वर बड़ा दयालु है वह कहता है—ऐ प्राणी ! तूने इतना कीमती दिल पाया फिर भी उसकी कद्र नहीं की, तू सदा ऐसे कार्य ही करता रहा जिनसे तेरा दिल दुःखे। तूने आँखें पाईं किन्तु उनकी भी कीमत नहीं समझ पाया, तू उनसे स्थूल को ही पकड़ने की चेष्टा करता रहा और यदि मुझे भूले-

भटके देखा भी तो पराया समझ कर इसीलिये आज तू रो रहा है। देख, अब भी घबड़ाने की कोई बात नहीं, मैं तुझे एक बार फिर अवसर (मनुष्य जन्म) दे रहा हूँ। इस अवसर को मृत्यु समझ कर तू भयभीत न होना, इसे तू मेरी मेहरबानी जानना कि मृत्यु तेरे लिये दुःखदायी न बने—तू इसे हँसते-हँसते गले लगा सके।

७७१ प्यार क्या दिखाने की वस्तु है ? वह तो छिपाये छिपता नहीं, कोई करके देखे। मजनू का नाम भी आज मजनू बना देता है जहाँ हाय लैला ही महावाक्य था। लय पर आ या संगीतमय जीवन के लिये लय ला। मजनू है ही दिल।

ऐ प्राणी ! प्यार सुवासित फूल की तरह है। जैसे फूल की सुगन्ध छुपती नहीं वैसे ही प्यार भी छुपता नहीं। प्यार का प्राकट्य जब हृदय पटल पर हो जाता है तब जीवन में मधुरता भरने लगती है और एक दिन ऐसा आता है जब जीवन बगिया महक उठती है। प्यार दिखाने की वस्तु नहीं है फिर भी प्यार कभी छुपता नहीं, इसकी सुवास चारों ओर फैल ही जाती है, इतना ही नहीं, प्यार अनेकों के दिल पर अपनी छाप छोड़ जाता है—ये अनेक वे हैं जो प्यार के साथ जीने की इच्छा रखते हैं। देख, आज भी मजनू का नाम हृदय में प्यार की उद्दीपना करता है तथा प्यारमय जीवन जीने की प्रेरणा देता है। तू भी यदि संगीतमय जीवन का अभिलाषी है तो या तो तू जहाँ प्यार की झलक देख पाये उन प्यार के रास्तों पर कदम बढ़ा या तू हृदय को प्रेमपूर्ण बना ले—दोनों ही अवस्था में तू देखेगा कि तेरे भीतर का सोया प्यार उमड़ रहा है। प्यार जब तेरे रोम-रोम में बस जायेगा तब तेरा जीवन दूसरा होगा।

७७२ प्रेम की प्रतीति ने प्रतिमा बनाई प्रीति की और कहा—प्रीति की इति नहीं, अन्तिम घड़ियाँ प्रेमपूर्ण होगी। प्रेम पूर्ण है, अपूर्ण प्राणी है क्योंकि 'पूर्ण योग' के प्रेम को नहीं जाना।

ऐ प्राणी ! आँखों से दिखलाई पड़ने वाली प्रत्येक चीजें मिट जाती हैं किन्तु प्रेम कभी मिटता नहीं क्योंकि प्रेम 'पूर्ण' है। जिन्होंने प्रेम के दरशन पाये हैं तथा प्रेम को हृदय में बसाया है उन महान आत्माओं का अन्तिम काल (मृत्यु) कष्टप्रद नहीं होता, उनकी वह वेला मिलन की वेला रहती है, वे तब शरीर रूपी वस्त्र को छोड़कर प्रिय में समा जाते हैं। उनका प्रेम शरीर

जाने के पश्चात् भी खत्म नहीं होता, वह सदा-सदा बना रहता है। देख, जब तक प्राणी का प्रेम से पूर्ण योग नहीं हो जाता तब तक प्राणी शरीर से बद्ध रहता है अर्थात् अपूर्ण रहता है। प्रेम ही वह भाव है जो उसे स्थूल से उठाकर उस दुनिया का वासी बनाता है जहाँ प्रेम के सिवा किसी की भी पहुँच नहीं। उस दिन उसकी सारी क्रियाएँ प्रेम के साथ होती हैं, प्रेम के बिना वह श्वाँस भी नहीं ले पाता। ऐसा है यह प्रेम जिसे हृदय में बसाकर ही जाना जा सकता है।

७७३ कामना की इच्छा ने कहा—कामना तीव्र इच्छा सामान्य। व्रती बन तीव्रता आई। यह इच्छा तो छाई मात्र है। क्या काम आई ?

ऐ प्राणी ! विषयों की कामना तेरे रोम रोम में समायी हुई है, तेरे सोते जागते उठते बैठते का ध्यान विषय हैं। तेरी कितनी भी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं फिर भी उतनी की उतनी तेरे सम्मुख खड़ी रहती हैं, इन कामनाओं का कहीं अन्त नहीं आता। देख, कामनाएँ जिस तीव्रता से तुझमें समायी हुई हैं अन्य इच्छाओं का अभी वह रूप नहीं। जब तक अन्य इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी वैसी ही तेजी नहीं आ जाती तब तक उनकी पूर्ति सम्भव नहीं, चाहे तू उन इच्छाओं का कितना ही बृहद वर्णन क्यों न करे। देख, जिस दिन इच्छा की पूर्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य बन जाती है उसी दिन इच्छा पूरी होती है। अतः जिन भाव विचारों को तू जीवन में मूर्त्त देखना चाहता है उन्हें पाने के लिये तू दृढ़ प्रतिज्ञ हो कि तू उन्हें प्रत्यक्ष पा सके अन्यथा तीव्रता के अभाव में तू भाग्य को व भगवान को ही कोसता रह जायेगा—तेरी इच्छा पूर्ति कभी नहीं हो सकेगी।

७७४ प्रणय प्रण में अन्तर है ? प्रण ने प्रणय को प्राणों में बसाया। प्रण सफल प्रणय कब विफल और प्राण तो विकल ही रहते यदि प्रण न होता प्रणय न होता।

ऐ प्राणी ! प्रणय (प्यार) हृदय को सजाता है किन्तु प्रणय को प्रण ही प्राणों में बसाता है। जब तक प्रणय की प्राप्ति के लिये प्रण नहीं ठन जाता तब तक प्राणी प्रणय को दूर ही देखता रहता है प्राणों में नहीं पा सकता। देख, प्रण अवश्य सफल होता है यदि उसमें अहम् न हो। जिसके हृदय में

प्रणय को पाने के लिये ऐसा अहंकार शून्य प्रण पलता है उस प्राणी को कोई ताकत झुका नहीं सकती, कोई प्रलोभन डिगा नहीं सकते। ऐसे व्यक्ति का ही प्रण सफल होता है एवं ऐसे व्यक्ति का हृदय ही प्यार से सजता है—प्यार उसका श्रृंगार हो जाता है। प्यार उसके जीवन के हर पल पर छा जाता है तथा जीवन को रंगीन बना देता है। देख, जब तक व्यक्ति प्यार नहीं पा जाता तब तक वह जिन्दा लाश होता है जिसमें श्वाँस तो रहते हैं किन्तु जिन्दादिली नहीं रहती अतः वह हर समय विकल बना रहता है। यह प्यार ही है जो उसे जिन्दगी जीने की राह बताता है।

७७५ सौन्दर्य माया का खेल है तो नारायण क्या करता है? देखने वाला भी चाहिये न। नारायण देखता रहा और कहता रहा नर से तू भी मेरी तरह देख।

ऐ प्राणी! यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर की मनमोहक कृति है इसीलिये यह अपनी ओर खींचती है। देख, इसके सौन्दर्य का पान वे ही कर पाते हैं जिन्होंने इसके सृजनकर्त्ता को जाना है। किन्तु जो ईश्वर को भुलाकर इसकी रूप सज्जा को देखते हैं वे इसी में खो जाते हैं और इसे पाने की चेष्टा में लगे आनन्द की जगह कष्ट पाते हैं। यह प्रकृति दूर से सभी के लिये आनन्दवर्द्धक है किन्तु इसे पाने की भूल करने वालों के लिये यह विष से भी भयानक है। इसे कोई पा तो सकता ही नहीं फिर भी नादानी के कारण जो इसे पाना चाहते हैं वे इससे मिली चोटों से क्षत-विक्षत हो जाते हैं। अतः तू इस प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द ले किन्तु इसे अपना बनाने की चेष्टा न कर, तभी तू इस हरी-भरी भूमि का रसास्वादन करता हुआ सदा हरा-भरा रह सकेगा।

७७६ प्रेम बिन्दुओं ने श्रम बिन्दुओं को पराजित किया।

ऐ प्राणी! प्रेम बिन्दु श्रम बिन्दुओं से बली हैं। श्रम शरीर द्वारा किया जाता है, श्रम से स्थूल की ही उपलब्धि होती है और स्थूल की ही पूर्ति होती है किन्तु प्रेम केवल शरीर को ही सुख नहीं पहुँचाता, अन्तर में भी तृप्ति देता है। देख, अन्न-धन आदि साधन पाने के पश्चात् भी व्यक्ति जब तक प्रेम नहीं पा जाता तब तक ये साधन उसे सुख नहीं पहुँचा सकते, केवल सुविधा दे सकते हैं। प्रेम ही वह भाव है जिसे पाने के पश्चात् सभी चीजों का रूप बदल जाता है। प्रेम परमेश्वर है, प्रेम पाकर ही श्रम भी सार्थक होता है अन्यथा

प्रेम के अभाव में शरीर द्वारा श्रम करके भी मैं के कारण व्यक्ति कष्ट पाता रहता है। यही कारण है कि श्रमजीवी को भी एक दिन लाचार होकर ईश्वर प्रेमी की शरण लेनी पड़ती है।

७७७ तू कैसा प्राणी है जिसके प्राण कभी अभाव में कम्पित होते तो कभी भाव में विभोर होते? खेल देखना तुझे पसन्द नहीं।

ऐ प्राणी! भिन्न-भिन्न स्थितियाँ एवं भिन्न-भिन्न भाव विचार जीवन में आते-जाते रहते हैं। ये सड़क पर आने जाने वाले पथिक की तरह हैं। किन्तु तू आते-जाते विचार भावों का खेल नहीं देखता, तू उन्हीं में घुल मिल जाता है और इसीलिये न भाव को सहन कर पाता है और न अभाव को—अभाव में तू रोने लगता है तथा भाव में विभोर हो जाता है। देख, भाव और अभाव दोनों को ही शान्त रहकर देखने की आवश्यकता है। जिस दिन तेरे जीवन का लक्ष्य सत्य को पाना होगा उस दिन तू वह दृष्टि पा जायेगा जिसे पाकर तू भाव और अभाव दोनों के ही खेल देखते हुए सत्य की ओर बढ़ता जायेगा—न अभाव ही तुझे अपने में अटकायेगा और न भाव को ही देखकर तू बह जायेगा, तू देखेगा केवल सत्य की ओर, उसे देखने में ही तू सुख पायेगा।

७७८ झूलन में भी जिसका दिल घबड़ाये उसे क्या कहा जाये? जरा सहन करे तो झूलन प्रसन्नता का कारण बने।

ऐ प्राणी! एक रस में आनन्द नहीं, आनन्द विभिन्नता में है। जीवन में भी उतराव-चढ़ाव (विभिन्न भाव) आनन्दवर्द्धन के लिये आते हैं किन्तु तू उन्हें सुख दुःख का नाम देकर हँसने रोने लगता है, उनका आनन्द नहीं ले पाता। देख, झूले में बैठने वाला बच्चा प्रथम झूले को कभी ऊपर कभी नीचे जाते देखकर घबड़ाता है किन्तु कुछ समय पश्चात् वह उसका आदी हो जाता है तथा झूले का आनन्द लेने लगता है। जिस दिन तू भी सहनशीलता पा जायेगा उस दिन ऊँची-नीची परिस्थितियाँ तुझे डगमग नहीं कर सकेंगी। तब तू देख पायेगा कि सभी स्थितियों में अलग-अलग रस होता है तथा रसपूर्ण जीवन के लिये ये स्थितियाँ (उतराव-चढ़ाव) अति आवश्यक हैं—उसी दिन तू जीवन के प्रत्येक क्षण से झूलन का आनन्द भी पाता रहेगा।

७७९ उर्वर—उर वर जिस उर में वर रहता है—स्मृति रहती है ।

ऐ प्राणी ! जमीन वही उपजाऊ होती है जो हमेशा जोती-वोयी जाती है। किसान के हर समय का ध्यान ही जमीन को उपजाऊ बनाता है अन्यथा उपजाऊ होने पर भी जमीन यों ही पड़ी रह जाती है। देख, हृदय भी हरा-भरा उन्हीं का रहता है जो हृदय की कीमत करते हैं। ऐसे जन किसी भी ऐसे कार्य को नहीं कर पाते जिससे उनके हृदय में चोट पहुँचे एवं किसी भी ऐसे भाव को नहीं अपना पाते जिससे उनका हृदय मैला हो। वे सब कार्यों का कर्त्ता ईश्वर को देखते हैं एवं ईश्वर की स्मृति को हृदय में संजोये हुए ही जीवन यापन करते हैं। चिन्तन मनन की धारा सदैव उनके अन्तर में प्रवाहित होती रहती है। ऐसे उर (हृदय) में ही वर (प्रभु) को स्थान मिलता है एवं प्रभु की स्मृति बनी रहती है—उसी हृदय में विशेष भावों का आगमन भी होता है अर्थात् वही हृदय उपजाऊ होता है।

७८० संत का पंथ सत्य पथ जिसमें आराधना स्वयं की। जप, तप, योगी ? प्रेम प्रवाह प्रधान, भाव ही महान।

ऐ प्राणी ! सन्त किसी मत विशेष का अनुयायी नहीं होता वह सत्य का उपासक होता है। सत्य धर्म का झण्डा हाथ में लिये वह सत्य पथ पर निर्द्वन्द बढ़ता जाता है। सन्त बाहर के निर्देश पर नहीं चलता, सदा अपने भीतर से ही निर्देश पाता रहता है। जप, तप, योग धारण करने वाले जिस प्रेम को लाख चेष्टाओं के बावजूद भी नहीं पा सकते, उस प्रेम का प्रवाह उनमें सहज रहता है। वे ईश्वर को बाहर नहीं, अपने भीतर सदा साथ देखते हैं। वे जहाँ बैठते हैं वहाँ भाव उनके साथ रहता है। भाव उनके स्वभाव में ऐसा घुल-मिल जाता है कि भाव है कि स्वभाव यह जानना कठिन होता है। ऐसे सन्त के सभी कार्य प्रेरणावर्द्धक होते हैं।

७८१ कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें समझ पाना समझ से परे है किन्तु हार कब मानी, बार-बार आता है और जाता है, प्रश्न का उत्तर आज भी प्रश्न ही है।

ऐ प्राणी ! तेरा इस संसार में आगमन ईश्वर प्राप्ति के लिये होता है किन्तु बुद्धि की मेहरबानी एवं संसार का आकर्षण कुछ ऐसा है कि यहाँ

आकर 'सत्य' आँखों से ओझल रह जाता है तथा असत्य ही सत्य सा प्रतिभासित होने लगता है और असत्य के पीछे कूदता फाँदता तू एक दिन संसार से विदा हो जाता है। किन्तु ईश्वर बड़ा दयालु है, वह तेरी भूल को सुधारने के लिये तुझे बार-बार मौका देता है। देख, आज तुझे फिर यह मौका मिला है किन्तु आज भी तू सत्य से विमुख है। आज भी जीवन, जगत एवं ईश्वर सब तेरे लिये प्रश्न ही बने हुए हैं क्योंकि तू इन्हें सदा बुद्धि से ही समझने व पकड़ने की चेष्टा करता रहा जबकि इन्हें समझ पाना मन बुद्धि से परे है। देख, तुझे मिला हुआ यह कीमती अवसर फिर चूक जायेगा और तू चूक की हूक से बेचैन होगा। अतः तू पहले ही सन्त का संग कर ले एवं उनके समीप बैठकर उनके भावों को पा ले। तब तू वह दृष्टि पा जायेगा जो तेरे प्रश्नों का सही उत्तर देगी अर्थात् तू देख पायेगा कि "जीवन धारण करके तू इस जगत में ईश्वर मिलन के लिये आया है"। ईश्वर का साथ पाकर तेरा जीवन तथा तेरा संसार सभी रंगीन हो जायेंगे।

७८२ फुरसत—प्राण पखेरू फुर से उड़ गये अब सत में मिले तो फुरसत मिले।

ऐ प्राणी! विश्राम (फुरसत) शरीर के लिये ही आवश्यक नहीं, मन प्राणों के लिये भी आवश्यक है किन्तु विश्राम वे ही पाते हैं जिनका लक्ष्य सत्य को पाना है। ऐसे जन को स्थूल व्यक्ति-वस्तु आदि अपने में नहीं उलझा सकते, वे जब तक पृथ्वी पर रहते हैं तब तक भी आनन्द पाते हैं तथा जब यहाँ से जाते हैं तब सानन्द सत्य में समाहित हो जाते हैं। वे ही इस धरा पर पुनः लौट कर नहीं आते, पूर्ण विश्राम (फुरसत) पाते हैं। देख, यहाँ लौट कर वे ही आते हैं जो यहाँ आने के उद्देश्य को भूल जाते हैं और स्थूल में ही भटक जाते हैं। अतः तू प्राण पखेरू उड़ने के पहले ही सत्य को पा ले कि तेरी जीवन यात्रा सफल हो क्योंकि जो शरीर रहते सत्य से जुड़ जाते हैं वे ही शरीर जाने के पश्चात् सत्य में मिलते हैं। यदि शरीर रहते तू सत्य को नहीं जान पायेगा तो अधूरे में ही प्राण पखेरू फुर से कब उड़ जायेंगे—तू जान भी न पायेगा और सत्य मिलन के लिये आया हुआ तू सत्य से दूर ही रह जायेगा।

७८३ जाति तो जाती रहती जब प्रेम न होता। किन्तु यह बन्धन क्यों? प्रेम स्वतंत्र जाति-पाँति कैसी?

ऐ प्राणी! तू साधारण नहीं, तू सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि तू मनुष्य है। अपने

श्रेष्ठत्व को भूलकर तू जाति के बन्धन में न बँध, क्योंकि जाति से कोई श्रेष्ठ व क्षुद्र नहीं होता। देख, जाति का प्रेम एक सीमित दायरे में बाँधता है और विकास में बाधा देता है। जब जाति के प्रति भाव बदलने लगते हैं तब जाति जाती रहती है अर्थात् जाति केवल घर-परिवार का संकेत मात्र रह जाती है। अतः तू जाति-पाँति से प्रेम न कर, तू अपनी जाति (श्रेष्ठत्व) को पहिचान और मनुष्योचित कार्य कर कि तू मनुष्य कहलाने के योग्य बने। प्रेम ही वह साधन है जिसे अपनाकर तू अपने रूप को पहिचान सकेगा एवं अपनी खोई शक्ति को पा सकेगा। अतः तू प्यार कर कि तू जाति-पाँति के बन्धन से उबर पाये और अपनी सही जाति (श्रेष्ठत्व) को पा जाये।

७८४ भिखारी यदि सच्चा भिखारी है तो सत्य छिपा नहीं रह सकता अन्तर में। उसकी आकुल पुकार दर दरवाजा खोल देती है।

ऐ प्राणी! स्थूल की ताकत सीमित है, इसे अधिक से अधिक पाकर भी व्यक्ति एक जगह कमजोर (भिखारी) रहता है और सहारे के लिये उसे अन्य का आश्रय लेना पड़ता है। देख, धन-जन से तेरी भूख कभी मिटने वाली नहीं और न दुःख दारिद्र ही मिटने वाला है अतः तू धन-जन के पीछे न भाग, तू सत्य का भिखारी बन। जिस दिन सत्य को पाने के लिये तू सच्चा भिखारी होगा उस दिन सत्य तुझसे छुपा नहीं रह सकेगा, तेरी आकुल-व्याकुल पुकार तेरे लिये उन रास्तों को खोल देगी जिन पर कदम बढ़ाता हुआ तू एक दिन सत्य तक पहुँच जायेगा। जब तक तू धन-जन का पिपासु बना रहेगा तब तक सत्य के दरवाजे तेरे लिये बन्द रहेंगे क्योंकि सत्य का दरवाजा सत्य के जिज्ञासुओं के लिये ही खुलता है। अतः तू धन-जन को जीवन का लक्ष्य न जान, तू सत्य पथ पर कदम बढ़ा कि तू सत्य को तेरे अन्तर में ही प्रतिष्ठित देख पाये—तेरा जीवन सर्वांगीन सज जाये, तू कहीं से भी कमजोर न रह जाये।

७८५ पहले मान, फिर अनुमान की बातें स्वयं ही अदृश्य हो जायेंगी।

ऐ प्राणी! अनुमान पर वे चलते हैं जिनके अन्तर में सत्य को जानने की जिज्ञासा नहीं। ऐसे जन ईश्वर का केवल नाम लेते हैं एवं विश्वास की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं किन्तु वह भाव नहीं पाते जो ईश्वर की समीपता से पाया

जा सकता है। उन्हें परिस्थितियाँ अपना दास बना लेती हैं, वे उन्हीं के इशारे पर कभी रोने लगते हैं एवं कभी हँसने लगते हैं। देख, ईश्वर अनुमान की चीज नहीं, ईश्वर वह ठोस सत्य है जिसे अपनाकर व्यक्ति अद्भुत शक्ति का स्वामी होता है। तब उसे बड़ी से बड़ी परिस्थितियाँ भी नहीं हिला सकतीं। अतः तू ईश्वर के नाम पर अनुमान से न चल, तू ईश्वर के अस्तित्व को जानने की इच्छा रख। तेरी चाह से ही तू उसे सम्मुख देख सकेगा और जिस दिन तू उसे देख पायेगा उस दिन तेरी काल्पनिक सभी बातें खत्म हो जायेंगी। तब जो कुछ भी तेरे सम्मुख रहेगा वह सत्य रहेगा जिससे तुझे कोई नहीं डिगा सकेगा।

७८६ कही (बात) और अदृश्य में अंकित हुई। गंभीर भाव तो प्रभाव छोड़ गये।

मुख से जितनी भी बातें निकलती हैं उन बातों के साथ कुछ भाव भी रहता है। 'बातें' कहने के साथ-साथ खत्म हो जाती हैं किन्तु उनमें निहित गंभीर भाव खत्म नहीं होते, वे अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं। जो ऐसा समझते हैं कि—केवल शब्दों को सजा लिया जाये, भीतर के भावों को कौन देखता है—वे भूल करते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि प्रकृति अपने पास कुछ भी नहीं रखती, प्रत्येक चीजों को सहस्र गुणा करके लौटा देती है। ऐ प्राणी! तेरे भले व बुरे भाव भी तेरे ही समीप लौटकर आने वाले हैं, वे खत्म होने वाले नहीं। अतः तू उन भावों को ही धारण कर जो तुझे देखने व सुनने में भले लगते हैं। उन भावों को धारण करके तेरी दुनिया सज जायेगी, उनसे तू भी आनन्द पाता रहेगा और जो उन भावों के अभिलाषी होंगे वे भी सुख पाते रहेंगे। यदि तू उन्हें नहीं अपनायेगा तो लोगों से प्रशंसा पाने को उत्सुक केवल शब्द सजायेगा। ऐसे में समय विशेष के लिये तू बुद्धि का आनन्द पायेगा किन्तु तेरा दिल कोरा का कोरा रह जायेगा। अतः तू उन भावों का अभिलाषी बन जो तेरे हृदय को सजायें। तब तेरे शब्द जैसे भी होंगे वे अदृश्य में विलीन हो जायेंगे किन्तु उनके माध्यम से जो भाव बाहर आयेंगे उसका सभी आनन्द ले पायेंगे।

७८७ प्रति पल आवागमन। शब्दों का, विचारों का, कुछ द्रवीभूत कर गये वृत्तियों को और कुछ उपद्रवी भाव जागृत कर गये।

व्यक्ति सदा विचारों से एवं शब्दों से घिरा रहता है। उसके भीतर

प्रतिपल विचारों का आवागमन होता रहता है तथा बाहर शब्दों का। ये विचार और शब्द कभी भी उसे खाली नहीं छोड़ते। ये भिन्न-भिन्न प्राणी में भिन्न-भिन्न रूप में पाये जाते हैं। जिसके भाव जैसे रहते हैं उसी के अनुरूप उसके विचार व शब्द भी रहते हैं। कुछ के विचार व शब्द हृदय में कोमल भावनाओं को जन्म देते हैं तथा कुछ के (विचार व शब्द) हृदय को गन्दा करते हैं। जो सत्य भावों से सुसज्जित हैं उनका क्षण भर का मिलन भी सुख देता है और जो दुष्ट भावों से आबद्ध हैं उनका कुछ देर का सम्पर्क भी हृदय को कलुषित करता है, उनके साथ से वे उपद्रवी भाव जो सुप्त हैं, जाग जाते हैं। अतः ऐ प्राणी ! तू उन सन्तों का साथ ही ग्रहण करना जिनके विचार उच्च हैं एवं जिनके शब्द हृदय विदारक हैं कि तेरे भाव भी बदल जायें। जब भाव बदल जायेंगे तब तेरे विचार व शब्द भी सजे हुए होंगे जो तुझे सदा आनन्द प्रदान करते रहेंगे।

७८८ गोद में मोद है। गोद मा की, प्रभु की। वासना प्रेम की बात नहीं।

ऐ प्राणी ! ईश्वर तेरी माँ है। बच्चा जैसे माँ की गोद में सुख पाता है वैसे ही तू भी ईश्वर की गोद में ही सुख पायेगा। ईश्वर को भुलाकर तू यदि शरीर का दास बन जायेगा तो कितने ही सुख-सुविधा के साधनों को जुटाकर भी तू दुःखी ही बना रहेगा क्योंकि तेरी जरूरत स्थूल के साधन ही नहीं, कुछ और भी है। किन्तु उस जरूरत को तू जान नहीं पाता अतः उसकी पूर्त्ति के लिये स्थूल में ही भटकता रह जाता है और यही कारण है कि तेरे हृदय की विकलता कभी खत्म नहीं हो पाती। देख, इस विकलता को तुझे शान्त होकर देखना होगा और तभी तू जान पायेगा कि यह विकलता ईश्वर से विमुखता के कारण है। जिस दिन तू इस विकलता का राज जान जायेगा उस दिन तेरी दुनिया बदल जायेगी। उस दिन से तू ईश्वर की गोद में ही मोद पायेगा, ईश्वर को बाद करके तू एक क्षण भी व्यतीत करना नहीं चाहेगा। तेरा ईश्वर भी तब तुझसे जुदा नहीं रहेगा, तू जहाँ भी बैठेगा वहीं उसकी गोद होगी और उसी का साया तेरे सर पर लहराता रहेगा।

७८९ हृदय स्पर्श कर प्रभु के पदों से। रोम-रोम पुलकित हो जाये।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की शरण रोम-रोम में आनन्द की अनुभूति भरने वाली

है। ईश्वर को वाद करके यदि कोई इस संसार में आनन्द पाना चाहता है तो यह उसकी अल्पज्ञता है क्योंकि ईश्वर के विना यहाँ आनन्द है ही नहीं। यहाँ आनन्द उन्होंने ही पाया है जिन्होंने दुनिया के व्यवहारों को प्रधानता नहीं दी, इसे बनाने वाले (ईश्वर) को प्रधानता दी—केवल प्रधानता ही नहीं दी, उसे हृदय में बसाया। उनका हृदय हमेशा प्रभु के चरणों का स्पर्श पाता रहा अतः वे यहाँ सदा प्रमुदित होते रहे। देख, ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है किन्तु ईश्वर को देख वे ही पाते हैं जो प्रथम उसे हृदय पटल पर आच्छादित पाते हैं—वे ही जीवन का आनन्द ले पाते हैं। अन्य जन सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर को सर्वव्यापी कहते देखे जाते हैं किन्तु उसका कण मात्र भी आभास नहीं पाते और उसकी दुनिया में बैठे हुए भी रोते रहते हैं। अतः तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तेरा हृदय कमल खिल जाये तथा रोम-रोम प्रभु के प्यार से सज जाये।

७९० धन ही यदि जीवन को धन्य बनाता तो शायद कुछ लोग तो सुखी होते। किन्तु हुआ कहाँ? प्रभु का प्रसाद प्रसन्नता है।

ऐ प्राणी! धन साधन है। इसके जरिये केवल शरीर को सुख मिलता है, शरीर से आगे इसकी पहुँच नहीं। देख, धन से जीवन को धन्य समझने वाले अभी भूल में हैं, उनकी यह भूल एक दिन उनको ही भारी पड़ने वाली है क्योंकि धन ने आज तक किसी को सुखी नहीं बनाया। यदि धन से ही सुख मिल जाता तो कुछ संख्या में तो लोग सुखी होते किन्तु ऐसा होता कहाँ है—बड़े-बड़े धनी-मानी व्यक्ति भी अन्तर से दुःखी देखे जाते हैं। देख, सच्चा सुख प्रभु के चरणों में है। प्रभु के चरणों में बैठकर व्यक्ति सच्ची आँखें पाता है, सच्चे भाव पाता है एवं सच्ची सृष्टि पाता है। उसकी दुनिया सत्य से सजने लगती है तथा असत्य भाव घटने लगता है—वह प्रत्येक अवस्था से सुख पाने लगता है। अतः तू यदि प्रसन्नता का अभिलाषी है तो जीवन को प्रभु के चरणों पर अर्पित कर कि तेरा जीवन प्रभु का प्रसाद बन जाये और तू चिर सुखी हो सके।

७९१ अब मिलना दूर, जब मीलों दूर। मिलो—न हिलो न डुलो।

ऐ प्राणी! तू सभी चीजों को अपने करीब देखता है और जो सबसे करीब है, तेरे श्वाँसों-प्राणों में स्थित है उसे दूर देखता है। तेरी इसी भावना के

कारण ईश्वर तुझसे दूर होता जा रहा है और दूर वाले समीप होते जा रहे हैं—तेरा यह फासला दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है। देख, तू ईश्वर को दूर न देख अन्यथा तेरा जीना दूभर हो जायेगा, ईश्वर को भुलाकर तेरा कुछ भी अपना नहीं बन पायेगा। अतः तू ईश्वर की खोज कर, उसे खोज कर ही तू चैन पायेगा और देख पायेगा कि तेरी कल्पना ने ही उसे तुझसे दूर कर रखा था यथार्थ में वह दूर नहीं है। एक बार जब उसकी एक झलक तू पा लेगा तब उसके सम्मुख तुझे सब आकर्षण फीके लगने लगेंगे—न कोई परिस्थितियाँ तुझे हिला सकेंगी और न कोई प्रलोभन तुझे डिगा सकेंगे, तू प्रिय की दुनिया में बैठा मिलन का आनन्द पाता रहेगा।

७९२ व्यर्थ को समर्थ करने वाला कोई समर्थ ही है, नाम कौन बतलावे ?

ऐ प्राणी ! तू सर्व समर्थ है किन्तु अपनी शक्ति को भूला हुआ है। देख, तू इस संसार में आकर बाहरी चकाचौंध में भटक गया है इसीलिये अपनी शक्ति को भूल बैठा है और कमजोर होता जा रहा है। कमजोर भाव तुझे इस प्रकार घेरे हुए हैं कि तुझे अपना जीवन ही व्यर्थ सा दिखलाई देने लगा है। अरे पगले ! तू अब भी होश में आ तथा अपनी खोई शक्ति को पा ले। तेरी खोयी शक्ति को प्रदान करने वाला सन्त है। सन्त समर्थ होते हैं, उनका साथ तुझे भी समर्थ बना देगा। उनकी भाव भरी वाणी सिंहनाद करती हुई तेरे उन भावों को जगा देगी जो बाहर देखते रहने के कारण सुप्त हो गये थे। तू देख पायेगा कि तेरा जीवन व्यर्थ नहीं, तू समर्थ की सन्तान है अतः समर्थ है। किन्तु सन्त के दरशन तू किसी के बतलाने से नहीं पा सकेगा, तेरे हृदय की सत्य चाह ही तुझे वह आँखें देगी जिससे तू सन्त के दरशन कर पायेगा और उसी चाह के द्वारा ही उनके भावों को हृदय में धारण करके तू अपनी शक्ति को पहिचान पायेगा।

७९३ भिक्षुक माला माल हो गया। माला वर माला को ही माल समझा—निहाल हो गया।

ऐ प्राणी ! स्थूल जगत की बड़ी से बड़ी उपलब्धि भी मालामाल नहीं कर सकती, उसे पाकर भी व्यक्ति भीतर से कराहता रहता है तथा जन-जन का मुख देखा करता है। देख, मालामाल वे होते हैं जिन्होंने ईश्वर की शरण पाई

है। ईश्वर की शरण पाकर जन-जन का मुख देखने वाला भी उस धन का धनी बन जाता है जिसे पाने के लिये धन वाले भी तरसते हैं। किन्तु ईश्वर की शरण मिलती उन्हें ही है जिन्होंने माल (धन) को प्रधानता नहीं दी, ईश्वर को ही परम धन माना। वे ईश्वर के लिये चार माला फेरकर ही खुश नहीं होते, ईश्वर को अपना सर्वस्व जानते हुए वह माला उसके गले में पहनाते हैं। उनकी वह माला ही वरमाला बन जाती है अर्थात् वे ईश्वर के चरणों पर समर्पित हो जाते हैं। ऐसे जन का जीवन अलौकिक होता है, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण भावों से सज जाता है—वे उस भाव को पा जाते हैं जिसे पाने के लिये देवता भी तरसते हैं।

७९४ छोटी नौका, छोटा सा शरीर। अरे खेने वाला तो छोटा नहीं, फिर चिन्ता क्यों ?

ऐ प्राणी ! तू अपने शरीर की औकात देखकर हताश-निराश न हो क्योंकि तुझे चलाने वाला शरीर नहीं, वह शक्ति है जो शरीर को गतिशील कर रही है। देख, उसे भुलाकर तू यदि शरीर की ओर देखता रहेगा तो दिन ब दिन कमजोर होता जायेगा। तब छोटी-छोटी बातें तुझे रुलाने के लिये पर्याप्त होंगी, तू न सुख से खा सकेगा और न सुख से सो सकेगा, हमेशा चिन्तित व परेशान बना रोता रहेगा। अतः तू शरीर की ओर देखना छोड़कर उस सत्ता की ओर देख जो सदा तेरे साथ है। जिस दिन तू उस सत्ता को देख पायेगा उस दिन तेरे शरीर रूपी नौका का नाविक ईश्वर होगा। उस नाविक के सहारे तेरी नौका सानन्द चलती रहेगी और तू नौका में बैठा नौका विहार का आनन्द पाता रहेगा।

७९५ किसने कहा तू पापी है ? इन पंडितों ने। भुला दे कथा, समा जा आनन्द सागर में। कथा समाप्त, पाप पुण्य मेरे जब तू मेरा।

ऐ प्राणी ! कथा वार्त्ताओं के द्वारा पाप पुण्य की बातें सुनकर तू स्वयं को पापी न समझ क्योंकि तू पापी नहीं, तू मेरा है। देख, ये कथाएँ तुझे कभी मेरी ओर नहीं देखने देंगी, इनमें उलझकर तू स्वयं को ही देखता रहेगा तथा कार्यों को ही सजाता रहेगा—ऐसे में तू मुझसे दूर होता चला जायेगा। अतः तू इन कथाओं को भूल कर मेरी ओर देख। जब तू मेरा होगा तब तेरा

सब कुछ मेरा होगा। उस दिन तेरी दुनिया तुझे सजानी नहीं होगी, तू सजा सजाया होगा और तेरी दुनिया आनन्द से भरी होगी क्योंकि उसका मालिक तब तू नहीं होगा, मैं रहूँगा।

७९६ अवगुण अब गुण हुआ। अब कृपा, गुणातीत हुआ—यह कृपा का बल है।

ऐ प्राणी! ईश्वर की शरण पाकर भीतर के भाव बदलने लगते हैं। ईश्वर से विमुखता के कारण अनजाने में ही व्यक्ति अनेक अवगुणों से घिर जाता है, वे अवगुण ईश्वर की शरण पाकर गुण में बदलने लगते हैं। वह किसी भी ऐसे भावों को नहीं अपना पाता जो उसके दिल को गन्दा करने वाले हैं, वह सदा सरल, सरस व सुमधुर भावों से सजता जाता है। देख, अनेक गुणों से सुसज्जित होने के पश्चात् भी अहंकार का उसमें लेशमात्र भी नहीं रहता क्योंकि उसकी दृष्टि प्रभु के चरणों पर रहती है, उन गुणों पर नहीं। यदि गुण दिखलायी भी पड़ते हैं तो उसमें उसे कृपा की झलक दिखलाई पड़ती है। उस कृपा के बल पर वह अहर्निश प्रभु की ओर बढ़ता जाता है, कोई भी उपलब्धि उसे रोक नहीं सकती। देख, ईश्वर की शरण ही जीवन बदल देती है और कृपा का बल पाकर क्या होता है यह शब्दों का विषय नहीं, इसे कृपा पाकर ही जाना जा सकता है।

७९७ पुकार कब बेकार? पुकार दिल की हो तो दिल दहल जाये सुनने वाले का।

ऐ प्राणी! पुकार में बहुत बड़ी शक्ति होती है, यह हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति को भी हिला देती है। जब यह पुकार ईश्वर के लिये होती है तब वह ईश्वर जिसका कोई रंग नहीं, रूप नहीं एवं जो अदृश्य है—वह दृश्यमान हो उठता है। देख, ऐसा कभी सम्भव नहीं होता कि पुकार सुनी न जाये, यदि कहीं ऐसा दिखलायी देता है तो वहाँ पुकार अभी दिल की नहीं है, केवल गलाबाजी है। पुकार कभी बेकार नहीं जाती, यह जब दिल की होती है तब सुनने वाले के दिल को दहला देती है। अतः तू सन्त के समीप बैठकर ईश्वर की महिमा को जान ले कि तेरे अन्तर में ईश्वर के लिये पुकार शुरू हो जाये। सन्त की शरण पाये बिना तू उस पुकार को नहीं पा सकेगा क्योंकि पुकार जोर-जबर्दस्ती से पाने की चीज नहीं, यह हृदय का सहज भाव है जो सन्त के सामीप्य में ही पाया जा सकता है।

७९८ यह हलचल ? तू चल, मैं चलूँ करता करता हलचल का कर्त्ता बना ।

ऐ प्राणी ! हलचल तो जीवन है, हलचल यदि बन्द हो जाये तो जीवन का क्रम ही रुक जाये । यह हलचल जब तक बाहर रहती है तभी तक ठीक है, जब यह अन्तर में भी हो जाती है तब प्राण छटपटाने लगते हैं । देख, अन्तर में हलचल तब होती है जब व्यक्ति प्रत्येक कार्यों का कर्त्ता स्वयं को जानता है । वह यही समझता है कि "सारे कार्य मेरे निर्देश से ही हो रहे हैं, यदि मैं नहीं करूँ तो कोई भी कार्य आगे न बढ़े" और इसीलिये वह चिन्तित व परेशान हो जाता है अर्थात् उसके अन्तर में हलचल शुरू हो जाती है । उसे मालूम नहीं कि कार्यों का कर्त्ता व्यक्ति नहीं, वह अज्ञात शक्ति है जो उसमें गति भर रही है, यदि वह नहीं हो तो शरीर का हिलना डुलना भी रुक जाये । जिस दिन वह उस कर्त्ता को देख पायेगा उस दिन उसके अन्तर की हलचल शान्ति में परिणत हो जायेगी और उसी दिन वह हलचल का आनन्द भी ले पायेगा ।

७९९ प्रणाम कर प्रण पूर्ण समझा । अब नाम हो, प्रणाम जो किया है ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को प्रणाम करने के लिये केवल प्रणाम की क्रिया ही पर्याप्त नहीं, हृदय में झुकने के भाव भी चाहिये । जब तक झुकने के भाव हृदय में नहीं आते तब तक वृत्तियाँ अन्तर्मुखी नहीं होतीं और प्रणाम का प्रतिफल ईश्वर की सामीप्यता भी नहीं मिलती । ऐसे में व्यक्ति प्रणाम करके अपने आपको बहुत धार्मिक समझ लेता है तथा नाम प्रसिद्धि पाने के लिये जन-जन का मुँह देखा करता है । पूजा-पाठ आदि क्रियाएँ उसके अभिमान को फुलाती रहती हैं और वह धर्म-कर्म के नाम पर दलदल में फँसता जाता है । देख, प्रणाम हृदय का सुमधुर भाव है जो सत्संग पाकर स्वतः जगता है । सत्संग में व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को सम्मुख देख पाता है अतः झुकने के भाव उसके अन्तर में उदय होने लगते हैं । ये झुकने के भाव ही उसे प्रिय प्रभु से मिलाते हैं और तभी उसका प्रण भी पूरा होता है ।

८०० प्यार से अर्पण कर । प्यार पूर्ण हो, यार प्रसन्न ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर वस्तु नहीं ग्रहण करता वस्तु के साथ जो प्यार रहता है

उसे ग्रहण करता है। वस्तु खत्म हो जाती है किन्तु प्यार कभी खत्म नहीं होता वह सदा-सदा बना रहता है। देख, शरीर के साथियों से होने वाला प्यार प्यार नहीं और न स्थूल से आकृष्ट होकर होने वाला प्यार प्यार है—यह तो मोह-वासना है जो केवल शरीर से आबद्ध करती है। प्यार अशरीरी भाव है, यह अकारण ही जाग जाता है और जागता है तो जाता नहीं। देख, प्यार समर्पण के भावों से सजाता है। जैसे-जैसे समर्पण के भाव आने लगते हैं वैसे-वैसे प्यार भी पूर्णता की ओर बढ़ता जाता है। यार (प्रभु) भी ऐसे प्यार से ही प्रसन्न होता है। अतः तू प्रिय के सम्मुख जाने के पूर्व हृदय को प्यार से सजा ले कि तू जो कुछ भी अर्पित करे उसमें प्यार प्रधान हो—तभी प्यार भी पूर्ण होगा और तेरा प्रभु भी प्रसन्न होगा।

८०१ सज जस (यश) पायेगा। नहीं तो जस करनी तस भरनी। तस सत बना जब बाहरी, भीतरी बना।

स्थूल सजावट केवल आँखों को भाती है किन्तु सूक्ष्म (हृदय की) सजावट हृदय में स्थान बनाती है। हृदय की सजावट स्वयं को भी आनन्द देती है और धीरे-धीरे बाहर भी अपना स्थान बना लेती है। यदि भीतर सजा हुआ नहीं तो बाहर के कार्य कितने भी सजा लिये जायें तब भी व्यक्ति छटपटाता रहता है! अतः ऐ प्राणी! तू भीतर प्रवेश कर एवं भीतर की दुनिया सुरक्षित रख। तेरे भीतर के भाव जैसे-जैसे सजते जायेंगे वैसे-वैसे तेरे बाहर की दुनिया भी सुनहली होती जायेगी क्योंकि भीतर के भावों से ही बाहर की सृष्टि सजती है। तब तू देख पायेगा कि प्रत्येक स्थूल चीज सत्य पर टिकी है अर्थात् सत्य कण-कण में समाया हुआ है। उसे बाहर, भीतर व सर्वत्र देखते हुए तू जहाँ भी बैठेगा वहाँ आज भी आनन्द पायेगा और कल भी आनन्द मनाता रहेगा।

८०२ प्यार के गीत सुनाऊँ? अरे पागल, कर कि दुनिया के गीत भूल जाये।

ऐ प्राणी! प्यार गीत गाने का नहीं होता, यह तो प्रिय को सम्मुख पाकर स्वतः उमड़ता है। प्यार के गीत गाकर व्यक्ति ईश्वर से दूर ही रह जाता है किन्तु प्यार करने से तो उसकी दुनिया ईश्वरमयी हो जाती है, उसके चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा जाता है। देख, प्यार का प्रादुर्भाव जब तक नहीं हो जाता तब तक जीवन में उल्लास नहीं आता, दुनियादारी ही

प्रधान रहती है और सभी को अपना जानता हुआ व्यक्ति दुःख सुख के थपेड़े खाता रहता है। उसके तन व मन सब जर्जरित हो जाते हैं, वह किसी करवट भी चैन नहीं पाता। किन्तु प्यार का प्रभाव अनोखा है। प्यार जीवन में उल्लास भर देता है, प्यार पाकर अन्य आकर्षण (दुनिया के गीत) छोड़ने नहीं पड़ते स्वतः छूट जाते हैं। जैसे-जैसे जीवन प्यार से सजता जाता है वैसे-वैसे बन्धन कटने लगते हैं और जिस दिन हृदय प्यार से पूर्णतया आच्छादित हो जाता है उस दिन प्रिय ही रोम-रोम का स्वामी होता है, प्रिय के सिवा जीवन में किसी अन्य का समावेश ही नहीं रह जाता।

८०३ भूमि-चूमी और चरण ? नहीं। नहीं ? तो बार-बार मरण।

ऐ प्राणी ! भूमि पर आकर तू भूमि को ही चूमने लगा, धन-द्रव्य-वस्तु-व्यक्ति आदि ही तेरे आकर्षण के केन्द्र बन गये। यहाँ आने का कोई और उद्देश्य भी है—यह तेरी दृष्टि से ओझल हो गया। देख, यहाँ आने का मूल कारण ईश्वर की शरण पाना है। ईश्वर को भुलाकर जो भूमि को ही चूमते रह जाते हैं वे उद्देश्य को भूलने के कारण यहाँ कष्ट पाते रहते हैं। वे जब तक यहाँ रहते हैं कष्ट पाते रहते हैं और जब यहाँ से जाते हैं तब भी कष्ट के साथ विदा होते हैं। ऐसे जन लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये बार-बार आते जाते हैं, उनके जीवन मरण का क्रम कभी खत्म नहीं होता। देख, जीवन मरण से छुट्टी वे ही पाते हैं जिन्होंने चरण की शरण पाई है। वे सभी कार्यों में ईश्वर की कृपा देखते हुए प्रसन्न रहते हैं, जब तक जीते हैं प्रसन्नता के साथ जीते हैं तथा जब जाते हैं तब भी सानन्द प्रिय के समीप लौट जाते हैं। अतः तू चरण की शरण ग्रहण कर कि तू मौज में रह पाये अन्यथा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति में फँसा तू इसी को चूमता रह जायेगा और जन्म-मृत्यु के चक्र से कभी मुक्त नहीं हो पायेगा।

८०४ जानकर जानवर क्यों ? जान वर को प्राण शांत हों।

ऐ प्राणी ! आहार, निद्रा, भय, मैथुन—इन चारों के चक्कर में तो जानवर फँसे रहते हैं क्योंकि उनमें विवेक नहीं होता। किन्तु तू तो जानवर नहीं मनुष्य है, तुझमें विवेक भी है फिर तू इनमें क्यों फँसा हुआ है ? तू जानते हुए भी यदि जानवर सदृश्य जीवन यापन करेगा तो तेरे हृदय की विकलता कभी खत्म नहीं हो पायेगी। देख, तेरे जीवन की श्रेष्ठता वर (ईश्वर) की प्राप्ति में है। ईश्वर को जानने के भाव जब तेरे हृदय में पनपने लगेंगे तब तुझे पूर्व

जिन्दगी से नफरत होने लगेगी, वह जिन्दगी तुझे पशुवत् प्रतीत होगी और तू नवीन भावों को पाने का अभिलाषी बनेगा। तब तू उन्हीं रास्तों पर कदम बढ़ायेगा जो तुझे प्रिय से मिलाने वाले हैं, प्रिय से विमुख करने वाले किसी एक भाव को भी तू नहीं अपना पायेगा—तू शान्त भी तभी रह पायेगा क्योंकि शान्ति प्रभु के चरणों में है, उसे भुला कर अन्यत्र कहीं नहीं।

८०५ आँसू यदि दुःख के तो पोंछ डाल विचार से। यदि प्रेम के तो अनमोल रत्न हैं—अजस्त्र प्रवाह नव जीवन देगा।

ऐ प्राणी! दुःख के आँसू तुझे शोभा नहीं देते क्योंकि तू यहाँ रोने नहीं आया, आनन्द मनाने आया है। देख, यहाँ आनन्द में वे ही रह पाते हैं जो ईश्वर की सत्ता को जानते हैं एवं उसे पाने के लिये आँसू बहाते हैं। ईश्वर की समीपता उन आँसुओं से ही पायी जा सकती है, अन्य किन्हीं साधनों से नहीं। अतः तेरी आँखों में आँसू यदि दुःख के हैं तो तू उन पर विचार कर कि क्या तुझे यह कीमती जीवन रोने के लिये मिला है? तब तू देख पायेगा कि अभाव से घिर जाने के कारण तेरा जीवन दुःखपूर्ण हो रहा है, यथार्थ में दुःख कहीं है नहीं। यदि तेरी आँखों में प्रेम के आँसू हैं तो तू निश्चिन्त हो जा क्योंकि प्रेमाश्रु वे अनमोल रत्न हैं जिन्हें पाकर जन्म-जन्मान्तर का दुःख दारिद्र्य खत्म हो जाता है और प्रेमाश्रु ही वह भाव है जिसका अजस्त्र प्रवाह नव जीवन दे देता है।

८०६ महा पंडितों ने कहा—प्रेम पौधों में भी पाया जाता है। भूल बैठा कि सम्पूर्ण जगत ही प्रेम से बना है, जिसके अनेक नाम करुणा-दया-राग अनुराग।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व का सृजन प्रेम से हुआ है और प्रेम पर ही यह ठहरा हुआ है। जिस दिन प्रेम नहीं रहेगा उस दिन विश्व मिट जायेगा—यहाँ देखने को कुछ भी नहीं रहेगा। देख, प्रेम विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। करुणा-दया-राग-अनुराग आदि सभी भाव प्रेम के प्रतिरूप हैं, प्रेम के बिना इनका जागरण सम्भव नहीं। किन्तु प्रेम के इस विराट भाव को सब नहीं जान पाते। प्रेम का आंशिक रूप कुछ लोग देख पाते हैं इसीलिये वे कहते देखे जाते हैं कि प्रेम पेड़ पौधों में भी पाया जाता है। 'सम्पूर्ण जड़-चेतन विश्व प्रेम से बना है तथा प्रेम पर ठहरा है' इसे वे नहीं जान पाते अतः इसका

आनन्द भी नहीं ले पाते। देख, प्रेम सन्त की धरोहर है। सन्त जर्रे-जर्रे में प्रेम के दर्शन करता है, विश्व का कण-कण उसे प्रेम से ओत प्रोत दिखलाई देता है। पहाड़, नद, नदी, नाले, झरने आदि सभी उसे प्रेम का सन्देश देते रहते हैं, यहाँ तक कि जड़ वस्तुओं से भी वह रस पाता रहता है। ऐसे सन्त की दृष्टि ही प्राणी के सोये प्रेम को जागृत करती है अन्यथा प्रेम पाकर भी एवं प्रेम के बीच बैठे रहने पर भी प्राणी दृष्टि के अभाव में प्रेम के लिये तरसता रहता है।

८०७ मल से कमल पैदा हुआ और मल से तुम। कमल खिला तुम मुरझा कर रह गये, क्यों ?

ऐ प्राणी ! मल से उत्पत्ति मैला नहीं बनाती मल का ध्यान मैला बनाता है, यदि ध्यान मल में न रहे तो मल से पैदा होने वाला भी खिलकर रह सकता है। कमल कीचड़ में पैदा होता है किन्तु उसका सम्पर्क सूर्य से रहता है अतः कीचड़ में रहते हुए भी वह कीचड़ से ऊपर उठ जाता है। तेरी उत्पत्ति भी अवश्य मल से हुई है किन्तु तू मैला है नहीं, तू मल (पाप-ताप) की बातों को नहीं छोड़ पाता इसीलिये मैला बना हुआ है। देख, कमल की तरह खिलने के लिये आनन्दकन्द प्रभु के चरण कमल का ध्यान चाहिये। जिस दिन तू उन चरणों का आश्रय पा जायेगा उस दिन से तू भी कमलवत् खिलकर रह सकेगा अन्यथा खिलने के लिये आया हुआ तू खिल नहीं सकेगा, मुरझा कर ही रह जायेगा।

८०८ मल से पैदा हुआ, मैल की चर्चा की इसी को धर्म समझा। फिर आनन्द ? क्या धोखा है ? नहीं।

ऐ प्राणी ! तू यदि मैल की चर्चा करके उसे ही धर्म समझ लेगा तो तू कभी खिल नहीं सकेगा क्योंकि मैल की चर्चा तुझे कभी मैल से अलग नहीं होने देगी, इससे तो तू और भी अधिक मैला ही होता जायेगा। देख, खिलने के लिये आनन्द की चर्चा चाहिये। जब तक तू आनन्दी का साथ नहीं पायेगा तब तक आनन्द की बातें अथवा आनन्द तेरी नजर में धोखा रहेंगे, तू यही समझता रहेगा कि 'आनन्द कहीं होता ही नहीं है' किन्तु बात ऐसी नहीं। आनन्दी का साथ पाकर तू देख पायेगा कि 'इस सृष्टि का सृजन आनन्द के लिये हुआ है, यहाँ आनन्द ही आनन्द है'। तू जिन्हें सुख दुःख के रूप में

देख पाता है वे क्षण तो खिलाड़ी की हार-जीत के समान हैं। खिलाड़ी हार और जीत दोनों में ही आनन्द पाता है इसीलिये खेल खेलता है। अतः यहाँ आनन्द के लिये आया हुआ तू मैल की बातें न कर, तू आनन्द की चर्चा सुन और आनन्द की ही बातें कर कि तू यहाँ सभी स्थितियों में आनन्द में रह सके।

८०९ अरी कमला विमल बुद्धि को अपना, नहीं तो उल्लू पर ही बैठी रहेगी। क्यों न तू नारायण सा दिल रखती ?

अरी कमला! नारायण के चरणों में सभी स्थान नहीं पाते, जो पाते हैं उनका दिल भी नारायण का सा चाहिये, यदि उन्हें नारायण का सा दिल नहीं मिलता तो वे नारायण के चरणों में रहकर भी नारायण से दूर ही हैं। अतः तू नारायण की चरण सेविका का सा रूप ग्रहण कर अर्थात् तू विमल बुद्धि अपना। तेरी विमल बुद्धि तुझे भ्रमित होने से बचा लेगी अन्यथा तू नारायण को छोड़कर इधर-उधर भटकती हुई कष्ट पाती रहेगी। किन्तु तू यदि विमल बुद्धि को अपना सकी तो तू वहीं बैठेगी जहाँ नारायण का निवास है और ऐसी जगह बैठ कर ही तू चैन पायेगी अन्यथा अन्धकार में रहने वाले स्वयं तो अन्धकार में हैं ही, वे तुझे भी उल्लू पर ही बैठा कर दम लेंगे। भक्तों के समीप तेरी छवि देखकर उन कमबख्तों को भी आँखें मिलेगी और वे देख पायेंगे कि तेरा सही रूप क्या है।

८१० भक्तों पर बेरहम। कमला—चंचल बना देंगे ये भक्त फिर पाद सेवा भी करेगी तो भी उपेक्षित ही रहेगी भक्तों से।

अरी कमला! सभी तेरे लिये मरते हैं किन्तु भक्त तेरे लिये नहीं मरते, वे तुझ पर दया कर सकते हैं। देख, तू यदि उनके सम्मुख बेरहमी से पेश आयेगी तो वे तेरी परवाह करने वाले नहीं, तब वे तेरी तरफ मुड़कर भी नहीं देखेंगे। फिर तू उन्हें मनाने की लाख चेष्टा भी करेगी तो भी वे तेरी तरफ देखने वाले नहीं। अतः भक्तों के समीप तू अकड़ कर न चल, शान्ति से चल कि तेरी उपयोगिता सार्थक हो अन्यथा ईश्वर की चरण सेविका होने के पश्चात् भी अन्य जन तेरा दुरुपयोग ही करते रहेंगे और तू लांछित होती रहेगी। तेरी सार्थकता यदि कहीं सिद्ध हो सकती है तो केवल भक्तों के समीप। अतः तू अपनी अकड़ को छोड़कर भक्त की शरण में जा कि तू ईश्वर की सहचरी का सा रूप पा सके और ईश्वर की कहलाने के योग्य बन सके।

८११ दुनिया, दुःख और दूसरा। स्मरण, सुख और स्वरूप। 'द' और 'स' का झगड़ा है जहाँ दसों इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं मन की विमुखता या कृपा के कारण।

ऐ प्राणी! जब दुनिया प्रधान हो जाती है तब ईश्वर दूसरा हो जाता है तथा व्यक्ति दुःख से घिरने लगता है क्योंकि ईश्वर को भुलाकर इस दुनिया में दुःख के सिवा और कुछ नहीं है। देख, यहाँ ईश्वर के स्मरण में सुख है। जो यहाँ आकर ईश्वर को नहीं भूलते एवं ईश्वर की स्मृति के साथ जीते हैं वे ही यहाँ मौज मनाते हैं और वे ही जीवन के लक्ष्य अर्थात् अपने स्वरूप को भी जान पाते हैं। किन्तु जब स्थूल प्रधान हो जाता है तब दुर्भावना हृदय में डेरा जमाने लगती और सद्भावना पलायन करने लगती है और इस 'द' और 'स' के झगड़े में मन मारा-मारा फिरने लगता है। ऐसे में दसों इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं, वे कुछ भी करके चैन नहीं पातीं क्योंकि वे एक मन के इशारे पर ही चलती हैं अतः दसों इन्द्रियों व मन को व्यवस्थित रखने के लिये एवं जीवन में बहार लाने के लिये तू सद्भावों को प्रश्रय दे कि तू उस सुख को पा जाये एवं उस रूप को पा जाये जो स्थूल की बड़ी से बड़ी उपलब्धि से भी सम्भव नहीं।

८१२ पत्थर में भगवान आज भी खोज रहा है। पागल! मानव तन धारी भगवान को पहिचान शांति मिलेगी।

ऐ प्राणी! पत्थर में भगवान की मूर्त्तियाँ ईश्वर की कल्पना करके मनुष्य ने अंकित की हैं किन्तु मनुष्य का निर्माण भगवान ने किया है। मनुष्य उस निर्माणकर्त्ता को भूल बैठा है इसीलिए वह ईश्वर से दूर होता जा रहा है अन्यथा मनुष्य ईश्वर का जीता जागता रूप है। देख, कुछ लोग आज भी ऐसे हैं जिन्होंने ईश्वर को ही सर्वस्व जाना है एवं जिनका प्रत्येक श्वाँस ईश्वर के साथ है—ऐसे सन्त में ही ईश्वर को देखा जा सकता है। ऐसे मानव तन धारी भगवान के समीप ही तू शान्ति पा सकेगा। अतः जो तुझे आकृष्ट करे एवं तेरे हृदय में बस जाये तू उस सन्त की शरण ग्रहण कर कि भगवान के दरशन कर पाये अन्यथा शान्ति की खोज में तू मन्दिर-मन्दिर, द्वारे-द्वारे भटकता रहेगा किन्तु ईश्वर को समीप नहीं देख पायेगा और शान्ति भी तुझसे कोसों दूर बनी रहेगी।

८१३ भूल किससे नहीं हुई ? हनुमान से हुई, तुलसी से हुई, रत्नाकर से हुई। होने में आश्चर्य नहीं—न पहिचानने में भूल और आश्चर्य है।

ऐ प्राणी ! दिन रात स्थूल में विचरण करते रहने के कारण ईश्वर तुल्य सन्त को पहिचानने में एक बार भूल हो सकती है किन्तु जहाँ ईश्वर-मिलन की सत्य चाह है वहाँ वह भूल स्थायी नहीं रह सकती। देख, राम के अनन्य भक्त हनुमान, तुलसी व रत्नाकर से भी प्रथम भूल हुई थी—वे राम को भुलाकर अन्यत्र ही चक्कर काट रहे थे किन्तु उनकी भूल याद में परिवर्तित हो गई जब हृदय में रमण करने वाले राम को उन्होंने सम्मुख देखा। अतः तू भी यदि कहीं ऐसा सत्य आकर्षण देख पाये जो अकारण ही तुझे अपनी ओर खींचता हो तो तू उसे अवश्य स्वीकार करना अन्यथा तू राम से सदा विमुख ही बना रहेगा और भूल की शूल से कष्ट पाता रहेगा।

८१४ उपकार न मान। यह तो मान कि कोई अज्ञात उपकारी भी है।

ऐ प्राणी ! सुनी-सुनाई बातों के आधार पर तू ईश्वर का उपकार चाहे न मान किन्तु यह तो मान कि तेरी आँखों से परे कोई ऐसी अज्ञात शक्ति है जो तुझे चला रही है। उस सत्ता के प्रति जब तेरे हृदय में विश्वास होगा तब तेरे जीवन में एक दिन ऐसा भी आ जायेगा कि तू उसे देखने के लिये लालायित होगा। जिस दिन हृदय में उसे देखने की ललक पैदा हो जायेगी उस दिन तू उसके कार्यों से स्वतः अवगत होता जायेगा और तब बरबस तेरे मुख से कृतज्ञता भरे शब्द उभरेंगे। उस दिन तू उसकी गोद में ही मौज मनायेगा तथा सर्वत्र उसी की गोद देख पायेगा।

८१५ किस किस को मानूँ और झुकूँ ? प्रश्न क्यों ? दिल से पूछ, शांत हो, उत्तर भी मिलेगा।

ऐ प्राणी ! तेरे अन्तर में यह जिज्ञासा हो सकती है कि ईश्वर के नाम पर चलने वाले तो अनेक भक्त पाये जाते हैं फिर मैं किस-किस को मानूँ और कितनों के सामने झुकूँ ? देख, ईश्वर के नाम पर चलने वाले अनेक होते हैं किन्तु ईश्वर के लिये समर्पित होने वाले कोई-कोई ही रहते हैं—स्वाभाविक खिंचाव उनमें ही होता है और उनके समीप बैठकर ही कुछ पाया जा सकता

है। अतः तू शान्त होकर अपने दिल की ओर देख कि तेरे दिल का खिंचाव किस ओर है और जो सम्पर्क तुझे आकृष्ट करे तू उन्हीं चरणों में झुक जा। उन चरणों का आश्रय पाकर तेरे जन्म-जन्मान्तर की तृषा शान्त हो जायेगी और वह ईश्वर जो तेरे साथ रहता हुआ भी तुझसे दूर है वह प्रत्यक्ष हो जायेगा।

८१६ ऐसे वेश में आ, आवेश में आ कि लोग वेश आवेश भूल जायें।

ऐ प्राणी! तू शरीर नहीं, तू ईश्वर रूप है तू किन्तु अपने रूप को भुलाकर शरीर में ही अटका हुआ है। देख, तू शरीर में ही न अटक, तू अपनी शक्ति को पहिचान कि अपने रूप को जान पाये। जब अपने रूप को पहिचानने की तुझमें सत्य लालसा होगी तब तू निश्चित ही अपने वेश को पा जायेगा क्योंकि जहाँ चाह है वहाँ राह अवश्य है। जिस दिन तू अपने वेश को पहिचान लेगा उस दिन से तेरे कार्य भी वेश के अनुरूप होने लगेंगे और अवस्था विशेष में तेरा वह वेश ही आवेश (भावावेश) के रूप में बाहर आने लगेगा। तेरे उस भाव (वेश तथा आवेश) को जो भी देख पायेंगे वे शरीर का भान भूल कर उसी में घुल मिल जायेंगे क्योंकि भाव ऐसा ही होता है, भावावेश ऐसा ही होता है।

८१७ शरीर थका तो बदल डाल यदि कुछ कर गुजरने की इच्छा है। मन की थकान बुरी। विचारों की संजीवनी सुँघा लक्ष्य लक्ष्मण मूर्छित है।

ऐ प्राणी! प्रधान शरीर नहीं प्रधान भाव है। भाव का प्रादुर्भाव जब हो जाता है तब शरीर कृश हो जाये या चला जाये तो भी भाव जाने वाला नहीं, भाव सदा-सदा रहता है और यदि आवश्यकता हुई तो उसे पुनः नवीन कलेवर मिल जाता है। अब तू अपने मन की ओर देख कि तेरा मन भाव प्राप्ति के लिये सचेष्ट है या नहीं? यदि नहीं तो तुझमें भाव की जागृति कभी सम्भव नहीं हो सकेगी क्योंकि भाव की जागृति के लिये मन का सहयोग अति आवश्यक है। अतः मन का साथ पाने के लिये तू मन से बातचीत कर। मन बड़ा अबोध है, जब तू इससे विचार विमर्श करेगा तब इसे नवजीवन प्राप्त होगा अर्थात् मृतक समान मन में नयी चेतना आ जायेगी और वह लक्ष्य प्राप्ति

के लिये अग्रसर होगा। मन के सहयोग से तू वह भाव पा जायेगा जो जन्म-जन्मान्तर के पश्चात भी खत्म होने वाला नहीं। अन्यथा लक्ष्य से अनजान मन निरर्थक चक्कर काटता हुआ थककर चूर-चूर हो जायेगा और उसके पीछे नाचता हुआ तन भी कष्ट पाता रहेगा।

८१८ भाव हनुमान है कि राम? भाव सीता है जो वियोग में छटपटा रही है प्रिय के।

ऐ प्राणी! भाव की जागृति जब हो जाती है तब हृदय ईश्वर मिलन के लिये छटपटाने लगता है, हृदय की एकमात्र चाह 'ईश्वर की प्राप्ति' हो जाती है। जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो जाती एवं वह सम्मुख नहीं आ जाता तब तक भाव के पुजारी का हृदय वियोग की अग्नि में जलता रहता है। भाव में वियोग प्रधान रहता है, इसमें प्रिय का बिछोह सहन नहीं होता। देख, भाव को केवल भक्ति का नाम नहीं दिया जा सकता। भक्ति में भक्त ईश्वर के गीत गाता रहता है और यदि प्रभु कृपा हुई तो भगवान को भी पा जाता है किन्तु भाव वाले को इतना धीरज नहीं। भाव वाले को तो जब तक प्रिय मिल नहीं जाता तब तक उसके हृदय में ऐसा दर्द रहता है जो अन्य किसी भी साधन के द्वारा नहीं मिटता। भाव वाला तभी शान्ति पाता है जब सर्वत्र व्याप्त ईश्वर को हृदय पटल पर आच्छादित देख पाता है।

८१९ किसने तुमको योग सिखाया? किसने तुमको भोग सिखाया? वासना ने। योग के बिना भोग कैसा? वासना कष्ट दायिनी। योग का भोग निराला है, अलग है।

ऐ प्राणी! योगी को योग सिखाना नहीं पड़ता, हृदय की आकुल व्याकुल पुकार से ही उसका ईश्वर से योग होता है और वह योगी हो जाता है। भोगी की भी यही बात है। जिसके हृदय में वासना की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है वह व्यक्ति भोगी बन जाता है। ईश्वर मिलन की चाह योगी बनाती है और शरीर की भूख भोगी बनाती है। देख, भोगी भोग की अनेक वस्तुओं का संग्रह करके एवं उन्हें भोगकर भी तृप्त नहीं हो पाता क्योंकि भोग वह अग्नि है जो कुछ भी पाकर शान्त नहीं होती अनवरत जलती रहती है। भोग का सुख वही पाता है जो योगी है अर्थात जिसका ईश्वर से योग हो गया है। यर्थाथ में योगी ही सच्चा भोगी है क्योंकि वह सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर का

भोग देखता है। वह जो कुछ भी पाता है उसको प्रभु का भोग समझ कर ग्रहण करता है। ईश्वर को साथ देखते-देखते एक दिन उसका जीवन ही प्रभु का भोग बन जाता है। देख, योग का भोग निराला होता है क्योंकि उसका प्रदाता निराला है।

८२० दंड देगा भगवान को? पहले उसका बन फिर दंड का अधिकारी। अनधिकार चेष्टा से कब लाभ हुआ?

ऐ प्राणी! ईश्वर यों तो सबका है किन्तु कुछ के तो वह इशारे पर ही नाचता है, वे कुछ वे हैं जिन्होंने ईश्वर को अपना सर्वस्व माना है। ऐसे भक्त जिस समय जैसा चाहते हैं ईश्वर उनके लिये वैसा ही करने के लिये तैयार रहता है, यदि वे ईश्वर को दण्ड भी देना चाहते हैं तो वह उनका प्यार से दिया हुआ दण्ड शीश झुका कर स्वीकार करता है। किन्तु जो ईश्वर को जानते मानते ही नहीं वे यदि ईश्वर पर शासन करने का अभिमान करें तो उनकी वह अनधिकार चेष्टा ईश्वर तक पहुँचने वाली नहीं। ऐसे जन अभिमान के कारण ईश्वर से दूर ही होते जाते हैं। अतः ईश्वर पर अधिकार जताने के पहले तू ईश्वर का अपना बन, फिर तू जैसा चाहे उन्हीं भावों के साथ उससे पेश आना—तब तेरी सारी शर्तें स्वीकार होंगी और तू ईश्वर के साहचर्य का आनन्द पाता रहेगा।

८२१ दिला (धन, मान, भाव)। पहले दिल तो मिला, हृदय तो खिला। फिर खुद ही चिल्ला उठेगा, मिला अब मिला।

ऐ प्राणी! ईश्वर से कुछ माँगना नहीं पड़ता वह तो स्वतः देता है। जिसका जैसा भाव है वह उसी के अनुरूप ईश्वर से पाता रहता है, किन्तु उसकी देन दिखलायी उन्हें ही पड़ती है जो ईश्वर के हैं। अतः तू ईश्वर से कुछ माँग नहीं, तू ईश्वर का बन जा कि ईश्वर की देन को देख पाये। देख, उसका बनने के लिये तुझे उसे दिल में जगह देनी होगी। जिस दिन अन्य वस्तु-व्यक्तियों की तरह ईश्वर के लिये भी तेरे दिल में जगह बन जायेगी उस दिन तेरा हृदय खिल जायेगा एवं प्रसन्नता तेरी साथिनी बनेगी और तब तू देख पायेगा कि बिन माँगे ही वह तेरी सारी जरूरतें पूरी कर रहा है तथा तुझे बाहर व भीतर से हर पल सजा रहा है। उसकी देन को देखकर तेरा दिल कृतज्ञता से भरा होगा तथा स्वतः तेरे मुख से शब्द मुखरित होंगे कि—मेरा कोई है, मेरा कोई है।

८२२ गूँजती रहे तेरी वाणी। मन भायी तो आई, गूँजती आई वाणी। बात न बना। अब तो दिल की सुना। तेरी भी बातें गूँजेगी।

सन्त की भाव भरी वाणी जब हृदय को स्पर्श करती है एवं हृदय में भाव का जागरण करती है तब दिल बाग-बाग हो जाता है और मुख से यही निकलता है कि—गूँजती रहे तेरी वाणी। ऐ प्राणी! सन्त की वाणी केवल बाहर गूँजने के लिये नहीं होती हृदय परिवर्तन के लिये होती है। जब यह मन को भा जाती है तब हृदय में स्वतः गूँजने लगती है। हृदय में गूँजती हुई यह (वाणी) हृदय को ही बदल डालती है। इसे अपनाकर प्राणी के अन्तर का कोना-कोना भाव से सज जाता है। फिर केवल सन्त वाणी ही नहीं गूँजती, जहाँ यह प्रश्रय पाती है उस दिल की वाणी भी गूँजने लगती है क्योंकि भाव कभी छुपा नहीं रह सकता, एक समय पश्चात् अवश्य फैलता है।

८२३ एक ऐसी उम्र आती है जब उमंग में मर मिटना चाहता है। फल? उम्र भर तड़पता रहा। राहत न मिली जब तक राह दिखाने वाला न मिला।

सब योनियों में मनुष्य जन्म ही कीमती है किन्तु इस मनुष्य जन्म में भी जवानी के दिन अति कीमती हैं। इस उम्र में (भला या बुरा) जो कुछ भी अर्जित कर लिया जाता है वह सारी उम्र साथ-साथ चलता है। उमंग उमंग में व्यक्ति यदि इसमें बहक जाता है तो उस समय वह जवानी के जोश के कारण नहीं जान पाता किन्तु एक समय पश्चात् जब होश में आता है तब उस भूल के कारण उसका दिल तड़पता है। उसका तड़पना तब तक खत्म नहीं होता जब तक कि वह कोई राह दिखाने वाले को नहीं पा जाता। ऐ प्राणी! समय बीतने पर पीछे तू पछतायेगा अतः समय रहते-रहते ही तू सम्हल जा तथा उस साथी की खोज कर जिसका साथ पाकर तुझे कहीं भटकना न पड़े, तू राहत की सांस ले पाये। उसका साथ पाकर तू आज भी चैन पायेगा और चैन के साथ संसार से विदा हो जायेगा। अन्यथा साथी के अभाव में तेरी पूरी जिन्दगी तड़पते हुए ही बीतेगी और एक दिन हृदय में तड़प लिये हुए ही तू मृत्यु-मुख में समा जायेगा।

८२४ रक्षा कर विचारों के द्वन्द से, नहीं तो पुकार। शायद भीतर बाहर की सुनने वाला व्याकुल हो दौड़ पड़े तेरी पुकार से।

विचारों का आवागमन प्रतिपल होता रहता है किन्तु व्यक्ति यदि इन आते जाते विचारों को न देख पाये तो विचारों का द्वन्द शुरू हो जाता है। ऐ प्राणी ! विचार द्वन्द के लिये नहीं होते, ये तो यों ही आते जाते रहते हैं किन्तु इनकी ओर से मुँह फेर लिया जाये तो ये अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। अतः तू विचारों पर विचार कर कि इन विचारों का अन्त हो जाये और तेरी इनसे रक्षा हो सके। यदि तू विचार करने में असमर्थ है तो तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर। तेरे सच्चे हृदय की पुकार से तू उसे अवश्य पा जायेगा क्योंकि वह बाहर-भीतर-सर्वत्र तेरे साथ है। उसका साथ पाने से विचार तुझे परेशान नहीं कर पायेंगे, तू सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर को देखते हुए मौज में रह पायेगा।

८२५ बुद्धू कब बुद्धिमान बना? जब माना या जाना प्रभु के प्यार को।

ऐ प्राणी ! बुद्धिमान वे नहीं जिनकी बुद्धि स्थूल के कणों को संग्रहित करने में लगी है, बुद्धिमान वे हैं जिन्होंने ईश्वर को जाना है एवं उसके प्यार को पहिचाना है। देख, स्थूल को बटोरते-बटोरते व्यक्ति कर्त्तापन के अभिमान से जुड़ता जाता है परिणाम उसकी बुद्धि निर्मल नहीं रह पाती। उसकी मति मारी जाती है, बुद्धि पाकर भी वह बुद्धू ही रह जाता है। अब छोटी-छोटी बातें उसे खिजाने के लिये पर्याप्त होती हैं। किन्तु सत्य प्राप्ति की अभिलाषा जब हृदय में जाग्रत हो जाती है तब हृदय सजने लगता है। अदृश्य प्रभु की मनोहर मूर्त्ति हृदय पटल पर अंकित हो जाती है एवं जीवन में प्यार का प्रवाह शुरू हो जाता है। बुद्धि निर्मल होने लगती है एवं वह सभी भाव-विचारों का सत्य निरूपण करने में सक्षम होती है। ऐसा है यह सत्य पथ जिस पर कदम बढ़ाने से बुद्धू भी बुद्धिमान हो जाता है।

८२६ मैं तो प्यार का भूखा हूँ, व्यवहार का नहीं। तेरा व्यवहार ही ऐसा है जहाँ मैं हार जाता हूँ। यदि कहूँ तो झूठा। दिखलाने को रखा ही क्या है?

ऐ प्राणी ! प्यार किया नहीं जाता, जब ईश्वर अपना बन जाता है तब

प्यार हृदय में स्वतः उमड़ने लगता है किन्तु व्यवहार में यह बात नहीं, व्यवहार किया जाता है। व्यवहार में बुद्धि की प्रधानता रहती है, वह जिन भाव-विचारों को उचित समझती है उन्हें ही सजाकर कार्य रूप में परिणत करती है। प्यार से हृदय सजता है और व्यवहार से केवल कार्य सजते हैं। देख, ईश्वर स्थूल नहीं, ईश्वर सूक्ष्मातिसूक्ष्म है अतः वह बाहर के कार्य नहीं देखता, कार्य करते समय दिल में जो भाव रहते हैं उन्हें देखता है। वह कहता है—तू मुझे कार्य न दिखा, तू मुझसे प्यार कर क्योंकि मैं प्यार का भूखा हूँ। प्यार का छोटा सा पत्ता भी मैं स्वीकार करता हूँ किन्तु व्यवहार से दिया हुआ तन-मन-धन भी स्वीकार नहीं करता। बाहर से तेरा व्यवहार इतना सजा हुआ रहता है कि उसके लिये कुछ भी कहने से वह मानने योग्य नहीं लगता अर्थात् तेरा व्यवहार ही प्यार सा दिखलाई देता है किन्तु व्यवहार कभी प्यार नहीं हो सकता। देख, इसके अन्तर को कोई दूसरा नहीं जान सकेगा, तू ही देख सकेगा। जब तेरी वृतियाँ अन्तर्मुखी होंगी तब तू देख पायेगा कि सबको तूने हृदय में बसा रखा है और मुझे बाहर बैठा रखा है। जिस दिन मैं तेरा अपना बनूँगा उस दिन मैं तेरे हृदय में बस जाऊँगा और तब तुझे प्यार करना नहीं होगा, प्यार से तेरा हृदय सजा होगा।

८२७ कभी चिंतन भी किया? चिन्ता भी की, चिन्ता में भी जलता रहा विचारों की। चिन्तन में चित्त न रमा। दोष किसे दूँ?

ऐ प्राणी! तूने मुझे दिल से कभी नहीं याद किया, दिल तूने सदा शरीर के साथियों से लगाया और उन्हीं की चिन्ता करता रहा। आगे-पीछे की चिन्ता ने तेरे सम्मुख विभिन्न विचारों को लाकर उपस्थित किया परिणाम वे विचार ही तुझे जलाते रहे। मृत्यु के पश्चात् शरीर एक बार जलता है किन्तु चिन्ता रूपी चिता तुझे हर पल जलाती रही। चिन्ता के कारण तू मेरा चिन्तन करने भी बैठा तो उसमें तेरा चित्त न लगा। देख, प्रारम्भ से ही तूने गलत रास्ता पकड़ लिया। मैंने तुझे साथी आमोद-प्रमोद के लिये दिये किन्तु तू उनसे आनन्द नहीं ले पाया और उनका कर्त्ता बन बैठा। अब भार आना तो निश्चित ही था। आज भी तू यदि मुझे कर्त्ता देख पाये तो तू निश्चिन्त हो जाये अतः जहाँ बैठकर तेरे भाव बदल जायें तू उस साथी की खोज कर। उस साथी से मिलन के पश्चात् शायद तेरे भावों में परिवर्तन हो पाये और तू निश्चिन्त हो सके।

८२८ अब को सब में मिला—फिर कुछ न रहे।

ऐ प्राणी ! अब भी समय है, तू अब भी सम्हल जा और अब तक (भूत) की बातों को बिसरा कर अब (आज) को उसे सौंप दे जो सबका कर्त्ता है तथा तेरा सब कुछ (त्राता-माता-पिता-भ्राता) है। देख, तू अपने समीप दुःख, चिन्ता, कष्ट आदि जो कुछ भी देख पाता है वे सब के सब उस एक की विस्मृति के कारण हैं। जिस दिन तू उसे पा जायेगा उस दिन ये तेरे समीप नहीं रहेंगे, ये (दुःख, चिन्ता आदि) ऐसे उड़ जायेंगे जैसे प्रकाश आने पर अन्धेरा। अतः बीते हुए समय का पछतावा छोड़कर तू अब को सब में मिला दे कि तुझे कोई भी भाव विचार परेशान न कर पायें, तू चैन की बंशी बजा पाये।

८२९ अवतारी से भी तार न लगा सका फिर सत्य की अनुभूति तो टेढ़ी खीर बन गई।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर रूप है किन्तु यह अनुभूति तू तब तक नहीं पा सकेगा जब तक कि जो ईश्वर रूप हैं उनके प्रति तेरे हृदय में सच्ची श्रद्धा नहीं होगी और उनके चरणों में तू पूर्णतया नहीं झुक जायेगा। जिस दिन उन्हें पाकर तू उनसे भाव से जुड़ जायेगा उस दिन उनका भाव उनके समीप ही नहीं रहेगा तुझमें भी वह धीरे-धीरे प्रवेश करने लगेगा और तभी एक दिन ऐसा भी आ सकेगा जब तू सत्य की अनुभूति पा जायेगा। किन्तु जब तक सत्य के प्रतिरूप के दर्शन तुझे नहीं होंगे एवं उनसे तेरा भाव का नाता नहीं जुड़ेगा तब तक सत्य की अनुभूति पाना तेरे लिये टेढ़ी खीर होगा क्योंकि पुरुषार्थ के बल पर सत्य की ओर बढ़ना चाकू की धार पर चलने के समान है। अतः तू प्रथम अवतारी की शरण ग्रहण कर तत्पश्चात उसे अन्तर में देखने का अभिलाषी बन कि तू सत्य का जलवा रोम-रोम में देख पाये।

८३० भ्रमर भ्रम में मरता रहा, रमता रहा, गूंजन करता रहा किन्तु रस पान कर विभोर हो गया। यह आनन्द का गुंजन है।

ऐ प्राणी ! मन भ्रमर की तरह रस का अभिलाषी है किन्तु भ्रम से घिरे रहने के कारण वह जान नहीं पाता कि रस कहाँ है, जहाँ उसे रस का भ्रम होता है वहीं वह चक्कर काटता रहता है। रस की भूख उसे बेहाल बनाये रखती है अतः वह दौड़-दौड़ कर विषयों के समीप जाता है और उन्हीं के

चारों ओर मँडारता रहता है। उसका यह मँडराना (गुंजन) रस पाने के लिये होता है। देख, मन की चाह विषय नहीं रस है, उसकी विषयों के पीछे दौड़ अनजाने में है 'रस कहाँ है' यदि वह जान जाता तो उसका दौड़ना खत्म हो जाता। अतः तू मन के पीछे न दौड़, तू मन का सहयोगी बन अर्थात् रस की खोज कर। तेरी खोज (चाह) बेकार जाने वाली नहीं, उससे तू एक दिन अवश्य रस के उद्गम (सत्य) को पा सकेगा। सत्य का रस सत्संग के माध्यम से जब तेरे मन को मिल जायेगा तब वह रस पान कर विभोर हो जायेगा। मन तब भी गुंजन करता रहेगा किन्तु उसका वह गुंजन भ्रम का गुंजन नहीं होगा, आनन्द का गुंजन होगा।

८३१ याद करने वाला ही नामी को नचाता है। प्रेम का अनोखा प्रभाव था।

ऐ प्राणी ! याद की शक्ति अनोखी होती है, यह नामी (ईश्वर) को भी नचा देती है। देख, ईश्वर अनामी है फिर भी उसके अनेक नाम हैं। भक्त जब प्यार भाव से उसका नाम लेता है तब वह दूर छुपा नहीं रह सकता, भक्त की भावना के अनुसार अवश्य सम्मुख आता है। वह याद करने वालों के इशारे पर नाचता है किन्तु उसे याद करने वाले ही अति अल्प हैं। उसका नाम लेने वालों से तो पृथ्वी भरी हुई है किन्तु उस पर प्यार से न्योछावर होने वाले तो विरले ही होते हैं। जो होते हैं वे कुछ निराले होते हैं, यथार्थ में ईश्वर उनका ही होता है। ऐसे प्रेमी जन के समीप ही ईश्वर को देखा जा सकता है—ईश्वर उनके रोम-रोम में बसा होता है। अतः तू यदि प्रेम पाने का अभिलाषी है तो तू उनकी निकटता पा ले। उनकी निकटता पाकर शायद तेरे हृदय में भी भाव की जागृति हो जाये और तू भी ईश्वर से प्रेम करने लगे अन्यथा ईश्वर का होते हुए भी तू उससे दूर ही रह जायेगा, तुझमें प्रेम का प्रवाह नहीं हो पायेगा।

८३२ भजन दे भोजन भी दे, भक्त। भोजन ही दे भजन की अभी आवश्यकता नहीं। इसे व्यवहारी जन ही कहा जाये।

ऐ प्राणी ! शरीर के लिये जैसे भोजन अति आवश्यक है वैसे ही भक्त के लिये भजन अति आवश्यक है। भक्त प्रथम भजन चाहता है फिर भोजन चाहता है, भजन के बिना उसे भोजन रुचिकर प्रतीत नहीं होता क्योंकि भोजन

केवल शरीर को तुष्टि देता है किन्तु भजन मन प्राणों को तुष्ट करता है और मन प्राणों की तुष्टि उसके लिये शरीर से अधिक प्रधान है। किन्तु व्यवहारी जन की यह बात नहीं। व्यवहारी को यदि संयोग से ईश्वर की समीपता मिल भी जाये तो वह यही कहेगा कि 'मुझे अधिक से अधिक धन-द्रव्य ही दे'। धन-द्रव्य के लिये उसे पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि जो कुछ भी करने के लिये कहा जायेगा, वह सब कुछ करने को तैयार हो जायेगा, किन्तु उसका यह सब कुछ भजन के लिये नहीं, भोजन के लिये होगा क्योंकि उसके लिये भोजन ही प्रधान है। ऐसे जन स्थूल की पूर्त्ति में लगे अन्तर से टूटते जाते हैं और एक दिन ऐसा आता है जब रोना ही उनके पल्ले पड़ता है।

८३३ गोता लगाया जल में शरीर का मैल दूर हुआ क्षणिक। गोता लगाया मन में मैल नहीं, वहाँ तो मेल हो गया। क्या क्षणिक ? नहीं, चिर शाश्वत सम्पर्क हो गया।

ऐ प्राणी ! जल में डुबकी लगाने से एक बार अवश्य शरीर का मैल साफ हो जाता है किन्तु हर क्षण उड़ती हुई धूल से वह फिर मैला हो जाता है। किन्तु जिन्होंने मन में गोता लगाया है उनका मन फिर मैला नहीं होता क्योंकि उन्होंने मन को बुद्धि बल द्वारा साफ करने की चेष्टा नहीं की, उन्होंने मन में गोता लगा कर वह भाव पा लिया जिसे पाने के पश्चात् अभाव समीप नहीं आता। देख, मन भाव के अभाव में ही मैला होता है, भाव की जागृति के पश्चात् मन भाव में डूबा रस पान करता रहता है। उसे तब सभी स्थितियाँ आनन्द देने लगती हैं, किसी भी परिस्थिति में वह अभाव नहीं देखता क्योंकि वह जानता है कि सब कुछ का नियन्ता एक ईश्वर है। वह सब कुछ का कर्त्ता एक ईश्वर को ही देख पाता है, ईश्वर से उसका ऐसा चिर शाश्वत सम्बन्ध हो जाता है कि सब कुछ मिटने पर भी वह सम्बन्ध नहीं मिट पाता।

८३४ बदला बदला जब दृष्टि बदली, हृदय बदला।

ऐ प्राणी ! सत्संग वही है जहाँ बैठकर दृष्टि बदलने लगती है। सत्संग में बैठकर स्थूल में विचरण करने वाला प्राणी प्रथम ईश्वर का आभास पाता है और एक समय पश्चात् उसका हृदय भी बदलने लगता है। जो हृदय ईश्वर को भुलाकर दुनियावी व्यवहार के कारण क्षत-विक्षत हो रहा था, वह वहाँ बैठकर राहत पाता है—'शान्ति भी कहीं है' इसे भी वह सत्संग में ही जान

पाता है। देख, एक बार जब व्यक्ति शान्ति का रस का पा जाता है तब वह हमेशा हमेशा के लिये शान्ति का उपासक बन जाता है। तब वह किसी भी ऐसे भाव-विचार को प्रश्रय नहीं दे पाता जो उसकी शान्ति को भंग करने वाले हैं। वह सदा उसी सम्पर्क को अपनाता है जिससे हृदय आनन्द में विभोर हो जाये परिणाम उसके भीतर किसी के प्रति बदले के भाव नहीं रह जाते। यदि कहीं वह गलत भावों को देखता भी है तो भी वह उनके प्रति सहृदयता ही रखता है। उसकी सहृदयता से कोई कुछ पाये या न पाये किन्तु उसका हृदय अवश्य सुमधुर भावों से सजता जाता है। ऐसी है यह सत्संग जो जीवन का समूल परिवर्तन कर देती है।

८३५ बन बन भटक कर भी उसका बन न सका, क्या लाभ ?

ऐ प्राणी ! अनेक साधन ईश्वर की प्राप्ति के लिये अपनाये जाते हैं, यदि उन साधनों के द्वारा भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती तो वे साधन विशेष अर्थ नहीं रखते। देख, प्रधान साधन नहीं प्रधान ईश्वर है किन्तु जिनके लिये साधन प्रधान हो जाते हैं वे पूरी जिन्दगी साधनों में ही लगे रह जाते हैं वे ईश्वर के नाम पर वन-वन भटक कर भी ईश्वर को नहीं पाते क्योंकि ईश्वर को पाने के लिये साधन नहीं हृदय की तड़प चाहिये। जहाँ हृदय की तड़प रहती है वहाँ साधन जुटाने नहीं पड़ते स्वतः जुट जाते हैं। अतः तू वन में ईश्वर को न खोज, तू तेरे अन्तर में देख कि ईश्वर को पाने के लिये तुझमें तड़प है या नहीं ? जब तड़प के साथ तू उसकी खोज करेगा और खोज करते-करते उसी में खो जायेगा तब तू जहाँ बैठा होगा वहीं ईश्वर को पा जायेगा। उसी दिन तेरी साधना भी सफल होगी अन्यथा ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य करते हुए भी तू ईश्वर से दूर ही बना रहेगा।

८३६ उपेक्षा कैसी अपेक्षा भी कैसी ? जब तक जान पहचान ही न हुई।

ऐ प्राणी ! किसी से जान पहिचान होने के पश्चात् यदि उससे अच्छा नहीं लगता तो मुख मोड़ लिया जाता है और यदि अच्छा लगता है तो उससे कुछ आशा रखी जाती है किन्तु जिससे परिचय ही नहीं उससे कैसी उपेक्षा और कैसी अपेक्षा ? देख, ईश्वर की भी यही बात है। ईश्वर से जान पहिचान के पूर्व यदि कोई ईश्वर की उपेक्षा करता है तो वह यथार्थ में ईश्वर की उपेक्षा नहीं क्योंकि अभी उसकी ईश्वर से जान पहिचान ही नहीं हुई है और जान

पहिचान के पूर्व ईश्वर की उपेक्षा कैसी ? यही बात ईश्वर से अपेक्षा रखने वालों की भी है। जिन्होंने 'ईश्वर है' इस सत्य को जाना ही नहीं वे किससे अपेक्षा रखते हैं ? अतः प्रथम तू ईश्वर से जान पहिचान बढ़ा ततपश्चात् उसके लिये तेरे हृदय में जैसे भी भाव उदय हों उन्हें व्यक्त कर अन्यथा तेरी उपेक्षा और अपेक्षा दोनों ही बेकार होगी।

८३७ क्यों इतने निष्ठुर बने ? बना या बनाया परिस्थितियों ने।

ऐ प्राणी ! ईश्वर निष्ठुर है नहीं, फिर भी समय-समय पर लोग उसे निष्ठुर कहते देखे जाते हैं। कहने वाले कहना छोड़ कर यदि अपनी ओर देखते तो उनके सम्मुख इसका रहस्योद्घाटन हो जाता, वे देख पाते कि ईश्वर निष्ठुर नहीं है, परिस्थितियों ने उसे निष्ठुर बना रखा है। देख, व्यक्ति जिस जगह से ईश्वर को याद करता है उसी जगह से ईश्वर को देख पाता है। देरी ईश्वर की तरफ से नहीं, अभी दूरी व्यक्ति के हृदय में है और जब तक दूरी रहती है तब तक ईश्वर को पाने में देर होती है। जिस दिन दूरी खत्म हो जाती है उस दिन ईश्वर दूर नहीं रह जाता हृदय पटल पर ही विराजमान दीखने लगता है। अतः तू यह निश्चित समझ ले कि ईश्वर निष्ठुर नहीं है, तू ही उससे दूर बना हुआ है। यह दूरी ईश्वर के मिटाये नहीं मिटेगी तेरी विकलता से ही दूर हो सकेगी।

८३८ यह मार्ग वीरों का अधीरों का नहीं, वीर रवि की तरह रहता है, प्रकाश ही उसका जीवन है।

ऐ प्राणी ! भक्ति पथ पर वे ही कदम बढ़ाते हैं जो वीर होते हैं एवं जिनमें असीम धीरज रहता है। उनको कोई भी प्रलोभन अपनी ओर नहीं खींच सकते और न कोई परिस्थितियाँ ही उन्हें डिगा सकती हैं, वे लक्ष्य की ओर देखते हुए अनवरत आगे बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे वे लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाते हैं वैसे-वैसे अन्धकार उनके जीवन से पलायन करने लगता है तथा उनके हृदय पटल पर प्रकाश आच्छादित होने लगता है। धीरे-धीरे कब वे लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं तथा प्रकाश ही उनका जीवन बन जाता है—इसे वे जान भी नहीं पाते। भक्ति पथ के पथिक ऐसे वीर ही होते हैं। किन्तु जो दो कदम चलते नहीं उसके पूर्व ही कुछ पाने के लिये अधीर हो जाते हैं वे भक्त कहलाये जा सकते हैं यथार्थ में वे अभी भक्त नहीं। अतः तू यदि भक्ति का इच्छुक है तो अपनी ओर देखना भूलकर लक्ष्य की ओर बढ़ता चल। ऐसे में तू

एक दिन निश्चित सफलता पा सकेगा अर्थात् तेरा जीवन प्रकाशमान सूर्य की तरह हो जायेगा।

८३९ भक्त वीर कब हुआ? वह तो अधीर हो उठता है दर्शन के लिए। प्रकाश प्रभु का, उसकी दया का जो सदा मार्ग दिखलाता है।

ऐ प्राणी! साधारण जन दिन रात स्थूल में विचरण करते हैं किन्तु भक्त को स्थूल आकर्षण अपनी ओर नहीं खींच सकते, उसका हृदय हमेशा ईश्वर दर्शन के लिये अधीर रहता है। देख, भक्त औरों को वीर सा दिखलाई देता है क्योंकि औरों की तरह वह स्थूल के पीछे नहीं भागता किन्तु भक्त वीर नहीं होता, उसका हृदय तो अत्यन्त कोमल होता है और कोमल हृदय से वह ईश्वर की प्रतीक्षा करता रहता है। वह ईश्वर के नाम पर शरीर द्वारा कुछ कार्य करके ही सन्तोष नहीं पाता, उसे ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति चाहिये अतः जब तक वह ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं पा जाता तब तक बेचैन बना रहता है। देख, जहाँ ईश्वर दर्शन की लालसा दिखलाई देती है वहाँ अज्ञात रूप से ईश्वर विद्यमान है। हृदय में विकलता का भाव भी उसी का दिया हुआ है तथा उसे पूरी करने वाला भी वही है। भक्त सदा उसी प्रकाश के सहारे उसके कार्यों को देखते हुए आगे बढ़ता जाता है। उसके जीवन में वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब वह ईश्वर को प्रत्यक्ष देख पाता है—हृदय की विकलता और प्रभु की दया का प्रकाश दोनों के सम्मिश्रण से उसे वह स्थिति जल्दी ही नसीब हो जाती है।

८४० 'भक्ति करे कोई शूरमा' शूरमा संसार के लिए। सुर में आये तो शूरमा।

ऐ प्राणी! शूरवीर भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, कोई तन से शूरवीर होता है और कोई मन से शूरवीर होता है। ये तन मन के शूरवीर संसार में पूजित होते देखे जाते हैं किन्तु एक शूरवीर और होते हैं ये भक्ति के शूरमा होते हैं, इन्हें पहले कोई नहीं जानता। देख, भक्ति के शूरमा विलक्षण होते हैं, वे भक्ति करते-करते इतने मिट जाते हैं कि उन्हें न शरीर का ध्यान रहता है, न जाति का ध्यान रहता है और न कुल का—उनके सम्मुख एक ईश्वर ही रह जाता है। उनका हृदय प्रभु प्रेम में निमग्न हो इतना तल्लीन हो जाता है

कि दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी उन्हें अपनी ओर नहीं खींच सकती। ऐसे भक्त को दुनिया प्रथम कष्ट देती है किन्तु एक समय पश्चात् जब वह उनकी पहुँच के बाहर हो जाता है तब उन्हें पूजती है अर्थात् शूरमा कहती है। ईश्वर भक्त न उनके द्वारा दिये गये कष्टों को ही देखता है और न उनसे मिली प्रशंसा को ही देखता है—वह ईश्वर की ओर देखते हुए आगे बढ़ता जाता है और एक दिन उसी में लीन विलीन हो जाता है।

८४१ तुलसी को नहीं जानता? सूर को नहीं पहचानता? कबीर की साखी तो सुनी होगी? मीरा की झाँकी तो देखी होगी? तू कहाँ? मैं? मैं कह दूँ सब में हूँ किसी में नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर यों तो सबमें है किन्तु कुछ में उसकी झलक अधिक दिखलाई देती है, वे कुछ वे हैं जिन्होंने ईश्वर को ही अपना सर्वस्व माना है और यही कारण है कि उनमें सामान्य प्राणी से अलग कुछ विशेष भाव दिखलाई देते हैं। उनके वे भाव कहीं दोहे चौपाई के रूप में, कहीं पदों के रूप में, कहीं साखी के रूप में और कहीं भजनों के रूप में सामने आते हैं। देख, ईश्वर नहीं होता तो भक्त के उद्‌गार भी भक्त के साथ ही खत्म हो जाते किन्तु ऐसी बात नहीं है—भगवान है इसीलिये उनके वे भाव आज भी हैं। देख, ईश्वर उन सब में है फिर भी सबसे न्यारा है। ईश्वर को वे ही देख पाते हैं जो उसे देखने के अभिलाषी हैं, वे अन्य में ही ईश्वर की झलक देख कर खुश नहीं हो जाते वे ईश्वर को अपने अन्तर में भी वैसे ही देखने के इच्छुक रहते हैं। ऐसे जन ही सर्वत्र ईश्वर का जलवा देख पाते हैं एवं स्वयं में भी उसी को प्रतिष्ठित पाते हैं। किन्तु जो अन्य में ही ईश्वर को देखकर तृप्ति मान लेते हैं वे सदा ईश्वर से दूर ही रह जाते हैं।

८४२ दिल पर भार क्यों लेता है? हुआ सो देखा और आने वाला है। पूर्ण होकर रहेगा। अधूरा मैं नहीं फिर तू क्यों?

स्थूल प्राप्ति के लिये दिल पर बोझ लेना पड़ता है किन्तु ईश्वर प्राप्ति के लिये दिल पर भार लेने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ईश्वर भार से नहीं मिलता, बहार से मिलता है। जो ईश्वर को पाना चाहते हैं उनका जीवन प्रारम्भ से ही अन्य जन से कुछ भिन्न होता है। वे किसी भी ऐसे भाव विचारों को प्रश्रय नहीं दे पाते जो हृदय को मलिन करने वाले हैं।

श्रद्धा, दया, क्षमा, प्रेम आदि सद्गुणों से उनका हृदय स्वतः सजा होता है। एक अवधि के पश्चात् ईश्वर को पाने की अभिलाषा उनमें तीव्र हो जाती है। जैसे-जैसे भावना पनपती है वैसे-वैसे ईश्वरीय भावों का जागरण भी उनमें होता जाता है। ऐ प्राणी ! तू यदि मुझे देखने का अभिलाषी है तो भाव परिवर्तन के लिये किसी भी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती न कर, तू मेरी ओर देखता हुआ अनवरत आगे बढ़ता चल। तब तू स्वयं में सहज परिवर्तन देख पायेगा और एक दिन चाहत के अनुरूप ही हो जायेगा। देख, मैं अधूरा नहीं फिर मेरा होकर तू कैसे अधूरा रहेगा अर्थात् जो मेरा है वह एक दिन अवश्य मुझे पा जायेगा।

८४३ फूल की तरह भेदन करवा सकेगा हृदय ? तब कहीं प्रिय का आलिंगन पा सकेगा।

ऐ प्राणी ! प्रिय का पूर्ण प्यार पाने के लिये अर्थात् प्रिय को प्राणों में बसा हुआ देख पाने के लिये तड़पता हुआ हृदय चाहिये—ऐसा हृदय जिसमें एकमात्र ईश्वर दर्शन की अभिलाषा हो। जब तक प्राणी में ऐसी तड़प नहीं हो जाती तब तक प्रिय का आलिंगन (पूर्ण प्यार) नहीं मिल सकता। इसके पूर्व व्यक्ति भक्ति कर सकता है, कुछ ज्ञान अर्जित कर सकता है, ईश्वर के नाम पर और भी अनेक साधन अपना सकता है किन्तु प्यार नहीं पा सकता। देख, खिलने के पश्चात् भी फूल ईश्वर तक सहज ही नहीं पहुँचता। ईश्वर तक पहुँचने के लिये, ईश्वर के गले की माला बनने के लिये एवं ईश्वर के हृदय का आलिंगन पाने के लिये उसे हृदय बिंधवाना पड़ता है और तब कहीं वह प्रिय के वक्षस्थल की शोभा बनता है। अतः तू यदि पूर्ण प्रभु का पूर्ण प्यार पाना चाहता है तो पूर्णतया मिटने के लिये तैयार हो जा, तभी तू प्रेम पाने का अधिकारी होगा।

८४४ प्रथम मिट्टी में मिलाना अहंकार, फिर आँधी झड़ की तरह सुनना निन्दा स्तुति। सुगंध के पश्चात् भी कुचल जाना सह सकेगा ? देवता के मस्तक की शोभा युक्त होना तो अति सौभाग्य होगा।

ऐ प्राणी ! भगवान भक्तों को अपने मस्तक पर धारण करते हैं अर्थात् अपने से भी ऊँचा स्थान देते हैं किन्तु इसके पूर्व भक्त को पूर्णतया मिट जाना

पड़ता है। जब तक उसमें अहंकार का कण मात्र भी रहता है तब तक वह भक्ति का पूर्ण आस्वादन नहीं कर पाता, जिस दिन अहंकार का नामोनिशान भी नहीं रहता उसी दिन वह भक्ति का रस चख पाता है। देख, अहंकार शून्यता के पश्चात् भी भक्त निश्चिन्त नहीं रह सकता, तब उसे निन्दा स्तुति आँधी तूफान की तरह घेर लेती है—अनेक उसके निन्दक खड़े हो जाते हैं और अनेक प्रशंसक। जब वह उनमें भी नहीं उलझता, भक्ति का आस्वादन करते हुए उनसे साफ-साफ बच कर आगे निकल जाता है तब ईर्ष्यालु भक्त उसे मिटा देने की चेष्टा करते हैं क्योंकि उन्हें डर रहता है कि सत्य भक्ति के सामने उनकी नाम की भक्ति कहीं सामने न आ जाये। किन्तु भक्त भगवान को छोड़कर किसी की तरफ नहीं देखता, वह भले-बुरे सभी को प्यार-भाव बाँटता हुआ ईश्वर के समीप बढ़ता जाता है—ऐसा भक्त ही ईश्वर के मस्तक की शोभा होता है।

८४५ भव भय क्यों? तू भक्त नहीं, भगवान नहीं। यदि है तो भव नहीं, भय नहीं।

ऐ प्राणी! संसार में कष्ट उन्हें दिखलाई देते हैं जो न भक्त बन पाये हैं और न भगवान को देख पाये हैं। यदि वे भक्त बनते तो यह संसार उन्हें स्थायी रहने वाला नहीं दिखलाई देता और वे इसे अपना बनाने की चेष्टा भी नहीं करते। इसे वे भ्रमण का स्थान जानते हुए यहाँ मिले हुए संगी साथियों के साथ आमोद प्रमोद करते एवं ईश्वर की स्मृति को हृदय में संजोये हुए निर्भय विचरण करते। भक्ति करते-करते वे यदि भगवान को देख पाते तो यह संसार उनके लिये आनन्द का स्थान होता, इसकी प्रत्येक वस्तु उन्हें आनन्द देती रहती क्योंकि सम्पूर्ण विश्व एक ईश्वर का रूप है, यहाँ कण-कण में ईश्वर समाया हुआ है। अतः तू यहाँ आया है तो डरते-डरते अपना समय न गँवा, तू प्रभु का बन कि तू यहाँ आने का आनन्द पाये।

८४६ सूखा बीज हरा हुआ जब हरियाली भायी।

ऐ प्राणी! जिन्हें तू आज प्रसन्नवदन (हरा-भरा) देख पाता है उनके समीप भी कल हरियाली नहीं थी, कल वहाँ शुष्कता थी किन्तु उन्हें हरियाली भायी थी इसीलिये उन्हें यह दिन नसीब हुआ। देख, प्रत्येक प्राणी के भीतर प्रसन्नता की भावना बीजवत् पड़ी रहती है किन्तु उसे पनपने का अवसर नहीं मिलता। जब कहीं प्रसन्नता के दर्शन होते हैं एवं प्रसन्नता भाने लगती है तब

कहीं भीतर पड़ी हुई बीजवत् भावना को पनपने का अवसर मिलता है। सूखा बीज भी जब तक अलग पड़ा रहता है तब तक हरा भरा नहीं होता, हरियाली (मिट्टी और पानी) का सम्पर्क ही उसे हरा भरा बनाता है। अतः तुझे यदि हरियाली भाती है और तू जीवन में हरियाली देखना चाहता है तो उनका साथ ग्रहण कर जो प्रसन्नवदन हैं। उनका भाव जब तुझे भाने लगेगा तब तेरी शुष्कता विदा हो जायेगी और तू हरा-भरा (प्रसन्नवदन) हो जायेगा।

८४७ प्रेम के गीत दिल बहलाने की सामग्री। करने वाला तो बेहाल।

ऐ प्राणी! प्रेम को जिन्होंने भी पाया है उनका जीवन ईश्वरमय हो गया। उनकी वाणी से प्रेम बरसने लगा, उनके गीतों में प्रेम प्रवाहित होने लगा—उनके प्रत्येक हाव-भाव ईश्वर का संकेत देने लगे। देख, ऐसे प्रेमी जन के प्रेम गीत दिल बहलाने की सामग्री नहीं होते, उनके गीत प्रेम जगाने के लिये होते हैं। अतः तू उन गीतों को खेल न बना, तू उनमें निहित प्रेम को देख कि तेरे हृदय में भी प्रेम का जागरण हो। देख, प्रेम के जागरण के पश्चात् तेरी दुनिया दूसरी होगी। तब तुझे दूसरा कुछ भी नहीं सुहायेगा, केवल प्रेम ही भायेगा और एक दिन जब प्रेम ही तेरा सर्वस्व होगा तब अहंता-ममता आदि भाव स्वतः गिर जायेंगे और तू केवल एक ईश्वर को ही सम्मुख देख पायेगा।

८४८ राग अनुराग तो तेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। पाप पुण्य की कथा क्यों?

ऐ प्राणी! राग अनुराग हृदय का धन है और पाप पुण्य बुद्धि की उपज है। राग अनुराग जन्म से साथ-साथ रहते हैं किन्तु पाप-पुण्य जैसे-जैसे बुद्धि का प्रादुर्भाव होता है वैसे-वैसे आते हैं। अतः साथ वाले (राग अनुराग) को भुलाकर तू एकत्रित की हुई भावना (पाप-पुण्य) को न अपना, उसे अपनाकर तू अपने जन्म सिद्ध अधिकार से दूर होता जायेगा और यदि उसमें नहीं उलझेगा तो अपने असली धन को पा जायेगा। देख, देखने मात्र से ही अच्छे भाव भाते हैं—यह राग है और जब वे हृदय में ठहर जाते हैं तब प्रेम का प्रादुर्भाव होने लगता है एवं भक्ति प्रारम्भ हो जाती है—यही अनुराग

है। राग अनुराग की स्वाभाविक क्रिया तुझमें प्रारम्भ से ही विद्यमान है—इन्हें प्रश्रय देकर ही तू आनन्द में रह पायेगा। अतः तू बाहर देखना छोड़कर अन्तर में प्रवेश कर कि तू अपने धन को पा जाये और आनन्द में रह पाये।

८४९ क्रोध का ज्वर जबरदस्त। प्रेम तो तब न आये जब ज्वर उतरे।

ऐ प्राणी! तुझमें प्रेम है किन्तु उसे उदय होने का अवसर नहीं मिलता, इसका कारण यह है कि स्वार्थ ने तेरी आँखें बन्द कर रखी हैं। स्वार्थ में थोड़ी सी भी बाधा पहुँचने से तू क्रोधित हो जाता है, तुझ पर क्रोध का ज्वर इतना जबर्दस्त चढ़ जाता है कि तुझे फिर और कुछ दीखता नहीं। देख, प्रेम के जागरण के लिये वृत्तियाँ शान्त चाहिये, जब तक वृत्तियाँ शान्त नहीं होतीं तब तक प्रेम के दरशन सम्भव नहीं। अतः जहाँ तेरी वृत्तियाँ शान्त हों तू उस स्थान (सत्संग) की खोज कर कि वहाँ बैठकर तेरी बन्द आँखें खुल जायें—तभी तू प्रेम के दरशन कर पायेगा अर्थात् तेरा सोया प्रेम जाग सकेगा।

८५० मैं भी हूँ, मेरा भी कोई है कहते-कहते न थका और मर मिटा "मैं" और "मेरा" के लिये, शान्ति कहाँ?

ऐ प्राणी! स्थूल जगत में रहते-रहते तेरी वृत्तियाँ स्थूल में ही रमण करने लगीं, तू स्थूल में इतना अधिक रम गया कि सृजनहार को ही भूल बैठा। अब तेरे सामने शरीर तथा शरीर के सम्बन्धी ही रह गये और तू उनको ही मेरा-मेरा कहता उनके पीछे भागता रहा—उनके भरण पोषण की चिन्ता ने तेरी शान्ति छीन ली। देख, आनन्द के लिये आया हुआ तू मैं और मेरा से घिर जाने के कारण आज रो रहा है एवं बोझ ढो रहा है। यदि तू कर्त्ता को देख पाता तो तेरी यह अवस्था न होती, तब तू कर्त्ता को देखते हुए इन्हीं साथियों के बीच मौज मनाता। देख, आज भी समय है, आज भी तू सम्हल जा तथा जो तेरा है उसे पहिचान ले कि तू चिन्ता-मुक्त हो जाये तथा आने का आनन्द ले पाये।

८५१ जग में भी आया मग भी बहुत देखे, ज्योति कहाँ? जल प्रेम में ज्योति जगमगा उठे।

ऐ प्राणी! तू प्रकाशस्वरूप है फिर भी अन्धकार पूर्ण जीवन बिता रहा

है। देख, अपने उस रूप (प्रकाश) को जानने के लिये ही मनुष्य रूप धारण करके तेरा इस संसार में आगमन हुआ है किन्तु प्रेम के अभाव में तू आज भी उससे दूर है। इसका एक मात्र कारण यह है कि तू जहाँ बैठा है वहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव है। तू जिन संगी साथियों को अपना कहता है उनसे भी तू प्रेम नहीं कर रहा है मोह से आबद्ध है, यहाँ तक कि ईश्वर के नाम पर तू जो अनेक पथ देख पाता है वहाँ भी ईश्वर का नाम ही मिलता है प्यार नहीं। ऐसे में प्रेम का जागरण कैसे हो? देख, बाहर देखते रहने से तू प्रेम के दरशन कभी नहीं पा सकेगा तथा अपने प्रकाशस्वरूप भाव से भी दूर ही रह जायेगा। अतः तू बाहर देखना छोड़कर अपने अन्तर की दुनिया में प्रवेश कर कि तू अपने सहज प्रेम को पा जाये। प्रेम के जागरण के पश्चात् तेरे हृदय में प्रकाश को पाने की सच्ची तड़प होगी और उसी दिन तू तेरी शक्ति को, तेरे रूप को एवं तेरे भाव को पा सकेगा।

८५२ जल ज्योति जले, डूब मोती मिले। नहीं तो चिन्ता जलायेगी, विकार डुबायेंगे।

ऐ प्राणी! जो इस संसार में आकर ईश्वर को भूलते नहीं वे ही यहाँ सुख से जीवन यापन कर पाते हैं किन्तु जो ईश्वर को भूल जाते हैं एवं शरीर व संसार को ही सत्य मान बैठते हैं वे हमेशा दुःखी ही बने रहते हैं। ऐसे जन सदा भविष्य की चिन्ता में ही डूबे रहते हैं परिणाम उनके मन-मस्तिष्क विकृत हो जाते हैं, काम-क्रोध आदि अनेक विचार उन्हें घेर लेते हैं और इन सबसे घिर जाने के कारण उनका जीवन जीवन कहलाने के योग्य ही नहीं रह जाता। देख, जीवन के कीमती क्षण तुझे यूँ ही बिताने के लिये नहीं मिले आनन्द के लिये मिले हैं अतः तू ईश्वर की खोज कर। ईश्वर को पाने के लिये जब तेरे हृदय में व्याकुलता शुरू हो जायगी और गहराई से तू उसकी खोज करेगा तब तू सत्य प्रकाश को पाता चला जायेगा और खोजते-खोजते जब तू खो जायेगा अर्थात् तेरा अहं पूर्णतया लीन हो जायेगा तब तू उस धन को पा जायेगा जिसे पाने के पश्चात् और कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता—उसी दिन तेरा हृदय भी मोती की तरह आभायुक्त होगा।

८५३ कर स्वीकार नहीं तो आया विकार, बेकार।

ऐ प्राणी! 'ईश्वर है' तू यदि इस सत्य को स्वीकार नहीं करेगा एवं उसे ही कर्त्ता-धर्त्ता नहीं जान पायेगा तो कब तुझमें विकार प्रवेश कर जायेंगे तू

इसे जान भी नहीं पायेगा। देख, यहाँ ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारने वाले ही सुखी रह सकते हैं, जो जानते हैं फिर भी इस सत्य से आँख चुराते हैं उनका जीवन नरक बन जाता है—उनका शरीर धारण करना ही बेकार हो जाता है। अतः तू ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर, लोगों के द्वारा सुनकर ही तू उसे न मान तू उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति पा कि तेरा जीवन सँवर जाये, तू ईश्वर की ओर देखते हुए जीवन के हर क्षण का आनन्द ले पाये—उस दिन तू जो कुछ भी होगा अनुपम होगा।

८५४ इधर उधर क्यों ? अधर पर धर प्रिय का नाम—यही बड़ा आधार है।

ऐ प्राणी ! तू इधर उधर न देख अर्थात् तू व्यक्ति का सहारा न ले। व्यक्ति का सहारा लेकर तू अधर में ही लटक जायेगा, तेरी हालत दयनीय हो जायेगी क्योंकि व्यक्ति का सहारा स्थायी नहीं। देख, तुझे यदि सहारा ही चाहिये तो ईश्वर का ले। एक बार तू यदि ईश्वर का साथ पा जायेगा तो तेरी जिन्दगी ही सँवर जायेगी, फिर तुझे सहारे के लिये इधर-उधर नहीं देखना होगा। ईश्वर का आधार तुझे कष्टों से ही नहीं बचायेगा तेरी दुनिया प्यार से सजा देगा। अतः तू प्रिय के नाम को अधर पर धर अर्थात् कोमल हृदय में उसे बसा कि तेरे ओठों पर भी उसका नाम विराजमान हो जाये। जब तेरे बाहर (ओठों पर) भीतर (हृदय पर) सर्वत्र प्रिय होगा तब तुझे कोई भी हस्ती नहीं हिला सकेगी क्योंकि तूने जो आधार पाया है वही सबसे बड़ा आधार है।

८५५ ये तितलियाँ—ये भँवरे तंग करते हैं—रंग से, शब्द से। रस पान कर उपालंभ न रहेगा।

ऐ प्राणी ! इस दुनिया के रंग बिरंगे आकर्षण तुझे तब तक ही लुभाते हैं जब तक तू आत्मविभोर नहीं हो जाता। देख, इन्द्रियों को विभिन्न प्रकार के रस चाहिये और रस के लिये ये स्थूल में चक्कर काटती हैं क्योंकि इन्हें मालूम नहीं कि रस कहाँ है। जब ये रंग बिरंगी दुनिया में चक्कर काट कर भी तृप्त नहीं होतीं तब उपदेशकों के उपदेश में रस खोजती हैं किन्तु जहाँ बातें रस की कही जायें और ध्यान अन्यत्र (धन, जन, मान, सम्मान आदि में) लगा हो वहाँ रस की प्राप्ति कैसे हो ? परिणाम वहाँ से भी ये अतृप्त ही

लौट आती हैं। अब सब जगह चक्कर काट कर भी जब इन्हें कुछ नहीं मिलता तब हृदय में बेकली शुरू होती है एवं हृदय छटपटाने लगता है। देख, रस बाहर नहीं तेरे भीतर है, इसे तू जब भी पायेगा भीतर ही पायेगा अतः तू इसे बाहर न खोज तू वह स्थान खोज, वह सत्य साथ खोज जिसे पाकर तेरे अन्तर में रस का जागरण हो जाये। जिस दिन तू सन्त वाणी के स्पर्श से अन्तर में रस की अनुभूति पा जायेगा, उस दिन न तितलियाँ (रंग बिरंगे आकर्षण) तुझे भरमायेंगी और न भँवरे की गुंजार (उपदेशकों की मीठी बात) तुझे लुभायेगी, भायेगी तुझे केवल वह वाणी जो तेरे अन्तर में रस का संचार करेगी।

८५६ खुशामद क्यों? प्रार्थना कर, प्रेम कर नहीं तो प्रसन्न रह। आमद तो खुश होने में है।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरा अपना है। देख, ईश्वर को देखभाल करने के लिये कभी कुछ कहना नहीं पड़ता, वह स्वतः सबके लिये सब कुछ कर रहा है जैसे मां बच्चे की देखभाल करती है। अतः तू धन-जन के लिये ईश्वर की खुशामद न कर, तू ईश्वर के कार्यों को देखते हुए ईश्वर के सम्मुख श्रद्धा अवनत हो अथवा ईश्वर से प्रेम कर, यदि ऐसा न भी कर सके तो कम से कम उसकी देन को देखते हुए प्रसन्न रह। जब तू प्रसन्न रहना सीख जायेगा तब तुझे जो भाव प्राप्त होगा वह अवर्णनीय होगा। तब तू देख पायेगा कि बड़े-बड़े धनी मानी भी तुझसे गरीब हैं। वे रोते रहते हैं क्योंकि उनको वह धन प्राप्त नहीं जो तुझे प्राप्त है, उनका धन तेरे धन के सामने अति नगण्य है।

८५७ प्राण ही नहीं तो प्राण वायु क्या करेगी? प्रेम ही नहीं तो यह अभ्यास क्या करेगा?

ऐ प्राणी! वायु प्राणदायिनी अवश्य है किन्तु जब तक शरीर में प्राण रहते हैं तभी तक ही यह सहायक होती है, जब प्राण निकल जाते हैं तब वायु बहती रहे—उसका प्रतिफल नहीं होता। प्रेम के बिना ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले अभ्यास की भी यही बात है। प्रेम प्राण है, प्रेम ही नहीं तो केवल अभ्यास कुछ नहीं कर सकता, उससे आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती। देख, ईश्वर तेरा अपना है किन्तु तू उसे अभी पहचानता नहीं इसीलिये तुझे अभ्यास की जरूरत पड़ती है। जिस दिन ईश्वर को तू पहचान

जायेगा उस दिन तुझे अभ्यास करना नहीं होगा तेरे हृदय में स्वतः प्रेम उमड़ेगा। अतः जिनके हृदय में ईश्वर का प्रेम झलकता है तू उनका साथ ग्रहण कर कि वहाँ तू ईश्वर की झलक देख पाये एवं ईश्वर तेरा अपना बन जाये। तब तेरी अवस्था दूसरी होगी, ईश्वर के लिये तब तुझे कुछ कार्य अलग से करने नहीं पड़ेंगे स्वतः कुछ ऐसा होगा जिससे तू आनन्द पाता रहेगा।

८५८ ऋतु परिवर्त्तन में शरीर की रक्षा ही प्रधान रही तो परिवर्त्तन का आनन्द कहाँ ?

ऐ प्राणी ! भिन्न-भिन्न ऋतुएँ आनन्दवर्द्धन के लिये होती हैं। सभी ऋतुओं का अपना अलग-अलग अस्तित्व है किन्तु उन ऋतुओं का आनन्द न लेकर उनमें से किसी एक को ही उचित ठहरा लिया जाय तो व्यक्ति शरीर रक्षा में ही रह जायेगा उनका आनन्द नहीं ले पायेगा। ये दुःख सुख आदि विभिन्न स्थितियाँ भी ऋतु परिवर्तन की तरह हैं। इनमें से केवल सुख को उचित ठहराने वाला सब स्थितियों में स्थित नहीं रह पाता, वह सदा सुख को ही याद करके रोता रहता है। देख, एक रस कितना भी अच्छा क्यों न हो उसमें आनन्द नहीं मिलता, आनन्द परिवर्तन में है। अतः तू परिवर्तन को दुःख का नाम न दे, तू इसकी (परिवर्तन की) महिमा को जान कि हर परिवर्तन तुझे आनन्द देता रहे अन्यथा रोते-रोते ही तेरी जिन्दगी गुजर जायेगी और सुख को भी तू सुख से ग्रहण नहीं कर पायेगा।

८५९ तेरा विश्वास कैसे करूँ अनेक प्रेमी और पुजारी। अविश्वास तुम्हारी मानसिक दुर्बलता। प्यासे को जल चाहिये। पिलाने वाले की शक्ति से अनजान इसीलिये परेशान।

विश्वास के अभाव में सब कुछ सम्मुख देखते हुए भी व्यक्ति कुछ भी ग्रहण नहीं कर पाता। वह ईश्वर प्रेमियों को भी देखता है, पुजारियों को भी देखता है फिर भी अविश्वास से घिरा रहता है—प्रेमीजन व पुजारी के भाव उसे संदेहास्पद से लगते हैं। ऐ प्राणी ! अविश्वास तेरी दुर्बलता ने पैदा किया है। स्थूल जगत में रहते-रहते तेरी दृष्टि स्थूल से इतनी आबद्ध हो गयी कि स्थूल से परे भी कुछ है यह तेरे लिये अविश्वसनीय हो गया और यही कारण है कि स्थूल को अधिक से अधिक पाकर भी तू आज प्यासा ही बना हुआ है। देख,

स्थूल में शक्ति नहीं कि तेरे हृदय की प्यास को बुझा सके और अज्ञात की शक्ति से तू अनजान है फिर परेशान रहना तो स्वाभाविक है। जिस दिन तू उसकी शक्ति से परिचित होगा उस दिन तेरी परेशानी नहीं रह जायेगी, तू वह तृप्ति पायेगा कि विश्वास तुझे करना नहीं होगा विश्वास तेरा अपना धन होगा अर्थात् तू विश्वास के सहारे निश्चिन्त होगा।

८६० समुद्र कहीं गड्ढे में सीमित रहा है? प्रेम कहीं व्यक्ति विशेष के लिये रहा वह तो बहता है सबके लिये।

ऐ प्राणी! प्रेम किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं, प्रेम सबका है किन्तु यह पाया वहीं जाता है जहाँ प्रेम के लिये तड़प है। देख, प्रेम समुद्र है। समुद्र की जैसे कोई सीमा नहीं, प्रेम भी वैसे ही असीम है। समुद्रवत् बनने के लिये नदी नालों को समुद्र में समाना पड़ता है, प्रेम को पाने के लिये भी पूर्णतया मिट जाना पड़ता है। जब तक सूक्ष्म अहं के लिये भी स्थान रहता है तब तक प्रेम का पूर्ण साम्राज्य नहीं पाया जाता। अतः तू यदि प्यार को पाने का अभिलाषी है तो पूर्णतया मिटने के लिये तैयार हो जा—तभी तू प्यार का लहलहाता समुद्र सम्मुख देख पायेगा अर्थात् तू प्यार रूप हो सकेगा। अन्यथा तू प्रेम के नाम पर व्यक्ति की ओर देखता रहेगा तथा भ्रमवश उसे ही प्रेम समझता रहेगा—ऐसे में तू प्यार से दूर ही रह जायेगा क्योंकि सीमा में बँधने वाला प्रेम प्रेम नहीं, प्रेम विराट भाव है जो बन्धन बाँधता नहीं बन्धन काटता है।

८६१ नदियाँ शान्त हुईं। कब? जब समुद्र ने आश्रय दिया। चित्त वृत्तियाँ लीन हुईं। कब? जब प्रिय मिला, प्रेम मिला।

ऐ प्राणी! नदियाँ तब तक बहती रहती हैं जब तक कि समुद्र में समाहित नहीं हो जातीं, समुद्र में मिलने के पश्चात् वे शान्त हो जाती हैं। ऐसे ही चित्त में भी तभी तक चञ्चलता रहती है जब तक कि प्रिय प्रभु के दरशन नहीं हो जाते एवं प्रेम समुद्र में अवगाहन का आनन्द नहीं मिलता। जब प्रिय प्रभु के दरशन हो जाते हैं तथा प्रेम की तरंगें हृदय को स्पर्श करने लगती हैं तब चित्त वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, वे इधर उधर भटकना छोड़कर प्रेम रस का पान करने लगती हैं। प्राणी के हृदय की विकलता भी तभी शान्त होती है। ऐसा है यह प्रेम जिसे पाकर ही जाना जा सकता है।

८६२ तपस्या का फल मीठा किन्तु तपस्या काल दुःखदायी क्यों ? काँटों के साथ फूल खिलते हैं। प्रसव पीड़ा मातृत्व प्रदान करती है।

ऐ प्राणी ! तपस्या का फल मीठा होता है अर्थात् प्रत्येक कठिन परिस्थितियाँ कुछ देने के लिये आती हैं। अतः तेरे जीवन काल में तुझे जैसी भी परिस्थितियों का सामना करना पड़े तू उन्हें शीश झुकाकर, प्रसन्न रहकर स्वीकार करना। यदि तू उनसे घबड़ा जायेगा एवं दुःखी हो जायेगा तो उनसे मिलने वाले अवसर का लाभ नहीं उठा पायेगा। देख, काँटों में फूल खिलते हैं, यदि काँटे नहीं तो फूल भी नहीं होंगे। माँ को भी बच्चे का मुख देखने के पहले भयंकर प्रसव पीड़ा झेलनी पड़ती है। प्रसव पीड़ा झेले बिना मातृ सुख का आनन्द मिलना सम्भव नहीं अर्थात् कष्ट पाये बिना आनन्द के दर्शन सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक परिस्थिति को तू ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण करना कि तू आज भी प्रसन्न रह पाये तथा तेरा कल भी आनन्द से भर जाये।

८६३ समग्रता में एकाग्रता की अवस्था कैसे बने ? एक ही समग्र हो तो सब सम्भव है।

ऐ प्राणी ! तेरी यही धारणा है कि सबके बीच में बैठ कर शान्त नहीं रहा जा सकता, शान्त होने के लिये निर्जन स्थान चाहिये किन्तु बात ऐसी नहीं। देख, जो सहारे के लिये जन-जन का मुँह देखा करते हैं वे कहीं भी बैठ जायें शान्त नहीं हो पाते किन्तु जिन्होंने एक ईश्वर की शरण ग्रहण की है और उस एक को ही माता, पिता, भाई, बन्धु आदि सब रूप में पाया है वे जहाँ भी बैठते हैं शान्त रहते हैं, वे अनेकों के बीच में बैठकर भी एकाग्र रहते हैं। अतः तू ऐसा न समझ कि समग्रता में एकाग्रता सम्भव नहीं तू उस एक को जान जो तेरा सब कुछ है। उसे पाकर तू वह भाव पा सकेगा जिसे हिलाने की सामर्थ्य किसी में भी न होगी और तभी तू आनन्द में भी रह सकेगा।

८६४ प्रदर्शन में दर्शन चाहता है प्रेम का प्रेमी का। नाचने दे प्रदर्शनकारियों को, दर्शन कर प्रेम का प्रेमी का।

ऐ प्राणी ! जो नाम प्रशंसा की भूख मिटाने के लिये ईश्वर का नाम लेते हैं उनकी वाणी में कभी प्रेम नहीं आ सकता और न उनके हृदय में प्रेम को

स्थान मिल सकता है अतः ऐसे प्रदर्शनकारियों से तू प्रेम पाने की आशा न रख। देख, प्रेम प्रेमियों के लिये होता है, उन प्रेमियों के लिये जिनका हृदय प्रेम पाने के लिये तड़पता है—ऐसे जन ही प्रेम का दर्शन कर पाते हैं, वे उन प्रेमियों का साथ भी पा जाते हैं जिन्होंने ईश्वर के साथ ही जीवन का प्रत्येक क्षण गुजारा है। उन्हें प्रदर्शनकारी की प्रदर्शन की अदा नहीं लुभा सकती क्योंकि उन्हें प्रेम के कार्य नहीं चाहिये, वह भाव चाहिये जो उनके दिल को राहत दे। प्रदर्शनकारी की अदायें उन्हें ही लुभाती हैं जिनके हृदय में प्रेम की प्यास नहीं। अतः तू सच्चे प्रेमी की खोज कर कि तेरे हृदय का सोया प्रेम जाग जाये और तू प्रेम को स्वयं में जाग्रत देख पाये।

८६५ जटा की छटा देखी, ज्ञान आनन्द कब देखा? गोता लगा, यह सोता कि जागता है, पता लगे।

ऐ प्राणी! किसी के बाहरी परिवेश से ही तू उसे साधु न समझ बैठना क्योंकि साधु केवल परिवेश धारण करने से ही नहीं हो जाता हृदय में ज्ञान का आलोक फैलने से होता है, आनन्द वर्षण से होता है। अतः तू यदि कहीं जटा की छटा देख पाये तो उनके समीप बैठकर यह पता लगाना कि वे अन्धकार में सोये हुए हैं या प्रकाश से आलोकित हैं। यदि उनके समीप बैठकर तेरी वृत्तियाँ शान्त होने लगें तो वे साधारण प्राणी नहीं अलौकिक पुरुष हैं किन्तु वहाँ बैठकर भी तू शान्त न हो पाये, तेरी वृत्तियाँ अन्यत्र चक्कर काटती रहें तो यही समझना होगा कि ईश्वर के नाम पर केवल स्वांग रचाया गया है और ऐसे में तू उनसे दूर ही रहना। तेरी सच्ची खोज तुझे एक दिन अवश्य सच्चे से मिला देगी जिसके साथ से तू उस सच्चे को पा जायेगा जो सबमें समाया हुआ है फिर भी सबसे अलग है।

८६६ प्यार में भी गर्मी है और क्रोध में भी। इस गर्मी में गैर कौन है? रमी किसमें है? गैर है क्रोध और रमी है प्यार में। प्यार तो इसका रूप है।

ऐ प्राणी! गर्मी किसी भी कारण से क्यों न हो—चाहे प्यार की हो, चाहे क्रोध की हो—व्यक्ति उसमें भान भूलता देखा जाता है। हृदय में जब प्यार का प्रादुर्भाव होता है तब वह प्रिय में मशगूल हो जाता है और जब क्रोध का प्रादुर्भाव होता है तब क्रोध में मशगूल हो जाता है—दोनों में ही व्यक्ति

होश खो बैठता है किन्तु दोनों की भीतरी अवस्था में अन्तर रहता है। देख, अब तू विचार कर कि इन दोनों में गैर कौन है और रमी (आनन्द) किसमें है? विचार करने से तू देख पायेगा कि क्रोध तुझे बाहर की तरफ फेंक रहा है और प्रेम तुझे भीतर की ओर अभिमुख कर रहा है। क्रोध में तू स्वयं को भूलता जा रहा है और प्रेम में कुछ पाता जा रहा है अर्थात् तल्लीन होता जा रहा है। तब तुझे बताना नहीं पड़ेगा कि तुझे क्या करना है, तू स्वतः देख पायेगा कि क्रोध त्याज्य है और प्यार आनन्दमय जीवन जीने का रास्ता है। यदि प्यार नहीं तो जीवन में बहार भी सम्भव नहीं।

८६७ अगर तू सागर होता तो अनेक आकर मिलते और शान्ति पाते। गागर बन बैठा अब क्या हो?

ऐ प्राणी! तू साधारण नहीं असीम शक्ति का स्वामी है, तुझमें वह शक्ति है जो किसी में भी नहीं किन्तु तू अपने रूप को भूला हुआ है। देख, सागर में कितने ही नदी नाले आकर समाहित होते हैं और कितने ही व्यक्ति उसके किनारे बैठकर शान्ति पाते हैं—तू भी उतना ही विशाल है। किन्तु स्थूल की तरफ देखते-देखते तू अपनी शक्ति को भूलता जा रहा है और स्थूल ताकत से बँधता जा रहा है। अब शरीर का बल, पैसे का बल, तपस्या का बल, अपनों का बल—यहीं तक तेरी ताकत रह गई है। अरे पगले! एक दिन तेरी सारी ताकत चूक जायेगी—न शरीर तेरा साथ दे सकेगा, न पैसा साथ दे सकेगा, न तेरी की हुई तपस्या साथ देगी और न तेरे साथी साथ देंगे—तू इतनी ताकतों को बटोर कर भी बेसहारा हो जायेगा। अतः शरीर रहते-रहते तू अपनी ताकत (स्व बल) को पहिचान ले, वह स्थूल से परे है एवं कभी खत्म होने वाली नहीं। जब तू उसे पा जायेगा तब अत्यन्त बली भी तेरे समीप आकर झुकेंगे एवं राहत पायेंगे क्योंकि स्थूल की बड़ी से बड़ी ताकत भी स्व बल के सम्मुख कण के समान है।

८६८ त्याग का उपभोग महान। अन्य भोग भूल में डालते हैं।

ऐ प्राणी! त्याग में (उपभोग का) जो आनन्द है वह भोग में नहीं है। देख, भोग केवल शरीर को सुख पहुँचाता है। भोग भोगते-भोगते व्यक्ति स्थूल का दास हो जाता है 'स्थूल से परे भी कुछ है' यह उसकी समझ के बाहर हो जाता है—उसकी जिन्दगी में तब रोने गाने के सिवा कुछ भी नहीं

रह जाता। किन्तु त्याग की दुनिया अनोखी होती है। त्यागी त्याग करते-करते एक दिन अपना सर्वस्व प्रिय के चरणों में न्योछावर कर देता है, यहाँ तक कि एक श्वाँस पर भी उसका अपना अधिकार नहीं रह जाता। उसका उठना, बैठना, सोना, जागना आदि छोटी बड़ी सभी क्रियाएँ प्रिय के साथ होने लगती हैं। ऐसे सन्त के बाहर के कार्य देखने में साधारण प्राणी की तरह ही रहते हैं किन्तु उनकी दुनिया रस भरी होती है, भोग का आनन्द वे ही ले पाते हैं। अन्य जन तो भोगते-भोगते भोग के दास हो जाते हैं अर्थात् वे मिट्टी से खेलते-खेलते एक दिन मिट्टी में ही मिल जाते हैं।

८६९ दिल वाला कहीं दल के दल-दल में फँसता है? वह तो अर्पण कर बाग-बाग हो जाता है। जिससे पाया उसी को दिया।

ऐ प्राणी! दिल की कद्र सच्चा प्रेमी ही करता है। वह किसी भी ऐसे भाव विचार को नहीं अपना पाता जिससे दिल में आघात पहुँचे और न किसी ऐसे कार्य को ही कर पाता है। वह सदा प्रिय की दुनिया में रहना पसन्द करता है, उसकी प्रत्येक गतिविधि प्रिय के लिये होने लगती है! उसकी वाणी सदा प्रिय का सन्देश सुनाती रहती है। वाणी से आकृष्ट होकर यदि उसके समीप दल के दल भी आते हैं तो वह उनमें प्रिय की छवि ही देख पाता है, उन्हें अपना मान कर दल नहीं बाँधता। वह ज्ञात अज्ञात से जो कुछ भी पाता है उसे प्रिय के चरणों पर अर्पित कर बाग-बाग होता रहता है। देख, दल में फँसा व्यक्ति कब ईश्वर से दूर हो जाता है—इसे वह जान भी नहीं पाता। ऐसा व्यक्ति ईश्वर का नाम लेते हुए एवं ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य करते हुए भी ईश्वर से दूर ही रह जाता है।

८७० दिलदार स्वार्थी नहीं। जिसने दिल खिलाया उसी का हो गया।

ऐ प्राणी! इस संसार में चारों ओर स्वार्थ ही स्वार्थ नजर आता है, स्वार्थ में लगे रहने के कारण प्रत्येक का दिल मुरझाया हुआ सा दिखलाई देता है किन्तु कुछ फूल की तरह खिले हुए लोग भी पाये जाते हैं। वे स्वार्थी नहीं होते, स्वार्थ का उनमें नामोनिशान भी नहीं रहता। उनके दिल खिलने का राज प्रभु कृपा है। वे हमेशा दिल के आइने में प्रभु की मूर्त्ति विराजमान पाते हैं अतः कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर पाते जिससे उनका दिल दुःखता हो—

उनका दिल उन्हें सदैव गलत राह पर बढ़ने से रोकता रहता है। ऐसा सुन्दर दिल पाकर भी वे कभी उसे अपना नहीं जानते, उसे प्रभु कृपा का प्रसाद जानते हैं अतः वे हमेशा प्रभु के चरणों में ही झुके रहते हैं। उन्हें झुक कर वह आनन्द मिलता है जो सम्पूर्ण संसार के वैभव को पाने में भी नहीं। यथार्थ में ऐसे प्रेमी का ही दिल खिला रहता है, अन्य जन ईश्वर को भूल जाने के कारण यहाँ मार खाते-खाते ही बेहाल रहते हैं।

८७१ हो गया नहीं, हो कर रहा। उसने कब वेद पढ़ा, कब शास्त्र अवलोकन किया ? दिल देखा और दिल दिया।

ऐ प्राणी ! प्यार जोर जबर्दस्ती से पैदा करने की चीज नहीं, प्यार सहज भाव है किन्तु इसे पाने की कसक किसी-किसी में ही होती है। देख, जो ईश्वर भक्त रहते हैं वे प्यार की प्यास लेकर ही पैदा होते हैं। वे प्यार के लिये न कोई वेद पढ़ते हैं और न शास्त्रों का अवलोकन करते हैं उनमें प्यार पाने की तड़प स्वाभाविक रहती है। उम्र के साथ-साथ उनकी यह प्यास जब उग्र रूप धारण कर लेती है तब उन्हें स्वतः ऐसे साथी के दर्शन हो जाते हैं जो प्यार रूप है एवं प्यार बाँटने के लिये ही जिसका आविर्भाव हुआ है। ऐसे साथी के दर्शन पाकर उनके बेचैन दिल को राहत मिलती है, वे उसका दर्शन करते करते नहीं अघाते। दर्शन के पश्चात् भी जब हृदय की विकलता शान्त नहीं होती तब वे दर्शन उनके हृदय में बस जाते हैं अर्थात् वे उस साथी को प्राणों में प्रतिष्ठित देख पाते हैं—उनके जन्म जन्मान्तर की प्यास तभी शान्त होती है। जब तक प्रेम के अवतार (सन्त) के दर्शन नहीं होते एवं प्रेम हृदय में बस नहीं जाता तब तक वे बिन पानी की मछली की तरह छटपटाते रहते हैं। ऐसा है यह प्यार जिसमें प्रियतम प्रभु को पाने के लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती, स्वतः साज सजते हैं।

८७२ है तो, व्याप्त। है तो, सुप्त। है तो, गुप्त। फिर शान्ति कैसे मिले ?

ईश्वर कण-कण में समाया हुआ है फिर भी दिखता नहीं क्योंकि वह स्थूल नहीं, वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। सम्पूर्ण जड़ चेतन प्रकृति उसी से गतिमान है किन्तु समक्ष स्थूल दिखलाई देता है अतः ईश्वर सुप्त ही रह जाता है, उसके अस्तित्व का भान भी नहीं होता। यही कारण है कि व्यक्ति ईश्वर से लाभान्वित

होता हुआ भी उससे दूर ही रह जाता है अर्थात् ईश्वर उसकी आँखों से ओझल रहता है। ऐसे में शान्ति के दर्शन कैसे सम्भव हो सकते हैं? ऐ प्राणी! ईश्वर गुप्त अवश्य है किन्तु जो उसे देखना चाहते हैं उनसे वह छुप कर नहीं रह सकता। उनकी आकुल व्याकुल पुकार उसे सोया नहीं रहने देती, उस पुकार से वह उनके हृदय पटल पर जाग्रत हो जाता है। ऐसे भक्त ही सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति पाते हैं।

८७३ पुस्तकें धीरज बँधा सकेंगी? धीरज तो वह बँधाये जो तुम्हारा हो, जिसने तुम्हें देखा हो।

ऐ प्राणी! पुस्तकें ईश्वर का संकेत दे सकती हैं, धीरज नहीं बँधा सकतीं। धीरज बँधाने के लिये केवल शब्द ही नहीं, शब्द के साथ प्यार-भाव भी चाहिये। देख, सद्गुरु प्यार की मूर्त्ति होते हैं, उनका आगमन प्यार बाँटने के लिये ही होता है। स्थूल आकर्षणों में उलझा प्राणी जब अधीर हो उठता है और चारों ओर शान्ति की खोज करता है तब सद्गुरु की वाणी ही उसे धीरज बँधा सकती है। सद्गुरु का हृदय आइने की तरह निर्मल होता है, वे प्रत्येक आगत प्राणी के भावों को स्पष्ट देख पाते हैं। चूँकि सभी उनके अपने होते हैं अतः वे समीप आने वालों के हृदय का मल वाणी रूपी हाथों से बड़े प्यार-भाव से साफ कर देते हैं। दुःखित व त्रसित प्राणी उनकी शरण पाकर शान्ति पाता है, यदि उनके समीप जाकर प्राणी में और अधिक पाने की अभिलाषा हुई तो वह उस धन (आनन्द) को भी पा जाता है जो कभी खत्म होने वाला नहीं।

८७४ प्रेम अभिमान सहन नहीं करता। अभिमानी क्या प्रेम करेगा? जो निरर्थक फूलता है, वह वहीं झूलता है।

ऐ प्राणी! प्रेम की पगडण्डी अति सँकरी होती है, उस पर केवल प्रेमी ही बढ़ सकता है। प्रेम के साथ यदि प्रेमी के हृदय में किंचित मात्र भी अभिमान के लिये स्थान रहता है तो वह प्रेम पगडण्डी पर नहीं चल सकता। देख, प्रेम अभिमान सहन नहीं करता, प्रेम को पाने के लिये पूर्णतया मिटना पड़ता है—जब तक मिटने के लिये तैयार नहीं तब तक प्रेम पाना भी सम्भव नहीं। प्रेम के नाम पर बढ़ने वाला भी यदि फूलता है अर्थात् अपने को बढ़ा-चढ़ा समझता है तो वह उसमें ही अटक जाता है, प्रेम का दरशन नहीं कर पाता। अतः तू यदि प्रेम पाने का अभिलाषी है तो केवल प्रियतम प्रभु की

छवि को हृदय पर अंकित कर ले एवं उसे ही हर पल देखता रह, अपनी ओर तू भूल कर भी दृष्टि न डाल तभी तू प्रेम का दरशन पा सकेगा।

८७५ प्रेम उदय हुआ व्यक्ति का दिल बदला। दुनिया उसे पागल कहती है। वह पाकर निहाल हो जाता है। दुनिया की चिन्ता नहीं।

ऐ प्राणी! प्रेम उदय होने के पूर्व दिल की अवस्था दूसरी रहती है और प्रेम उदय होने के पश्चात् दिल दूसरे ही प्रकार का हो जाता है। पहले व्यक्ति दिल की उपेक्षा करता है किन्तु बाद में उसे प्रत्येक कार्य दिल की सुरक्षा का ख्याल रखते हुए करने पड़ते हैं। ऐसा व्यक्ति जिस ओर अन्य लोग भाग रहे हैं उधर नहीं भाग पाता अतः दुनिया उसे पागल करार देती है किन्तु वह किसी की ओर नहीं देखता, वह देखता है केवल उस प्रभु की ओर जो उसके प्राणों में बसा उसे प्रेरणा देता रहता है। उसका प्यार ही उसे जीवन प्रदान करता है—उस प्रेम के सम्मुख स्थूल की बड़ी से बड़ी उपलब्धि भी उसे छोटी लगती है। देख, प्रेम उदय होने के पूर्व व्यक्ति का हृदय छटपटाता रहता है। इस छटपटाहट को मिटाने के लिये वह अनेक प्रयास भी करता है किन्तु उनसे वह समय विशेष के लिये ही राहत पाता है, उसके दिल की अवस्था तब भी ज्यों की त्यों बनी रहती है। दिल में परिवर्तन प्रेम के उदय होने के पश्चात् ही आता है अतः ऐसे प्रेम को किसी भी कीमत पर छोड़ने के लिये उसका दिल तैयार नहीं होता।

८७६ शरीर भी आकर्षण का केन्द्र बना जब प्रेम का निवास बना।

ऐ प्राणी! प्रेम में अपूर्व दिव्यता रहती है। प्रेम जिस हृदय में निवास करता है वह शरीर भी आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। प्रेमी के हर कार्य से प्रेम टपकता है—उसकी वाणी, उसके दरशन, उसका स्पर्श सभी सुहावने लगते हैं। आँखें यदि प्रेमी का एक बार दर्शन पा लेती हैं तो उसे देखते-देखते थकती नहीं, बार-बार उसे ही देखना चाहती हैं—ऐसा है यह प्रेम जो साधारण से मानव को महामानव बना देता है। देख, ऐसी प्रेम की मूर्त्ति के तू यदि कहीं दरशन कर पाये तो उन्हें दूर से ही देखकर न छोड़ देना, तू उस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा हृदय में करना कि तेरा सोया प्रेम भी जाग जाये और जो आकर्षण तू उनमें देख पाता है उससे तेरा रोम रोम भी सज जाये। तभी

तेरा मनुष्य बनना सार्थक होगा अन्यथा प्रेम के अभाव में तू पशुवत जीवन यापन करता रहेगा, उसमें आकर्षण के लिये कुछ भी नहीं रह जायेगा।

८७७ जाति, धर्म, कर्म प्रेम नहीं पूछता। वहाँ तो एक धर्म है। प्यार कर, यार कर, विचार कर, प्रचार कर, सफल कर जीवन नहीं तो मर मर मर।

ऐ प्राणी! प्रेम को पाने के लिये किसी जाति विशेष को नहीं अपनाना पड़ता, न किसी धर्म विशेष का अनुयायी बनना पड़ता है और न किसी भी कार्य के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है अर्थात् प्रेम जाति, धर्म, कर्म से परे है। प्रेम का केवल एक धर्म है वह यह है कि प्यार कर। देख, प्यार के लिये प्रियतम प्रभु सम्मुख चाहिये, जब तक प्रियतम प्रभु के दर्शन नहीं हो जाते तब तक प्यार की उत्पत्ति सम्भव नहीं। अतः प्यार की उत्पत्ति के लिये तू प्रियतम प्रभु की खोज कर। जब तू प्रियतम प्रभु के दरशन पा जाये तथा दरशन के पश्चात् तेरा हृदय प्यार से सज जाये तब तू विचार करना कि प्यार का जीवन में कौन सा स्थान है? तब तू देख पायेगा कि प्यार जीवन का शृंगार है, प्यार के बिना जीवन बेकार है। ऐसे में तेरे मुख पर स्वतः प्यार की बातें होंगी और प्यार की अनुभूति पाता हुआ तू आनन्दमग्न होगा। किन्तु तू यदि प्यार की अवहेलना करेगा तो समय विशेष के लिये स्थूल में खोकर खुश हो जायेगा लेकिन एक समय पश्चात् तेरा जीवन जीते जी ही मृतक तुल्य होगा।

८७८ मर किसी के प्यार में कि अमर हो जाये।

ऐ प्राणी! मनुष्य जीवन की सार्थकता प्यार में है। प्यार में अहंता, ममता के लिये स्थान नहीं रहता। प्यार का उदय होने के पश्चात् संकीर्णता का घेरा टूट जाता है एवं हृदय विशाल भावों से सज जाता है। किन्तु यह सब तभी होता है जबकि प्यार पाने के लिये हृदय छटपटाने लगता है एवं प्रियतम प्रभु के दरशन पाकर प्यार के लिये व्यक्ति समर्पित हो जाता है। देख, प्यार के लिये जिन्होंने भी कदम बढ़ाया है उन्होंने पूर्णतया अपने आपको प्रभु चरणों पर न्योछावर किया है अर्थात् प्रेमी की अपनी दुनिया नहीं रहती, वे प्रियतम प्रभु की दुनिया में ही रहते हैं—ऐसे जन ही प्यार का आनन्द पाते हैं, उन्हें काल भी नहीं मिटा सकता। आँखों से दिखलाई पड़ने वाला उनका

शरीर मिट जाता है किन्तु वे नहीं मिट पाते, वे अमर हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन प्यार के लिये न्योछावर किया है।

८७९ बन उसका धन मिले। फिर बन्धन कहाँ, वन्दन कहाँ?

ऐ प्राणी! स्थूल की बड़ी से बड़ी उपलब्धि भी प्रेम धन के सामने कण के समान है। देख, स्थूल उपलब्धियाँ बन्धन में बाँधती हैं जबकि प्रेम बन्धन काटता है। प्रेम धन की प्राप्ति के पश्चात् जन्म-जन्मान्तर के बन्धन कटते देखे जाते हैं—मोह-ममता, स्वार्थपरता आदि संकीर्ण भाव तब टिक नहीं पाते। प्रेम में तो वन्दन के लिये भी स्थान नहीं रह जाता, वन्दन तभी तक किया जाता है जब तक प्रियतम प्रभु आँखों से ओझल रहता है, वह अपना नहीं बन जाता। जब वह अपना बन जाता है तब पूजा प्रार्थना बन्द हो जाती है और प्रेम का प्रवाह हृदय में शुरू हो जाता है। अतः प्रेम धन को पाने के लिये तू प्रियतम प्रभु का बन कि तुझे उस धन की प्राप्ति हो जाये जिसे पाने के पश्चात् तेरी निर्धनता समूल नष्ट हो जाये, तुझे किसी के मुँह की ओर देखना न पड़े।

८८० शान्ति की पूजा कैसी? मिले तो शान्त हो। बातें कब शांति देने लगी।

ऐ प्राणी! शान्ति केवल पूजनीय ही नहीं है शान्ति धारण करने के लिये होती है। देख, शान्ति की पूजा करके तू शान्ति से दूर ही रह जायेगा किन्तु शान्ति को अपनाकर तू निहाल हो जायेगा। अतः शान्ति को श्रेष्ठ जानकर तू केवल उसकी बातें न बना, तू शान्ति को हृदय में प्रश्रय दे कि शान्ति का प्रतिफल देख पाये। शान्ति को अपनाने से तेरे भाव विचार व कार्य सभी सज जायेंगे, तू सभी का आनन्द ले पायेगा। शान्ति के अभाव में तू उन्हें सही रूप में नहीं देख पायेगा, तू उनसे स्वयं कष्ट पाता रहेगा तथा अन्य को देता रहेगा। अतः बातें बनाना छोड़कर तू शान्ति के लिये दिल से आह्वान कर कि शान्ति तेरी चिरसंगिनी बन जाये और तू उसके सहयोग से प्रत्येक मिली हुई चीज का आनन्द ले पाये।

८८१ उत्कर्ष देख कर कर्ष क्यों करता है? तू ही बता, कारण कौन? तू या मैं?

ऐ प्राणी! किसी की बढ़ोत्तरी देखकर तू जलन ईर्ष्या न कर क्योंकि

इससे उनका कुछ बिगड़ने वाला नहीं, तेरा ही सब कुछ बिगड़ेगा। तू ईर्ष्या द्वेष को अपनाकर निम्नतर अवस्था में पहुँच जायेगा, तेरी क्षमता कम हो जायेगी—शरीर शिथिल हो जायेगा, मन मैला हो जायेगा, बुद्धि विकृत हो जायेगी—तू दिन ब दिन कमजोर होता जायेगा। देख, जिनको तू बढ़ते देखता है उनको जो कुछ प्राप्त है वह तुझे भी मिला हुआ है। मैंने सबको समान रूप से सब कुछ दे रखा है और हमेशा दे रहा हूँ किन्तु ईर्ष्या द्वेष को अपनाकर तू अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहा है और उसके लिये दोषी अपने भाग्य को एवं मुझे ठहरा रहा है। अरे पगले! अब भी समय है, आज भी तू सम्हल जा तथा ईर्ष्या द्वेष का परित्याग करके उनसे प्रेरणा ले कि जो कुछ उन्हें प्राप्त है वह तुझे भी मिल जाये।

८८२ कर्त्तव्य मोह है तो बन्धन है। प्यार है तो वन्दन है।

ऐ प्राणी! कर्त्तव्य को तू एक सीमित घेरे में न बाँध क्योंकि घेरे में बँधा हुआ कर्त्तव्य मोह बन जाता है। तब यह शरीर एवं शरीर के साथियों के लिये ही प्रयत्नशील होता है 'जीवन पाने का कोई और भी उद्देश्य है' यह उसकी समझ के परे हो जाता है—ऐसा कर्त्तव्य बन्धन में बाँधता है। किन्तु प्यार की दुनिया अनोखी होती है इसमें न 'मैं' के लिये स्थान रहता है और न 'मेरे' के लिये। प्रेमी प्रिय की दुनिया में जीता है, ईश्वर की बनायी हुई सम्पूर्ण सृष्टि उसकी अपनी होती है। वह सबको अपना जानता हुआ सबसे प्यार करता है, सबसे प्यार करना ही उसका कर्त्तव्य रहता है। ऐसे प्रेमी जन को बन्धन नहीं बाँध सकते, उसके प्रत्येक भाव विचार व कार्य वन्दन बन जाते हैं—वह प्रतिपल वन्दन का आनन्द पाता रहता है।

८८३ श्वास का तार टूटा—स्वर में स्वर मिला, ईश्वर में ईश्वर मिला। क्या इसी को मृत्यु कहता है? यह तो मिलन है महान का।

ऐ प्राणी! जिसे तू मृत्यु नाम देता है वह मृत्यु नहीं मिलन की बेला है। इस मिलन की बेला में यह शरीर जिन श्वास के तारों के सहारे झूल रहा है वे तार टूट जाते हैं एवं जिन पाँच तत्वों से यह शरीर निर्मित हुआ है वे पाँचों तत्व (स्वर) तत्वों में मिल जाते हैं तथा इसमें चेतना प्रदान करने वाली शक्ति (ईश्वर) ईश्वर में मिल जाती है—तू इसी को मृत्यु नाम देता है। देख,

इस समय शरीर का घेरा टूटता है एवं आत्मा परमात्मा का मिलन होता है किन्तु शरीर रहते जो शरीर में स्थित अपने रूप (ईश्वर) को पहिचान लेते हैं वे ही इस मिलन की बेला का आनन्द लेते हैं। अन्य जन के लिये यह बेला भय प्रदायिनी होती है वे इसे मृत्यु का नाम देकर सदा भयभीत बने रहते हैं। उनकी आँखें मोह-ममता से आबद्ध होने के कारण बन्द रहती हैं इसीलिये वे इसे सहज रूप में नहीं देख पाते।

८८४ मौज हर रोज। मौज नहीं ? तो मौत हर घड़ी।

ऐ प्राणी ! तुझे जीवन का हर क्षण आनन्द के लिए मिला है अतः आनन्द में रहने का कौन सा तरीका है एवं किन भावों को अपनाने से आनन्द में रहा जा सकता है—तू उन भावों को पा ले। यदि उन्हें पाने की तेरे हृदय में आकांक्षा नहीं होगी तो तू स्थूल प्रलोभनों में बहक जायेगा, अनेक कुत्सित विचार-भाव तेरे हृदय में डेरा जमा लेंगे। ऐसे में मौज के लिये मिला जीवन तुझे कष्ट देता रहेगा। मृत्यु जीवन काल खत्म होने पर एक बार आती है किन्तु गलत भावों को प्रश्रय देने से तू हर घड़ी मृत्यु सम कष्ट पाता रहेगा। देख, ऐसा जीवन जीना तेरे लिये शोभनीय नहीं है अतः तू इसका परित्याग करके मौज के रास्तों पर कदम बढ़ा। तेरी चाहत अवश्य रंग लायेगी और तू उन भावों को पा सकेगा जिन्हें अपनाकर हर रोज मौज में रहा जा सकता है।

८८५ पी दिल भर कर पी। फिर कहना न पड़े पिया पिया।

ऐ प्राणी ! प्रभु के मुखारविन्द का रसपान तू दिल भरकर कर ले कि वह मूर्त्ति तेरे हृदय में बस जाये और हृदय में बसी वह तुझे प्रति मुहूर्त्त आनन्द देती रहे। देख, प्रियतम की मूर्त्ति जब हृदय में बस जाती है तब हृदय मन्दिर बन जाता है। तब वे भाव समीप नहीं रह पाते जो हृदय को कलुषित करने वाले हैं, समीप वे ही भाव ठहर पाते हैं जो हृदय को सरस बनाने वाले हैं। एक बार प्रभु प्रेम का रस चखने के बाद अन्य स्वाद नहीं भाते, सभी फीके लगने लगते हैं। अतः तू यदि कहीं ऐसी भाव की मूर्त्ति के दर्शन कर पाये जो तेरे हृदय को अपनी ओर खींचती हुई हृदय में रस का वर्षण करती हो तो तू उस मूर्त्ति पर दिल को अर्पित कर देना कि प्रियतम प्रभु तेरा अपना बन जाये। तब तुझे उसे अलग से याद करना नहीं पड़ेगा वह तुझे सदा याद आता रहेगा—उसकी याद ही तेरी जिन्दगी बन जायेगी।

८८६ शुद्ध रस पान कर भी बहक न सका, बह न सका तो क्या पिया ? प्रिय को पिया पिया कह कर पुकार न सका तो क्या पिया ?

ऐ प्राणी ! मादक द्रव्यों में वह नशा नहीं जो प्रभु प्रेम रस का पान करने में है। प्रभु प्रेम की वार्ता करके भी यदि तुझे नशा नहीं होता, तू सब कुछ भूल नहीं जाता तो यही कहना होगा कि अभी तूने प्रभु प्रेम रस का पान किया ही नहीं। देख, शुद्ध रस का पान करने के लिये जिनका हृदय शुद्ध है उनके समीप शुद्ध हृदय लेकर जाना पड़ता है। जब तक शुद्ध हृदय सन्त का साथ नहीं मिल जाता तथा उनके समीप बैठते-बैठते हृदय शुद्ध नहीं हो जाता तब तक प्रेम की बातें केवल कानों से ही सुनी जा सकती हैं, हृदय में प्रेम का प्रस्फुटन नहीं हो पाता। अतः तू सन्त वाणी द्वारा शुद्ध रस का पान कर कि तेरा हृदय परिवर्तित हो जाये, प्रिय का नाम तेरी वाणी में बस जाये अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर वाणी विलास ही करता रहेगा, ईश्वर के सामीप्य का आनन्द नहीं ले पायेगा।

८८७ अतीत अवतार, समक्ष संसार। संसार का व्यवहार। कालातीत वर्त्तमान। मान, आनन्द ले।

ईश्वर भी जब रूप धारण करके आता है तब उसे लौट कर जाना पड़ता है किन्तु वह जाकर भी नहीं जाता क्योंकि ईश्वर शरीर नहीं ईश्वर सत्य है, वह शरीर का आश्रय लेकर अवतरित होता है। जब वह आँखों से ओझल हो जाता है तब केवल उसकी बातें ही रह जाती हैं उसका भाव भूल में पड़ने लगता है। ऐसे में सामने केवल संसार और संसार का व्यवहार दिखलाई पड़ता है और यही कारण है कि व्यक्ति उनमें उलझा हुआ वर्त्तमान का आनन्द नहीं ले पाता। ऐ प्राणी ! तेरा कीमती समय जो तुझे आनन्द मनाने के लिये मिला है वह काल के गर्भ में समाता जा रहा है। देख, ईश्वर आँखों से दिखलाई नहीं पड़ता किन्तु 'ईश्वर है ही नहीं' यह बात नहीं है अतः तू ईश्वर को सच्चे हृदय से याद कर कि तू वर्त्तमान का आनन्द ले पाये। ईश्वर को भूल जाने से तेरा वर्त्तमान निष्फल होगा—तू कष्ट पाता रहेगा एवं देता रहेगा और इसी चक्कर में तुझे मिला हुआ समय काल के गर्भ में समा जायेगा।

८८८ प्रेम पा न सका तो घृणा करेगा ही जड़ से, जगत से।

ऐ प्राणी ! प्रेम हृदय की विशालता है। हृदय में जब प्रेम का जागरण

हो जाता है तब सबके प्रति प्रेम की भावना उदय होने लगती है और सभी अपने हो जाते हैं—बाहर-भीतर-सर्वत्र प्रेम ही प्रेम बिखर जाता है और प्रेम का अविरल प्रवाह हृदय को उल्लसित करने लगता है। देख, प्रेम के अभाव में जीवन लाशवत् रहता है जिसमें श्वास तो रहते हैं किन्तु जिन्दादिली का सर्वथा अभाव रहता है—न जीवन का आनन्द मिलता है और न जगत का—जड़-चेतन युक्त संसार खाने को दौड़ता है। अतः जिन्दादिली पाने के लिये प्रथम तू प्रेम पा। जब प्रेम पाने के लिये तेरा हृदय छटपटा जायेगा तब प्रेम तुझसे दूर नहीं रहेगा क्योंकि चाहत के अनुसार राह अवश्य मिलती है। प्रेम पाने के पश्चात् तेरी दुनिया बदल जायेगी और तब जड़ चेतन सभी तुझे आनन्द प्रदान करते रहेंगे।

८८९ प्रण कर प्राणी, सुनूँ ऐसी वाणी जो प्रिय की हो, प्यार की हो, भाव की हो, चाव की हो।

ऐ प्राणी! तू दृढ़ प्रतिज्ञ हो कि तुझे ऐसी वाणी सुननी है जो प्रिय का सन्देश सुनाती है। तेरी आकुल व्याकुल पुकार तब तुझे अवश्य सन्त के दरशन करा देगी। देख, सन्त के रोम-रोम में ईश्वर का वास रहता है। उनका आविर्भाव प्यार भाव का वितरण करने के लिये ही होता है। यही कारण है कि सन्त के दरशन पाकर प्यार की प्यास मिटती है, भाव की जागृति होती है तथा चाव हृदय में लहलहाने लगता है। यदि तू सन्त वाणी सुनने का सुअवसर नहीं पा सका और पाया भी तो उसे स्वीकार नहीं सका तो यही कहना होगा कि अभी तेरे भीतर प्यार की प्यास उग्र नहीं हुई है, तू अन्धकार में ही भटक रहा है। ऐसे में तेरा जीवन श्वास लेते हुए भी बेजान होगा और सब कुछ पाकर भी तू तरसता रहेगा।

८९० भक्ति का भी अभिमान? शक्ति का अभिमान तो रावण ने किया था।

ऐ प्राणी! भक्ति अभिमान करने के लिये नहीं होती क्योंकि भक्त के पास अपना कुछ नहीं होता जो कुछ भी रहता है वह ईश्वर प्रदत्त रहता है। अतः जो कुछ उसके पास है उसका यदि वह अभिमान करे तो यह उचित नहीं। भक्ति का अभिमान करने से व्यक्ति भक्ति का आनन्द नहीं ले पायेगा, ईश्वर के कार्य करता हुआ भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। देख, अभिमान

तो एक पल के लिये भी अच्छा नहीं। जिस पल अभिमान का आगमन होता है उसी पल भक्त ईश्वर से दूर हो जाता है, उसे पुनः ईश्वर की समीपता तभी मिलती है जब वह प्रभु कृपा पाकर अभिमान रहित होता है। कहीं-कहीं भक्त अत्यन्त शक्तिशाली भी होता है किन्तु शक्तिशाली होने के पश्चात् भी वह यदि अभिमान से घिर जाये तो विनाश को प्राप्त होता है—महाबली रावण इसका ज्वलन्त उदाहरण है। अतः भक्ति का पूर्ण आनन्द पाने के लिये तू हमेशा प्रभु के चरणों में झुक कर चल और जो कुछ तुझे मिले उसे ईश्वर का प्रसाद जानकर ग्रहण कर कि तू भक्ति की महिमा देख पाये, भगवान तेरे बाहर-भीतर सर्वत्र छा जाये।

८९१ प्रवचन में भी प्रवंचन ? फिर कल्याण कैसे हो श्रोता का वक्ता का।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के बारे में मुख से कही जाने वाली बातें ही प्रवचन नहीं होतीं, ईश्वर के लिये हृदय में प्रतिष्ठित रहने वाले वे भाव जो हृदय को उल्लसित करते रहते हैं जब वाणी के माध्यम से मुखरित होते हैं तब वे प्रवचन होते हैं। मुख की आवाज कानों को स्पर्श करती है किन्तु हृदय की आवाज कानों के माध्यम से हृदय को स्पर्श करती है—ऐसी वाणी का अद्भुत प्रभाव होता है। देख, जहाँ ईश्वर के नाम पर बातें तो बड़ी-बड़ी हैं किन्तु ध्यान मान-सम्मान, धन-जन आदि पर है वहाँ न श्रोता का कल्याण सम्भव है और न वक्ता का क्योंकि प्रभाव वाणी का नहीं भाव का पड़ता है। अतः ईश्वर के नाम पर कुछ भी कहने के पहले तू अपने दिल को टटोल ले कि तू जो कुछ कह रहा है वह तेरे हृदय के भाव हैं या मात्र बुद्धि विलास है ? यदि बुद्धि विलास है तो तू धोखे में रहेगा अर्थात् ईश्वर के बारे में बातें करते हुए भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

८९२ दावा क्यों ? वादा पूरा कर कि दावा पूरा हो।

ऐ प्राणी ! ईश्वर से तू कुछ माँग नहीं क्योंकि ईश्वर बिना माँगे ही सब कुछ देने वाला है। देख, ईश्वर तेरा अपना है। तेरी सारी क्रियाएँ उसी के द्वारा सम्पादित हो रही हैं एवं तेरे हर समय की देखभाल भी वही कर रहा है। अतः माँगना छोड़कर तू अपना वादा पूरा कर अर्थात् ईश्वर को याद कर। याद करते-करते जब तू ईश्वर के सम्मुख होगा तब तू देख पायेगा कि

वह जिस समय जो कुछ भी करता है उसमें तेरी भलाई रहती है। मां को जैसे बच्चे की चिन्ता रहती है वैसे ही उसे भी तेरे हर समय का ध्यान है। जब तू इस सत्य से अवगत होगा तब तुझे ईश्वर से कुछ माँगना नहीं होगा अर्थात् दावे करने नहीं पड़ेंगे वे स्वतः पूरे होंगे—तू जिस समय जैसी जरूरत महसूस करेगा उसे पूरी देख पायेगा।

८९३ बालक बूढ़े एक समान। जब तक जानें नहीं भगवान।

ऐ प्राणी! तुझे उम्र के रूप में यह अवधि ईश्वर-मिलन के लिये मिली है। देख, बचपन तो तूने अनजाने में खेल-कूद में खो दिया किन्तु जवानी को भी तू यदि विषयों में लगा देगा तो विषयों का जहर तेरे तन-मन-प्राणों में व्याप्त हो जायेगा और फिर लाख चेष्टा करने के बावजूद भी तू उससे उबर नहीं पायेगा। अतः समय रहते-रहते तू सम्हल जा तथा जिस कार्य के लिये तुझे यह समय मिला है उसके लिये सचेष्ट हो कि तेरे जीवन की अवधि आनन्द में बीते। अन्यथा मैं-मेरे में फँसा हुआ तू सम्पूर्ण आयु रोते-रोते बितायेगा, रोने के सिवा तेरे हाथ और कुछ नहीं आयेगा। बचपन में तू अनजाने में ईश्वर से दूर था किन्तु जानने के पश्चात् तेरी लापरवाही के कारण तू बुढ़ापे में भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। तेरी पूरी आयु यों ही ऊपर से हँसते गाते किन्तु भीतर से रोते कलपते बीत जायेगी।

८९४ बसन्त आया जब वह सन्त आया। पतझड़ हरिआली में बदल गई।

ऐ प्राणी! बसन्त का आगमन दृश्य जगत में वर्ष में एक बार हो जाता है किन्तु अन्तर्जगत में तब तक सम्भव नहीं जब तक कि हृदय पटल पर सन्त का आगमन नहीं होता। सन्त सत्य के प्रतिरूप होते हैं, उनका आगमन भ्रमित मानव के भ्रम निवारण हेतु होता है। अज्ञान अन्धकार में फँसा प्राणी तब तक कुछ भी सही नहीं देख पाता जब तक कि सन्त वाणी उसके अज्ञान अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर उसे सही दिशा का ज्ञान नहीं करा देती। सन्त की शरण पाकर सूखा जीवन लहलहा उठता है और रस विहीन प्राणी रस से ओत-प्रोत हो जाता है—उसकी जीवन बगिया महक उठती है एवं बसन्त का आगमन उसके रोम-रोम में हो जाता है। अतः जिस हरिआली को तू बाहर देखता है उसे यदि अन्तर में भी देखने का अभिलाषी है तो तू

सन्त की शरण ग्रहण कर एवं सन्त को हृदय में प्रश्रय दे कि वसन्त की वहार तू हर पल देख पाये, शुष्कता तेरे जीवन से विदा हो जाये ।

८९५ भक्त ने कहा भगवन। अभक्त ने कहा—यही भगवान है? भक्त ने कहा, यही है। अभक्त तिलमिला गया।

ऐ प्राणी! भगवान स्थूल चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता क्योंकि स्थूल आँखों का पसारा स्थूल जगत तक ही रहता है—ये स्थूल के परे नहीं देख सकतीं। ईश्वर को देखने के लिये भाव-भक्ति की आँखें चाहिये, भाव की आँखों से ही उसे देखा जा सकता है। देख, जब तक भाव की आखें नहीं मिलतीं तब तक यदि ईश्वर सम्मुख भी खड़ा रहे तो उसे पहिचानना मुश्किल होता है और यही कारण है कि भक्त जिसे भगवान कहता है, भाव के अभाव में अभक्त उसे संश्य की दृष्टि से देखता है। भक्त जिसे देखकर आनन्द विभोर होता है अभक्त उसी को देखकर कुढ़ता रहता है। भक्त कहता है—'भगवन' किन्तु अभक्त कहता है—'क्या यही भगवान है'? अरे पगले! ईश्वर को तू अपनी आँखों से नहीं देख पायेगा, उसे देखने के लिये तुझे सत्संग करनी होगी। सत्संग में बैठकर जब तेरे हृदय में भाव की जागृति हो जायेगी तभी तू भगवान को सम्मुख देख पायेगा।

८९६ तिल भर प्यार न किया, तिलमिला गया।

ऐ प्राणी! सत्संग ईश्वर के लिये हृदय में जगह बनाती है। सत्संग के अभाव में व्यक्ति ईश्वर का नाम तो लेता रहता है किन्तु ईश्वर से कोसों दूर बना रहता है, उसके लिए प्रधान वस्तु-विषय आदि ही रहते हैं। ऐसे में वह न सही देख पाता है और न सुन पाता है परिणाम उसके पास रोने के सिवा कुछ भी शेष नहीं रह जाता। देख, ईश्वर दर्शन के लिये हृदय में प्यार चाहिये। जब तक प्यार की जागृति नहीं हो जाती तब तक हृदय छटपटाता रहता है और तभी तक संश्य-भ्रम आदि के लिये भी स्थान रहता है। प्यार की जागृति संशय-भ्रम को छिन्न-भिन्न करके हृदय में आलोक फैलाती है। अतः तू यदि शान्ति व आनन्द का उपासक है तो प्यार की कद्र कर कि प्यार की प्रतिष्ठा तेरे हृदय पटल पर हो जाये और तू आनन्द का वर्षण देख पाये।

८९७ दिल भर प्यार न मिला, दिलदार न मिला तिलमिला उठा।

प्यार का जीवन में वहुत वड़ा स्थान है। प्यार से ही व्यक्ति जन्म लेता है,

प्यार से ही उसका पालन पोषण होता है एवं प्यार से ही वह बढ़ता है। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे घर-परिवार व पत्नी-बच्चों से घिरा वह उत्तरदायित्व के बोझ से दबता जाता है और प्यार से दूर होता जाता है। जब वह प्यार की कद्र भूल जाता है तब उसका दिल तिलमिला उठता है। ऐ प्राणी! ईश्वर का भेजा हुआ तू ईश्वर की दुनिया में आकर भी ईश्वर से दूर होता जा रहा है। देख, गर्भकाल से लेकर आज तक तेरी रक्षा उसी ने की है और एक तू है कि व्यस्क होने के साथ-साथ उसे भुलाकर अपनी चिन्ता खुद करके परेशान हो रहा है। अरे पगले! उसे भुलाकर तू कभी भी खुश नहीं रह सकेगा क्योंकि तेरा अपना वही है अतः तू उसकी खोज कर। वह बड़ा दयालु (दिलदार) है, तेरी एक आवाज पर वह सब कुछ लुटाने वाला है। उसका प्यार पाकर तेरी जिन्दगी सँवर जायेगी, तू उसकी गोद में बैठा आनन्दमग्न रह सकेगा।

८९८ जलता है हाथ मलता है। यदि हृदय का प्रेम दीपक जलता तो हाथ मिलाता।

ऐ प्राणी! ईर्ष्या-द्वेष अग्नि है। यह जब हृदय में प्रज्ज्वलित हो जाती है तब कीमती जीवन कौड़ी के भाव का हो जाता है अर्थात् ईष्या-द्वेष को अपनाकर व्यक्ति अपने आप से ही दूर होता जाता है। ऐसे में वह भीतर ही भीतर कुढ़ता रहता है, प्रसन्नता उससे कोसों दूर हो जाती है और कुछ पाने के लिये आया हुआ वह हाथ मलते-मलते ही चला जाता है। किन्तु जब हृदय पटल पर प्रेम का प्रादुर्भाव होता है तब आलोक से हृदय जगमगा उठता है। व्यक्ति तब अपनी दुनिया में नहीं रहता, प्रिय की दुनिया ही उसकी अपनी दुनिया होती है अर्थात् सभी उसके अपने बन जाते हैं। ऐसा प्रेमी यहाँ भी मौज मनाता है और जब संसार प्रांगण से विदा होता है तब भी हँसते हँसते प्रेम विभोर हो प्रिय में समा जाता है—संसार में आना भी उसी का सार्थक होता है।

८९९ पास वाले को भी प्रेम पाश में न बाँध सका? तो व्यर्थ ही आया।

ऐ प्राणी! आँखों से दिखलाई पड़ने वाला संसार तुझसे दूर है किन्तु ईश्वर तेरे अति समीप (श्वांसों-प्राणों में) बसा हुआ है फिर भी संसार को तो

तू स्थूल चक्षुओं से देख लेता है किन्तु ईश्वर को नहीं देख पाता क्योंकि ईश्वर को देखने के लिये केवल आँखें ही नहीं, झुकने के भाव भी चाहिये। देख, यहाँ आकर भी तू यदि पास वाले को प्रेम पाश में नहीं बाँध सका तो तेरा आगमन ही व्यर्थ होगा क्योंकि यहाँ तेरा आगमन उसे पाने के लिये ही हुआ है। अतः तू ईश्वर-मिलन के साज सजा अर्थात् सर्वथा अहंकार-शून्य होकर प्रभु चरणों में झुक जा कि तू रोम-रोम में उसका जलवा देख पाये—ईश्वर तेरे प्रेम बन्धन में बँध जाये।

९०० आज मन्त्र है—कल मन्त्रणा होगी, आमन्त्रण होगा प्रिय का। यही यन्त्र मन्त्र है।

ऐ प्राणी! मन्त्र वह शब्द नहीं जो कान से सुना जाये और मुख से रटा जाये, मन्त्र वह वाणी है जो हृदय में प्रतिष्ठित हो जाये एवं प्रतिष्ठित होकर यन्त्र (शरीर) को यंत्रणा से मुक्त कर दे। ऐसे मन्त्र को धारण करने वाले का जीवन सुधर जाता है। वह आज मन्त्र सुनता है और कल मन्त्र ही उसके लिये मन्त्रणा बन जाता है अर्थात् सत्य वाणी जब साधक के हृदय में स्थान पाती है तब वह उसे सत्य पथ पर बढ़ने के लिये प्रेरित करती रहती है। सत्य पथ का पथिक बनने के पश्चात् साधक के जीवन में वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब वह प्रत्येक जगह सत्य को ही प्रतिष्ठित देख पाता है क्योंकि सत्य के पिपासु का रोम-रोम सत्य को आमन्त्रित करता रहता है। देख, ईश्वर का वास यों तो सर्वत्र है किन्तु जहाँ उसे पाने की विकलता है वहीं उसे प्रत्यक्ष पाया जा सकता है—यह मन्त्र का ही प्रताप है।

९०१ क्रोध से पकड़ा, घृणा से छोड़ा। प्रेम से पकड़ा, मर मिटा उसके नाम पर। छोड़ना कैसा?

ऐ प्राणी! क्रोध हृदय में जलन भरता है। यह जब किसी के लिये भी आता है तब उसे पकड़े रहता है एवं उससे कष्ट पाता रहता है। घृणा सबसे दूर करती है, यह जिसके लिये भी आती है उसे देखना भी पसन्द नहीं करती। देख, क्रोध और घृणा दोनों को अपनाकर तू कष्ट ही पाता रहेगा अतः तू इन्हें न पकड़, यदि पकड़ना ही चाहता है तो प्यार को पकड़। प्रेम ईश्वर है, प्रेमकी एक झलक भी तू यदि पा जायेगा तो प्रेम को कभी नहीं छोड़ सकेगा। तेरा दिखलाई देने वाला यह शरीर एक दिन छूट जायेगा किन्तु प्रेम नहीं छूटेगा

क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है। प्रेम की प्रतिष्ठा जिस हृदय में होती है वह हृदय मन्दिर बन जाता है, उसमें प्रिय की मूर्त्ति के सिवा कुछ भी नहीं रह जाता। प्रेमी को न कुछ पकड़ना पड़ता है और न छोड़ना पड़ता है, उसका सब कुछ स्वतः छूट जाता है। उसके सम्मुख केवल एक प्रेम ही रह जाता है जिसमें समाहित हुआ वह आनन्द पाता रहता है।

९०२ पृथक है, तभी थकता है। मिल जाता तो थकावट भूल जाता। मिलन कुछ ऐसा ही होता है।

ऐ प्राणी! थकावट कर्त्तापन के मैं के कारण आती है। जैसे-जैसे व्यक्ति ईश्वर से दूर होता जाता है वैसे-वैसे वह कर्त्तापन के मैं से आबद्ध होता जाता है परिणाम दुःख चिन्ता आदि बोझ से वह दबता जाता है। देख, बोझ लेकर चलने वाला अवश्य थकता है चाहे वह बोझ थोड़ा ही क्यों न हो। अतः तू बोझ लेकर न चल, तू कर्त्ता को पहिचान। 'जिसने तुझे भेजा है एवं जो प्रतिपल तेरी रक्षा कर रहा है' उसे जब तू पा जायेगा तब थकावट तेरे समीप भी नहीं आ सकेगी। तब तुझे न चिन्ता करनी होगी और न दुःख बटोरने होंगे—तू सभी कार्यों को सहजता से स्वतः होते देख सकेगा और भीतर-बाहर सर्वत्र उसी को देखते हुए मौज में भी रह सकेगा क्योंकि मिलन ऐसा ही होता है।

९०३ निन्दा न कर, अभिनन्दन कर। अभी नन्द आया, आनन्द आया, शान्त रह।

ऐ प्राणी! पल पल तेरा समय बीतता जा रहा है। देख, यह समय बड़ा कीमती है, इस कीमती समय को तू निन्दा में न व्यतीत कर। यदि तू इसे निन्दा में बिता देगा तो तेरा दिल तो गन्दा होगा ही, तेरा कीमती समय भी यूँ ही बह जायेगा। अतः हृदय में सुमधुर भावों के जागरण के लिये तू समय का सदुपयोग कर अर्थात् तू ईश्वर का अभिनन्दन (प्रार्थना) कर, अभिनन्दन तेरे हृदय को शुद्ध कर देगा। जैसे-जैसे तेरा हृदय शुद्ध होता जायेगा वैसे-वैसे तू ईश्वर के अस्तित्व को देख पायेगा—जीवन का आनन्द भी तू तभी ले पायेगा। तेरी वृत्तियाँ तब शान्त हो जायेंगी और तू देख पायेगा कि ईश्वर कहीं दूर नहीं, तेरे अति समीप (हर श्वास में) बसा हुआ है और श्वासों-प्राणों में रमा तुझे हर पल आनन्द दे रहा है।

९०४ नन्दन से भी आनन्द न लिया तो क्रन्दन आया। आश्वासन कौन दे ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर नन्दन है वह सबको आनन्द देने वाला है, उसी के साथ से सर्वत्र आनन्द है। देख, जो नन्दन को भुलाकर यहाँ आनन्द खोजते हैं वे भूल करते हैं, वे यहाँ आनन्द तो पा सकते ही नहीं केवल रोना (क्रन्दन) ही उनके पल्ले पड़ता है। वे इस रहस्य को भी नहीं जान पाते कि सारी सुविधा मिलने के बावजूद भी कौन सी ऐसी कमी है जिसके कारण उनका दिल अतृप्त रहता है और वे रोते रहते हैं। ऐसे में वे यदि किसी के द्वारा दो शब्द आश्वासन के सुन भी लेते हैं तो उन्हें सामयिक राहत ही मिलती है शान्ति नहीं मिलती क्योंकि उन्हें आश्वासन देने वाले स्वयं अशान्त रहते हैं। अरे पगले ! आनन्द बाहर नहीं तेरे भीतर है जिसे तू नन्दन के समीप बैठकर पा सकेगा। जब तक तू नन्दन (आनन्द की वृष्टि करने वाले सन्त) के दरशन नहीं कर पायेगा एवं उनसे आनन्द नहीं लेगा तब तक तेरा हृदय कराहता रहेगा। अतः तू इधर-उधर भटकना छोड़कर आनन्द देने वाले की खोज कर कि तू आनन्द से जीवन यापन कर सके।

९०५ प्रेम वृद्ध न हुआ, प्रेमी ही बूढ़े हुए। नहीं जी, शरीर हुआ जीर्ण शीर्ण—प्रेमी नित नवीन।

ऐ प्राणी ! प्रेम कभी वृद्ध नहीं होता और न जिस हृदय में यह स्थान पाता है वह प्रेमी ही वृद्ध होता है—यह शरीर परिवर्तनशील व विनाशी है, इसमें अवश्य परिवर्तन आते रहते हैं। अतः प्रेमी के शरीर को जीर्ण-शीर्ण देख कर तू इस भ्रम में न पड़ कि प्रेम वृद्ध हो गया अथवा प्रेमी वृद्ध हो गये। देख, प्रेमी शरीर में स्थित दिखलाई पड़ता है किन्तु उसका वास-निवास प्रिय के चरणों में होता है, वह प्रिय के मुखारविन्द की ओर निहारता हुआ हमेशा प्रेम में निमग्न रहता है। 'शरीर जाये या रहे' इससे प्रेमी के भावों में अन्तर नहीं आता क्योंकि प्रेम ईश्वर है जिसे अपनाकर वह शरीर की स्थिति से ऊपर उठ जाता है। यही कारण है कि प्रेमी के गीत सदा गाये जाते हैं, हजारों वर्ष बीत जाने पर भी प्रेम के इच्छुक प्रेमी की ओर निहारते रहते हैं।

९०६ यह कैसा प्रेम है, जो जीने भी नहीं देता, मरने भी नहीं देता। प्रेम अमर, प्रेमी अमर। वासना की बात भिन्न है।

ऐ प्राणी ! प्रेम कभी मिटता नहीं प्रेम अमर भाव है और प्रेमी भी कभी

मिटते नहीं क्योंकि उन्होंने अमर प्रेम को धारण किया है। देख, प्रेमी जब प्रेम पाने के लिए अग्रसर होता है तब उसके हृदय में अत्यन्त बेकली रहती है। उसकी यह बेकली चूँकि प्रेम पाने के लिये होती है अतः बेकली के साथ-साथ उसे राहत भी मिलती रहती है। यह विकलता ही उसे प्रेम से मिलाती है, यदि विकलता न हो तो प्रेम के दरशन सम्भव नहीं। ऐसा प्रेम जब हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है तब प्रेमी निहाल हो जाता है किन्तु वासना की बात कुछ और ही है। वासना में भी हृदय में विकलता रहती है किन्तु यह विकलता जलन भरती है। इसे अपनाकर व्यक्ति दिन ब दिन निम्नतर अवस्था में पहुँचता जाता है। वह जब तक रहता है तब तक कष्ट पाता रहता है और एक दिन ऐसा आता है जब वह मिट्टी में मिल जाता है किन्तु प्रेम वाला मिटता नहीं, अमर हो जाता है क्योंकि प्रेम अमर है।

९०७ प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। और फिर? फिर न पूछो। कर देखो तो कुछ समझ में आये।

ऐ प्राणी! प्रेम स्वाभाविक क्रिया है। प्रेम किया नहीं जाता यह तो स्वतः होता है जब प्रेम की प्यास हृदय में होती है एवं प्रेम का अवतार सम्मुख होता है। देख, प्रेम की जागृति के पश्चात् क्या होता है यह प्रेम करके ही जाना जा सकता है। जब तक प्रेम की जागृति हृदय पटल पर नहीं हो जाती तब तक प्रेम केवल वाणी का विषय बन कर ही रह जाता है। अतः तू जोर जबर्दस्ती से प्रेम पैदा करने की चेष्टा न कर, तू उस प्रेमास्पद प्रभु की खोज कर जिसके दर्शन मात्र से तेरा सोया प्रेम जाग जाये। प्रेम पाकर तू बन्धन मुक्त होता जायेगा और तेरी दुनिया प्रेम से सजती चली जायेगी। एक दिन तब ऐसा भी आ जायेगा जब तू केवल प्रेम रूप हो जायेगा अर्थात् प्रेमास्पद प्रभु तेरे रोम-रोम में बस जायेगा।

९०८ वियोग ने संयोग का दरशन करवाया। नहीं जी। वियोगी योग को भूल बैठा था। याद किया—योग हुआ। भूल बैठा—कर्म का भोग हुआ।

ऐ प्राणी! ईश्वर दर्शन अभाव से सम्भव नहीं, भाव से सम्भव है। देख, वियोग में अभाव प्रधान रहता है, इसमें व्यक्ति योग को भूल बैठता है और पुनः योग की कल्पना भी नहीं कर सकता। संयोग का दर्शन उन्हें होता है

जिन्हें प्रिय का वियोग भाता नहीं एवं जिन्हें प्रिय की याद सताती रहती है। प्रेमी जब एक बार प्रिय का साथ पा जाता है तब प्रिय से दूरी उसे नहीं सुहाती। प्रेम का प्रतीक यदि शरीर से तिरोहित भी हो जाता है तो उसका हृदय यह स्वीकार नहीं कर पाता कि प्रेम लुप्त हो सकता है और यही कारण है कि वह प्रिय को प्राणों में बसा देख पाता है। किन्तु प्रेम का दर्शन पाकर भी जो प्रेम को नहीं अपना पाते उनके लिये प्रेम के अवतार का आँखों के सामने से ओझल होना दुःख का कारण बन जाता है। वे इसके लिये भाग्य को कोसते हैं एवं प्रेम के नाम पर कर्म में उलझ जाते हैं।

९०९ रोते-रोते परेशान। क्या दुःख के आँसू थे? प्रेम के होते तो शान होती—शौकत होती। और न जाने क्या क्या होता?

ऐ प्राणी! आँसू दुःख में भी आते हैं और प्रेम में भी आते हैं। दुःख के आँसू हृदय में गन्दगी भरते हैं जबकि प्रेम के आँसू हृदय को उल्लसित करते हैं। दुःख जीवन को बोझिल बनाता है जबकि प्रेम जीवन में आनन्द भरता है। दुःख जीवन को बेकार बनाता है जबकि प्रेम जीवन को उपयोगी बनाता है। अतः तेरी आँखों में आँसू दुःख के हैं या प्रेम के हैं—तू इस पर विचार कर, यदि दुःख के हैं तो उनसे छुटकारा पा ले अर्थात् ईश्वर से प्रेम बढ़ा ले और यदि प्रेम के हैं तो निर्भय विचरण कर। तब तुझे और कुछ नहीं करना पड़ेगा, तू स्वतः कुछ ऐसा भाव पा जायेगा जिसे पाने के लिये देवता भी तरसेंगे। तब तेरे मुख की आभा भी कुछ अनोखी होगी, उसे देखकर प्रेम के पिपासु राहत पायेंगे।

९१० प्रेम में राम भी पागल था, सीता भी। फिर इस पागलपन को क्यों प्रोत्साहन देते हैं, जागतिक धार्मिक लोग?

प्रेम पागल बना देता है। इसे अपनाने वाला अन्य सांसारिक प्राणियों की तरह खाने, पीने, सोने और बच्चे पैदा करने में ही जीवन नहीं बिताता, वह प्रभु प्रेम में निमग्न हो आनन्दमय जीवन बिताता है। भक्त जब अनन्य भाव से ईश्वर को याद करता है तब वह भगवान जो किसी भी बन्धन में नहीं बँधता वह भी प्रेम बंधन में बँध जाता है। प्रेम में भगवान और भक्त दोनों पागल हो जाते हैं। अतः ऐ प्राणी! तू प्रेम को प्रोत्साहन तभी देना जब तेरे जीवन का परम लक्ष्य राम हो। यदि तेरे लिये राम प्रधान नहीं संसार प्रधान है तो

तू सीता व राम के प्यार की बातें मुँह पर भी न लाना क्योंकि सीता और राम प्रेम रूप हैं, उनका प्यार हृदय में धारण करने के लिये है। धर्म के नाम पर उनका नाम लेकर तू यदि उनका भाव नहीं अपनायेगा तो तू उनको भी लजायेगा तथा स्वयं भी धोखा खायेगा।

९११ वस्त्र यदि कुरूप को सुन्दर नहीं बना सकते तो ये बाह्य कर्मकाण्ड हृदय को सुन्दर बना सकेंगे ?

ऐ प्राणी ! वस्त्र शरीर की सुरक्षा कर सकते हैं किन्तु कुरूप को सुन्दर नहीं बना सकते, वैसे ही ईश्वर के नाम पर किये गये हाथ के कार्य समय विशेष के लिये राहत दे सकते हैं हृदय को सुन्दर नहीं बना सकते। देख, हृदय परिवर्तन के लिये केवल काम नहीं, वह भाव चाहिये जो हृदय को स्पर्श करता हुआ भाव ही बदल डाले। वह भाव तुझे उपदेशकों के समीप नहीं मिलेगा, सत्य के प्रतिरूप सन्त के समीप मिलेगा। सन्त भाव की मूर्त्ति हैं। उनकी वाणी से स्वाभाविक भाव का प्रवाह होता रहता है। उनके समीप बैठकर तेरे हृदय में भाव की जागृति हो जायेगी और तब तुझे ईश्वर के लिये कर्म नहीं करने पड़ेंगे स्वतः कुछ ऐसा होगा जो अनुपम होगा—तेरा हृदय भी सुन्दर तभी बन पायेगा। भाव-परिवर्तन के बिना कर्म करते-करते युग के युग बीत जायेंगे फिर भी तेरा हृदय स्वच्छ नहीं हो पायेगा, तू हृदय से व्यथित ही बना रहेगा।

९१२ भजन—जन जन में 'भ' भगवान को देख यही तेरा भजन।

ऐ प्राणी ! ईश्वर का वास यों तो सम्पूर्ण जड़ चेतन संसार में है किन्तु मनुष्य में वह विशेष रूप से परिलक्षित होता है। यह ईश्वर की ही कृपा है कि मनुष्य इतना सर्वगुण सम्पन्न है। देख, केवल ईश्वर का नाम लेना ही भजन नहीं, भजन वह है जो हृदय को स्वच्छ बनाये एवं सबके प्रति प्रेम की भावना दे। जब व्यक्ति जन-जन में भगवान को देख पायेगा तथा सबसे प्यार कर पायेगा उस दिन से उसे अलग से भजन करना नहीं पड़ेगा, उसका भजन अहर्निश होगा। अतः तू ईश्वर का नाम लेकर ही सन्तुष्ट न हो, तू सत्संग कर अर्थात् वह संग ग्रहण कर जहाँ बैठकर तेरा हृदय स्वच्छ हो जाये, तू सबसे प्यार कर पाये और सबमें एक ईश्वर को ही विराजमान देख पाये।

९१३ कलियाँ कब खिलीं ? जब हृदय खिला, प्रभु मिला।

ऐ प्राणी ! इस संसार में प्रत्येक प्राणी का आगमन कली के रूप में होता

है। देख, कली को हवा-पानी एवं माली की ठीक देखभाल मिलती रहे तो वह एक दिन फूल बन जाती है एवं सुगन्ध प्रसारित करने लगती है। मनुष्य की भी यही बात है। उसका जीवन भी विकसित फूल के रूप में हो सकता है किन्तु तब जब वह हृदय की कद्र करना सीख जाये। हृदय की कद्र करने से वह किसी भी ऐसे कार्य एवं भाव को नहीं अपना पायेगा जो हृदय को कुचलने वाले हैं और हर पल हृदय की सुरक्षा का ख्याल रक्खेगा। देख, स्वच्छ हृदय में ही प्रभु का वास होता है। जहाँ हृदय स्वच्छ नहीं वहाँ ईश्वर का नाम लिया जा सकता है किन्तु वहाँ हृदय का खिलना सम्भव नहीं और न ईश्वर मिलन ही सम्भव है। अतः तू तेरे जीवन को यदि सुगन्धपूर्ण देखना चाहता है तो हृदय की कद्र करना सीख ले। तब तू जरूर ऐसा भाव पा जायेगा जो हृदय को खिलाने वाला है और तभी तू ईश्वर दर्शन भी कर पायेगा--उस दिन तेरा जीवन विकसित पुष्प के रूप में होगा जिसके चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध होगी।

९१४ क्यों चिन्ता? जब चित्त सतचित्तआनन्द ही में मिलने वाला है।

ऐ प्राणी! ईश्वर मिलन के लिये तुझे चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यहाँ तेरा आगमन ईश्वर मिलन के लिये ही हुआ है, तुझे तो बस उसे याद रखना है। जब तेरा मुख उसकी ओर होगा अर्थात उसकी स्मृति तेरे हृदय पटल पर रहेगी तब तुझे कोई भी प्रलोभन उससे विमुख नहीं कर सकेंगे और तब तू उस राह को अवश्य पा जायेगा जिस पर चलकर उसे पाया जा सकता है। देख, यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर द्वारा निर्मित है, यहाँ आनन्द ही आनन्द है किन्तु है यह उनके लिये जो ईश्वर के हैं, जो यहाँ आकर ईश्वर को भूल जाते हैं वे भ्रमित हो चक्कर काटते रहते हैं। अतः तू निश्चिन्त रहकर ईश्वर की ओर देखता चल एवं हर पल व हर क्षण उसी की सत्ता को निहार कि तेरे चित्त पर सत्य की मूर्त्ति विराजमान हो जाये और तू आनन्द रूप बन जाये।

९१५ जायगा कहाँ? सर्वव्यापी का क्या निमन्त्रण मिला है?

ऐ प्राणी! इस संसार में जो ईश्वर को भूलकर जीवन यापन करते हैं वे सदा रोते हैं, उन्हें जिन्दगी भार मालूम होती है। जिन्दगी से छुटकारा पाने के लिये वे मृत्यु की कामना भी करते हैं किन्तु उन्हें मालूम नहीं कि मृत्यु उनके

रोने को नहीं मिटा सकेगी, उन्हें फिर लौटकर यहीं आना होगा जब तक कि वे सर्वव्यापी को जान न जायें। देख, जब तक तू ईश्वर को पा नहीं लेगा तब तक तुझे जीवन से छुटकारा नहीं मिलेगा क्योंकि ईश्वर का निमन्त्रण उन्हें ही मिलता है जिनके हृदय में ईश्वर के लिये आमन्त्रण होता है—ऐसे जन ही यहाँ से लौटकर जा सकते हैं। वे यहाँ कण-कण में ईश्वर को विद्यमान देख पाते हैं। प्रत्येक कार्य का कर्त्ता उन्हें ईश्वर ही दिखलाई देता है अतः उनके कर्त्तापन का मैं सर्वथा खत्म हो जाता है। वे जब यहाँ से जाते हैं तब फिर लौटकर नहीं आते, ईश्वर में ही समा जाते हैं।

९१६ जिसने प्रभु को भी न जाना, न पहिचाना वह दास, उदास रहे तो आश्चर्य क्यों ?

ऐ प्राणी ! 'दास' वह नहीं जो ईश्वर की पूजा-अर्चा करता सा दिखलाई पड़े, 'दास' वह है जो ईश्वर को ही अपना स्वामी जाने एवं उसके इशारे पर जीवन यापन करने की इच्छा रक्खे। ऐसे दास के समीप उदासी (दुःख, चिन्ता आदि) टिक नहीं सकती, वह सदा प्रफुल्लित रहता है। किन्तु जो ईश्वर की दुनिया में रहकर भी ईश्वर को जानता नहीं, उसके कार्यों को पहिचानता नहीं केवल उसका नाम लेता है एवं पूजा-पाठ आदि सम्पादित करता है वह यदि उदास रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतः तू केवल कुछ कार्यों को अपनाकर स्वयं को ईश्वर का दास न समझ अर्थात् सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर की सत्ता को न स्वीकार कर, तू स्वयं उसकी अनुभूति प्राप्त कर कि तेरी उदासी विदा हो जाये और तू सभी कार्य का कर्त्ता एक ईश्वर को देख पाये।

९१७ हल का बना हलका हुआ, गम्भीरता क्यों ?

ऐ प्राणी ! भूमि कठोर तब तक ही रहती है जब तक कि वह जोती नहीं जाती, उस पर हल नहीं चलाया जाता। जोतने के पश्चात् कठोर भूमि हल्की हो जाती है और उसमें जो कुछ भी बोया जाता है वह पैदा हो जाता है। देख, तुझे भी जीवन से हताश-निराश होने की आवश्यकता नहीं। यदि तू जीवन में प्रफुल्लता का अभाव देख पाता है तो तू सन्त की शरण ग्रहण कर। सन्त वाणी का वाण जब तेरे हृदय में लगेगा तब तेरी वृत्तियाँ शान्त हो जायेंगी और तू प्रत्येक भाव विचारों का शान्त अवलोकन कर सकेगा। तब वे ही

विचार तेरे समीप रह जायेंगे जो जीवन को हल्का बनाने वाले हैं, अन्य आयेंगे भी तो लौट कर चले जायेंगे ऐसे में प्रभु प्रेम का बीज तेरे हृदय में अंकुरित होगा जिसकी हरियाली तुझे सदा आनन्द देती रहेगी।

९१८ सन्तोष चाहता है? सन्त का दर्शन कर, दोष न खोज, सन्तोष तेरा धन है।

ऐ प्राणी! सन्तोष धन सब धन से बड़ा है। अतुल धन सम्पदा का स्वामी भी तब तक चैन नहीं पाता जब तक कि वह सन्तोष धन को नहीं पा जाता। देख, सन्तोष सबको नहीं मिलता, यह उन्हें ही मिलता है जो सन्त के दरशन कर पाते हैं। अतः तू यदि सन्तोष चाहता है तो सन्त के दरशन कर। सन्त भाव की मूर्त्ति हैं। उनके भावों का दिग्दर्शन करके ही तू उन्हें देख पायेगा अन्यथा उनके समीप बैठकर भी उनके दरशन से वंचित रह जायेगा। जब श्रद्धा अवनत हो तू उनके भावों का अभिलाषी होगा तब तुझमें अन्य में दोष खोजने की प्रवृति नहीं रह जायेगी और तभी तू सन्तोष धन को प्राप्त कर सकेगा। उस दिन सन्तोष तुझे लेना नहीं पड़ेगा, सन्तोष तेरा अपना धन होगा।

९.१९ धन और धन्य के लिये सब बेचैन। धन प्राणधन। धन्य जीवन।

ऐ प्राणी! इस संसार में प्रत्येक प्राणी के अन्दर धन एवं मान-सम्मान पाने की लालसा विद्यमान है और सभी इसे पाने के लिये बेचैन बने रहते हैं किन्तु वह धन कौन सा है जिसे पाकर जीवन धन्य होता है इसे नहीं जानते। देख, वह धन तुझसे अलग नहीं, तेरे प्राणों में बसा है तेरे प्राण उसी पर ठहरे हैं। जिस दिन तू उस प्राणधन को जान जायेगा उस दिन तेरा जीवन धन्य हो जायेगा। तब तुझे मान-सम्मान पाने के लिये अन्य का मुख नहीं देखना होगा तू स्वयं में ही उसे देखता हुआ प्रमुदित होता रहेगा। किन्तु तू उसे पूर्णतया झुककर ही देख पायेगा। सत्संग में बैठकर जब झुकने के भावों का तेरे हृदय में सृजन होगा तभी वह सत्ता तुझे रोम-रोम में दिखलाई देगी। अतः तू धन के पीछे दौड़कर अपना कीमती समय बरबाद न कर, तू सच्चे धन को जान कि तू उसे पाने के लिये अग्रसर हो पाये और तेरा कीमती समय बरबाद होने से बच जाये।

९२० अहंकार का पुजारी कभी सोचा भी कि क्या हो रहा है ? शान्ति विलीन, मन क्षुब्ध।

ऐ प्राणी ! अहंकार के खेल बड़े टेढ़े होते हैं। इसे हृदय में स्थान देने वाला कहीं का नहीं रह जाता, वह कुछ भी करके चैन नहीं पाता। अहंकारी अपने को ऊँचा बड़ा दिखाने के फेर में गलत से गलत भावों को भी हृदय में प्रश्रय दे डालता है परिणाम उसके हृदय का चैन लुट जाता है एवं उसका मन क्षुब्ध रहने लगता है। देख, मनुष्य ऐसा था नहीं, वह तो शान्ताकारं प्रभु का दूसरा रूप है, शान्ति उसका सहज भाव है किन्तु अहंकार को प्रश्रय देने के कारण आज वह रो रहा है, उसका मन क्षुब्ध हो रहा है। अरे पगले ! अब भी समय है, आज भी तू होश में आजा तथा अहंकार का परित्याग करके ईश्वर के चरणों पर नतमस्तक हो जा कि तू अपने सहज भाव को पा जाये अर्थात् शान्ति तेरी सहचरी बने तथा तेरा मन प्रमुदित हो जाये। जीवन तथा जगत का रहस्य भी तेरे सम्मुख उसी दिन स्पष्ट होगा और तभी तू उनका आनन्द भी ले पायेगा।

९२१ यह उद्यान उसका दान है। आया है तो कुछ लाभ उठा। पश्चाताप क्यों ? प्रेम अपना। यह अपना है। पराया नहीं।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की तुझ पर विशेष मेहरबानी है, इस संसार रूपी बगीचे में तेरा आगमन उसकी कृपा का ही फल है। देख, बगीचा आनन्दवर्द्धन के लिये होता है, तन-मन से दुःखी व्यक्ति भी जब कुछ देर के लिये बगीचे में आता है तब अपना दुःख भूल जाता है। तू भी इस संसार में आया है तो यहाँ आने का लाभ उठा अर्थात् सबसे प्यार कर। यह संसार तेरा अपना है, यहाँ सभी तेरे अपने हैं। तू भेद बुद्धि अपनाकर इसे पराया न जान अन्यथा तेरे-मेरे में उलझा हुआ तू कष्ट पाता रहेगा और बगीचे में बैठा हुआ भी बगीचे के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा—ऐसे में पश्चाताप ही तेरे पल्ले पड़ेगा। अतः तू समय रहते रहते ही सम्हल जा तथा सबसे प्यार कर ले कि तू इस संसार रूपी उद्यान का आनन्द ले पाये और पश्चाताप तेरे समीप भी न रह जाये।

९२२ शरण सुन कर मन रण को उद्यत होता, अहंकार झुँझलाता। कैसे शान्ति मिले ?

ऐ प्राणी ! शान्ति नम्रता में है, झुककर चलने में है, ईश्वर की शरण

ग्रहण करने में है और तू है कि शरण लेने के नाम से ही अपने को नीचा समझता है—शरण तुझे दासता का दूसरा नाम लगती है। देख, अहंकार से घिर जाने के कारण तेरी ऐसी मनोवृत्ति हो गयी है और अहंकार के कारण ही तू स्वयं को सबसे ऊँचा-बड़ा समझता है। अरे पगले! ऊँचा-बड़ा बनने के लिये स्थूल उपलब्धि ही पर्याप्त नहीं, वह भाव चाहिये जिससे अहंकार-शून्यता आये एवं जिसे अपनाकर ईश्वर अपना बन जाये। यथार्थ में बड़ा तू उसी दिन बन सकेगा और सच्ची शान्ति भी तुझे तभी मिलेगी। अन्यथा अहंकार में इठलाता हुआ तू सर ऊँचा करके चलता रहेगा किन्तु शान्ति के अभाव में तेरा दिल रोता रहेगा और एक दिन अवश्य ऐसा आयेगा जब तुझे नीचा देखना होगा। अतः तू यदि शान्ति पाना चाहता है तो तू सर्वशक्तिमान प्रभु की शरण ग्रहण कर कि तुझे अवनति की ओर ले जाने वाले भाव तेरे समीप न आयें।

९२३ प्रेम अपना बनाता है, स्वप्न नहीं दिखलाता। केवल कल्पना कब सन्तोष देने सकी?

ऐ प्राणी! तू प्रेम को अपना, प्रेम से ही तू सबको अपना बना सकेगा। प्रेम ईश्वर से लेकर इतर प्राणी तक सबको आकृष्ट करता है, इतना ही नहीं, यह सबको बन्धन में भी बाँध लेता है—इसे अपनाने से दुशमन भी दोस्त हो जाता है। देख, जब तक तेरे हृदय में प्रेम की जागृति नहीं होगी तब तक तू केवल प्रेम की बातें सुनेगा, प्रेम के झूठे स्वप्न देखेगा और ऊँची-ऊँची कल्पना में खोकर उसी को प्रेम समझेगा—ऐसे में तुझे सन्तोष नहीं मिल सकेगा क्योंकि कल्पना कल्पना ही है; इसमें यथार्थता का आनन्द नहीं मिल सकता। अतः तू प्रेम की जागृति के लिये प्रेमास्पद प्रभु की खोज कर कि तेरा सोया प्रेम उमड़ जाये और तू प्रेम का प्रभाव प्रत्यक्ष देख पाये।

९२४ व्रत में यदि रत न रहा तो उपवास क्या काम आया?

ऐ प्राणी! अभीष्ट की पूर्ति दृढ़ संकल्प (व्रत) से ही सम्भव है। जब तक दृढ़ संकल्प नहीं तब तक व्यक्ति धर्म के नाम पर शरीर पर ही अत्याचार (उपवास) कर सकता है, लोगों से मान-प्रशंसा ही पा सकता है ईश्वर को नहीं जान सकता। देख, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि सभी ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं। इन साधनों को सम्पादित करते समय हृदय में ईश्वर मिलन के भाव चाहिये। भाव के बिना ये साधन केवल कर्म बन कर रह जाते हैं जिनका

कोई अर्थ नहीं रहता। तब व्यक्ति इनको सम्पादित करके ईश्वर के नाम पर भी केवल अभिमान बटोरता है। अतः तू केवल कर्म में न फँस, तू ईश्वर मिलन के लिये व्रत (दृढ़ संकल्प) ले कि तू ईश्वर को समीप देख पाये, ईश्वर तुझसे दूर न रह जाये।

९२५ किसने कहा तू शैतान है? तान सुना प्रभु को, शयन कर चरणों में, देख प्रभु क्या कर रहा है?

ऐ प्राणी! तू अपने बुरे कर्मों को देखकर हताश-निराश न हो क्योंकि ईश्वर बड़ा दयालु है तू जब भी उसकी शरण ग्रहण करेगा तभी वह तुझे अपना लेगा। अतः तू अपनी ओर देखना छोड़कर प्रभु की शरण ग्रहण कर तथा उसे अपना समझ कर सरल हृदय से अपने दिल के भावों को उसके सम्मुख रख दे। जब तू उसके चरणों का आश्रय पा जायेगा तब तेरी दुनिया बदल जायेगी, तब तुझे न कुछ पकड़ना पड़ेगा और न छोड़ना पड़ेगा तू स्वतः वह भाव पा जायेगा जो तेरे लिये हितकारी है। ईश्वर किस प्रकार अपने भक्तों की रक्षा करता है—यह भी तू तभी देख पायेगा।

९२६ सूरज—शूर, सुर को तू जानता है। न जाना तुझे तो सूरदास ही है, आँखोंवाला भी।

ऐ प्राणी! बड़े-बड़े शूरवीर तथा बड़े बड़े विद्वानों के हृदयाकाश में भी तब तक अन्धेरा ही रहता है जब तक कि वे प्रकाश फैलाने वाले को नहीं जानते। देख, अभी उनकी दृष्टि का दायरा संकीर्ण है इसीलिये वे नाम के लिये परेशान हैं और नाम को ही सूर्य का प्रकाश समझ कर अधिक से अधिक पाने की चेष्टा करते हैं। नाम की प्राप्ति के लिये वे क्या-क्या नहीं करते फिर भी उनका दिल रोता रहता है। देख, हृदय में आलोक फैलने के लिये केवल नाम से कुछ नहीं होगा, इसके लिये उसे जानना होगा जिसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण विश्व रोशन है एवं जिसके साथ से यह शरीर गतिशील है—उसी दिन व्यक्ति इस संसार को भी देख पायेगा और शरीर धारण करने का लाभ भी उठा पायेगा। अन्यथा आँख रहने पर भी वह सूरदास (अन्धा) ही रहेगा अर्थात् मनुष्य शरीर धारण करने के मर्म से अवगत नहीं हो सकेगा।

९२७ शान के लिये परेशान क्यों? अभिमान क्यों? मान कर सम्मान कर प्रिय का।

ऐ प्राणी! तेरे प्रत्येक कार्य शान बढ़ाने के लिये होते हैं। तू दिन रात

शान के लिये इतना परेशान रहता है कि तेरे हृदय की निर्मलता खत्म होती जा रही है। देख, तू हृदय की कद्र करना भूलता जा रहा है और अभिमान से घिरता जा रहा है यह तेरे लिये शोभनीय नहीं। ऐसे में तू कभी शान्ति नहीं पा सकेगा—बाहर से तू फैलता जायेगा और भीतर से सिकुड़ता जायेगा—तू मनुष्य कहलाने के योग्य भी नहीं रह जायेगा। अतः तू सम्हल जा एवं प्रिय प्रभु के चरणों का आश्रय ग्रहण कर। ईश्वर को मान देने से एवं हृदय से सम्मान देने से तेरी रक्षा स्वतः होती रहेगी, तुझे कोई भी भाव आकर गुमराह नहीं कर सकेंगे और तभी तू अपने सही रूप में आ सकेगा तथा जीवन का आनन्द भी पा सकेगा।

९२८ स्वार्थी तू क्या जाने प्रेम कैसा होता है? स्वर्ग नहीं, नरक का भय नहीं। शुद्ध प्रेम जो प्रभु का दूसरा ही रूप है।

ऐ प्राणी! जहाँ स्वार्थ प्रधान रहता है वहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव रहता है। स्वार्थी प्रत्येक कार्य को स्वार्थ से प्रेरित होकर सम्पादित करता है, स्वार्थ से अलग होकर वह सांस भी नहीं लेता। उसके हृदय में निहित प्रेम स्वार्थ से दब जाता है और उसका नामोनिशान भी नहीं दिखलाई देता। किन्तु जहाँ प्रेम प्रधान है वहाँ तो बात ही निराली है। प्रेमी निर्भय विचरण करता है। प्रेमी को कोई भी प्रलोभन डिगा नहीं सकते और न किसी प्रकार का भय ही भ्रमित कर सकता है—वह प्रेम की दुनिया में प्रेम के साथ मौज मनाता है। प्रेमी का हृदय समुद्रवत् विशाल हो जाता है, सभी सद्भाव (नम्रता, शुद्धता, दया, क्षमा आदि) उसके समीप सहज रूप से रहते हैं। प्रेमी ईश्वर का दूसरा रूप होता है अर्थात् ईश्वर को प्रेमी के समीप ही देखा जा सकता है।

९२९ खोजता है प्रिय को पत्थर की मूर्त्ति में। अरे वह पत्थर नहीं, मूर्त्ति नहीं—वह तो तेरा प्राण है।

ऐ प्राणी! पत्थर की मूर्त्तियाँ ईश्वर का प्रतीक हैं ईश्वर नहीं, ये मूर्त्तियाँ केवल संकेत देती हैं कि ईश्वर है। देख, तू यदि पत्थर को ही ईश्वर समझ बैठेगा तो ईश्वर को कभी नहीं जान सकेगा क्योंकि ईश्वर पत्थर नहीं कोमल है, कमल है, तेरा प्राण है—यदि ईश्वर नहीं तो तू भी नहीं। अतः तू सत्य हृदय से ईश्वर की खोज कर। जब ईश्वर को पाने के लिए तेरा हृदय आतुर

होगा तब हृदय कोमल होता जायेगा और तब ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह जायेगा तू उसे प्राणों में ही प्रतिष्ठित देख पायेगा। प्राणों में प्रतिष्ठित पाने के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में भी तू उसी को देखेगा अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर केवल बातें करके ही मन बहलाता रहेगा।

९३० जब वस्तु की प्राप्ति के लिये मन बेचैन, फिर तेरी प्राप्ति कैसे हो? कह—बस तू—बस तू, मैं तो तुझ ही में समाया हूँ।

ऐ प्राणी! जो ईश्वर की ओर बढ़ना चाहते हैं उनको यह जगत अपनी ओर खींचता है—स्थूल जगत का आकर्षण कुछ ऐसा ही है। ऐसे में व्यक्ति समझ बैठता है कि ईश्वर मिलन अति कठिन है किन्तु उसे मालूम नहीं कि ईश्वर मिलन अति सहज है। देख, सहज यह उनके लिये है जिनके हृदय में ईश्वर को पाने की लालसा है अर्थात् जो सहज भाव से ईश्वर को याद करते हैं। जो जोर-जबर्दस्ती से ईश्वर की ओर बढ़ना चाहते हैं उन्हें प्रकृति आगे बढ़ने से रोकती है और अपने में ही उलझा लेती है। अतः तू ईश्वर को पाना कठिन जानकर हताश-निराश न हो, तू ईश्वर को प्यार से याद कर कि तू ईश्वर को अति समीप अपने में ही समाया देख पाये, ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह जाये।

९३१ चंचल न बना मन को। नहीं तो सृष्टि का अन्त है मन का कहाँ?

ऐ प्राणी! मन स्वभाव से ही चंचल है, इस चंचल मन की गति अबाध है। देख, चंचल मन को हमेशा देखभाल की जरूरत पड़ती है, यदि उसे देखा न जाये तो वह गलत राह पकड़ लेगा तथा गुमराह हुआ इधर-उधर मारा मारा फिरता रहेगा फिर भी इसके भटकने का कहीं अन्त नहीं आयेगा। आँख से दिखलाई पड़ने वाली प्रत्येक चीज का एक दिन अन्त आ जाता है किन्तु इस मन का कहीं अन्त नहीं आता, मन की मेहरबानी से ही प्राणी बार-बार चक्कर काटता रहता है। अतः तू मन को छूट न दे, तू सदा इसकी देखभाल के लिये तत्पर रह कि तू निरर्थक चक्कर से बच जाये और मन भी तेरा सहयोगी बन जाये।

९३२ व्याकुल क्यों? अपनी सृष्टि में अकेला, इसीलिये आकुल है, व्याकुल है।

ऐ प्राणी! जीवन में सरसता प्यार से आती है। जब तक प्यार का

प्रादुर्भाव हृदय पटल पर नहीं हो जाता तब तक अनेक (संगी साथी) अपने से दिखलाई देते हैं किन्तु अपना कोई नहीं रहता, व्यक्ति पूर्णतया अकेला रहता है। देख, स्थूल जगत में यह देखा जाता है कि व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता, अकेले में उसका जी छटपटाने लगता है—सूक्ष्म जगत की भी यही बात है। चूँकि सूक्ष्म जगत में व्यक्ति अकेला है इसीलिये उसका हृदय हमेशा छटपटाता रहता है। किन्तु वह इस भेद को नहीं जान पाता अतः इसके लिए दोषी स्थूल कारणों को ठहराता है। अरे पगले ! तू अकेला कभी था नहीं और है भी नहीं, दृष्टि भ्रम के कारण तू अकेला हो रहा है। अतः तू उस साथी की खोज कर जो सदा तेरे साथ है कि तेरे हृदय की विकलता खत्म हो जाये और तू सच्ची शान्ति के दर्शन कर पाये।

९३३ (सन्त साधारण जन को कहता है) पतंग है जो हवा में उड़ रहा है ? पंतगा है जो रूप शिखा पर मँडरा रहा है ? (सन्त से) तू कौन है ? (सन्त) मैं तेरा हूँ, लोग मुझे सन्त कहते हैं।

ऐ प्राणी ! इस संसार का रूप इतना लुभावना है कि व्यक्ति मोहित हुआ इसी के चातुर्दिक चक्कर काटता रहता है—वह इसी को अधिक से अधिक पाने की कल्पना करता रहता है और इसी को अधिक से अधिक भोगने की चेष्टा करता है। इसकी प्राप्ति में चाहे उसके अन्तर की स्निग्धता व कोमलता पूर्णतया नष्ट हो जाये—वह उसकी परवाह नहीं करता। संयोगवश उसे यदि सन्त के दरशन हो जाते हैं तो उसके कर्णद्वार में कुछ चेतना के शब्द पहुँचते हैं। सन्त वाणी उसे संकेत देती है कि हवा में तो पतंग उड़ती है तू क्यों झूठी कल्पना में उड़ रहा है ? दीपशिखा पर तो पतंगे मँडराते हैं फिर तू क्यों विषयों में जलकर मर रहा है ? देख, तेरा आगमन जलने मरने के लिये नहीं हुआ है, आनन्द के लिये हुआ है। प्राणी ऐसी प्यार भरी वाणी का जब साथ पाता है तब असमंजस में पड़ जाता है कि यह कौन है जिसे मेरा इतना ख्याल है ? तब अन्तर्चेतना उसकी सहायक बनती है और वह उसे बताती है कि यह तेरा है और तेरे लिये ही आया है। अन्तर्चेतना की आवाज सुनकर बहकते प्राणी के पाँव रुक जाते हैं और वह जीवन का आनन्द ले पाता है।

९३४ सन्तान सत्य की, सन्त कहो या असन्त। आन (प्रतिज्ञा) यही, मेरी आन बान बनी रहे, तेरी शान बनी रहे।

ऐ प्राणी ! सन्त सत्य की सन्तान होते हैं, उनका आगमन जन-जन में प्रेम का प्रवाह प्रवाहित करने के लिये होता है। उन्हें कोई जाने या न जाने और चाहे किसी भी नाम से सम्बोधित करे इससे उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उनका काम है सत्य का सन्देश बाँटना। वह ईश्वर जो कण-कण में व्याप्त है उसे सन्त के समीप बैठकर ही देखा जा सकता है। उनका यही भाव रहता है कि उनके प्रत्येक भाव, विचार व कार्यों से सत्य का दिग्दर्शन होता रहे और वह सत्ता जो सर्वथा लुप्त हो गयी है सर्वत्र जगमगा उठे, उसे पुनः प्राण मिल जायें।

९३५ मीठी तान सुना। शहनाई बज रही है मिलन की, चाह की, राह की, वाह की और क्या सुनाऊँ ?

सन्त को सत्य की बातें केवल मुख से नहीं कहनी पड़तीं उनका रोम-रोम सत्य का सन्देश देता रहता है, उनके समीप बैठकर स्वतः भाव की जागृति होती है। सत्य का जिज्ञासु जिज्ञासा लिये हुए जब उनके समीप जाता है तब सुनना भूल जाता है, स्तब्ध हो उनके भावों को ही देखता रह जाता है। उनके सामीप्य से हृदय में भाव की जागृति होने लगती है—नयी उमंग, नया चाव, नया भाव सन्त कृपा का ही फल है। प्राणी को तब जोर लगाकर ईश्वर-मिलन के साज सजाने नहीं पड़ते, अन्तर में छुपे प्रत्येक भाव स्वतः सम्मुख आने लगते हैं। उसका हृदय ईश्वर मिलन के लिये तड़पने लगता है और ईश्वर मिलन ही उसकी एकमात्र चाहना बन जाती है। उसका प्रत्येक कदम उसी राह पर बढ़ता है जहाँ वह ईश्वर की अनुभूति पाता है। ऐसा है यह भाव जो साधारण से मानव का जीवन आनन्द से भर देता है।

९३६ छिपा मत। छिपा मत कष्ट देगा। यदि उसकी है कृपा तो छिपा प्रकाश में आयेगा, प्रकाश फैलायेगा।

ऐ प्राणी ! हृदय जितना अधिक सरल, शुद्ध व सादा रहता है उतना ही व्यक्ति ईश्वर के सन्निकट होता है। जैसे-जैसे हृदय गन्दा हो जाता है अर्थात् चालबाजी, धूर्तता, प्रदर्शन आदि से घिरता जाता है वैसे-वैसे व्यक्ति ईश्वर से दूर होता जाता है। देख, गन्दगी कष्ट देती है और यदि उसे छिपा कर

रख लिया जाये तो वह सड़कर और भी अधिक कष्ट देने लगती है। अतः तू किसी भी भाव-विचार को छिपा मत क्योंकि छिपे हुए विचार विकार के रूप में परिणित हो जायेंगे तथा तुझे कष्ट देते रहेंगे। देख, वे विचार औरों से ही छुपे हुए नहीं, तेरी नजरों से भी अभी छुपे हुए हैं इसीलिये तू उनसे कष्ट पा रहा है। यदि तुझ पर ईश्वर की कृपा हुई तो तू उन विचारों को देख पायेगा। तब तू उन्हें हृदय में नहीं रख सकेगा, उन्हें भीतर रखने से तेरा दिल रोने लगेगा। ऐसे में तू हल्का फुल्का हो जायेगा, तेरे भीतर प्रकाश फैल जायेगा और बाहर भी तू तभी प्रकाश फैला सकेगा।

९३७ चला जाता है या जला जाता है? गति-विधि देख, चलना जलना नहीं, वह तो हिल-मिल कर मौज लेना है।

ऐ प्राणी! बाहर के कार्यों में परिवर्तन देखकर तू कभी ऐसा मत समझ बैठना कि तू ईश्वर के करीब होता जा रहा है। देख, ईश्वर मिलन से केवल कार्य नहीं बदलते हृदय के भाव भी बदलते हैं। यदि हृदय में तू शान्ति, सन्तोष का अनुभव कर पा रहा है तो तू अवश्य ईश्वर की समीपता पा रहा है किन्तु तेरा हृदय यदि व्यथित है तो यही कहना होगा कि अभी ईश्वर तेरे आस-पास भी नहीं। अतः तू ईश्वर के नाम पर कुछ कार्यों को बदल कर ही सन्तुष्ट न हो, तू अन्तर के भावों का अवलोकन कर। यदि तेरे अन्तर में परिवर्तन नहीं तो तू उन प्रेमियों का संग ग्रहण कर जिनके समीप बैठकर तेरे हृदय में प्रेम की जाग्रति हो जाये। प्रेम की जाग्रति के पश्चात् वे भाव जो तुझे जला रहे हैं तेरे समीप टिक नहीं सकेंगे, तू हमेशा ईश्वर की ओर देखता हुआ उसके साथ का आनन्द पाता रहेगा। यह दुनिया भी तब तेरे लिये शिकायत का स्थान नहीं रहेगी, तू सर्वत्र एक ईश्वर का ही जलवा देख पायेगा।

९३८ याद भूला अब ठौर कहाँ? भूल और याद तेरे मन की अवस्था है, वह तुझे कब भूला?

ऐ प्राणी! तेरी यह धारणा है कि इतना लम्बा समय तूने ईश्वर को भुला कर बिता दिया अब तुझे उसकी शरण नहीं मिल सकती—किन्तु बात ऐसी नहीं है। देख, ईश्वर बड़ा दयालु है, तूने उसे भुलाया है किन्तु उसने तुझे नहीं भुलाया है—कभी भूलना, कभी याद करना यह तेरे मन की अवस्था है—तू आज भी यदि उसके समीप जायेगा तो वह तुझे गले लगायेगा क्योंकि

वह तेरी प्रतीक्षा कर रहा है। अतः तू अपने कर्मों की तरफ देखकर हताश-निराश न हो, तू आज से ही ईश्वर मिलन के लिये कदम बढ़ा कि तेरी जीवन बगिया महक जाये, उसमें प्रेम सुगन्ध भर जाये—ईश्वर तुझसे रह जाये।

९३९ रुलायेगा ? क्या पायेगा ? आँसुओं की शक्ति अनोखी। छिपा प्रिय प्रकट होगा और आँसू उसकी आँखों की शोभा बढ़ायेंगे।

ऐ प्राणी ! आँसुओं की शक्ति अनोखी होती है, तू इस शक्ति को विषयों में न बरबाद कर। यदि धन-जन तेरे लिये प्रधान हो जायेंगे तो दुःख-चिन्ता आदि भाव तेरे हृदय में डेरा जमा लेंगे। ऐसे में तेरी आँखों में आँसू दुःख के होंगे, वे तेरी आँखों में ही नहीं होंगे तेरा दिल भी रोता रहेगा, तब तेरा जीवन ही भार बन जायेगा। किन्तु यदि ईश्वर तेरे लिये प्रधान होगा तो तेरी आँखों में आँसू प्रेम के होंगे। देख, प्रेम के आँसुओं की शक्ति विलक्षण होती है। यह उस सर्वव्यापी प्रभु को, जो कण-कण में छिपा है फिर भी दीखता नहीं, प्रगट कर देती है। प्रेम के आँसुओं को ईश्वर प्रगट होकर ग्रहण करता है—ऐसे आँसू जिन आँखों में शोभा पाते हैं वह जीवन ही दर्शनीय बन जाता है।

९४० साकार के आकार आकर्षक। क्या इसीलिये भूल जाता है 'स्वरूप' को ?

ऐ प्राणी ! इस सम्पूर्ण सृष्टि को रचने वाला एक ईश्वर है, सम्पूर्ण दृश्य जगत की तह में एक वही छुपा है—इसी कारण से यह सृष्टि इतनी आकर्षक है। किन्तु यहाँ आकर व्यक्ति इस तथ्य को भूल जाता है और स्थूल को पकड़ने व पाने की चेष्टा में लग जाता है। वह जितना स्थूल की ओर भागता है उतना ही सूक्ष्म से दूर होता जाता है और एक दिन ऐसा आ जाता है कि वह 'स्वरूप' को सर्वथा भूल जाता है। अरे पगले ! स्वरूप को भुलाकर तू रूप से कुछ नहीं पा सकेगा, केवल रूप मिट्टी है जिसे पकड़ कर तू भी मिट्टी में मिल जायेगा। अतः तू यह जान ले कि ये रूप तुझे क्यों आकृष्ट कर रहे हैं, फिर कारण जान कर स्वरूप से प्यार कर कि रूप तेरे लिये बन्धन का कारण न बने।

९४१ अपना, यदि नहीं तो अपमान न कर। मन व्याकुल है। तेरा मेरा कहना बेकार।

ऐ प्राणी ! ईश्वर तेरा अपना है। देख, तू अपने से दूर होता जा रहा

है तथा जो दो दिन के मेहमान हैं उन्हें अपना मानता जा रहा है—ऐसे में तू कभी शान्ति नहीं पा सकेगा। अतः जो तेरा अपना है उसे तू अपना, यदि उसे अपना न भी सके तो कम से कम उसका अपमान तो न कर। उसको हृदय में स्थान देने से ही तू शान्ति से रह सकेगा अन्यथा तेरा मन व्याकुल ही बना रहेगा—तू भी व्याकुल रहेगा तथा तेरा प्रभु भी तेरे लिये छटपटाता रहेगा जैसे मां का हृदय बच्चे के लिये छटपटाता रहता है। तेरी यह विकलता तुझे चैन नहीं लेने देगी, तू कुछ भी करके चैन नहीं पायेगा जब तक उसे पा नहीं लेगा। अतः तू सीधा रास्ता पकड़ अर्थात् ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू चैन की वंशी बजा पाये।

९४२ फिर याद कर फरियाद कब बेकार ?

ऐ प्राणी! ईश्वर के लिये की गई फरियाद बेकार नहीं जाती, वह निश्चित ही एक दिन सुनी जाती है। देख, तुझे यदि ऐसा लगता है कि "मैं तो याद करता हूँ किन्तु याद का कुछ असर ही नहीं होता" तब भी तू घबड़ा नहीं और न धीरज छोड़ क्योंकि धीरज का फल मीठा होता है। धीरज से जब तू प्रभु को याद करता चला जायेगा, तब याद करते वक्त भी तेरा हृदय प्रफुल्लित होगा और याद का प्रतिफल भी तू अवश्य देख पायेगा, याद की महिमा को भी तू तभी जान पायेगा। इसके पूर्व तू सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ईश्वर का नाम लेता रहेगा किन्तु ईश्वर तेरा अपना नहीं बन सकेगा, वह तुझसे दूर ही बना रहेगा। अतः तू ईश्वर को बार-बार याद कर जब तक कि तेरी फरियाद उस तक पहुँच न जाये।

९४३ वार रस, न्योछावर कर, मन दे—हृदय गति प्राणों में अनोखी।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरे हृदय के प्रेम रस को पाना चाहता है और तू है कि उसके नाम पर केवल कुछ काम करके ही खुश हो रहा है—ऐसा करने से तेरा हृदय कभी तृप्त नहीं हो सकेगा। देख, वही काम ईश्वर का काम है जो हृदय में सरसता प्रदान करे। जिसे करके हृदय खाली ही रह जाये, वह काम ईश्वर के लिये दिखलाई पड़ सकता है यथार्थ में वह अन्य कार्यों की तरह एक कार्य ही है। अतः तू ईश्वर के नाम पर स्वयं को धोखा न दे, तू प्यार से ईश्वर की शरण ग्रहण कर तथा प्रभु के चरणों में स्वयं को न्योछावर कर दे। तब

तेरा मन अन्यत्र चक्कर काटना भूल जायेगा, वह प्रभु चरणों का भँवरा बन वहीं रसपान करता रहेगा। यथार्थ में प्राण पाने का आनन्द तू उसी दिन पायेगा। इसके पूर्व हृदयहीन हुआ तू केवल श्वाँस लेता रहेगा, जिन्दादिली का तुझमें सर्वथा अभाव रहेगा।

९४४ संग संग चल, संकट दूर। संग कटा, अलग हुआ, संकट उपस्थित।

ऐ प्राणी! ईश्वर का साथ सभी संकटों को दूर करता है और मौज की दुनिया उपस्थित करता है। ईश्वर की दुनिया में बैठकर व्यक्ति देख पाता है कि सभी कार्य सुनियोजित तरीके से ईश्वर स्वतः कर रहा है अतः ईश्वर को उसे अलग से कुछ कहना नहीं पड़ता। ईश्वर का वरदहस्त वह सदा सर पर देख पाता है, संकट उसके समीप भी नहीं आ सकते। किन्तु जो ईश्वर को भुलाकर अपनी अलग दुनिया बसा लेते हैं तथा उसके मालिक स्वयं बन बैठते हैं उनके मन-मस्तिष्क सभी बोझिल रहते हैं। वे दुःख, चिन्ता से घिरे अनेक कष्ट भोगते रहते हैं, उन्हें कदम-कदम पर संकट आ घेरते हैं। अतः तू ईश्वर से अलग होकर एक क्षण भी न बिता अन्यथा मौज के लिये आया हुआ तू मौत के सदृश्य जीवन बिताता रहेगा तथा उसका दोषारोपण भाग्य पर करता रहेगा।

९४५ प्रेम की रीति तरी (नौका) बनी, मन हरण करने लगी, हरि बनी।

ऐ प्राणी! प्रेम के अभाव में व्यक्ति सदा मझधार में डूबता उतराता रहता है। कभी वह अपने को सुखी समझता है एवं कभी अत्यन्त दुःखी महसूस करता है—अनुकूल वातावरण उसे सुख देता है एवं प्रतिकूलता उसे दुःख देती है। देख, यह जीवन आनन्द के लिये है किन्तु यहाँ आनन्द मिलता उन्हें ही है जिन्होंने प्रेम पाया है। प्रेम की जागृति होने के पश्चात् परिस्थितियाँ प्रधान नहीं रहतीं, ईश्वर प्रधान रहता है। तब प्रत्येक परिस्थिति ईश्वर का प्रसाद बन जाती है, उसमें आनन्द की अनुभूति होने लगती है। प्रेमी प्रेम की नौका में बैठकर निर्भय विचरण करता है, उसे न भटकने का डर रहता है और न मृत्यु का भय रहता है, वह हमेशा प्रिय की ओर देखता हुआ आगे बढ़ता जाता है। उसके आकर्षण का केन्द्र एक हरि ही रह जाता है वही उसे आकृष्ट करता हुआ हरियाली प्रदान करता रहता है।

९४६ पुकार कि दिल दहल उठे, दिलदार का। फिर? दिल फिर मिला, दिल खिला।

ऐ प्राणी! पुकार कभी बेकार नहीं जाती। यह जब सच्चे हृदय से ईश्वर के लिये होती है तब वह ईश्वर जिसका हृदय फूल से भी कोमल है उसका दिल दहल उठता है, वह भक्त की आकुल व्याकुल आवाज पर खिंचा-खिंचा चला आता है। देख, दिलदार प्रभु के सामने सम्पूर्ण संसार का वैभव भी तुच्छ है। भक्त जब ऐसे प्रभु के दरशन पा जाता है तब संसार का झूठा आकर्षण उसे नहीं लुभा सकता, वह प्रभु चरणों में ही झुक जाता है। प्रभु चरणों के आश्रय में कौन सा जादू है—इसे झुक कर ही जाना जा सकता है। अतः तू यदि उसकी दुनिया को देखने का इच्छुक है तो सच्चे दिल से ईश्वर की पुकार कर कि दिल में प्रतिष्ठित प्रियतम प्रभु की मूर्त्ति से तू मिल पाये और उसकी दुनिया में खिल कर रह पाये।

९४७ सब में देखूँ कि अपने में। अपने में देख, जगत स्वप्न ही दूर हो जाये।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है किन्तु उसे देख वे ही पाते हैं जिनकी आँखें खुली हैं अर्थात् जिन्होंने अपने भीतर ईश्वर को देखा है। देख, ईश्वर स्थूल आँखों से नहीं देखा जा सकता, इनसे तो स्थूल व्यक्ति वस्तु आदि ही देखे जा सकते हैं जो आज हैं किन्तु कल नहीं रहेंगे। अतः सबमें देखने से पहले तू स्वयं में ईश्वर की खोज कर। सत्संग में बैठकर जब तेरे भाव बदल जायेंगे तथा तेरे अन्तर में ईश्वर को पाने की विकलता होगी तब तू देख पायेगा कि ईश्वर तुझसे दूर नहीं वह तेरे रोम-रोम में समाया है, वही तुझे गति दे रहा है। तब संसार भी तेरे लिये स्वप्नवत् नहीं होगा, तू सम्पूर्ण संसार में एक ईश्वर का दरशन कर पायेगा—तेरा संसार आनन्द से भर जायेगा।

९४८ भार तू सँभाल, मैं बेहाल। भार मुझे और प्यार? (संसार को)

ऐ प्राणी! ईश्वर प्यार से पाया जा सकता है। देख, अभी तेरी नीयत साफ नहीं, तू प्यार करता है संसार को और बोझ देना चाहता है ईश्वर

को—ऐसे में तेरे दिल का बोझ कैसे हल्का हो ? ईश्वर तेरे दिल का बोझ हल्का करने वाला अवश्य है किन्तु कब ? जब तू उससे प्यार करेगा। उस दिन तुझे दिल का बोझ उसे देना नहीं होगा, तेरा दिल स्वतः हल्का-फुल्का रहेगा। जब तू उसका होगा तब तेरी चिन्ता, तेरा दुःख सभी उसके होंगे और तू निश्चिन्त होगा। अतः तू उल्टा रास्ता न पकड़ अर्थात् ईश्वर को दिल का बोझ देने के लिये न याद कर, ईश्वर तेरा अपना है तू उससे प्यार कर कि उसे भूल जाने के कारण तेरे दिल पर जो बोझ आ गया था वह नहीं रह पाये और तू प्रिय की दुनिया में निश्चिन्त रह पाये।

९४९ प्यार का भार नहीं, प्यारे का भार नहीं। प्यार में भार कहाँ ?

ऐ प्राणी ! प्यार से जब भक्त ईश्वर के चरणों पर कुछ भी अर्पित करता है तब उसे ईश्वर स्वयं वहन करता है क्योंकि प्यार का भार, भार नहीं होता शृंगार होता है—ऐसे भार के लिये तो ईश्वर तरसता है। देख, ईश्वर को अनेक चेष्टाओं के द्वारा पाना कठिन है, उसे केवल प्यार से ही पाया जा सकता है—प्यार के तो ईश्वर आधीन रहता है। प्यार जिस हृदय में प्रतिष्ठा पाता है उस प्यारे का सम्पूर्ण भार ईश्वर स्वयं ले लेता है—उसकी चिन्ता, उसके दुःख सब ईश्वर के अपने होते हैं यहाँ तक कि उसका मैल भी वह अपने हाथों से साफ कर देता है। वह अपने प्यारे पर किंचित मात्र भी भार नहीं आने देता, जहाँ उसके पाव पड़ते हैं वहाँ वह अपना दिल बिछाये रखता है—ऐसा है यह प्यार जिसमें भार के लिये कण मात्र भी स्थान नहीं रहता और जिसके हाथों भगवान भी बिक जाता है।

९५० भाग भाग न कह। तेरा भाग्य मेरा भाग्य कि तू आया, मैं आया—साथ में माया।

ऐ प्राणी ! इस संसार में तेरा आगमन अति सौभाग्य की बात है। सौभाग्य से मिले हुए इस अवसर का तू लाभ उठा अर्थात् तेरा आगमन यहाँ मिलन के लिये हुआ है अतः तू मिलन के साज सजा। अन्यथा यह संसार तेरे लिये जेल बन जायेगा और इसमें कष्ट पाता हुआ तू इससे भागने की चेष्टा करता रहेगा। देख, तेरे यहाँ आगमन में तेरा ही सौभाग्य नहीं, मेरा भी सौभाग्य है क्योंकि तेरे आगमन से ही मेरा आगमन होता है अर्थात् भक्त की भावना

ही मुझे साकार करती है अन्यथा मैं गुप्त सुप्त ही रह जाता हूँ। यहाँ आकर भी तू यदि मुझसे दूर ही रह जायेगा तो 'मैं' से घिरता जायेगा और जैसे-जैसे मैं से घिरता जायेगा वैसे-वैसे माया तुझे घेरती चली जायेगी। अतः तू मुझे जान कि "मैं" तेरे समीप न आये और तू भाग्यशाली नर कहलाये।

९५१ भक्ति, ज्ञान, प्रेम की त्रिधारा में स्नान किया कि त्रिलोक से मुक्त हुआ।

ऐ प्राणी! भक्ति हृदय को कोमल बनाती है, ज्ञान प्रकाश फैलाता है और प्रेम सरस बनाता है। देख, मृत्यु लोक में रहने वाला प्राणी स्वर्ग के नाम से आकाश लोक की कल्पना करता है तथा नरक के नाम से पाताल लोक से भयभीत होता है किन्तु जब वह भक्ति, ज्ञान व प्रेम की त्रिधारा में स्नान करता है तब स्वर्ग नरक की कल्पना में नहीं खोता, तब वह खुली आँखों से ईश्वर की सृष्टि को देखता हुआ जीवन व जगत का आनन्द पाता है। किसी भी प्रकार के बन्धन तब उसे नहीं बाँध सकते, वह प्रभु प्रेम में निमग्न हुआ प्रभु की ओर ही निहारता रहता है। ऐसा जन शरीर जाने के बाद मुक्त होने की कल्पना नहीं करता, जीते जी ही बन्धन मुक्त रहता है।

९५२ प्रेम भी अपराध? फिर आया क्यों?

ऐ प्राणी! प्रेम को तू नीची निगाह से न देख क्योंकि प्रेम ही वह तत्त्व है जिसे अपनाकर तू आज भी मौज मनाता रहेगा तथा मौज के साथ ही इस संसार प्रांगण से विदा हो सकेगा। देख, प्रेम को पाने से विश्व का कण-कण जगमगा उठता है, इस पर वास करने वाले सभी अपने बन जाते हैं। अभी तूने प्रेम तत्त्व को जाना नहीं है, वासना से ही तेरा पाला पड़ा है इसीलिये तू प्रेम को भला-बुरा कहता है। जिस दिन तेरे हृदय में प्रेम के छींटे लग जायेंगे उस दिन तेरी दृष्टि बदल जायेगी, उस दिन प्रेम तेरे लिये अपराध नहीं होगा वरदान बन जायेगा। अतः तू यदि कहीं प्रेम को देख पाता है तो प्रेम के सम्मुख नतमस्तक हो जा कि तू भी प्रेम धन को पा जाये और तेरा यहाँ आना सार्थक हो जाये।

९५३ आया ही क्यों, जब निरर्थक बातें सुनता है जिसे लोग उपदेश और नीति कहते हैं।

ऐ प्राणी! उपदेश की बातें कानों को भली लग सकती हैं, हृदय में

आलोक नहीं फैला सकतीं एवं नीति की बातें बाहर के कार्यों में समय विशेष के लिये परिवर्तन दे सकती हैं, हृदय नहीं बदल सकतीं। देख, हृदय को आलोकित करने के लिये एवं भाव परिवर्तन के लिये केवल बातें नहीं चाहिये, भाव योगी का साथ चाहिये। भाव योगी के साथ से हृदय में अभाव टिक नहीं सकते, वे स्वतः पलायन कर जाते हैं। अतः जो तेरे कानों को भली लगे तू केवल वे बातें न सुन, जो तेरे हृदय को स्पर्श करती हुई तेरे भावों को बदल डाले तू वह साथ ग्रहण कर अन्यथा इस धरा पर तेरा आगमन ही वृथा रहेगा—तू बाहर से प्रत्येक भाव विचारों को सजाता रहेगा किन्तु तेरा दिल रोता रहेगा।

९५४ आग लगी बुझाये कौन ? जिसके लिये आग लगी।

ऐ प्राणी ! तेरे हृदय में जो एक आग सी लगी हुई है जिसके कारण तू किसी भी करवट चैन नहीं ले पाता, वह कुछ भी पाकर मिटने वाली नहीं क्योंकि वह आग धन-जन के अभाव में नहीं, ईश्वर मिलन के अभाव में है। देख, यदि वह जलन धन-जन के अभाव में होती तो धन-जन पाकर अवश्य मिट जाती किन्तु ऐसा होता कहाँ है। स्थूल वस्तुओं को पाकर तू कुछ समय के लिये राहत महसूस करता है किन्तु कुछ समय बाद ही तेरी जलन ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती है। अतः हृदय की जलन को मिटाने के लिये तू धन-जन के पीछे न दौड़, जीवन धन की खोज कर कि तू शान्ति के दर्शन कर पाये अन्यथा तू दौड़ते-दौड़ते थक जायेगा फिर भी चैन की साँस नहीं ले पायेगा।

९५५ अतीत व्यतीत हुआ। वर्त्तमान—रत हो प्रेम में और मान सर्वस्व प्रिय को। भविष्य ? प्रेम का भविष्य सदा उज्ज्वल।

ऐ प्राणी ! तू बीती हुई बातों को भूल जा क्योंकि वे काल के गर्भ में समा चुकी हैं। उनको हमेशा सामने रखने से तू कुछ पायेगा तो है ही नहीं, तेरा आज का समय भी निरर्थक हो जायेगा। अतः आज तू कुछ ऐसा कर कि तुझे जो कुछ मिले उसे पाकर तेरा भविष्य उज्ज्वल हो जाये। देख, इसके लिये तुझे प्रियतम प्रभु का साथ पाना होगा। जिस दिन प्रियतम प्रभु तेरा अपना होगा और उसके लिये तेरे हृदय में प्रेम प्रवाहित होने लगेगा उस दिन तू निश्चिन्त रह सकेगा तथा तुझे भविष्य की भी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी—तू देख पायेगा कि प्रत्येक कार्य ईश्वर स्वतः सम्पादित कर रहा है। देख, सुनी

हुई बातों के आधार पर जब तक ईश्वर पर विश्वास किया जाता है तब तक स्थिरता नहीं आती, आगे-पीछे की चिन्ता बनी रहती है किन्तु प्रेम के जागरण के पश्चात् विश्वास करना नहीं पड़ता, ईश्वर के कार्य प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ते हैं और यही कारण है कि प्रेमी हमेशा निश्चिन्त रहता है—उसे न आज की चिन्ता करनी पड़ती है और न कल की, वह निरन्तर सत्य पथ पर आगे बढ़ता जाता है।

९५६ उदास क्यों? हतास क्यों? आस कर उसकी जो तेरे पास है।

ऐ प्राणी! शरीर की शक्ति सीमित है। इस संसार में आकर जो इस शरीर को ही सब कुछ जानते हैं तथा अपने बल का भरोसा रखते हैं वे यहाँ सदा दुःखी ही बने रहते हैं और परिस्थितियों से लाचार होकर जीवन से हताश व निराश हो जाते हैं। देख, तुझे यह जीवन उदास रहने के लिये एवं जीवन से हताश होने के लिये नहीं मिला है, आनन्द के लिये मिला है किन्तु तू आनन्द पायेगा तभी जब उसे जानेगा जो सदा तेरे साथ है। उसका साथ तेरे एकांकी जीवन को सरस बना देगा, इतना ही नहीं, तुझे वह भाव देगा जिसके सम्मुख कमजोर भाव टिक नहीं सकेंगे। अतः तू हिम्मत न हार, आज भी उसकी आशा कर जो सदा तेरे पास है कि तेरी दुनिया बदल जाये, तू आनन्द से रहने का गुर पा जाये।

९५७ मच्छर यदि काटे तो मशहरी लगा। हरि समीप फिर चिन्ता क्यों?

ऐ प्राणी! विचार भावों के आवागमन से दुःखी वे ही रहते हैं जिन्होंने हरि को जाना नहीं तथा शान्ति के दरशन पाये नहीं। जिन्होंने ईश्वर को सदा साथ पाया है शान्ति हमेशा उनके समीप निवास करती है और जहाँ शान्ति विराजमान है वहाँ कोई भी भाव-विचार हठात् आक्रमण नहीं कर पाते। देख, मच्छर का स्वभाव काटना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य भी मच्छर की तरह हैं जो अनायास ही चले आते हैं किन्तु जो इनसे होने वाले भयंकर परिणाम को जानते हैं वे इन्हें प्रश्रय नहीं देते, वे शान्त रहकर विचार करते हैं तथा उन भावों का आवाहन करते हैं जिनके आगमन से हरियाली आती है। अतः तूने यदि हरि की शरण पाई है तो तू चिन्तित न

हो, तू शान्त हो कि सभी आते जाते भावों को तू देख पाये और उनके दुष्परिणाम से बच जाये।

९५८ तू नाम ले प्यार से, यदि दुनिया तुझ पर वार न दूँ तो परम पिता नहीं।

ऐ प्राणी! किसी से भी परिचय के पूर्व यदि उसकी वस्तु पर अधिकार जमा लिया जाये तो व्यक्ति उसका आनन्द नहीं ले सकता क्योंकि वहाँ मूल में ही भूल है—वह वस्तु उसकी है ही नहीं। उसका आनन्द उसे तभी मिल सकता है जब वह उसे सही तरीके से पाये अर्थात् वह उसके मालिक से मिले। देख, इस संसार की भी यही बात है। यह संसार ईश्वर का बगीचा है। इस बगीचे का आनन्द उन्हें ही मिलता है जो ईश्वर से प्यार करते हैं। ईश्वर जिनका अपना बन जाता है उन्हें ईश्वर का सब कुछ मिल जाता है। वह कहता है—तू तेरे चारों ओर जितना भी पसारा देख पाता है वह सारा का सारा मेरा है। जिस दिन तुझे मुझसे प्यार हो जायेगा अर्थात् जब तू मेरा होगा तब मेरा सर्वस्व तेरा होगा क्योंकि मेरा सब कुछ मेरे प्यारों के लिये ही है—अन्य आयें और जायें, वे यहाँ कुछ भी नहीं पा सकेंगे।

९५९ भक्तों को मैंने प्राणों में बसाया, और? औरों की बात और जानें।

ऐ प्राणी! भक्त मेरे प्राण हैं, भक्तों के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। कोई मुझे कुछ भी कहता रहे उसकी मुझे चिन्ता नहीं किन्तु मेरे भक्त को यदि दो बातें सुनाये तो वह मेरे लिये असहनीय है। भक्त मेरे सर्वस्व हैं, मैं उनसे ही शोभता हूँ और उनके समीप ही वास करता हूँ। देख, यों तो मैं सर्वत्र हूँ किन्तु सर्वत्र होते हुए भी दिखलाई नहीं पड़ता क्योंकि केवल भक्त ही मुझे देखने के इच्छुक रहते हैं, अन्य मुझे भुलाकर स्थूल में ही रमण करते हैं अतः मैं उनके समीप रहता हुआ भी उनसे दूर ही बना रहता हूँ। भक्त को स्थूल प्रलोभन अपनी ओर नहीं खींचते, वे मुझे ही पाना चाहते हैं और मेरी ओर ही देखते रहते हैं—ऐसे भक्त मेरे प्राणों में स्थान पाते हैं, बड़ी से बड़ी ताकत भी उनको मुझसे जुदा नहीं कर सकती।

९६० पति हूँ संत का सती का। अन्य माला फेरें, तिलक लगायें, नमाज पढ़ें, रोजा रखें, यही बहुत है उनके लिये।

ऐ प्राणी! संत मेरे ही प्रतिरूप होते हैं, मैं उनके रोम-रोम में रमा रहता

हूँ। उनका हिलना, डुलना, चलना, यहाँ तक कि श्वाँस लेना भी मेरे साथ होते हैं, मुझसे अलग उनका कोई अस्तित्व ही नहीं होता। संत के भावों पर समर्पित होने वाली सती की भी यही बात है। वह पूर्णतया संत के चरणों पर न्योछावर हो जाती है, संत उसके श्वासों-प्राणों में बसा उसे भाव प्रदान करता रहता है। देख, ऐसे संत और सती का मैं पति हूँ, उनकी पत मेरी पत होती है। अन्य जन मेरे नाम पर बहुत कुछ करके भी मुझसे दूर ही बने रहते हैं। वे माला फेरते हैं किन्तु माला पहना कर मुझे ही अपना मानने की भूल नहीं करते, मस्तक पर तिलक लगाते हैं किन्तु पूर्णतया चरणों पर झुक नहीं पाते, नमाज पढ़ते हैं किन्तु नम्रता को नहीं अपनाते, रोजा रखते हैं किन्तु रोज मुझे सम्मुख देखना नहीं चाहते—वे मेरे नाम पर कुछ कर्म करके ही खुश हो जाते हैं, मुझे नहीं पा सकते।

९६१ मौत एक बार किन्तु यह दुनिया सौत तो बार-बार डराती, पाप पुण्य का भय दिखाती। प्रिय का मिलन कैसे हो? मौत सौत की एक न सुन। दिल मेरा तो मौत कहाँ, सौत की चाल कहाँ?

जीवन में मौत एक बार आती है किन्तु पाप पुण्य का भय प्राणी को हर समय घेरे रहता है। यह दुनिया का खेल कुछ ऐसा ही है कि यहाँ आकर प्राणी संस्कारों के कारण पाप पुण्य से इतना अधिक बद्ध हो जाता है कि एक मिनट भी उनसे अलग नहीं हो पाता। ऐसे में ईश्वर मिलन की बातें उसके लिये बातें ही बनकर रह जाती हैं। ऐ प्राणी! जो मेरे हैं वे मेरी ओर ही देखते हैं—न वे मौत की ओर देखते हैं और न दुनिया की ओर, न उन्हें मृत्यु का भय छू सकता है और न पाप पुण्य की बातें बहका सकती हैं—वे मेरी ओर देखते हुए अनवरत आगे बढ़ते जाते हैं। वे जब तक यहाँ रहते हैं तब तक भी आनन्द से रहते हैं और एक दिन जब यहाँ से लौटकर जाते हैं तब मुझमें ही समा जाते हैं।

९६२ क्या बहना ही जीवन है? हाँ, यदि आँखों से बहे, प्रेमी के संयोग के लिये।

ऐ प्राणी! प्रेम ही जीवन है। प्रेम को पाकर व्यक्ति के हृदय में बहाव शुरू हो जाता है और बहते-बहते एक दिन वह प्रेमास्पद प्रभु से मिल पाता है।

जब तक प्रेम का प्रवाह हृदय में शुरू नहीं होता एवं प्रेमास्पद प्रभु को पाने के लिये हृदय तड़प नहीं जाता तब तक प्रिय का मिलन सम्भव नहीं। ऐसे में व्यक्ति बहक जाता है, उसका बहाव विषयों की ओर हो जाता है—उसका यह बहना बहना नहीं होता, वह तो उसे ले डूबता है। अतः तू प्रेम पाने के लिये उन प्रेमियों का सामीप्य ग्रहण कर जिन्होंने जीवन का सर्वस्व प्रिय प्रभु को ही जाना है। उनका साथ तेरे सोये प्रेम को जगा देगा और तू प्रेम के दरशन कर पायेगा। जब तेरा हृदय उसे पाने के लिये तड़प उठेगा और तेरी आँखों में आँसू प्रेम के होंगे तब प्रियतम प्रभु तुझसे दूर नहीं रह पायेगा वह तेरे आधीन हो जायेगा क्योंकि केवल प्रेमी ही उसका सामीप्य नहीं चाहते, वह भी प्रेमी भक्तों के सामीप्य के लिये तरसता रहता है।

९६३ लोग कहते हैं कि तू भ्रष्ट है, पापी है। नहीं, आज का भ्रष्ट ही कल श्रेष्ठ बनेगा, जब पायेगा, पीयेगा।

ऐ प्राणी! दुनिया हमेशा अवगुण दिखाती है। यदि किसी में नौ गुण हैं और एक अवगुण है तो भी वह गुण को नहीं देखती उस एक अवगुण को ही देखती है। यही कारण है कि दुनिया में यही कहते सुना जाता है कि—तू भ्रष्ट है, पापी है तुझे ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है? किन्तु ईश्वर के प्यारों की दुनिया अनोखी होती है, वे गुण अवगुण नहीं देखते, हृदय देखते हैं। वे कहते हैं—तू बुरा नहीं, तू अनुपम शक्ति का स्वामी है किन्तु अपनी शक्ति से अनजान है। जब तू प्रभु के प्यारों का साथ पा जायेगा तथा प्रभु प्रेम रस का पान करेगा तब तेरी शक्ति उभरती चली जायेगी, तब वे भाव जो तुझमें हीनता भरने वाले हैं विदा हो जायेंगे और तू श्रेष्ठ भावों से सुसज्जित होगा।

९६४ प्राणी! वाणी तेरी शान, यदि सका पहचान।

ऐ प्राणी! वाणी की शक्ति अद्भुत होती है, यह सोये प्राणी में चेतना भर देती है। ईश्वर से विमुख होने के कारण व्यक्ति जीते जी ही मृतक तुल्य हो रहा है—उसे यह वाणी ही जीवन प्रदान करती है। देख, तुझे यह धन मुफ्त में ही मिला हुआ है। यह धन तेरा अपना है फिर भी तू इससे अनजान है। स्वार्थ ने तेरी आँखें बन्द कर दी हैं इसीलिये तू इसकी महत्ता को भूल बैठा है और इसका दुरुपयोग करता रहता है। जिस दिन स्वार्थ की पट्टी तेरी आँखों पर से हट जायेगी और प्रेम का जागरण तेरे हृदय में होगा उस दिन तू

वाणी की कीमत जान पायेगा। उस दिन तेरी वाणी वदल जायेगी—वह तुझे भी आनन्द देती रहेगी तथा सबको भी प्रमुदित करती रहेगी। यथार्थ में वाणी की महत्ता तू उसी दिन जान पायेगा।

९६५ पैसे पैसे का मुँहताज न बना। बड़ा पागल है मैं तो तेरे सर पर प्यार का ताज देखना चाहता हूँ और तू मुँहताज बना घूम रहा है।

ऐ प्राणी! जो ईश्वर भक्त हैं ईश्वर उन्हें उन भावों से सजाता है जिसे पाने के लिये राजा-महाराजा भी तरसते हैं अर्थात् ईश्वर अपने प्यारों को राजाओं का भी राजा बना देता है। देख, ऐसे भक्तों के जीवन काल में भी कभी-कभी अर्थाभाव देखा जाता है किन्तु उनका यह अर्थाभाव स्थायी नहीं रहता, समय विशेष के लिये रहता है। वह प्रभु जो उनके श्वासों प्राणों में रमा है तब उन्हें प्रेरणा देता है कि—बाहरी परिस्थितियों को देखकर तू कभी ऐसा न समझ बैठना कि मैं तुझे सता रहा हूँ, मैं तो तेरे करीब आ रहा हूँ। मैं तो देख रहा हूँ कि तू मेरा ही है न, तू परिस्थितियों का दास तो नहीं? जो सभी परिस्थितियों में मुझे देख पाते हैं वे ही मेरे अनन्य भक्त हैं, वे ही मेरे करीब आते हैं और उन्हें ही मैं प्यार का ताज पहनाता हूँ।

९६६ दुनिया कहती है पैसे का काम तो पैसे से होता है। भला, बता तो सही तुझे दुनिया से काम है या पैसे से या मुझसे? यदि मुझसे? तो मुझ पर छोड़। पैसे की बात क्यों?

ऐ प्राणी! जो भक्ति करते हैं वे निश्चिन्त रहते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। चिन्ता करने के लिये दुनिया में और बहुत लोग हैं, वे यही कहते पाये जाते हैं कि—केवल भक्ति से पेट नहीं भरता, पैसे का काम तो पैसे से ही होता है। उन्हें मालूम नहीं कि भक्ति बेकार नहीं बनाती, वह तो काम का बनाती है। भक्ति आँखें खोल देती है और व्यक्ति देख पाता है कि हाथ केवल निमित्त हैं देने वाला एक ईश्वर है अतः वह केवल कार्य करता है, चिन्ता नहीं करता। ऐसा जन न दुनिया की बातों पर कान देता है और न पैसों की ओर देखता है वह देखता है केवल ईश्वर की ओर जिसने सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया है तथा जो हमेशा सबकी देखभाल कर रहा है—ऐसा भक्त ही भक्ति का आनन्द ले पाता है। अन्य जन भक्ति के

नाम पर बहुत कुछ करके भी धन-जन के मोहताज होते हैं, भक्ति का आनन्द नहीं ले पाते।

९६७ लोग कहते हैं तेरा भक्त दुरदुराया जाता है। हाँ, रे, हाँ, तभी तो मेरा, मेरे पास आता है।

ऐ प्राणी ! लोग कहते हैं कि ईश्वर भक्त को दुनिया से लांछित होना पड़ता है, दुनियावाले उसे दुरदुराते हैं। देख, उन्हें मालूम नहीं कि मेरे भक्त के लिये दुनिया प्रधान नहीं रहती, मैं प्रधान रहता हूँ और चूँकि दुनिया प्रधान नहीं रहती अतः दुनिया वाले उसके लिये क्या कहते हैं इसकी ओर भी उसका ध्यान नहीं रहता, वह सदा मेरी ओर देखता हुआ मेरे समीप बढ़ता जाता है। यदि वह दुनिया की ओर देखने लगे तो मेरे समीप आयेगा ही कैसे ? तब तो वह दुनिया के ही विभिन्न रूपों को देखता रहेगा और उन्हीं पर मोहित हुआ कष्ट पाता रहेगा। अतः तू इस दुरदुराने के रहस्य को जान कि तू इससे प्रेरणा पाता रहे, यह तेरे लिये मेरे द्वारा दिया हुआ आशीर्वाद बन जाये अन्यथा तू एक कदम भी मेरे लिये नहीं बढ़ा सकेगा।

९६८ यह माया ? दुनिया के लिये। यह काया ? तेरे लिये। तेरी काया मेरे लिये ? हाँ, तू अपनी काया की चिंता न कर।

ऐ प्राणी ! यह माया उन्हें ही लुभाती है जिन्होंने ईश्वर की शरण नहीं पायी है। जिन्होंने ईश्वर को ही अपना सर्वस्व जाना है वे ईश्वर भक्त न काया की चिन्ता करते हैं और न माया को पकड़ने की चेष्टा करते हैं। वे कहते हैं—यह काया मेरी नहीं तेरी है, तू चाहे जैसे इसे व्यवहृत कर। इसके द्वारा कुछ भी होते देख कर नाम मुझे दिया जा सकता है किन्तु वह काम मेरा नहीं, तेरा है—कोई इसे जाने या न जाने किन्तु जो तेरा है वह इसे सदा जानेगा। ऐसे अनन्य भक्त की चिन्ता ईश्वर करता है, उसे अपनी चिन्ता स्वयं नहीं करनी पड़ती वह तो प्रिय की गोद में बैठा प्रिय के कार्यों को देखते हुए मौज मनाता है।

९६९ प्यार क्यों चाहता है ? वासना से मुक्त करने के लिए।

ऐ प्राणी ! प्यार हृदय का उल्लास है और वासना तो वह अतृप्त आकांक्षा है जो कुछ भी पाकर तृप्त नहीं होती, और अधिक पाने की माला फेरती रहती

है। देख, इस वासना से छुटकारा सहज में ही नहीं पाया जा सकता, जोर-जबर्दस्ती करके केवल बाहर से इसका बाना अपनाया जा सकता है। इससे पूर्णतया निवृत होना तब तक संभव नहीं जब तक कि हृदय में प्रेम का जागरण न हो जाये। प्यार ही वह राह है जिसका पथिक वासना से मुक्त होता है और संयुक्त होता है उस सत्य सत्ता से जो विश्व के कण-कण में व्याप्त है। सत्य दृष्टि पाने के पश्चात् वे विषय जो केवल लेते ही लेते हैं देते कुछ भी नहीं—व्यक्ति को नहीं भाते, वह उन्हीं भावों का उपासक होता है जिनसे उसका हृदय उल्लसित होता रहे।

९७० इसी मिट्टी पर सोना ही सोना बरसाऊँ। तू सो ना।

ऐ प्राणी! जिस मिट्टी (पृथ्वी) पर तू बैठा है वह साधारण नहीं, यहाँ आनन्द ही आनन्द है किन्तु तू इसकी महिमा से अनजान है। तू यहाँ आकर मोह, ममता, स्वार्थपरता आदि भावों से घिरता जा रहा है और इन्हें अपनाकर दिन व दिन छोटा होता जा रहा है। संकुचित भावों से घिर जाने के कारण तेरी आँखें बन्द होती जा रही हैं और यही कारण है कि आनन्दमयी सृष्टि में बैठकर भी तू रो रहा है। देख, अब भी समय है, आज भी तू यदि सचेत हो जाये और आने के कारण को जानना चाहे तो तेरी दुनिया बदल जाये। तब तू देख पाये कि जिस मिट्टी पर बैठा तू आज तक रो रहा था वह तेरी अज्ञानता थी, यहाँ तो प्रत्येक क्षण सोना ही सोना (आनन्द) बरस रहा है। देख, यहाँ की प्रत्येक चीजों को अपना बनाने की भावना ने ही तुझे रुलाया है, जिस दिन तू उन्हें ईश्वर की देख पायेगा उस दिन तेरे लिये सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखर जायेगा।

९७१ आखिर मिट्टी पर सोना है, इन बातों से क्या होना है? सोना है, मिट्टी में सोना है, मिट्टी पर सोना है किन्तु इन बातों से क्या होना है? किसी का होना है नहीं तो यह सोना भी मिट्टी ही होना है।

ऐ प्राणी! इस पृथ्वी पर आते ही तू यदि जाने को याद करने लगेगा तो जीवन से उदासीन हो जायेगा, यहाँ रहने का आनन्द नहीं ले सकेगा और यदि तू यहाँ धन-द्रव्य एकत्रित करने में लग जायेगा तब भी इसके आनन्द से वंचित ही रह जायेगा। अतः तू यहाँ उदासीन होकर भी न रह और न शरीर को

प्रधान जानकर केवल धन-द्रव्य के संग्रह में संलग्न हुआ जीवन यापन कर, तू इस संसार व शरीर के रचयिता की ओर देखकर चल कि शरीर व संसार की उपयोगिता जान पाये और इनका आनन्द ले पाये। अन्यथा न यह शरीर तेरे काम आयेगा और न संसार से एकत्रित किया हुआ धन-द्रव्य ही तेरे काम आयेगा—तेरा सोने से भी कीमती जीवन यूँ ही मिट्टी में मिल जायेगा।

९७२ एक का डंका बजा। फिर धर्म कर्म सब एक के लिये।

ऐ प्राणी! जिस दिन एक ईश्वर को तू कर्त्ता देख पायेगा उस दिन तेरा शरीर भी यही रहेगा तथा संसार भी यही रहेगा किन्तु भाव बदलने के कारण तेरी दुनिया बदल जायेगी। तब तुझे सोचना नहीं होगा कि "मैं कौन सा ऐसा कर्म अपनाऊँ जो मुझे ईश्वर की ओर ले जाये और कौन सा ऐसा धर्म करूँ जो एक ईश्वर का पता बताये" तू स्वतः सत्य धर्म को पा जायेगा तथा तेरे प्रत्येक कार्य एक सत्य के लिये होने लगेंगे। तब तेरी दुनिया अनोखी होगी, तू पृथ्वी पर बैठा हुआ भी पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से ऊपर उठा होगा जैसे कीचड़ में कमल—तभी तू सही मायने में जीवन का आनन्द पायेगा।

९७३ मैं नंगा हूँ, भूखा हूँ। तू चंगा है, नंगा नहीं, प्रेम की गंगा है, गंदा नाला नहीं। भूखा है प्रेम का तो यह भूख तो भगवान को भी सताती है। प्रेम में न कोई नंगा है और न कोई भूखा।

ऐ प्राणी! ईश्वर को भूल जाने के कारण तू अभाव से घिर गया है, अब तुझे जो कुछ भी मिलता है वह तुझे कम लगता है। देख, तुझमें तो वह शक्ति है जो धन ऐश्वर्य में नहीं एवं तुझमें वह प्रेम प्रवाह है जो अन्य किसी भी प्राणी में नहीं किन्तु तू अपनी शक्ति को तथा अपने रूप को भूल बैठा है इसीलिये स्वयं को दीन-हीन (गन्दा) समझता है। देख, तुझमें जो भूख विद्यमान है वह वस्तु के लिए दिखलाई पड़ती है किन्तु वह वस्तु के लिये नहीं प्रेम के लिये है—यह भूख ही तेरे सोये प्रेम को जगायेगी। प्रेम की भूख तो भगवान को भी सताती है अतः तू परेशान न हो, तू अपने अन्तर में बहते प्रेम प्रवाह को देख कि अभाव तेरे समीप न फटके और प्रेम को हृदय में धारण करके तू निर्द्वन्द विचरण कर पाये।

९७४ प्रेम को प्रकाश में न ला, लोग वासना कहेंगे। प्रेम स्वयं प्रकाशमय है।

ऐ प्राणी ! प्रेम दिखलाने की वस्तु नहीं, प्रेम स्वयं प्रकाशमान है—यह छुपाये भी छुपता नहीं। देख, तू यदि प्रेम को दिखाने चलेगा तो प्रेम को कोई नहीं देख पायेगा क्योंकि प्रेम स्थूल आँखों से नहीं देखा जा सकता, यह भाव की आँखों से दिखलायी पड़ता है। जहाँ भाव की जागृति है एवं प्यार की प्यास है वहाँ प्रेम छुपता नहीं स्वतः जाज्वल्यमान हो उठता है। किन्तु जिनके लिये स्थूल प्रधान है एवं जो शरीर के पीछे ही परेशान हैं वे प्रेम को वासना का ही नाम देते हैं क्योंकि वे स्वयं वासना के भूखे हैं। अतः तूने यदि प्रेम पाया है तो तू प्रेम का प्रचार न कर, तू तल्लीन हुआ प्रियतम प्रभु की ओर बढ़ता चल। तब तेरा प्रेम एक दिन अवश्य रंग लायेगा, वह प्रेम के पिपासुओं से छिप नहीं पायेगा क्योंकि प्रेम ऐसा ही होता है।

९७५ मुरझाये हुए फूल को कौन खिला सकता है? तेरी दया। नहीं तेरा प्यार। प्यार अमर बनाता है प्राणी को। मुरझाया वियोग में, खिला संयोग में। प्राणों का योग, महायोग और तो सब भोग ही भोग है।

ऐ प्राणी ! दया दूसरों पर की जाती है अपनों पर नहीं, अपनों पर तो प्यार आता है। देख, ईश्वर तेरा अपना है, वह किसी पर दया नहीं करता सब पर अपना प्रेम लुटाता है, उसका प्यार पाकर ही मुरझाया हृदय खिलता है। जब तक उसका प्यार नहीं मिलता तब तक चाहे सम्पूर्ण संसार का ऐश्वर्य भोग कदमों में बिछ जाये तब भी हृदय नहीं खिलता क्योंकि हृदय का प्रस्फुटन प्यार से ही सम्भव है। प्यार अमर बनाता है, प्यार पाकर जन्म-जन्मान्तर के बन्धन कट जाते हैं। अतः जो तेरा है तू उसे पहिचान कि तू प्यार की दौलत पा जाये—उसके वियोग से ही तू मुरझा गया था और उसे पाकर ही पुनः खिल सकेगा। जब तेरा प्रिय से योग होगा और उसका पूर्ण प्यार पाने के लिये तेरा हृदय छटपटायेगा तब प्रिय तेरे प्राणों में प्रतिष्ठित हो जायेगा अर्थात प्रिय प्रभु से तेरा महायोग होगा। अन्यथा ईश्वर से वियोग रहने के कारण तू स्थूल के पीछे ही दौड़ता भागता रहेगा।

९७६ जो राम में रमा उसी का जीवन सफल और तो यों ही आते यों ही जाते।

ऐ प्राणी ! राम सबके हृदय में रमण कर रहा है किन्तु राम में कोई-कोई ही रमण करते हैं। जो राम में रमण करते हैं उन्हीं का जीवन सफल होता है. क्योंकि वे ही राम की सच्ची अनुभूति पाते हैं। अन्य जन के साथ भी राम रहता तो है किन्तु न वे राम को देख पाते हैं और न राम के साथ से होने वाले आनन्द को ही अनुभव कर पाते हैं। वे राम से विमुख हुए स्थूल जगत को ही सत्य मान बैठते हैं तथा उसे ही अधिक से अधिक पाने की चेष्टा में लगे हुए जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जाते हैं। देख, राम का साथ नयी दृष्टि प्रदान करता है, उसके साथ से जीवन व जगत दोनों सुनहले बन जाते हैं—जो इस रहस्य को नहीं जानते वे इस संसार में रोते-रोते ही आते हैं और रोते-रोते ही चले जाते हैं।

९७७ भगवान ने प्यार लुटाया, मनुष्य ने व्यवहार से वासना बनाया। नये वस्त्र मलिन हो गए। अब साहस नहीं कि माता के सम्मुख होकर कहे—वस्त्र गन्दे हैं, मैं नहीं—मैं तो तेरा हूँ।

ऐ प्राणी ! तू आँखों के चातुर्दिक जो कुछ भी अपना देख पाता है वह सब का सब ईश्वर का दिया हुआ है। ईश्वर का प्यार अज्ञात रूप से सदा तेरे साथ है किन्तु न तू ईश्वर को जानता है और न उसके प्यार को ही देख पाता है। देख, गर्भकाल से आज तक उसका प्यार किसी न किसी रूप में सदा तेरे समक्ष रहा है और सदा बना रहेगा किन्तु तूने कभी उसकी कीमत नहीं की। तूने उसके प्यार को केवल उपभोग का साधन माना अर्थात् उसे शरीर रक्षा का साधन बनाया परिणाम तेरे हृदय की मधुरिमा खत्म होने लगी। स्थूल में विचरण करते-करते तू स्थूल का इतना दास हो गया कि तुझमें आज इतनी शक्ति भी नहीं रही कि तू उसके सम्मुख मुख करके खड़ा हो सके और कह सके कि "मैं तेरा हूँ, स्थूल प्रलोभनों ने मुझे तुझसे विमुख कर दिया था और उनके आकर्षण में बँधा मैं तुझे भूल बैठा था। समय विशेष के लिये मेरे विचार गन्दे हो गये थे किन्तु आज मैं पुनः तेरी शरण हूँ"। जब दीन-हीन बनकर तू उसके समीप जायेगा तब वह तुझे स्वीकार लेगा, इतना ही नहीं, वह तुझे अपने गले लगायेगा।

९७८ बार-बार दर दर क्यों भटकता है? सद्गुरु के दरबार में जा वे तुझे प्रेम के सिंहासन पर बैठायेंगे। भटकना छूटेगा, शान्ति मिलेगी।

ऐ प्राणी! प्रेम पाने के लिये तू इधर-उधर न भटक क्योंकि प्रेम के लिये तू जिनके समीप जाता है वे स्वयं प्रेम के भूखे हैं। देख, तुझे यदि प्रेम चाहिये तो तू सद्गुरु के दरबार में जा, उनके समीप तू सच्चे प्रेम के दरशन कर पायेगा। वे तुझे केवल प्रेम देंगे ही नहीं तेरा सोया प्रेम जगा देंगे। प्रेम के जागरण के पश्चात् तुझे प्रेम पाने के लिये भटकना नहीं होगा, तू जहाँ बैठेगा वहीं प्रेम के साथ बैठेगा। तब शान्ति तेरी चिर साथिन होगी, वह तुझे छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने का नाम भी न लेगी क्योंकि शान्ति को केवल प्रेमी ही प्रश्रय देते हैं। अन्य जन शान्ति की बातें करते हैं किन्तु उन्हें प्रिय अशान्ति ही रहती है।

९७९ प्रथम खोजा, फिर खोदा, फिर सोधा, तब हुआ सौदा।

ऐ प्राणी! सद्गुरु के दरशन व्यक्ति के दरशन नहीं, सद्गुरु के दरशन भाव की मूर्त्ति के दरशन हैं। उनके समीप बैठकर शरीर का ध्यान नहीं रहता, हृदय में भाव की जागृति होने लगती है। देख, जब तू ऐसे सद्गुरु के दरशन पा जायेगा तब तुझमें सत्य को जानने की जिज्ञासा पैदा हो जायेगी। यह लालसा तुझमें जितनी तीव्र होगी उतना ही तू सत्य पथ पर बढ़ता जायेगा। 'इस दृश्य जगत में सत्य क्या है और असत्य क्या है' यह रहस्य तेरे सम्मुख तभी स्पष्ट होगा। तू देख पायेगा कि "यह सारा स्थूल पसारा एक सत्य पर टिका हुआ है, इसे ठहराने वाली सत्ता ही अविनाशी है और दिखलाई पड़ने वाला यह संसार विनाशी है। यह संसार उस सत्ता के साथ से ही शोभता है अन्यथा इसका कोई अस्तित्व नहीं।" जब तू ऐसी सत्य दृष्टि पा जायेगा तब यह संसार तेरे लिये कष्टदायी नहीं होगा, आनन्द का उद्यान होगा और तू इसमें बैठा आनन्द पाता रहेगा।

९८० वस्तुओं में भटकते हुए को देखकर प्राणों के प्रिय ने कहा— न भटक मुझे कष्ट होता है।

ऐ प्राणी! तेरे हृदय में जो कष्ट तू देख पाता है वह मूल से भटक जाने के कारण है। देख, यह संसार ईश्वर के साथ से ही शोभता है एवं आनन्द

देता है और तू है कि ईश्वर को ही भूल कर वस्तुओं के साथ खेलता है। अरे पगले! ईश्वर से विमुख होकर तू चाहे कुछ भी पा ले तब भी तू शान्त होने वाला नहीं क्योंकि जिनके पीछे तू भाग रहा है उनमें शान्ति है ही नहीं। तेरे भटक जाने से केवल तू ही कष्ट नहीं पा रहा है तू जिसका है तेरा वह प्रिय भी कष्ट पा रहा है क्योंकि उसने तुझे आनन्द मनाने के लिए यहाँ भेजा था, कष्ट पाने के लिये नहीं। अतः तू मूल पर आ अर्थात् ईश्वर तेरा अपना है इस सत्य को जान कि यह विश्व तू उसी का देख पाये, उसे भुलाकर तू यहाँ की किसी एक वस्तु पर भी अपना अधिकार न जताये।

९८१ अटक थी नहीं, भटक थी। भटक दूर अटक दूर।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी कुछ अटके हुए से नजर आते हैं—कोई घर-परिवार में, कोई धन-जन में, कोई मान-सम्मान में—किन्तु यथार्थ में वे अटके हुए नहीं हैं, वे भटक गये हैं। उनकी खोज रस है और चूँकि उन्हें मालूम नहीं कि रस कहाँ है अतः वे भ्रमवश इन्हीं के पीछे दौड़ रहे हैं। वे जब एक जगह रस नहीं पाते तब रस को पाने का दूसरा रास्ता अपनाते हैं, यदि उसमें भी सफलता नहीं मिलती तो तीसरा अपनाते हैं। उनकी यह दौड़ (भटक) तब तक खत्म नहीं होती जब तक कि वे रस पा नहीं जाते। ऐ प्राणी! तू जहाँ दौड़ रहा है यथार्थ में वहाँ रस है ही नहीं। देख, रस का उद्गम रसेश्वर प्रभु है, रस उसी के चरणों में है। उसे भुलाकर केवल रस का भ्रम है, रस नहीं। अतः तू अपना रास्ता बदल डाल अर्थात् तू दुनिया के पीछे न दौड़ दुनिया बनाने वाले के चरणों पर झुक जा कि तू रस पा कर तृप्त हो जाये। तब तेरा भटकना भी बन्द हो जायेगा और तेरी अटक भी नहीं रहेगी, तू आनन्द कन्द प्रभु के चरणों में झुका आनन्द पाता रहेगा।

९८२ पतझड़ में बसन्त देखा और बसन्त में सावन की रिमझिम किन्तु पूर्व इसके झुलसाने वाली गर्मी। प्रकृति से भी शिक्षा लेता तो सन्तोष होता।

ऐ प्राणी! जिस पेड़ में पतझड़ के समय एक भी पत्ता नहीं रहता वही पेड़ बसन्त में पत्तों से लद जाता है, हरा-भरा हो जाता है। बसन्त प्रकृति को हरियाली प्रदान करता है और सावन उसे रिमझिम वर्षा का आनन्द देता है किन्तु वर्षा का आनन्द पाने के पूर्व प्रकृति को तड़पना पड़ता है। अतः तू खुश्क-शुष्क रहकर जीवन व्यतीत न कर, तू प्रकृति से शिक्षा ग्रहण कर कि

तू हरा भरा हो जाये। जब तू जीवन से हताश-निराश नहीं होगा तब उन भावों को अवश्य पा जायेगा जो तुझे हरियाली (प्रसन्नता) प्रदान करने वाले हैं, इतना ही नहीं, यदि तेरे हृदय में सच्ची तड़पन होगी तो तू उन भावों को भी पा जायेगा जो आनन्द की वर्षा करने वाले हैं। तेरी चाह ही तुझे सत्य मंजिल तक पहुँचायेगी अन्यथा तू भाग्य को कोसता हुआ कोरा का कोरा ही रह जायेगा।

९८३ पदार्थ में भी पद का भाव रहा, अर्थ हृदयंगम हुआ। पदार्थ पद पर रहा। अर्थ कोई कुछ भी लगाये।

ऐ प्राणी! जब ईश्वर प्रधान रहता है तब बड़े से बड़े प्रलोभन भी व्यक्ति को नहीं डिगा सकते। तब वह धन-जन, मान-सम्मान आदि किसी को भी पाकर गुमराह नहीं होता, जो कुछ भी पाता है उसे ईश्वर का दिया प्रसाद समझ कर ग्रहण करता है। ऐसा व्यक्ति ही मिले हुए पदार्थों का अर्थ हृदयंगम कर पाता है अर्थात् उनकी उपादेयता को जान पाता है तथा उनका सही व्यवहार कर पाता है। अन्य जन थोड़ा सा पाकर ही बहुत इतराते हैं और अपने समान किसी को नहीं समझते। ईश्वर भक्त बहुत कुछ पाने के पश्चात् भी चरणों पर झुका रहता है, पदार्थ उसके लिये प्रधान नहीं होते केवल साधन रहते हैं। ऐसे साधक को धन जन के साथ देखकर कोई कुछ भी अर्थ लगा सकता है किन्तु उन्हें मालूम नहीं कि ऐसा साधक ही जीवन पाने का लाभ उठाता है और प्रत्येक पदार्थ के मर्म को सही रूप से जान पाता है।

९८४ ध्यान वाला भी मान का भूखा? तो मन शैतान? ध्यान में मान, अभिमान की चर्चा व्यर्थ। शान है तो उसकी है और मैं यदि उसका हूँ तो मेरी भी।

ऐ प्राणी! वह ईश्वर भक्त जो ईश्वर के ध्यान में ही जीवन बिताना चाहता है यदि उसमें भी मान पाने की भूख है तो यही कहना होगा कि अभी उसका मन शैतान है। देख, ईश्वर भक्त पूर्णतया प्रभु चरणों में झुका रहता है, ईश्वर से अलग उसका अपना कुछ भी नहीं होता। उसके पास न मान के लिये स्थान रहता है और न अभिमान करने के लिये कुछ रहता है—उसके पास जो कुछ भी होता है वह ईश्वर का होता है। यदि उसके भावों से किसी को कुछ मिलता भी है तो यह शान उसकी (भक्त की) नहीं होती, उसकी रहती है जिसका वह है और चूँकि वह उसका है इसीलिये उसकी भी है। ऐसा

भक्त ही भक्ति का आनन्द पाता है। अन्य जन भक्ति करके भी मन के कारण परेशान बने रहते हैं।

९८५ श्रवण से सुना श्रावण आया। प्रकृति हरी हो गई। तू क्यों सूखा? भीतर हरि नहीं, तरी नहीं।

ऐ प्राणी! जो हरि के रहते हैं तरी उनमें ही पायी जाती है। चूँकि उनके अन्तर में तरी रहती है इसलिए वे जो भी बातें सुनते हैं उन्हें सुनकर तर हो जाते हैं—कर्ण द्वार से वे बातें उनके हृदय द्वार में पहुँच जाती हैं तथा हृदय पटल पर रस का वर्षण करने लगती हैं। उन्हें जो बातें भाती हैं वे अन्य को उस रूप में नहीं लुभातीं क्योंकि उन्होंने अभी हरि को जाना नहीं, उसके कार्यों को पहचाना नहीं। देख, ईश्वर से विमुख रहने के कारण ही तू भी सूखा-सूखा है—ऐसा सूखा जीवन तो जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं होता। अतः तू अपने भीतर बैठे हरि को पहिचान कि तुझमें तरी आये, फिर श्रवण द्वार से तू जो कुछ भी सुनेगा उसे सुनकर तेरे हृदय में भाव का वर्षण होने लगेगा और तू भीतर से बाहर सम्पूर्ण हरा भरा हो जायेगा।

९८६ एक दिन भी चैन की वंशी न बजी, प्रतिदिन वंशीवाले का मंदिर देखा, प्रतिमा पूजी क्या लाभ? अब चैन की वंशी बजा, तू ही वंशीवाला है। बजा अधरों पर सुबह शाम। श्याम की वंशी बजा। तू ही श्याम है।

ऐ प्राणी! ईश्वर मन्दिर में नहीं तेरे दिल में है। तेरा हृदय मन्दिर है जिसमें प्रिय प्रभु की मूर्त्ति विराजमान है और तू है कि उसे मन्दिरों में खोज रहा है और प्रतिमा को ही ईश्वर मानकर उसी की पूजा में लगा है। देख, मन्दिर की मूर्त्तियाँ ईश्वर नहीं, वे तो केवल संकेत देती हैं कि 'ईश्वर' है। अतः तू वंशीवाले को मन्दिर में न ढूँढ़, हृदय मन्दिर में ढूँढ़ कि तू चैन की वंशी बजा पाये। जब तक तू उसे हृदय मन्दिर में नहीं पायेगा तब तक लाख चेष्टाओं के बावजूद एक दिन के लिये भी निश्चिन्त नहीं हो सकेगा, तू हमेशा आगे-पीछे की चिन्ता करता रहेगा। किन्तु यदि सौभाग्य से उसकी एक झलक भी तू पा जायेगा तो वह दिन जल्दी ही आ जायेगा जब तू उसे पूरा-पूरा देखना चाहेगा और पूरा-पूरा देख पायेगा। उस दिन तू निश्चिन्त ही नहीं होगा, तेरे अधरों पर प्रिय का नाम बसा होगा और तुझमें भी वह आकर्षण होगा जो (प्रिय) श्याम में है।

९८७ सच्चिदानन्द भी कहीं दुःख देता है ? यदि ले तो देने वाले को दोष क्यों ? क्यों न सुख चुना ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर का एक नाम सच्चिदानन्द है अर्थात् ईश्वर प्रत्येक चित्त में समाहित हुआ आनन्द का वर्षण कर रहा है फिर भी तू दुःखी है। देख, दुःख देना उसका काम नहीं, दुःख पाना तेरी आदत है। तू किसी भी चीज में सुख लेना तो जानता ही नहीं, अभाव के कारण दुःख ही मानता रहता है। तेरे हृदय में अभाव ने इतना घर बना लिया है कि तू उससे एक मिनट के लिये भी छुटकारा नहीं पाता और यही कारण है कि तुझे यदि सुख मिलता भी है तो तू उसे सुख से ग्रहण नहीं कर पाता। अरे पगले ! सम्पूर्ण विश्व का नियन्ता एक ईश्वर है और तू उसकी सृष्टि में बैठा हुआ कष्ट पा रहा है—तेरी यह अवस्था दयनीय है। तू यहाँ आनन्द नहीं ले पाता तो कम से कम सुख से तो रह किन्तु यह सम्भव तभी होगा जब तेरी दुःख मानने की आदत छूटेगी और तू ईश्वर को ही कर्त्ता देख पायेगा। उस दिन तेरा रास्ता ही बदल जायेगा—तू देख पायेगा कि सच्चिदानन्द प्रभु ही कण-कण में समाया हुआ है, वही तेरा सर्वस्व है।

९८८ आज बहुत खुश हूँ। तू तो खुश ही था खुशी को भूल बैठा, नाखुश हुआ।

ऐ प्राणी ! खुशी तुझे कहीं से लानी नहीं है, खुश रहना तो तेरा स्वभाव है। तू अपने स्वभाव को भूल बैठा है इसीलिये नाखुश रहता है और खुश रहने के लिये तरसता है। अब तू खुशी को कभी वस्तु-व्यक्ति में खोजता है, कभी धन-जन में और कभी मान-सम्मान में। यदि चाह के अनुसार तुझे कुछ मिल भी गया तो तू कुछ देर के लिये ही खुश रहता है, पुनः वैसा का वैसा ही हो जाता है। देख, बाहर से मिली हुई खुशी स्थायी नहीं होगी स्थायी यह तब होगी जब तू अपने स्वभाव को जानेगा। जब तक तेरी वृत्तियाँ बाहर की ओर होंगी तब तक ऐसा सम्भव नहीं हो सकेगा, जब तू भीतर की ओर उन्मुख होगा तभी अपने खोये धन को पा सकेगा। अतः तू वह संग ग्रहण कर जिसे पाकर तेरी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जायें—उस दिन खुश रहना तुझे सीखना नहीं होगा, वह तेरा स्वभाव बन जायेगा।

९८९ प्रिय की प्रार्थना सुनने के योग्य वही जो प्रिय के हों।

ऐ प्राणी ! ईश्वर की बातें वे ही सुन सकते हैं जो ईश्वर के हैं एवं प्रति

मुहूर्त्त ईश्वर की ओर ही निहारते रहते हैं। जो ईश्वर को भुलाकर अन्यत्र भटक रहे हैं वे न यह जानते हैं कि ईश्वर सदा उनके साथ है और न इसे ही जानते हैं कि वह हर कदम पर उन्हें प्रेरणा दे रहा है—वे स्वयं को ही कर्त्ता मानकर कर्त्तापन के बोझ से दबते जाते हैं। ऐसे जन यदि ईश्वर के लिए प्रार्थना भी करते हैं तो उनके मुख में प्रार्थना के शब्द होते हैं किन्तु उनका ध्यान प्रार्थना में नहीं होता अन्यत्र लगा रहता है और यही कारण है कि वे प्रार्थना का प्रतिफल भी नहीं पाते। प्रार्थना में ध्यान उनका ही रहता है अर्थात् प्रार्थना सुनायी उन्हें ही पड़ती है जो प्रिय के हैं—वे प्रार्थना के गीत नहीं गाते, अपने हृदय के उद्‌गार प्रिय के चरणों पर समर्पित करते हैं।

९९० अधिक प्यार है तो बहा दे उसे। अन्य पाकर प्रसन्न, तेरा प्यार सार्थक।

ऐ प्राणी! तूने यदि प्यार की सौगात पाई है तो तू उसे अन्य को भी लुटा दे क्योंकि प्यार बाँटने से घटता नहीं, दिन ब दिन बढ़ता जाता है—प्यार ऐसा ही होता है। यदि तू उसे सहेज कर रख लेगा तो तू स्वार्थी होगा और तब तेरा प्यार प्यार नहीं रह जायेगा। देख, प्यार का धन अनुपम होता है, इसकी तुलना अन्य किसी भी धन से नहीं की जा सकती। यह जिसे भी मिलता है वह निहाल हो जाता है। अतः तू इसे बाँटने में संकोच न कर, निर्भय होकर इसे बाँटता चल कि अन्य भी इसे पाकर प्रसन्न हो जायें और तेरा प्यार पाना भी सार्थक हो जाये। अन्यथा तू प्यार पाने का लाभ नहीं उठा पायेगा, तुझे मिला हुआ प्यार का कीमती धन यूँ ही बेकार हो जायेगा।

९९१ दृश्य अदृश्य जगत उसके लिये जिसने प्रिय को न जाना। सर्वव्यापी के लिये दृश्य अदृश्य कैसा?

ऐ प्राणी! जो सर्वव्यापी प्रभु की व्यापकता को नहीं जानते उनके लिये ईश्वर अदृश्य जगत में कहीं छुपा हुआ है और दृश्य जगत बन्धन का कारण है। उन्हें अभी मालूम नहीं कि यह दृश्य जगत उसी अदृश्य सत्ता के सहारे टिका हुआ है अर्थात् प्रत्येक दृश्य में वह अदृश्य प्रभु विद्यमान है। चूँकि वे अभी इस रहस्य से अनजान हैं इसलिये केवल दृश्य जगत को ही देखते हैं, अदृश्य प्रभु उनके लिये अदृश्य ही बना रहता है। देख, ईश्वर सर्वव्यापी है। दृश्य अदृश्य का भेद मनुष्य के दिमाग की सूझ बूझ है, ईश्वर की नहीं—ईश्वर तो सर्वत्र लहरा रहा है, पत्ता पत्ता भी उसका सन्देश देता है। अतः तू ईश्वर

की कठिन कल्पना न कर, उसे सहज जान कि तू उसे सहजता से सर्वत्र देख पाये अन्यथा ईश्वर की कठिन कल्पना करके तू सदा ईश्वर से दूर ही बना रहेगा।

९९२ विश्वास नहीं होता। विष पान कर, जग में भटकता रहेगा।

ऐ प्राणी! 'अदृश्य प्रभु दृश्य जगत के कण-कण में समाया हुआ है' जब तक तुझे यह विश्वास नहीं होगा तब तक तू ईश्वर के साथ रहते हुए भी ईश्वर से दूर ही बना रहेगा। देख, ईश्वर को भुलाकर यह संसार विष रूप है, यहाँ की प्रत्येक चीजें डसती हैं—व्यक्ति समझता है कि मैं इन्हें भोग रहा हूँ किन्तु यथार्थ में वे वस्तुएँ ही उसे भोगती रहती हैं। वह उन्हें पकड़ने की चेष्टा में उनके पीछे दौड़ता रहता है किन्तु उन्हें कभी पकड़ नहीं पाता। अरे पगले! विश्वास के अभाव में विषय का जहर तेरे रोम-रोम में व्याप्त हो जायेगा और तू उससे कराहता रहेगा। अतः तू पहले ही सचेत हो जा अर्थात् विश्वास रूपी औषधि का पान कर ले कि यह विषय रूपी विष तुझ पर असर न कर पाये, तू विश्वास धन को पाकर आनन्द मनाये।

९९३ है या नहीं, एक निश्चय पर तो आ। विश्वास अमूल्य निधि सब को कहाँ प्राप्त?

ऐ प्राणी! ईश्वर का नाम चूँकि सभी लेते हैं तू भी इसीलिये न ले—ऐसे में तू ईश्वर के नाम का पूर्ण आनन्द नहीं पा सकेगा, तू केवल अन्धेरे में तीर चलाता रहेगा। देख, प्रथम तू 'ईश्वर है या नहीं' इसे जान और जब एक निर्णय पर पहुँच जाये अर्थात् 'ईश्वर है' तुझे यह विश्वास हो जाये तब तू ईश्वर की ओर उन्मुख होना। उस दिन ईश्वर को तुझे अलग से याद करना नहीं होगा, वह सदा तुझे याद रहेगा क्योंकि तब तू सम्पूर्ण दृश्य जगत एक उसी के द्वारा संचालित देख पायेगा। देख, विश्वास यदि एक मनुष्य का भी होता है तो व्यक्ति उसके सहारे कई कार्यों की तरफ से निश्चिन्त हो जाता है और ईश्वर का विश्वास तो अमूल्य निधि है यह सबको प्राप्त ही नहीं होता—इसे पाने वाला समय विशेष के लिये निश्चिन्त नहीं होता, आजीवन निश्चिन्त रहता है और उसका हृदय विश्वास के आलोक से जगमगाता रहता है।

९९४ कुछ है जो सब कुछ को अपनाना चाहता है। कुछ भी मान। विश्वास सब को नहीं मिलता।

ऐ प्राणी! कोई एक शक्ति ऐसी है जो तुझे पूरा का पूरा स्वीकार कर

सकती है, तू जैसा भी है उसी हाल में तुझे अपना सकती है—उसकी शरण पाकर ही तू हल्का-फुल्का रह सकेगा। यदि तू उससे पूरा प्रेम न भी कर पाये तो कम से कम उससे कोई एक रिश्ता ही कायम कर ले। जब किसी एक रिश्ते से भी तू उससे सम्बन्ध स्थापित कर लेगा तब वह तेरे करीब हो जायेगा, उससे तेरा प्रेम घनिष्ठ होता जायेगा। देख, विश्वास सबको नहीं मिलता, यह है तो सबके पास फिर भी सब इससे अति दूर हैं—विश्वास मिलता उन्हें ही है जो ईश्वर के समीप हैं। ईश्वर को समीप देख पाने से प्रेम और विश्वास दोनों तेरे अपने हो जायेंगे। उस दिन तेरी जीवन बगिया हरी-भरी हो जायेगी अन्यथा विश्वास के अभाव में तू शुष्क खुश्क जीवन ही व्यतीत करता रहेगा।

९९५ तू अगर पिता है ? तू अगर पीता है तो पिला, नहीं तो बातें क्यों बनाता है ?

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर पर अधिकार न जता, तू ईश्वर से प्यार कर। जब ईश्वर तेरा अपना बन जायेगा तब तुझे ईश्वर से कुछ माँगना नहीं होगा तू देख पायेगा कि वह स्वतः तेरी देखभाल कर रहा है। उस दिन तू ईश्वर की दो बातें करके स्वयं भी प्रसन्न होगा तथा औरों को भी प्रसन्नता बाँट पायेगा। देख, जब तक ईश्वर तेरा अपना नहीं बनता तब तक तू ईश्वर की बातें नाम प्रसिद्धि के लिए ही करेगा उनसे न तू कुछ पा सकेगा न औरों को ही कुछ दे सकेगा। अतः तू अपनी ओर देख कि ईश्वर का नाम तेरे हृदय में प्रेम का वर्षण कर रहा है या नहीं, यदि नहीं तो तू उससे प्रेम बढ़ा कि तू ईश्वर की महिमा जान पाये।

९९६ पिता पिलाये। और ? बातों में दिल बहलाये।

ऐ प्राणी ! तेरी रक्षा करने वाला एक ईश्वर है, वही तेरा सच्चा पिता है। देख, वह केवल तेरी रक्षा ही नहीं करेगा तुझे प्रेम रस भी प्रदान करता रहेगा, उसका साथ तुझे सर्वत्र (तन-मन प्राणों में) तृप्ति देगा। उसे भुलाकर तू यदि औरों का मुख देखेगा तो तेरी रक्षा सम्भव नहीं हो सकेगी और तब एक समय ऐसा आयेगा जब तू स्वयं को असहाय व निर्बल महसूस करेगा। ऐसे में कहलाने के लिये तेरे अनेक होंगे किन्तु तेरे काम कोई नहीं आयेगा, तू नितान्त अकेला होगा। अतः तू उस परम पिता को पा ले जिसका साथ कभी छूटे नहीं। उसकी गोद आज भी तुझे आनन्द देती रहेगी और कल भी तू उसके साथ का आनन्द पाता रहेगा।

९९७ प्रेम स्तन में नहीं, प्रेम तन में नहीं। प्रेम मन में जहाँ तैंने चिन्ता की भट्टी जला रखी है। कहता है प्रेम नहीं आता।

ऐ प्राणी ! प्रेम के कार्य नहीं होते, प्रेम का भाव होता है जिसकी अनुभूति हृदय में होती है। देख, तू यदि हृदय की उपेक्षा करके प्रेम को शरीर व कार्यों में खोजता रहेगा तो वासना की अग्नि में ही झुलस जायेगा, प्रेम के दरशन नहीं कर पायेगा। प्रेम की जागृति के लिये तुझे चिन्ता मुक्त होना होगा क्योंकि जहाँ प्रेम प्रतिष्ठित होता है वहीं तूने चिन्ता को प्रश्रय दे रखा है। जब तक तेरे हृदय में चिन्ता की भट्टी जलती रहेगी तब तक तू प्रेम के नाम पर धोखा खाता रहेगा, प्रेम नहीं पा सकेगा। अतः तुझमें यदि प्रेम नहीं आता तो तू प्रेम को दोषी न ठहरा, तू अपने अन्तर की ओर देख कि तूने प्रेम के लिये जगह रख छोड़ी है क्या ? यदि नहीं, तो तू उस साथी की खोज कर जिसका साथ पाकर तेरे हृदय का बोझ हटने लगे—उस दिन ईश्वर तेरा अपना होगा और तुझमें प्रेम का जागरण स्वतः होने लगेगा।

९९८ योग हुआ इन्द्रियों का, भोग हुआ मन का। यह कैसा योग, कैसा भोग ? भोग अदृश्य का कि तन मन उसी का हो जाये।

ऐ प्राणी ! परस्पर इन्द्रियों के मिलन को योग नहीं कहते, इन्द्रियों के मिलन से तो केवल मन को सामयिक तृप्ति मिलती है। देख, शरीर के मिलन को योग का नाम दिया जा सकता है किन्तु वह योग नहीं है और मन की भूख मिटाने को भोग का नाम दिया जा सकता है किन्तु वह भी भोग नहीं है। भोग वह है जो तन-मन-प्राणों को तृप्ति प्रदान करे, आँखों से दिखलाई न देते हुए भी तन-मन-प्राण उसी पर न्योछावर हो जायें। यथार्थ में वही योग योग है और ऐसे योग से ही भोग का आनन्द मिलता है। तब यह शरीर व संसार भी प्रभु का भोग बन जाता है अर्थात् बन्धन का कारण नहीं होता, आनन्द प्रदान करता रहता है।

९९९ क्यों पूजा की ? धन के लिये, जन के लिये, मन के लिये, तन के लिए तो शान्ति दुर्लभ। पूजा प्यार की यार की प्रेम के लिए।

ऐ प्राणी ! किन्हीं कारणों से की जाने वाली ईश्वर पूजा से पूजा का

आनन्द नहीं मिलता, केवल कारणों की पूर्ति हो सकती है। पूजा का आनन्द पाने के लिये प्यार चाहिये। जब प्यार से प्यारे (प्रभु) की पूजा की जाती है तब जीवन प्यार से सज जाता है, प्यारे का अधिकार रोम-रोम पर हो जाता है—ऐसी पूजा ही सार्थक होती है। अब तू अपनी ओर देख कि तू ईश्वर के निमित्त जो कुछ करता है वह प्यार से करता है या धन-जन के लिये करता है, तन मन के लिये करता है? यदि प्यार से करता तो प्रिय दिन ब दिन तेरे समीप आता जायेगा तथा शान्ति तेरी चिर संगिनी होगी किन्तु यदि कारण से करता है तो शान्ति की कल्पना करना भी बेकार है, शान्ति तेरे समीप भी नहीं फटकेगी।

१००० क्या अभिशाप के लिए विश्व की रचना हुई? मन बुद्धि के प्रवंचन में न आ, प्रवचन सुन। संसार सोने का, सार है पीने का।

ऐ प्राणी! यह संसार आनन्द का भण्डार है, इसका जर्रा-जर्रा आनन्द से ओत-प्रोत है। यहाँ आनन्द ही आनन्द लहरा रहा है फिर भी तू यहाँ दुःखी है और दुःख का कारण संसार को बतलाता है। अरे पगले! दुःख संसार में नहीं तेरे हृदय में है और तू कोसता है संसार को—यह तेरी अज्ञानता है। देख, इस संसार की रचना अभिशाप के लिये नहीं हुई किन्तु तू इसमें बैठा कष्ट पा रहा है। इसका कारण यह है कि मन की चञ्चलता तथा बुद्धि की मेहरबानी ने तुझे बहका दिया है। देख, अब भी अवसर है, तू आज भी मन-बुद्धि के साथ को छोड़कर उस वाणी को सुन जो तेरे हृदय-वीणा के तारों को झंकृत कर दे। परिणाम उस बेसुरी आवाज से तू मुक्ति पा जायेगा जो आज तक तुझे गुमराह कर रही थी। तब यही संसार तेरे लिये कीमती होगा, तू यहाँ प्रत्येक कदम पर आनन्द पाता रहेगा।

१००१ संसार को कोस कर साधु कहलाये तो व्यर्थ ही संसार में आये। खेल के लिए बना, मेल के लिए बना, उसे जेल क्यों समझा?

ऐ प्राणी! ईश्वर तुझे संसार से भागकर कहीं अन्यत्र मिलने वाला नहीं, वह जब भी मिलेगा तुझे इसी संसार में मिलेगा। संसार को भला-बुरा कहकर तू जहाँ भी जायेगा वहाँ संसार तेरे साथ रहेगा अतः तू संसार को कोस नहीं,

तू वह भाव पा जिससे संसार के प्रति तेरे भाव बदल जायें और तू सत्य दृष्टि पा जाये। देख, यह संसार तेरे खेल के लिये बना है। तू यहाँ आया है तो यहाँ मिले हुए संगी साथियों के साथ खेल किन्तु खेल को तू कभी सत्य न मान बैठना अन्यथा यह खेल ही तेरे लिये जेल बन जायेगा। यदि तू इसे खेल मानकर खेलता रहेगा तो तेरा उससे मेल हो जायेगा जो तुझे यह खेल खिला रहा है—उसी दिन तेरा यहाँ आना सार्थक होगा अर्थात् तू सच्चा साधु होगा अन्यथा ईश्वर का नाम लेते हुए भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

१००२ बात मान, लात न मार उसको जिसके अभाव में जीवन ही भार। भार की मार खाई। अब प्यार का वार देख। कहीं मोह को प्यार न समझ बैठना।

ऐ प्राणी! संसार की उपेक्षा करके तू संसार में सुख से नहीं जी सकेगा—ऐसे में तेरा जीवन ही भार हो जायेगा, तुझमें जिन्दादिली नहीं रह जायेगी, तू जीवन का भार ढोता रहेगा और ऐसा जीवन तो जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं होगा। देख, आज तक इस संसार में तू भार लेकर जीता आया है किन्तु अब प्यार से जी कर देख। प्यार पाकर जीवन का हर पल रंगीन बन जाता है—न जीवन से कोई शिकायत रहती है और न जगत से अर्थात् प्यार से जीवन व जगत दोनों सज जाते हैं। किन्तु तू मोह को कहीं प्यार न समझ बैठना क्योंकि मोह और प्यार का अन्तर अति सूक्ष्म है। मोह शरीर के साथियों के लिये आता है जबकि प्रेम अशरीरी भाव है जिसमें शरीर की गन्ध भी नहीं होती, यह अकारण होता है। मोह को अपनाकर यह संसार नरक बन जाता है किन्तु प्रेम को पाकर यह स्वर्ग से भी महान हो जाता है। ऐसा प्रेम जिस दिन तू पा जायेगा उस दिन यह संसार तेरे लिये शिकायत का स्थान नहीं रहेगा, तू यहाँ प्यार ही प्यार देख पायेगा।

१००३ आज का साज बाज बड़ा सुन्दर। कल विकल होगा यदि आज यों ही बीतेगा।

ऐ प्राणी! आज स्थूल साधनों को जुटाकर तू कल खुश रहने की कल्पना करता है किन्तु यह सम्भव नहीं है। साधन शरीर को सुख दे सकते हैं किन्तु खुशी नहीं दे सकते। देख, खुशी तो तुझे तब मिलेगी जब साधन जुटाते समय तू आज भी खुश रहेगा। यदि कल की चिन्ता में तू आज का समय विकलता

में बितायेगा तो कितने ही साधन जुटाने के पश्चात् भी तू खुश नहीं रह सकेगा क्योंकि खुशी वस्तु में नहीं उन भावों में है जो तेरे अन्तर में प्रतिष्ठित हैं। तेरे आज के भाव ही कल तुझे सजायेंगे अन्यथा लाख चेष्टा के, बावजूद भी तू विकल ही बना रहेगा।

१००४ जीवन था प्यार के लिए। जीव शोक में डूबा, हर्ष में नाचा। जीवन वृथा, प्यार न कर सका भगवान को, भक्त को।

ऐ प्राणी! तुझे यह जीवन प्यार के लिये मिला है और तू है कि, शरीर को ही प्रधान जानकर स्वार्थ से घिर गया है। अब यदि परिस्थितियाँ स्वार्थ के अनुकूल हुईं तो तू हर्ष से नाचने लगता है और यदि प्रतिकूल हुईं तो तू शोक मनाने लगता है—हर्ष और शोक में ही तेरे जीवन की अवधि बीत जाती है। देख, प्यार के लिये मिला हुआ तेरा जीवन वृथा होता जा रहा है फिर भी तू निश्चिन्त है। अरे पगले! जब तक तू प्यार की निधि नहीं पायेगा तब तक ऐसे ही रोता रहेगा, तू जीवन का मर्म कभी नहीं जान पायेगा। अतः तू या तो भगवान के समीप जा या जो भगवान के हैं उनका सामीप्य पा कि तू प्यार की निधि पा जाये। तब छोटी-छोटी बातें तुझे न रिझा पायेंगी और न खिजा पायेंगी—तू उनका खेल देखता हुआ प्यारमय जीवन बिताता रहेगा।

१००५ पत्थर में भगवान की कल्पना ने ही शायद दिल पत्थर का बनाया। प्राणी छटपटाये, पत्थर घी से नहलाया जाये? कैसा सुन्दर खेल है।

ऐ प्राणी! भगवान पत्थर में नहीं तेरे हृदय में है और तू उसकी कल्पना पत्थर में कर रहा है। भगवान की कल्पना पत्थर में करते-करते तेरा दिल भी पत्थर का हो गया है। इस दिल को क्या चाहिये और इसे राहत कैसे मिलेगी —तेरा इस ओर ध्यान ही नहीं है। देख, हृदय की उपेक्षा करने से तू कभी चैन की नींद नहीं सो सकेगा अर्थात् तेरा हृदय हमेशा छटपटाता रहेगा—चाहे तू दिन-रात पत्थर (मूर्त्ति) को घी से ही क्यों न नहलाता रहे। अतः तू ईश्वर के नाम पर केवल कुछ कार्यों में न उलझ, तू सत्य पथ का पथिक बन अर्थात् तू हृदय की कद्र करना सीख जा। तब तू उन भाव विचारों से स्वतः बच जायेगा जो तुझे असत्य की ओर ढकेलने वाले हैं—तेरे प्राणों में प्रतिष्ठित देव के दर्शन भी तू तभी कर पायेगा। जब तेरे भीतर का देव जाग जायेगा तब तू सर्वत्र एक उसी का जलवा देख पायेगा।

१००६ पत्थर पुजवा कर क्या मिला पुजारी ? मन मंदिर तो यों ही नष्ट भ्रष्ट सा रहा।

ऐ प्राणी ! जो हृदय की कद्र करना सीख जाते हैं उनको पूजा के वे कार्य भारी पड़ने लगते हैं जिनसे भीतर में कुछ भी नहीं मिलता। वे केवल उन्हीं कार्यों को अपना पाते हैं जो हृदय में भाव की जागृति करने वाले हैं—चाहे वे कार्य देखने में पूजा के से न भी हों। उन्हें मन मन्दिर का उजड़ना क्षण भर के लिए भी नहीं सुहाता, वे यही चाहते हैं कि दिल की दुनिया सदा हरी-भरी रहे। देख, जहाँ भीतर में तरी है वहीं बाहर में भी हरि है, जहाँ भीतर में तरी नहीं वहाँ हरि के नाम पर कितने ही पूजा-पाठ आदि क्यों न सम्पादित कर लिये जायें तब भी हरि के दरशन सम्भव नहीं और न मन की शान्ति मिलनी ही सम्भव है।

१००७ किसने तुझे पकड़ा ? माया ने मोह ने। झूठ, दिल ने, मन ने। मनमानी करता आया, दिवानी में दिल बहलाता आया। कहता है संसार धोखे की टट्टी है।

ऐ प्राणी ! यह संसार तुझे नहीं पकड़ता, तू ही इसे पकड़े हुए है और नाम माया मोह को दे रहा है। देख, तू यहाँ स्थूल आकर्षणों से दिल बहलाने में लगा है तथा मन के इशारे पर इधर-उधर भटकने में लगा है। संसार की क्या उपादेयता है और तू यहाँ क्यों आया है—इस ओर तेरा ध्यान भी नहीं। ऐसे में यदि संसार तुझे पकड़ ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? किन्तु तू अपनी नादानी की ओर नहीं देखता, संसार में ही अवगुण दिखाता है और यही कारण है कि जब मन के मुताबिक तू यहाँ नहीं पाता तब यही कहता देखा जाता है कि यह संसार धोखे की टट्टी है। अरे पगले ! धोखा तेरी आँखों ने खाया है, यह संसार तो आनन्द की बगिया है। यहाँ तू उसे पाने के लिये आया है जिससे तू जन्म-जन्मान्तर से बिछुड़ा हुआ है। जब तू आने के उद्देश्य को जान जायेगा तथा ईश्वर को पाना ही तेरा लक्ष्य होगा तब संसार से तुझे कोई शिकायत नहीं रहेगी, उस दिन इसी संसार में तू आनन्द पाता रहेगा।

१००८ बालक रूदन करते हैं, मा विलाप करती है। किसके लिये ? तेरे लिये ? नहीं, मेरा मुझमें समाये, जहाँ आनन्द ही आनन्द है।

ऐ प्राणी ! यहाँ बच्चे बूढ़े सभी रोते हैं क्योंकि वे परस्पर एक दूसरे से

आशा रखते हैं। देख, वे अपना रोना मिटाने के लिये मेरी ओर भी देखते हैं किन्तु उनका यह रोना तब भी नहीं मिटता क्योंकि वे मेरे लिये नहीं रोते। यदि उनका रोना मेरे लिये होता तो केवल उनका रोना ही नहीं मिटता वे मुझे भी पा जाते—वे सम्पूर्ण दुनिया मेरी देख पाते, मेरे सिवा किसी और के लिये उनके दिल में प्रधानता नहीं रहती। उन्हें सहारे के लिये तब किसी का मुँह भी नहीं देखना पड़ता, वे सभी दिशाओं में मुझे ही खड़ा देख पाते। ऐसे जन यहाँ रहते तब तक भी आनन्द पाते और एक दिन मुझमें ही समा जाते।

१००९ शिव की नगरी में भूत? नहीं पूत है, वह पूत है जो शिव का है।

शिव कल्याणकर्त्ता है। उसकी शरण में जब भी कोई जाता है वह उसे स्वीकार कर लेता है—उसके समीप जाकर कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता। ऐ प्राणी! सुनी-सुनाई बातों के आधार पर तू ऐसा न समझ बैठना कि शिव की नगरी में भूत रहते हैं। देख, मनुष्य भी पञ्च भूतों से बना है (पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि)। शिव की नगरी में अन्य कोई भूत-प्रेत नहीं रहते, वे ही भूत (प्राणी) रहते हैं जो शिव के हैं। जो एक बार भूले-भटके भी शिव के समीप पहुँच जाते हैं उनको शिव की कल्याणमयी भावना वापस नहीं लौटने देती, वे शिव के ही हो जाते हैं। अतः तू भूत की कल्पना से भयभीत न हो, तू शिव की शरण ग्रहण कर कि प्रेम पाकर तेरा जीवन कृतार्थ हो जाये।

१०१० कहते हैं भगवान के भक्त को कष्ट नहीं होता? फिर भक्त क्यों छटपटाते हैं अर्थाभाव में? अर्थ की दुनिया प्यार की दुनिया से भिन्न। समझ का फेर है। अंधेर भी नहीं, देर भी नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर के घर में न देर है और न अंधेर है। ईश्वर को जो जिस जगह से जितना चाहता है उसी के अनुसार उसका प्यार भाव पाता रहता है। देख, बाहर से धन-जन आदि किसको कितने प्राप्त हैं इससे उसके प्यार का अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। बहुत धनी भी भीतर से रोता रहता है तथा धन-धान्य की दृष्टि से कम सम्पन्न व्यक्ति भी मौज में रहता है—मौज में वही रहता है जिसे उसका प्यार प्राप्त है। ऐसा व्यक्ति जो कुछ

भी पाता है उसे ईश्वर का प्रसाद समझ कर प्रेम से ग्रहण करता है। दुनिया वाले अर्थाभाव के कारण उसे कष्ट में देख सकते हैं किन्तु उसे जो मौज प्राप्त रहती है वह धनाढ्यों के बगल से भी नहीं गुजरती। अतः बाहर की सम्पन्नता और असम्पन्नता से तू देर अंधेर के गीत न गा, तू भक्त के हृदय में झाँक—तब 'उसने क्या पाया है' तू इसे देख सकेगा और उस दिन से तेरी देखने की दृष्टि भी बदल जायेगी।

१०११ तुझ से न माँगू तो किसके द्वार जाऊँ ? घर में पैठ, माँग पूरी, यदि दिल में सबूरी।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरा अपना है। वह कहीं और नहीं, तेरे प्राणों में प्रतिष्ठित है। तेरे हृदय की छोटी से छोटी बात भी उसके सामने है किन्तु तू यही समझता है कि वह तेरे मुख की बातें ही सुनता है। देख, माँगना उससे पड़ता है जो देता नहीं, जो स्वतः दे रहा है उससे माँगना कैसा, उसकी ओर तो केवल उन्मुख होना है। दुनिया के व्यवहारों को देखते-देखते तेरा मुख दुनिया की ओर हो गया है और ईश्वर से तू विमुख हो गया है इसीलिये तुझे उससे माँगना पड़ता है। जिस दिन तू अपने उस सच्चे साथी को पा जायेगा जो सदा तेरे साथ है और उसे पाकर तेरे दिल में तसल्ली हो जायेगी उस दिन तू देख पायेगा कि तेरी माँगें उस तक स्वतः पहुँच रही हैं और वह तेरी चाह के अनुसार स्वतः दे रहा है। तेरी चाहत को तब तुझे कहना नहीं होगा, वह स्वतः पूरी होती रहेगी।

१०१२ प्यार को किसने देखा। जिसने अपनाया प्यार को प्रभु को।

ऐ प्राणी! ईश्वर रूपधारी व्यक्ति नहीं, ईश्वर प्यार है। देख, ईश्वर यदि साक्षात भी सम्मुख आकर खड़ा हो जाये तो ईश्वर को तब तक नहीं देखा जा सकता जब तक प्यार का आविर्भाव हृदय में नहीं हो जाता—प्यार में ही ईश्वर की अनुभूति होती है। प्यार सबको नहीं मिलता, यह उन्हें ही मिलता है जिनका हृदय प्यार के लिए तड़पता है, स्थूल जगत की सभी उपलब्धियाँ प्राप्त होने के पश्चात भी जिन्हें तृप्ति नहीं मिलती और अनेक संगी साथियों को पाने के पश्चात भी जिनका हृदय खाली रह जाता है। ऐसे जन कुछ भी करके चैन नहीं पाते जब तक कि प्यार नहीं पा जाते। उनके व्याकुल हृदय को प्यार की जागृति के पश्चात ही राहत मिलती है। उनका हृदय सब कुछ छोड़कर प्यार पाने के लिये समर्पित हो जाता है। प्यार जैसे-

जैसे उनके हृदय में प्रतिष्ठित होता जाता है वैसे-वैसे वे प्रभु को भी सम्मुख देख पाते हैं।

१०१३ लिखकर थका पढ़कर पराजित। जीत तेरे हाथ में तो हाय क्यों मेरे दिल में ?

ईश्वर भक्त के हृदय में एक अज्ञात तड़पन रहती है, वह तड़पन उसे किसी करवट भी चैन नहीं लेने देती—सोते-जागते, उठते-बैठते हमेशा उसे विकल बनाये रखती है। वह कभी अपने भावों को लिखता है, कभी कुछ पढ़ता है फिर भी उसकी बेचैनी ज्यों की त्यों बनी रहती है। अन्त में हारकर उसे यही कहना पड़ता है कि—"हे प्रभो ! हृदय की विकलता कैसी मिटेगी और मुझे क्या करना है इसे मैं नहीं जानता, यह सब कुछ तो तेरे हाथ में है फिर मैं इसके लिये क्यों परेशान बनूँ ? मैं तो एक यंत्र हूँ जिसे चलाने वाला तू है।" ऐसे समर्पित भक्त के कार्य अद्भुत होते हैं। वह ईश्वर का ही प्रतिरूप हो जाता है, उसे देखने मात्र से ही ईश्वर की अनुभूति होने लगती है।

१०१४ हाय नहीं—है यह यही जो तेरे तन मन का दुःख दूर करेगा। पहचानता क्यों नहीं ?

ऐ प्राणी ! तेरे हृदय की तड़पन ही तुझे ईश्वर से मिलायेगी क्योंकि ईश्वर कार्यों से नहीं पाया जा सकता, हृदय की तड़प से मिलता है। देख, ईश्वर मिलन के अभाव में जन्म-जन्मान्तर के संस्कार व्यक्ति को आजीवन बन्धन में बाँधे रखते हैं तथा तन-मन को व्यथित बनाये रखते हैं। उन्हें काटने की सामर्थ्य किसी अन्य में नहीं, हृदय की तड़प में ही है। तड़प जीवन को सोध देती है और तब वे भाव जो ईश्वर मिलन में बाधक हैं, नहीं रह जाते—रह जाता है केवल एक ईश्वर वही उसे अपनी ओर खींचता रहता है। ऐसी तड़प तूने यदि पायी है तो तू घबड़ा नहीं, तू धीरज से काम ले क्योंकि अब तेरे जीवन में प्रकाश आने वाला है।

१०१५ पत्थर में निवास ? कहाँ गया तेरा विश्वास ? मैं पत्थर नहीं, कोमल हूँ, कमल हूँ। न तू खिलता है और न मुझे कोमल हृदय में बसाता है, केवल बातों में ही दिल बहलाता है तो मैं पत्थर ही भला।

ऐ प्राणी ! मैं मूर्त्तियों में नहीं रहता, मैं मेरे भक्त के हृदय में निवास

करता हूँ। मेरा भक्त स्वभाव से नम्र होता है और हमेशा प्रसन्नवदन रहता है। उसका हृदय अत्यन्त कोमल होता है एवं कमल की तरह खिला रहता है और चूँकि मैं भी कोमल हूँ कमल हूँ इसीलिये उसके हृदय में विराजता हूँ। देख, जो मेरे इस रूप से अनजान हैं वे मेरे नाम पर मूर्त्तियों को देखा करते हैं और भ्रमवश मुझे पत्थर ही मान बैठते हैं। उनके लिये मैं पत्थर ही रह जाता हूँ क्योंकि वे अभी मुझे जानने के इच्छुक ही नहीं हैं, वे केवल मेरी बातें करके ही खुश होने वाले हैं। ऐसे जन विश्वास के अभाव में मुरझाये से रहते हैं। उनके हृदय की मधुरिमा खत्म हो जाती है एवं उनका जीवन शुष्क तथा पत्थर की तरह कठोर हो जाता है।

१०१६ भय यदि दुनिया का है तो किनारे बैठ। अभय हो दिल दुनिया को देख।

ऐ प्राणी! जिनके लिये दुनिया प्रधान रहती है वे हमेशा दुनिया का मुख देखा करते हैं। वे बेशक अपने दिल की उपेक्षा कर लेते हैं किन्तु दुनिया की उपेक्षा नहीं कर सकते—ऐसे लोगों का जीवन डरते ही बीतता है, वे जीवन पाने का आनन्द नहीं ले पाते। किन्तु जिनके लिये ईश्वर प्रधान रहता है वे ऐसे कार्यों को नहीं कर पाते जिनसे उनके दिल में दर्द हो, वे सदा उन भावों व कार्यों को ही अपना पाते हैं जिनसे उनका दिल सुरक्षित रहे अर्थात् वे दुनिया का मुख देख कर नहीं चल सकते, वे उसकी ओर देख कर चलते हैं जिसकी ओर देखने मात्र से भय पलायन करता है और अभय भावों का जागरण होता है। ऐसे जन की दुनिया आबाद रहती है, वे ही जीवन का आनन्द ले पाते हैं। अन्य जन भय को प्रश्रय देकर अनजाने में ही दिल की दुनिया उजाड़ बैठते हैं और जीवन भर रोते रहते हैं।

१०१७ फूल खिलता है उसे भय कैसा? भक्त भगवान पर रीझता है उसे भय कैसा? यदि है, तो अलभ्य कभी सुगम न होगा।

ऐ प्राणी! माली की देख-रेख में रहनेवाला फूल जब खिलना शुरू करता है तब वह खिलता ही जाता है उसे खिलने से कोई रोक नहीं सकता। ईश्वर की ओर देखने वाला भक्त भी जब ईश्वर पर रीझता है, ईश्वर उसके मन को भा जाता है तब वह रीझता ही चला जाता है—किसी भी प्रकार का भय तब उसे रोक नहीं सकता क्योंकि रीझना ही उसे शक्ति प्रदान करता रहता है। देख, जब तक भय रोकता है तब तक यही कहना होगा कि अभी वह

भगवान पर रीझा नहीं है। ऐसे में वह ईश्वर जो अलभ्य है अर्थात् जिसे जल्दी से पाया नहीं जा सकता उसे पाना भी सुगम नहीं होता—उसे तभी पाया जा सकता है जब वह प्रधान हो जाता है। जब तक अन्य (भय) के लिये हृदय में स्थान है तब तक ईश्वर की बातें सुनी जा सकती हैं, की भी जा सकती हैं किन्तु उसे अपना नहीं बनाया जा सकता। वह अपना उनका ही होता है जिनके लिये एकमात्र ईश्वर ही सर्वस्व होता है।

१०१८ झूठी प्रशंसा ने यदि दिल की कोमल पंखुड़ियों को कुचल डाला तो हूक से बेचैन रहेगा। यहाँ कुचलने वाले ही देखे गये, प्रसन्न अति अल्प।

सत्य पथ के पथिक की राह में अनेक प्रलोभन आते हैं, वे उसे अपनी ओर देखने के लिये विवश करते हैं किन्तु यदि सत्य पथ का राही उनको ही देखने लगे तो वह उनमें ही अटक जायेगा, मंजिल तक नहीं पहुँच पायेगा। ऐ प्राणी! तूने यदि सत्य पथ पर कदम रखा है तो तू झूठी प्रशंसा के फेर में कभी न पड़ना। प्रशंसा तेरे दिल की कोमल पंखुड़ियों को कुचल डालेगी, फिर पीछे तू पछताता रहेगा। देख, तुझे देखकर यहाँ प्रसन्न होने वाले अति अल्प होंगे, अधिकांश तुझे कुचलने वाले ही मिलेंगे। अतः तू ऐसे लोगों से सदा सचेत रहना, तू उनकी प्रशंसा भरी मीठी बातों में न आ जाना अन्यथा सत्य पथ का पथिक होते हुए भी तू बेचैन बना रहेगा, लक्ष्य तुझसे कोसों दूर ही रह जायेगा।

१०१९ जिसने पाया अपने को खो कर पाया। मिट्टी के बर्त्तन को भी अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है, फिर तू क्यों भयभीत?

ऐ प्राणी! ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं जो समीप जाने से मिल जाये, ईश्वर वह सत्य सत्ता है जिसे पाने के लिये पूर्णतया मिटना पड़ता है। जब तक अपनेपन का सूक्ष्म कण भी रह जाता है तब तक उसे पूरा नहीं पाया जा सकता। जैसे-जैसे अपनापन गिरता जाता है वैसे-वैसे उसका आविर्भाव होता जाता है और जिस दिन अपनापन नहीं रह जाता उस दिन वह पूर्ण प्रगट हो जाता है। देख, मिट्टी का बर्त्तन पूरा बनने के बाद भी तब तक काम में नहीं आता जब तक कि अग्नि पर चढ़ नहीं जाता। तेरे रास्ते में भी यदि अनेक कठिनाइयाँ आयें तो तू उसे ईश्वर की कृपा मानना, तू यही समझना

कि वह तुझे अपने योग्य बना रहा है। अन्यथा तू उसे भुलाकर परिस्थितियों से ही बेहाल हो जायेगा, उसे पाने की इच्छा रखते हुए भी उससे दूर ही बना रहेगा।

१०२० श्रद्धा बड़ी या प्रेम। वासना की बात निरर्थक।

ऐ प्राणी! श्रद्धा हृदय में नम्रता प्रदान करती है और प्रेम हृदय को सरस बनाता है—दोनों के सम्मिश्रण से प्राणी का हृदय सज जाता है। देख, नम्रता सरसता से सजती है और सरसता नम्रता को पाकर निहाल हो जाती है—दोनों में से एक का भी यदि अभाव रहे तो जीवन अधूरा होता है। अतः श्रद्धा और प्रेम में किसी को भी छोटा नहीं कहा जा सकता, ये दोनों ही भाव महान हैं, इतना ही नहीं, इन्हें धारण करने वाला भी महान हो जाता है। किन्तु जो इन्हें भुलाकर वासना पूर्त्ति में ही लगे हुए हैं वे इनकी महत्ता से जीवन के अन्तिम क्षण तक अनजान ही रह जाते हैं। उनके लिये शरीर प्रधान होता है, वे आजीवन शरीर की पूर्त्ति में ही लगे रहते हैं। उनकी भूख कभी नहीं मिटती, उन्हें जो कुछ भी मिलता है वह कम रहता है, बहुत कुछ पाकर भी वे रोते रहते हैं—ऐसे जन कमी के गीत गाते-गाते ही दुनिया से चले जाते हैं।

१०२१ दूध में जल मिला कीमत बढ़ी, किन्तु जल को बड़ी महँगी कीमत चुकानी पड़ी। स्वयं जला दूध को जलने न दिया।

ऐ प्राणी! जल जब दूध में मिल जाता है तब वह भी दूध हो जाता है और उसकी कीमत भी दूध के समान हो जाती है। भक्त भी जब भगवान के चरणों पर पूर्णतया झुक जाता है तब उसमें ईश्वरीय भावों का प्रादुर्भाव होने लगता है अर्थात् वह ईश्वर रूप हो जाता है। किन्तु भक्त को ईश्वरीय भावों की सुरक्षा के लिए बहुत महँगी कीमत चुकानी पड़ती है। वह स्वयं मिट जाता है, अनेक कष्टों का सामना प्रसन्नवदन होकर करता है किन्तु ईश्वरीय भावना को हमेशा बरकरार रखता है, उसे छोड़ने के लिये वह कतई तैयार नहीं होता—ऐसे भक्त के सम्पर्क से भगवान को नव-जीवन मिलता है। वह ईश्वर जो सबमें प्रतिष्ठित रहते हुए भी लुप्त सा हो गया है भक्त के माध्यम से पुनः जाग जाता है। ऐसे भक्त की शरण पाकर अनेक जीवन कृतार्थ हो जाते हैं।

१०२२ आदर्श की बातें प्रिय किन्तु अवस्था में परिवर्तन कब सम्भव, जब तक प्राप्ति के लिये न मर मिटे।

ऐ प्राणी ! तू आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें न कर, केवल बातें करके तू प्रशंसा भरे दो शब्द सुन लेगा किन्तु यथार्थ में कुछ नहीं पा सकेगा। अतः बातें करना छोड़कर तू उन भावों को पा जो उन बातों में निहित हैं। देख, उन भावों की प्राप्ति के लिये केवल कुछ कार्य ही पर्याप्त नहीं, उनके लिये तुझे मर मिटने के लिये तैयार रहना होगा। जब तुझे शरीर का भी मोह नहीं रह जायेगा, केवल उन्हें पाना ही तेरा लक्ष्य हो जायेगा तभी वे भाव तेरे अपने हो सकेंगे जिनकी तू बातें करता है। उस दिन तू बातें नहीं करेगा, तेरा प्रत्येक कदम आदर्श की बातों के अनुरूप होगा और लोग तेरे भावों को पाने के लिए तरसेंगे।

१०२३ उमंग की अवस्था निराली—अंग-अंग में जोश—प्रेम में कहाँ रहता है होश ?

ऐ प्राणी ! उमंग की अवस्था निराली होती है। इसमें रोम-रोम में एक नशा सा छा जाता है, सम्पूर्ण शरीर में एक नयी स्फूर्ति आ जाती है, कार्य करते हुए भी व्यक्ति कार्य भार से मुक्त हो जाता है किन्तु यह सब होता है प्रेम से—प्रेम कुछ ऐसा ही होता है। जहाँ प्रेम रहता है वहीं उमंग भी रहती है, प्रेम के बिना उमंग के दर्शन सम्भव नहीं होते। देख, दुनियाबी व्यवहारों में फँसे रहने के कारण पास में रहते हुए भी जल्दी से प्रेम के दरशन नहीं होते। यह प्रगट तभी होता है जब प्रेम रूप प्रभु के दरशन होते हैं। प्रिय प्रभु के दरशन पाकर प्रेम प्रगट ही नहीं होता, उन भावों को हृदय में प्रतिष्ठित कर देता है जिन्हें पाकर व्यक्ति चैन से बैठ नहीं पाता जब तक कि प्रिय प्रभु से मिल नहीं जाता। ऐसा है यह प्रेम जो द्वैत को मिटा देता है और सम्पूर्ण विश्व को एक ईश्वर रूप बना देता है।

१०२४ मर्यादा ने केवल निर्वाह किया भावनाओं का किन्तु प्रेम के प्रवाह ने असीम ही बना दिया व्यक्तित्व को।

ऐ प्राणी ! प्रेम और मर्यादा दोनों साथ-साथ नहीं चलते। देख, प्रेम अजस्त्र प्रवाह है, यह मर्यादा पसन्द नहीं करता। मर्यादा से भावनाओं का निर्वाह हो सकता है अर्थात भावना के अनुसार कार्य किये जा सकते हैं किन्तु

हृदय में प्रेम का जागरण नहीं पाया जा सकता। मर्यादा बुद्धि की उपज है जबकि प्रेम हृदय का सुललित भाव है, यह बुद्धि से कुंठित होता है। प्रेम अपना एकछत्र राज्य चाहता है किसी अन्य का अंकुश बर्दाश्त नहीं करता। जब तक अन्य के लिये स्थान रहता है तब तक प्रेम आता ही नहीं, केवल उसकी बातें ही होती हैं। अतः तू यदि प्रेम पाने का अभिलाषी है तो तू मन बुद्धि की एक न सुनना एकमात्र प्रेम को प्रश्रय देना कि प्रेम प्रवाह से तेरा रोम-रोम आप्लावित हो जाये--तेरा व्यक्तित्व निखर जाये, वह असीम भावों से युक्त हो जाये।

१०२५ आज भी पृथ्वी विकलता से काँप उठती है। मिलन का वियोग असह्य।

ऐ प्राणी! प्रभु मिलन में जो आनन्द है वह अवर्णनीय है। जिन्होंने मिलन का आनन्द पाया है वे हमेशा मिलन के साथ ही जीना चाहते हैं। वे एक बार के मिलन से सन्तुष्ट नहीं होते, उन्हें हर समय का मिलन चाहिये अतः वे हर पल प्रिय के चरणों पर झुके रहते हैं। उनमें पृथ्वी की तरह अपूर्व धीरज रहता है। देख, पृथ्वी जड़ सी प्रतीत होती है किन्तु यथार्थ में वह जड़ है नहीं, वह तो प्रभु प्रेम में इतनी तल्लीन है कि जड़ सी दिखती है। पृथ्वी का धैर्य इतना अनूठा है कि उस पर कितने ही अत्याचार अनाचार होते रहते हैं फिर भी वह शान्त रहती है। भक्त की भी यही बात है। पृथ्वी की तरह उनमें भी इतना धीरज रहता है कि उनका कितना ही विरोध होता रहे, वे शान्त ही बने रहते हैं। किन्तु कुछ समय के लिए भी यदि उनका ध्यान बाहरी परिस्थितियों की ओर जाता है तो उनका हृदय विकल हो उठता है क्योंकि बाहर की ओर ध्यान जाने से प्रिय मिलन में बाधा पड़ती है और प्रिय का वियोग वे सहन नहीं कर पाते। देख, मिलन कुछ ऐसा ही होता है—मिलन का आनन्द एक बार मिलने के पश्चात इसका वियोग असह्य होता है।

१०२६ भूकम्प यदा कदा किन्तु हृद कम्प प्रति मुहूर्त्त। नहीं तो निष्प्राण हो जड़ बन जायगा। यह कम्पन प्रभु मिलन के लिए तो मंगलमय अन्यथा निष्प्राण ही है।

पृथ्वी में भूकम्प कभी-कभी आता है किन्तु प्राणी के हृदय में कम्पन प्रति मुहूर्त होता रहता है। यह कम्पन ही बतलाता है कि प्राणी में प्राण हैं, यदि

कम्पन न रहे तो वह निष्प्राण हो जड़ बन जायेगा। ऐ प्राणी! प्राण रहने के लिये जैसे श्वाँस अति आवश्यक हैं वैसे ही आनन्दमय जीवन जीने के लिये ईश्वर की अनुभूति अति आवश्यक है। जब तक यह अनुभूति नहीं मिलती तब तक प्राण पाना ही बेकार होता है अर्थात् जब तक यह मालूम नहीं होता कि श्वाँस देने वाला ईश्वर है तथा रक्षा करने वाला भी वही है तब तक व्यक्ति ईश्वर का होते हुए भी ईश्वर से दूर ही रह जाता है। ऐसे में उसका जीवन निष्प्राण के समान रहता है अर्थात् प्राण रहते हुए भी वह प्राण पाने का आनन्द नहीं ले पाता। केवल ईश्वर की अनुभूति के अभाव में जीवन पाकर भी प्राणी जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जाता है।

१०२७ लेन देन में दिल का स्थान कहाँ? बुद्धि प्रधान। किन्तु समर्पण अद्भुत है।

प्राणी! व्यवहारिकता में जो लेन देन होता है उसमें बुद्धि की प्रधानता रहती है, दिल का स्थान जरा सा भी नहीं रहता। इस लेन देन से दिल पर बोझ आता है, व्यक्ति जो कुछ भी पाता है उतना ही बदले में देना चाहता है, इतना ही नहीं, देने वाला भी इसमें पाने की आशा से ही देता है। किन्तु समर्पण की अवस्था अद्भुत है। समर्पण में देना ही प्रधान रहता है, उसमें बदले की भावना ही नहीं रहती। समर्पण वाला देता ही चला जाता है, उसे देने में ही अनिर्वचनीय सुख मिलता है अर्थात् देने की भावना ही उसे वह आनन्द देती रहती है जो आनन्द वस्तुओं से नहीं मिल सकता चाहे वस्तुओं का अम्बार ही क्यों न लग जाये। देख, समर्पण में क्या है इसे समर्पित होकर ही जाना जा सकता है। इसके लिये इतना जरूर कहा जा सकता है कि समर्पण ही संसार को रंगीन बनाता है अन्यथा संसार में रहता हुआ भी व्यक्ति दिल पर बोझ लिये संसार को ही कोसता रहता है।

१०२८ धर्म—नियम बन्धन में सीमित फिर प्रेम का स्थान कहाँ? प्रेम बिन झूठा है संसार।

ऐ प्राणी! धर्म अन्य कर्मों की तरह कोई कर्म नहीं जिसे नियम में आबद्ध करके सम्पादित कर लिया जाये। देख, धर्म ही यदि नियम में आबद्ध हो जायेगा तो प्रेम का जागरण कभी नहीं हो पायेगा। धर्म तो जीवन को हल्का फुल्का करने वाला है, प्राणी को कार्य भार से मुक्त करने वाला है।

अतः तू इसे कभी कार्य की तरह नहीं अपनाना, तू इसे सदा हृदय में स्थान देना। जब धर्म के प्रति तेरे हृदय में आस्था होगी तब तेरी दुनिया बदल जायेगी, तू प्रत्येक कर्म के मर्म से अवगत होगा, इतना ही नहीं, तेरा हृदय प्रेम से आप्लावित हो जायेगा। प्रेम के बिना यह संसार झूठा है, इसमें कहीं कुछ नहीं है किन्तु प्रेम से इसके कण-कण से आनन्द बरसता है। स्थूल संसार विनाशी है किन्तु चूँकि प्रेम अविनाशी है अतः वह इस विनाशी संसार के मूल में जो अविनाशी है उससे जोड़ देता है और जीवन के प्रत्येक क्षण को रंगीन बना देता है। अन्यथा प्रेम के अभाव में संसार के विनाशी रूप से जुड़ा व्यक्ति 'संसार झूठा' के गीत गाता हुआ संसार से विदा हो जाता है।

१०२९ मा ने प्यार पुत्र के रूप में देखा, पिता ने कर्त्तव्य के रूप में। आज भी प्यार की जीत है—कर्त्तव्य तो बन्धन का हेतु बना।

ऐ प्राणी! बच्चे को माँ की ममता जीवन प्रदान करती है, वही उसे पालती पोसती है तथा वही आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। यदि प्यार न मिले तो बच्चा कुंठित ही रह जायेगा, उसका जीवन शुष्क व बोझिल हो जायेगा। बच्चा पिता का भी अपना होता है किन्तु पिता उसे माँ की ममता नहीं दे सकता, केवल कर्त्तव्य कर सकता है। देख, एक छोटा सा बच्चा भी प्यार चाहता है, प्यार के बिना वह फलता-फूलता नहीं फिर तू ईश्वर को प्यार के अभाव में कैसे पा सकेगा? ईश्वर के नाम पर तू यदि कर्त्तव्य ही करता रहेगा तो वह तेरे लिये बोझ बन जायेगा जबकि ईश्वर बोझ हरण करने वाला है। अतः तू बोझ हरण करने वाले को बोझ न बना अर्थात् तू ईश्वर के नाम पर कर्त्तव्य न कर, तू ईश्वर से प्यार कर कि तू ईश्वर की महिमा को जान पाये।

१०३० वासना की अग्नि जलती रही, उसी को प्रकाश माना। प्रेम तो वह जल है जो वासना की गंध को भी बदल डालता है।

ऐ प्राणी! वासना और प्यार में जमीन-आसमान का अन्तर है। बाहर से भ्रम के कारण दोनों में समानता देखी जा सकती है किन्तु उनमें भीतरी भावों का कहीं मेल नहीं रहता। वासना शरीर की भूख है, यह स्थूल से ही पैदा होती है और स्थूल को ही तृप्ति देती है किन्तु प्यार अशरीरी भाव है। यह स्थूल के माध्यम से दिखलाई देता है किन्तु स्थूल इसे छू तक नहीं जाता।

प्यार अकारण होता है और जब हो जाता है तब जाता नहीं। जिस शरीर के माध्यम से यह दिखलायी पड़ता है वह शरीर एक दिन मिट जाता है किन्तु प्यार कभी नहीं मिटता, यह शरीर जाने के पश्चात् भी ज्यों का त्यों बना रहता है। यह जहाँ विराजमान होता है वहाँ वासना का नामोनिशान नहीं रह जाता।

१०३१ कवि चिर यौवन का अभिलाषी। भक्त चिर मिलन का। भला बुरा कहना बेकार।

ऐ प्राणी! भक्त और कवि में अन्तर होता है। कवि बाहर प्रकृति से सुख लेता है, प्रत्येक चीजों को वह कल्पना की दृष्टि से हरी-भरी (चिर यौवन में) देखना चाहता है। किन्तु भक्त बाहर सुख नहीं खोजता, वह प्रिय को सदा अपने अन्तर में देखना चाहता है—उसकी दुनिया अन्तर्मुखी रहती है। देख, जिसकी जैसी अभिलाषा रहती है उसी के अनुसार वह पाता है। कार्य बदले जा सकते हैं किन्तु अभिलाषा को बदलना अपने वश की बात नहीं इसीलिये इसे भला बुरा कहना भी बेकार होता है। अतः तू अभिलाषा को भला बुरा नाम न दे और न इसे जोर जबर्दस्ती से बदलने की चेष्टा कर। यदि तू इसमें परिवर्तन ही देखना चाहता है तो सन्त के समीप बैठ कि तू सत्य की महिमा जान पाये। सत्य की महिमा जानने के पश्चात् सत्य को पाने की अभिलाषा तुझे पैदा नहीं करनी पड़ेगी, वह तुझमें स्वाभाविक होगी—सत्य को पाने का सही रास्ता भी यही है।

१०३२ पल भर का अनुभव जीवन की सार्थकता है।

ऐ प्राणी! जीवन में कभी-कभी ऐसे स्वर्णिम अवसर आते हैं जो बाहरी चकाचौंध में भटकते प्राणी को नवीन दृष्टि दे जाते हैं। ऐसे अवसर आते ही कम हैं किन्तु जिनको ऐसा सुयोग प्राप्त होता है उनका जीवन पाना सार्थक हो जाता है। उनको मिला हुआ पल भर का अनुभव उनके जीवन की गतिविधि ही बदल डालता है, वह उनके सम्पूर्ण जीवन पर छा जाता है। देख, अनुभव के पूर्व छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को रिझाती व खिझाती रहती हैं किन्तु अनुभव के पश्चात् वे बातें उसे प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं कर पातीं, वह देख पाता है कि मैं रोने-गाने के लिये नहीं आया हूँ आनन्द मनाने के लिये आया हूँ। प्रत्येक परिस्थितियाँ तब उसे ईश्वर द्वारा अनुप्राणित लगने लगती हैं। वह सभी

स्थितियों (सुख-दुःख) में आनन्द मनाता है—ऐसा है यह पल भर का अनुभव जो बुरे से बुरे व्यक्ति का भी जीवन बदल डालता है और उसे सही रास्ते पर जाता है।

१०३३ प्रेम भी, भय भी। दूध में कीचड़ अनुचित।

ऐ प्राणी! प्रेम और भय साथ-साथ नहीं चल सकते अर्थात् जहाँ प्रेम को प्रश्रय मिलता है वहाँ भय नहीं टिक पाता और जहाँ भय डेरा जमाये रहता है वहाँ प्रेम नहीं आता। देख, दूध हमेशा स्वच्छ बर्त्तन में रखा जाता है कीचड़ लगे बर्त्तन में नहीं रखा जाता, यदि कीचड़ लगे बर्त्तन में उसे रख दिया जाये तो वह पीने योग्य नहीं रह जायेगा। ऐसे ही प्रेम भी स्वच्छ (खाली) हृदय में सजता है। जिस हृदय में भय समाया हुआ है वहाँ प्रेम नहीं सजता, उसका रूप विकृत हो जाता है। अतः तू यदि प्रेम पाने का अभिलाषी है तो प्रथम तू प्रेम की महिमा को जान। जब तेरी दृष्टि में प्रेम सबसे महान हो जायेगा उस दिन भय तेरे समीप भी नहीं आ सकेगा। तब तेरा हृदय प्रेम पाने के लिये तड़पेगा और तभी तू प्रेम की महत्ता को भी जान सकेगा।

१०३४ जल के व्याकुल प्राणी! जल ही तेरी गति, भक्ति, मुक्ति स्थान है, फिर आकुल क्यों?

जल प्रत्येक प्राणी की जरूरत है। रोटी बिना एक अर्से तक चल सकता है किन्तु जल के अभाव में शरीर एक दो दिन भी नहीं टिक पाता। जल कुछ और नहीं, प्रेम का ही दूसरा नाम है। भूमिष्ठ होते ही बच्चे को और कुछ भी नहीं चाहिये किन्तु प्यार अवश्य चाहिये। प्यार से ही उसमें गति शुरू होती है एवं प्यार (भक्ति) से ही उसका लालन-पालन होता है किन्तु एक उम्र के पश्चात् स्थूल जगत से आवद्ध हुआ वह इस राज को भूल जाता है अर्थात् जो गर्भकाल से उसकी व्यवस्था कर रहा है उस नियन्ता को ही भूल बैठता है और यही कारण है कि वह रोता रहता है। ऐ प्राणी! तेरे हृदय की व्याकुलता प्रेम के लिये है किसी और चीज के लिये नहीं। प्रेम को पाकर ही तू आज भी खुश (मुक्त) रह सकेगा और कल भी खुशी खुशी विदा हो सकेगा। अतः तू प्रेम को भुला नहीं, जिसने तुझे जीवन दान दिया है तू उसकी खोज कर कि तू उसे पुनः पा जाये क्योंकि वह किसी न किसी रूप में सदा तेरे साथ था, है और सदा रहेगा।

१०३५ जलते हुए दीपक को देखकर कहा—यह जलता क्यों है ? अरे ! यह जलेगा नहीं तो प्रकाश कैसे फैलायेगा ।

ऐ प्राणी ! जो स्वयं प्रकाशमान हैं उनके भीतर भी जलन रहती है किन्तु उनकी जलन अन्य अभाव में जलते हुए प्राणियों की जलन से भिन्न होती है । उनकी छटपटाहट देखकर भ्रमित प्राणी संशय में पड़ जाता है कि जब इनमें भी इतनी जलन है फिर ईश्वर की समीपता पाने का लाभ ही क्या है ? ऐसा प्राणी सत्य से अनजान है । उसे अभी मालूम नहीं कि सन्त में जो जलन सी दिखलाई पड़ती है वह यथार्थ में जलन नहीं उनके हृदय का प्यार है जिसे वे अन्य में देखने को लालायित हैं—उनकी यही लालसा उसे जलन सी प्रतिभासित होती है । देख, यदि सन्त भी मिले हुए धन (प्यार) को अपने समीप ही रख लेंगे तो उनमें और साधारण प्राणियों में अन्तर ही क्या रह जायेगा ? उनमें और अन्य प्राणियों में यही तो अन्तर है कि सन्त के सभी अपने होते हैं एवं उनको मिला हुआ धन सबका होता है अतः उसे वे सबको मुक्त हस्त से लुटाते रहते हैं किन्तु अन्य जो कुछ भी पाते हैं उसे सहेजते रहते हैं । यही कारण है कि सन्त की जलन सबको आनन्द पहुँचाने वाली होती है जबकि साधारण जन जिन्दगी भर यूँ ही जलते रहते हैं ।

१०३६ प्रेम को बुरी निगाह से न देख, तू ही लज्जित होगा ।

ऐ प्राणी ! प्रेम अस्पृश्य है, उसे कोई छू नहीं सकता । यदि कोई उसे गन्दी निगाह से देखता भी है तो प्रेम का कुछ भी नहीं बिगड़ता, देखने वाला ही गन्दा हो जाता है, इतना ही नहीं, एक न एक दिन उसे लजित होना पड़ता है । देख, प्रेम परमेश्वर है । प्रेम का प्रादुर्भाव जब हृदय पटल पर हो जाता है तो व्यक्ति का जीवन ही बदल जाता है । तब उसका जीवन अन्य साधारण प्राणियों की तरह नहीं रह जाता कुछ विशिष्ट हो जाता है । चूँकि वह सबसे भिन्न रहता है अतः सब प्रेम को समझ नहीं पाते, अपनी वासनात्मक दृष्टि से उसे भी वासना ही समझ बैठते हैं । अरे पगले ! प्यार के समीप तो वासना की गन्ध भी नहीं ठहरती । प्यार तो न्योछावर होना है, उसमें शरीर का ध्यान भी नहीं रह जाता । ऐसे प्यार को तू बुरी निगाह से न देख, उसके सम्मुख तू नतमस्तक हो जा कि प्यार की सौगात तुझे भी मिल जाये । अन्यथा प्यार के अभाव में तू इस धरा पर बार-बार आता जाता रहेगा—तेरा यह क्रम कभी खत्म नहीं होगा ।

१०३७ पत रखेगा, तप कर मिलने के लिये। क्या मेल अच्छा नहीं ? प्रिय का खेल अच्छा नहीं ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर सबका है, वह किसी एक का नहीं। उसे कोई भूले भटके भी याद करता है तो वह उसकी अवश्य सुनता है। देख, वह तेरी भी अवश्य सुनेगा यदि तू उसे पाना चाहेगा। अभी तू उससे मेल की महिमा को नहीं जानता और न उसके खेल को ही देख पाता है इसी कारण यह संसार तुझे सारहीन नजर आता है। जिस दिन तू इस रहस्य को जान जायेगा कि प्रिय के मेल से ही यह संसार का खेल भला मालूम होता है उस दिन तू उसकी शरण में होगा और तब तू उसे किसी भी परिस्थिति में छोड़ने के लिये तैयार नहीं होगा। उस दिन तेरी चिन्ता उसकी चिन्ता होगी और तू उसकी गोद में बैठा निश्चिन्त रहेगा—शरीर व संसार की सार्थकता भी तू उसी दिन जान पायेगा।

१०३८ प्राणों की बाँसुरी बजाने के पूर्व, हृदय को रसपूर्ण कर ले अन्यथा बाँस की बाँसुरी में कहाँ चमत्कार।

ऐ प्राणी ! बाँसुरी में चमत्कार नहीं होता बजाने वाले के हृदय में यदि कुछ रहता है तो वही बाँसुरी में उभर आता है। वाणी भी हृदय के प्रेमपूर्ण भावों से सजती है। यदि हृदय में रस नहीं तो वाणी का प्रयोग व्यक्ति करता रहे, कितनी ही उपदेश की बातें सुनाता रहे किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि समय विशेष के लिये कोई धोखा खा भी जाता है तो भी वह (धोखा) टिक नहीं पाता, जल्दी ही सामने आ जाता है। देख, वाणी सजती ही है हृदय के रसपूर्ण भावों से। अतः वाणी के द्वारा ईश्वर की दो बातें करने के पहले तू हृदय को रसपूर्ण कर ले अर्थात् तू प्रेम पा ले। जब तू रसपूर्ण हृदय से अपने भावों को रक्खेगा तब वे भाव तुझे भी सरस करते रहेंगे तथा जो उसके सम्पर्क में आयेंगे उन्हें भी सरसता प्रदान करते रहेंगे—प्रेम ऐसा ही होता है। यह जब हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है तब रोम-रोम पर इसी का साम्राज्य छा जाता है और यही कारण है कि जिनका हृदय प्रेमपूर्ण है उनकी वाणी में चमत्कार पैदा हो जाता है।

१०३९ मोर पंख वाले ने कहा—रमो विश्व प्रेम में। उड़ो कल्पना में जितना मोर उड़ता है। नूपुर की ध्वनि से संसार को आनन्दमय बनाओ तो तुम्हीं कृष्ण।

ऐ प्राणी ! प्रेम तुझे कहीं से लाना नहीं है प्रेम लेकर तू पैदा हुआ है।

देख, तुझे जो कुछ प्राप्त है वह किसी अन्य प्राणी को नहीं—तू ईश्वर का दूसरा रूप है। अन्य प्राणी केवल अपने बच्चों को प्यार कर सकते हैं किन्तु तुझमें अथाह प्यार है, तू सबसे प्यार कर सकता है। अतः तू अपने रूप को पहिचान कि मोह-ममता आदि बन्धन तुझे न बाँध पायें, तू यहाँ सबसे प्यार कर पाये। ऐसे में झूठी कल्पनायें तुझे नहीं भरमा सकेंगी, तू उतनी ही कल्पना कर पायेगा जो आनन्दवर्द्धन करने वाली है—तू हमेशा प्रसन्नवदन रहेगा। देख, जिसके पास जो कुछ रहता है वह अन्य को भी ज्ञात-अज्ञात से वही देता है। तेरे हृदय के सुमधुर भाव भी तेरे समीप ही नहीं रहेंगे वे सबको आनन्द देते रहेंगे। तब तुझमें वह आकर्षण होगा जो कृष्ण में है क्योंकि तूने प्राणों में प्रतिष्ठित प्यार की कद्र की है, उसे ही जीवन का सर्वस्व माना है।

१०४० प्राणों में मिलन की तड़पन नहीं तो क्या भक्ति करेगा? पत्र पुष्प से प्रसन्न होने वाला वह भगवान नहीं। वह तो चाहता है तेरे हृदय में मधुर स्थान। तब कहीं प्राणों को शान्ति।

ऐ प्राणी! ईश्वर केवल कार्यों से खुश होने वाला नहीं चाहे उसके नाम पर चौबिसों घंटे ही क्यों न लगा दिये जायें। ईश्वर भाव का भूखा है, वह तेरे हृदय में स्थान चाहता है। ये तन-मन-धन जिन्हें तू ईश्वर के नाम पर लगाता है ये तो उसी के दिये हुए हैं, तेरे नहीं हैं और तू इन्हें ही ईश्वर के निमित्त खर्च करके समझाता है कि मैं भक्ति करता हूँ। देख, ईश्वर जहाँ बैठना चाहता है वहाँ तो तूने अनेकों (घर-परिवार, धन-जन, मान-सम्मान आदि) को प्रश्रय दे रखा है। जैसी इन्हें पाने के लिये तेरे अन्तर में बेचैनी है वैसी ही बेचैनी जिस दिन तुझमें ईश्वर के लिये भी होगी अर्थात् जिस दिन ईश्वर तेरे हृदय में स्थान पा जायेगा उस दिन तु ईश्वर को प्रत्यक्ष देख पायेगा—तेरे हृदय की विकलता भी तभी शान्त होगी अन्यथा बाहर से ईश्वर के कार्य करते रहने के पश्चात् भी तू सदा अशान्त बना रहेगा।

१०४१ प्राणों में तड़फन का भान। अब प्रसन्न तेरा भगवान।

ऐ प्राणी! स्थूल आकर्षण जब तुझे लुभाने में सक्षम नहीं होंगे, तेरा हृदय सब कुछ पाने के पश्चात् भी ईश्वर मिलन के लिये तड़पता रहेगा तभी तू ईश्वर की अनुभूति पा सकेगा। देख, यों तो ईश्वर सबके साथ है किन्तु सब उसे साथ देख नहीं पाते। उसके साथ का आनन्द वे ही ले पाते हैं जिनका

हृदय उसे पाने के लिये तड़पता है क्योंकि ईश्वर को और कुछ भी नहीं भाता, हृदय की तड़पन ही भाती है—इसे देखकर ही वह प्रसन्न होता है। ऐसे जन उसे साथ ही नहीं देख पाते प्राणों में भी प्रतिष्ठित देख पाते हैं, उनके सभी कार्य ईश्वर द्वारा अनुप्राणित होते हैं अतः अद्भुत होते हैं। ऐसी है यह तड़प जो साधारण से मानव को महामानव बना देती है।

१०४२ गाता है रिझाने के लिये। स्वयं तो प्रसन्न हो जा। तेरी प्रसन्नता ही उसकी प्रसन्नता है।

ऐ प्राणी! भजन रिझाने के लिये नहीं होते, भजन स्वयं रीझने के लिये होते हैं। भजन गाते-गाते व्यक्ति जब भजन में ही खो जाता है, उसे अन्य ध्यान ही नहीं रह जाता तब भजन से अपूर्व प्रसन्नता मिलती है—वह प्रसन्नता ही ईश्वर को भाती है क्योंकि ईश्वर कहीं बाहर नहीं, ईश्वर सबके भीतर है। देख, जब तक तुझे अपना ध्यान रहेगा, तू ईश्वर को बाहर देखते हुए उसे रिझाने की चेष्टा करेगा तब तक तेरी चेष्टा बेकार होगी और तेरा ईश्वर भी कभी प्रसन्न नहीं हो पायेगा क्योंकि ईश्वर को कार्य नहीं स्पर्श करते, हृदय के भाव स्पर्श करते हैं। अतः तू यदि ईश्वर को रिझाना चाहता है तो तू स्वयं प्रसन्न हो जा कि तुझे ईश्वर को अलग से रिझाने की चेष्टा नहीं करनी पड़े, तुझे देखकर ही वह प्रसन्न हो जाये।

१०४३ श्वेत में श्याम बसा आँखों में, फिर भी पहचान नहीं। लालिमा लाल की है, तुझे ज्ञान नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर तुझसे दूर नहीं, वह तेरी आँखों में बसा है। सफेद आँखों में जो श्याम रंग की पुतली है जिससे तू सब कुछ देख पाता है वह कोई और नहीं वह तेरा श्याम है—यदि श्याम न रहे तो तू कुछ देख भी न पाये। वह हमेशा तेरे पास है फिर भी तू उसे पहिचानता नहीं, उसे बाहर ढूँढ़ता फिरता है। देख, तेरे अंग प्रत्यंग में खून के रूप में जो लालिमा बिखरी हुई है वह भी उस लाल की है। जिस दिन ईश्वर तेरा साथ छोड़ देगा उस दिन न तू देखने में सक्षम होगा और न लालिमा ही तुझमें रह जायेगी। अतः तू समय रहते रहते उसे पहिचान ले जो तेरे श्वासों-प्राणों में रमा तुझे गति प्रदान कर रहा है—तभी तू उसके साथ का आनन्द ले पायेगा अन्यथा उसके साथ रहते हुए भी तू रोते गाते ही जीवन बितायेगा।

१०४४ रंग में रंग जमा, जब दिल रंगा प्यार में।

ऐ प्राणी ! यह संसार रंग रंगीला है किन्तु यहाँ रंग जमता उन्हीं का है जिनका दिल प्रभु के प्रेम में रंग जाता है अर्थात् इस रंग रंगीले संसार का आनन्द वे ही ले पाते हैं जिनका हृदय रंगीन होता है। देख, जो ईश्वर को नहीं जानते, ईश्वर को भुलाकर जीवन यापन करते हैं उनका हृदय खुश्क-शुष्क रहता है। वे न जीवन का आनन्द ले पाते हैं और न रंग रंगीले संसार का ही उपभोग कर पाते हैं, दृष्टि दोष के कारण उन्हें संसार में काँटे ही काँटे नजर आते हैं। अतः तू यहाँ आया है तो प्यार कर प्रभु से, प्रभु के प्यारों से कि तू प्यार की निधि पा जाये और उसे पाकर तेरा जीवन रंगीन हो जाये—इस रंग रंगीले संसार का आनन्द भी तू उसी दिन ले पायेगा।

१०४५ जगत पति का पता था, पत्ति पत्ति में किन्तु पढ़ता रहा शुष्क पंक्तियाँ जिनका ज्ञान, मान, अभिमान करता रहा।

ऐ प्राणी ! जहाँ तू हरियाली देख पाता है वहीं हरि भी है, वहाँ यदि हरि नहीं होता तो हरियाली के दर्शन ही सम्भव नहीं होते। देख, पत्ति पत्ति में हरि का पता लिखा है फिर भी तू उसे नहीं देख पाता, तू उससे आँखें फेर कर उसे पुस्तकों में खोजता है। अरे पगले ! पुस्तकों की पक्तियाँ तो शुष्क हैं उनमें तू कैसे हरि के दर्शन कर सकेगा ? केवल उनको पढ़कर तो तू ईश्वर के बारे में कुछ जानकारी हासिल कर लेगा तथा उसका मान-अभिमान कर लेगा किन्तु ईश्वर को कभी नहीं देख पायेगा। अतः तू ईश्वर को शुष्क पंक्तियों में न खोज, जहाँ तू चिर हरियाली (प्रसन्नता) देख पाता है ईश्वर को तू वहीं खोज कि तू उसका जलवा देख पाये।

१०४६ आशा जब छलने लगी तो निराशा ने कहा—मैं तेरा त्याग नहीं करती। अरे ! आशा निराशा के चक्कर में न पड़, कष्ट ही कष्ट है।

आशा और निराशा रात-दिन की तरह साथ-साथ रहते हैं। जो इनमें से किसी एक को अपनाना चाहते हैं किन्तु दूसरे की उपेक्षा करते हैं वे धोखे में हैं, वे हमेशा कष्ट पाते रहते हैं। ऐ प्राणी ! तू जिनसे आशा रखता है वे तो स्वयं किसी और से आशा रखते हैं फिर वे तेरी आशा कैसे पूरी कर सकेंगे ? तुझे उनसे मिला हुआ सहारा कैसे स्थायी रह सकेगा ? देख, उनसे

की हुई आशा एक दिन निराशा में परिणत हो जायेगी अतः तू आशा निराशा के चक्कर में न पड़ तू उससे आशा रख जो हमेशा तेरे साथ है। उससे रखी हुई आशा एक दिन विश्वास में परिणत हो जायेगी क्योंकि वह व्यक्ति नहीं अज्ञात शक्ति है जो हमेशा तेरे साथ है। उसका साथ पाकर तुझे कभी निराश नहीं होना पड़ेगा—तू जब तक जीयेगा विश्वास के साथ जीयेगा और जब लौट कर जायेगा तब भी यह विश्वास तेरे साथ बना रहेगा।

१०४७ उत्तेजना प्रेम नहीं, वासना नहीं, उत्तेजना क्षणिक मानसिक तरंग, परिणाम भला हो या बुरा।

ऐ प्राणी! उत्तेजना क्षणिक मानसिक तरंग है। यह तरंग जब उठती है तब कभी प्रेम सी दिखलाई देती है और कभी वासना सी प्रतीत होती है किन्तु तरंग न प्रेम होती है और न वासना होती है केवल तरंग रहती है। देख, इस तरंग से कभी-कभी लाभ या नुकसान भी हो जाता है। जब यह भले के लिये होती है तब इससे लाभ हो जाता है और जब बुराई के लिये होती है तब नुकसान हो जाता है किन्तु यह स्थायी स्थिति नहीं। अतः तू इसे प्रश्रय न दे तू शान्त रह कि तू स्थायी भाव ग्रहण कर पाये। तब तू क्षणिक तरंग में नहीं खोयेगा तू हर समय का आनन्द ले पायेगा।

१०४८ उत्तेजित भाव वह ज्वार है जो डुबो देता है किनारे पर खड़े हुए को। भाटा आया व्यक्ति हतास। यही क्रम चला आ रहा है।

ऐ प्राणी! उत्तेजना जब आ जाती है तब शान्त व्यक्ति उद्विग्न हो उठता है, 'मुझे क्या करना चाहिये' उसे तब यह होश नहीं रह जाता, वह आगे-पीछे का भान भूलकर सामने जो परिस्थिति है उसी में डूब जाता है। लेकिन उसकी यह स्थिति स्थायी नहीं रहती, एक समय पश्चात् जब उत्तेजना का नशा उतरता है तब उसमें वह जोश नहीं देखा जाता वह हताश व निराश हो जाता है तथा जो कुछ हुआ उसके लिये भी पश्चाताप करता है। उत्तेजना ऐसी ही होती है इसमें अच्छे अच्छे बहक जाते हैं। अतः तू शान्त भाव अपना कि उत्तेजना में तू कोई कार्य न कर बैठे, उत्तेजना आने के पूर्व ही तू सम्हल जाये—तभी तू जीवन में स्थायी आनन्द पा सकेगा।

१०४९ प्रेम कहो या वासना यह तो उत्तेजित भाव है। स्थिर रहे तो स्थिति बने।

ऐ प्राणी! उत्तेजना को तू यदि प्रेम समझ बैठेगा या वासना का ही नाम दे देगा तो तू प्रेम व वासना को कभी नहीं जान पायेगा। देख, प्रेम के कार्य नहीं होते, प्रेम एक भाव है। जब यह हृदय में प्रतिष्ठित होता है तब व्यक्ति का हृदय समर्पण के भावों से सज जाता है, वह देते-देते आघाता नहीं। तब उसके जीवन में एक दिन ऐसा भी आ जाता है जब उसकी दुनिया में केवल एक प्रिय ही रह जाता है अहं का नामोनिशान भी नहीं रह जाता। वासना अधूरी आकांक्षा है जो दिन रात स्थूल में ही बिलमाये रखती है। अतः सामयिक उत्तेजित भावों को देखकर तू उसे प्रेम या वासना का नाम न दे, तू शान्त रहकर अपने अन्तर की स्थिति का अवलोकन कर कि चाह के अनुसार तेरी स्थिति बन जाये।

१०५० क्षणिक भावना कभी-कभी अग्नि का काम करती है। अनेक संस्कार भस्मीभूत।

ऐ प्राणी! कभी-कभी क्षणिक भावना (उत्तेजना) भी अग्नि का सा काम करती है। वह किसी ऐसे सन्त का दरशन करा देती है जिसकी सत्य वाणी हृदय को बेंध कर अपना स्थान बना लेती है। व्यक्ति यदि उस वाणी को भुलाना भी चाहे तो भुला नहीं पाता, उसे वह वाणी हमेशा अपनी ओर मुखातिब करती रहती है, इतना ही नहीं, वह उसे सत्य की ओर ले जाती है। अनेक संस्कार भी उसके सामने टिक नहीं पाते, भस्मीभूत हो जाते हैं। ऐसी है यह सत्य वाणी जिसका क्षण भर का सम्पर्क सम्पूर्ण जीवन को बदल डालता है। देख, ऐसी वाणी का सुयोग किसी-किसी को कभी-कभी ही प्राप्त होता है। जिनको होता है उनका जीवन ही पलटा खा जाता है, वे स्मरणीय बन जाते हैं, उनका भाव हमेशा सबको प्रेरणा देता रहता है।

१०५१ बादल बरस रहे थे, प्रकृति प्रसन्न हो रही थी। आज उसके पुत्र प्रतिदान में रत थे। संग्रह महान किन्तु प्रतिदान तो जीवन की सार्थकता है।

ऐ प्राणी! बादल प्रकृति से जल ग्रहण करके उसे अपने पास नहीं रखते पुनः प्रकृति को ही अर्पित कर देते हैं। प्रकृति बादल के इस प्रतिदान से परम

प्रसन्न हो हरी-भरी हो जाती है। देख, तू भी यदि सौभाग्य से संत के समीप बैठकर उन भावों को पा जाये जो हृदय को शान्त करने वाले हैं, शुद्ध बनाने वाले हैं तथा आनन्दित करने वाले हैं तो उन्हें सहेज कर न रख लेना, जो भी सत्य के पिपासु तेरे समीप आयें उन्हें भी वह धन लुटा देना। उन भावों का संग्रह अवश्य महान है किन्तु प्रतिदान से तो जीवन पाना ही सार्थक हो जाता है—प्रतिदान से वह पाया हुआ धन द्विगुणित हो जाता है। सन्त का हृदय भी तभी प्रफुल्लित होता है कि आज मेरा बच्चा मेरे ही पथ का अनुसरण कर रहा है।

१०५२ पीया नहीं, पिया पिया चिल्लाने लगा, कहाँ शान्ति ?

ऐ प्राणी! ईश्वर का नाम मुख से लेने के पहले 'ईश्वर है' तू इसे जान ले तथा उसके साथ का आनन्द पा ले अन्यथा तू मुख से ईश्वर का नाम लेता रहेगा फिर भी तेरे हृदय में शान्ति का सर्वथा अभाव होगा। देख, ईश्वर के साथ से केवल शान्ति ही नहीं मिलती हृदय में आनन्द का वर्षण भी होता है। ईश्वर का साथ व्यक्ति को असत्य से हटाता है तथा सत्य से जोड़ता है। एक बार जो ईश्वर की शरण पा जाता है उसे बार-बार ईश्वर की याद आती है। उसे ईश्वर को नाम ले लेकर याद करना नहीं पड़ता, याद किये बिना वह रह नहीं पाता क्योंकि उसने एक बार प्रभु के चरणों का आनन्द अमृत जो चख लिया है। ईश्वर की शरण ऐसी ही होती है इसे पाने वाला निहाल हो जाता है।

१०५३ प्रथम पी फिर पिया कह। यों ही पिया पिया से कहाँ तृषा शान्ति ?

ऐ प्राणी! जब प्रियतम प्रभु तेरा अपना बन जायेगा उसका साया तू सदा तेरे सर पर देख पायेगा तब एक बार की याद भी तुझे आनन्द रस से भिगो देगी, उसकी याद मात्र से तू बेसुध हो जायेगा। देख, उसे अपना जाने बिना तू उसका कितना भी नाम मुख से ले लेगा तब भी तुझे वह रस मिलने वाला नहीं और न तेरे हृदय की प्यास ही मिटने वाली है। अतः प्रथम तू सत्संग कर तथा वहाँ बैठकर प्रिय की सच्ची अनुभूति पा फिर उसे याद करना कि याद तुझे कुछ दे जाये। तब तू कुछ ऐसा पा जायेगा जो सम्पूर्ण दुनिया के ऐश्वर्य भोगों में भी नहीं है।

१०५४ पाया प्राणों में, खोया श्वासों में प्रिय को, जीवन को।

ऐ प्राणी ! यह जीवन बहुत छोटा है इसमें गिनती के श्वाँस हैं, प्रत्येक श्वाँस के साथ तेरा जीवन व्यतीत होता जा रहा है। तू यदि जीवन पाने के उद्देश्य को नहीं जानेगा तो ये श्वाँस यूँ ही खत्म हो जायेंगे और तू भी जीवन पाने के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा। अतः तू समय रहते रहते प्रियतम प्रभु को पा ले। देख, वह कहीं दूर नहीं तेरे प्राणों में ही बसा है किन्तु तू उसे देख पायेगा तभी जब उसे पाने के लिये तेरे हृदय में तड़प होगी—तेरे हृदय की तड़प ही तुझे उससे मिलायेगी—तब तू देख पायेगा कि वह तुझसे दूर नहीं था तू ही उससे दूर बना हुआ था और इसीलिये वह तेरी आँखों से ओझल था। आज वह तेरे समीप है क्योंकि आज तेरा मुख उसकी ओर है अर्थात् उसे पाने के लिये तेरे हृदय में तड़प है।

१०५५ प्यार का कोई वेद नहीं, शास्त्र नहीं। नहीं को हाँ में बदलने वाला प्यार ही है।

ऐ प्राणी ! वेद शास्त्र आदि प्यार का संकेत दे सकते हैं प्यार नहीं दे सकते अर्थात् प्यार पुस्तकों में नहीं है प्यार हृदय की निधि है जिसे लेकर तू पैदा हुआ है। देख, बाहर देखते-देखते तू स्थूल से आबद्ध हो गया है और सूक्ष्म (प्रेम) से दूर होता जा रहा है। यही कारण है कि तेरा हृदय विकल है और तुझे संसार में आनन्द नहीं नजर आ रहा है। अरे पगले ! नहीं को हाँ में बदलने वाला प्यार है अर्थात् इस असार संसार में भी कहीं सार है इसे दिखाने वाला प्यार ही है। प्यार सार दिखाता ही नहीं, सम्पूर्ण संसार को प्यार से सजा देता है। प्रेमी संसार के कण-कण से प्रेम पाता है क्योंकि वह सम्पूर्ण संसार में एक उसी का जलवा देख पाता है।

१०५६ प्यार को क्यों बदनाम करती है दुनिया ? सह नहीं सकती खुद करे तो जाने कि प्यार कैसा होता है ?

ऐ प्राणी ! प्यार कैसा होता है इसका अनुभव व्यक्ति को तब होता है जब वह प्यार करता है। जब तक वह प्यार करता नहीं तब तक प्यार उसके लिये अजूबा रहता है, वह प्यार को सहन नहीं कर पाता। देख, प्यार प्रकाश है इसके आगमन से जीवन का अन्धकार खत्म होता है, चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है किन्तु जिन्हें अन्धकार (मोह-ममता आदि)

ही प्रिय है एवं जो अन्धकार में ही जीते हैं उनको अन्धकार ही प्रकाश सा लगने लगता है वे यह नहीं जानते कि प्यार प्रकाश है अतः वे प्यार को बदनाम करते हैं। ऐसे प्राणियों का ईश्वर ही रक्षक है अन्य किसी में ताकत नहीं कि उनके भावों को बदल सके। प्रभु कृपा से वे यदि प्यार पा जायें तो उनकी दृष्टि में परिवर्तन आये और वे प्यार की महत्ता को जान पायें कि प्यार ही जीवन का सार है, प्यार बिना जीवन बेकार है।

१०५७ संसार का सुख वैभव न्योछावर किया प्यार के लिये। त्याग किया नहीं हो गया जब प्यार किया।

ऐ प्राणी! ऐश्वर्य भोगों में स्वाभाविक आकर्षण है। उन्हें व्यक्ति चेष्टा के द्वारा भी नहीं छोड़ पाता, बहुत जोर लगाकर यदि शरीर से छोड़ भी देता है तो मन से नहीं छोड़ पाता किन्तु प्रभु प्रेमी प्यार के लिये उन्हें हँसते-हँसते न्योछावर कर देता है। प्यार के लिये उसे कैसी भी परिस्थिति का सामना क्यों न करना पड़े उसे वह सहर्ष स्वीकार करता है। देख, प्रभु प्रेमी को त्याग करना नहीं पड़ता, उसका त्याग स्वतः होता है क्योंकि उसके लिये प्यार प्रधान है वह प्यार के बिना जी नहीं पाता। उससे प्यार के लिये सब कुछ छूट सकता है किन्तु प्यार नहीं छूट सकता। ऐसे जन का एक समय पश्चात शरीर भी छूट जाता है किन्तु प्यार ज्यों का त्यों बना रहता है क्योंकि उसके लिये प्यार सर्वस्व है।

१०५८ वासना का भूखा कब प्यार कर सका? वासना जलाती। प्यार की लता लहलहाती आँसुओं को पाकर।

ऐ प्राणी! प्यार अशरीरी भाव है। प्यार कुछ चाहता नहीं वह सिर्फ देना ही देना जानता है किन्तु वासना के खेल सर्वथा विपरीत हैं, वासना का भूखा हमेशा भूखा ही बना रहता है चाहे उसे कितना ही क्यों न मिल जाये। उसकी भूख कभी नहीं मिटती, वह हमेशा शरीर के ईर्द-गिर्द ही चक्कर काटता रहता है। देख, वासना का भूखा कभी प्यार नहीं कर सकता, वह वासना की अग्नि में ही तिल तिल कर जलता रहता है किन्तु प्यार वाला सदा हरा-भरा रहता है। प्यार पाने के लिये उसके हृदय में जो तड़प रहती है वही उसे रस प्रदान करती है, उसके आँसू ही उसकी जीवन बगिया को हरियाली से भर देते हैं। प्यार जल्दी से होता नहीं और हो जाता है तो मिटता नहीं—यही इसकी पहचान है।

१०५९ तुझे अपने दिल सागर के दो मोती अर्पित करने पड़ेंगे प्यार के लिये। संसार आँसू कहकर उपेक्षा करेगा किन्तु तेरा… उसे पाकर निहाल हो जायेगा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को कोई बन्धन नहीं बाँध सकते किन्तु प्रेम बन्धन उसे बहुत भाता है, प्रेम के लिये तो उसका हृदय तड़पता रहता है। देख, ऐसे ईश्वर को तू कभी कार्यों से खुश करने की चेष्टा न करना, तू उससे प्यार करना। जब प्यार के लिये दो आँसू तेरी आँखों से गिरेंगे तब तेरा (ईश्वर) उसे पाकर निहाल हो जायेगा और तू भी उसका सान्निध्य पाकर कृत्य-कृत्य हो जायेगा। तेरे उन आँसुओं की प्रशंसा तू यदि अन्य से सुनाना चाहेगा तो यह नामुमकिन होगा क्योंकि अन्य उसकी महिमा को नहीं जान पायेंगे। अन्य जन आँसू समझ कर उसका उपहास करेंगे एवं वासना का प्रतीक बताकर तुझे नीचा दिखाने की चेष्टा करेंगे किन्तु तेरा प्रियतम उन एक-एक आँसुओं की कीमत करेगा। प्रत्येक आँसू उसके वक्षस्थल की शोभा बन जायेंगे क्योंकि वह ऐसे आँसुओं का ही भूखा है।

१०६० दिल से प्यार किया दिलदार को। दिल खो न बैठा, किसी का हो न बैठा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर दिलदार है, वह सब पर अहेतुक कृपा करता है। किन्तु उसके प्यार को सब नहीं जानते, जो उसकी ओर देखते हैं वे ही उसके प्यार को जान पाते हैं, वे अनजाने में ही उसे दिल दे बैठते हैं। देख, दिलदार प्रभु का आकर्षण कुछ ऐसा ही है। उसका जलवा जो भी एक बार देख लेता है वह सदा-सदा के लिये उसी का हो जाता है—जब तक देखता नहीं, दूर से केवल उसकी बातें सुनता है तब तक और बात है। जो उसे दिल दे बैठते हैं उनका अपने दिल पर कोई जोर नहीं रहता, उनका दिल बेकाबू हो जाता है अर्थात् वे दिल के आधीन हो जाते हैं। वे कभी दिल की उपेक्षा नहीं कर पाते, प्रत्येक कार्य दिल की सहमति से ही करते हैं। वे ईश्वर से कुछ क्षण के लिये भी अलग नहीं हो पाते क्योंकि उनका दिल दिलदार प्रभु का जो है।

१०६१ तेरा धर्म क्या ? प्यार। और कर्म ? प्यार। और भाषा ? वह भी प्यार। तैने पाया है जग का सार।

ऐ प्राणी ! जिन्होंने प्यार पाया है प्यार उनके रोम-रोम में रम जाता है।

उनकी प्रत्येक गति-विधि प्यार के साथ होने लगती है, प्यार ही उनका धर्म बन जाता है—उनका जीवन प्यार पर स्थित हो जाता है। उनके प्रत्येक कर्म प्यार के साथ होने लगते हैं, जिन कर्मों में प्यार का अभाव रहता है उन कर्मों को वे नहीं कर पाते अर्थात् वे केवल व्यवहार में नहीं जी पाते। ऐसे ही उनकी भाषा भी प्यार होती है, उनके मुख के प्रत्येक शब्द प्यार से सने रहते हैं। देख, यों तो यह संसार प्राणियों से भरा है किन्तु सभी इसका आनन्द नहीं ले पाते, यहाँ आनन्दपूर्वक वे ही रहते हैं जिन्होंने प्यार पाया है क्योंकि जिन्होंने प्यार पाया है यथार्थ में उन्होंने ही जग का सार पाया है अर्थात् प्यार ही जग का सार है।

१०६२ आँखें क्या देखती हैं? देखती नहीं, खोज रही हैं प्यार को। प्यार प्रिय क्यों? प्रिय का प्यार ही तो असार को सार बनाता है।

ऐ प्राणी! जिन्होंने प्रिय के प्यार का स्वाद एक बार चख लिया है उन्हें प्यार के सिवा कुछ भी नहीं भाता केवल प्यार ही सुहाता है—उनकी आँखें हमेशा प्यार को खोजती रहती हैं। देख, प्रिय का प्यार असार को भी सार युक्त बना देता है। इस संसार में जहाँ प्रत्येक प्राणी अभाव से घिरे रहने के कारण रोते रहते हैं वहाँ प्यार वाला रोता नहीं, वह यहाँ प्रिय को खोजता रहता है। उसकी दृष्टि सभी अवस्था में प्रिय का दरशन करना चाहती है। ऐसे जन से प्रिय दूर नहीं रह पाता, वह उसके प्राणों में प्रतिष्ठित हो जाता है और तब वह जर्रे-जर्रे में भी एक उसी का जलवा देख पाता है।

१०६३ कोमल पद भी इस हृदय मल को दूर न कर सके तो दोष किसका? न कमल का न पद का। कमल की कोमलता न अपनाई और पद को हृदय से न लगाया।

ऐ प्राणी! ईश्वर के चरणों की शरण लेकर भी यदि तेरे हृदय का मल दूर न हुआ तो इसमें दोष उन चरणों का नहीं दोष तेरा है, तूने ही उन चरणों की महिमा नहीं जानी है। देख, जो कोमल हृदय ईश्वर के चरण कमल को हृदय से लगाते हैं अर्थात् जो अहंकार शून्य हो उन चरणों पर झुक जाते हैं उनका पत्थर हृदय भी कोमल हो जाता है, उनका जीवन हरियाली से भर जाता है। तब अनेक विकार आकर उनके हृदय को कलुषित नहीं कर सकते

क्योंकि ईश्वर की शरण से उनकी दृष्टि साफ हो जाती है, उनको प्रत्येक आते-जाते विचार दिखलायी पड़ते रहते हैं। अतः तूने यदि ईश्वर की शरण ग्रहण करके भी स्वच्छता नहीं पायी है तो ईश्वर को दोषी न ठहरा तू अपनी ओर देख कि तू ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य ही करता है या तूने ईश्वर की शरण भी पाई है? यदि पाई है तो तू निर्भय हो जा—तब निर्मलता तुझे अपनानी नहीं पड़ेगी वह हमेशा तेरे साथ रहेगी।

१०६४ जब तक देखा नहीं, तभी तक अजब, गजब। नहीं जी, अजब अनोखा, गजब में तो अक्ल हैरान।

ऐ प्राणी! जब तक ईश्वर दिखलायी नहीं देता तब तक ईश्वर की सृष्टि अजीब लगती है, उसके खेल समझ के परे होते हैं—उनसे व्यक्ति कभी दुःखी हो जाता है और कभी सुखी हो जाता है किन्तु चैन नहीं पाता। कुछ को यह सृष्टि गजब की लगती है। वे प्रकृति के सौन्दर्य का रसपान करके समय विशेष के लिये उसी में खो जाते हैं किन्तु चूँकि उनका दिल नहीं रँग पाता अतः वे भी बेचैन ही बने रहते हैं। देख, यह दुनिया अनोखी उनके लिये है जिन्होंने ईश्वर को देखा है, वे ही यथार्थ में इस दुनिया का अनोखा रूप देख पाते हैं। उन्हें सृष्टि का केवल स्थूल रूप नहीं दिखता, वे सबमें एक ईश्वर को समाया देख पाते हैं—सृष्टि का मनमोहक रूप उन्हें मुग्ध करता रहता है। ईश्वर के गजब के आकर्षण के सम्मुख उनकी अक्ल काम नहीं करती अतः वे क्षण भर के लिये भी उससे अलग नहीं हो पाते। ऐसे जन उसकी अनोखी दुनिया में स्तब्ध हो उसके कार्यों को निहारते रहते हैं।

१०६५ प्रिय तो कहते हो किन्तु क्या प्यार पाया? जब भुला न सके अहं को, रिझा न सके स्वयं को।

ऐ प्राणी! ईश्वर प्रिय बहुतों को होता है किन्तु ईश्वर का पूर्ण प्यार बहुत नहीं पाते, ईश्वर का प्यार पाने वाले विरले ही होते हैं। देख, जो ईश्वर का प्यार पाते हैं उनकी दुनिया ईश्वरमयी होती है। वे ईश्वर की सत्ता को स्वयं में देखते-देखते इतने रीझ जाते हैं कि उन्हें अपना भान भी नहीं रह जाता अर्थात् उनका अहं सर्वथा लुप्त हो जाता है—रह जाता है एक ईश्वर और उसी का आधिपत्य उनके श्वाँसों-प्राणों पर छा जाता है। उनके रोम-रोम से ईश्वर का प्यार झलकता है, यथार्थ में ईश्वर का प्यार वे ही पाते हैं।

अन्य जन ईश्वर के गीत तो गाते हैं किन्तु मिटने के लिये तैयार नहीं रहते अतः ईश्वर की झलक मात्र ही देख पाते हैं, ईश्वर का प्यार नहीं पाते ।

१०६६ क्यों प्यार को लजाते हो जब वासना से ही मुक्त न हो पाये ?

ऐ प्राणी ! प्यार और वासना साथ-साथ नहीं रहते । जब तक वासना का साम्राज्य हृदय पटल पर रहता है तब तक प्यार की बातें की जा सकती हैं प्यार नहीं किया जा सकता । देख, प्यार में दो नहीं रहते केवल एक (प्रिय) रहता है । जहाँ प्यार विराजमान होता है वहाँ शरीर तो नाम मात्र के लिये दिखलायी देता है यथार्थ में उसकी स्थिति नगण्य होती है । अतः प्यार पाने के पूर्व तू अपने हृदय को टटोल ले कि तेरे लिये प्यार प्रधान है या प्यार के सिवा तुझमें अन्य आकांक्षायें भी हैं ? यदि प्यार प्रधान है तो तू प्यार की पगडण्डी पर कदम बढ़ाना अन्यथा तू तो प्यार पायेगा ही नहीं, तेरे साथ से प्यार भी लज्जित होगा ।

१०६७ प्रेम को किसने देखा, किसने पाया ? जब ज्ञानी बना, भक्त बना ।

ऐ प्राणी ! प्रेम की बातें करना सहज है किन्तु प्रेम को देखना एवं प्रेम को पाना अति कठिन है । देख, जो स्थूल व्यक्ति-वस्तु को पाकर ही खुश नहीं हो जाते, जो संसार के नियन्ता की खोज भी करते हैं उनके हृदय में ही ज्ञान का आलोक फैलता है और वे भाग्यशाली नर ही प्यार के दरशन कर पाते हैं । एक समय पश्चात् जब वे सम्पूर्ण विश्व पर एक प्रेम रूप ईश्वर को आच्छादित देख पाते हैं तब उनका सिर श्रद्धा से अवनत हो जाता है अर्थात् उनमें भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है । ऐसे में प्रेम उनसे दूर नहीं रह जाता, वह उनके हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है । तब वे प्रेम को केवल देखते ही नहीं, प्रेम को पाकर कृत्य-कृत्य हो जाते हैं ।

१०६८ मैंने प्रिय के लिये पद गाए । विद्वानों ने व्याख्या की कर्म, भक्ति, ज्ञान की । मेरे गीत गीता बन गए । भक्त के लिये न गाए थे ।

ऐ प्राणी ! भक्त ही भगवान के भजन नहीं गाता, समय-समय पर भगवान भी भक्त के लिए गीत गाता है यदि भक्त पूर्णतया भगवान के आश्रित

हो—गीता का गान इसी का परिचायक है। देख, भगवान कृष्ण ने तो भक्त अर्जुन के लिये गीत गाये थे जब वह मोहाच्छन्न हो संग्राम स्थल में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो खड़ा हो गया था। भगवान कृष्ण की वाणी ने ही उसमें नवचेतना का जागरण किया। उस वाणी को गीता का रूप तो विद्वानों ने दिया तथा उसे तीन भागों में विभक्त भी उन्होंने ही इस उद्देश्य से किया कि संशय भ्रम को छिन्न-भिन्न करने वाली यह वाणी शायद अन्य के लिये भी प्रेरणावर्द्धक बन जाये। चूँकि वे गीत प्रेम के लिये गाये गए थे इसीलिये अमर हो गये, यदि केवल बातें होतीं तो एक समय पश्चात खत्म हो जातीं। देख, प्रेम अमर है अतः वह कभी खत्म नहीं होता सदा-सदा किसी न किसी रूप में बना रह जाता है।

१०६९ प्यार के लिये झुका। भक्तों ने कहा—राधा के चरणों में कृष्ण किन्तु राधा का दिल किसने देखा ? वह मुझी में समा गई, मेरे हृदय की ज्योति थी।

ऐ प्राणी! राधा प्रेम की उस धारा का नाम है जो रुकना नहीं जानती, अनवरत बहती रहती है और एक दिन मुझमें ही समा जाती है। देख, ऐसा प्रेम मुझे केवल प्रिय ही नहीं है, ऐसे प्रेम के सम्मुख मैं नतमस्तक होता हूँ। लोग कहते हैं 'राधा के चरणों में कृष्ण'। ऐसा कहने वालों की दृष्टि साफ नहीं क्योंकि उनकी दृष्टि अभी बाहर है, भीतर नहीं। भीतर होती तो वे देख पाते कि राधा और मैं दो नहीं, एक हैं। मेरे हृदय के प्रकाश का नाम ही राधा है। सबमें प्रेम प्रकाश फैलाने के लिये वह अलग सी प्रतिभासित होती है और एक समय पश्चात जब यह कार्य पूरा हो जाता है तब मुझी में समा जाती है।

१०७० कंस भी मेरा ही अंश था। लोग कहते हैं मैंने उसका वध किया वध नहीं किया उसको भी अपनाया क्योंकि वह भी मेरा था।

ऐ प्राणी! केवल प्रेमी ही मेरे नहीं हैं, जो पूर्णतया विरोध करने वाले हैं वे भी मेरे हैं, उनमें भी मेरा ही अंश है—मैं उनको भी अपनाता हूँ। प्रत्यक्ष में ऐसा दिखलाई देता है कि मैं उनका वध करता हूँ किन्तु बात ऐसी नहीं, बात यह है कि मैं प्रथम उनके अहंकार का वध करता हूँ ततपश्चात उन्हें

अपना लेता हूँ। देख, अहंकारी का अहंकार ही उन्हें मुझसे दूर रखता है। वे मुझे याद तो करते हैं किन्तु झुकने के लिये तैयार नहीं होते क्योंकि झुकने से उनके अहंकार में ठेस पहुँचती है। अतः उन्हें अपनाने के लिये मुझे जो भी रास्ता अपनाना पड़ता है मैं अपनाता हूँ। अन्त में जब अहंकार उनमें नहीं रह जाता, वे अपने किये पर पश्चाताप करते हुए मेरी शरण में आते हैं तब वे मुझसे दूर नहीं रह जाते, मेरे समीप स्थान पाते हैं।

१०७१ भक्त सताये जाते वाणी से, कायिक दण्ड से। सत्य को सताने वाला कौन? यह भी भ्रम ही है।

ऐ प्राणी! बाहर से देखने में ऐसा लगता है कि जो भक्ति करते हैं उन्हें दुनिया अनेक प्रकार से कष्ट देती है—वाणी से भी कष्ट पहुँचाती है तथा शारीरिक बल का प्रयोग भी करती है। ऐसा समझने वाले अभी भूल में हैं। उन्हें मालूम नहीं कि दण्ड देने वालों का दण्ड बाहर ही रह जाता है, सत्य वाले के समीप नहीं पहुँच पाता। सत्य वाला तो अपने भाव में निमग्न हो आनन्द मनाता रहता है। उसे शरीर का भान भी नहीं रहता, फिर 'कौन क्या कह रहा है, कौन क्या कर रहा है' इस पर वह कब ध्यान देने लगा? साधारण प्राणी के लिये चूँकि शरीर ही प्रधान रहता है अतः वे भ्रमवश यही समझते हैं कि भक्तों को सताया जाता है। ऐसे जन सत्य की सत्ता से अनजान हैं, वे यह नहीं जानते कि सत्य को सताने वाला कोई नहीं हो सकता।

१०७२ मेरे बालक का बाल भी बाँका न कर सकेगी दुनिया। यह दण्ड उन्हीं के लिये पश्चाताप बन जाता है।

ऐ प्राणी! मेरे बालक का अहित कभी हो ही नहीं सकता। जो उन्हें दण्ड देने की चेष्टा करते हैं उनका अवश्य अहित हो जाता है, वे तब तक चैन से नहीं बैठ पाते जब तक कि उन्हें अपने किये कराये के लिये पश्चाताप नहीं हो जाता। देख, जब कोई एक प्रकाश की ओर बढ़ता है तब हमेशा अंधेरे में रहने वाली दुनिया उसे सहन नहीं कर पाती और यही कारण है कि वह उसे सताने में कोई कसर नहीं उठाती। किन्तु उसके द्वारा पहुँचाये गये कष्ट मेरे बालक तक नहीं पहुँच पाते क्योंकि मेरा बालक मेरी छत्रछाया में रहता है, मैं सदा उसके साथ बना रहता हूँ।

१०७३ सूखी दुनिया को सुखी बना। यह तेरे बायें हाथ का खेल है। कोई आये भी तो।

ऐ प्राणी ! ईश्वर सब कुछ करने में समर्थ है किन्तु उनके लिये जो ईश्वर के हैं। जो ईश्वर को जानते नहीं, पहचानते नहीं, भूले-भटके भी उसकी ओर देखते नहीं—ईश्वर चाहते हुए भी उनका कुछ नहीं कर सकता। किन्तु जो ईश्वर के समीप पहुँच जाते हैं अर्थात् भूले-भटके भी जिनके हृदय पटल पर ईश्वर की स्मृति उभर आती है वे हमेशा सुखी रहते हैं। उनके जीवन से शुष्कता विदा हो जाती है तथा उनके हर पल पर हरियाली छा जाती है—इसी दुनिया में वे आनन्दपूर्वक रह पाते हैं। देख, अधिकांश को स्थूल जगत का आकर्षण इतना भाया रहता है कि उसे छोड़कर वे मेरी ओर आना ही नहीं चाहते। ऐसे में मैं चाहकर भी उनको कुछ नहीं दे पाता, वे दुःखी ही बने रहते हैं। यदि उन पर अहेतुक कृपा भी होती है तो वे उसे नहीं समझ पाते, सदा अपनी दुनिया में खोये कष्ट पाते रहते हैं।

१०७४ प्रेम में व्याकुलता क्यों? अभी पहिचाना नहीं कि तू ही प्रेमी तू ही प्रेमिका।

ऐ प्राणी ! प्रेम का प्रादुर्भाव जब भक्त हृदय में होता है तब एक विचित्र सी व्याकुलता उसके हृदय में रहने लगती है। व्याकुलता के कारण वह शान्त नहीं बैठ पाता, 'क्या करूँ, क्या न करूँ' इसे भी नहीं समझ पाता। अनजाने में ही उससे अनेक कार्य होते हैं फिर भी व्याकुलता ज्यों की त्यों बनी रहती है। देख, व्याकुलता सबको नसीब नहीं होती, यह उनको ही नसीब होती है जिनको ज्ञात अज्ञात रूप से प्रियतम प्रभु अपना लेता है। किन्तु यह व्याकुलता भी एक समय तक ही रहती है। जब तक प्रेमी प्रियतम को अपने से अलग देखता है तब तक यह अपना आधिपत्य जमाये रखती है किन्तु एक समय पश्चात् जब प्रेमी इस तथ्य से अवगत होता है कि विकलता के रूप में भी मुझमें वही बसा है और पाना भी उसी को है अर्थात् सारा खेल एक उसी का है उस दिन विकलता उस रूप में नहीं रहती—रहता है एक प्रियतम प्रभु और उसी का जलवा सर्वत्र छा जाता है।

१०७५ मिल कर शान्त। नहीं, मिल कर भान ही न रहा शान्त, अशान्त का।

ऐ प्राणी ! प्रेमी के हृदय की तड़पन प्रियतम प्रभु से मिलन के पश्चात् उस

रूप में नहीं रह जाती जिस रूप में प्रथम दिखलायी पड़ती थी। इसका कारण यह है कि मिलन के पश्चात् प्रेमी में अहं का सर्वथा लोप हो जाता है। देख, शान्ति और अशान्ति दोनों को ही स्थान तब तक मिलता है जब तक व्यक्ति अपनी दुनिया में जीता है। जिस दिन उसकी दुनिया ईश्वरमयी हो जाती है उस दिन वह प्रभु प्रेम में रत हो आनन्द की दुनिया में रहता है। तब उसे अन्तर में आते जाते सभी भाव ऐसे दिखलायी देते हैं जैसे स्थूल चक्षुओं से स्थूल जगत दिखलायी पड़ता है अतः वह सभी स्थितियों का शान्त अवलोकन कर उनसे आनन्द पाता रहता है। ऐसी है यह प्रिय की दुनिया जिसका रस उसकी दुनिया में बैठकर ही पाया जा सकता है।

१०७६ बेचैनी और मुक्ति के लिए छटपटाहट क्या एक ही वस्तु है? आंशिक ठीक हो कथन, किन्तु मुक्ति की व्याकुलता अति दुष्प्राप्त। बेचैनी का क्या कहना सर्वत्र ही राज्य है उसका।

ऐ प्राणी! अभाव के कारण बेचैनी रहना तथा बेचैनी से मुक्त होने के लिये बेचैन रहना दोनों में बाहर से समानता सी दिखलायी पड़ सकती है किन्तु इनके भीतरी भावों में कहीं साम्यता नहीं रहती। देख, मुक्ति के लिये बेचैनी किसी-किसी को ही होती है जबकि अभाव के कारण बेचैनी सबमें पायी जाती है। मुक्ति की बेचैनी तब नहीं रह जाती जब व्यक्ति सत्य दृष्टि पाकर सत्य पथ का अनुगामी होता है। किन्तु अभाव की बेचैनी खत्म नहीं होती, इसका साम्राज्य सदा-सदा बना रहता है। देख, अभाव की बेचैनी जन्म के साथ-साथ प्रारम्भ हो जाती है। भूमिष्ठ होते ही प्राणी अभाव से घिर जाता है तत्पश्चात् जीवन पर्यन्त घिरा रहता है जब तक कि वह मुक्ति की बेचैनी नहीं पाता। अतः बाहरी कारणों से तू इन्हें एक जैसी न जान, तू अभावों से छुटकारा पाने के लिये इसका आह्वान कर कि यह तेरी अपनी बन जाये और तू सही मार्ग पर बढ़ पाये।

१०७७ बेचैनी जीवन है शरीर की। किन्तु सम भाव की क्रिया चैन का कारण बनती है। मन की बेचैनी अज्ञानता, जिसका निराकरण मन हो सकता है या किसी की कृपा।

ऐ प्राणी! जब तक शरीर रहता है तब तक बेचैनी भी रहती है किन्तु जहाँ समता के भाव आ जाते हैं वहाँ यह रहती हुई भी तकलीफ देह नहीं

रहती। सम दृष्टि वाला हर स्थिति का शान्त अवलोकन करता है अतः सभी स्थिति में शान्त बना रहता है। किन्तु जिन्हें सम भाव की प्राप्ति नहीं होती, उनका मन अज्ञानता से घिरे रहने के कारण सदैव बेचैन ही बना रहता है— वे हमेशा रोते रहते हैं तथा भाग्य को व ईश्वर को कोसते रहते हैं। देख, कहीं-कहीं यह बेचैनी मन बुद्धि के द्वारा भी मिटायी जाती है और कहीं-कहीं इसका निराकरण कृपा द्वारा होता है। मन बुद्धि द्वारा लिया हुआ सन्तुलन जब तक शरीर में ताकत रहती है तब तक टिकता है, एक समय पश्चात् जब शरीर शिथिल हो जाता है तब नहीं टिकता किन्तु सन्त कृपा पाकर तो भाव ही बदल जाते हैं। देख, जब मूल में परिवर्तन हो जाता है तब बेचैनी हमेशा-हमेशा के लिये पलायन कर जाती है और व्यक्ति चैन की वंशी बजाता है।

१०७८ प्रेम इतना आकर्षक क्यों? प्रेम प्राण है सृष्टि का, सृष्टि-कर्त्ता का।

ऐ प्राणी! प्रेम में अतुलनीय आकर्षण होता है। यह सृष्टि सजीव ही प्रेम के बल पर है, यदि प्रेम न होता तो यह सृष्टि टिक नहीं पाती, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती। देख, बच्चे का जन्म व उसका लालन पालन ये सभी प्रेम के प्रतीक हैं अर्थात् प्रेम प्राण है सृष्टि का। इतना ही नहीं, वह ईश्वर जो कण-कण में व्याप्त है उसे भी केवल प्रेम ही भाता है। उसके निमित्त कितना भी कुछ क्यों न कर लिया जाये किन्तु प्रेम का अभाव रहे तो वह उसे स्वीकार नहीं करता। वह रीझता है केवल प्रेम से क्योंकि प्रेम सृष्टि का भी प्राण है एवं सृष्टिकर्त्ता का भी प्राण है। अतः तू यदि सृष्टि का आनन्द लेना चाहता है तब भी और सृष्टिकर्त्ता को पाना चाहता है तब भी दोनों अवस्था में ही प्रेम धारण कर कि सृष्टिकर्त्ता तेरा अपना बन जाये और सम्पूर्ण सृष्टि का भी तू आनन्द ले पाये।

१०७९ अणु ने महान को छिपा रखा है हृदय में। अणु महान का सृजनकर्त्ता है। आवरण हटा। अणु ही महान।

इस विशाल संसार में मनुष्य की हस्ती एक अणु के समान है। अणु के समान होने पर भी उसमें ही वह शक्ति है जो अन्य किसी में भी नहीं अर्थात् मनुष्य में ही ईश्वर परिलक्षित होता है। ऐ प्राणी! ईश्वर जब भी जाना जाता है मनुष्य के द्वारा ही जाना जाता है। देख, मनुष्य ईश्वर का सृजनकर्त्ता

ही नहीं है, वह ईश्वर रूप है। आवरण के कारण वह भिन्न (अणु) सा दिखलाई देता है। जब उसमें ईश्वर को जानने की अभिलाषा जाग्रत हो जाती है और उसे खोजते-खोजते वह खो जाता है अर्थात् उसे शरीर का भान भी नहीं रह जाता तब ईश्वरीय भाव उसमें उद्भासित होने लगते हैं और जिस दिन उसे आवरण (अहं) का भी ध्यान नहीं रह जाता उस दिन वह अपने रूप में आ जाता है—वह ईश्वर रूप हो जाता है।

१०८० उत्साह अकर्मण्य को भी कर्म निष्ठ बनाता किन्तु सम्भव तभी जब लक्ष्य सम्मुख हो।

ऐ प्राणी ! उत्साह से असम्भव कार्य भी सम्भव होते देखे जाते हैं, उत्साह अकर्मण्य को भी कर्म निष्ठ बना देता है। किन्तु उत्साह जोर-जबर्दस्ती से पैदा करने की चीज नहीं, उत्साह के लिये सम्मुख ऐसा आकर्षक लक्ष्य चाहिये जो अपनी ओर खींचता रहे। देख, प्रेम ऐसा ही होता है। प्रेम के अवतार सन्त के जब दरशन होते हैं तब उनकी भाव भरी वाणी सोये प्राणी में नवचेतना भरने लगती है। प्राणी उस वाणी को सुनकर सोया नहीं रह सकता, वह उसे (प्रेम को) पाने के लिये तत्पर हो उठता है। प्रेम की प्राप्ति के लिये उसमें असीम उत्साह आ जाता है, वह कुछ भी करने के लिये तत्पर हो जाता है। वह तब तक तल्लीन हुआ बढ़ता जाता है जब तक पूर्ण प्रेम को पूर्ण रूपेण पा नहीं जाता। ऐसा है यह प्रेम (लक्ष्य) जो सोये प्राणी में उत्साह भर देता है और उसे कर्मनिष्ठ बना देता है।

१०८१ दिखला पाना आसान नहीं। दिखलाना और पाना यह तो अपूर्ण भाव है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के सामीप्य से जो कुछ मिलता है उसे दिखलाने की भावना व्यक्ति में तब तक रहती है जब तक कि उसका व्यक्तित्व ईश्वरीय सत्ता में विलीन नहीं हो जाता—ईश्वर से कुछ पाने की अभिलाषा भी उसमें तभी तक रहती है। देख, ईश्वरीय सत्ता का पसारा कुछ ऐसा ही है कि जब तक उसे दूर से देखा जाता है तब तक देखने का आनन्द मिलता है किन्तु जब समीप से देखा जाता है तब देखने वाला अलग नहीं रह पाता, उसी में मिलकर एक हो जाता है। अतः जिनका ऐसा भाव है कि 'ईश्वर को दिखला पाना आसान नहीं' वे चाहे कितने भी नामी ग्रामी हों अथवा उनके

कितने ही अनुयायी हों, अभी उनका भाव अपूर्ण है क्योंकि जहाँ पूर्णता के भाव विद्यमान हैं वहाँ न दिखलाने के भाव रहते हैं और न पाने के—रहता है केवल आनन्द का साम्राज्य जिसे वे जन-जन में लुटाते रहते हैं।

१०८२ संकोच न कर। विशालता व्याकुल हो रही है।

ऐ प्राणी! तू छोटा नहीं है, संकोच को पकड़े रहने के कारण तू स्वयं को छोटा अनुभव कर रहा है। देख, तंग स्थान में बड़ी चीज नहीं समाती, तू भी जब तक संकोच को पकड़े रहेगा तब तक विशालता तेरे समीप आने के लिये दूर खड़ी छटपटाती रहेगी। जिस दिन तू संकोच का परित्याग कर देगा उस दिन विशालता पाने के लिये तुझे प्रयास नहीं करना पड़ेगा, विशाल भाव स्वतः तेरे समीप डेरा जमायेंगे। अतः तू जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी संकोच का परित्याग कर कि तेरे हृदय का छोटापन दूर हो जाये और तेरा हृदय विशाल भावों से सज जाये।

१०८३ विराट को छिपा रहा है पाप पुण्य के आवरण में। बेचैनी कब दूर होगी?

ऐ प्राणी! तू यदि पाप पुण्य के चक्कर में पड़ जायेगा तो इनसे उबरना तेरे लिये कठिन हो जायेगा। तब तू बाहर के कार्यों में ही उलझा रहेगा—कुछ कार्यों को पुण्य का नाम देगा तथा कुछ को पाप कहेगा और इन्हीं में उलझा हुआ तू अपने विराट भाव को भूलता जायेगा। ये पाप पुण्य तब तेरे लिये आवरण बन जायेंगे और इनके कारण तू स्वयं से दूर होता जायेगा। देख, भीतर वाले की उपेक्षा करके बाहर के कितने ही कार्य क्यों न सम्पादित कर लिये जायें उनसे शान्ति नहीं मिल सकती। हृदय की विकलता का दूर होना भाव परिवर्तन से ही सम्भव है, कार्य से नहीं। अतः तू अपने कार्यों को न बदल तू वह भाव पा जो तेरे सुप्त विराट भाव को जाग्रत कर दे, तभी तू अपने रूप को पा सकेगा अन्यथा पाप पुण्य के चक्कर में विराट छुपा ही रह जायेगा और तेरे हृदय की तड़पन भी कभी दूर न होगी।

१०८४ दिल बदलना चाहता है तो किसी ऐसे को बसा जो तेरा दिल ही बदल दे।

ऐ प्राणी! सन्त सत्य की प्रतिमूर्त्ति होते हैं। उनकी वाणी उनका

भाव, उनके विचार व उनके दरशन सभी प्राणी की सोयी चेतना को जगाने वाले होते हैं। उनका आगमन ही संसार सागर में डूबते प्राणी की रक्षा करने हेतु होता है। दुनियावी व्यवहारों को करते-करते जब व्यक्ति दुःखी हो जाता है किन्तु उनसे बचने का कोई रास्ता नहीं पाता तब संत के दरशन ही संजीवनी बूटी का काम करते हैं—सन्त वाणी उसे ढाढ़स बँधाती है। देख, सन्त का क्षणिक सम्पर्क ही राहत देता है और सन्त यदि दिल में बस जाये तो दिल की दुनिया ही बदल जाती है। तब व्यक्ति बहकने से बच जाता है और उन्हीं राहों पर कदम बढ़ा पाता है जो सत्य की ओर ले जाने वाले हैं, उन रास्तों पर उसका एक कदम भी नहीं उठता जो गुमराह करने वाले हैं। अतः तू यदि दिल बदलना चाहता है तो सन्त की वाणी सुनकर ही सन्तोष न लेना तू उन्हें हृदय में स्थान देना कि तेरे दिल की उजड़ी दुनिया सज जाये, तेरा दिल ही बदल जाये।

१०८५ सृष्टि को पाप पुण्य में समझा, प्यार को वासना। तेरा मेरा समझौता कैसा ?

ऐ प्राणी ! मैंने सृष्टि का सृजन आनन्द के लिये किया किन्तु तूने इससे आनन्द नहीं लिया, तू इसमें पाप पुण्य खोजता रहा। मैंने तुझ पर व्यक्ति-वस्तु आदि के रूप में अपना प्यार लुटाया किन्तु तूने प्यार की कीमत नहीं की, तूने इन्हें उपभोग (वासना पूर्त्ति) का साधन बनाया। अब यदि तू यहाँ कष्ट पाता है तो इसमें आश्चर्य क्या है क्योंकि प्रारम्भ से ही तू गलती पर है। ऐसे में तेरा मेरा समझौता कैसे हो ? देख, मुझसे समझौता करने का एक ही रास्ता है वह यह है कि तू बीती हुई बातों को भूलकर आज भी मेरा बन जा। तू यदि आज भी मेरी शरण में आ जायेगा तो तेरी दृष्टि बदल जायेगी और तभी तू सही मायने में जीवन व जगत का आनन्द ले पायेगा। तब यह सृष्टि तेरे लिये आनन्द का उद्यान बन जायेगी और जो कुछ तू पायेगा उसमें मेरा प्यार देख पायेगा।

१०८६ अनेक तरंगें एक के लिए। अनेक धर्म एक के लिए फिर विवाद क्यों ? वाद क्यों ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर एक है किन्तु एक ईश्वर के समीप जाने के लिये भिन्न-भिन्न प्राणियों के भिन्न-भिन्न (अनेक) मत हैं और उन मतों के अनुसार ही अनेक धर्मों का भी सृजन हुआ है। देख, ये अनेक तरंगें (मत) और अनेक

धर्म सब एक के लिये हैं, ये अनेक से दिखलायी देते हुए भी एक हैं क्योंकि सबके मूल में वह 'एक' है। अतः "कौन सा धर्म बड़ा है, कौन धर्म छोटा है, कौन धर्म सही है, कौन धर्म गलत है" तू इस विवाद में न पड़ और न इन्हें भला बुरा ही कह। जब तेरे हृदय में ईश्वर मिलन की व्याकुलता होगी तब तेरे लिये जो रास्ता उचित होगा वह एक रास्ता तुझे अवश्य मिल जायेगा जिस पर बढ़ता हुआ तू एक को पा जायेगा। अन्यथा वाद विवाद में पड़ा हुआ तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

१०८७ प्रेम का ढंग ही निराला। कोई त्याग करता, कोई अपनाता प्यार के लिए। कैसा आश्चर्य ?

ऐ प्राणी! प्यार के कोई कार्य नहीं होते, प्यार एक भाव है जिसका प्रादुर्भाव हृदय में होता है। प्यार समर्पण के भावों से सजा रहता है, मोह-वासना-स्वार्थ आदि की इसमें गन्ध भी नहीं रहती। इसका प्रादुर्भाव जब हृदय पटल पर होता है तब बाहर के कार्य भी निराले ढंग के होने लगते हैं। कहीं यह त्याग के रूप में सम्मुख आता है और कहीं अपनाने के रूप में अर्थात कोई सब कुछ छोड़कर प्रिय की खोज करता है और कोई सबमें एक उसी का जलवा देखना चाहता है। देख, प्यार के लिये तू कभी बाहर के कार्यों में न उलझना, तू भीतर के भावों को अपनाना फिर तुझे 'क्या करना है, क्या नहीं करना है' यह सोचना नहीं पड़ेगा, तू स्वतः प्रेम पथ को पा जायेगा और उस पर बढ़ता हुआ प्रिय प्रभु के समीप पहुँच जायेगा।

१०८८ मन्दिर है तो मन लगा प्यार में, दर दर न भटक। मस्जिद है तो मत जिद्द कर। गिरजा है तो गिर चरण कमलों में। जा अब आनन्द ही आनन्द है।

ऐ प्राणी! हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई सबका जन्मदाता एक ईश्वर है, वही सबका सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता है। ये मन्दिर, मस्जिद व गिरजे भी उस एक के ही प्रतीक हैं। देख, मन्दिर में बसा भगवान संकेत देता है कि ऐ प्राणी! तू इधर-उधर भटकना छोड़कर मुझसे प्यार कर क्योंकि मैं ही एक तेरा हूँ। मस्जिद से संकेत मिलता है कि तू जिद्द पर न अड़, तू नम्रता धारण कर अन्यथा तू मुझसे दूर ही रह जायेगा और गिरजे की पुकार है कि तू देर न कर, तू चरण कमलों पर झुक जा कि तू मेरा बन जाये। देख,

मेरा बनकर तू जहाँ भी बैठेगा वहाँ आनन्द तेरे साथ होगा अन्यथा तू विभेद देखता हुआ धर्म के नाम पर भी झगड़ता ही रह जायेगा ।

१०८९ क्यों मिथ्या शब्दों का प्रयोग करता है जब भाव ही नहीं, हृदय में चाव ही नहीं ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के बारे में तू तब तक कुछ न बोल जब तक कि ईश्वर तेरा अपना न बन जाये, ईश्वर को तू देख न पाये । देख, ईश्वर कोई शरीर धारी व्यक्ति नहीं जिसे तू स्थूल चक्षुओं से देख लेगा या उसके समीप पावों से चलकर चला जायेगा या हाथों से उसकी सेवा कर लेगा । ईश्वर की अनुभूति भाव में होती है एवं जब उसे पाने के लिए हृदय में चाव होता है तब होती है । अतः प्रथम तू बातें बनाना छोड़कर सत्संग कर जहाँ बैठकर तेरे हृदय में भाव की जाग्रति हो और ईश्वर मिलन के साज स्वतः सज जायें । ईश्वर की अनुभूति पाकर जब तेरा हृदय प्रेम से सराबोर हो जायेगा तब तू ईश्वर के बारे में जो कुछ कहेगा वे केवल शब्द नहीं होंगे उन शब्दों में ईश्वर छुपा होगा जो सबको सरसता प्रदान करता रहेगा ।

१०९० हृदय में प्रिय का वास, फिर क्यों उदास ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर सबमें बसा है । सबमें बसा रहने पर भी ईश्वर को सब नहीं देख पाते, ईश्वर को वे ही देख पाते हैं जो उसे देखना चाहते हैं । देख, ईश्वर को देखने की ललक जिनके हृदय में जग जाती है एवं ईश्वर को देखे बिना जिन्हें चैन नहीं मिलता वे भाग्यशाली नर ही हृदय में ईश्वर को प्रतिष्ठित देख पाते हैं—जीवन का आनन्द भी वे ही ले पाते हैं । अन्य जन हृदय में प्रिय का वास रहने पर भी उदास ही बने रहते हैं । वे पढ़ी सुनी बातों के आधार पर केवल बुद्धि से समझते हैं कि ईश्वर सब जगह है किन्तु वे स्वयं ईश्वर से बहुत दूर रहते हैं । उनकी दुनिया दुःख से भरी होती है, उससे वे हमेशा कष्ट पाते रहते हैं ।

१०९१ प्यार की प्यास है तो प्रिय पास है ।

ऐ प्राणी ! जिनके हृदय में प्यार पाने की तड़प होती है उन्हें एक न एक दिन ईश्वर अवश्य मिल जाता है क्योंकि ईश्वर ही सबका अपना है, सच्चा प्यार केवल उसी के समीप मिलता है । अन्य जगह प्यार की झलक

दिखलायी दे सकती है प्यार नहीं मिल सकता क्योंकि वहाँ प्यार रहता ही नहीं है। देख, जो स्वयं भूखे हैं वे किसी को क्या प्यार देंगे, वे यदि कुछ देंगे भी तो बदले में कुछ चाहेंगे—ऐसा प्यार तो प्यार कहलाने के योग्य भी नहीं। प्यार में स्वार्थ का नामलेश भी नहीं रहता, यदि कुछ रहता है तो केवल प्यार ही रहता है जिसे पाकर हृदय दीप जगमगा उठता है एवं जन्म-जन्मान्तर का अन्धकार खत्म हो जाता है—ऐसा प्यार ही ईश्वर है। ऐसे प्रेम रूप प्रभु के दरशन उन्हीं को मिलते हैं जिनके हृदय में प्यार की प्यास रहती है।

१०९२ बृज की वीथियों में भ्रमण करता श्याम, हृदय की ग्रन्थियों को सुलझा न सका जब तक आराधिका न मिली, राधिका न मिली।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में श्याम समाया हुआ है इसीलिये यह विश्व इतना आकर्षक है। सबके इतना निकट होने के पश्चात् भी वह (श्याम) मनुष्य के हृदय में पड़ी ग्रन्थी (शंका, सन्देह आदि) को नहीं सुलझा सकता, मनुष्य उनसे हमेशा परेशान बना रहता है। इसका कारण यह है कि श्याम अवश्य सबमें समाया हुआ है किन्तु श्याम में सब समाये हुए नहीं हैं अर्थात् अति निकट रहने के पश्चात् भी श्याम को सब इतने निकट नहीं देख पाते। देख, श्याम उनके हृदय की ग्रन्थियों को ही सुलझा सकता है जो श्याम की आराधना में रत हैं एवं जिनके हृदय में राधा की तरह प्रेम प्रवाहित हो रहा है। ऐसे जन ही श्याम को समीप देख पाते हैं, उनका हृदय ही शुद्ध स्वच्छ व निर्मल रहता है—शंका, सन्देह आदि भाव उनके समीप टिक नहीं पाते।

१०९३ सुबह शाम यदि श्याम श्याम कहता तो आराम आता, राम आता।

ऐ प्राणी! हृदय में रमण करते हुए राम को देख पाना उनके लिये ही सम्भव है जिन्हें बाहर श्याम आकृष्ट करता हो। देख, यों तो श्याम सबमें समाया है किन्तु कहीं कहीं वह अधिक परिलक्षित होता है। जिनका हृदय दर्पण की तरह स्वच्छ है उनमें स्वाभाविक आकर्षण होता है, वे राम रूप हो जाते हैं, उनकी वाणी व उनके दरशन सभी अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। राम और श्याम का यह अद्भुत सम्मिश्रण प्राणी की सोयी भावना

को जाग्रत करने वाला होता है। ऐसे सन्त के समीप बैठकर प्राणी अपने अन्तर में रमण करते हुए राम को देख पाता है, आराम भी वहीं ले पाता है। अन्य जन तो कर्त्तापन का बोझ लिये हुए दुःख चिन्ता आदि से ही घिरे रहते हैं, आराम नाम की कोई चीज ही उनके जीवन में नहीं रहती।

१०९४ पूजा की विधि है किन्तु प्रेम असीम है। विधि निषेध कैसा?

ऐ प्राणी! पूजा के तरीके बनाये हुए हैं किन्तु प्रेम का कोई तरीका नहीं होता। प्रेम असीम भाव है, इसका प्रादुर्भाव जब होता है तब सभी बन्धन टूटने लगते हैं अर्थात् 'ऐसा करना चाहिए और ऐसा नहीं करना चाहिये' आदि विधि निषेध नहीं रह जाते—रह जाता है केवल प्रेम और उसी के द्वारा प्रेमी एक दिन प्रेमास्पद प्रभु को पा जाता है। देख, वह ईश्वर जो पूजा पाठ आदि से खुश नहीं होता वह भी प्रेम बन्धन में बँध जाता है, इतना ही नहीं, जिस हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो जाती है उस प्राणी के भी जन्म-जन्मान्तर के बन्धन कट जाते हैं क्योंकि प्रेम असीम भाव है।

१०९५ किसे भला बुरा कहेगा, सभी तो त्रिगुणात्मक वृत्तियों का खेल है।

ऐ प्राणी! यह सृष्टि त्रिगुणात्मक (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) वृत्तियों का खेल है। इसमें कहीं सतोगुण की अधिकता पायी जाती है, कहीं रजोगुण की और कहीं तमोगुण की। सतोगुण में शान्त भाव की अधिकता होती है, रजोगुण में ठाटबाट के साज अधिक रहते हैं और तमोगुण में हिंसा की भावना का प्रावल्य रहता है चाहे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में क्यों न चला जाये। किन्तु ये भाव उसमें स्थायी नहीं रहते, जैसा उसे संग साथ मिलता है उसी के अनुसार उसके भाव भी बदलते रहते हैं। अतः बुराई को देखकर तू कभी किसी से घृणा न करना क्योंकि व्यक्ति बुरा नहीं होता, बुराई बुरी होती है और बुराई जैसे आ सकती है वैसे ही जा भी सकती है।

१०९६ मन शान्त न हुआ। क्यों? मन जाने। मन जाने? मन जाने क्यों कहता है? मन माने तो शान्ति ही शान्ति।

ऐ प्राणी! जब तक तू मन के इशारे पर नाचता रहेगा तब तक तेरा मन कभी शान्त नहीं होगा, तू ही मन के इशारे पर नाचते-नाचते एक दिन शान्त

हो जायेगा। किन्तु जब तू मन के इशारे पर नाचना छोड़कर उसके इशारे पर नाचेगा जो सबको नचाने वाला है तब बात ही बदल जायेगी, तब तू उस शान्ति के दरशन कर पायेगा जिसे पाने के लिए ऋषि मुनि वर्षों-वर्षों तपस्या करते हैं। उस दिन तेरा मन भी चक्कर काटना भूल जायेगा। देख, यह मन अनजाने में ही चक्कर काटता है क्योंकि इसे पता नहीं कि शान्ति कहाँ है ? जिस दिन यह भूले भटके भी मनमोहन के दरशन पा जायेगा उस दिन यह अन्यत्र चक्कर काटना छोड़कर मनमोहन के चरणों का ही भँवरा बन जायेगा तथा चरण कमलों का ही रसपान करता रहेगा। अतः तू मन को शान्त करने की चेष्टा न कर तू उस सत्य आकर्षण की खोज कर जो तुझे अपनी ओर खींच ले। फिर मन की दौड़ स्वतः खत्म होगी तथा शान्ति तेरी सहचरी होगी।

१०९७ जप करूँ, तप करूँ ? क्या क्या करूँ ? प्यार कर प्रभु को, उसके बन्दों को दुनिया ही बदल जायेगी।

ऐ प्राणी ! तेरी यह धारणा बनी हुई है कि ईश्वर को पाने के लिये कठिन साधन (जप तप आदि) ही अपनाने पड़ते हैं किन्तु बात ऐसी नहीं है। देख, ईश्वर तेरा अपना है, उसे तेरे साधन भजन नहीं चाहिये तेरा प्यार चाहिये। यदि तू प्यार दुनिया से करेगा तथा व्यवहार (जप तप आदि) उससे करेगा तो तू उसे कभी नहीं पा सकेगा किन्तु व्यवहार दुनिया से करेगा और प्यार उससे करेगा तो तेरी बात बन जायेगी क्योंकि शरीर के साथी व्यवस्था ही चाहते हैं और तेरा प्रभु प्यार ही चाहता है। ईश्वर से प्यार हो जाने से तेरी दुनिया ही बदल जायेगी, उसमें प्यार ही प्यार भर जायेगा अर्थात् ईश्वर का प्यार पाकर ही तू सबसे प्यार कर पायेगा, तेरी दुनिया ही सुनहली हो जायेगी।

१०९८ वे चिनगारियाँ जो प्रकाश देती हैं, वे चिनगारियाँ जो जलाती हैं—एक ही का खेल है। चाहे जलो चाहे प्रकाश लो। चाहे वासना कहो चाहे प्रेम।

ऐ प्राणी ! अग्नि से निकलने वाली चिनगारियाँ प्रकाश भी देती हैं और जलाती भी हैं—वैसा ही विचारों का भी खेल है। हर समय आते जाते विचार प्रकाश भी दे सकते हैं और जीवन को जलाकर खाक भी कर सकते हैं। देख, मनुष्य अपनी भावना के अनुसार ही विचारों से सुख दुःख पाता

है। जो जीवन का आनन्द पाना चाहते हैं वे हमेशा सतर्क रहते हैं, वे आते जाते विचारों का शान्त अवलोकन करते हैं तथा उनके भले बुरे परिणामों को जानते हुए उन्हीं विचारों को प्रश्रय देते हैं जिनसे उनका आनन्द बरकरार रहे। किन्तु जो यहाँ आकर गफलत में जीवन बिताते हैं वे सतर्क नहीं रह पाते, वे विचारों में ही घुलमिल जाते हैं तथा उनके कुपरिणामों को भोगते रहते हैं। जो सतर्क रहते हैं वे उन्हीं विचारों के बीच रहकर प्रेममय बन जाते हैं किन्तु असावधान हमेशा रोते रहते हैं, उनकी आकांक्षाएँ कभी खत्म नहीं होतीं—उसे पूरी करने के लिये वे बार-बार आते जाते रहते हैं।

१०९९ प्रतीक्षा उसकी जो हृदय में बसा है—तो आयेगा, जायेगा कहाँ? यदि कार्य विशेष की प्रतीक्षा है तो सम्भव है, इच्छा पूर्ण हो।

ऐ प्राणी! तू अपने अन्तर की चाह को पूरी देखना चाहता है तो एक दिन अवश्य देख पायेगा किन्तु कार्यों की यह बात नहीं। देख, तेरी दृष्टि ससीम है, तू अपने ढंग से चाह को पूरी करने के लिये कार्य की कल्पना करता है। जब उसमें बाधा आती है तब भाग्य को कोसता हुआ तू रोता चिल्लाता है और यही समझता है कि तेरे हृदय के अरमान तेरे हृदय में ही धरे रह जायेंगे। किन्तु बात ऐसी नहीं है समयानुसार अन्तर की चाह अवश्य पूरी होती है। यदि उसके पूरी होने में देर दिखलायी देती है तो यही कहना होगा कि अभी या तो तीव्रता में कहीं कमी है या अभी उसका समय नहीं आया है इसीलिये देर है। अतः तू सब्र से काम ले, धीरज का फल मीठा होता है—धीरज से चाह को तू एक न एक दिन अवश्य मूर्त होते देख पायेगा। किन्तु यदि तुझे कार्य विशेष की प्रतीक्षा है तो शायद तेरी इच्छा पूर्ण न भी हो।

११०० यदि कृष्ण की बाँसुरी कंस को शान्त न कर सकी, गीता कौरव, पाण्डव को ज्ञान न दे सकी तो ये कथाएँ, प्रवचन कहाँ शान्त कर सकेंगे? यह शान्ति अशान्ति का युद्ध है, चला आ रहा है।

ऐ प्राणी! इस संसार में विभिन्न प्रकार के प्राणी हैं। यहाँ कुछ शान्ति से जीवन यापन करना चाहते हैं और कुछ अशान्ति के बिना रह नहीं पाते—अशान्ति उनके जीवन का अंग बन जाती है। देख, कृष्ण की बाँसुरी जो

प्रेम का वर्षण करने वाली है वह भी ऐसे जन को शान्त नहीं कर पाती क्योंकि वे अभी प्रेम चाहते ही नहीं। ऐसे ही ज्ञान की बातें भी सबके हृदय में आलोक नहीं फैलातीं, जो सच्चे जिज्ञासु हैं उन्हें ही भाती हैं एवं उनके हृदय में ही ठहरती हैं। ज्ञान के आलोक में उनके हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है। अन्य जन यदि उन बातों को सुनते भी हैं तो उनका लाभ नहीं उठा पाते क्योंकि उन्हें अभी अज्ञान अन्धकार ही प्रिय है। अतः तू ऐसा न समझ बैठना कि कथाएँ एवं प्रवचन सबको शान्ति दे सकते हैं। देख, ये उन्हीं के लिये फलदायी होते हैं जो प्रेम के पिपासु हैं एवं जो जीवन का आनन्द लेना चाहते हैं किन्तु जिन्हें अशान्ति ही प्रिय है वे तो हमेशा शान्ति को भंग करने की चेष्टा में ही लगे रहते हैं।

११०१ भक्त ने कभी संशय न किया भगवान में, तभी भगवान को पा सका, अन्यथा उसका जप, तप यों ही रह जाता।

ऐ प्राणी ! भगवान केवल जप-तप से नहीं मिलता, उसे पाने के लिये पूर्ण विश्वास भी चाहिये। जब तक संशय के लिये थोड़ा भी स्थान रहता है तब तक उसे पाना कठिन होता है। भक्त ने भगवान की सत्ता में कभी संशय नहीं किया, उसका हृदय हमेशा भगवान के चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित करता रहा, तभी उसका जप-तप भी फलदायी हुआ अन्यथा केवल जप-तप से वह भगवान को कभी नहीं पा सकता था। देख, संशय हृदय की मधुरिमा को खत्म करने वाला है, यह वह कीड़ा है जो भीतर ही भीतर प्राणी को खोखला कर डालता है। यह जिस हृदय में स्थान पा जाता है वह व्यक्ति न सुख से सो सकता है और न चैन से खा पी सकता है, उसे हमेशा संशय ही घेरे रहता है। अतः तू यदि ईश्वर की शरण का आनन्द पाना चाहता है तो पूर्ण विश्वास के साथ ईश्वर की शरण ग्रहण करना अन्यथा बहुत कुछ करके भी तू ईश्वर को कभी नहीं पा सकेगा।

११०२ मैंने तुझे स्पर्श दिया वायु से, वासना क्यों समझ बैठा ?

ऐ प्राणी ! मैं सदा तेरे साथ था, सदा साथ हूँ और सदा साथ रहूँगा। देख, आज भी मैं तुझे वायु के रूप में स्पर्श दे रहा हूँ किन्तु तू मेरे इस प्यार से अनजान है अतः मुझे भुलाकर शरीर को वासना पूर्त्ति का साधन बनाये हुए है। तू यही समझता है कि इस शरीर द्वारा जो कुछ भी भोग लिया जाये उतना ही कम है। अरे पगले ! प्रेम के इस प्रतीक (शरीर) को वासना पूर्त्ति

का साधन बनाकर तू जीवन में जहर घोल रहा है—ऐसे में तू कभी चैन नहीं पायेगा। अतः 'यह शरीर क्यों मिला है और यह किसके सहारे टिका है' इस तथ्य को तू आज भी जान ले कि प्रेम के द्वारा तथा प्रेम के लिए मिला तेरा यह कीमती जीवन मिट्टी में न मिल जाये अर्थात् अधिक से अधिक स्थूल को भोगने में लगा हुआ तू मुझसे दूर न होता जाये—तू मेरे प्रेम की कीमत कर पाये।

११०३ जहाँ गया मोह फैलाया। प्यार बरसा न सका। फिर आनंद कहाँ? कर्दम में फँसना क्यों?

ऐ प्राणी! शरीर जैसे-जैसे प्रधान होता जाता है वैसे-वैसे व्यक्ति मोह से जकड़ता जाता है एवं प्यार से दूर होता जाता है। देख, मोह में दुःख ही दुःख है क्योंकि मोह में सही देखने की दृष्टि नहीं रह जाती। मोह में जकड़ा हुआ व्यक्ति हर घटनाक्रम को अपने ढंग से ही देखता है, वह उनमें दुःख ही दुःख बटोरता है—आनन्द उससे कोसों दूर हो जाता है। देख, तुझे यह जीवन कष्ट पाने के लिये नहीं मिला है आनन्द मनाने के लिये मिला है अतः तू जहाँ जाता है वहाँ शरीर को फैलाकर न बैठ, स्वयं को भूल कर बैठ अर्थात् प्यार का वर्षण कर। प्यार की क्षण भर की अनुभूति भी तुझे सरसता प्रदान करेगी और यदि तेरा जीवन प्यार से सज गया तो तू अपने चारों ओर आनन्द ही आनन्द देख पायेगा। उस दिन संसार में तुझे कहीं कष्ट नजर ही नहीं आयेगा, केवल संसार का रचयिता ही नजर आयेगा जिसे देखता हुआ तू मौज मनायेगा।

११०४ छाप लगवायी शरीर पर। छापा मार न सका दिल पर। दाग ही न रह गया शरीर पर।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरे दिल में प्रतिष्ठित है और तू उसे बाहर के कार्य दिखाकर रिझाने की चेष्टा करता है—ऐसे में सौदा कैसे पटे। देख, ईश्वर को रिझाने के लिये तुझे हृदय की सरलता अपनानी होगी। जैसे-जैसे तेरा हृदय शुद्ध व निर्मल होता जायेगा वैसे-वैसे तू ईश्वर के करीब होता जायेगा। अन्यथा शरीर पर छाप लगवाकर तू अन्य के सम्मुख भक्त बन जायेगा किन्तु ईश्वर को नहीं पा सकेगा। अतः ईश्वर को पाने के लिए तू शरीर पर दाग न लगा तू दिल की दुनिया को बसा (सजा) कि तेरा प्रभु तुझसे दूर न रह पाये, तू उसे दिल में ही प्रतिष्ठित देख पाये।

११०५ कच्ची और सच्ची के लिए क्यों माथापच्ची ? कच्ची है तो टूट जायेगी और सच्ची है तो माथा शांत।

ऐ प्राणी ! तेरे जीवन का लक्ष्य सत्य पथ पर बढ़ना है तो तू इधर-उधर न देख, तू हमेशा सत्य की ओर देखता हुआ आगे बढ़ता चल। तू यदि इधर-उधर देखने में लग जायेगा अर्थात् 'किसका प्रेम सच्चा है और किसका प्रेम कच्चा है' इस उधेड़बुन में पड़ जायेगा तो तेरे दिल व दिमाग का सन्तुलन बिगड़ जायेगा और तेरे आगे बढ़ने में भी बाधा आयेगी। अतः तू इस माथापच्ची को छोड़कर सरल व सीधा सत्य का रास्ता पकड़। देख, जिसका जैसा भाव रहता है वह उसके लिए ही भला बुरा रहता है। जिनको तू समीप देखता है उनका प्यार यदि कच्चा है तो वे आज भी प्यार का आनन्द नहीं पा सकेंगे तथा एक समय पश्चात् उनका प्यार टिक भी नहीं पायेगा और यदि उनका प्यार सच्चा है तो वे आज भी मौज में रहेंगे और वह मौज हमेशा उनके साथ रहेगी क्योंकि प्यार ऐसा ही होता है।

११०६ मेरी खता ? तू लिखता है। ली भक्ति, शरणागति, प्रीति ? यदि नहीं, तो खता ही खता है। तो बता और जता, क्या करूँ ? प्रशान्त महासागर की तरह शान्त हो जा, फिर देख विचारों की लहरें तुझी में शान्त।

विभिन्न विचार मनुष्य को हमेशा परेशान बनाये रखते हैं। वह उन विचारों से कभी-कभी इतना परेशान हो जाता है कि उनसे छुटकारा पाने का रास्ता ढूँढ़ने लगता है। वह कभी कुछ लिखता है, कभी कुछ पढ़ता है फिर भी शान्त नहीं हो पाता। ऐ प्राणी ! तू केवल लिख पढ़कर शान्त नहीं हो सकेगा क्योंकि शान्ति कार्यों में नहीं शान्ति भक्ति में है, प्रीति में है, शरणागति में है। अतः तू यदि सचमुच शान्ति पाना चाहता है तो तुझे ईश्वर की शरण ग्रहण करनी होगी। देख, ईश्वर की शरण पाकर तुझमें भक्ति व प्रेम का जागरण हो जायेगा और तभी तू प्रशान्त महासागर की तरह शान्त हो सकेगा तथा प्रत्येक स्थिति का शान्त अवलोकन भी कर सकेगा। तब यदि अशान्त विचार तेरे समीप आयेंगे भी तो तुझे अशान्त नहीं कर सकेंगे, वे तुझ तक पहुँचते पहुँचते स्वतः शान्त हो जायेंगे और तू मौज में रह सकेगा।

११०७ मोहरें लुट रही हैं। नहीं चाहिये। प्रेम की मोहर लगी है दिल पर। अब मोहरें न्योछावर हो रही हैं कदमों पर।

ऐ प्राणी! ईश्वर प्रेमी केवल ईश्वर की ओर देखता है, बड़े-बड़े प्रलोभन भी उसे लक्ष्य से डिगा नहीं सकते। 'ईश्वर की समीपता में क्या है' इसे केवल वही जान सकता है। संसार की बड़ी से बड़ी उपलब्धियाँ भी प्रेम के सामने उसे तुच्छ लगती हैं। ऐसे प्रेम का रस चखने वाले के समीप प्रलोभन टिक नहीं सकते। देख, प्रेमी के दिल पर प्रेम की छाप लग जाती है, उसकी वाणी व उसके रोम-रोम से प्रेम का वर्षण होने लगता है। सांसारिक व्यवहारों से दुःखी प्राणी ऐसे प्रेमी के निकट आकर राहत पाते हैं, उनसे प्रेम पाने के लिये वे अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। यदि मोहरें लुटा कर भी प्रेम मिल जाये तो इसे वे अपना सौभाग्य समझते हैं। ऐसा है यह प्रेम जिसके सामने मोहरें तुच्छ होती हैं।

११०८ दिल बसा, विवशता आई। बस गया, अब रहा ही क्या?

ऐ प्राणी! जब तक दिल व्यक्ति-वस्तु के आधीन रहता है तब तक व्यक्ति छोटी-छोटी चीजों के लिये मोहताज बना रहता है। वह कभी खुश नहीं रह पाता, उसके जीवन में हमेशा कमी ही कमी बनी रहती है। किन्तु संयोग से वह कहीं एक झलक ईश्वर की पा जाये और उसके दिल में ईश्वर बस जाये तो जीवन से अभाव सदा के लिये विदा हो जाते हैं। देख, अपनी दुनिया जब तक रहती है तब तक दुःख, चिन्ता, कष्ट आदि अनेक कमजोर भाव हृदय में डेरा जमाये रहते हैं किन्तु जब हृदय में ईश्वर का वास हो जाता है तब कमजोर भाव स्वतः पलायन कर जाते हैं एवं हृदय पर उन भावों का साम्राज्य हो जाता है जो आनन्द बरसाने वाले हैं। तब और कुछ पाने की लालसा जीवन में नहीं रह जाती, रह जाता है केवल एक वही जो सम्पूर्ण विश्व का नियन्ता है, सम्पूर्ण विश्व जिसके चरणों की रज कण के समान है।

११०९ दिल से न खेल। कहीं लग गया तो किसी दुनिया का न रहेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर की झलक जब तक दिखलायी नहीं देती तब तक और बात है किन्तु जिस दिन उसकी एक झलक भी दिखलायी पड़ जाती है उस दिन उससे मुख मोड़ना कठिन हो जाता है—उसका रूप कुछ ऐसा ही है।

देख, सत्संग में बैठकर कहीं तेरे दिल में कुछ स्पर्श करता हो तो तू सोच समझ कर आगे कदम बढ़ाना क्योंकि ईश्वर से दिल यदि लग गया तो फिर उस पर तेरा कोई जोर नहीं रहेगा। तब तू यदि उसे रोकना भी चाहेगा तो वह रुकेगा नहीं क्योंकि वह आकर्षण होता ही ऐसा है। अतः दिल में रोग लगने से पहले ही तू सम्हल जा अन्यथा खेल-खेल में ही उससे तेरा मेल हो जायेगा जो मन बुद्धि से परे है, फिर लाख चेष्टा करके भी तू उसे नहीं छोड़ पायेगा।

१११० प्रथम पूजा की फिर प्रेम बढ़ा, प्रगाढ़ हुआ। अब? प्रियतम ही (सब) सर्वस्व है।

ऐ प्राणी! पूजा करते-करते कब अनजाने में ही ईश्वर से प्रेम हो जाता है इसका पता नहीं लगता। देख, प्रेम जब हो जाता है तब कभी जाता नहीं, आँखों से दिखलायी पड़ने वाला यह शरीर ही एक दिन चला जाता है। प्रेम की अग्नि हृदय में प्रज्वलित होने के पश्चात् व्यक्ति न सुख से सो सकता है और न चैन से खा सकता है—प्रभु मिलन की भावना उसे हर पल बेचैन बनाये रखती है। उसके हृदय की विकलता प्रेम को दिन ब दिन प्रगाढ़ करती रहती है और तब एक दिन ऐसा आ जाता है जब उसके जीवन में प्रियतम प्रभु के सिवा और कुछ नहीं रह जाता अर्थात् प्रियतम प्रभु ही उसका सर्वस्व हो जाता है। ऐसा है यह प्रेम जो पूजा करते-करते कब हृदय में डेरा जमा लेता है इसका पता भी नहीं देता और एक दिन प्रेमी के हृदय में अपना पूरा आधिपत्य जमा लेता है।

११११ मिले कब? जब खो बैठा दिल पहले ही।

ऐ प्राणी! जिनके लिये दुनिया प्रधान रहती है उनके दिल व दिमाग में सर्वत्र वही समायी रहती है। उनका दिल हमेशा धन-जन व मान-सम्मान में ही लगा रहता है चाहे उनसे वह जर्जरित ही होता रहे। देख, ऐसे जन शान्ति पाने के लिये ईश्वर का नाम तो लेते हैं किन्तु वे ईश्वर का सामीप्य नहीं पा सकते क्योंकि ईश्वर के सामीप्य से दुनिया का आकर्षण कम पड़ता है और यह उन्हें गँवारा नहीं। वे सच्ची शान्ति भी नहीं पा सकते, केवल समय विशेष के लिये पूजा करके कुछ राहत सी पाते हैं। देख, दिल एक है, यह एक को ही दिया जा सकता है। जब तक तेरे लिये दुनिया प्रधान रहेगी तब तक तेरा ईश्वर से मिलन सम्भव नहीं, यह तभी सम्भव हो सकेगा जब ईश्वर

प्रधान होगा। तब तेरे दिल में स्वतः ईश्वर की तस्वीर उतर जायेगी—जीवन पाने का सही आनन्द भी तू तभी पायेगा।

१११२ करना और होना। यदि तेरा हो जाता तो शायद करना कुछ न पड़ता। स्वतः कार्य होते जो तेरे हैं तेरे लिए हैं।

ऐ प्राणी! ईश्वर जब अपना हो जाता है तब ईश्वर के लिये कुछ काम करने नहीं पड़ते, स्वतः कुछ ऐसे काम होते हैं जो ईश्वर के करीब ले जाने वाले हैं। अतः तू ईश्वर को कार्यों द्वारा पाने की चेष्टा न कर, तू ईश्वर का अपना बन। जब तू ईश्वर का हो जायेगा अर्थात् जिस दिन तू स्वयं को ईश्वर की दुनिया में बैठा पायेगा उस दिन तुझसे कुछ ऐसे कार्य होंगे जिन्हें तू देखता ही रह जायेगा। वे कार्य तेरे नहीं होंगे, तू जिसका है उसके होंगे—वे कार्य ही तुझे ईश्वर से मिलायेंगे। अन्यथा दो चार जन्मों में भी तू कार्यों के द्वारा उसे नहीं पा सकेगा क्योंकि उसे कार्य नहीं, भाव चाहिये।

१११३ यह देखना भी एक प्रकार की भूल ही है। यदि देखते देखते मन लीन हो जाता तो तल्लीन हो जाता, किन्तु हुआ कहाँ?

ऐ प्राणी! ये स्थूल चक्षु केवल बाहर देख सकते हैं, इनसे व्यक्ति रूप, रंग व कार्य ही देख सकता है किन्तु भाव नहीं देख सकता और भाव के बिना देखना पूरा नहीं होता। देख, केवल बाहर देखने वाला अभी भूल में है। बाहर देखकर वह समय विशेष के लिए मोहित हो सकता है किन्तु उसका मन लीन नहीं हो सकता, वह तल्लीन नहीं हो सकता। मन लीन होने के लिए, तल्लीन होने के लिए वह भाव चाहिये जो हृदय में कुछ पाना चाहते हो। देख, तेरी वह दृष्टि अभी बन्द है, उसे तू अपनी चेष्टा से नहीं पा सकेगा सद्‌गुरु के द्वार पर पा सकेगा। अतः तू सद्‌गुरु की शरण ग्रहण कर कि उनकी भाव भरी वाणी तेरे अन्तर चक्षुओं को खोल दे जिसे पाकर तेरा मन लीन हो जाये। जिस दिन तेरा मन रस पाने लगेगा उसी दिन तू तल्लीन भी होगा अन्यथा तू बाहर ही बाहर चक्कर काटता रहेगा और तेरा अन्तर घट तरसता रहेगा।

१११४ घृणा धुँआदार, वहाँ कहाँ प्यार? कहाँ यार?

ऐ प्राणी! जहाँ घृणा के लिये स्थान है वहाँ प्यार नहीं आता क्योंकि वहाँ

घृणा का धुँआ तन-मन में इतना फैला रहता है कि प्यार रहते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता जैसे बादलों के घिर जाने से सूर्य नहीं दिखलायी देता। अतः तू यदि प्यार पाना चाहता है एवं प्रिय प्रभु का दरशन पाना चाहता है तो घृणा को भूलकर भी प्रश्रय न दे। घृणा जब तक तेरे समीप रहेगी तब तक लाख चेष्टा करके भी तू प्रेम को नहीं पा सकेगा और प्रेम को पाये बिना प्रिय प्रभु के दरशन पाना सम्भव नहीं। देख, घृणा को अपनाकर तेरा जीवन घृणित हो जायेगा, तू अपने आप से ही घबड़ा उठेगा किन्तु तू यदि प्यार पा जायेगा तो तेरा हृदय जगमगा उठेगा और तब तू प्रियतम प्रभु को हृदयासन पर विराजमान देख पायेगा।

१११५ प्यार को ऐसे कदमों पर रखा जिसने कीमत न जानी। रखता प्रिय के, दम टूटता, प्यार अमर रहता।

ऐ प्राणी! जिन्हें तू अपना कहता है तथा जिन पर तू प्यार लुटाता है वे तेरे प्यार की कीमत करने वाले नहीं क्योंकि वे स्थूल के उपासक हैं, उनके लिए स्थूल (व्यक्ति, वस्तु आदि) प्रधान है—वे प्यार को जानते ही नहीं। प्यार की कीमत प्रिय (प्रभु) करता है जिसके लिये तू पूजा-पाठ आदि तो सम्पादित करता है किन्तु जिससे तू प्यार करने की भूल नहीं करता। जिस दिन प्यार को तू उसके कदमों पर रख देगा अर्थात् जिस दिन ईश्वर तेरा अपना हो जायेगा उस दिन श्वासों की डोरी टूटने पर भी तेरा प्यार टूटने वाला नहीं, प्यार अमर हो जायेगा क्योंकि प्यार को तूने उन कदमों पर रखा है जो प्यार की कद्र करने वाला है। ईश्वर के चरणों में बैठकर तेरे प्यार की बगिया दिन ब दिन लहलहाती रहेगी, वह तेरे रोम-रोम पर आच्छादित हो जायेगी और एक समय ऐसा आयेगा कि तुझे अपना ध्यान ही नहीं रहेगा, तू केवल प्यार ही प्यार देख पायेगा—ऐसा प्यार ही अमर है।

१११६ इन बादलों को देख कर न घबड़ा। आनन्द की किरणें फैलने वाली हैं, आकुल क्यों?

ऐ प्राणी! यह प्रकृति का नियम है कि वर्षा होने के पूर्व आकाश में काले-काले बादल घिर जाते हैं। ऐसे ही जीवन में भी जब आनन्द की किरणें फैलने वाली होती हैं तब प्राणी को अनेक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। अतः ऊँची-नीची परिस्थितियों को देखकर तू कभी

घबड़ाना नहीं क्योंकि बहुत जल्दी ही तुझे कुछ विशेष उपलब्धि होने वाली है। तू यदि उन परिस्थितियों से घबड़ा जायेगा तो आने वाले समय का आनन्द नहीं ले पायेगा किन्तु यदि तू शान्त बना रहेगा तो आज भी तेरा मन खिन्न नहीं होगा और कल का भी तू आनन्द ले पायेगा। अतः तू आज धीरज से काम ले कि तू आज आकुल व्याकुल न हो पाये, तटस्थ रहकर प्रसन्नवदन हो परिस्थितियों का सामना कर सके।

११७ वह लोक कहाँ जिसे ऋषियों ने कल्पना से देखा? कल्पना साकार यदि भाव का प्रवाह स्वतः प्रवाहित हो।

ऐ प्राणी! ऋषि मुनियों की कल्पना रही है कि त्रेता व द्वापर में जप-तप से भी जिस स्थिति को पाना सम्भव नहीं था आज वह केवल नाम लेने मात्र से सम्भव है। देख, उन ऋषि मुनियों की कल्पना साकार तभी हो सकती है जब तुझमें भाव का जागरण होगा। भाव से लिया गया एक नाम भी बहुत अर्थ रखता है, ऐसे नाम से प्रत्येक रोम कूप से नाम निकलता है और तब वह ईश्वर जिसे पाना अलभ्य है वह भी सुगम हो जाता है, वह भक्त के रोम-रोम में प्रतिष्ठित हो जाता है। ऋषि-मुनियों ने जिसका केवल वर्णन किया था भक्त उसे साकार देख पाता है। ऐसा है यह भाव जिसकी जागृति के पश्चात् ईश्वर को याद करना नहीं पड़ता, ईश्वर अपना हो जाता है और उसकी याद आती है—उसकी याद मात्र से हृदय में भाव का प्रवाह होने लगता है।

११८ मिथ्या पर अभिमान निरर्थक। अभिमान अंधा बनाता, प्रेम घटाता, चक्कर कटाता।

ऐ प्राणी! तू चाहे धन का अभिमान करता हो, चाहे रूप यौवन का अभिमान करता हो—यह तुझे पतन की ओर ले जाने वाला है क्योंकि अभिमान ऐसा ही होता है। देख, अभिमान प्राणी को अंधा बनाता है। अभिमानी अपने समान किसी को नहीं समझता, वह स्वयं को ही सबसे ऊँचा-बड़ा समझता है और यही कारण है कि वह किसी से प्रेम नहीं कर पाता। अभिमानी में दिन व दिन प्रेम घटता जाता है क्योंकि उसकी दृष्टि स्थूल (धन, यौवन, रूप) में ही लगी रहती है जबकि प्रेम सूक्ष्म भाव है। जहाँ स्थूल प्रधान रहता है वहाँ सूक्ष्म भावों की प्रधानता नहीं रह जाती अतः वहाँ

प्रेम भी नहीं आता। ऐसा व्यक्ति जब तक संसार में रहता है तब तक भी रोता रहता है और जब जाता है तब भी रोते-रोते ही जाता है। वह यहाँ बार-बार आता जाता रहता है, उसका यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक वह प्रेम पा नहीं जाता। अतः जो धन यौवन मिथ्या है, टिकने वाला नहीं तू उसका अभिमान न कर, तू प्रेम की कद्र कर कि तेरा जीवन प्रकाशमान सूर्य की तरह हो जाये और तेरे आने जाने का चक्कर भी खत्म हो जाये।

१११९ फूल अर्पित करता है काम को तो शान्ति कहाँ? फूल स्वतः खिलता है बाधक तेरे विचार। खिलने दे अन्यथा जीवन कली मुरझा जायेगी।

ऐ प्राणी! जब तक तू कामना वासना का पुजारी बना रहेगा तब तक तुझे शान्ति के दर्शन दुर्लभ होंगे और तेरा हृदय कमल भी खिल नहीं सकेगा। देख, तेरे विचार ही तेरे लिए बाधक बने हुए हैं, ये ही तेरे हृदय कमल को खिलने नहीं दे रहे हैं। जिस दिन तू शान्ति का उपासक होगा उस दिन तेरे विचार बदल जायेंगे। तब तू उन कार्यों को नहीं अपना पायेगा जो तुझे पतन की ओर ले जाने वाले हैं, तू उन्हीं रास्तों पर कदम बढ़ायेगा जिनसे तेरे विचार सुन्दर बनें एवं तेरा हृदय कमल खिल सके। उस राह पर बढ़कर जब तेरे विचार बदल जायेंगे तब तेरा हृदय जो वासना कामना की अग्नि से झुलस गया था स्वतः खिलने लगेगा और यदि उसका पोषण हमेशा होता रहा तो एक दिन फूल की तरह खिलकर तुझे सुगन्ध प्रदान करेगा अन्यथा तेरी जीवन कली बिन खिले ही मुरझा जायेगी।

११२० प्रेम का उपासक प्रकाशक है मधुर भाव का, विकासक है उन वृत्तियों का जो प्रगाढ़ निद्रा में पड़ी थीं।

ऐ प्राणी! जिनके लिये प्रेम प्रधान है एवं प्रेम ही जिनके लिए सर्वस्व है उनमें मधुर भावों का जागरण होने लगता है तथा उनकी वे वृत्तियाँ जो अब तक प्रगाढ़ निद्रा में सोयी हुई थीं उनमें चेतनता आने लगती है। वे न तो उल्टे सीधे भावों को अपना पाते हैं और न उल्टी सीधी राह पर बढ़ पाते हैं—उनके समीप वे ही भाव ठहर पाते हैं जो सरसता प्रदान करने वाले हैं एवं वे उसी राह को अपना पाते हैं जिस पर बढ़ने से वृत्तियों में चेतनता आये। ऐसे

जन अपना ही भला नहीं करते, उनके द्वारा अन्य में भी जागरण सम्भव होता है। उनके समीप जो भी जाते हैं वे खाली हाथ नहीं लौटते, कुछ ऐसा पा जाते हैं जिसे पाकर जीवन ही पलटा खा जाता है।

११२१ संग हुआ साधु का, संगम हुआ प्रभु से। हृदयंगम उसकी बातें। अब कष्ट कहाँ?

ऐ प्राणी! ईश्वर की बातें सुनाने वाले बहुत मिलते हैं किन्तु जो यथार्थ में ईश्वर के हैं वे साधु पुरुष कभी कभी संयोगवश ही मिलते हैं। देख, जब सौभाग्य से ऐसे महापुरुष के दरशन हो जाते हैं एवं उनकी वाणी व भाव को पाकर हृदय परिष्कृत हो जाता है तब वह प्रभु जिसे पाना अब तक अलभ्य था, सुगम हो जाता है। जैसे-जैसे उनकी वाणी हृदयंगम होती है वैसे-वैसे प्राणी का प्रभु से संगम होता जाता है और तब एक दिन ऐसा आता है जब प्रियतम प्रभु ही जीवन का सर्वस्व हो जाता है। अब जीवन में कष्ट के लिए स्थान नहीं रह जाता—ईश्वर को भूल जाने से जो हृदय कष्टों से भरा हुआ था वह आनन्द से भर जाता है।

११२२ कष्ट यही कि काष्ठ सा हृदय बना रखा है। रुष्ट होता है, सन्तुष्ट नहीं होता कि जगत का खेल देखने को मिला। फिर वह भी मिला जो प्राणों का आधार था।

ऐ प्राणी! तेरे हृदय में कष्ट इसीलिये बरकरार है कि तूने कोमल हृदय को काठ की तरह शुष्क बना रखा है। देख, तुझे इतनी सुन्दर काया मिली और मन बहलाने के लिए विभिन्न प्रकार के जगत के खेल देखने को मिले फिर भी तू हमेशा भाग्य को ही कोसता रहता है, कभी सन्तुष्ट नहीं होता। इतना पाकर भी जब तू शुष्क ही बना रहता है तब ईश्वर तुझे सरसता प्रदान करने के लिए कोई न कोई रूप से पुनः अपनाता है, वह सन्त के द्वारा तुझे संदेश भेजता है फिर भी तू यदि निराधार ही रहे तो यही कहना होगा कि तू अपने आप को पूर्णतया भूल बैठा है। अरे पगले! यहाँ तेरा आगमन आनन्द के लिए हुआ है अतः तू यदि ऐसे अपने रूप को न भी पहचान पाये तो सन्त रूपी आईने के सामने तो तटस्थ हो कर बैठ कि तू अपने रूप (सरसता) को पुनः पा जाये और जीवन का आनन्द ले पाये।

११२३ मुझे प्रिय की कथा सुनाओ, पाप पुण्य की बा नतें बताओ। प्रिय की प्रिया तेरी आत्मा। अन्तरात्मा निरर्थक बेचैन।

ऐ प्राणी! प्रेमी भक्त पाप पुण्य की कथा सुनकर खुश नहीं होता उसे हमेशा प्रेमास्पद प्रभु की भाव पूर्ण बातें ही भाती हैं, जिन बातों में ईश्वर नहीं झलकता वे बातें उसे नहीं सुहातीं। देख, ईश्वर को पाने के लिए प्रेमी के हृदय में अनबुझ प्यास रहती है, उसकी प्यास ही उसे एक दिन प्रियतम प्रभु से मिलाती है। वह प्यास उसके लिए प्रेरणा प्रदात्री बन जाती है, उसको लिए हुए वह और गहरे में प्रवेश पाता है। गहरे जाते-जाते एक दिन वह आत्मा तक पहुँच जाता है जहाँ पहुँचकर वह देख पाता है कि—ईश्वर सदा मेरे साथ था, साथ है और सदा साथ रहेगा। भ्रमवश मैं उसे दूर समझता आया था, आज जब भ्रम का पर्दा हटा तो देख पाया कि वह क्षण भर के लिए भी साथ नहीं छोड़ता।

११२४ भक्ति क्या है? नम्र प्रेम का अर्पण हुआ प्रिय को, भक्ति हुई।

ऐ प्राणी! भक्ति के कोई कार्य नहीं होते, भक्ति एक भाव है जिसका प्राकट्य प्रिय की अनुभूति पाकर होता है। भक्ति का जागरण कब होता है इसका पता नहीं लगता किन्तु जब हो जाता है तब हृदय की प्रेमपूर्ण भावना कोमल हो आँखों से अश्रु बन कर बहने लगती है। देख, भक्ति जीवन में सरसता भरती है। जब तक भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हो जाता तब तक जीवन काष्ठवत् रहता है—ऐसा जीवन तो जीवन कहलाने के योग्य भी नहीं रहता। अतः भक्ति के प्राकट्य के लिये तू प्रेमियों के समीप बैठ कि तू प्रिय की अनुभूति पा जाये और तेरे भीतर भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाये। अन्यथा तेरा जीवन शुष्क-खुश्क ही बना रहेगा और जीवन पाकर भी तू जीवन का आनन्द नहीं पा सकेगा।

११२५ प्रेम क्यों—यह तो दिव्य जीवन का अमर स्रोत है जो प्रवाहित हो रहा है नस नस में।

ऐ प्राणी! प्रेम का प्रवाह प्रत्येक प्राणी के नस-नस में प्रति मुहूर्त्त प्रवाहित हो रहा है, यह प्रवाह न रहे तो प्राणी निष्प्राण हो जायेगा। किन्तु प्रेम का अनवरत प्रवाह रहने के पश्चात् भी प्राणी उससे तब तक लाभान्वित नहीं होता जब तक कि वह प्रेम का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं करता। देख, प्रेम अमर स्रोत

है इसे पाकर जीवन दिव्य हो जाता है। श्वास के विना शरीर की जैसे कोई कीमत नहीं, प्रेम के विना जीवन भी वैसा ही है। अतः अन्तर में प्रवाहित प्रेम को तू प्रत्यक्ष में भी पा ले अर्थात् जो तुझे नस नस में गति प्रदान कर रहा है उस प्रियतम प्रभु की तू प्रत्यक्ष अनुभूति पा कि तू अमर भाव पा जाये। अन्यथा उसके साथ के अभाव में कीमती जीवन पाकर भी तू रोता ही रहेगा—प्रेम के विना तेरा जीवन व्यर्थ हो जायेगा।

११२६ और भगवान? प्रेम का सजीव प्रतीक जिसे पाकर प्रेम सार्थक, जीवन धन्य।

ऐ प्राणी! भगवान ही प्रेम है और प्रेम ही भगवान है, यदि भगवान न रहे तो प्रेम का उदय ही न हो। देख, यों तो प्रेम प्रत्येक प्राणी के साथ है किन्तु प्रेम का जागरण भगवान से ही सम्भव है, भगवान ही प्रेम का सजीव प्रतीक है। जब तक भगवान के दरशन नहीं होते तब तक प्रेम पाना सार्थक नहीं होता, तब प्रेम दूषित रहता है, प्रेम में अनेक भाव (मोह, स्वार्थ आदि) का सम्मिश्रण रहता है परिणाम प्रेम का रूप विकृत हो जाता है। प्रेम सार्थक तभी होता है जब भगवान सम्मुख रहता है—ऐसे में प्रेम का प्रवाह नस-नस में होने लगता है। भगवद्प्रेमी के मुख की आभा अनोखी होती है, अद्‌भुत रूप लावण्य उसके रोम-रोम से टपकता है। यथार्थ में उसका जीवन ही धन्य है, अन्य तो यूँ ही आते हैं और यूँ ही चले जाते हैं।

११२७ गुरु? अदृश्य भावना का जीता जागता रूप, जो परमात्मा का ही दूसरा रूप है।

ऐ प्राणी! अदृश्य भावना को दृश्यमान करने वाला 'गुरु' है। जब तक गुरु के दरशन नहीं होते तब तक भीतर की भावना भीतर ही रहती है वह कभी समक्ष नहीं आती, सद्‌गुरु की वाणी ही उसे जाग्रत करने में समर्थ होती है। देख, गुरु कोई और नहीं, वह परमात्मा का ही दूसरा रूप है, सोये प्राणी को जगाने के लिए ही उसका आगमन होता है। दुनिया के थपेड़े खा खाकर व्यक्ति जब थक हार कर बैठ जाता है एवं उनसे उवरने का कोई रास्ता नहीं पाता तब उसकी आर्त्त पुकार उसे सद्‌गुरु के दरशन करवाती है अर्थात् परमात्मा ही तब प्रत्यक्ष होकर उसे उबारने व नयी चेतना देने हेतु सद्‌गुरु के रूप में आते हैं। उनका साथ प्राणी की सोयी हुई भावना को जगा देता है।

अन्यथा वे भावनायें कभी प्रत्यक्ष नहीं हो पातीं, व्यक्ति सद्गुरु के अभाव में यों ही रोता कलपता एक दिन संसार से विदा हो जाता ।

११२८ तुम कौन ? आज भी जिज्ञासा ? मैं ही तू में समाया—आत्मा परमात्मा का एकीकरण ।

ऐ प्राणी ! प्रत्येक प्राणी के भीतर सत्य चेतना रहती है, यह चेतना ईश्वर का ही रूप है । यदि यह न रहे तो व्यक्ति जहाँ खड़ा है हमेशा वहीं खड़ा रहे, वह एक कदम भी आगे न बढ़ पाये । देख, यह चेतना जिसे जानना चाहती है उसे जानकर ही दम लेती है चाहे वह जानकारी स्थूल के लिए हो या सूक्ष्म के लिये । यह जब ईश्वर मिलन के लिए जाग जाती है तब व्यक्ति चैन से बैठ नहीं पाता, ईश्वर मिलन की लालसा उसे बेचैन बना देती है । सभी कार्य करते हुए उसके भीतर एक कराह रहती है । उसकी यह कराह तब खत्म होती है जब ईश्वर को वह बाहर ही नहीं, प्राणों में भी प्रतिष्ठित देखता है । ऐसे में उसका अहं सर्वथा विलीन हो जाता है अर्थात् आत्मा परमात्मा का एकीकरण हो जाता है ।

११२९ हँसता है मुझ पर या दुनिया पर ? रोता है मेरे लिये या दुनिया के लिये ? दिल से पूछ ।

ऐ प्राणी ! जिनके लिये ईश्वर प्रधान रहता है उनको दुनिया के लोग अबोध से नजर आते हैं और जिनके लिए दुनिया प्रधान रहती है अर्थात् जो दुनिया में ही मौज मनाते हैं उनके लिए ईश्वर तथा ईश्वर भक्त उपहासास्पद रहते हैं । एक का दिल ईश्वर को पाने के लिए तड़पता है और दूसरा दुनिया (स्थूल) को अधिक से अधिक अपना बनाने के चक्कर में रहता है । देख, जिसकी जैसी चाह रहती है उसके अनुसार ही उसके साज सजते हैं । अतः जिनके लिए ईश्वर प्रधान रहता है अर्थात् जो ईश्वर के लिये रोते हैं वे देर सवेर एक न एक दिन ईश्वर को जरूर पा जाते हैं किन्तु जिनके लिए दुनिया प्रधान रहती है वे स्थूल को पकड़ने की चेष्टा में दिन रात उसके पीछे भागते रहते हैं किन्तु उसे कभी पकड़ नहीं पाते अतः रोते व छटपटाते रहते हैं—वे एक दिन संसार से रोते-रोते ही विदा हो जाते हैं ।

११३० दो का आधार लौकिक, अलौकिक । एक का आधार अलौकिक । पत रखे वह पति, सत से मिलाये वह सद्गुरु ।

ऐ प्राणी ! तुझे यदि ईश्वर भी प्रिय है और सांसारिक भोग भी प्रिय हैं

तो तू दुनियादारी को देखते हुए ही शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेगा किन्तु तेरे लिए यदि ईश्वर ही प्रधान है अर्थात् तूने एक का ही आधार ले रखा है तो तू अलौकिक भाव को पा जायेगा। तब तू उन भावों का स्वामी होगा जो दुनिया में देखने को नहीं मिलते। देख, एक का आधार लेने वाले की दुनिया 'एक' से सजी होती है, उसकी दुनिया में केवल एक ही रह जाता है। वह पत रखने के लिए शरीर के साथी की ओर नहीं देखता, उसकी पत एक के हाथ होती है—वही उसका पति होता है। वह केवल शान्ति सन्तोष की दो बातों से ही खुश नहीं हो जाता, जो सत्य से मिलाये एवं सत्य तक हाथ पकड़ कर ले जाये वही उसका सद्गुरु होता है। ऐसे ईश्वर भक्त के रोम-रोम से ईश्वर आलोकित होता रहता है।

११३१ किसी को मैं चबा रहा हूँ और कोई मुझे चबा रहा है। इस चबने और चबाने से ऊपर समाना है।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी परस्पर एक दूसरे को कष्ट देते रहते हैं अर्थात् अज्ञात रूप से एक दूसरे को चबाते रहते हैं। व्यक्ति इस पीड़ा से हमेशा कराहता रहता है फिर भी इससे छुटकारा नहीं पाता। ऐ प्राणी! जब तक तू स्वार्थ व अहंकार में जीयेगा तब तक तेरी यही अवस्था रहेगी, तू स्वयं को ऊँचा बड़ा बनाने के लिये अन्य को नीचा दिखाता रहेगा। ऐसे में तू अन्य को ही कष्ट नहीं पहुँचायेगा, तू स्वयं भी छोटा बनता जायेगा। अतः यथार्थ में जो बड़ा है तू उसे जान कि तेरी यह मनोवृत्ति बदल जाये, न तू किसी को कष्ट पहुँचाये और न किसी के द्वारा दिया हुआ कष्ट ही तुझ तक पहुँच पाये। जिस दिन तू बड़े (कर्त्ता) को जान जायेगा उस दिन तू उसकी छत्रछाया के तले होगा और तब तू चबने व चबाने से ऊपर उठ जायेगा अर्थात् तू उस स्थिति को पा जायेगा जहाँ न किसी का दिया हुआ कष्ट पहुँचता है और न किसी को कष्ट देने के भाव रहते हैं।

११३२ मल को न देख, कमल को देख। दिल खिल उठेगा। दुःख सुख को न देख, आनन्द अनुभव कर, दिल मिल जायेगा दिलदार से।

ऐ प्राणी! तालाब में कीचड़ भी रहता है और कमल भी रहता है किन्तु तालाब के किनारे जाने वाला कीचड़ की ओर नहीं देखता वह कमल की

ओर देखता है तभी वह तालाब के किनारे जाने का आनन्द पाता है। देख, इस संसार में दुःख सुख भी हैं और आनन्द भी है। जो यहाँ स्थूल को अधिक से अधिक अपना बनाने में लगे रहते हैं वे अनुकूल परिस्थिति में सुख पाते हैं एवं प्रतिकूल में दुःख मानते हैं—उनका जीवन सुख दुःख के थपेड़े खा खाकर जर्जरित हो जाता है। किन्तु जो इस संसार का रचयिता ईश्वर को जानते हैं उनके लिये सम्पूर्ण संसार आनन्द का उद्यान रहता है, वे प्रत्येक स्थिति को ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण करते हैं—दिलदार प्रभु से दिल वे ही मिला पाते हैं, अन्य की जीवन लीला तो रोने गाने में यूँ ही खत्म हो जाती है।

११३३ संगम में भी गम ? फिर गम कब कम ?

ऐ प्राणी ! सन्त चलते-फिरते संगम हैं। सन्त के हृदय में अनवरत ज्ञान, भक्ति, प्रेम की त्रिधारा बहती रहती है। उनके सम्पर्क से जन्म-जमान्तर के संस्कार कटते देखे जाते हैं। सन्त का सामीप्य पाकर भी यदि तू अपने गम गलत न कर सका अर्थात् उनके समीप बैठकर भी तू भक्ति-प्रेम-ज्ञान की त्रिधारा में स्नान करके शुद्ध व स्वच्छ न हो सका तो यही कहना होगा कि तूने अभी संगम में स्नान ही नहीं किया, संगम की महिमा ही नहीं जानी। देख, उनके समीप बैठकर भी यदि गम तेरे समीप ही रहें, तू अपने आपको भुला न पाये तो तेरे गम कभी कम होने वाले नहीं, वे जीवन पर्यन्त तेरे साथ बने रहेंगे चाहे तू उनको मिटाने लिए कितने ही उपक्रम क्यों न करता रहे। अतः तू यदि गम से मुक्ति पाना चाहता है तो यही रास्ता है कि तू संगम के किनारे जाकर तटस्थ न रह, तू संगम की महिमा जानकर संगम में डुबकी लगा कि ज्ञान-भक्ति-प्रेम की त्रिधारा तुझ में भी प्रवाहित होने लगे और तू संगम में स्नान का आनन्द पाये।

११३४ दुःख को भुलाना है तो प्रेम कर। निरर्थक बातें, बातें ही हैं।

ऐ प्राणी ! दुःख जोर जबर्दस्ती से भुलाने की चीज नहीं, जोर लगाकर तो समय विशेष के लिये दुःख से ध्यान बँटाया जा सकता है, पूर्णतया इससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। देख, दुःख को भुलाने का रास्ता प्रेम है। प्रेम की पगडण्डी पर जब कदम बढ़ने लगते हैं तब दुःख छोड़ना नहीं पड़ता, वह स्वतः छूट जाता है। जब तक प्रेम का प्राकट्य नहीं हो जाता तब तक

दुःख को भुलाने की थोथी बातें ही रहती हैं यथार्थ में दुःख से छुटकारा नहीं मिलता। अतः तू बड़ी-बड़ी बातों में समय न बरबाद कर, तू प्रेम कर कि तेरा हृदय प्रफुल्लित रहने लगे और दुःख तेरे समीप भी न आ सके।

११३५ रोग भी देखा, भोग भी देखा, शोक भी देखा, चिन्ता भी। सन्त से भी शान्ति न ले सका, वहाँ भी सांसारिक अभावों के लिए प्रार्थना करता रहा। अभागा है।

ऐ प्राणी! यह संसार परिवर्तनशील व विनाशी है, यहाँ प्रत्येक चीजों में परिवर्तन निश्चित है। विभिन्न भाव यहाँ हमेशा परिलक्षित होते रहते हैं—कहीं रोग दिखलायी देता है, कहीं भोग की अधिकता देखने को मिलती है, कहीं शोक का साम्राज्य दीख पड़ता है और कहीं चिन्ता ही चिन्ता नजर आती है। इतना सब कुछ देखने के पश्चात् भी व्यक्ति होश में नहीं आता, वह यही चाहता है कि मेरी प्रत्येक चीजें यथावत् बनी रहें। वह इन्हीं में शान्ति देखता है अतः इन्हीं को अधिक से अधिक पाना चाहता है—शान्ति इनसे अलग है—इसे वह जानता ही नहीं। संयोग से यदि वह सन्त के समीप भी पहुँच जाता है तो वहाँ बैठकर भी शान्ति पाना नहीं चाहता, सांसारिक अभावों की पूर्त्ति ही चाहता है। अरे पगले! जो चीज स्थायी है ही नहीं वह कैसे स्थायी रह सकेगी और तू है कि उन्हें ही स्थायी रखने की चेष्टा में लगा हुआ है—यह तेरा दुर्भाग्य है। देख, तुझे अवसर मिला है, सन्त के समीप बैठकर तू आज भी सत्य दृष्टि पा ले अन्यथा कल तू रोता रहेगा और तब रोने से छुटकारा पाने के लिए तेरे पास कोई चारा भी नहीं होगा।

११३६ यह विचार बन्धन, कर्म बन्धन कितना प्रबल है? न इसे सुलझा सका और न काट सका। पुकार प्रिय को, वही मुक्त करेगा।

मनुष्य विचारों का पुतला है, प्रत्येक समय अनेक विचार उसके सम्मुख आते जाते रहते हैं। ऐसी ही कर्मों की बात है—दिन रात वह अनेक प्रकार के कर्म सम्पादित करता रहता है। विचार आयें और जायें और कर्म होते रहें तब तक तो ठीक है किन्तु वे विचार ही उसे उलझा लें एवं कर्म के चक्कर में ही वह फँस कर बैठ जाये तो वे उसके लिये अत्यन्त दुःखदायी हो जाते हैं। ऐ प्राणी! इनमें फँसना सहज है किन्तु इनसे मुक्त होना कठिन ही नहीं,

अति दुष्कर है जब तक कि इनसे बचने के लिये प्राण प्रण से ईश्वर से पुकार न की जाये। देख, ईश्वर बड़ा दयालु है, भूले भटके भी जब प्राणी उसे याद करता है तो वह उन भावों को अवश्य पा जाता है जो उसे शान्त रखने में समर्थ हैं। तभी वह विचारों पर विचार कर पाता है और तभी कर्म के मर्म से अवगत हो पाता है अर्थात् सभी स्थितियों का शान्त अवलोकन कर उनसे आनन्द ले पाता है।

११३७ आदान प्रदान ही जीवन है। लिया है तो कुछ ऐसा दे कि पाने वाला धन्य हो जाये।

ऐ प्राणी ! आदान प्रदान का नाम ही जीवन है। प्रति मुहूर्त्त प्राणी प्रकृति से कुछ ले रहा है—पृथ्वी उसे अन्न जल दे रही है, वायु गति प्रदान कर रही है, सूर्य प्रकाश दे रहा है—इसी प्रकार विभिन्न रूपों में वह प्रकृति से कुछ न कुछ ले रहा है। देख, केवल लेने से आनन्द नहीं मिलता, लेने के साथ-साथ देने के भी भाव बने रहें तभी लेने का आनन्द मिलता है। यों तो व्यक्ति प्रतिपल हर श्वांस के साथ कुछ दे रहा है, चूँकि वह दे रहा है इसीलिये शरीर ठहरा हुआ है किन्तु यह देना तो देना नहीं, लाचारी है—इस देने में आनन्द कहाँ ? देने में आनन्द तब मिलता है जब प्यार भाव से सामने वाले के हित के लिए दिया जाता है। ऐसा देना पाने वाले को ही सुख नहीं पहुँचाता, जो देता है उसका जीवन भी आनन्द से भर देता है। अतः तू केवल लेने की माला न जप, तुझे कुछ मिला है तो तू भी कुछ ऐसा दे कि पाने वाला धन्य हो जाये।

११३८ पा कर भी दे न सका तो पापी ही कहलायेगा। प्रकृति तुझे मुक्त न कर सकेगी, वह तो स्वयं बन्धन के चक्र में है।

ऐ प्राणी ! तू संसार में खाली हाथ आया था। तेरे पास तू जो कुछ भी देखता है वह तब तेरे साथ नहीं था। यह सब तुझे यहीं मिला है अर्थात् ईश्वर हमेशा तेरी देखभाल कर रहा है, गर्भकाल से लेकर आज तक तू उसी की छात्रछाया में पल रहा है। उससे इतना पाकर भी यदि तेरे भीतर कृतज्ञता के भाव न रहें तो तेरे समान कोई पापी नहीं। ऐसे में तू कभी सुख की नींद नहीं सो सकेगा, तेरा अमन चैन खत्म हो जायेगा। अब शान्ति पाने के लिये तू यदि पूजा-पाठ, दान-धर्म, तीर्थ-व्रत आदि सम्पादित कर भी लेगा

तब भी चैन नहीं पायेगा क्योंकि प्रकृति तेरे बन्धन नहीं काट सकेगी। देख, प्रकृति में बन्धन काटने की सामर्थ्य ही नहीं, वह तो स्वयं बन्धन में है—जो कुछ उसे दिया जाता है वह तो केवल उसे ही द्विगुणित कर सकती है। अतः तू यदि हृदय के कष्ट को मिटाना चाहता है तो उस परम पुरुष के प्रति कृतज्ञ बन जिसने तुझे जीवन दिया है एवं जिसके इशारे पर यह प्रकृति नाच रही है कि तेरे हृदय की यन्त्रणा मिट जाये और तू जीवन पाने का आनन्द ले पाये।

११३९ राग ही जब अनुराग है तो गा कर किसे सुनायेगा? गाना—रिझाना। रीझा नहीं तो रिझाना किस काम आया?

ऐ प्राणी! राग साधन है, इसके द्वारा भाव की अभिव्यक्ति होती है। देख, इस साधन को तू साध्य न मान अर्थात् राग को तू प्रधान न जान। राग ही यदि तेरे लिये प्रधान बन जायेगी तो भाव तेरे समीप नहीं आयेंगे, तब तेरा गाना निष्प्राण होगा, वह किसी के हृदय को छू नहीं पायेगा। तू केवल गले से ही गाता रहेगा तथा उससे अन्य को रिझाने की चेष्टा ही करता रहेगा। अन्य भी उसे कान से सुनते रहेंगे किन्तु उनका हृदय खाली ही रह जायेगा। अतः तू किसी को सुनाने के लिये केवल गले से न गा, गाते-गाते स्वयं रीझ जा कि तेरे भाव राग के घोड़े पर सवार होकर अन्य के हृदय को हिला दें। अन्यथा गाना व रिझाना दोनों तेरे लिये भारी पड़ेंगे, न उनसे तू कुछ पा सकेगा और न किसी को कुछ दे सकेगा--सुन्दर गला पाकर भी तू उसकी सुन्दरता से वंचित ही रह जायेगा।

११४० प्रेम वितरण करने की वस्तु नहीं और न रिझाने की। प्रेम क्या है? कहने का विषय नहीं। प्रेम सुध बुध भुला देता है।

ऐ प्राणी! प्रेम स्वयं प्रकाशमान है। इसका प्रकाश वितरण करना नहीं पड़ता, यह स्वतः फैलता है। ऐसे ही इसके द्वारा किसी को रिझाने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती, प्रेमी स्वयं रीझता है, उसका रीझना ही अन्य को रिझाता है। देख, 'प्रेम क्या है' इसे कुछ शब्दों द्वारा नहीं बताया जा सकता, शब्द संकेत दे सकते हैं किन्तु इसका यथार्थ रूप प्रेम करके ही जाना जा सकता है। प्रेम पाकर प्रेमी सुध बुध भूल जाता है, उसके अन्तर में प्रेम की धारा

प्रवाहित होने लगती है। प्रेम के प्रवाह के सम्मुख उसे कुछ भी नहीं सुहाता केवल प्रेम ही भाता है। प्रेमी की दुनिया आनन्दमयी हो जाती है, उसके भीतर व बाहर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखर जाता है।

११४१ दुर्गन्ध और सुगन्ध में भी तू श्वास को ठीक रखता है, फिर परिस्थितियों में बेचैनी क्यों? स्थिति का अवलोकन कर, वहाँ भी शान्ति में मैं ही विराजमान।

ऐ प्राणी! तेरे भीतर एक ऐसी अनोखी शक्ति है जो हर अवस्था में तेरा सन्तुलन ठीक बनाये रखने में समर्थ है। वही शक्ति सुगन्ध व दुर्गन्ध में तेरे श्वाँस को ठीक रखती है, उसके निर्देश से ही तू सही राह अपना पाता है। देख, तू उस शक्ति से उपकृत भी होता है फिर भी उसे भूल बैठता है और यही कारण है कि जब ऊँची-नीची परिस्थितियाँ सम्मुख आती हैं तब तू बेचैन हो उठता है। बेचैनी में तू उन स्थितियों को देख ही नहीं पाता अतः उनका निराकरण भी नहीं कर पाता। तू यदि शान्त रहता तो केवल उनसे बचता ही नहीं, तू देख पाता कि प्रत्येक परिस्थिति ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। वे बाधा देने नहीं आतीं, जीवन में सरसता भरने के लिए आती हैं। एक रस चाहे कितना भी स्वादिष्ट क्यों न रहे उसमें रस नहीं मिलता, विभिन्नता में ही रस है—उसी से जीवन में सरसता आती है।

११४२ अभिवादन करता है, अभी वादन करता है, अभी साधन करता है। अब साध्य में लीन हो जा। आनन्द ही आनन्द है।

ईश्वर की पूजा-अर्चना, गीत-संगीत, अनेक साधना आदि ईश्वर के समीप जाने के रास्ते हैं। साध्य यदि सम्मुख रहे तो इन रास्तों के द्वारा व्यक्ति ईश्वर के समीप पहुँच जाता है किन्तु साध्य भूल में पड़ जाये और साधन ही उसके लिये प्रधान बन जायें तो वह इन्हीं में भटकता रह जाता है। अतः ऐ प्राणी! तू जो कुछ भी करता है उसे केवल करने के लिए न कर, उनकी उपयोगिता जानते हुए उनके द्वारा तू लक्ष्य की ओर बढ़ कि तू साध्य (ईश्वर) में लीन हो पाये—तेरी साधना भी तभी सफल होगी, तू जीवन का आनन्द भी तभी ले पायेगा। अन्यथा ईश्वर के नाम पर कुछ कर्म करके तू अहंकार ही बढ़ायेगा, वह कर्म तेरे कुछ काम नहीं आयेगा।

११४३ तरंग कहती है तर हो जा। रंग में डूब, जिसमें नील गगन डूबा हुआ है।

ऐ प्राणी ! जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब आनन्द की तरंग हृदय में हिलोरे लेती है किन्तु वह (तरंग) कभी-कभी ही उठती है, हमेशा नहीं उठती। देख, तरंग संकेत देती है कि तू जहाँ अभूतपूर्व सौन्दर्य देखता है जो केवल तेरी आँखों को ही नहीं भाता, तेरे मन-प्राणों को भी छूता है—तू उससे रस ले तथा उस रंग में डूब जा। उसका क्षणिक सम्पर्क तुझे क्षणिक आनन्द देता है किन्तु जब तू उसमें डूब जायेगा तब वह सौन्दर्य तेरे रोम-रोम में समा जायेगा जैसे नील गगन में समाया हुआ है। तेरा हृदय भी तब नील गगन की तरह विशाल हो जायेगा, फिर तरंगें तेरे हृदय में कभी-कभी नहीं उठेंगी, तू हमेशा उन तरंगों का आनन्द पाता रहेगा।

११४४ तुरही—तू रही युद्ध की अभिलाषिणी। प्रेम की बाँसुरी तो जग के मोह से दूर मोहन से परिचय कराती, उसी का बनाती।

ऐ प्राणी ! इस संसार में तुरही की आवाज बहुत सुनने को मिलती है किन्तु प्रेम की बाँसुरी यदा-कदा ही सुनायी देती है। देख, युद्ध स्थल में तुरही की आवाज से युद्ध प्रारम्भ होता है, ऐसे ही अशान्त प्राणी की वाणी (तुरही) से भी हृदय में अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो जाता है। ऐसी वाणी का पान कर प्राणी न शान्ति से सो पाता है और न उठ पाता है, अशान्ति के बीच बैठा हुआ वह अशान्त ही बना रहता है। किन्तु प्रेम की बाँसुरी की तो बात ही अनोखी है। प्रेम की वाणी भूले भटके भी जब सुनने को मिल जाती है तो हृदय में नवीन स्पन्दन भरती है, वह मोह को हटा कर मोहन का परिचय देती है, इतना ही नहीं, उसी का बना देती है। ऐसी है यह प्रेम की वाणी जिसे सुनकर व्यक्ति अपना अस्तित्व खो बैठता है—उसके सम्मुख केवल प्रेम ही प्रेम रह जाता है। अतः तू यहाँ आया है तो तुरही की आवाज न सुन, तू वह वाणी सुन जो प्रेम रस से सनी है कि तेरा जीवन जीवन कहलाने के योग्य बने अन्यथा तेरी जीवन लीला रोते-रोते ही बीत जायेगी।

११४५ कष्ट पाया है तो इष्ट भी पायेगा। व्यर्थ कुछ भी नहीं जाता, प्रेम का मार्ग ही ऐसा है।

ऐ प्राणी ! प्रेम का मार्ग अति सहज है, अति कठिन है। यह सहज उनके

लिये है जो प्रेम के पिपासु हैं और कठिन उनके लिये है जिनके लिये स्थूल प्रधान है। देख, प्रेम की पगडण्डी पर कदम बढ़ाने वाले के जीवन में अनेक बाधाएँ आती हैं। प्रकृति उन्हें आगे बढ़ने से रोकती है किन्तु वह उन्हें रोक नहीं पाती, प्रेम की आकुल व्याकुल पुकार प्रेमी को प्रेमास्पद प्रभु से एक न एक दिन मिला ही देती है। प्रेमको अपनाकर प्रेमी किसी की ओर नहीं देखता केवल प्रिय की ओर देखता है, कितने भी कष्ट उसके मार्ग में अवरोधक बन कर आयें फिर भी वह इष्ट के समीप पहुँच जाता है। देख, प्रेमास्पद प्रभु के दर्शनों के लिए यदि तेरे हृदय में अत्यधिक बेचैनी है तो तू कभी हताश-निराश न हो जाना क्योंकि यह बेचैनी निरर्थक नहीं जाने वाली, तू इसी के बल पर एक दिन अवश्य ही इष्ट को सम्मुख देख पायेगा।

११४६ अधीर न हो प्राणी। होली, सो होली। अब चेत, चैत्र आया, प्राणों में नया रंग बरसा। नया रंग जो जम गया था वासना के नसों में।

ऐ प्राणी! आज तक का समय तूने यदि गफलत में खोया है तब भी तुझे घबड़ाने की जरूरत नहीं। बीती हुई बातों को भूलकर तू आज भी होश में आ और सत्य पथ का पथिक बन कि तेरे जीवन में नयी चेतना आ जाये, तू नवीन भावों से सुसज्जित हो जाये। देख, चैत्र के आगमन से प्रकृति में तो नव वर्ष का आगमन हो जाता है किन्तु तेरे हृदय में तब होगा जब तू होश में आ जायेगा एवं नवीन पुरुष (सन्त) के दरशन पा जायेगा। उनकी वाणी तेरे हृदय के प्रेम को पिघला देगी जो वासना बनकर तेरी नसों में बस गयी थी। वह (वासना) पिघल कर प्रेम का रूप धारण कर लेगी और तब प्रेम की वर्षा तेरे अन्तर में अनवरत होने लगेगी। अतः तू बीती हुई बातों को भूलकर आज से ही सत्य पथ पर कदम बढ़ा कि तेरे जीवन में नव वर्ष का आगमन हो जाये। देख, एक बार तू यदि उस रस को पा जायेगा तो फिर वह कहीं जाने वाला नहीं, वह सदा तेरे साथ बना रहेगा और तू सदा उसका आनन्द पाता रहेगा।

११४७ विषमता में समता खोज। विष अमृत होगा, जब शिव रूप हो जन-जन का कल्याण चाहेगा।

ऐ प्राणी! विषमता दूर करती है किन्तु समता समीप लाती है। विषमता हृदय में जहर भरती है किन्तु समता जहर को अमृत में परिणत कर देती है।

देख, जब स्थूल प्रधान हो जाता है तब व्यक्ति स्वार्थ से घिरता जाता है—ऐसे में उसके हृदय में विषमता का जहर फैल जाता है। तब उसे कोई भी नहीं सुहाता, वह अधिक से अधिक अपनी ही सुरक्षा में लगा रहता है। किन्तु जहाँ समता है वहाँ सर्वथा इसके विपरीत भाव रहते हैं। समता वाला सबकी कल्याण कामना करता है, उसकी दुनिया विराट हो जाती है, दुनिया में रहने वाले सभी उसके अपने होते हैं। वह उन भावों का स्वामी होता है जो कभी मिटने वाले नहीं, अमिट (अमर) हैं। अतः तू यदि अपने हृदय के कष्टों से छुटकारा पाना चाहता है तो जो तुझे बुरे से दिखलाई देते हैं तू उनसे भी प्यार कर क्योंकि व्यक्ति कभी बुरा नहीं होता, बुराई बुरी होती है। तेरे प्यार भाव से उनका जीवन भी सुधर जायेगा और तेरा हृदय भी उन भावों का स्वामी होगा जो कभी मिटने वाले नहीं।

११४८ पूर्ण प्यार चाहिये, पूर्ण ही पूर्ण है। अभाव मानता ही क्यों है? अभाव अपूर्ण, भाव पूर्ण है।

ऐ प्राणी! जो ईश्वर का है वह ईश्वर को अधिकाधिक अपने समीप देखने का इच्छुक रहता है, उसे ईश्वर का पूर्ण प्यार चाहिये। उसके हृदय की विकलता उसे शान्त नहीं बैठने देती, वह एकटक ईश्वर की ओर निहारता रहता है। समय-समय पर उसे संकेत भी मिलता है कि "तू ईश्वर रूप है तू अभाव न मान, अभाव के कारण ही तू पूर्ण को समीप नहीं देख पाता, तुझे वह दूर सा दिखलाई देता है" किन्तु इस संकेत को वह समझ नहीं पाता। भाव की अवस्था में वह हृदय पटल पर पूर्ण का ही साम्राज्य देख पाता है किन्तु उसे हमेशा साथ देखने का वह अभिलाषी ही बना रहता है। देख, ऐसे प्रेम के पिपासु के जीवन काल में वह दिन भी जल्दी ही आ जाता है जब उसका अहं सर्वथा विलीन हो जाता है और उसके भीतर-बाहर-सर्वत्र पूर्ण ही पूर्ण छा जाता है।

११४९ प्रशंसा न कर निन्दा ही सही किन्तु सुन मेरे दिल की पुकार। तू भी पुकारने लगेगा, जिसे मैं प्यार करता हूँ।

ऐ प्राणी! सन्त सत्य के प्रतिरूप हैं, उनका आगमन सबको प्यार लुटाने के लिये होता है एवं सोये प्यार को जगाने के लिये होता है। उनकी कोई निन्दा करता है या प्रशंसा इसकी ओर उनका ध्यान नहीं रहता, उनका भाव

यही रहता है कि जिस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये मनुष्य का आगमन हुआ है वह उसे जान पाये तथा जीवन का आनन्द ले पाये अतः वे भले-बुरे सभी को हृदय से लगाते हैं। वे जानते हैं कि प्यार कभी बेकार जाने वाला नहीं, आज समीप आने वाला यदि उसकी कद्र नहीं करता तो कल करेगा जब अन्य आकर्षणों से उसे तुष्टि नहीं मिलेगी। तब मैं जिसे प्यार करता हूँ वह उसी को प्यार करने के लिये विवश होगा। अतः वे धीरज के साथ जन-जन में अपना प्यार वितरण करते रहते हैं, कोई उन्हें प्यार करता है या नहीं इसकी वे परवाह नहीं करते। उनका प्यार बेकार नहीं जाता वह प्राणी के सोये प्यार को जगा देता है—ऐसा है यह प्रेम जिसे देखते ही बनता है।

११५० अन्न तर ध्यान नहीं तो वह भी अन्तर्धान।

ऐ प्राणी! ईश्वर गर्भकाल से तेरी रक्षा करता आ रहा है। आज भी जिस अन्न को खाकर तेरा भरण-पोषण हो रहा है उसे देने वाला वही (ईश्वर) है, उसी ने तेरी रक्षा के निमित्त अन्न का सृजन किया है। देख, जो तेरी इतनी देखभाल कर रहा है, तेरे निमित्त जो अन्न में भी रस भर रहा है उस रसेश्वर को तू भूल जायेगा तो कभी भी हरा-भरा नहीं रह सकेगा। उसे भुलाकर तू केवल श्वाँस लेता रहेगा, तुझमें जिन्दादिली का सर्वथा अभाव रहेगा। ऐसा जीवन तो भू भार होता है उसे पाना ही बेकार होता है। अरे पगले! तेरा आगमन इस हेतु तो नहीं हुआ था? तू आज भी उसे जान ले जो ज्ञात-अज्ञात रूप से तेरी रक्षा कर रहा है। फिर वह तुझसे छुपा नहीं रह सकेगा, तू देख पायेगा कि तू ही अन्यत्र देखने लगता है वह तुझे कभी नहीं भूलता अर्थात् वह सदा तेरी ओर देखता रहता है।

११५१ करतार—जब कर में तार, हृदय में प्यार, क्यों नहीं करता बेड़ा पार? तू भी वार, हो बेड़ा पार।

बिना प्रयास के सहजता से मिली हुई चीज की कीमत नहीं होती, उससे व्यक्ति कभी लाभ नहीं उठा पाता। वह यदि अत्यन्त कीमती भी रहती है तो भी कौड़ी के सदृश्य समझी जाती है। ऐ प्राणी! ईश्वर को भी तू बिना प्रयास पाने की इच्छा रखता है। तू यही चाहता है कि ईश्वर तो सर्व समर्थ है, सब कुछ करने वाला है फिर वह मेरा बेड़ा पार क्यों नहीं कर देता? देख, वह सर्व समर्थ अवश्य है किन्तु जब तक तू उसे कुछ सौंपेगा नहीं तब तक वह कुछ भी कैसे कर पायेगा, यदि वह कर भी देगा तो तू उससे आनन्द कैसे ले पायेगा?

अतः ईश्वर का कार्य देखने के लिये तू स्वयं को पूर्णतया उसके चरणों पर अर्पित कर दे। जब तेरी चिन्ता तेरी नहीं होगी, तू यथार्थ में अपना कर्त्ता-धर्त्ता उसी को देख पायेगा उस दिन तुझे बेड़ा पार करने के लिये उसे कहना नहीं होगा—तब तेरी नौका का खेवैया ईश्वर होगा और तू यहाँ नौका विहार का आनन्द पाता रहेगा।

११५२ ये बूंदें—ओस। आया होश, क्यों करता रोष? बहने वाला ही मिलता है। यों उत्थान पतन का चक्र ही है।

ऐ प्राणी! आँसू बहुत कीमती हैं, तुझे यदि दुनिया से ठोकर मिली है तो तू इसे निरर्थक न बहा, तू सम्हल जा। देख, तू जिन्हें अपना मानता आया है वे तेरे हैं नहीं अतः इन पर तेरा क्रोध करना भी बेकार है। ये तेरी तब तक ही सुनेंगे जब तक तुझसे इनका स्वार्थ पूरा होता रहेगा, जिस दिन स्वार्थ में बाधा आने लगेगी उस दिन ये तेरा साथ छोड़ देंगे। अतः तू इन पर व्यर्थ रोष न कर, तू होश में आ और जो आँसू इनके लिये बहा रहा है वे ईश्वर के लिये बहा। ईश्वर के लिये जब तेरी आँखों में आँसू होंगे तब तुझे निराश नहीं होना होगा, तू ईश्वर को प्रत्यक्ष देख पायेगा और सभी स्थितियों में आनन्द मनायेगा। अन्यथा तू उत्थान पतन के चक्र में ही झूलता रहेगा—कुछ पाकर नाचता रहेगा और कुछ खोने से रोते-रोते ही समय बितायेगा।

११५३ हरियाली को देख कर पशु पक्षी भी आनन्दित होते हैं, फिर हरि को ही भूल बैठना—आश्चर्य है, हरि है तो हरियाली है।

ऐ प्राणी! हरियाली मनुष्य से लेकर पशु पक्षी तक सबका मन मुग्ध करती है। देख, हरियाली को देखकर तो तू खुश होता है किन्तु यह हरियाली जिससे है तू उसी को भूल बैठा है। जिस दिन हरियाली में तू हरि को देख पायेगा उस दिन हरियाली प्रकृति में (बाहर) ही नहीं रहेगी, तेरा मन भी हरा-भरा हो जायेगा क्योंकि जहाँ हरि है वहीं हरियाली भी है। जब तक तू हरि को नहीं देख पायेगा तब तक हरियाली को देखकर तू समय विशेष के लिये खुश हो जायेगा किन्तु हरियाली तेरे समीप नहीं आ सकेगी अर्थात् तू चिर सुखी नहीं हो सकेगा। अतः तू यदि तेरा जीवन हरा-भरा देखना चाहता है तो तू हरि की खोज कर कि उसे पाकर तेरा रोम-रोम खिल जाये, तुझे देखकर अन्य भी तेरा भाव पाने को तरसें।

११५४ प्रतिदिन धोता हूँ, रोता हूँ, फिर भी साफ नहीं रहता। क्या? दिल।

ऐ प्राणी! बाहर की सफाई के लिये बाहर के साज बाज चाहिये किन्तु भीतर की सफाई के लिये केवल बाहर के कार्यों से कुछ होने वाला नहीं, उसके लिये भीतर के भाव चाहिये। देख, पूजा-पाठ, दान-धर्म, भजन-पूजन आदि करके तू यदि समझेगा कि तेरा दिल साफ रहे, तेरे हृदय की विकलता खत्म हो जाये तो यह सम्भव नहीं। इसके लिये तो तुझे सतपुरुषों का संग करना होगा अर्थात् सत्संग करनी होगी। सत्संग करते करते जब अहंता-ममता आदि भाव तुझ में नहीं रहेंगे तब तेरा दिल शुद्ध स्वच्छ हो जायेगा और तभी तेरे हृदय की विकलता शान्त होगी। अन्यथा युगों-युगों की साधना भी तेरा दिल साफ नहीं कर सकेगी, तू जीवन पर्यन्त बेचैन ही बना रहेगा।

११५५ स्नेह और कर्त्तव्य के झूलन पर झूलने वाले प्राणी स्नेह प्रधान कि कर्त्तव्य? स्नेह प्रधान हृदय से प्रेम स्वयं प्रवाहित होगा। हित होगा तेरा, विश्व का।

स्नेह हृदय का सुललित भाव है जो स्वतः आता है जबकि कर्त्तव्य बुद्धि का निर्णय है जिसे जोर लगाकर करना पड़ता है—स्नेह और कर्त्तव्य के झूलन पर प्रत्येक प्राणी झूलता रहता है। ऐ प्राणी! अब तू अपनी ओर देख कि तू जो कुछ करता है वह स्नेह से आबद्ध होकर करता है या कर्त्तव्य समझ कर करता है। यदि स्नेह से अभिभूत होकर करता है तो एक दिन प्रेम तेरे हृदय से स्वतः प्रवाहित होने लगेगा जिसे पाकर तेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठेगा। देख, प्रेम निरर्थक जाने वाला नहीं, प्रेम पाकर तू भी धन्य हो जायेगा और जन-जन का भी कल्याण होगा क्योंकि प्रेम होता ही ऐसा है। प्रेम के झरने के नीचे जो भी बैठता है वह निहाल हो जाता है। किन्तु तू यदि कर्त्तव्य ही करता है तो जब तक इन्द्रियाँ सक्षम रहेंगी तब तक तू उसे सम्पादित करता रहेगा पर जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेंगी, मन बुद्धि साथ नहीं देंगे तब तेरा हृदय विकल हो उठेगा क्योंकि तूने अब तक जो कुछ किया था वह स्वाभाविक नहीं था, जोर जबर्दस्ती से किया हुआ था।

११५६ कहानी अधूरी है, यदि पूर्ण न हो।

ऐ प्राणी! मनुष्य जीवन पाने का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है, इसी हेतु

तुझे यह जन्म मिला है। देख, जब तक इस उद्देश्य की पूर्त्ति नहीं हो जाती तब तक तेरी कहानी अधूरी रहेगी और तब तक तू बार-बार आता जाता रहेगा अर्थात् ईश्वर मिलन के पश्चात् ही तेरे जन्म धारण करने का अन्त आयेगा। तेरा वह कार्य यदि जल्दी पूर्ण हो जायेगा तो तेरा आगमन भी सार्थक हो जायेगा और बार-बार आने जाने का क्रम भी नहीं रहेगा। अतः अन्य प्रलोभनों में न फँस कर तू ईश्वर मिलन के साज सजा कि तेरी कहानी (जीवन) रसपूर्ण हो जाये और उसका अन्त भी आ जाये। अन्यथा तेरी जीवन गाथा रसहीन और उबाऊ होगी—इसका कहीं अन्त नहीं आयेगा।

११५७ आँखों ने धोखा दिया। देखने लगी पर को, परमेश्वर को नहीं। चैन कहाँ, शान्ति कहाँ ?

ऐ प्राणी ! इस सृष्टि का सृजन जीवन को सरस बनाने के लिये हुआ है। देख, इसके कण-कण में ईश्वर बसा हुआ है, इसीलिये यह इतनी लुभावनी है किन्तु तू इसके रूप पर ही मोहित हो रहा है, 'यह इतनी क्यों आकृष्ट करती है' इसकी ओर तेरा ध्यान भी नहीं। देख, तू पर (स्थूल) को ही परमेश्वर (प्रधान) समझे बैठा है—यह तेरी आँखों का धोखा है। ऐसे में तू कभी चैन नहीं पा सकेगा और न शान्ति के ही दर्शन कर सकेगा। जीवन में चैन पाने का रास्ता उस प्रभु के दरशन पाना है जिसके आधार पर यह सम्पूर्ण विश्व टिका है। तभी जीवन पाने का एवं संसार में आने का तू लाभ उठा पायेगा अन्यथा तू रोता-गाता हुआ ही संसार से विदा हो जायेगा।

११५८ जब सभी कार्य सुनिश्चित हैं, फिर बेचैनी क्यों ? विश्वास नहीं, ज्ञान नहीं।

"सभी कार्य को सम्पादित करने वाला ईश्वर है, एक पत्ता भी उसकी इच्छा के बिना नहीं हिलता" ये बातें व्यक्ति सुनता आया है इसीलिये कभी-कभी वह कह बैठता है कि जब सभी कार्य सुनिश्चित हैं फिर अन्तर में बेचैनी क्यों बनी रहती है ? ऐ प्राणी ! इस बेचैनी का कारण विश्वास का अभाव है। जब तुझे 'ईश्वर है' यह ज्ञान हो जायेगा एवं ईश्वर के प्रति तुझमें विश्वास का जागरण हो जायेगा तभी तेरे हृदय की विकलता खत्म होगी और उसी दिन ईश्वर के कार्य भी तुझे दिखलायी देंगे। जब तक विश्वास व ज्ञान का अभाव रहेगा तब तक सुनी सुनाई बातों के आधार पर तू यह समझता रहेगा कि 'सभी कार्यों का कर्त्ता ईश्वर है' किन्तु वे भाव तेरे अपने नहीं होंगे

और जब तक अपने नहीं होंगे तब तक तेरी बेचैनी भी खत्म नहीं होगी। अतः जिन्होंने ईश्वर को जाना है तथा जिनके हृदय में विश्वास जाग्रत है तू उनका साथ ग्रहण कर कि उनके वे भाव तेरे भी अपने बन जायें और तू ईश्वर की सत्ता को प्रत्यक्ष देख पाये।

११५९ आहत को जब राहत मिले तो प्रसन्न अन्यथा आह दुःखदाई, राह बहुत दूर।

ऐ प्राणी ! इस संसार में प्रत्येक प्राणी आहत है। वह जिनको अपना मानता है उनके ही व्यवहार से, विचार से व कार्य से आहत रहता है। आहत होने के कारण प्रसन्नता के क्षण भी उसे प्रसन्नता नहीं दे पाते। अब उसे यदि राहत मिले तो उसके जीवन में प्रसन्नता आये। देख, राहत सान्त्वना भरे दो शब्दों में नहीं (वह तो सामयिक राहत है) राहत उन भावों में है जो सत्य दृष्टि प्रदान करने वाले हैं। उन भावों का साथ यदि संयोगवश वह पा जाता है तभी उसे सच्ची राह मिलती है और वह शान्ति के दरशन भी कर पाता है। अन्यथा आह उसे भीतर ही भीतर कचोटती रहती है और ईश्वर के नाम पर अनेक कर्म करके भी वह ईश्वर से दूर ही रह जाता है।

११६० तू उसी से खेलना चाहता है, जिसने खेल के लिए दुनिया बसाई।

ऐ प्राणी ! इस सृष्टि का सृजन तेरे खेल के लिये हुआ है और तू इसे ही सत्य मानकर इससे मेल कर बैठा है और जो ईश्वर मेल करने के लिये है, जिसने तेरे खेल के लिये इतनी सुन्दर सृष्टि का सृजन किया है उससे तू खेल करता है अर्थात् तू ईश्वर के नाम पर जो कुछ करता है वह बाहर से करता है और दुनिया से जो कुछ करता है वह भीतर से करता है। देख, ऐसे में न तू सृष्टि का ही आनन्द पायेगा और न ईश्वर को ही जान पायेगा। अतः तू उल्टा रास्ता छोड़कर सीधे रास्ते चल अर्थात् तू ईश्वर से मेल बढ़ा कि तू खेल के लिये मिली प्रत्येक चीज से सानन्द खेल पाये और खेलते हुए उस खिलाने वाले को भी याद करता रहे।

११६१ तेरा सूर्य देखने आया तो बादलों ने घूंघट ही न हटने दिया। भोले बादल यह घूंघट किनके लिए ? जो अपने हैं आज उनसे घूंघट किन्तु कल ?

ऐ प्राणी ! जो सत्य प्रकाश को देखने के इच्छुक हैं वे भी उसे सहज ही

नहीं देख पाते, विचार रूपी बादल उनके सामने मँडराने लगते हैं। देख, ये बादल उनके सम्मुख ही टिकते हैं जिनके हृदय में सत्य पिपासा नहीं। जिनके हृदय में सत्य को जानने की सच्ची जिज्ञासा है उनके सम्मुख ये टिक नहीं पाते अर्थात् जो अपने हैं उनके सम्मुख पर्दा टिकता नहीं, वे एक न एक दिन सत्य प्रकाश को अवश्य देखते हैं, उनकी आकुल व्याकुल पुकार के सामने कोई भी व्यवधान ठहर नहीं सकते। अतः तू केवल कार्यों द्वारा उसे देखने की चेष्टा न कर क्योंकि कार्यों से उसे पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। तू उसे अपना जानकर प्राण प्रण से पाने को तत्पर हो कि केवल तू ही उसे पाने के लिये नहीं तरसे, वह भी तेरे समीप आने के लिये तरस जाये।

११६२ भँवर में नौका है। नहीं, भ्रमर है मौका है। रस पान कर, दुनिया की एक न सुन।

ऐ प्राणी! मनुष्य जीवन सुनहला मौका है, इसी में ईश्वर की समीपता अनुभव की जा सकती है तथा इसी में रसपान कर आत्म विभोर हुआ जा सकता है। देख, भ्रमर बन कर रसपान करने हेतु ही तेरा यहाँ आगमन हुआ है अतः तू दुनिया की बातों में न उलझ, तू रसपान करके जीवन का आनन्द ले। दुनिया को तू यदि प्रधानता दे बैठेगा तो रस पाने के लिये आया हुआ तू नीरस जीवन ही वाहन करता रहेगा, तब अनेक बन्धन तुझे जकड़ लेंगे और तू यही कहेगा कि 'मेरी नौका भँवर में है'। किन्तु जब ईश्वर तेरे लिये प्रधान होगा, तब भँवर का कहीं नामोनिशान नहीं होगा, तब यह दुनिया तेरे लिये आनन्द का उद्यान बनेगी और तू भ्रमर बन इसका रस ग्रहण करता रहेगा।

११६३ दिल दिया था प्रेम निवास के लिये। वास आज वासना बना। दिल आज दिल्लगी बन गया, दुनिया के लिए।

ऐ प्राणी! तुझे यह दिल रूपी कीमती धन प्रेम को ठहराने के लिये मिला था किन्तु तूने कभी इसकी कीमत नहीं की। तूने दिल में दुनिया को बसाया परिणाम यह संसार तेरी वासना पूर्त्ति का स्थान बन गया। देख, दिल की दुनिया कोमल होती है, यह किसी तरह के ताप को सह नहीं सकती। प्रेम की कोमल भावना जब इसमें प्रश्रय पाती है तब तो यह हरी भरी रहती है किन्तु जब इसमें दुनिया बस जाती है तब दिल की दुनिया उजड़ जाती है। तब व्यक्ति भूल जाता है कि दिल भी कोई चीज है, वह वासना का ही पुजारी

बन बैठता है। ऐसे में दिल दिल्लगी ही बन कर रह जाता है अर्थात् इसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। अरे पगले! जहाँ दिल ही जिन्दा नहीं, वह भी कोई जिन्दगी है? ऐसी जिन्दगी तो जिन्दगी का नाम देने योग्य भी नहीं। अतः पुनः जिन्दादिली पाने के लिये तू हृदय में प्यार को प्रश्रय दे कि तू जिन्दगी का मजा ले पाये।

११६४ सजना और सजाना कब तक? जब तक दिल न भरे।

ऐ प्राणी! जब तक व्यक्ति ईश्वर का परिचय नहीं पाता तब तक उसके लिये शरीर ही प्रधान रहता है, वह दिन रात शरीर की सजावट व सुरक्षा के लिये ही प्रयत्नशील रहता है। तब उसके सभी कार्य शरीर के लिये ही होते हैं, वह हमेशा शरीर के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहता है। इसके पश्चात् भी यदि उसके हृदय में बेचैनी बनी रहती है तो वह ईश्वर के नाम पर चन्दन-तिलक, माला-प्रसाद, पूजा-पाठ आदि सम्पादित करने लगता है अर्थात् कभी वह सजने लगता है और कभी वह सजाने लगता है। उसका यह सजने सजाने का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक इनसे दिल भरता नहीं। देख, यह क्रम किसी का जल्दी ही टूट जाता है और किसी-किसी का टूटता ही नहीं—टूटता उनका ही है जो प्रेम के पिपासु हैं। उन्हें स्थूल प्रलोभन अपनी ओर नहीं लुभा सकते, उनका दिल स्थूल रूप से सब कुछ पाने के पश्चात् भी खाली ही रह जाता है। ऐसे जन न शरीर सजा पाते हैं और न ईश्वर के नाम पर कुछ कर्म करके खुश हो सकते हैं, वे हमेशा दिल की दुनिया में जीते हैं—वे सजते भी दिल से हैं और सजाते भी दिल को हैं।

११६५ बत्ती जलाओ प्रकाश फैलाओ। दुःखी दुनिया को गीत सुनाओ, यही साधना है।

ऐ प्राणी! यहाँ अनेक लोग आये किन्तु अपना रूप भूल बैठे, शरीर व संसार ही उन्हें प्रिय हो गया परिणाम प्रकाशस्वरूप होते हुए भी उनके जीवन में अन्धकार फैल गया। अब वे यदि अन्धकार से अलग भी होना चाहें तो यह उनके लिए तब तक सम्भव नहीं जब तक कि कोई प्रकाशस्वरूप उन्हें प्रकाश न दिखाये। देख, तू प्रकाश पुंज है और यहाँ प्रकाश फैलाने के लिये आया है। अब तेरा काम यही है कि तू यहाँ सबसे प्यार कर। प्यार प्रकाश है, संसार के व्यवहारों से दुःखी जन जब प्यार पा जायेंगे तब वे अपना दुःख भूल जायेंगे, उनके जीवन में प्रसन्नता की लहर आ जायेगी और प्रकाश की

किरण फूट पड़ेगी। तब केवल उन्हें ही राहत नहीं मिलेगी तू भी राहत पायेगा अर्थात् तेरा आगमन तभी सफल होगा और यही तेरी सच्ची साधना होगी।

११६६ फिर याद कर फिर याद कर तेरी फरियाद सुनी जायेगी।

ऐ प्राणी ! याद कभी बेकार नहीं जाती। देख, याद का प्रतिफल कभी-कभी हाथों हाथ देखने को नहीं मिलता किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि याद का कोई असर ही नहीं होता, याद का असर अवश्य होता है। अतः तू ईश्वर को फरियाद न कर, तू उसे याद कर। जब तू उसे सच्चे दिल से याद करेगा और बार-बार याद करता रहेगा तब तू देख पायेगा कि तुझे उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं, वह स्वतः तेरी देखभाल कर रहा है। उस दिन तेरी दुनिया दूसरी होगी, तब याद करना ही तेरा धन-धर्म होगा—अन्य सभी कार्य करते हुए भी तू ईश्वर को भूल नहीं पायेगा। ऐसी है यह याद की दुनिया जिसे पा जाने के बाद फरियाद से फुरसत मिल जाती है केवल याद ही शेष रह जाती है।

११६७ अबोध हृदय में प्यार खिलखिलाकर हँस रहा है। यदि बोध हो जाता तो अमर हो जाता।

ऐ प्राणी ! प्रत्येक प्राणी के अन्तर में प्यार बसा हुआ है किन्तु वह प्यार को पहचानता नहीं। देख, जैसे-जैसे व्यक्ति स्थूल से आबद्ध होता जाता है वैसे-वैसे वह प्यार से दूर होता जाता है और यही कारण है कि जो प्यार खिलखिलाकर हृदय में हँस रहा है उसे ही वह नहीं देख पाता। प्यार ईश्वर है। आँख से दिखलायी पड़ने वाली सभी चीजें एक दिन मिट जाती हैं किन्तु प्यार कभी मिटने वाला नहीं क्योंकि प्यार अमर भाव है। प्यार को पाने के लिये व्यक्ति को झुकना पड़ता है, जब तक समर्पण के भावों से हृदय नहीं सजता तब तक इसे पाना कठिन रहता है। जिनका हृदय स्वाभाविक ही या किसी कारणवश झुकने के भावों को पा जाता है, प्यार का जलवा वे ही देख पाते हैं। प्यार को पाकर उनका जीवन अन्य प्राणियों से दूसरी प्रकार का हो जाता है—वे संसार से जाकर भी नहीं जा पाते क्योंकि उन्होंने अमर प्यार को जो पा लिया है।

११६८ प्यार गंदा नहीं, गंदा है शरीर, जिसमें प्यार की प्र तिष्ठा की जाती है।

ऐ प्राणी ! प्यार शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल है, प्यार की गंगा के तले जो भी बैठ जाते हैं वे भी शुद्ध-बुद्ध हो जाते हैं—ऐसे प्यार को भी लोग गन्दा कहते हैं। देख, प्यार गन्दा नहीं, यह तो प्राणी मात्र में लहरा रहा है तथा उसे जीवन प्रदान कर रहा है। गन्दा यह शरीर है जिसमें मोह, वासना आदि अनेक भावों का सम्मिश्रण रहता है। चूँकि व्यक्ति शरीर से ही आबद्ध हो जाता है अंतः वह मोह वासना से घिर जाता है और तब प्यार भी उसे गन्दा दिखलायी देने लगता है। अतः तू प्यार को भला-बुरा न कह, 'प्यार क्या है' तू प्रथम इसे जान। जब प्यार की महिमा से तू अवगत होगा तब तेरा हृदय प्यार पाने के लिये तड़प जायेगा। उस दिन तुझे शरीर का ध्यान भी नहीं रह जायेगा और तू प्यार को देख पायेगा। प्यार के प्रादुर्भाव के पश्चात् तेरे जीवन में केवल प्यार ही प्यार रह जायेगा जो भीतर ही भीतर तुझे तरी देता रहेगा और तब एक दिन ऐसा आयेगा कि जहाँ तू तरी देखता है वहीं हरि को देख पायेगा।

११६९ तलवार चाहता है? भूतल पर वार प्रेम—तलवार की आवश्यकता ही न रहे।

ऐ प्राणी ! अस्त्र शस्त्र की शक्ति प्रेम की शक्ति के सामने तुच्छ है। अस्त्र शस्त्र द्वारा केवल स्थूल वस्तु-व्यक्ति पर ही विजय पायी जा सकती है किन्तु प्रेम के द्वारा दिल जीता जा सकता है और दिल जीतने के पश्चात् तन-मन-धन कुछ भी पाना बाकी नहीं रह जाता, सभी अपने हो जाते हैं। अतः तू स्थूल शक्ति को ही बटोरने की चेष्टा न कर, तू अपनी प्रेम शक्ति को पहिचान कि तू उस शक्ति का स्वामी बन जाये जिसे दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी नहीं हिला सके। देख, स्थूल ताकत की एक सीमा है किन्तु प्रेम सीमा में बँधने वाला नहीं, प्रेम असीम भाव है। जहाँ प्रेम विराजता है वहाँ सारी शक्तियाँ स्वतः सिमट कर चली आती हैं। जिस दिन तू प्रेम शक्ति को पा जायेगा उस दिन तुझे स्थूल शक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ेगा, तू प्रेममय हो निर्भय विचरण कर सकेगा।

११७० वार पर वार होते हैं घृणा के द्वेष के। कैसे वारूँ प्यार? पूछना बेकार। एक बार वार घृणा प्रेम में न बदले तो मैं झूठा, मेरे भक्त झूठे।

इस संसार में घृणा और द्वेष का साम्राज्य इतना अधिक फैला हुआ है कि

वह प्राणी जो सबसे प्यार करने का इच्छुक है वह भी इनके वार सहते-सहते घबड़ा उठता है। वह कह बैठता है कि जहाँ घृणा द्वेष के वार पर वार होते रहते हैं वहाँ सबसे प्यार कैसे किया जाये? किन्तु अन्तर्चेतना (ईश्वरीय शक्ति) उसकी सहायक बनती है, वह उसे प्रेरणा देती है कि "ऐ प्राणी! प्रेम की शक्ति के सामने घृणा द्वेष टिकने वाले नहीं, वे एक न एक दिन अवश्य बदल जाते हैं। अतः तू धीरज से काम ले, धीरज से प्रेम के साथ जब तू आगे बढ़ेगा तब तू इसका प्रतिफल (सर्वत्र प्रेम ही प्रेम) अवश्य देख पायेगा। अन्यथा यही समझना होगा कि अब तक भगवान की तथा भगवान के भक्तों की जो बातें चली आ रही हैं वे कपोल कल्पित हैं किन्तु ऐसी बात नहीं है।" अन्तर्चेतना की आवाज सुनकर भक्त के हृदय का संशय छिन्न-भिन्न हो जाता है और तब वह भले-बुरे सबसे प्यार कर पाता है—उसका प्यार ही सबमें नव चेतना भरता है।

११७१ मुझे क्या देखता है? मेरे भक्तों को देख जो दुनिया को भूल बैठे मेरे प्यार में। आज उनके गीत गाकर अपने को पवित्र समझती है। (दुनिया)

ऐ प्राणी! ईश्वर स्थूल आँखों से नहीं देखा जा सकता। स्थूल आँखों से ईश्वर की प्रतिमा देखी जा सकती है, ईश्वर नहीं। ईश्वर को देखने के लिये भाव की आँखें चाहिये और वे आँखें ईश्वर भक्त के समीप ही मिलती हैं। देख, ईश्वर भक्त के लिये ईश्वर ही प्रधान रहता है। उसे दुनिया के बड़े से बड़े प्रलोभन भी अपनी ओर नहीं खींच सकते, केवल एक ईश्वर ही भाता है—उसकी आँखें केवल ईश्वर को खोजती रहती हैं। ईश्वर प्राप्ति के लिये उसके रात दिन का चैन खत्म हो जाता है, उसके जीवन का परम लक्ष्य एकमात्र ईश्वर ही रहता है। जो सम्पर्क ईश्वर से विमुख करने वाला है वह उसे क्षण भर के लिये भी नहीं सुहाता, उसे वही भाता है जिसे देखकर ईश्वर की उद्दीपना होती है। ऐसे ईश्वर भक्त जा कर भी नहीं जाते, उनके गीत गा गाकर लोग अपने को धन्य समझते हैं। ऐसे भक्तों में ही ईश्वर विराजता है, उनके समीप बैठकर ही ईश्वर को देखा जा सकता है।

११७२ पाताल? पाराग अनुराग ताल पर नाचती है दुनिया। बेताल पाताल!

ऐ प्राणी! जिन्होंने प्रेम के दरशन पाये हैं एवं प्रेम जिनके हृदय में

प्रतिष्ठित हो गया है उनका जीवन आनन्दमय हो जाता है। उन्हें दुनिया से कोई शिकायत नहीं रहती, प्रत्येक परिस्थिति उन्हें ईश्वर प्रदत्त दिखलायी देती है अर्थात् ताल में लगती है। किन्तु जिन्होंने प्रेम को जाना ही नहीं, प्रेम से जो कोसों दूर हैं उनका हर कदम बेताला रहता है। ऐसे जन कदम-कदम पर लड़खड़ाते रहते हैं। देख, प्रेम पाकर जीवन स्वर्णिम बन जाता है, प्रेमी का हृदय आकाशवत् विशाल हो जाता है—भले बुरे सभी उसके समीप स्थान पाते हैं। किन्तु जो प्रेम को भुलाकर स्थूल में ही विचरण करते हैं वे हमेशा कष्ट पाते रहते हैं और दिन ब दिन निम्नतर भावनाओं को अपनाकर जीते जी ही पाताल (निम्नतर अवस्था) में पहुँच जाते हैं। अतः तू यदि मौज में रहने का इच्छुक है तो राग अनुराग को गले लगा ले कि तू वह भाव पा जाये जो आनन्द प्रदान करने वाले हैं। तब तू ही मौज में नहीं रहेगा, प्रेम के पिपासु जो भी तेरे समीप आयेंगे वे भी उसी ताल पर नाचने लगेंगे।

११७३ ग्राम बसा है तो राम भी बसा है। ग्राम बाहर राम भीतर।

ऐ प्राणी ! एक दुनिया बाहर है और दूसरी दुनिया तेरे भीतर है। बाहर की दुनिया में राम के कार्य हैं किन्तु भीतर की दुनिया में राम स्वयं विराजमान है। देख, राम को भुलाकर यदि तू उसके कामों को देखने लगेगा तो उन्हीं में उलझ जायेगा, तू उनका आनन्द नहीं ले पायेगा किन्तु तू यदि प्रथम अन्तर में बसे राम को देख लेगा तो तेरी दुनिया ही बदल जायेगी, तब भीतर बसा राम तुझे आराम देता रहेगा। देख, इस ग्राम (दुनिया) में सानन्द वे ही बसते हैं जो राम को साथ देखते हैं क्योंकि राम के साथ से ही राम के कार्यों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अन्यथा ग्राम, नाम और काम में फँस कर व्यक्ति जीवन लीला को यूँ ही नष्ट विनष्ट कर देता है, वह उनसे कुछ भी नहीं ले पाता। अतः तू तेरे भीतर बसे राम को पहिचान कि तू ग्राम का आनन्द भी पा सके और तेरा जीवन हरा भरा हो जाये।

११७४ प्रकृति यदि भीतरी प्रकृति को प्रसन्न कर सके तो क्षणिक शांति अन्यथा भ्रमण पूजा व्यर्थ।

ऐ प्राणी ! भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण के लिये व्यक्ति इसलिये जाता है कि वह प्रकृति का आनन्द ले पाये, प्रकृति को देखकर उसकी भीतरी प्रकृति प्रसन्न हो जाये, वह जितने समय वहाँ रहे अशान्ति उसके समीप भी न आ

पाये। यदि अन्य स्थान में जाकर भी ऐसा नहीं हुआ तो यही कहना होगा कि उसका भ्रमण व्यर्थ ही रहा, भ्रमण केवल भ्रमण (चक्कर) बन कर रह गया। ऐसी ही पूजा की बात है। पूजा करने वाला यदि ईश्वर की समीपता का अनुभव न कर पाये, ईश्वर उसका अपना न बन जाये तो उसकी पूजा केवल कार्य बन कर रह जायेगी, वह पूजा का आनन्द नहीं ले पायेगा। अतः तू ईश्वर के नाम पर कुछ कार्यों को ही सम्पादित करके खुश न हो, तू पूजा में ईश्वर की खोज कर कि उसका सामीप्य पाकर तू आनन्दी बन जाये—तभी तेरी पूजा सफल होगी।

११७५ दिल बहलाने के लिये यदि कुछ कहा भी, किया भी तो शांति कहाँ? शान्ति मिलन में। चिर मिलन-चिर समाधी।

ऐ प्राणी! ईश्वर की पूजा एवं ईश्वर की बातें जब दिल बहलाने का साधन बन जाती हैं तो उनसे शान्ति नहीं मिलती क्योंकि शान्ति कार्यों में नहीं, शान्ति ईश्वर की समीपता अनुभव करने में है। जब तेरा उद्देश्य शान्ति पाना होगा तब तेरे कार्य स्वतः मिलन के लिये होने लगेंगे क्योंकि शान्ति ईश्वर के चरणों को छोड़कर अन्यत्र कहीं है ही नहीं। किन्तु जब तक तू इस रहस्य से अवगत नहीं होगा तब तक ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य करता रहेगा फिर भी शान्ति तेरे समीप नहीं आ सकेगी, तेरे भीतर अधिकाधिक अशान्ति ही बढ़ती जायेगी। अतः तू यदि शान्ति पाना चाहता है तो ईश्वर के नाम पर कुछ कर्म करके ही सन्तुष्ट न हो, तू ईश्वर का बन। जैसे-जैसे तू स्वयं को ईश्वर की शरण में पायेगा वैसे-वैसे शान्ति तेरी साथिन बनती जायेगी और जब तू पूर्णतया ईश्वर के चरणों में झुक जायेगा अर्थात् तेरी दुनिया में एक ईश्वर ही रह जायेगा उस दिन तुझे अपनी चिन्ता नहीं करनी होगी, तू ईश्वर की गोद में बैठा आनन्द मनायेगा।

११७६ पहले जलाओ, फिर जल लाओ। पहले ही प्रेम जल बह निकले आँखों से तो मुख से न आह निकले और न वाह।

ऐ प्राणी! बिना कष्ट उठाये सहज में मिली हुई चीज की कीमत नहीं होती किन्तु वही वस्तु जब अनेक कष्टों के पश्चात् मिलती है तो जी जान से बढ़कर लगती है—ऐसी ही बात प्रेमाश्रुओं की है। देख, प्रेमाश्रु जब हृदय

की तड़प के पश्चात् मिलते हैं तब तो उनकी कीमत होती है किन्तु तड़प के पूर्व ही वे यदि प्रेमी के संग से भावुकतावश निकल जाते हैं तो उनकी कीमत नहीं होती और तब उनका प्रभाव भी क्षणिक ही होता है। तड़प के पश्चात निकले हुए एक-एक आँसू कीमती होते हैं, उन आँसुओं से ही भक्त के हृदय की आह कुछ अंशों में शान्त होती है। इतने पर भी उसके वे आँसू थमने वाले नहीं, वे तभी थमते हैं जबकि उसके अन्तर की आह वाह में परिणत हो जाती है अर्थात् वह ईश्वर का जलवा देख पाता है। ऐसे हैं ये प्रेम के आँसू जिन्हें पाकर साधारण सा मानव महामानव बन जाता है और जिसके दरशन पाकर अनेक कृत्य-कृत्य होते हैं।

११७७ वह वक्त था वह भी भक्त था, क्षण भर के लिये न भूलता था। आज भूल कर भी याद नहीं करता यह भी वक्त है यह भी भक्त है माया का।

ऐ प्राणी! जो ईश्वर भक्त हुए हैं उन्होंने आजीवन ईश्वर को ही याद किया, वे क्षण भर के लिये भी ईश्वर को नहीं भुला सके। ईश्वर को बाद करके यह दुनिया उन्हें काटने दौड़ती थी क्योंकि ईश्वर की स्मृति से उनकी आँखें खुल गई थीं किन्तु आज वह बात नहीं। आज विज्ञान युग है, इसमें स्थूल की प्रधानता है। इस युग में व्यक्ति स्थूल से दिन ब दिन अधिक रूप से घिरता जा रहा है और ईश्वर को भूलता जा रहा है। यही कारण है कि उसे स्थूल व्यक्ति वस्तु ही सत्य नजर आ रहे हैं। किन्तु आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिये स्थूल प्रधान नहीं, जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण ईश्वर के लिये है—तेरी बन्द आँखें उनके समीप बैठकर ही खुल सकती हैं। अतः तू यदि तेरे इस मायावी जीवन से ऊब चुका है तथा जीवन में शान्ति सन्तोष के दरशन करना चाहता है तो उनका सामीप्य ग्रहण कर कि तेरी बन्द आँखें खुल जायें और तू जीवन पाने के लक्ष्य को पा जाये।

११७८ यह तेरा उल्टा खेल क्यों? सूक्ष्म से स्थूल में आया अब स्थूल से सूक्ष्म में क्यों नहीं जाता? मोटा हो गया हूँ बुद्धि से विचारों से अब सूक्ष्म में कैसे जाऊँ?

ऐ प्राणी! तू स्थूल जगत का वासी नहीं यहाँ तो तू समय विशेष के लिये आया है, तू सूक्ष्म जगत का वासी है। देख, स्थूल जगत में रहते-रहते तू अपने

रूप को ही भूलता जा रहा है और स्वयं को भी स्थूल (शरीर) के रूप में ही देखने लगा है। अब शरीर की रक्षा ही तेरे लिये प्रधान बन गयी और तेरे दिन रात का ध्यान भी शरीर ही बन गया। देख, जब स्थूल प्रधान हो जाता है तब सूक्ष्म (श्रद्धा, प्रेम आदि) भाव समीप नहीं आते जो उच्चस्तर में पहुँचाने वाले हैं, आते हैं वे भाव जो निम्नस्तर में ले जाने वाले हैं—ऐसे में जीवन कटुता से भर जाता है। अरे पगले ! तेरा यहाँ आने का उद्देश्य यह तो नहीं था, तुझे यह मनुष्य जन्म इसलिये तो नहीं मिला था ? तूने अपनी यह क्या गति बना रखी है ? तू आज भी सम्हल जा, आज भी उल्टे रास्ते को छोड़कर तू सीधा रास्ता पकड़ अर्थात् ईश्वर को प्रधान जानकर ईश्वर मिलन के साज सजा कि तेरा आगमन सुखद हो और मनुष्य जीवन पाने का तू लाभ उठा सके।

११७९ सुनता तो है। क्या इसी को सुनना कहते हैं। सुना तो तैने भी था कब विश्वास किया ?

ऐ प्राणी ! जिनके लिये स्थूल ही सर्वस्व रहता है वे चिकने घड़े की तरह होते हैं। वे यदि भाव भरी वाणी सुनते भी हैं तो वह उनके समीप ठहरती नहीं अर्थात् बहुत कुछ सुनकर भी वे कुछ नहीं सुन पाते। किन्तु दूसरी ओर जिसने भाव का दिग्दर्शन किया है उसे भाव ही भाता है, भाव की छोटी सी बात भी उसमें भाव जगाती है। उसे यदि अन्य गुमराह करने की चेष्टा भी करते हैं तो उनकी बातें उसके कानों तक नहीं पहुँचतीं, वह हमेशा अपने भीतर की ओर देखता हुआ आगे बढ़ता जाता है अर्थात् जिनके लिये दुनिया प्रधान रहती है वे ईश्वर की बातें सुनकर भी नहीं सुन पाते और जिनके लिये ईश्वर प्रधान रहता है उन्हें दुनिया की बातें भ्रमित नहीं कर पातीं। अतः तू यदि सुनने का रस पाना चाहता है तो तू वह संग साथ ग्रहण कर जिस साथ से तुझमें भाव की जागृति हो जाये। देख, भाव तुझे जब भा जायेगा तब ईश्वर तेरे लिये प्रधान हो जायेगा और अभाव तेरे समीप टिक नहीं सकेंगे—सुनने का आनन्द भी तू तभी ले सकेगा।

११८० ये बंदे हैं कि अन्धे हैं जो देख कर भी कुछ नहीं देखते। ये गन्दे हैं इन्हें गन्दगी पसन्द। न बन्दगी न खन्दगी।

ऐ प्राणी ! तू प्रतिदिन पैदा होते भी देखता है और मरते भी देखता है फिर भी तेरी आँखें बन्द हैं, तू यह नहीं समझ पाता कि तू यहाँ कुछ समय के

लिये आया है। यहाँ दो दिन का मेला है जो हँसने खेलने व ईश्वर की समीपता ग्रहण करने के लिये मिला है। देख, तू यहाँ आकर लक्ष्य को भूल कर मिले हुए संगी साथियों को ही सत्य मान बैठा है और यही कारण है कि तेरे चारों ओर गन्दगी ही गन्दगी बिखर गयी। अब तू शरीर व स्वार्थ से इतना घिर गया कि हर समय रोता रहता है फिर भी इन्हें छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता क्योंकि तुझे ये ही प्रिय हो गये। अब न तुझे बन्दगी (सेवा-पूजा) भाती है और न चन्दगी (हृदय की स्वच्छता) सुहाती है। देख, तू बन्दा है, तू बन्दगी कर। अभी तू जो कुछ कर रहा है वह तेरे रूप के अनुरूप नहीं। बन्दगी से ही तू अपने रूप के अनुरूप होगा और चन्दगी भी तू तभी पा सकेगा अन्यथा आँखें रहते हुए भी तू सदा अन्धा ही बना रहेगा अर्थात् कुछ देख नहीं पायेगा, सत्य से अनजान ही रह जायेगा।

११८१ खिले हुए फूल पर किसी की नजर जाये या न जाये उसके दिल की कसक तो मिटी। अरे मिट्टी में तो मिलना ही है जरा हँस ले, जरा खिल ले।

ऐ प्राणी ! हृदय का प्रस्फुटन स्वयं को ही सुख देता है इसकी कद्र कोई अन्य करे या न करे। देख, इस शरीर का जाना तो एक दिन निश्चित है किन्तु जाने के पहले यदि हृदय खिल जाये एवं व्यक्ति हँस कर जीवन व्यतीत कर सके तो उसका आगमन सफल हो जाता है अन्यथा खिलने के लिये आया हुआ प्राणी एक दिन बिन खिले ही मुरझा जाता है। ऐसे में उसके हृदय की विकलता खत्म नहीं हो पाती। देख, स्थूल सामग्रियाँ कितनी ही क्यों न मिल जायें वे शरीर को सुख दे सकती हैं हृदय की जलन नहीं मिटा सकतीं, हृदय की जलन मिटने का रास्ता उन भावों की प्राप्ति है जिन्हें पाकर हृदय खिल जाये। अतः इस दुनिया से कूच करने के पूर्व तू वह भाव पा ले जिसे पाकर तेरा हृदय फूल की तरह खिल जाये और उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध तुझे आनन्द प्रदान करती रहे।

११८२ क्षुद्र प्राण किस पर अभिमान ? एक का भी ऋण चुका न सका। दिल पर भार लिए घूम रहा है।

ऐ प्राणी ! तुझे मिला हुआ यह शरीर अभिमान करने के लिये नहीं, उस प्रभु के सामने नतमस्तक होने के लिये है जिसने तुझे जीवन प्रदान किया है।

यदि तू उस दाता के प्रति कृतज्ञ नहीं होगा तो तेरा दिल हमेशा बोझिल बना रहेगा, ऋण का बोझ हमेशा तुझे भीतर ही भीतर कचोटता रहेगा। अतः तू इस शरीर को ही सब कुछ जानकर अभिमान न कर (जो आज है किन्तु जिसके कल का पता नहीं) तू उस अज्ञात सत्ता को जान जिसने तुझे भेजा है कि तू आने का आनन्द ले पाये। अन्यथा तू शरीर को प्रधान समझकर हमेशा अभिमान में ही फूला रहेगा और ऋण से कभी उऋण नहीं हो पायेगा। ऐसे में तू दिल पर बोझ लिये ही घूमता रहेगा। अतः तू उस एक की खोज कर जिसने तुझे जीवन प्रदान किया है कि तेरे दिल का बोझ खत्म हो जाये और तू उसे याद करता हुआ आनन्दमय जीवन बिता पाये।

११८३ मेरे प्यार को मैं ही जानता हूँ। प्राणी वासना में क्यों बदलता है? इसीलिए बेचैन।

ऐ प्राणी! तेरा यह मनुष्य जीवन तोहफा है, यह बड़े प्यार से तुझे ईश्वर की तरफ से प्रदान किया गया है। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है वैसे वैसे तू इसे भूलता जा रहा है और यही कारण है कि इस कीमती उपहार का दिन रात प्रयोग करने के पश्चात् भी तू देने वाले को याद नहीं करता। अब यह शरीर तेरे लिये वासना पूर्त्ति का साधन बन गया है—इसके द्वारा तू अनेकानेक भोग भोगने में संलग्न है, ऐसे में तेरे हृदय में बेचैनी रहना तो निश्चित है। देख, इस तोहफे में देने वाले का कितना प्यार छुपा है आज यह तेरी आँखों से ओझल है किन्तु सौभाग्यवश यदि तू कभी उसकी ओर उन्मुख हो जायेगा तो तेरा हृदय उसके प्यार को देखकर रो पड़ेगा—तेरे हृदय की बेचैनी भी तभी कम होगी। अन्यथा स्थूल वस्तुओं के पीछे भागता हुआ तू हमेशा बेचैन ही बना रहेगा।

११८४ जैसा लिया था वैसा ही दे। दाग क्यों, दिल में दाग क्यों? दागी चीज किसे पसन्द?

ऐ प्राणी! यह जीवन तुझे प्रारम्भ में जैसा साफ सुथरा मिला था तू इसे हमेशा वैसा ही सुरक्षित रख किन्तु इसका वैसा रहना तभी सम्भव है जब तू जीवन देने वाले को जानेगा। जैसा पाया है वैसा का वैसा रहने से तू भी मौज मनाता रहेगा तथा जो भी इसे देखेंगे वे भी खिल उठेंगे। देख, दागी चीज किसी को नहीं भाती, उसे कोई पसन्द नहीं करता। तू यदि देने वाले को भूल बैठेगा तो मोह, वासना, स्वार्थ आदि भावों से घिर जायेगा और तब

तेरा यह जीवन दागी हो जायेगा। ऐसे में तू ईश्वर को मुँह दिखाने के काबिल भी नहीं रहेगा और न स्वयं जीवन पाने का आनन्द पायेगा। अतः तू दाग लगने के पूर्व ही ईश्वर की शरण ग्रहण कर और यदि दाग लग चुका है तो भी उसकी शरण ग्रहण कर ले। ईश्वर बड़ा दयालु है, वह तेरे दागों को देखेगा नहीं वह तुझे धो पोंछ कर साफ कर देगा—जीवन पाने का आनन्द तू तभी ले सकेगा।

११८५ यह भ्रम क्यों ? मैंने सदा तुम्हें याद किया। आज तुम भी भूल बैठोगे तो तुम्हीं पछताओगे।

ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य सम्पादित करके व्यक्ति यही समझता है कि मैं ईश्वर को याद कर रहा हूँ। ऐ प्राणी! याद करने के लिये कार्यों का सम्पादन जरूरी नहीं, अपनेपन का आभास जरूरी है। जब तक ईश्वर अपना नहीं बन जाता तब तक उसके नाम पर कुछ भी क्यों न कर लिया जाये उन्हें करके अन्य के द्वारा प्रशंसा मिल सकती है, स्वयं में अभिमान हो सकता है किन्तु हृदय की विकलता नहीं मिट सकती। देख, ईश्वर के लिये किये गये कार्यों को देखकर व्यक्ति भ्रम में पड़ सकता है किन्तु ईश्वर नहीं क्योंकि वह स्थूल नहीं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह तेरे प्राणों में बसा तेरे अन्तर की एक-एक भावना को देख रहा है। तू इस भ्रम में न पड़ कि ईश्वर भूल करता है, भूल अभी तुझमें ही बनी हुई है तू ही अभी ईश्वर से दूर है। अतः तू कार्यों में न उलझ तू ईश्वर को याद कर अन्यथा तू पीछे पछतायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

११८६ अर्पण करने दे छीनता क्यों है ? करता नहीं, तभी तो छीना झपटी।

ऐ प्राणी! जिनके भीतर स्वयं को ईश्वर के चरणों पर अर्पित करने के भाव हैं वे यदि स्वयं अर्पित होने में असमर्थ रहते हैं तो ईश्वर उन्हें अपनी ओर खींचने लगता है। देख, ईश्वर का इस प्रकार खींचना उन्हें कभी-कभी भारी लगता है किन्तु ईश्वर इसकी परवाह नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि यह इस तथ्य को नहीं जानता कि मैं जोर जबर्दस्ती के द्वारा इसे समीप ला रहा हूँ, यह तो यही समझता है कि मैं इसे कष्ट दे रहा हूँ। एक समय पश्चात् जब वह हृदय में परिवर्त्तन देखेगा तब इस रहस्य से भी अवगत होगा कि वह जिन परिस्थितियों से गुजर रहा था वे मेरे द्वारा ही अनुप्राणित थीं। उस दिन

मेरे प्रति उसके हृदय में उपालम्भ नहीं रहेगा, रहेगी कृतज्ञता जिसके तले बैठकर वह आनन्द मनाता रहेगा।

११८७ मोह और मोम निरर्थक यदि कर्त्तव्य और बत्ती को न अपनाये। लक्ष्य स्वार्थ तो मोह प्रधान, यदि परमार्थ तो जीवन धन्य।

ऐ प्राणी! मोम की सार्थकता जैसे बत्ती से है वैसे ही मोह की सार्थकता कर्त्तव्य से है। बत्ती के साथ से मोम प्रकाश देने लगता है और कर्त्तव्य के साथ से मोह प्रसन्नता प्रदान करने लगता है। देख, यदि कर्त्तव्य साथ न रहे तो व्यक्ति स्वार्थ से घिरता जायेगा, वह मोह से कभी अलग नहीं हो पायेगा। किन्तु संयोगवश वह यदि परमार्थी बन जाये तो उसकी दुनिया ही बदल जायेगी। परमार्थी के भाव, विचार व कार्य सभी भिन्न प्रकार के हो जाते हैं। उसकी दुनिया केवल 'मैं-मेरों' से घिरी नहीं होती, सभी उसके अपने रहते हैं। उसके कार्य बाहर से देखने में चाहे जैसे भी हों किन्तु वे उसे सत्य की ओर ले जाने वाले होते हैं—यथार्थ में परमार्थी का जीवन ही धन्य होता है, वही सबके लिये प्रकाश स्तम्भ होता है। अन्य तो यहाँ आते हैं किन्तु मोह के कारण एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाते, वे एक धूरी पर ही चक्कर काटते रहते हैं और रोते-रोते ही संसार से विदा हो जाते हैं।

११८८ अहंकार! तेरा निवास कहाँ? कहाँ मेरा निवास नहीं? एक प्रेमी है जो मुझे स्थान नहीं देना चाहता।

ऐ प्राणी! शरीर को हिलते-डुलते व चलते-फिरते देखकर व्यक्ति भ्रम में पड़ जाता है, वह प्रत्येक कार्यों का कर्त्ता स्वयं को ही समझ बैठता है। दो छोटी सी बातें एवं दो छोटे से कार्य उसे फुलाने के लिये यथेष्ट होते हैं, उन्हें कहकर एवं करके वह अपने समान किसी को नहीं समझता—आज अधिकांश प्राणियों की यही अवस्था है। किन्तु इस अहंकारी युग में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें अहंकार नहीं सुहाता केवल प्रेम ही भाता है, उन्हें प्रत्येक कार्यों का कर्त्ता ईश्वर दिखलायी देता है—उनके कदम सदा प्रेम डगर पर ही बढ़ते हैं। उनको बाधा पहुँचाने के लिये अहंकार यदि उनके समीप आता भी है तो टिक नहीं पाता, वह लौटकर चला जाता है।

११८९ न मान तू भगवान को, शान्ति का दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा। शान्त व्यक्ति ही उसकी अनुभूति पाते हैं।

ऐ प्राणी ! शान्ति ईश्वर के चरणों में है। ईश्वर को भुलाकर यदि सारी दुनिया में भी चक्कर काट लिया जाये तो शान्ति नहीं मिल सकती क्योंकि शान्ति अन्यत्र है ही नहीं। देख, तू भगवान को तो पाना नहीं चाहता किन्तु शान्ति तो पाना चाहता है ? यदि शान्ति पाना चाहता है तो एक न एक दिन तुझे भगवान की शरण भी लेनी ही होगी। जब तुझमें शान्ति की चाह तीव्र हो जायेगी तब धन जन आदि प्रलोभन तुझे नहीं भायेंगे, तुझे वही भाव भायेगा जो शान्ति प्रदान करने वाला है। ऐसे में तू कब ईश्वर के समीप पहुँच जायेगा इसे जान भी नहीं पायेगा, तू होश में तब आयेगा जब ईश्वर की अनुभूति तेरे हृदय में आनन्द का वर्षण करने लगेगी।

११९० पत्थर की कठोरता की निन्दा की किन्तु हृदय में सरसता न खोजी तो तुझे शांति कब मिली ?

ऐ प्राणी ! तू पत्थर को कठोर कहता है किन्तु तेरा हृदय तो पत्थर से भी अधिक कठोर है। देख, जब तक तेरा हृदय कठोर ही बना रहेगा तब तक तू शान्ति नहीं पा सकेगा, चाहे तू कितनी भी चेष्टायें क्यों न कर ले। शान्ति पाने के लिये हृदय में सरसता चाहिये और यह सरसता तभी सम्भव है जब सम्मुख प्रेमपूर्ण भाव हो। प्रेमपूर्ण भाव से ही हृदय में प्रेम की जागृति होती है और प्रेम की जागृति ही कठोर हृदय को कोमल बनाती है। अतः तू यदि शान्ति पाना चाहता है तो प्रेम के अवतार सन्त की खोज कर कि उनकी भाव भरी वाणी सुनकर तेरा कठोर हृदय कोमल होने लगे और तू शान्ति के दरशन कर पाये। अन्यथा तेरा हृदय सदा सर्वदा पत्थर सदृश्य कठोर बना रहेगा और शान्ति तेरे समीप भी नहीं फटकेगी।

११९१ प्रेम नहीं झुकता, प्रेमी नहीं झुकता, झुकता है दिल। जहाँ दिल ही नहीं—वहाँ प्रेम कैसा ?

ऐ प्राणी ! प्रेम अमर भाव है, यह जिस हृदय में स्थान पा जाता है वह प्रेमी भी अमर हो जाता। देख, प्रेम झुकना नहीं जानता क्योंकि प्रेम परमेश्वर है। इतना ही नहीं, प्रेम को पाने के पश्चात् प्रेमी को भी कोई झुका नहीं सकता। प्रेम को पाने के लिये प्रेमी का दिल अवश्य झुकता है क्योंकि

झुककर ही प्रेम को पाया जा सकता है। जहाँ झुकने के भाव नहीं अर्थात् जहाँ दिल नहीं वहाँ प्रेम पाना ही असम्भव रहता है। ऐसे जन आवेश को ही प्रेम का नाम दे सकते हैं, प्रेम नहीं पा सकते। अतः तू यदि प्रेम का पिपासु है तो तू अपने अन्तर को टटोल कि तू झुकने के लिये तैयार है या नहीं? यदि है, तभी तू प्रेम पगडण्डी पर कदम बढ़ाना कि प्रेम धन तेरा अपना बन जाये, तू वह भाव पा जाये जो अमर है।

११९२ बिना तार की वीणा कैसी? बिना झंकार के तल्लीनता कहाँ? तार, तारता है, तार झंकार पैदा करता है।

ऐ प्राणी! तेरा यह मनुष्य जीवन उस वीणा की तरह है जिसकी मधुर झंकार सबका मन मोह लेती है। देख, तार के बिना वीणा बेकार होती है, तार के कारण ही वह अनेक राग-रागिनी से युक्त होती है—जीवन वीणा की भी यही बात है। स्थूल वस्तु व्यक्ति से घिर जाने के कारण तेरी जीवन वीणा के तार टूट चुके हैं। अब तुझे यह भी मालूम नहीं कि तुझमें वह ध्वनि भी है जो आनन्द प्रदान करने वाली है और यही कारण है कि दुःख चिन्ता से घिरकर तू आज रो रहा है। अरे पगले! आज भी समय है, अपने रूप को पुनः पाने के लिये तू आज भी उस प्रेमपूर्ण भाव की खोज कर जिसे तू कभी भुला न पाये और जिससे तेरा तार जुड़ जाये। जब ऐसा प्रेमपूर्ण आकर्षण तू पा जायेगा तब स्वतः तेरे हृदय में वह मधुर झंकार उठने लगेगी जिसे सुनकर तू तल्लीन हो जायेगा। ऐसे में तू जीते जी ही मुक्त हो जायेगा क्योंकि तार ऐसा ही होता है, इसे पाकर रोम-रोम झंकृत हो उठता है।

११९३ अज्ञ ने अज्ञात न जाना। विज्ञ विद्वता में पागल। अज्ञात—अज्ञात ही रहा। ऋषि वाक्यों ने जिज्ञासा उत्पन्न की। शांति तो संत की कृपा ही प्रदान करती है।

ऐ प्राणी! ईश्वर अज्ञात अवश्य है किन्तु वह अज्ञेय नहीं है। देख, उसे 'अज्ञ' जो अन्धकार में खोये हैं वे भी नहीं जान पाते और न 'विज्ञ' जिन्हें अपनी विद्वता का अभिमान है वे ही जान पाते हैं—उसे जानते हैं वे जिनके हृदय में उसे देखने की जिज्ञासा रहती है। ऋषि वाक्यों (धार्मिक ग्रन्थों) को पढ़कर उन्हें संकेत मिल जाता है किन्तु तृप्ति तब तक नहीं मिलती जब तक कि वे उसे प्रत्यक्ष नहीं पा जाते। उनके हृदय में ईश्वर को पाने की जो

विकलता रहती है वही कार्य करती है और उसके कारण ही वह दिन भी आ जाता है जब सत्य के प्रतिरूप सन्त का उन्हें दरशन होता है। सन्त के दरशन, सन्त की वाणी व सन्त के भाव उनके लिये सहारा बन जाते हैं, उनके समीप बैठकर ही वे शान्ति पाते हैं। जैसे-जैसे सन्त के भाव उनके अपने बनते हैं वैसे-वैसे वे सत्य को जीवन के हर क्षण पर प्रतिष्ठित देख पाते हैं।

११९४ प्रकृति किसी के बस में हो यह किसी के बस की बात नहीं। प्रकृति प्रेम मनुष्य को निम्न स्तर से ऊँचा उठाता है। परम पुरुष का प्रेम तो अमर बनाता है।

ऐ प्राणी ! प्रकृति को बस में नहीं किया जा सकता क्योंकि यह ईश्वर द्वारा परिचालित है। जो प्रकृति को बस में करने की चेष्टा करते हैं वे उसे तो बस में कर सकते ही नहीं, उसे अपना बनाने के चक्कर में स्वयं ही कष्ट से घिर जाते हैं। देख, प्रकृति से प्रेम किया जा सकता है। प्रकृति प्रेम मानव को निम्नस्तर से ऊँचा उठाता है। तब वह आहार, निद्रा, भय, मैथुन में ही जीवन को नहीं खोता, हृदय की सुखद अनुभूति भी पाता है। इतने पर भी जब उसे सन्तोष नहीं होता तब वह उस परम पुरुष को भी देख पाता है जिसके इशारे पर प्रकृति नाच रही है। परम पुरुष का प्रेम तो साधारण प्रेम नहीं, इसे पाकर तो प्राणी अमर हो जाता है। वह यहाँ रहता है तब तक भी आनन्द मनाता है और एक दिन उसका शरीर चला जाता है किन्तु उसका वह भाव नहीं जा पाता, वह अमर रहता है।

११९५ विश्व एक उद्यान है जिसमें रंग बिरंगे फूल खिले हैं। काँटों की गाथा गाता आ रहा है। न उद्यान देखता है और न माली को, प्रेम संतोष के दरशन दुर्लभ हो रहे हैं।

ऐ प्राणी ! यह संसार एक रमणीय उद्यान है, विभिन्न प्राणी इसमें रंग बिरंगे फूल हैं। देख, उद्यान में फूल और काँटे दोनों रहते हैं किन्तु उद्यान में जाने वाला काँटों की ओर नहीं देखता, फूल की सुगन्ध ही लेता है एवं माली की कारीगरी पर मन ही मन मुग्ध होता है, तभी वह बगीचे से प्रसन्नवदन लौटता है। इस संसार की भी यही बात है। तू यहाँ यदि काँटों (दुष्ट प्रकृति के लोगों) की चर्चा में ही उलझ जायेगा तो इस उद्यान का आनन्द नहीं ले पायेगा और न उस माली (ईश्वर) को देख पायेगा जिसने

तेरे आनन्द के लिये इस सृष्टि का सृजन किया है। ऐसे में तेरा यहाँ आना ही बेकार होगा, तू यहाँ आकर भी प्रेम व सन्तोष से वंचित ही रह जायेगा।

११९६ द्रव्य के लिये उपद्रव? दया से द्रव हो गया दिल जिसका वह द्रव्य नहीं, द्रव चाहता है दान—प्रेम दान।

ऐ प्राणी! 'जीवन चर्या सुचारु रूप से चलाने के लिये धन साधन है' इस सत्य को भुलाकर जो धन को ही प्रधान मान लेते हैं उनका मन-मस्तिष्क विकृत हो जाता है—उनके हृदय में हमेशा विकलता बनी रहती है। देख, इस उपद्रव से वे ही बच पाते हैं जिनका हृदय सन्त की दया पाकर द्रवीभूत हो गया है। ऐसे जन द्रव्य नहीं चाहते, वे हमेशा प्रेम का दान चाहते हैं। उन्हें उपद्रव नहीं सुहाता, केवल वही भाव भाता है जो उनके अन्तर में सरसता प्रदान करने वाला हो। अतः वे उन राहों पर नहीं बढ़ पाते जिन पर बढ़कर मन अशान्त हो जाये, वे सदा उन्हीं भावों में जीते हैं जिन्हें अपनाकर उनके हृदय में प्रेम का वर्षण होता रहे।

११९७ वस्तु दी संतोष क्यों न दिया? संत देगा संतोष। वस्तु के वश में तू। मैंने क्या न दिया? फिर भी संतोष नहीं।

ईश्वर प्रारम्भ से ही प्राणी की सभी जरूरतें पूरी कर रहा है फिर भी व्यक्ति संतोष नहीं ले पाता। इसका कारण यह है कि वह वस्तु के वश में हो गया है। ऐ प्राणी! तेरे पास सब कुछ है किन्तु अभी भी एक चीज का अभाव है, वह है सन्तोष। देख, जब तक सन्तोष धन नहीं मिलेगा तब तक तू सब कुछ पाकर भी अभाव से घिरा रहेगा और तब जो कुछ मिला हुआ है वह तुझे कम लगता रहेगा। अतः तू धन के पीछे दौड़ना छोड़कर सन्तोष धन को पा। सन्तोष धन पाने का स्थान एक ही है, वह है सन्त का द्वार। जब तू श्रद्धा भक्ति से सन्त के द्वार पर जायेगा तब सन्तोष तुझे माँगना नहीं पड़ेगा क्योंकि वे कल्पवृक्ष हैं, वे स्वतः तेरी चाह पूरी करेंगे। उनसे सन्तोष धन पाकर ही तू तृप्त हो सकेगा।

११९८ मुफ्त में मुक्त होना चाहता है? दिया है दिल, श्वास के झूलन में झुलाया है अपने श्याम को? फिर मुक्ति क्या इतनी सस्ती है? मस्ती महँगी।

ऐ प्राणी! तू बिना कुछ दिये ही मुक्ति पाना चाहता है, यह कैसे सम्भव

हो सकता है ? देख, जिनके लिये दुनिया प्रधान नहीं रहती, ईश्वर प्रधान रहता है उनके दिल पर एक ईश्वर का आधिपत्य हो जाता है, उनका प्रत्येक श्वास ईश्वर के साथ रहता है—ऐसे जन ही मस्त रहते हैं और वे ही जीते जी मुक्त रहते हैं, उन्हें कोई भी बन्धन नहीं बाँध सकते। किन्तु जो देने के लिये कुछ भी तैयार नहीं, केवल लेने की माला जपते हैं वे यदि ईश्वर के नाम पर कुछ कर भी लेते हैं तो वे मुक्त होने वाले नहीं और न मस्त रहने वाले हैं क्योंकि मुक्ति सस्ती नहीं और मस्ती पाना तो ईश्वर की समीपता पाये बिना सम्भव ही नहीं।

११९९ दान नादान क्या देगा ? दान, शान है प्राणी की। कुछ लिया, कुछ दिया। आदान प्रदान। आनन्द आदान। प्राण प्रदान।

ऐ प्राणी ! दान शान है प्राणी की किन्तु दान देना साधारण नहीं। देख, जो स्थूल धन जन आदि में ही संलग्न हैं वे अबोध प्राणी दान की महिमा को नहीं जानते। देने की महिमा से अनजान वे ईश्वर से जो कुछ पाते हैं उसे भोगते अवश्य हैं किन्तु उससे उपकृत नहीं हो पाते क्योंकि पाना फलप्रद तभी होता है जब देने के भाव (कृतज्ञता) हृदय में हो। अतः तू केवल उससे ले नहीं उसे कुछ दे भी, अन्यथा तू कृतघ्नी होगा। जब कृतज्ञता के भावों का तुझमें जागरण हो जायेगा अर्थात् जैसे-जैसे समर्पण के भाव तुझमें आते जायेंगे वैसे-वैसे तू उसकी देन को अधिक अधिक देख पायेगा। तब एक दिन ऐसा भी आ जायेगा जब तेरा हृदय आनन्द से भर जायेगा, उस दिन तू उसके लिये प्राण भी हँसते-हँसते न्योछावर करने को तैयार होगा। देख, जो प्राण अर्पित करने के लिये तैयार रहते हैं आनन्द की वृष्टि उनके जीवन में ही होती है।

१२०० तार तो है खटखटाने वाले का पता नहीं। जिस दिन द्वार खटखटायेगा, तार उद्धार में बदल जायेगा।

ऐ प्राणी ! तार यदि ठीक ठीक लगे हों किन्तु खटखटाने वाला न हो तो तार काम नहीं करते, तार होते हुए भी बेकार रहते हैं। ऐसे ही तेरी हृदय वीणा में भी तार तो लगे हैं किन्तु वे इतने सूक्ष्म हैं कि उनकी ओर तेरा ध्यान ही नहीं, तू उन्हें खटखटा ही नहीं पाता परिणाम वे बेकार हो रहे हैं। देख, जिस दिन तेरी दृष्टि उन पर पड़ेगी अर्थात् तू सन्त की कृपा पाकर अन्तर की ओर उन्मुख होगा और उन तारों को छेड़ पायेगा उस दिन से तेरे जन्म-

जन्मान्तर के बन्धन कटने लगेंगे एवं तेरा जीवन आनन्द से भर जायेगा। तब केवल तेरा ही उद्धार नहीं होगा, तेरी वाणी से न जाने कितनों का उद्धार होगा—यथार्थ में तेरा जीवन धारण करना उसी दिन सार्थक होगा।

१२०१ काले में कृष्ण देखना महा साधना। संसार काला, कृष्ण ? प्रेम।

ऐ प्राणी ! इस संसार की प्रत्येक गति विधि देखने में भली मालूम नहीं होती (जब अनुकूल रहती है तब भली लगती है और जब प्रतिकूल रहती है तब बुरी लगती है) किन्तु बात ऐसी नहीं। देख, इस संसार का नियन्ता ईश्वर है, वही इसका सृजनकर्त्ता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता है। वह इसके कण-कण में व्याप्त है फिर भी दिखलायी नहीं देता—ईश्वर का खेल कुछ ऐसा ही है। उसे सर्वत्र देख पाना प्रेम से ही सम्भव है, प्रेम के बिना उसे देखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। देख, प्रेम पर तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है किन्तु प्रेम का जागरण तुझमें तब होगा जब प्रेमपूर्ण आकर्षण अर्थात् कृष्ण तेरे सामने होगा। उस आकर्षण के सम्मुख तू जितना झुकता चला जायेगा उतना ही तेरा जीवन प्रेममय होता जायेगा और तब संसार में तू प्रेम ही प्रेम देख पायेगा—यही तेरी महासाधना होगी।

१२०२ किरण तो देखता है, चरण देख, मुख चन्द्र का भी दर्शन होगा ही।

ऐ प्राणी ! कहीं कहीं तू ईश्वर की झलक तो देखता है किन्तु अभी उसे पूरा नहीं देख पाता। देख, यदि तूने ईश्वर की एक झलक भी कहीं पायी है तो तू यह निश्चित समझ ले कि तू उसे पूरा भी देख पायेगा किन्तु इसके लिये तुझे उसके चरणों पर न्योछावर होना होगा क्योंकि ईश्वर को बुद्धि बल से नहीं देखा जा सकता, झुक कर ही पाया जा सकता है। तू जितना उसके चरणों पर झुकता चला जायेगा उतना ही वह तेरे सम्मुख होता जायेगा और झुकते-झुकते जब तू पूर्णतया अहंकार शून्य हो जायेगा, उस दिन वह तुझसे छुपा नहीं रहेगा, वह तेरी आँखों के सामने होगा—तब वही तेरा सब कुछ होगा, तू प्रत्येक कार्य का कर्त्ता उसे ही देख पायेगा।

१२०३ हलचल में क्या हल हुआ ? जीवन प्रश्न ? चल बढ़ता चल केवल कहते ही कहते हैं न हिलते हैं न चलते हैं।

ऐ प्राणी ! हलचल जीवन है। यदि जीवन में हलचल न रहे तो प्राणों

की गतिविधि ही रुक जायेगी और प्राणी जड़ हो जायेगा। देख, यह हलचल फलदायी तभी होती है जब इस हलचल के द्वारा जीवन प्रश्न हल हो अर्थात व्यक्ति आने के कारण को जानकर लक्ष्य की ओर बढ़ पाये। लक्ष्य के अभाव में वह सुनी सुनाई कुछ उपदेश की बातें ही दोहराता रहेगा किन्तु वे भाव उसके अपने नहीं होंगे अर्थात् न उसके हृदय के भाव बदल पायेंगे और न वह आगे बढ़ पायेगा, वह केवल स्थूल में चक्कर काटता हुआ वहीं का वहीं खड़ा रह जायेगा। अतः तू इस हलचल का सदुपयोग कर अर्थात् तू वह भाव पा जिसे पाकर तेरी प्रत्येक गतिविधि बदल जाये, तेरे जीवन का लक्ष्य एक ईश्वर को पाना हो जाये। उस दिन से तेरी सारी चेष्टायें एक ईश्वर के लिये होंगी और तेरा जीवन हल्का फुल्का हो जायेगा।

१२०४ दर्द में यदि मिठास है तो किसी की याद है और जलन है तो मानसिक कष्ट है।

ऐ प्राणी! हृदय में दर्द भिन्न-भिन्न अवस्था में होता है। देख, याद में भी हृदय में दर्द होता है और मानसिक कष्ट में भी हृदय में दर्द होता है किन्तु दोनों दर्द में अन्तर है। जब याद के कारण दर्द रहता है तब वह दर्द मीठा लगता है किन्तु मानसिक कष्ट के कारण जो दर्द रहता है वह जलन भरता है। विकलता दोनों में रहती है किन्तु एक प्रियतम से मिलाने वाली होती है जबकि दूसरी में व्यक्ति अपने रूप को ही भूल बैठता है, केवल रोना ही रोना उसकी जिन्दगी में रह जाता है। अतः दोनों के अन्तर को देखते हुए तू ईश्वर से प्रेम बढ़ा कि दर्द की सुखद अनुभूति पाकर तू प्रियतम प्रभु में ही खो जाये, दूसरा दर्द (मानसिक कष्ट) तेरे समीप भी न आ पाये।

१२०५ जब कष्ट में मुझे पुकारा तो आराम में मुझे क्यों नहीं पुकारता? कष्ट आने दे फिर पुकारूँगा। अभी चुप रह मेरे आराम में खलल न डाल। बड़ी कठिनाई से मिला है आराम।

ऐ प्राणी! व्यक्ति जब कष्टों से घिर जाता है एवं उनसे उबरने का वह कोई रास्ता नहीं पाता तब उसके पास केवल एक ही चारा रह जाता है, वह है ईश्वर को याद करना। किन्तु एक समय पश्चात् जब कष्ट उसके समीप नहीं रह जाते, सारी परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं अर्थात् वह आराम में रहता है तब उसे ईश्वर याद ही नहीं आता—वह यही समझता है कि अभी तो

आराम कर लूँ, ईश्वर को याद करने के लिये तो बहुत दिन पड़े हैं। अरे पगले! ईश्वर तेरा अपना है, उसे तू कारण से याद न कर, कारण से याद करने से तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा—ऐसे में तेरा जीवन बोझ बन जायेगा। किन्तु जब तू उसे प्रेम से याद करेगा तब बोझ तेरे समीप भी नहीं रहेगा—तू कष्ट और आराम दोनों को उसी की देन देखता हुआ मौज मनायेगा।

१२०६ चयन नहीं, सुख शयन नहीं, मधु बैन नहीं, रत नयन नहीं, फिर चैन कहाँ?

ऐ प्राणी! आनन्दमय जीवन जीने के लिये केवल स्थूल की पूर्त्ति ही आवश्यक नहीं, अच्छे भाव भी चाहिये। देख, जहाँ अच्छे भाव विचार विद्यमान रहते हैं वहाँ मन मस्तिष्क सब सरल व स्वच्छ रहते हैं और व्यक्ति चैन पाता है। किन्तु जहाँ भाव विचारों की तरफ ध्यान ही नहीं दिया जाता एवं जो बाहर की सजावट में ही लगे रहते हैं उनके लिए स्थूल प्रधान हो जाता है और भीतर की दुनिया उपेक्षित हो जाती है। परिणाम न वे उन भाव विचारों का चयन कर पाते हैं जिन्हें पाकर वे सुख की नींद सो सकें और न प्रेम को अपनाकर दो मीठे बोल ही किसी से बोल पाते हैं—प्रेम का सर्वथा उनमें अभाव हो जाता है। वे झुकना जानते ही नहीं, उनका ईश्वर के सामने झुकना भी केवल कार्य बन कर रह जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में चैन का सर्वथा अभाव रहता है—जिन्दादिली के आनन्द से भी वे वंचित ही रह जाते हैं।

१२०७ माया का पाश, काया का मोह, जाया का स्नेह महा बन्धन। महा का वन्दन बन्द तो बेचैन तो होना ही है।

ऐ प्राणी! तू इस दुनिया में मौज मनाने आया है किन्तु मौज है कहाँ तू इसी को भूल बैठा है अर्थात जिस सर्वशक्तिमान ईश्वर ने तुझे यह मनुष्य जीवन दिया है तू उसी की वन्दना भूल गया है। देख, झुकना पाना है। झुकने वाले को कभी कुछ माँगना नहीं पड़ता, आनन्दवर्द्धन करने वाले सभी भाव स्वतः उसके समीप चले आते हैं। किन्तु जो झुकना (नम्रता) भूल बैठते हैं उन्हें यह संसार ही सच्चा लगने लगता है—शरीर उनके लिए प्रधान हो जाता है एवं शरीर के साथी ही उन्हें अपने लगने लगते हैं। वे माया से घिर जाने के कारण पत्नी, बच्चे व शरीर से ही बँध जाते हैं—ऐसे

में उनका बेचैन रहना तो स्वाभाविक है। अरे पगले ! तेरी मूल की भूल से ही तू गुमराह हो गया है अर्थात् जिन्हें तू अपना मानता है वे तेरे अपने हैं ही नहीं, माया के कारण तू उन्हें अपना समझने लगा है। अतः तू महान की वन्दना कर कि तुझे सत्य दृष्टि मिले और तू सृष्टि का तथा संगी साथियों का आनन्द ले पाये।

१२०८ बाल से ही काल साथ है, अब सवाल ? सवाल हल यदि बाल से ही कालातीत को जाने, पहिचाने, माने।

ऐ प्राणी ! आने वाला एक दिन जायेगा तो निश्चित ही किन्तु जिस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये वह आया है यदि वह पूरा हो जाये तो मौत उसे भयभीत नहीं बना पायेगी। तब जाने से वह नहीं घबड़ायेगा, मौत को सहर्ष स्वीकार कर पायेगा। किन्तु ऐसा सम्भव तभी हो सकेगा जबकि प्रारम्भ से ही वह उसे जाने जो कालातीत है अर्थात् काल भी जिसे निगल नहीं सकता। देख, वह सत्ता 'सत्य' है। शरीर एक दिन मिट जायेगा किन्तु सत्य कभी मिटने वाला नहीं। सन्त की शरण में बैठकर जब तू उस सत्य सत्ता को जान जायेगा और उसे ही सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में आच्छादित देख पायेगा एवं उसके प्रति झुक जायेगा तो तेरा आगमन सफल होगा और जाना सुखद होगा। अन्यथा मौत से भयभीत हुआ तू जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

१२०९ मा ने पिता का नाम संकेत से बतलाया। पुत्र पिता को जाने और माने तो पिता प्रसन्न, मा पुलकित, पुत्र ऋण से उऋण। (पिता परमात्मा, मा अध्यात्म विद्या, पुत्र अन्तरात्मा)।

ऐ प्राणी ! जो परम पिता परमेश्वर को जानना चाहते हैं उन्हें सद्‌गुरु रूपी माँ के दरशन स्वतः हो जाते हैं। सद्‌गुरु बड़े प्यार भाव से उन्हें अपने समीप बैठाते हैं एवं संकेत ही संकेत में पिता का पता बता देते हैं। देख, सद्‌गुरु के संकेत को सब नहीं जान पाते, वे ही जान पाते हैं जिनके अन्तर में ईश्वर को पाने की सच्ची तड़प होती है। अन्य तो सद्‌गुरु में ही अटक जाते हैं, ईश्वर तक पहुँच ही नहीं पाते। देख, मां का प्यार बहुत अच्छा किन्तु पिता को बाद करने से मां का प्यार अधूरा ही रहता है। बच्चे को माता-पिता दोनों का प्यार चाहिये—दोनों के प्यार से ही उसका विकास सम्भव है। ईश्वर भक्त भी यदि सद्‌गुरु को पाकर ही स्वयं को धन्य मान बैठें, ईश्वर को पाने की

तड़प उसमें न रह जाये तो उसका पूर्ण विकास नहीं हो सकेगा। सद्गुरु के संकेत से जब वह ईश्वर को भीतर-बाहर-सर्वत्र देख पायेगा तभी सद्गुरु प्रसन्न होगा और तभी वह प्रसन्न होगा जिसके लिये वह आया है—मनुष्य जीवन पाना भी उसका तभी सार्थक होगा।

१२१० दाता, त्राता, भ्राता, माता पिता कह कर भी सन्तोष न लिया। अब ? अर्पण कर कि अपनापन ही न रहे।

ऐ प्राणी! ईश्वर को तू सम्बोधन अनेक देता है किन्तु किसी एक रूप में भी उसे समक्ष नहीं देख पाता—ऐसे में तुझे शान्ति सन्तोष के दरशन कैसे सम्भव हो सकते हैं ? देख, ईश्वर अनामी है, जिसने जिस भाव से उसे पाया है उसने उसी नाम से उसे विभूषित किया है। अतः तू उसे दाता, त्राता, माता, पिता, भ्राता आदि कहकर ही खुश न हो तू उसके चरणों पर न्योछावर हो जा अर्थात् वह भाव पा कि तू सचमुच उसे दाता देख पाये, वह तेरा रक्षक (त्राता) बन जाये—तब वह तेरा माता, पिता, भाई, बन्धु सब कुछ होगा। अन्यथा ईश्वर के नाम पर तू कुछ भजन प्रार्थना आदि करता रहेगा किन्तु अभिमान शून्य नहीं होने के कारण उनके रस से वंचित ही रह जायेगा।

१२११ पास बुलाया, प्यार से बातें कीं। अब ? याद रख, सुअवसर कम ही मिलते हैं।

ऐ प्राणी! सद्गुरु की अहैतुकी कृपा किसी किसी पर ही होती है। देख, इस अहैतुक कृपा को तू यदि पा जाये अर्थात् सद्गुरु स्वयं तुझे अपने पास बुलाकर प्यार भाव से तुझसे 'बातें करें तो तू इस सुअवसर को हाथ से न खोना, तू इस मिले हुए अवसर का लाभ उठाना क्योंकि ऐसे अवसर जीवन में यदा कदा ही आते हैं। तू यदि उनके प्यार भाव को हृदय में संजो कर रख लेगा तो तेरी दुनिया ही बदल जायेगी। तब तू साधारण जीवन यापन नहीं करेगा, तू उस भाव का धनी होगा जो किसी भाग्यवान को ही नसीब होता है। उनके चरणों में तेरा प्रेम जितना बढ़ता जायेगा उतना ही तेरा हृदय सुमधुर भावों से सजता जायेगा और तू आनन्दमय जीवन जी सकेगा अन्यथा सुअवसर पाकर भी तू कोरा का कोरा ही रह जायेगा।

१२१२ पति मा को प्रतिमा में देख। मधुर मिलन सम्भव।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरे प्राणों का पति है एवं वही तेरी माँ है अर्थात् तेरी

पत रखने वाला भी ईश्वर है और तुझे प्यार से सजाने वाला भी ईश्वर है। जब तक तू रक्षा के लिये व्यक्ति की ओर देखता रहेगा तब तक तू निराश ही बना रहेगा क्योंकि व्यक्ति निर्बल है और व्यक्ति से ही तू यदि प्यार भी पाने की इच्छा रखेगा तो भी हताश ही होगा क्योंकि व्यक्ति स्वयं प्यार का भूखा है। किन्तु व्यक्ति की तरफ देखना छोड़कर जब तू ईश्वर की ओर उन्मुख होगा अर्थात् पति व माँ को प्रतिमा में देखेगा तो एक दिन तू जहाँ प्रतिमा देखता है वहीं साक्षात ईश्वर को खड़ा देख पायेगा। देख, ईश्वर भाव का भूखा है, तेरा भाव ही उसे प्रत्यक्ष करेगा अन्यथा वह यदि तेरे सम्मुख प्रत्यक्ष भी रहेगा तो भी तू उसे नहीं देख पायेगा।

१२१३ पता लगा कि पति है, सती भी है। सत्य पति, भ्रमित क्यों मति?

ऐ प्राणी! जब तू अपने प्राणपति को पहचान जायेगा तब तेरे भीतर स्वतः सत्य भाव का जागरण होने लगेगा। तब तू औरों से आशा नहीं रक्खेगा, रक्खेगा एक मात्र सत्य पति से। देख, आशा व्यक्ति से रखी जाती है किन्तु जब ईश्वर से नाता जुड़ जाता है तब आशा विश्वास में परिणत हो जाती है और व्यक्ति विश्वास के साथ जीता है अर्थात् सत्य पति को जानने के पश्चात् जीवन विश्वासमय हो जाता है। अतः तू भ्रम का परित्याग करके प्रियतम पति का साथ ग्रहण कर कि तेरा जीवन सत्य के लिये हो और तू अपनी सत्य शक्ति को पहिचान कर सत्य पति की ओर अग्रसर हो पाये।

१२१४ सिर चकरा रहा है। क्यों? चक्कर पर चक्कर आ रहा है। सिर झुका, चक्कर बन्द।

ऐ प्राणी! 'प्रत्येक कार्य का कर्त्ता ईश्वर है' जो इस सत्य को भूल जाते हैं वे हमेशा कार्य भार से बोझिल बने रहते हैं—अनेक चिन्तायें उनके सिर पर मँडराने लगती हैं एवं उनके तन-मन अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। देख, इससे निवृत्त होने का एक ही रास्ता है, वह है झुक कर चलना। जिस दिन तू उस अज्ञात सत्ता के सम्मुख झुक कर चलेगा जिसके इशारे पर यह सम्पूर्ण विश्व नाच रहा है उस दिन तेरे सिर का बोझ हल्का हो जायेगा। तब तू देख पायेगा कि सभी कार्य सुनियोजित तरीके से वह स्वतः कर रहा है और तब उसके कार्यों को देखते हुए तू मौज मनायेगा।

१२१५ जनम जनम के साथी को भी न पहचान सका तो विद्या, बुद्धि किस काम आई ? मुक्ति की माला जपने से कब मुक्त हुआ ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर तेरे इसी जन्म का साथी नहीं, तेरे जनम जनम का साथी है। उसे भुलाकर तू कभी चैन से नहीं रह सकेगा चाहे तू कितनी ही विद्या, बुद्धि क्यों न अर्जित कर ले। देख, वही विद्या विद्या कहलाने के योग्य है जो विनय दे और वही बुद्धि बुद्धि कहलाने के योग्य है जो ईश्वर मिलन में सहायक हो। जिस विद्या बुद्धि को अपनाकर व्यक्ति ईश्वर से दूर हो जाये उसे तो विद्या बुद्धि का नाम देना भी गलत है। देख, ईश्वर के नाम पर माला जपकर भी तू ईश्वर को नहीं पा सकेगा क्योंकि ईश्वर माला नहीं चाहता, तेरे दिल में स्थान चाहता है। दिल में स्थान दिये बिना तू यदि उसका नाम ले लेकर आजीवन माला फेरता रहेगा तो भी मुक्त नहीं हो सकेगा। अतः तू उसे कार्यों द्वारा पकड़ने की चेष्टा न कर तू उसे अपना जान कि उसे भूल न पाये, तेरे जनम जनम के साथी को तू समक्ष देख पाये। अन्यथा तेरे दिल की कसक कभी नहीं मिटेगी, तू सदा बेचैन ही बना रहेगा।

१२१६ उसका कैसा विश्वास जो प्रतिक्षण परिवर्तनकारी है ? विश्वास कर एक दिन तेरी आशा पूर्ण होगी। विश्व अश्व की तरह दौड़ता रहेगा और तू सवार होगा।

ऐ प्राणी ! यह संसार परिवर्तनशील है, यहाँ की प्रत्येक चीज हर समय परिवर्तित होती रहती है। ऐसे संसार से तू यदि स्थायी आशा रक्खेगा तो वह कभी फलवती होने वाली नहीं, अतः तू आशा उससे रख जिसमें कभी परिवर्तन न हो। जिस दिन उस अपरिवर्तनशील सत्ता को तू जान जायेगा तथा उसके प्रति तेरे हृदय में आस्था हो जायेगी उस दिन तू विश्वास धन को भी पा जायेगा—तेरी आशा भी तभी पूर्ण होगी। देख, अभी तू प्रकृति के इशारे पर नाचता है, इसके परिवर्तनशील रूप को देख कर तू भी परिवर्तित होता रहता है किन्तु जब तू सत्य सत्ता को जान जायेगा अर्थात् तू ईश्वर के इशारे पर नाचेगा तब तू संसार के पीछे नहीं दौड़ेगा, संसार की लगाम तेरे हाथ में होगी और तू इस पर सवार हुआ इसका आनन्द पाता रहेगा।

१२१७ जलन है मिलन के लिये तो साधन है और यदि धन के लिये तो जलन ही जलन है। धन साधन है इस लोक के लिए, साधन धन है परलोक के लिये। आज भी समझ न पाये।

ऐ प्राणी ! तेरे हृदय में जो जलन व्याप्त है वह यदि ईश्वर मिलन के लिए है तो वह जलन तेरे लिये ईश्वर मिलन का साधन बन जायेगी, तू उसके द्वारा ईश्वर को सम्मुख देख पायेगा किन्तु यदि वह जलन धन संग्रह के लिये है तो तेरे हृदय की जलन दिन ब दिन बढ़ती जायेगी। देख, धन संग्रह करके तू इस लोक के लिए सुख के साधन जुटा लेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं पा सकेगा किन्तु ईश्वर मिलन की तड़प तू यदि पा जायेगा तो तू आज भी आनन्दमय जीवन वितायेगा और तेरा कल भी आनन्द से भर जायेगा क्योंकि कल आज पर ही निर्भर करता है। अतः इस सत्य को जानकर तू आज भी ईश्वर मिलन के साज सजा ले कि तू जीवन जीने का लाभ उठा पाये।

१२१८ और पुरुष ? वह तो और भी उदार। अपने हृदय में स्थान देकर अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए सचेष्ट। बच्चे कब समझ पाये उसकी उदारता को।

ऐ प्राणी ! ईश्वर बड़ा दयालु है, वह प्रारम्भ से ही अपने बच्चे की देखभाल करता रहता है। देख, वह केवल देखभाल करने वाला ही नहीं, अपना सर्वस्व देने वाला है, अपना सब कुछ देकर उत्तराधिकारी बनाने वाला है अर्थात् सन्त रूप प्रदान करने वाला है। किन्तु यह सब होता उनके लिये है जिन्होंने ईश्वर की उदारता को जाना है एवं जिन्होंने ईश्वर को ही अपना सर्वस्व माना है। उन्हें संसार के प्रलोभन अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते, वे सदा ईश्वर को ही समीप देखने के इच्छुक बने रहते हैं—ईश्वर के उत्तराधिकारी भी वे ही बन पाते हैं। ईश्वर से उपकृत होते हुए भी जो ईश्वर को भुलाकर जीवन यापन करते हैं उन्हें चाह कर भी ईश्वर अपनी सम्पदा (भाव) प्रदान नहीं कर सकता, वे अधिक से अधिक ईश्वर का नाम लेकर शान्ति सन्तोष पा लेते हैं किन्तु ईश्वर की उदारता को नहीं देख पाने के कारण उसके प्यार से वंचित ही रह जाते हैं।

१२१९. चन्द्र घटता है और बढ़ता, कमला भी घटती और बढ़ती। पूर्ण एक दिन। कब ? जब नारायण की एकता को पा सके।

ऐ प्राणी ! चन्द्रमा हमेशा घटता बढ़ता रहता है। ऐसे ही लक्ष्मी (कमला)

भी समान रूप से नहीं रहती, हमेशा घटती बढ़ती रहती है। चन्द्रमा पूर्णिमा को पूरा होता है और लक्ष्मी पूर्ण (नारायण) का साथ पाकर पूरी होती है क्योंकि लक्ष्मी नारायण की सहचरी है। जहाँ नारायण का वास रहता है वहाँ से लक्ष्मी नहीं जाती, समय विशेष के लिये विक्षेप सा दिखलायी पड़ सकता है किन्तु यथार्थ में नारायण के चरणों में ही वह विराजती है। देख, नारायण को भुलाने वाले लक्ष्मी को पाने के लिए लक्ष्मी के पीछे भागते रहते हैं, उसे पाने की चेष्टा में वे अपना तन-मन-जीवन सब बिगाड़ लेते हैं फिर भी उसे स्थायी रूप से नहीं पा सकते, उन्हें हमेशा डर बना रहता है कि लक्ष्मी उनसे रूठ कर कभी चली न जाये। यदि वे नारायण के पुजारी होते तो बात इसके विपरीत होती, तब लक्ष्मी के लिए उन्हें चिन्ता नहीं करनी पड़ती, वे नारायण के चरणों में निश्चिन्त बैठते और लक्ष्मी उनके समीप स्वतः चली आती।

१२२० अपमान न कर प्यार का। ग्रहण कर। जीवन नवीन। मुक्ति सरल। भक्ति प्रबल। प्यार के खेल अनोखे।

ऐ प्राणी! तू प्यार की कहीं एक झलक भी देख पाये तो तू प्यार का कभी अपमान न करना, तू प्यार को प्यार से ग्रहण करना। प्यार को अपनाने से तेरा जीवन नवीन हो जायेगा अर्थात् जैसा कल तक था वैसा नहीं रहेगा, वह सुमधुर भावों से सज जायेगा। तब तुझे बन्धनों को बलपूर्वक तोड़ने की चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, तेरे बन्धन स्वतः कट जायेंगे और तू निर्द्वन्द विचरण कर पायेगा। भक्ति भी तब तुझे जोर लगाकर नहीं करनी पड़ेगी, तेरे हृदय में स्वतः भक्ति का अजस्त्र प्रवाह होता रहेगा। देख, प्यार के खेल अनोखे होते हैं, प्यार जब अपना बन जाता है तब असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। प्यार पाकर दीन-हीन प्राणी दीन-हीन नहीं रह जाता वह दाता बन जाता है। उसके समीप जो भी आते हैं वे खाली नहीं लौटते, उनका हृदय भी प्यार से लबालब भर जाता है।

१२२१ शरीर को ही कष्ट दिया, मन को ही संत्रस्त किया, प्राणों में व्याकुलता ही ली। यदि प्रियतम के दर्शन हो जाते तो सभी सार्थक होता।

ऐ प्राणी! ईश्वर के नाम पर व्रत-उपवास, तीर्थ-व्रत आदि करके काया कष्ट उठाना, मन पर अत्याचार (शासन) करना एवं प्राण यदि छटपटायें

तो भी उसकी परवाह न करना आदि सभी कार्य यदि ईश्वर-मिलन में सहायक हों तब तो वे सार्थक हो जाते हैं अन्यथा उन कार्यों को सम्पादित करके व्यक्ति अभिमान से घिरता जाता है। देख, ईश्वर कार्यों से नहीं मिलता, कार्य के सम्पादन में जो भाव रहते हैं उनसे मिलता है। एक ही कार्य करके एक ईश्वर को पा जाता है जबकि दूसरा दूर ही बना रहता है। इसका कारण यही है कि ईश्वर भाव का भूखा है। अतः तू अपनी ओर देख कि ईश्वर के नाम पर तू जो कुछ भी कर रहा है वह ईश्वर-मिलन के लिये है या यों ही संस्कार वश धार्मिक कार्य कर रहा है? यदि मिलन के लिये है तो तू एक दिन अवश्य ईश्वर के दर्शन पा जायेगा अन्यथा तू तन-मन-प्राणों की पीड़ा ही अनुभव करता रहेगा।

१२२२ वह कौन सा युग था जब राधा ने कृष्ण को चाहा और पाया? द्वापर। दोनों पैरों पर पड़ जा, आज भी वह युग है।

ऐ प्राणी! जब राधा ने कृष्ण को चाहा और पाया था तभी द्वापर युग नहीं था, जो ईश्वर की शरण में ही जीना मरना चाहते हैं उनके लिए द्वापर युग आज भी है। देख, युग को भला-बुरा कहकर तू ही ईश्वर से दूर होता जायेगा, ईश्वर का रहने के पश्चात् भी ईश्वर की समीपता नहीं पा सकेगा। अतः तू युग का चक्कर छोड़कर आज ही ईश्वर की शरण ग्रहण कर ले कि तू आज भी कृष्ण की बाँसुरी सुन पाये। कृष्ण उस प्रेम पूर्ण आकर्षण का नाम है जिसे सम्मुख पाकर वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं, वे इधर-उधर भटकना भूल जाती हैं एवं प्रेम रस का पान करती हुई भीतर ही भीतर विभोर होती रहती हैं। जब तू ईश्वर के चरणों की शरण ग्रहण करेगा तब ऐसा प्रेम पूर्ण आकर्षण स्वतः पा जायेगा। तब प्रेम तुझे पैदा नहीं करना पड़ेगा, जो प्रेम तू राधा के हृदय में देखता सुनता आया है उसे तेरे हृदय में भी बहता देख पायेगा।

१२२३ उर पास (फन्दा) में था। पास वाला भी दूर। कैसा विचित्र खेल?

ऐ प्राणी! जब तक स्थूल जगत के आकर्षणों की छवि हृदय में उतरी रहती है तब तक हृदय कष्ट से घिरा रहता है क्योंकि हृदय बड़ा कोमल है, यह कोई भी आघात-प्रत्याघात सहन नहीं कर सकता। ऐसे में व्यक्ति उस

अज्ञात सत्ता से भी दूर होता जाता है जो उसके श्वासों-प्राणों पर प्रतिष्ठित होकर उसे गतिशील कर रही है। देख, कैसा विचित्र खेल है कि जो ईश्वर अति समीप है वह दूर होता जा रहा है और जो दूर हैं वे पास होते जा रहे हैं। अब व्यक्ति यदि शान्ति सन्तोष पाना चाहे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है? अतः तू उल्टा रास्ता न पकड़, तू सीधे रास्ते चल अर्थात् तू बाहर वाले को भीतर न बसा, तू भीतर वाले की खोज कर कि तेरे हृदय की विकलता मिट जाये और तू सानन्द जीवन यापन कर पाये।

१२२४ नर और नारी समस्या नहीं। समस्या है नारायण की, जिसके हृदय में दोनों ही वास करते हैं। आ कर सुन, आकर्षण का रहस्य समझ।

ऐ प्राणी! ईश्वर को पाये बिना तू यदि ईश्वर की रचना को जानने की चेष्टा करेगा तो उसे जान तो पायेगा ही नहीं, उसमें और अधिक उलझता ही चला जायेगा। देख, नर और नारी एक के ही दो रूप हैं, दोनों के मिलन से ही इस आनन्दमय सृष्टि का सृजन हुआ है—इनमें से यदि एक न रहे तो सृष्टि ही नहीं रहेगी। अतः तू इन्हें समस्या न बना, तू नारायण की शरण ग्रहण कर कि उसने 'नर और नारी क्यों बनाये' तू इस रहस्य को जान पाये, इतना ही नहीं, तू उसके खेल का आनन्द भी ले पाये। जब तू ईश्वर की समीपता पा जायेगा तब तू आकर्षण का रहस्य समझ जायेगा और तब वासना तेरे समीप नहीं रह जायेगी, तू इन्हें ईश्वर की कृति के रूप में देखता हुआ इनसे आनन्द पाता रहेगा।

१२२५ जब वासना में इतना आकर्षण है तो प्रेम? प्रेम शान्त करता है तन को, मन को, आकर्षण विकर्षण कैसा?

ऐ प्राणी! वासना शरीर की भूख है और प्रेम हृदय का उल्लास है। देख, वासना में सने प्राणी को जो चीजें भा जाती हैं उन्हें पाने के लिये वह तन-मन दोनों से व्याकुल हो उठता है। उनकी प्राप्ति के लिये बेचैन हुआ वह न सुख से खा सकता है और न उठ-बैठ सकता है, उन्हें पाने की लालसा उसे बेचैन बनाये रखती है। किन्तु प्रेम में यह बात नहीं। प्रेम स्थूल का उपासक नहीं होता, वह प्रेमी का आधिपत्य हृदय पर चाहता है—प्रिय के लिये उसकी आँखें बिछी रहती हैं। स्थूल बड़े से बड़े प्रलोभन भी उसे प्रेम डगर

से हटा नहीं सकते, वह सदा भीतर ही भीतर शान्त भाव से प्रिय की बाट जोहता रहता है। ऐसे प्रेम के पिपासु के हृदय में ही प्रिय प्रभु का वास होता है। उसके तन-मन सब शान्त हो जाते हैं, उसके लिये न पकड़ने को कुछ रहता है और न छोड़ने के लिये—वह प्रिय की दुनिया में बैठा मौज मनाता है। ऐसा है यह प्रेम जिसे देखते ही बनता है।

१२२६ क्यों अकुलाता है? संयोग को सह न सकेगा। वियोग को तूने मूल धन मान रखा है।

ईश्वर के नाम पर जो दो कदम चल लेते हैं वे यही चाहते हैं कि उन्हें जल्द से जल्द ईश्वर का साक्षात्कार हो जाये। किन्तु उन्हें मालूम नहीं कि समय के पूर्व यदि संयोग हो भी जायेगा तो वे उसे सहन नहीं कर पायेंगे, उसका आनन्द नहीं ले पायेंगे क्योंकि संयोग के पूर्व मिलन की भावना रोम-रोम में व्याप्त होनी चाहिये। ऐ प्राणी! अभी तो तूने ईश्वर को बहुत दूर मान रखा है, तू यही समझता है कि वह कहीं दूर आसमान में रहता है। यही कारण है कि वियोग की भावना हर समय तुझे घेरे रहती है—ऐसे में ईश्वर दर्शन कैसे सम्भव हो सकते हैं? ईश्वर दर्शन के लिये तो वियोग के भाव नहीं, संयोग के भाव चाहिये। जहाँ संयोग के भाव रहते हैं वहाँ ईश्वर दूर नहीं पास होता है, मन प्राणों का साथी होता है। जैसे-जैसे मिलन की भावना तीव्र होती है वैसे-वैसे दूरियाँ खत्म होने लगती हैं और साथी के रूप में एक वही रह जाता है, उसके बिना क्षण भर भी नहीं सुहाता—संयोग का सुख उन्हें ही मिलता है। इसके पूर्व संयोग की बातें करके व्यक्ति विकलता अपना सकता है, संयोग का सुअवसर नहीं पा सकता।

१२२७ भक्ति सीखेगा कि करेगा, प्रेम में डूब जायेगा कि गीत गायेगा? अनुभव ही बतलायेगा। वेद शास्त्र का प्रमाण—प्रमाण नहीं। प्रमाण नहीं, प्रणाम ही प्रमाण।

ऐ प्राणी! भक्ति सीखने की नहीं होती, भक्ति करने की होती है। सीख कर भक्ति के काम किये जा सकते हैं, भक्ति नहीं, क्योंकि भक्ति काम नहीं, हृदय का भाव है जो बड़े के सम्मान में स्वतः उमड़ती है। ऐसे ही प्रेम के गीत नहीं होते, प्रेम हृदय का सुललित भाव है जो प्रिय को सम्मुख पाकर उभरता है। प्रेम जब हो जाता है तब प्रेम के गीत गाने नहीं पड़ते, वे सुख

पर स्वतः उभरने लगते हैं। देख, प्रेम और भक्ति को वेद शास्त्र पढ़कर नहीं पाया जा सकता, वेद शास्त्र में तो केवल इनका संकेत मिल सकता है—इन्हें पाने के लिये तो झुकना पड़ता है। जो झुकते हैं वे ही इसे पाते हैं, उनका हृदय ही भक्ति प्रेम से सजता है। जो झुकते नहीं, वे वेद शास्त्र आदि पढ़कर भक्ति-प्रेम की कुछ बातें सीख लेते हैं और उसे ही भक्ति प्रेम समझ बैठते हैं—ऐसे जन का दिल कोरा का कोरा ही रह जाता है।

१२२८ उदय और लय यही सृष्टि क्रम। क्रम क्रम हो जब कर्म धर्म का बन्धन प्रेम बन्धन में बदल जाये।

ऐ प्राणी! आना और जाना यह सृष्टि का क्रम है अर्थात् जो यहाँ आया है वह एक दिन निश्चित जायेगा ही। किन्तु यहाँ आकर जो आने के कारण को जान लेते हैं उनकी यात्रा सुखदायी हो जाती है, उनका जाना भी आनन्दवर्द्धक हो जाता है—ऐसे जन बार-बार आने जाने के चक्र से भी बच जाते हैं। किन्तु जो आने के कारण को नहीं जानते, केवल शरीर के द्वारा कुछ कर्म करके ही खुश हो जाते हैं एवं धर्म के नाम पर कुछ कार्यों को ही अपना लेते हैं, उनके लिये कर्म-धर्म भी बन्धन बन जाते हैं। देख, इन बन्धनों से मुक्त करने वाला प्रेम है। प्रेम इन बन्धनों से ही मुक्त नहीं करता, जीवन मुक्त कर देता है। प्रेम को अपनाकर जीवन पाना ही सार्थक हो जाता है—आने जाने का क्रम भी तभी खत्म होता है। अतः तू यदि इस क्रम से मुक्ति पाना चाहता है तो यहाँ आकर बन्धन में न बँध, तू प्यार कर कि तू आज भी मौज से रह पाये और तुझे लौट कर आना भी न पड़े।

१२२९ शान्ति अलभ्य क्यों हो रही है? हृदय कमल अभी खिला नहीं। मन भ्रमर रस पान के लिए व्याकुल। जब खिलेगा तो पान कर विश्राम पायेगा मन।

ऐ प्राणी! शान्ति के दरशन सबको सुलभ नहीं होते, केवल उन्हें ही सुलभ होते हैं जिनका हृदय कमल की तरह खिला रहता है। देख, मन रूपी भँवरा रसपान करना चाहता है। रस की खोज में वह इधर उधर चक्कर काटता रहता है किन्तु रस कहीं पाता नहीं, यह तृप्त तभी होता है जब हृदय कमल खिलता है। अतः तू यदि शान्ति के दरशन करना चाहता है तो मन के पीछे न दौड़, तू उस सत्य साथ को पा जिसे पाकर तेरा हृदय कमल खिल

जाये। जब तेरा हृदय कमल की तरह खिल जायेगा तब मन भँवरा अन्यत्र चक्कर काटना भूल जायेगा, वह भीतर ही भीतर रसपान करता रहेगा। शान्ति तब तेरी सहचरी होगी अन्यथा शान्ति पाने के लिये तू चातुर्दिक चक्कर काटता रहेगा फिर भी शान्ति के दर्शन तुझे दुर्लभ होंगे।

१२३० सजाने के लिये पुष्प ही आवश्यक नहीं, दिल भी चाहिये। दिल ही से तो सजाया है। दिल सजाता तो भगवान स्वयं आता।

ऐ प्राणी ! ईश्वर फूलों से नहीं सजता, दिल से सजता है—हृदय के सुमधुर भाव ही उसे सजाते हैं। देख, तू यदि तेरे हृदय की कद्र नहीं करेगा अर्थात् दिल के भावों की ओर नहीं देखेगा, ईश्वर के नाम पर केवल पूजा-पाठ ही करता रहेगा, पुष्प-माला ही चढ़ाता रहेगा तो तू ही खुश हो जायेगा, तेरा भगवान खुश होने वाला नहीं क्योंकि उसे फूल नहीं, खिला हुआ दिल चाहिये—खिले हुए हृदय में ही वह वास करता है। अतः तू ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य करके ही खुश न हो, तू वह भाव पा जिससे तेरा दिल फूल की तरह खिल जाये। जैसे-जैसे वे भाव तेरे अपने होंगे, वैसे-वैसे तू ईश्वर को अपने करीब देख पायेगा अन्यथा ईश्वर के नाम पर अनेक कार्य करते हुए भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

१२३१ प्यार की बातों ने प्यार जगाया। कहा—जाग, जग में आया, वह आया जिसने तेरा प्यार जगाया।

ऐ प्राणी ! सन्त प्यार रूप होते हैं, उनकी वाणी से प्यार टपकता रहता है। उनके समीप जो भी जाते हैं उनमें वे प्यार भाव से नवचेतना भर देते हैं। उनके सम्पर्क से प्राणी का सोया प्रेम उमड़ने लगता है, वे (प्राणी) देख पाते हैं कि यह कीमती जीवन बरबाद करने के लिये नहीं है, यही वह जीवन है जिससे प्रभु की प्राप्ति हो सकती है। वे यह भी देख पाते हैं कि अज्ञान अन्धकार से निकालने के लिये एवं अपने समीप बुलाने के लिये ईश्वर ने ही उनके समीप सन्त को भेजा है। सन्त उनके लिये ईश्वर रूप हो जाते हैं, सन्त की ओर देखते-देखते ही वे एक दिन ईश्वर को भी प्रत्यक्ष देख पाते हैं।

१२३२ रस की बून्दों से क्षीर सागर बना। सोये सो भगवान और चरण सेवी लक्ष्मीवान।

ऐ प्राणी! आनन्द रस की बून्दें बहुत कीमती होती हैं, ये किसी-किसी को ही नसीब होती हैं, जिन्हें नसीब होती हैं वे बार बार उसे ही पाना चाहते हैं। रस की बून्दों से एक दिन उनका हृदय क्षीर सागर बन जाता है अर्थात् उनका जीवन आनन्द से भर जाता है। उनके समीप दुःख चिन्ता आदि भाव नहीं टिकते, वे निश्चिन्त जीवन यापन करते हैं—इस कोलाहल पूर्ण जगत में भी आनन्दमग्न रहते हैं अर्थात् वे ईश्वर रूप हो जाते हैं। किन्तु रस की बून्दों को पाकर भी जिनका बाहरी आकर्षण कम नहीं होता, जो लक्ष्मी के लिये मरते हैं वे आनन्द रस से वंचित ही रह जाते हैं। ऐसे जन ईश्वर के सामीप्य से भी लक्ष्मी ही पाते हैं क्योंकि उनकी पूजा रस की प्राप्ति हेतु नहीं होती, लक्ष्मी के लिये होती है।

१२३३ स्थिति जीवन है। मन ही स्थित न हुआ मन-मोहन में तो कैसा जीवन?

मन हमेशा भागता-दौड़ता रहता है, इसके पीछे तन का भी यही हाल रहता है परिणाम तन व मन दोनों थक कर चूर-चूर हो जाते हैं। ऐ प्राणी! स्थिति जीवन है। यदि व्यक्ति दिन रात भागता दौड़ता ही रहे तो वह थक कर चूर-चूर हो जायेगा अतः तन-मन को विश्राम के लिए स्थान चाहिए। देख, मन का भागना-दौड़ना मनमोहन को पाकर ही कम हो सकता है क्योंकि मनमोहन के सौन्दर्य के आगे संसार के सारे सौन्दर्य फीके हैं। मन जब एक बार मनमोहन को पा जायेगा तो वह स्वतः स्थित हो जायेगा, मोहन के मोहक रूप का रसपान करता रहेगा—जीवन का आनन्द भी तभी मिलेगा अन्यथा स्थूल व्यक्ति वस्तु के पीछे भागता दौड़ता प्राणी हमेशा कष्ट पाता रहेगा तथा दोषी संसार को ठहराता रहेगा।

१२३४ काली और गौरी प्रलय और प्रेम-लय है। ताली बजाते हैं लय में झूमनेवाले प्रलय में रमने वाले।

ऐ प्राणी! जब जिस रूप की आवश्यकता होती है आद्याशक्ति (दुर्गा) तब उसी रूप को धारण कर लेती है। जो इस भेद को जानते हैं वे सभी रूपों का आनन्द लेते हुए उस आद्याशक्ति को नमस्कार करते हैं। देख, असुरों का

संहार करने की जव आवश्यकता हुई तव दुर्गा ने काली रूप धारण कर लिया और जव शिवजी को रिझाने की आवश्यकता हुई तव गौरी रूप धारण कर लिया अर्थात् प्रलय और प्रेम लय दोनों रूप एक उसी के हैं। अतः तू रूप में न अटक, तू उस आद्याशक्ति की महिमा को जान जो विभिन्न भावों से सुसज्जित है कि झुकने के भाव तेरे हृदय में जाग जायें। झुकना बेकार नहीं जाता। जव तू श्रद्धा अवनत हो आद्याशक्ति के सम्मुख झुकेगा तव तू भी शक्ति सम्पन्न हो जायेगा एवं प्रेम धन को पा जायेगा और तव उसका प्रत्येक रूप तेरे आनन्दवर्द्धन का कारण बनेगा।

१२३५ क्षुधा का बंगला उच्चारण खुदा। क्षुधा के लिये खुदा की पुकार बेकार। खुदा तो खुद ही आता है। आते ही भूख मिटेगी वासना की।

प्राणी के जीवन में रोटी कपड़ों का अभाव नहीं है, भाव का अभाव है और यही कारण है कि उसे जितना भी मिलता है वह कम लगता है परिणाम वह रोता रहता है। ऐ प्राणी! तेरी वासना की भूख इतनी बढ़ गयी है कि कुछ भी पाकर तू तृप्त नहीं होता। देख, तेरी यह भूख वस्तु से मिटने वाली नहीं, उन्हें पाकर तो यह और भी अधिक भड़केगी। इस भूख को मिटाने की जगह एक ही है—वह है ईश्वर की शरण। जब तक तू स्थूल का पुजारी रहेगा तब तक वासना की आग में जलता रहेगा किन्तु जब तू प्रभु के चरणों का आश्रय ग्रहण करेगा तब स्थूल तुझे लुभा नहीं सकेगा, तू सदा ईश्वर को सम्मुख देख पायेगा। तब वासना से अलग होने की तुझे चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, तू प्रभु प्रेम में इतना मग्न निमग्न होगा कि तुझे शरीर का ध्यान ही नहीं रह जायेगा—तू जो कुछ पायेगा उसे ईश्वर की देन समझ गले लगायेगा।

१२३६ भुलाया उसको जो कभी भूलता नहीं, रुलाया उसको जो कभी कभी याद करेगा।

ऐ प्राणी! तेरा सच्चा साथी ईश्वर है। जिनको तू अपने समीप देखता है उन संगी साथियों को तो ईश्वर ने तुझे कुछ समय के लिये प्रदान किया है। देख, ईश्वर को भुलाकर तू यदि इन्हें ही अपना सच्चा साथी मान लेगा तो तू सदा पछताता रहेगा क्योंकि ये तेरे साथी हैं ही नहीं। इन्हें ही साथी जानकर तू अपनी जिन्दगी बिगाड़ लेगा, तू आजन्म इनके लिये रोता रहेगा और इन्हें

रुलाता रहेगा, तू कभी हँस नहीं पायेगा। तू जायेगा तब ये एक बार तेरे लिये अवश्य रो देंगे किन्तु एक समय पश्चात् ये तुझे भूल जायेंगे। देख, तू यदि अपने सच्चे साथी को याद करता अर्थात् उसके लिए रोता तो तेरा रोना बेकार नहीं जाता, वह उसे भी रुला देता। तब तू आजीवन हँसता और हँसते-हँसते ही संसार प्रांगण से विदा हो जाता—ऐसे में तू सदा याद किया जाता क्योंकि तूने उसे याद किया है जो तेरा सच्चा साथी है।

१२३७ संगठन जब मानव मात्र का ही न हो पाया तो प्राणी मात्र का तो और भी कठिन। संग वाले को पहचानता तो गठन होता प्राणवल्लभ का। आनन्द ही आनन्द था।

ऐ प्राणी! सबसे प्रेम करना सबके लिये सरल नहीं। सब इसकी बातें कर सकते हैं किन्तु ऐसा भाव पा नहीं सकते। देख, तू यदि सचमुच प्रेम का पिपासु है तो तू सबके फेर में न पड़, तू उसे पहिचान जो सदा तेरे साथ है। जिस दिन तू उसे पहचान जायेगा उस दिन तेरा प्राणवल्लभ से गठन हो जायेगा अर्थात् वह तेरा हो जायेगा और तू उसका हो जायेगा। उस दिन सारी दुनिया तेरी अपनी बन जायेगी और सम्पूर्ण विश्व में तू उस प्राणवल्लभ को समाया देख पायेगा—तब तेरा जीवन आनन्द से भर जायेगा। अन्यथा सबसे प्यार करने की तू बातें ही करता रहेगा किन्तु कर कुछ भी नहीं पायेगा, केवल कष्ट पायेगा और बातें बनायेगा।

१२३८ गा कर रिझा न सकोगे, रो कर भी भुला न सकोगे। वह इतना भोला नहीं, इतना निष्ठुर भी नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर व्यक्ति नहीं, वह बाहर के कार्यों को देखने वाला भी नहीं। तू यदि गा कर उसे रिझाने की चेष्टा करेगा तो वह रीझने वाला नहीं और रो कर उसे भुलाने (फुसलाने) की चेष्टा करेगा तो वह भूलने वाला भी नहीं क्योंकि वह भोला नहीं कि गाने पर मुग्ध हो जाये और न निष्ठुर है कि रोने से पिघल जाये—वह रीझेगा तेरे भाव पर। अतः तू कार्यों के द्वारा उसे रिझाने की चेष्टा न कर, वह तेरा अपना है तू इस सत्य को जान कि उसे याद करने की तुझे चेष्टा न करनी पड़े, वह तुझे स्वतः याद आये। तब तू जो कुछ करेगा वह स्वतः उस तक पहुँच जायेगा—वह तेरे प्रत्येक भाव पर मरता रहेगा।

१२३९ प्राणों में एक ही बसा है, फिर मन अनेक के लिये क्यों चंचल ? चल, आगे बढ़। अब और कहाँ ? अब ठौर कहाँ ?

ऐ प्राणी ! तू इस उलझन में न पड़ कि मैं जब एक का हूँ तो मेरे मन में अनेक क्यों आते हैं ? इस उलझन में पड़कर तू अनेक से छुटकारा नहीं पा सकेगा। देख, इससे उबरने का रास्ता ईश्वर की ओर तल्लीन होकर बढ़ते जाना है। जैसे-जैसे तू ईश्वर की ओर बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे अन्य भाव तेरे समीप नहीं आ पायेंगे, वे यदि आयेंगे भी तो लौट कर चले जायेंगे, उन्हें ठहराव नहीं मिलेगा क्योंकि ठहरने के लिये खाली स्थान चाहिये और सम्मान चाहिये जबकि इन दोनों का ही उन्हें तेरे समीप सर्वथा अभाव मिलेगा। अतः उलझन को छोड़कर तू निश्चिन्त होकर आगे बढ़ता चल कि तू जिस एक का है वह एक ही तेरे सम्मुख रह जाये और तू आनन्दमग्न हो जीवन व्यतीत कर पाये।

१२४० रूप, यौवन, धन ही तेरा लक्ष्य है, जीवन का तो तू धन्य है। नर है तो नारायण को पहचान, नहीं तो निराकार, नराकार सब बेकार तेरे लिए।

ऐ प्राणी ! जिस रूप, यौवन व धन के पीछे तू दिवाना हो रहा है वे स्थायी नहीं, ये आज हैं किन्तु कल इनमें परिवर्तन आ जायेगा अर्थात् तू इन्हें इस रूप में नहीं देख पायेगा। देख, तू यदि इन्हें ही अपना लक्ष्य बना लेगा तो कभी चैन नहीं पायेगा, तू सदा रोता ही रहेगा। अतः तू नर तन की लाज रख और इस तन द्वारा नारायण को पहिचान क्योंकि यह तन तुझे इसी हेतु मिला है। तू यदि नारायण की खोज नहीं करेगा तो वह नारायण जो निराकार होते हुए भी प्रत्येक नर में समाया हुआ है वह प्रत्यक्ष नहीं हो पायेगा—तेरा मनुष्य जन्म (नर आकार) पाना तब बेकार ही होगा। तेरा नर रूप धारण करना सार्थक तभी होगा जब तू नारायण को रोम-रोम में बसा देख पायेगा।

१२४१ क्यों ऐसे गीत गाता है कि न स्वयं शान्त न अन्य ? गा कुछ ऐसे गीत कि तेरे हृदय में अपूर्व उत्साह जागृत हो जाये। श्रवण प्रिय, कर्ण प्रिय, हृदय हर्ष, राम स्पर्श, संगीत होता है।

ऐ प्राणी ! वही गीत गीत कहलाने के योग्य है जिसे गा कर अन्य ध्यान

ही न रहें, वृत्तियाँ स्वाभाविक शान्त हो जायें। जिसे गा कर तू स्वयं शान्त नहीं होगा उसे सुनकर अन्य शान्त कैसे हो सकेंगे? अतः तू कभी गाने के लिये न गा, तू कुछ ऐसा गा जिससे तेरे हृदय में अपूर्व उत्साह जाग्रत हो जाये। देख, संगीत वही होता है जो सुनने में मीठा हो, कानों में मधुरता भरता हो, हृदय में हर्ष उत्पन्न करता हो एवं राम का आभास देता हो। जब तक संगीत में इनका अभाव रहता है तब तक वह संगीत नहीं, संगीत के नाम पर केवल मनोविनोद है। अतः तू संगीत को केवल मुख का विषय न बना अर्थात् केवल गले से न गा, उसके प्रत्येक शब्दों में डूब जा कि उससे तू भी आनन्द पाता रहे एवं उसे जो भी सुनें वे भी रस पाते रहें।

१२४२ संग हुआ, गीत प्रेम के हैं, संगीत मुखरित। संग हो तो संगीत अन्यथा कर्ण प्रिय तो प्रिय को भी भुला देता है। गीत निरर्थक जो सोये हुए प्रेम को न जगा पाये।

ऐ प्राणी! जब प्रियतम प्रभु से संग होता है तब हृदय में प्रेम का जागरण होता है और जब प्रेम का जागरण होता है तब संगीत मुखरित होता है। जब तक प्रियतम प्रभु का साथ नहीं होता तब तक गीत में मधुरता नहीं आ सकती एवं गीत की आवाज हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती। देख, केवल कर्ण प्रिय आवाज तो ईश्वर से दूर करती है, वह प्राणी को बाहर ही बाहर बिलमाये रखती है, भीतर की ओर नहीं जाने देती—ऐसा गीत तो गीत कहलाने के योग्य भी नहीं। गीत कहलाने योग्य वही गीत होता है जिसे सुनकर सोया हुआ प्रेम जाग जाये। अतः प्रथम तू प्रियतम प्रभु का संग ग्रहण कर कि तेरा सोया प्रेम जाग जाये। तब तेरे मुख से जो भी गीत मुखरित होंगे वे प्रेम रस से सने होंगे। ऐसे गीतों से तू भी आनन्द पाता रहेगा और जो कोई भी इसे सुन पायेंगे उनका सोया प्रेम भी जाग जायेगा।

१२४३ चुप क्यों बैठा है? शान्ति के लिये। शान्ति में प्रेम रस के दर्शन कर, रंगीन दुनिया नजर आये।

शान्ति के इच्छुक प्राणी कोलाहल पूर्ण वातावरण में नहीं जी पाते, उसमें वे अकुला जाते हैं क्योंकि उन्हें शान्ति चाहिये। अतः शान्ति के लिये वे ऐसे स्थान की खोज करते हैं जहाँ वे शान्ति से कुछ क्षण बैठ सकें। ऐ प्राणी! घबड़ाये हुए प्राणी को शान्ति भली मालूम होती है किन्तु केवल शान्ति तो

विरानगी है—शान्ति सजती है प्रेम रस से। देख, तू यदि शान्ति में प्रेम रस के दरशन पा जायेगा तो तेरी दुनिया रंगीन हो जायेगी। तब दुनिया से तुझे भागना नहीं पड़ेगा, तू जहाँ भी बैठेगा वहाँ तुझे प्रेम ही प्रेम नजर आयेगा—ऐसे में सम्पूर्ण दुनिया ही तेरे लिये रंगीन हो जायेगी। अतः शान्ति में, शान्ति से तू उस प्रेम प्रवाह की खोज कर जो तेरे भीतर प्रतिमुहूर्त्त बह रहा है कि तू आनन्दमय जीवन व्यतीत कर पाये।

१२४४ माला तैंने पहनी मुझे मिले पत्ते। ऐसा क्यों? तेरी माला कब मेरे गले में होगी? जब तू मेरा होगा।

ऐ प्राणी! कुछ लोग प्रारम्भ से ही अन्य लोगों से भिन्न रहते हैं। वे ईश्वर को माला अर्पित करके ही खुश नहीं हो जाते, वे ईश्वर का भाव पाना चाहते हैं। उनके हृदय की विकलता उन्हें चैन नहीं लेने देती, विकलता भरे हृदय से वे हमेशा भीतर ही भीतर ईश्वर से वार्तालाप करते रहते हैं। उन्हें तब तक चैन नहीं मिलता जब तक कि वे ईश्वर को रोम-रोम पर प्रतिष्ठित नहीं देख पाते अर्थात् पूर्णतया ईश्वर रूप नहीं हो जाते। ऐसे जन साधारण नहीं होते, वे साधारण जन के हित के लिये आते हैं। उनके जीवन में वह दिन जल्दी ही आ जाता है जब उनका अहं सर्वथा लीन विलीन हो जाता है और वे सन्त भाव से सुसज्जित हो जाते हैं।

१२४५ ताप और पाप में यदि आप लगे रहे तो जीवन अभिशाप है। दिल पर यदि प्रेम की छाप है तो सब माफ है।

ऐ प्राणी! जो जैसे भावों के साथ जीता है उसका जीवन वैसा ही बन जाता है। देख, जो हमेशा कष्ट की चर्चा में लगे रहते हैं एवं सर्वत्र पाप ही पाप देखते हैं वे कभी चैन से नहीं रह पाते, उन्हें हमेशा पाप-ताप घेरे रहते हैं उनका जीवन ही अभिशाप बन जाता है। किन्तु जिन्होंने प्रेम को जाना है एवं प्रेम पाने के लिये जिनका हृदय तड़पता है उन्हें अन्य बातें नहीं सुहातीं, उन्हें केवल प्रेम ही भाता है—वे उसी डगर पर बढ़ते हैं जहाँ प्रेम दिखलाई देता है। वे अनजाने में यदि कुछ गलतियाँ कर भी बैठते हैं तो वे जल्दी ही होश में आ जाते हैं क्योंकि उनका रक्षक राम होता है—ऐसे जन का जीवन राममय (प्रेममय) हो जाता है। अतः तू यदि प्रेम का पिपासु है तो पाप ताप की बातें न कर, तू प्यार से आप (प्रियतम प्रभु) की बातें कर कि तेरा जीवन प्रेममय हो जाये।

१२४६ गाली की गोली दिल पर लगी तो दिल बेचैन हो उठा। गा प्रभु का नाम यदि ली शरणागति तो गोली निरर्थक।

ऐ प्राणी! ईश्वर को भुलाकर तू यदि दुनिया की तरफ देखेगा तो तू कभी चैन नहीं पा सकेगा क्योंकि स्वार्थ का दूसरा नाम दुनिया है। देख, जब तक तुझसे स्वार्थ पूरा होता रहेगा तब तक तो यह दुनिया खुश रहेगी किन्तु जब स्वार्थ में बाधा आ जायेगी तब यह गाली देना शुरू कर देगी— ऐसे में तेरा दिल जर्जरित हो जायेगा। अतः तू ईश्वर को भुला नहीं, तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर। जब तू ईश्वर की ओर उन्मुख होगा तब इनकी गालियाँ तुझ तक पहुँच नहीं पायेंगी, वे उनके समीप ही लौट जायेंगी और तेरा उनकी ओर ध्यान ही नहीं रहेगा, तू ईश्वर की शरण में बैठा आनन्द मनायेगा।

१२४७ उदर की पूर्त्ति क्षणिक मन पर प्रेम मूर्ति विराजमान हो तो उदर और मन के लिए इधर-उधर न भटकना पड़े।

ऐ प्राणी! उदर पूर्त्ति समय विशेष के लिये राहत पहुँचाती है किन्तु कुछ समय पश्चात यह ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती है, इससे अन्तर की बेचैनी भी नहीं मिटती। अतः तू उदर पूर्त्ति के लिए इधर-उधर न भटक, तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर। देख, ईश्वर तन और मन दोनों का रक्षक है अर्थात उदर पूर्त्ति करने वाला भी वही है और मन को शान्त करने वाला भी वही है। जब तू ईश्वर की शरण पा जायेगा तब तुझे तन के लिए इधर उधर भटकना नहीं पड़ेगा, तू देख पायेगा कि वह स्वतः तेरे उदर की चिन्ता कर रहा है। तेरा मन भी तब उसके चरण कमलों का भँवरा बन रसपान करता रहेगा अन्यथा ईश्वर को भुलाकर तू मारा-मारा फिरता रहेगा फिर भी तेरे तन व मन दोनों अतृप्त बने रहेंगे।

१२४८ लता ने वृक्ष का आधार लिया और वृक्ष ने मूल का। मूल ने रस का और रस ने रसेश्वर रासवाले का। तू भी आधार खोज, मूल को भूल मत। मूल की भूल त्रिशूल। तीन लोक और तीन काल में भी शान्ति नहीं, यदि मूल ही को भूल बैठा।

ऐ प्राणी! यह सम्पूर्ण विश्व आधार पर टिका है, यदि आधार न रहे तो

सब उलट पुलट हो जायेगा कहीं कुछ भी देखने को नहीं रह जायेगा। देख, लता वृक्ष के सहारे फलती फूलती है और वृक्ष जड़ के सहारे फल फूल से पल्लवित होता है, जड़ रस को पाकर हरी भरी रहती है और रस उस रसेश्वर प्रभु के साथ से—जो सम्पूर्ण विश्व की रास (डोर) हाथ में थामे हुए है। अतः तू आधार खोज कि तेरा जीवन भी हरा भरा हो जाये। यदि तू आधार को भूल जायेगा तो तेरे मूल की यह भूल तेरे लिए त्रिशूल बन जायेगी अर्थात् तुझे सदा कष्ट देती रहेगी। तब तू कहीं भी जाकर, कहीं भी बैठकर शान्ति नहीं पा सकेगा, तू इससे तभी उबर पायेगा जब आधार पायेगा। अतः जिसके सहारे तेरा यह जीवन टिका हुआ है, तू उस जीवनदाता का आधार ग्रहण कर कि तेरी जीवन बगिया सदा हरी भरी (प्रफुल्लित) रह सके।

१२४९ रज पर भी वृष्टि हुई थी सृष्टि हुई थी चमक थी, दमक थी किन्तु सागर के वियोग ने शुष्क बना दिया। लता द्रुम गुल्म को धारण करना भी कठिन। आधार रहित शुष्क प्राणी बंजर बन बैठा।

ऐ प्राणी! पृथ्वी के जिस हिस्से में जल का अभाव रहता है अर्थात् जो स्थान सागर से दूर रहता है वहाँ सूखा ही सूखा (रेगिस्तान) रहता है, वहाँ पेड़-पौधे-लता-खेती बाड़ी आदि का अभाव रहता है। वहाँ चमक-दमक भी रहती है और वृष्टि भी होती है फिर भी कुछ पैदा नहीं होता। आधार रहित प्राणी की भी यही बात है। अनन्त रूप-गुण का स्वामी होने के पश्चात् भी व्यक्ति यदि ईश्वर से विमुख है तो उसके जीवन में मधुरता का सर्वथा अभाव रहता है, हरियाली (प्रसन्नता) का उसके समीप नामोनिशान नहीं रह जाता—रह जाता है केवल कष्ट जिसे ढोते-ढोते वह थक हार जाता है। ऐसे जन का जीवन भू भार होता है। अतः तेरा यह जीवन जिस पर टिका हुआ है तू उस आधार (ईश्वर) को जान एवं उसके प्रति नतमस्तक हो कि तेरा शुष्क खुश्क जीवन हरा भरा हो जाये।

१२५० मुड़ जाना अच्छा कि मुरझाना? मुरझाने के पश्चात् ही पश्चाताप है यदि आलाप आनन्द से नहीं।

ऐ प्राणी! ईश्वर को भुलाकर तू दिन व दिन मुरझाता चला जायेगा, तू कहने मात्र को जिन्दा रहेगा किन्तु जिन्दादिली का तुझमें सर्वथा अभाव होगा।

अतः पूर्णतया मुरझाने के पूर्व ही तू मुड़ जा अर्थात् तू ईश्वर की ओर उन्मुख हो जा कि तू मुरझाने से बच जाये। देख, ईश्वर को बाद कर देने से मुरझाने के सिवा तुझमें कुछ भी नहीं रह जायेगा। इसके लिए पीछे तू पछताता रहेगा किन्तु पीछे पछताने से कोई लाभ होने वाला नहीं क्योंकि तब तुझमें वह क्षमता ही नहीं रह जायेगी कि तू लौट कर उसके समीप जा सके एवं उससे आनन्द आलाप कर सके। अतः तू जल्दी से जल्दी आनन्द कन्द प्रभु की ओर घूम जा कि तू मुरझाने से बच जाये, तेरा जीवन खिले हुए फूल की तरह विकसित हो जाये। अन्यथा आनन्दकन्द प्रभु से आलाप के अभाव में शरीर शिथिल होने के पश्चात् तू पश्चाताप की अग्नि में ही जलता रहेगा।

१२५१ तुम्हारी साध? आनन्द का प्रसाद। फिर अवसाद? क्यों बरबाद? वर बाद तो बरबाद, नाशाद फरियाद का क्रम तो चला आ रहा है।

ऐ प्राणी। तू सदा आनन्द में रहना चाहता है फिर भी अप्रसन्न बना रहता है, अनेक कष्टपूर्ण विचार-भाव तुझे घेरे रहते हैं। इसका कारण यह है कि तूने उसे ही भुला दिया जो तेरा सर्वस्व है एवं जो सदा तेरी देखभाल कर रहा है। जब वर को ही बाद कर दिया जाता है तब बरबाद होना तो स्वाभाविक है। अब तू दुःख से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर के सम्मुख अनेक प्रार्थनायें भी करता है फिर भी उससे छुटकारा नहीं पाता। देख, दुःख से छुटकारा पाने का रास्ता ईश्वर को दुःख से निवृत्त होने के लिये याद करना नहीं, ईश्वर को याद रखना मात्र है। जब तू देख पायेगा कि ईश्वर ही तेरा सच्चा पति (मालिक) है, तेरी सारी देखभाल कर रहा है तब तुझे उसको याद करना नहीं होगा वह हमेशा तुझे याद रहेगा। तब दुःख सुख तेरे समीप नहीं आ पायेंगे, तू उसकी दुनिया में बैठा आनन्द का प्रसाद ग्रहण करता रहेगा।

१२५२ चिन्ता को चिता पर रख। नवीन जीवन तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

ऐ प्राणी! चिन्ता चिता से भी भयानक है। चिता एक बार में जला डालती है किन्तु चिन्ता तिल-तिल करके जलाती है। चिन्ता का मारा प्राणी खाते-पीते, पहनते-ओढ़ते, सोते-जागते किसी भी वक्त चैन नहीं पाता। देख, चिन्ता को साथ रखकर तू यदि जीवन में हरियाली देखना चाहेगा तो

यह असम्भव है। ऐसे में तू विभिन्न प्रकार से बाहर के साज सजा लेगा किन्तु भीतर हरियाली नहीं पा सकेगा। भीतर हरियाली पाने के लिए अर्थात् नवीन जीवन को अपनाने के लिए तुझे चिन्ता को चिता पर चढ़ाना होगा अर्थात् चिन्ता से सर्वथा मुख मोड़ना होगा। तब तू देख पायेगा कि कोई तेरे हर पल-क्षण की चिन्ता कर रहा है, उसे भूल जाने के कारण ही तू चिन्तित व परेशान बना हुआ है। जब तू उस सच्चे साथी को देख पायेगा जो सदा तेरे साथ है एवं तेरी प्रत्येक गतिविधि का संचालक है तब तेरा जीवन पूर्णतया नवीन हो जायेगा, तू जीवन के प्रत्येक क्षण से आनन्द पाता रहेगा।

१२५३ विज्ञानी पार्थिव तत्वों में लगे, ज्ञानी सूक्ष्म दर्शन में, भक्त भजनों में, प्रेमी प्रेम में, अब मैं क्या करूँ? "मैं" को मुझे अर्पण कर। तू कर्त्ता बन बैठा अतः कर्म फल ही सम्मुख है।

ऐ प्राणी। जो ईश्वर की दुनिया में जीने का अभिलाषी है उसे कुछ कार्य करके ही सन्तोष नहीं मिलता, वह ईश्वर की समीपता पाने के लिये विकल बना रहता है। वह देखता है कि विज्ञानी पार्थिव तत्वों को समेटने में लगा है और ज्ञानी सूक्ष्म भावों के दिग्दर्शन में खोया है, भक्त भजन में तल्लीन है और प्रेमी प्रेम करने को तत्पर है किन्तु उसे कुछ नहीं सूझता कि वह किस प्रकार ईश्वर की समीपता पाये? उसके अन्तर की विकलता ही उसकी सहायक बनती है और वह प्रेरणा पाता है कि अरे पगले! तुझे कुछ करना नहीं है, तू तो मेरा ही है। देख, जिस मैं के सहारे तू मुझे पाना चाहता है उस मैं को ही मुझे अर्पित कर दे। फिर तू मुझसे अलग नहीं रहेगा, तू मुझमें मिल कर एक होगा अर्थात् तू ही मैं, मैं ही तू होगा। जब तक कार्यों के द्वारा तू मुझे पाने की चेष्टा करेगा तब तक कर्म फल ही तेरे सम्मुख रहेंगे, मुझसे तू दूर ही बना रहेगा।

१२५४ पागल तू जीव बनकर बैठ गया। अब मैं क्या करूँ? तू जीव नहीं शिव है विश्वास क्यों नहीं होता?

ऐ प्राणी! तू जीव नहीं, तू शिव है अर्थात् तू कष्ट पाने के लिये यहाँ नहीं आया, तू कष्ट में पड़े प्राणियों का उद्धार करने के लिये आया है। किन्तु यहाँ आकर तू अपना रूप ही भूल बैठा और इन्हें देखते-देखते इनमें ही घुल मिल गया। अब तुझे न अपना रूप याद है और न घर याद है। देख, अब

भी मैं तुझे अवसर दे रहा हूँ, तेरा विश्वास जगाने के लिये सन्त को तेरे समीप भेज रहा हूँ जो मेरे ही प्रतिरूप हैं। सन्त वाणी सुनकर आज भी तू यदि होश में आ जायेगा तो तेरा जन्म सार्थक हो जायेगा अर्थात् तू मेरा बनकर यहाँ मौज मनायेगा और एक दिन मेरे ही समीप लौट आयेगा अन्यथा मुझसे विमुख हुआ तू जीव बनकर रोता कलपता ही रह जायेगा।

१२५५ रक्त के प्रत्येक बिन्दु में बन्धन की भावना तो वन्दन कब करेगा ?

ऐ प्राणी! तू स्वयं के चारों ओर जो बन्धन देख पाता है वे बन्धन तेरे अपने लगाये हुए हैं, किसी और ने तुझे बन्धन में नहीं बाँध रखा है। देख, बन्धन बड़ा दुःखदायी होता है, बन्धन में बँधा प्राणी बन्धन के कष्ट से ही कराहता रहता है, वह वन्दन नहीं कर पाता। अतः तू यदि ईश्वर की वन्दना करना चाहता है तो प्रथम तू उन संस्कारों (बन्धनों) से मुक्त हो जो तेरे रक्त के प्रत्येक बिन्दु में बसे हुए हैं। जब तक तू संस्कारों से मुक्त नहीं होगा तब तक तू ईश्वर के लिए कुछ कार्य करता रहेगा और उसे ही वन्दन नाम देता रहेगा यथार्थ में वन्दन नहीं कर पायेगा। तेरी वन्दना उसी दिन शुरू होगी जब तू पूर्णतया ईश्वर के चरणों में झुक जायेगा। तब ये संस्कार तुझे ईश्वर से दूर नहीं कर पायेंगे, तू रग-रग में एक उसी को समाया देख पायेगा।

१२५६ कण कण में प्रेम छिपा है। आवरण हटा, प्रेम के दर्शन होंगे। जीवन सफल होगा। वृथा प्रकृति का दास बना, उदास बना बैठा है।

ऐ प्राणी! यह सम्पूर्ण संसार प्रेम पर टिका है। इसके कण-कण में प्रेम छिपा हुआ है किन्तु तेरी आँखों पर अभी मोह, ममता, स्वार्थपरता आदि का पर्दा पड़ा हुआ है इसीलिए तू कण-कण में समाये प्रेम को देख नहीं पाता। तेरी दृष्टि की पहुँच अभी प्रकृति तक ही है, यह यदि अनुकूल रहती है तो तू कुछ देर के लिये प्रसन्न हो जाता है अन्यथा इसे प्रतिकूल देखता हुआ हमेशा उदास ही बना रहता है। अरे पगले! तेरा यह कीमती जीवन रोने के लिये नहीं है और तू है कि भ्रम के कारण रोता ही जा रहा है। देख, आज भी यदि तेरा आवरण हट जाये तो तू प्रेम के दरशन पा जाये। अतः तू सद्गुरु

की शरण ग्रहण कर कि उनकी अभय वाणी सुनकर तेरा भ्रम विदा हो जाये और तू कण-कण में समायी प्रेम सत्ता को देख पाये—तेरा जीवन पाना तभी सफल होगा।

१२५७ कल्पना ने सृष्टि की रचना की। साकार हुई सफल। निराकार हुई विफल। निराकार की कल्पना साकार में सफल।

ऐ प्राणी! तू दिन-रात कल्पना का ताना बाना बुनता रहता है तथा उसी के अनुसार अपनी सृष्टि की रचना चाहता है। यदि तेरी कल्पना साकार हो जाती है तो इसे तू अपनी सफलता समझता है और खुश हो जाता है किन्तु तेरी कल्पना यदि पूरी नहीं होती तो तू उसे विफलता समझता है और विकल हो जाता है। देख, तेरी कल्पना पूरी हो भी सकती है और नहीं भी किन्तु तू जिसका है (जो तेरी प्रत्येक गतिविधि का संचालक है) उस निराकार ईश्वर की सारी कल्पनायें पूरी होती हैं—तेरा जीवन उसी की कल्पना का मूर्त्त रूप है। अतः तू अपनी कल्पना को उसकी कल्पना में मिला दे कि वह निराकार ईश्वर तेरे लिये साकार हो जाये। तब तू देख पायेगा कि जो कुछ हो रहा है उसमें तेरी भलाई निहित है क्योंकि उसे सम्पादित करने वाला कोई और नहीं, वह निराकार ईश्वर ही है जो तेरा अपना है।

१२५८ दिया क्या जो माँगता है? मल क्यों बना? निर्मलता को भूल बैठा।

ऐ प्राणी! तू देना कुछ नहीं चाहता और लेने की माला दिन रात जपता रहता है—यह सौदा गलत है। कुछ भी माँगने का अधिकारी वही होता है जो देने के लिये भी तैयार रहता है, जब तक देने के भाव हृदय में नहीं आते तब तक माँगना अशोभनीय है। देख, 'देना' हृदय को निर्मल करता है और 'माँगना' हृदय को गन्दा बनाता है और तू है कि देना भूलता जा रहा है और लेने के लिये सदा तैयार रहता है। यही कारण है कि तेरे हृदय की निर्मलता खत्म होती जा रही है और तेरा हृदय गन्दा होता जा रहा है। अब भी समय है, आज भी तू यदि निर्मलता चाहता है तो ईश्वर से कुछ माँग नहीं, तू ईश्वर के चरणों पर झुक जा एवं उसके कार्यों को देखता चल। तब तेरा हृदय स्वतः शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल हो जायेगा और तू देख पायेगा कि बिना कुछ माँगे ही वह हर पल तेरी देखभाल कर रहा है।

१२५९ पुकार, खुला द्वार, सम्मुख प्रेम अवतार। अब लगा तार, न जीवन बार-बार।

ऐ प्राणी! सच्चे हृदय से जब तू ईश्वर को पुकारेगा तब तेरे हृदय के बन्द दरवाजे खुल जायेंगे और तू उसमें प्रेम के अवतार (प्रभु) को विराजमान देख पायेगा। देख, तुझे यह जीवन ईश्वर मिलन के लिये मिला है अतः तू इस कीमती जीवन को यूँ ही न खो, तू बार-बार ईश्वर को याद कर और तब तक याद करता रह जब तक उससे तार न लग जाये। जब उससे तेरा तार जुड़ जायेगा अर्थात् वह तेरा अपना बन जायेगा तब तुझे उसे याद करना नहीं पड़ेगा, तुझे उसकी याद आती रहेगी—वह तेरे हृदयासन पर विराजमान हुआ तुझ पर सदा प्यार लुटाता रहेगा। तब तेरे आने जाने का क्रम भी टूट जायेगा क्योंकि यहाँ तेरा आगमन ईश्वर मिलन के लिये हुआ था और तेरा वह उद्देश्य आज पूरा हो गया है।

१२६० पुराने वस्त्र तो बदले किन्तु पुराने विचार? फिर तो वस्त्र ही बदलता आया, जहाँ गया असन्तोष घृणा के ही दर्शन किये। प्यार करता तो जीवन सार्थक न होता।

ऐ प्राणी! तू आज तक जिन विचार भावों में जीता आया है उनसे तू ईश्वर को नहीं पा सकेगा क्योंकि ईश्वर को जीर्ण-शीर्ण भावों से नहीं पाया जा सकता, ईश्वर को पाने के लिये नवीन विचार-भाव चाहिये। देख, नये वस्त्र शरीर को सजाते हैं किन्तु नये भाव हृदय को सजाते हैं। नये वस्त्र पहनकर भी यदि विचार भाव गन्दे ही रहें तो व्यक्ति कुढ़ता ही रहेगा, अपने चारों ओर असन्तोष व घृणा का ही साम्राज्य देख पायेगा। किन्तु नये वस्त्रों की तरह संयोग से वह यदि नये विचार भी पा जाये तो उसका जीवन ही दूसरे प्रकार का हो जायेगा। तब वह हृदय पर एवं अपने चारों ओर प्यार का ही जलवा देख पायेगा। अतः तू केवल शरीर न सजा, तू उन भावों का आह्वान कर जिन्हें अपनाकर तेरा दिल प्यार से सज जाये—तभी तेरा जीवन सार्थक होगा।

१२६१ रंग न दिखलाओ, रंग लो अपना दिल कि दिल में तमन्ना न रह जाये।

ऐ प्राणी! ईश्वर के नाम पर कुछ साधना (कार्य) करके तू अभिमान

में न फूल, इससे तेरा सारा किया कराया व्यर्थ हो जायेगा। तब ईश्वर को तू पायेगा तो है ही नहीं बल्कि ईश्वर से दूर ही होता जायेगा। देख, ईश्वर को पाने के लिए तू अपना दिल रंग अर्थात् दिल में उसे बसा। जब ईश्वर तेरा अपना हो जायेगा एवं तेरे दिल पर उसका साम्राज्य होने लगेगा तब तेरे अन्य आकर्षण स्वतः कम पड़ने लगेंगे और तब एक दिन ऐसा भी आ जायेगा जब तेरे दिल में अन्य तमन्ना ही नहीं रह जायेगी—तेरी साधना उसी दिन सफल होगी। अन्यथा ईश्वर के नाम पर तू दो कदम भी आगे बढ़ेगा तो उसका अभिमान करता रहेगा परिणाम तू कोरा का कोरा ही रह जायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

१२६२ है अनुराग जो खेलेगा फाग? कादा, कीचड़ ही उछाला धर्म, कर्म के नाम पर। अंग अंग में प्रेम तरंग तब जमें रंग।

ऐ प्राणी! आनन्द उल्लास का नाम फाग है, यह हृदय की प्रेम पूर्ण भावना से पैदा होता है। जब तक हृदय में प्रेम पूर्ण भावों का आगमन नहीं हो जाता तब तक जीवन भीतर बाहर से रंगीन नहीं होता और न फाग का आनन्द मिलता है। तब व्यक्ति धर्म कर्म के नाम पर कार्य ही अपना सकता है और रंग के नाम पर कादा कीचड़ ही उछाल सकता है। देख, फाग खेलना प्रेमपूर्ण भावना से ही सम्भव है। जैसे जैसे अंग अंग में प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं वैसे वैसे जीवन रंगीन होता जाता है। अतः प्रेम के जागरण के लिये जहाँ तू प्रेम को प्रत्यक्ष देख पाये उन चरणों में श्रद्धा अवनत हो। ऐसे में तेरा सोया प्रेम जाग जायेगा, इतना ही नहीं, तू उसे अंग अंग में व्याप्त देख पायेगा—यथार्थ में होली का आनन्द तू उसी दिन पायेगा। अन्यथा होली के नाम पर तू हो हुल्लड़ ही करता रहेगा 'होली क्या है' तू इसे कभी नहीं जान पायेगा।

१२६३ क्या प्रेम करेगा जब वासना ही नहीं शान्त? वासना है, वास है, उदास है, प्रवास है, संन्यास अति दूर।

ऐ प्राणी! प्रेम हृदय का उल्लास है। प्रेम में शरीर का ध्यान भी नहीं रहता केवल प्रेम ही प्रेम रहता है। वासना शरीर की भूख है, इसमें शरीर प्रधान रहता है और सभी कार्य शरीर के लिये होते हैं। देख, जब तक शरीर प्रधान रहता है तब तक प्रेम नहीं आता (कार्य विशेष को प्रेम का नाम दिया जा सकता है) वासना में सना प्राणी हमेशा शरीर के लिये सुख के साधन

जुटाने में ही संलग्न रहता है। वह इसे भूल जाता है कि वह यहाँ कुछ समय के लिये आया है अतः इसे ही अपना वासस्थान समझ बैठता है। उसे आगे-पीछे की चिन्ता घेरे रहती है परिणाम वह उदास रहने लगता है। उदासी मिटाने के लिये वह भिन्न-भिन्न स्थानों के चक्कर भी लगाता है फिर भी उसकी उदासी मिटती नहीं, ज्यों की त्यों बनी रहती है। ऐसे जन को प्रत्येक व्यक्ति-वस्तु अपने में बाँध लेते हैं, वह उनसे अलग नहीं हो पाता। ऐसी है यह वासना जिसे अपनाकर व्यक्ति कहीं का नहीं रह जाता। किन्तु प्रेम की तो बात ही निराली है। प्रेम का प्रादुर्भाव शरीर से ऊपर उठाता है, प्रेमी की दुनिया आनन्दमयी हो जाती है। अतः तू यदि आनन्दमय जीवन जीना चाहता है तो शरीर को प्रधान न बना, हृदय की कद्र कर कि तेरा हृदय प्यार से सज जाये।

१२६४ फिक्र क्यों? फक्र कर कि तू इन्सान है, खुदा की शान, बेजबान नहीं, बाजबान है। तेरी पुकार, कब बेकार?

ऐ प्राणी! ईश्वर को भुलाकर तू स्वयं को छोटा समझने लगा है और इसीलिये दुःख चिन्ता आदि से घिर गया है। देख, तू छोटा नहीं है, तुझे तो यह गर्व होना चाहिये कि तू सब प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी (मनुष्य) है, तू ईश्वर की विशिष्ट कृति है। अभाव से घिर जाने के कारण तू स्वयं को दीन हीन देखने लगा है इसीलिये अपने श्रेष्ठत्व को भूलता जा रहा है। अब भी समय है, आज भी तू यदि होश में आ जायेगा तो अपने रूप को पुनः पा जायेगा। अतः तू ईश्वर को याद कर। जैसे-जैसे तू स्वयं को ईश्वर की दुनिया में पायेगा वैसे-वैसे तेरी शक्ति व तेरा रूप दोनों जाग्रत होने लगेंगे और तब एक दिन ऐसा भी आयेगा जब तू अपनी विशिष्टता को देख पायेगा।

१२६५ प्रथम—प्र-प्रणाम कर आत्मदेव को। थ-थर्राना छोड़। म-मैं का अहंकार समर्पण कर प्रभु पाद पद्मों में।

ऐ प्राणी! अपनी शक्ति को पहचानने के लिये प्रथम तुझे ईश्वर के चरणों में झुकना पड़ेगा। झुकना साधारण नहीं होता, झुकने वाला ही पाने का अधिकारी होता है। जहाँ झुकने के भाव नहीं रहते वहाँ अहंकार का साम्राज्य रहता है, वहाँ प्रगति के लिये स्थान नहीं रहता। देख, जो ईश्वर के हैं वे

निरर्थक डरते नहीं, वे जानते हैं कि जिस समय जैसा उचित है ईश्वर वैसा ही करता है। अतः तू थर्राना (भयभीत होना) छोड़ दे, तभी तू निर्भय रहकर निर्द्वन्द आगे बढ़ पायेगा। देख, आगे बढ़ने वाला भी यदि अहंकार से घिर जाये तो उसे गिरते देर नहीं लगेगी। अतः अहंकार को तू प्रभु पाद पद्मों में अर्पित कर दे कि वह कभी तेरे लिए रुकावट न बने—ऐसे में तू अनुपम शक्ति का स्वामी होगा, तुझे हिलाने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं होगी।

१२६६ संवेदन जड़ में, चेतन में, तन में, मन में। फिर जलन क्यों? विरह क्यों? मिलन क्यों? आवागमन क्यों? यही क्रम है जिसे भक्ति प्रेम का विक्रम ही शान्त करता है।

ऐ प्राणी! चैतन्य शक्ति (ईश्वर) केवल चेतन प्राणी में ही नहीं, जड़ में भी उसी प्रकार है जैसे चेतन में है अर्थात् वह जड़ में, चेतन में, तन में, मन में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। अब अनेक प्रश्न सम्मुख खड़े हो सकते हैं कि जब वह हमेशा साथ है फिर हृदय में जलन क्यों रहती है, उसे पाने के लिये प्राणी को विरह की अग्नि में क्यों जलना पड़ता है, मिलन की अलग से क्या आवश्यकता है और बार-बार आवागमन का चक्र क्यों लगा रहता है? देख, इसमें बात यह है कि वह साथ है तो सही किन्तु दिखलाई नहीं पड़ता, उसे साथ देखने के लिये उसके चरणों पर पूर्णतया न्योछावर होना पड़ता है। जब हृदय पर भक्ति प्रेम का साम्राज्य छा जाता है, अन्य भाव नहीं रह जाते तब प्रश्न स्वतः शान्त हो जाते हैं—रह जाती है केवल प्रसन्नता जिसमें आकण्ठ डूबा हुआ प्राणी मौज मनाता है।

१२६७ श्वास वायु में भी, शरीर में भी। शरीर की वायु पाँच प्रकार की। और यह (वायु) एक की। एक राखे टेक।

ऐ प्राणी! वायु श्वास को संचालित करती है। यह वायु बाहर भी चारों ओर परिलक्षित होती है और शरीर के भीतर भी है। शरीर में वायु पाँच प्रकार की है (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) किन्तु जिस वायु से शरीर गतिशील है वह एक की है। देख, वही एक सम्पूर्ण विश्व का सृजनकर्त्ता व संहारकर्त्ता है। वह जब जैसी जरूरत समझता है वैसी ही व्यवस्था करता रहता है। अतः तू उस 'एक' को जान जो तेरे श्वासों में गति भर रहा है। यदि तू उससे दूर ही बना रहेगा तो श्वांस लेता रहेगा,

किन्तु श्वांस लेने का आनन्द नहीं पायेगा। जिस दिन तू उस एक को जान जायेगा जो तेरी टेक रखने वाला है उसी दिन तेरी रक्षा सम्भव होगी अन्यथा तू जन-जन का मुँह देखता रहेगा फिर भी हमेशा चिन्तित व परेशान ही बना रहेगा।

१२६८ नाम की महिमा जब अनामी ने सुनाई, प्राणों में उल्लास। कामी, नाम का प्रभाव क्या जाने, जहाँ भाव ही अभाव बना बैठा है।

ऐ प्राणी! ईश्वर की स्मृति (नाम) में क्या है इसे अनामी (सन्त) के समीप बैठकर ही जाना जा सकता है। देख, अनामी को अपना ध्यान भी नहीं रहता, वह नाम में इतना खो जाता है कि उसके सम्मुख केवल नाम वाला (ईश्वर) ही रह जाता है—यथार्थ में नाम का आनन्द वही पाता है, नाम की महिमा भी वहीं दिखलायी पड़ती है। अनामी के समीप बैठकर नाम केवल मुख व कानों का विषय नहीं रह जाता, नाम हृदय में बस जाता है और हृदय में बसा प्राणों को उल्लसित करता रहता है। जब तक ऐसे अनामी के दरशन नहीं होते तब तक नाम की महिमा से व्यक्ति अनभिज्ञ रहता है, वह मुख से तो अवश्य नाम लेता है किन्तु उसका ध्यान काम में लगा रहता है। वह जो कुछ भी पाता है उसमें उसे कहीं भाव नजर नहीं आता, चारों ओर अभाव ही अभाव दीखता है। अतः तू यदि नाम का आनन्द पाना चाहता है तो अनामी के समीप बैठ कि तू नाम वाले को प्रत्यक्ष देख पाये, तेरी दुनिया सज सँवर जाये।

१२६९ प्रिय पास, फिर क्यों उदास? विश्वास नहीं—उदास ही उदास।

ऐ प्राणी! ईश्वर तुझसे कहीं दूर नहीं, तेरे प्रत्येक श्वास पर उसका वास है—वह तेरे श्वासों-प्राणों पर प्रतिष्ठित है। देख, ईश्वर तेरे इतना समीप है फिर भी तू उदास बना रहता है क्योंकि ईश्वर तेरे समीप अवश्य है किन्तु तू अभी उसे समीप नहीं देख पाता, तेरी दृष्टि अभी बाहर की ओर लगी हुई है। यही कारण है कि ईश्वर की दुनिया का वासी होने के पश्चात् भी तू उदास है। देख, ईश्वर स्थूल चक्षुओं से नहीं दिखलायी देगा क्योंकि ये आँखें तो स्थूल को देखते-देखते इतनी स्थूल हो गयी हैं कि स्थूल से परे भी कुछ है यह

इनके लिए अविश्वसनीय हो गया है। ईश्वर विश्वास की आँखों से देखा जा सकता है। जब स्थूल व्यक्ति-वस्तु तुझे तृप्त नहीं कर पायेंगे और तू विश्वास धन को पा जायेगा तब तू ईश्वर का जलवा सर्वत्र देख पायेगा। तब तेरे भीतर भी तू उसी को प्रतिष्ठित देख पायेगा एवं तेरे चारों ओर भी वही होगा—उदासी का कहीं नामोनिशान भी नहीं होगा।

१२७० गुण गाये अवगुण के, सगुण के, निरगुण के, शान्ति कहाँ? शांति है प्रशांत चित्त में जहाँ शांति शयन करती, (मन की) चंचलता शमन करती, शरीर की निरर्थक हरकतों का दमन करती।

ऐ प्राणी! अवगुणों को बुरा कहकर यदि तू शान्ति पाना चाहेगा तो कभी नहीं पा सकेगा और न ईश्वर के सगुण निर्गुण रूप का वर्णन करके शान्ति पा सकेगा। अवगुणों को देखने से तो अवगुण तेरे समीप चले आयेंगे एवं ईश्वर की बातें करके तू उन बातों में ही उलझ जायेगा। देख, शान्ति बातों में नहीं, शान्ति चित्त की स्थिरता में है। शान्ताकारं प्रभु की मूर्त्ति जब एक बार चित्त पर चढ़ जाती है तब चित्त पर से उतरती नहीं, चित्त तब प्रशांत महासागर की तरह हो जाता है जिसमें शान्ति विराजमान होती है। मन का शमन भी तब करना नहीं पड़ता, मन उस रूप माधुरी का पान करके स्वतः शान्त होता है। इन्द्रियों का दमन करने की भी तब आवश्यकता नहीं पड़ती, शरीर की निरर्थक हरकतें स्वतः शान्त हो जाती हैं। अतः शान्ति पाने के लिए तू बातें करके मन न बहला, तू उस शान्ताकारं प्रभु के दरशन पा कि वह मनोहर मूर्त्ति तेरे चित्त पर अंकित हो जाये जिसे तू भुलाना भी चाहे तो भी न भुला पाये—तब शान्ति सदा तेरे साथ रहेगी, तुझे छोड़कर वह जाने का नाम भी न लेगी।

१२७१ दामन न छोड़ूँगा। जब तक मन, तन का शमन, दमन न हो। प्रथम यह तो देख मन कहाँ भटक रहा है?

ऐ प्राणी! तू जोर जबर्दस्ती से तन-मन को वश में करने की चेष्टा न कर। बलपूर्वक (शमन दमन के द्वारा) तू यदि इन्हें वश में कर भी लेगा अर्थात् सफलता पा भी लेगा तो तेरी यह सफलता स्थायी नहीं होगी, तू धोखा ही खायेगा। अतः तू दमन शमन का रास्ता छोड़कर सहज रास्ता अपना, तू

छोटे बच्चे की तरह इनकी देखभाल शुरू कर। देख, बच्चे को जब मालूम हो जाता है कि उसे कोई देख रहा है तो वह अनेक निरर्थक हरकतों से बच जाता है, वह अधिक भटक भी नहीं पाता। मन की भी यही बात है। आज तक तूने मन की ओर देखा ही नहीं था इसीलिये यह भटकता था और तन को भटकाता था। जब मन तेरी देखभाल में रहेगा तब इसका चक्कर भी कम हो जायेगा और बेअर्थ बातों से तो यह पूर्णतया बच ही जायेगा। अतः तू तन-मन को मार नहीं, तू इनकी देखभाल कर तथा इन्हें राम रस का पान करा कि वह (रस) कभी खत्म नहीं होने पाये, उसे पान कर तेरे तन व मन दोनों तृप्त हो जायें।

१२७२ पत्र देखा तो प्रश्न उठा—चढ़ाऊँ या लिखूँ? चढ़ा दिल, गया खिल। लिखेगा क्या? लिख दिया लिखने वाले ने। प्यार कर, अब लिखना क्या, पढ़ना क्या?

ऐ प्राणी! ईश्वर के बारे में कुछ लिखना प्रधान नहीं और न पत्र पुष्प द्वारा ईश्वर की पूजा करना ही प्रधान है। बाहर के कार्य कैसे भी क्यों न हों यदि उनके द्वारा दिल के भावों को प्रभु के चरणों पर अर्पित किया जाता है तब तो दिल खिल जाता है अन्यथा वे (लिखना व पूजना) सभी कार्य बन कर रह जाते हैं। देख, प्यार भाव के साथ जब एक पत्ता भी ईश्वर को अर्पित किया जाता है तो वह उसे स्वीकार करता है। तब वह कुछ ऐसा दे देता है अपने प्रिय भक्त को कि उसे कुछ लिखने पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती, मौज में स्वतः कुछ ऐसा होता है जिसे सभी देखते रह जाते हैं। उसका यह भाव किसी भी रूप में दिखलायी पड़ सकता है किन्तु यथार्थ में वह कार्य नहीं रहता, रहता है हृदय का प्रस्फुटन जो उसे ईश्वर के सामीप्य में मिला है।

१२७३ हिमालय में तेरा आलय। आलय सर्वत्र। आ, ले प्रसाद, मिटे विषाद। विषय विष नहीं, भावना विष अमृत।

ऐ प्राणी! ईश्वर पहाड़ों की गुफाओं में बसता हो ऐसी बात नहीं है, ईश्वर का वास सर्वत्र है। अतः तू जहाँ है वहीं बैठकर ईश्वर को याद कर और जो कुछ तुझे मिले उसे ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण कर, ऐसे में तेरे समीप दुःख टिक नहीं पायेंगे। जब तक तू ईश्वर की शरण ग्रहण नहीं करेगा

तब तक संसार तुझे विष रूप नजर आयेगा—तू यहाँ हमेशा कष्ट पाता रहेगा तथा दोषी संसार को ठहराता रहेगा। देख, विष विषयों में नहीं तेरी भावना में है, वहीं विष भी है और वहीं अमृत भी है। जब तक तू अपनी ओर देखेगा तब तक वहाँ विष देख पायेगा किन्तु जब तू ईश्वर की शरण में होगा तब वहीं अमृत पा जायेगा अर्थात् अपनी ओर देखने से तू स्वार्थ, अहंकार आदि भावों से घिर जायेगा और ईश्वर की शरण पाने से श्रद्धा, प्रेम आदि भाव स्वतः तुझमें प्रस्फुटित हो जायेंगे। तब यह संसार तेरे लिए कष्ट का स्थान नहीं रहेगा, आनन्द का बगीचा बन जायेगा।

१२७४ छल बल कहाँ तक साथ देगा ? एक दिन जब कहेगा मैं निर्बल, उसी दिन होगा सबल। बल बल वाले का तू तो बातें बनाता है।

ऐ प्राणी ! तू छल बल के द्वारा उन्नति करने की चेष्टा न कर क्योंकि छल बल हमेशा साथ देने वाला नहीं। तेरा किया हुआ छल एक दिन जरूर सामने आ जायेगा फिर पीछे तू पछतायेगा एवं स्वयं को असहाय व दीन हीन अवस्था में पायेगा। अतः तू छल बल के द्वारा बली बनने की चेष्टा न कर, तू अपने रूप (बल) को पहिचान। जब तू निर्बल होकर ईश्वर की शरण लेगा तभी तू यथार्थ में सबल होगा, उस दिन तुझमें वह शक्ति होगी जिसे झुकाने की सामर्थ्य किसी में भी न होगी। जब तक तू ईश्वर की शरण नहीं पा लेगा तब तक बल बल वाले का रहेगा किन्तु अभिमान तू करता रहेगा—ऐसे में तू दिन ब दिन कमजोर होता जायेगा। अतः अभिमान शून्य होकर तू उस सत्ता के सामने झुक जा जिसके बल पर तू ठहरा है, फिर तू जो कुछ भी होगा अनुपम होगा।

१२७५ तन कर खड़ा न हो यह तन है जिसका पतन अवश्यम्भावी है। नत हो जा, पतन का भय न रहेगा।

ऐ प्राणी ! तू इस तन का अभिमान न कर, इसे तू आज सम्मुख देख रहा है किन्तु कल यह नहीं रहेगा, यह एक दिन निश्चित मिट जायेगा। अतः तू अभिमान करना छोड़ दे एवं उस अज्ञात शक्ति के सामने झुक जा जिस शक्ति के सहारे यह शरीर गतिशील है। देख, जो अभिमानी हैं उन्हें सदा पतन का भय बना रहता है किन्तु जो झुके हुए हैं, अपना कुछ जानते ही नहीं, जो कुछ देखते हैं उसे ईश्वर द्वारा अनुप्राणित देखते हैं उन्हें शरीर जाने का भय

नहीं रहता, वे तो दिन व दिन ईश्वरीय शक्ति से सुसज्जित होते जाते हैं। उन्हें दुनिया का कोई भी आकर्षण पतन की ओर नहीं ले जा सकता क्योंकि उन्होंने ईश्वर का एवं झुकने का आनन्द जो पा लिया है।

१२७६ संसार, आहार, विहार, प्रहार, संहार पाँच शब्दों में पंच भौतिक प्राणी भ्रमण कर रहा है। हार अन्त में। हार पहनाता स्वयं को या ठाकुर को तो जीवन उपहार होता।

ऐ प्राणी! पाँच तत्वों से बना हुआ यह शरीर तुझे आनन्द के लिये मिला है किन्तु तू यहाँ आकर भटक गया है, तुझे यह संसार ही प्रिय हो गया है। अब खाना-पीना, भोग-भोगना, दूसरों को नीचा दिखाना तत्पश्चात मृत्यु मुख में समा जाना—यही तेरे जीवन का क्रम रह गया है। देख, स्थूल को प्रधान मान कर तथा दिन रात इसी में जी कर तेरे पल्ले हार ही पड़ने वाली है, तुझे और कुछ मिलने वाला नहीं। अतः तू यह कीमती जीवन इनके पीछे बरबाद न कर, तू उस ईश्वर को जान जो तेरे भीतर व बाहर सर्वत्र व्याप्त है। जब तू उसका होगा तब तेरी हार उपहार में बदल जायेगी और तू जीवन का आनन्द ले पायेगा अन्यथा हार का दुःख लिये हुए ही तू यहाँ से विदा होगा।

१२७७ दिल मिला है तो क्या छटपटाने के लिये? दिल मिला कहाँ यदि मिलता तो शांति, शांति ही रहती।

ऐ प्राणी! तुझे यह दिल रूपी कीमती धन छटपटाने के लिये नहीं मिला है, आनन्द मनाने के लिये मिला है और तू है कि इसे पाकर भी छटपटा रहा है। देख, अभी तूने दिल की कीमत नहीं की इसीलिये इसका खयाल भी नहीं रखता अर्थात् तेरे किसी भी कार्य के कारण यह यदि कष्ट पाता है तो तू उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। ऐसे में तू यदि प्रसन्न रहना चाहे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है? देख, दिल रूपी कीमती धन पाकर भी तू अभी दिल से दूर ही बना हुआ है। जिस दिन तू दिल की कद्र करना सीख जायेगा उस दिन तेरे कदम गलत राह पर नहीं बढ़ेंगे, दिल वाले (ईश्वर) से तेरा दिल मिल जायेगा—यथार्थ में उसी दिन दिल रूपी धन तेरा अपना होगा। उस दिन शान्ति तुझे खोजनी नहीं पड़ेगी, तेरे समीप शान्ति ही शान्ति रहेगी।

१२७८ लोभ को त्याग में, द्वेष को मैत्री में, मोह को ज्ञान में बदल डालो साधना द्वारा, यह महात्मा बुद्ध का कथन है। ये विचार कभी विकार बनकर अशांत करते हैं तन को मन को। सरल सहज साधन प्रणय का, नय का है जहाँ दुनिया ही बदल जाती है।

ऐ प्राणी ! विभिन्न भावनाओं का आगमन दिन रात हृदय पटल पर होता रहता है, उनमें भले व बुरे दोनों प्रकार के भाव रहते हैं। महापुरुषों का कथन है कि उन आने वाले बुरे भावों को तू अच्छे भावों में परिवर्तित कर डाल अन्यथा वे विचार तेरे तन-मन को अशांत कर देंगे। देख, इन्हें बदलने का सहज मार्ग प्रेम है एवं झुक कर चलना है। जहाँ झुकने के भाव रहते हैं वहाँ प्रेम विराजमान रहता है, वहाँ गलत भाव स्वतः पलायन कर जाते हैं एवं शुद्ध व स्वच्छ भावों का आगमन भी स्वतः होता है। अतः तू प्रेम पथ पर कदम बढ़ा तथा सदा झुक कर चल, तब तेरी दुनिया ही बदल जायेगी—लोभ त्याग में परिवर्तित हो जायेगा, द्वेष मैत्री में एवं मोह ज्ञान में। अन्यथा इनको बदलने की चेष्टा करता हुआ तू ही थक हार जायेगा किन्तु ये नहीं बदल पायेंगे।

१२७९ प्रभु है, यह उनसे न कह जिनके हृदय में विश्वास नहीं। भक्त है, यह उनसे न कह जिनके दिल में प्रेम नहीं।

ऐ प्राणी ! ईश्वर विश्वास की आँखों से देखा जा सकता है। जब तक विश्वास की जागृति नहीं हो जाती तब तक यदि ईश्वर सम्मुख भी रहे तो उसे देखना कठिन होता है। अतः जिनके हृदय में विश्वास नहीं तू उन्हें ईश्वर की बातें न सुना। देख, भक्त प्रेम से देखा जा सकता है। जब तक हृदय में प्रेम का जागरण नहीं हो जाता तब तक मस्तिष्क पक्ष प्रबल रहता है और तब तक प्रेम प्रेम सा नहीं लगता केवल भावुकता लगती है अतः तू जिनके भीतर प्रेम नहीं उन्हें भक्तों की बातें न सुना। जहाँ प्रेम व विश्वास का अभाव है उन्हें तू यदि भक्त व भगवान की बातें कहने चलेगा तो वे तो तेरी बातें सुनने वाले हैं ही नहीं भक्त और भगवान ही झूठे बन जायेंगे। अतः तू उनसे प्रेम व विश्वास की ही बातें कर कि उनके हृदय में भी वे भाव जाग जायें—तब भक्त व भगवान भी उन्हें स्वतः प्रिय होंगे।

१२८० सूर्य तुझे अर्घ्य समर्पण करूँ ? अर्घ्य नहीं अघ की भावना समर्पित कर। फिर प्रकाश ही प्रकाश है।

ऐ प्राणी ! सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाला एक ईश्वर है—सूर्य का प्रकाश उसी का एक छोटा सा रूप है। देख, तू भी यदि प्रकाश पाने का इच्छुक है तो तू सूर्य के सम्मुख केवल अर्घ्य चढ़ाकर खुश न हो, तू उन भावों को उसे समर्पित कर जो तुझे बताते हैं कि तू पापी है, तापी है, संतापी है क्योंकि इन भावों के साथ तू कभी प्रकाश नहीं पा सकेगा। ये भाव शरीर से जोड़ने वाले हैं, इन्हें अपनाकर तू शरीर का दास बन जायेगा अर्थात् 'मैं' से घिर जायेगा, शरीर से अलग होने की तू कल्पना भी नहीं कर पायेगा। अतः तू उस 'मैं' को ही अर्पित कर दे जिसके कारण तू अन्धेरे में है। जब तू 'मैं' को उसके चरणों पर रख देगा तब तेरे जीवन में प्रकाश ही प्रकाश होगा।

१२८१ सर्वव्यापी की ध्वनि भी एक—धर्म भी एक—कर्म भी एक। प्यार कर धर्म, आनन्द मना कर्म।

ऐ प्राणी ! ईश्वर सर्वव्यापी है। वह किसी मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में ही नहीं, वह कण-कण में समाया हुआ है। उसकी ध्वनि सबमें समान रूप से विद्यमान है किन्तु उसे सुन वे ही पाते हैं जो उसके हैं। देख, उसके नाम पर विभिन्न धर्म हैं किन्तु वह विभिन्न रूप वाला नहीं, वह अभिन्न है, उसे पाने का एक ही धर्म है—वह है प्यार। किसी भी धर्म को अपनाकर उसकी ओर बढ़ा जाये किन्तु यदि हृदय में प्यार न हो तो व्यक्ति उसे नहीं पा सकता। ऐसे ही उसका कर्म भी एक है—वह है आनन्द। यदि व्यक्ति कर्म करता रहे किन्तु उसे उनसे आनन्द न मिले तो वह कर्म कर्म कहलाने के योग्य नहीं। अतः तू धर्म पथ पर बढ़ने का अभिलाषी है तो प्यार कर और कर्म पथ पर चलने का अभिलाषी है तो कर्म से आनन्द ले अर्थात् तल्लीन होकर कार्यरत हो—तभी तू सर्वव्यापी की ध्वनि को सुन पायेगा तथा जीवन का आनन्द ले पायेगा।

१२८२ वेद शास्त्र की चर्चा ही महाज्ञानी बना देती है मन चाहे छटपटाता हो, चित्त चिन्ताकुल हो, ज्ञानी तो हैं ही। अढ़ाई अक्षर का भी अनुभव होता तो शांति मिलती।

ऐ प्राणी ! वेद शास्त्रों में ईश्वर मिलन के संकेत मिलते हैं, ईश्वर नहीं। तू

यदि उन्हें पढ़ कर एवं उनकी चर्चा करके स्वयं को महाज्ञानी समझ बैठेगा तो तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। अतः तू उन ग्रन्थों को ही सब कुछ न जान, तू उनमें निहित भावों को ग्रहण कर अन्यथा तेरा मन छटपटाता रहेगा, चित्त चिन्ताकुल बना रहेगा किन्तु तू इससे अनजान बाहर के कार्यों (वेद शास्त्र आदि) में उलझा रहेगा—ऐसे में तू ईश्वर को सन्निकट कभी नहीं देख पायेगा। देख, वेद शास्त्र आदि सभी धर्म ग्रन्थ बतलाते हैं कि तू प्यार कर। जब ईश्वर के लिये तेरे हृदय में प्यार बस जायेगा अर्थात् ईश्वर तेरा अपना बन जायेगा तब तेरे मन की विकलता भी खत्म हो जायेगी तथा चित्त में चिन्ता भी नहीं रहेगी। सच्ची शान्ति तू तभी पायेगा अन्यथा ईश्वर के नाम पर अधिक से अधिक कार्य करते हुए भी तू भीतर से अशान्त ही बना रहेगा।

१२८३ संग प्रिय, प्रसंग प्रिय, अनंग प्रिय, संगीत प्रिय, सत्संग प्रिय तो तब न प्रिय का प्रसंग प्रिय हो।

ऐ प्राणी! जब तक ईश्वर अपना नहीं बन जाता तब तक ईश्वर से जुड़ा रहने के पश्चात् भी व्यक्ति उससे दूर ही बना रहता है अतः 'ईश्वर तेरा अपना है' तू प्रथम इसे जान। जब इस सत्य को तू जान जायेगा तब तुझे प्रिय का सम्पर्क (प्रसंग) भाने लगेगा और तब जहाँ तू उसका आभास पायेगा वह संग तुझे प्रिय होगा, जिस वार्तालाप के द्वारा तुझे उसकी अनुभूति मिलेगी तुझे वह प्रसंग प्रिय होगा, जिस मिलन से तुझे शरीर का भान भी नहीं रहेगा वह मिलन तुझे प्रिय होगा, जो गीत तेरे हृदय को स्पर्श करेंगे वह संगीत तुझे भायेगा और जिस साथ को पाकर तू सत्य से जुड़ेगा वह सत्संग तुझे प्रिय होगा। तब वे भाव जो ईश्वर से विमुख करने वाले हैं तुझे क्षण भर के लिये भी नहीं सुहायेंगे। अतः ईश्वर के नाम पर कदम रखने के पहले तू यह जान ले कि ईश्वर तेरा अपना है कि तू गुमराह न हो पाये, तू हमराही बन जाये।

१२८४ इतना प्यार है कि लुटाता जा, आनन्द पाता जा। यहाँ रोने से ही फुरसत नहीं।

ऐ प्राणी! प्यार तुझे कहीं से लाना नहीं है तू प्यार रूप है, तुझमें इतना प्यार है कि यदि तू उसे लुटायेगा तो भी वह खत्म होने वाला नहीं किन्तु तू अपनी इस निधि को भूल गया है। इसका कारण यह है कि स्थूल को देखते-देखते स्थूल तेरे लिये इतना प्रधान हो गया है कि तू दिन रात इसी के लिये

रोता रहता है—घर-परिवार, धन-जन, संगी-साथी ही तुझे हर समय घेरे रहते हैं। देख, अपने खोये धन (प्यार) को पुनः पाने के लिये तू उन प्रेमियों के समीप बैठ जो प्यार में ही जीते हैं। उनके समीप बैठकर तू अपनी खोयी निधि को पा जायेगा अर्थात् तेरा सोया प्यार जाग जायेगा। तब तुझे प्यार करने की चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, तेरे दिल में सबके प्रति स्वाभाविक प्यार होगा जिसे तू लुटाता रहेगा और आनन्द पाता रहेगा।

१२८५ दिव्य मूर्त्ति को न देख, दिव्य भाव को देख जहाँ सर्वदा दिव्यता क्रीड़ा करती रहती है।

ऐ प्राणी ! सन्त ईश्वर रूप होते हैं। उनके रोम-रोम में दिव्य भावों का समावेश रहता है, दिव्य भावों के कारण उनके मुख मण्डल पर भी दिव्यता रहती है। देख, तू उनके उस देदीप्यमान चेहरे को ही देखने में न रह जाना, तू उनके भावों का दिग्दर्शन पाना—'वे क्या है' इसे भी तू तभी जान पायेगा। तब उनकी दिव्यता उनके समीप ही नहीं रहेगी, तेरे हृदय पटल पर भी उतर जायेगी अर्थात् तू भी उनके सामीप्य का आनन्द ले पायेगा। देख, दिव्य मूर्त्ति तेरी आँखों के सामने एक दिन नहीं रहेगी किन्तु तू यदि दिव्य भावों का दर्शन पा जायेगा तो वह दिव्य मूर्त्ति तेरे लिये कभी नहीं जा सकेगी, वह छवि तेरे हृदय पटल पर उतर जायेगी तथा सदा तुझे भाव प्रदान करती रहेगी। अतः तू दिव्य मूर्त्ति को ही देखकर स्वयं को खुशनसीब न समझ, तू दिव्य भावों को देख कि वह दिव्यता सदा तेरे साथ क्रीड़ा करती रहे।

१२८६ मैंने तुम्हें प्रेम दिया, तुमने संदेह किया। अवसर दिया, लाभ न उठाया, फिर अपराधी कौन ?

ऐ प्राणी ! तेरा यह मनुष्य जन्म प्रेम का प्रतीक है अर्थात् ईश्वर की विशेष अनुकम्पा से तुझे यह मानव तन मिला है। देख, प्रेम से मिली हुई वस्तु प्रेम से स्वीकारी जाती है किन्तु तू उसके प्रेम को भुला बैठा है और इसे अपना जानकर संदेह के साथ जीता है—सन्देह ने तुझे पग-पग पर घेर रखा है। देख, सन्देह भयानक रोग है। यह जब लग जाता है तब व्यक्ति का सुख चैन छिन जाता है, वह भीतर ही भीतर कुढ़ने लगता है, उसका जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। अतः तू संशय भ्रम को छोड़कर मिली हुई इस प्रेम की भेंट को प्रेम से स्वीकार कर तभी तू इस मिले हुए अवसर (मनुष्य जन्म) का

लाभ उठा पायेगा अन्यथा तेरी ही दुर्भावना के कारण तेरा यह जीवन मिट्टी में मिल जायेगा ।

१२८७ बद्ध हो, नहीं तो वध सम्मुख है ।

ऐ प्राणी ! तेरा यह मनुष्य जीवन ईश्वर द्वारा दिया हुआ कीमती तोहफा है किन्तु इस तोहफे का आनन्द तू तभी पायेगा जब देने वाला सदा तेरे सम्मुख बना रहेगा अर्थात् तू उस दाता से बद्ध होगा जिसने तुझे यह जन्म दिया है । यदि तू उसे भूल बैठेगा तो वह भूल ही तेरे लिये शूल बन जायेगी और तू उससे व्यथित बना रहेगा । देख, ईश्वर को भूल जाने से तू सदा मृत्यु सम कष्ट पाता रहेगा । मौत जीवन में एक बार आयेगी किन्तु तू प्रतिपल मरता रहेगा—जीवन तेरे लिये अभिशाप बन जायेगा । अतः तू उस दाता से बद्ध हो जिसने तुझे जीवन प्रदान किया है कि तू हर समय का आनन्द पाता रहे और जीवन जीने का लाभ उठा पाये ।

१२८८ दूध को जल में न मिला, सड़ जायेगा । नवनीत जल में है सड़ना गलना कैसा ?

ऐ प्राणी ! दूध पौष्टिक पदार्थ है। दूध को यदि जल में मिला दिया जाये तो उसमें पौष्टिकता नहीं रह जायेगी और दूध भी बेकार हो जायेगा । किन्तु मक्खन की यह बात नहीं, जल मक्खन का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता । देख, तू ईश्वर रूप है किन्तु अपने रूप को भूल बैठा है और शरीर को ही 'मैं' समझने लगा है । ऐसे में तू ईश्वर रूप होते हुए भी मिट्टी में मिल जायेगा, अपने रूप का आनन्द नहीं पा सकेगा । अतः तू प्रथम अपने रूप को पहिचान । जब तू अपने रूप को पहिचान जायेगा तब तू इसी संसार में आनन्द पायेगा । इस संसार के बन्धन तब तुझे बाँध नहीं पायेंगे, तू इन्हीं में रहता हुआ मक्खन की तरह इनसे ऊपर उठा रहेगा ।

१२८९ भवन है मूर्त्ति कहाँ ? मूर्त्ति है प्रेम कहाँ ? प्रेम मूर्त्ति बनाता उसी में समा जाता ।

ऐ प्राणी ! मूर्त्ति की प्रतिष्ठा के पश्चात ही मन्दिर मन्दिर होता है, प्रतिष्ठा के पूर्व वह मन्दिर नहीं, भवन ही रहता है । मूर्त्ति की प्रतिष्ठा के पश्चात् भी जब तक हृदय में प्रेम का जागरण नहीं होता तब तक वहाँ भगवान दिखलाई नहीं पड़ता, मूर्त्ति ही दिखलाई पड़ती है अतः प्रथम तू प्रेम पा । देख, प्रेम में

प्रिय की मूर्त्ति स्वतः हृदय पटल पर उतर जाती है एवं भीतर में वसी हृदय को सरस करती रहती है। मन भँवरा भी जब ऐसी प्रेम मूर्त्ति का दरशन पाता है तब अन्यत्र चक्कर काटना भूलकर उन्हीं चरणों का रसपान करने लगता है। प्रेम की मूर्त्ति ऐसी ही होती है, यह हृदय को ही मन्दिर बना डालती है। इसे पाकर प्राणी की जीवन यात्रा सुखदायी हो जाती है। उसके जीवन काल में वह दिन भी आ जाता है जब उसका अपना कुछ भी नहीं रह जाता, प्रियतम प्रभु ही सर्वस्व होता है।

१२९० अग्नि जल को पाकर क्यों शान्त हो जाती है ? माता पुत्र की उपस्थिति से ही तृप्त, शान्त, आश्चर्य क्यों ?

ऐ प्राणी ! कितनी ही तेज अग्नि क्यों न जलती हो, वह जब जल का सम्पर्क पाती है तो शान्त हो जाती है—यह आश्चर्य का विषय नहीं, यह सरल सहज बात है। पुत्र को सम्मुख न पाकर माँ का हृदय भी विकल हो जाता है किन्तु पुत्र को देखने मात्र से ही उसमें बच्चे के प्रति रोष नहीं रह जाता, वह उसे गले लगा लेती है। देख, ईश्वर तेरी मा है। वह हर समय तेरे लिये प्रतीक्षातुर है, तेरे वियोग में उसका हृदय तड़प रहा है। किन्तु तू इस रहस्य से सर्वथा अनजान जहाँ, जिनके समीप बैठा है उन्हें ही अपना सर्वस्व मान उनमें ही चक्कर काट रहा है। अरे पगले ! तू जो कुछ सम्मुख देख रहा है वह सब उसी की माया है सत्य नहीं, सच्ची तेरी मा है अतः तू उसकी ओर देख वह तेरे लिये आँखें बिछाये बैठी है। तुझे समीप पाकर ही वह चैन पायेगी और उसकी गोद पाकर ही तू भी मौज मनायेगा।

१२९१ दौड़ती हुई घड़ी को देखकर कहा—घड़ी भर ठहर विश्राम कर लूँ। विश्राम कैसा ? दौड़ता चला आ लक्ष्य दूर, समय कम।

ऐ प्राणी ! समय दौड़ता चला जा रहा है, वह तेरी प्रतीक्षा करने वाला नहीं। तू यदि ऐसा समझेगा कि अभी तो मैं मौज मस्ती कर लूँ अर्थात अधिक से अधिक विषय भोगों को भोग लूँ, ईश्वर को तो कुछ समय पश्चात याद कर लूँगा तो यह तेरी भूल होगी क्योंकि समय बहुत कम है, यह देखते-देखते ही बीत जायेगा फिर पीछे तू पछतायेगा। अतः तुझे यदि जीवन के लक्ष्य को पाना है तो तू विलम्ब न कर, तू आज से ही ईश्वर मिलन के साज

सजा। देख, ईश्वर को भुलाकर यहाँ मौज मस्ती है ही नहीं, मौज मस्ती ईश्वर की स्मृति के साथ जीने में है। ईश्वर के साथ से कार्य करते हुए भी विश्राम मिलता है अन्यथा विश्राम के नाम पर तन-मन की पीड़ा ही मिलती है।

१२९२ रिमझिम सावन की वर्षा आई। भाद्रपद ने कहा—भद्र पद पर अर्पण कर चिन्ता, अब प्रेम की वर्षा नयनों द्वारा होगी।

ऐ प्राणी! सावन की वर्षा प्रकृति को हरियाली प्रदान करती है किन्तु उसे देखकर भी तेरा मन हरा भरा नहीं हो पाता। देख, सावन के बाद भाद्रपद आता है वह भाद्रपद (भादो मास) संकेत देता है कि तू भी यदि हरियाली पाना चाहता है तो तू तेरी चिन्ता स्वयं न कर, तू चिन्ता को उन भद्र पदों पर रख जो हर समय तेरी देखभाल कर रहा है। तब रिमझिम वर्षा बाहर ही नहीं होगी, प्रेम की वर्षा तेरे नयनों द्वारा भी होगी एवं तेरा हृदय पटल भी हरा भरा हो जायेगा। तब तेरी रक्षा करने वाला तुझसे दूर नहीं रहेगा, सदा तेरे साथ होगा—वह तेरे हृदय पटल पर विराजमान हो जायेगा।

१२९३ संगीत—रीति, प्रीति, नीति को भुला हृदय तन्त्री बजा देता है।

ऐ प्राणी! संगीत साधारण नहीं होता, संगीत की सुमधुर ध्वनि जब कानों में पड़ती है तो वह केवल मनुष्य को ही नहीं, पशु तक को भी आकृष्ट करती है। इसे सुनकर व्यक्ति सुध-बुध भूल जाता है, वह उस ध्वनि में ही खो जाता है। उसे न रीति (मुझे क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये) याद रहती है, न प्रीति का ही अलग से ध्यान रह जाता है और न नीति (लोगों के द्वारा बनाई हुई एक परिधि) ही बाँध पाती है—वह दिल की दुनिया में जीता है। संगीत की सुमधुर ध्वनि सुन उसकी हृदय तन्त्री ही बज उठती है और उसी में खोया हुआ वह आनन्द मनाता रहता है—ऐसा होता है यह संगीत। देख, जब तक संगीत में इतना आकर्षण नहीं रहता तब तक वह संगीत नहीं, केवल गीत है जिसे गले से गाया गया है। यदि वह डूब कर गाया हुआ होता तो कुछ ऐसा होता जो अकथनीय होता। अतः संगीत को तू केवल गले का विषय न बना, तू तेरे दिल के भावों को गीतों में रख कि तेरी हृद तन्त्री बज उठे, तुझे अन्य ध्यान ही न रह जायें।

१२९४ प्रिय का तार संसार। कर विहार, नहीं तो आया संहार। संसार का व्यवहार जिसे समझा व्यय हार। चिल्लायेगा कर वेड़ा पार, नैया मझधार। कर प्यार होगा पार। न है इस पार न है उस पार। कर प्यार प्यार प्यार।

ऐ प्राणी! 'सम्पूर्ण विश्व एक ईश्वर के इशारे पर नाच रहा है' जो इस सत्य को जानते हैं वे यहाँ आनन्दपूर्वक विहार करते हैं किन्तु जो इससे अनजान संसार को ही सब कुछ मान बैठते हैं वे यहाँ रहते हैं तब तक भी रोते रहते हैं और एक दिन रोते-रोते ही विदा हो जाते हैं। ऐसे जन संसार के व्यवहार को ही प्रधानता देते हैं, उनकी आयु ऐसे ही व्यतीत हो जाती है, वे जीवन से थक हार कर बैठ जाते हैं। जब इनसे बचने का उनके पास कोई चारा नहीं रह जाता तब वे ईश्वर की ओर भी दौड़ते हैं और रो रोकर कहते हैं कि मेरी नैया मझधार में डूब रही है, तुम्हीं इसे पार लगा सकते हो। अरे पगले! तू उसे पुकार,नहीं, तू उससे प्यार कर। तब तेरे सम्मुख पार मझधार का भय नहीं रहेगा, वह स्वतः तेरी अंगुली पकड़ कर तुझे वहाँ ले जायेगा अर्थात् उस स्थिति में पहुँचा देगा जहाँ तू मौज में रह सकेगा। अतः तू केवल प्यार कर, प्यार कर कि तू उसे सम्मुख देख पाये।

१२९५ मुक्ति एक के लिये अनेकों से। एक में अनेक देख तो मुक्ति से मुक्त।

ऐ प्राणी! तू स्वयं मुक्त होने के लिये अनेकों से दूर भागता है, तू यही समझता है कि 'इनसे दूर रहकर ही मैं मुक्त हो सकूँगा, मुझे ये ही बाँधे हुए हैं' किन्तु तेरी यह धारणा गलत है क्योंकि किसी ने तुझे नहीं बाँध रखा है, तू ही बन्धन में बँधा हुआ है। इनसे भागकर तू इनसे कभी मुक्त नहीं हो सकेगा किन्तु तू यदि सही दृष्टि पा जायेगा तो तेरी दुनिया ही बदल जायेगी। देख, सम्पूर्ण विश्व का नियामक एक ईश्वर है। जब तू उसकी ओर बढ़ेगा तो देख पायेगा कि उस एक की ही सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। तब वह एक ही तेरा अपना होगा, अनेक तुझे नहीं लुभा पायेंगे। तब इनसे मुक्त होने की भावना ही तुझमें नहीं रह जायेगी, तू जहाँ भी बैठेगा उस एक की ओर देखता हुआ आनन्द मनायेगा।

१२९६ विवश है व्यक्ति यदि मन बस में न हो। प्रत्यक्ष है संसार अप्रत्यक्ष है प्रतिमा प्रीतम की, यदि मन में बसी तो विवशता विवश हुई विस्मृति में।

मन के कारण व्यक्ति लाचार है। मन की मेहरबानी से वह हमेशा इधर-उधर भटकता रहता है, शान्त होकर बैठ नहीं पाता। वह मन को वश में करने की अनेक चेष्टायें भी करता है किन्तु उसमें विफल ही रहता है क्योंकि मन जोर जबर्दस्ती से वश में नहीं किया जा सकता। ऐ प्राणी! मन रस का भूखा है, इसकी दौड़ रस के लिये है। रस की खोज में ही यह एक से दूसरी फिर तीसरी जगह भागता है और चूँकि संसार प्रत्यक्ष है इसीलिये यह इसी में रस खोजता रहता है। इसे यदि रस का उद्गम मिल जाता तो इसका भागना छूट जाता। अतः तू मन को मारने की चेष्टा न कर, तू रस के उद्गम प्रियतम प्रभु की छवि इसे दिखा। जब प्रियतम प्रभु तेरे दिल में बस जायेगा तब मन के कारण तू जो विवश हो गया था, तेरी वह विवशता खत्म हो जायेगी अर्थात मन अन्यत्र चक्कर काटना भूल जायेगा, वह मनमोहन के चरणों का भँवरा बन वहीं रसपान करता रहेगा।

१२९७ व्याकुल है आकुल है। वह कूल यहीं है जहाँ मिट्टी सोना बनाती है। कूल समीप डूबने का भय त्याग कर। त्याग, कर का त्याग कर।

ऐ प्राणी! यह शरीर मिट्टी है और एक दिन अवश्य मिट्टी में मिल जायेगा किन्तु तू मिट्टी नहीं। देख, तुझे यह तन इसलिये मिला है कि तू इसके द्वारा अपने रूप को पहिचान सके। तू यदि इस मिले हुए तन का लाभ उठा सका अर्थात इसके द्वारा लक्ष्य की ओर बढ़ सका तो यह शरीर (मिट्टी) ही तेरे लिए कीमती (सोना) हो जायेगा अन्यथा तू यहाँ सदा आकुल व्याकुल बना रहेगा अतः तू इस अवसर का लाभ उठा। देख, तू शरीर की चिन्ता छोड़ दे एवं कर्त्तापन के अभिमान का भी त्याग कर दे, तब तू देख पायेगा कि कोई एक ऐसी अज्ञात सत्ता है जो सदा सर्वदा तेरे साथ है और प्रतिपल तेरी देखभाल कर रही है—तू मौज में भी उसी दिन रह पायेगा और तेरा आना भी तभी सार्थक होगा।

१२९८ खुला हृदय द्वार हरि द्वार। बन्द द्वार—बार-बार पुकार। खुलेगा, गुप्त धन मिलेगा।

ऐ प्राणी ! तू अनन्त धन का स्वामी है किन्तु तेरे दिल का दरवाजा अभी बन्द है इसीलिये तू उसे देख नहीं पाता। देख, जिस दिन तेरे हृदय का दरवाजा खुल जायेगा उस दिन ईश्वर को खोजने के लिये तुझे अन्यत्र नहीं जाना पड़ेगा, वह तेरे हृदयासन पर विराजमान होगा—तेरा हृदय ही तब हरिद्वार होगा। अतः तेरे दिल का दरवाजा यदि बन्द है तो तू हताश निराश न हो, ईश्वर बड़ा दयालु है तू उसे पुकार, बार-बार पुकार और तब तक पुकारता रह जब तक कि तेरे दिल का दरवाजा खुल न जाये अर्थात् तेरा दिल खाली न हो जाये। जब तेरा दिल खाली होगा तब उसमें विराजमान प्रिय की मूर्त्ति को तू देख पायेगा और तब तू उस धन का स्वामी होगा जो आज तक तेरी आँखों से ओझल था तथा जिसके अभाव में ही तू इधर-उधर भटकता था।

१२९९ द्वार एक जो दरिद्र के लिये भी सदा खुला रहता है। वह हरिद्वार—वहाँ भी भीख माँगता रहा तो धिक्कार है—धन, जन, तन के लिए।

ऐ प्राणी ! एक दरवाजा ही ऐसा है जो हमेशा दरिद्र (सब तरह से दीन हीन) के लिए भी खुला है—वह है हरि का द्वार। देख, वह तेरा अपना है, तेरी सारी देखभाल वही कर रहा है। उसके दरवाजे पर खड़ा होकर भी तू यदि धन की याचना करता रहेगा, जन की चिन्ता करता रहेगा एवं तन की भूख (वासना) मिटाने को कहता रहेगा तो यही कहना होगा कि अभी तूने उसे जाना ही नहीं। देख, तेरी जरूरतें उसे कहने की आवश्यकता नहीं, वह उन्हें जानता है एवं स्वतः पूरी करता है। अतः तू उसके समीप तन-मन-धन को भूल कर जा, तब तू दीन-हीन नहीं रहेगा तू उस धन का धनी होगा जो स्थूल जगत में कहीं नहीं और जिसके लिये तन-मन-धन से समर्थ भी छटपटाते हैं।

१३०० कल जिसे याद करता था आज वह आया छद्म वेश में। काम हुआ किन्तु अहंकार तो बना ही रहा।

ऐ प्राणी। सन्त ईश्वर रूप होते हैं किन्तु उनका वह रूप छुपा रहता है

क्योंकि देखने में वे साधारण जन की तरह ही होते हैं। देख, उनका आगमन केवल उनके लिये होता है जो यथार्थ में ईश्वर को पाना चाहते हैं, ऐसे जन की आकुल व्याकुल पुकार ही उन्हें इस धरा धाम पर लाती है। उन्हें पहचानते भी वे ही हैं, अन्य जन तो उनके समीप रहकर भी उन्हें नहीं पहचान पाते। देख, उन्हें सम्मुख पाकर भी यदि तूने उनसे केवल वाणी ही सुनी, उनके दरशन का ही आनन्द लिया, कुछ अंशों में उनका भाव भी भाया तो ऐसे में तेरे हृदय की विकलता तो अवश्य कम होगी किन्तु तू अहंकारशून्य नहीं हो सकेगा, तू अहंकार शून्य तभी होगा जब उनके चरणों में पूर्णतया समर्पित होगा। अतः तूने यदि छद्मवेशी सन्त के दरशन पाये हैं तो तू उन्हें दूर से न देख, तू उनके चरणों पर समर्पित हो जा कि तू भी उन भावों से सुसज्जित हो जाये जिनसे वे सजे हैं।

१३०१ प्रेम की जलन, जलन नहीं, वह जीवन है जिसका अभाव जीवन को जड़ बना देता है।

ऐ प्राणी! प्रेम में भी जलन होती है किन्तु यह जलन विषयों की जलन की तरह नहीं होती, यह जीवन में प्रकाश भरती है। देख, जब तक प्रेम की अग्नि हृदय में प्रज्वलित नहीं हो जाती तब तक व्यक्ति जीवित रहते हुए भी जड़वत् रहता है। उसमें श्वांस तो रहते हैं किन्तु सरसता का पूर्णतया अभाव रहता है, जड़ वस्तुओं के पीछे भागते-भागते वह जड़ बन जाता है—ऐसे में उसका जीवन पाना ही बेकार होता है। अतः तू यदि जीवन का आनन्द लेना चाहता है तो हृदय में प्यार को प्रश्रय दे कि तेरा हृदय प्रकाशित हो उठे और तू जीवन पाने का आनन्द पाये।

१३०२ शरीर को कष्ट देकर योगी बन सकेगा? शरीर को भोग में लिप्त कर भोगी बन सकेगा? योग, भोग प्राणों का, जहाँ अमरता है।

ऐ प्राणी! योग मिलन का नाम है और भोग आनन्द उपभोग का नाम है। देख, शरीर को कष्ट देना तो केवल योग की क्रिया है। इस क्रिया को सम्पादित करके यदि ईश्वर से मिलन सम्भव हुआ तब तो वह क्रिया सार्थक हो जाती है अन्यथा वह क्रिया क्रिया ही रह जाती है, जिसके लिये क्रिया होती है उससे योग नहीं हो पाता। भोग भी शरीर की क्रिया का नाम नहीं, शरीर

को विषय भोगों में लिप्त करके तो क्षणिक सुख मिलता है। भोग वह है जो प्राणों में आनन्द की अनुभूति दे और ऐसा भाव के मिलन से ही सम्भव है। अतः तू योग और भोग की क्रिया को न अपना, तू ईश्वर मिलन की आकांक्षा लिए हुए आगे कदम बढ़ा कि तू हृदय में प्रिय की अनुभूति पाये, प्रिय तुझसे अलग न रह जाये—तभी तेरा ईश्वर से योग होगा और तू आनन्द उपभोग भी कर सकेगा। ऐसे में यदि शरीर जायेगा भी तो तुझे उसके जाने का गम नहीं रहेगा क्योंकि तूने अमर भाव जो पा लिया है।

१३०३ भोग की जलन शांत न हुई, शरीर शांत हुआ। प्रेम में भी जलन है प्रकाशमय।

ऐ प्राणी ! जिसे तू भोग समझता है उस भोग में जलन ही जलन है। इसे पाने के लिये भी हृदय में जलन रहती है, भोगते समय भी जलन मिलती है और भोगने के पश्चात् भी जलन ही पल्ले पड़ती है। इसकी जलन कभी खत्म नहीं होती, शरीर एक दिन खत्म हो जाता है किन्तु इसकी जलन का अन्त नहीं आता। देख, प्रेम की जलन ऐसी नहीं होती। प्रेम की जलन एक तरफ विकल बनाती है तो दूसरी तरफ राहत भी पहुँचाती है अर्थात् यह जलन ही प्रेमी को प्रेमास्पद प्रभु के समीप पहुँचाती है। प्रेमास्पद प्रभु से मिलन के पश्चात् प्रेमी के हृदय में जलन का नामोनिशान नहीं रह जाता, उसका जीवन आलोक से भर जाता है—जीवन पाने का सही आनन्द वही पाता है।

१३०४ भीख भी सीख है। कैसे ? भीख महान से, सीख महान से।

ऐ प्राणी ! भिक्षा से भी शिक्षा मिलती है किन्तु वह भिक्षा कैसी है एवं वह शिक्षा क्या है—इसे समझना होगा। देख, तू यदि जन-जन के सामने हाथ पसारेगा तो हमेशा भिखारी ही बना रहेगा, तब तेरी जरूरतें भी कभी पूरी नहीं होंगी और तू अभाव से भी घिरा रहेगा। किन्तु तू यदि उस एक के सामने हाथ पसारेगा जो सबका दाता है तो तू अन्न धन ही नहीं पायेगा, तू वह भाव पा जायेगा जिसे पाने से अभाव तेरे समीप नहीं फटकेगा अर्थात् महान से भीख माँगने से तू अभाव से अलग रहने की शिक्षा पा जायेगा। अतः माँगना ही तेरी आदत है तो तू उस एक से माँग कि तू भीख के साथ सीख भी पा जाये अन्यथा तू हमेशा अभाव से घिरा दर-दर का भिखारी बना रहेगा।

१३०५ देने में आनन्द है या लेने में ? प्रथम दे—फिर ले। आनन्द ही आनन्द है।

ऐ प्राणी ! केवल लेने में आनन्द नहीं। तू यदि ऐसा समझेगा कि 'मुझे अधिक से अधिक मिलता ही रहे, मैं अधिक से अधिक पाता ही रहूँ' तो आनन्द तुझसे कोसों दूर होगा, तुझे आनन्द तभी मिलेगा जब देने के भाव तुझमें आयेंगे। पहले देगा फिर लेगा तो तू लेने का आनन्द पायेगा किन्तु देना तुझे सुहायेगा ही नहीं, तू केवल लेता ही जायेगा तो तेरा जीवन कष्ट से भर जायेगा। देख, श्वांस पहले छोड़ना (देना) पड़ता है और तब लिया जाता है, तभी श्वांस की क्रिया ठीक रहती है अन्यथा वह कष्ट पहुँचाती है। अतः प्रथम तू दे फिर ले कि तू देन-लेन के आनन्द को जान पाये।

१३०६ दिल खोजा, दिल पाया। दिल खो बैठा, अब बेचैन। परिणाम ? नाम ले प्रभु का, परिणाम अच्छा ही अच्छा है।

ऐ प्राणी ! जो दिल की दुनिया को सुरक्षित रखना चाहते हैं।उन्हें अवश्य सफलता मिलती है, वे ऐसा सत्य साथ पा जाते हैं जिसे पाने से उनके दिल की दुनिया सज जाती है। किन्तु जो दिन रात स्थूल में ही विचरण करते हैं, दिल की ओर ध्यान ही नहीं देते वे दिल रूपी कीमती धन को खो बैठते हैं और बेचैन बने रहते हैं परिणाम उनकी दुनिया उजड़ जाती है। देख, ईश्वर बड़ा दयालु है, उसके द्वार पर कोई जब भी, जैसे भी जाता है वह उसे अपना लेता है। अतः तू यदि दिल के कारण बेचैन है तो उसी का द्वार खटखटा, वह तेरी आवाज अवश्य सुनेगा। तभी तू तेरे दिल की दुनिया को सुरक्षित रख पायेगा अन्यथा स्थूल आकर्षणों में खोया हुआ तू दिल से सदा दूर ही बना रहेगा।

१३०७ आदर्श रखा महापुरुषों का। आ, दर्शन दे की भावना न जागी। फिर गृहत्यागी, बैरागी की कथा मन बहलाने का साधन ही न बनेगी।

ऐ प्राणी ! तू महापुरुषों का आदर्श सामने रखेगा किन्तु उनके भावों को नहीं अपनायेगा अर्थात् ईश्वर दर्शन की भावना तेरे हृदय को नहीं झकझोरेगी तो तू कोरा का कोरा ही रह जायेगा। देख, ऐसे में अन्य से प्रशंसा पाने के लिये एवं स्वयं को ज्ञानी-ध्यानी समझने के लिये तू गृहत्यागी, बैरागी की कथा ही अपनायेगा और उन्हीं से अपना मन बहलायेगा किन्तु ईश्वर से तू दूर ही

बना रहेगा। अतः तू यदि उन भावों का अभिलाषी है जिन भावों को अपनाकर महापुरुषों का जीवन उज्ज्वल हुआ तो तू आदर्श की बातें न कर। तू 'आ दर्शन दे' की भावना को अपना कि ईश्वर तुझसे दूर न रह पाये, वह तेरा अपना बन जाये एवं तेरे प्रत्येक कार्य उज्ज्वल हो जायें।

१३०८ दिल दे कर पछताया। किसी स्वार्थी से प्यार किया होगा। प्रेम, स्वार्थ परमार्थ से महान क्योंकि वह महान में ही त्राण पाता है, प्राण पाता है।

ऐ प्राणी! प्रेम करके जब पछताना पड़ता है तब वह प्यार नहीं, वह स्वार्थ से अभिभूत होकर प्यार के नाम पर किया हुआ एक खेल है। देख, प्यार में न स्वार्थ रहता है और न परमार्थ, केवल प्यार रहता है। प्यार में शरीर की गन्ध भी नहीं रहती, यह शरीर से परे आत्मभाव से युक्त होता है। जब तक प्रेमी को अपना ध्यान रहता है तब तक वह प्यार की बातें करता है, प्यार उसे अच्छा लगता है किन्तु प्यार उसके हृदय में प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। प्यार अशरीरी भाव है, महान से मिलकर ही इसमें तृप्ति आती है एवं प्राण आते हैं अन्यथा व्यक्ति प्यार के नाम पर भी छटपटाता ही रहता है। अतः तू यदि प्यार का सही रूप देखना चाहता है तो व्यक्ति से प्यार पाने की आशा न रख, तू उस महान से प्यार कर जो प्यार रूप है कि तू भीतर व बाहर प्यार का लहलहाता समुद्र देख पाये—सही मायने में तू उसी दिन प्राण पायेगा।

१३०९ जुगनू को चमकते युग बीते। न चन्द्र की शीतलता ली और न सूर्य का तेज। पागल! तेरी चमक केवल अन्धकार पूर्ण रात्रि के लिए नहीं है। आज सूर्य का दर्शन कर, अहंकार विलीन हो।

ऐ प्राणी! तू प्रकाश पुञ्ज है किन्तु तू अपने रूप को भूलकर दिन व दिन शरीर का दास होता जा रहा है परिणाम शरीर की शक्ति, रूप, गुण आदि ही तेरे सम्मुख रह गये हैं। देख, ईश्वर को भुलाकर तेरा अस्तित्व उस जुगनू की तरह है जो रात्रि के अन्धकार में चमकता सा दिखलायी देता है किन्तु दिन के प्रकाश में जिसका अस्तित्व नहीं के समान है। अरे पगले! शरीर को प्रधान जानने से तू दिन व दिन छोटा होता जायेगा, तेरे जीवन में अन्धकार ही

अन्धकार भरता जायेगा—न तू चन्द्रमा की सी शीतलता पा सकेगा और न सूर्य का सा तेज पा सकेगा। अतः तू अहंकार का परित्याग करके उस प्रकाशमान सूर्य (ईश्वर) के दरशन कर जिसकी रोशनी से सूर्य चन्द्र प्रकाशित हैं। जब तू उसका होगा तब तेरा रूप अनूठा होगा, तब तेरे सामने सूर्य चन्द्र का प्रकाश भी फीका होगा। अन्यथा तू प्रकाशस्वरूप होते हुए भी अन्धकार में भटकता रहेगा, तेरा जीवन अन्धकार पूर्ण होगा।

१३१० साथी दे। साथ ही ले, प्रिय का नाम। जीवन यात्रा सुखद हो।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरा सच्चा साथी है और वह सदा तेरे साथ है। देख, उसे भुलाकर तू यदि साथी की खोज करेगा तो भ्रम ही तेरे पल्ले पड़ेगा, तू साथी नहीं पा सकेगा क्योंकि ईश्वर के सिवा कोई तेरा साथी है ही नहीं। अतः तू भ्रम का परित्याग करके अपने उस सच्चे साथी की खोज कर जो सदा तेरे साथ है। जब तू उसे याद करेगा तब वह तुझसे छुपा नहीं रह सकेगा, वह तेरे सामने होगा और तू स्वयं को उसकी छत्रछाया के तले पायेगा—तेरी जीवन यात्रा तभी सुखदायी बनेगी। अन्यथा साथी के अभाव में तू स्वयं को हमेशा अकेला पायेगा, कहलाने को तेरे बहुत होंगे किन्तु यथार्थ में तेरा अपना कोई नहीं होगा, तू नितान्त अकेला होगा।

१३११ मानव है तो भा नम, नहीं तो भा के नव-नव उपहार न पा सकेगा। हार पर हार होगी, जिन्दगी बेकार होगी।

ऐ प्राणी! तू साधारण नहीं, तू ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव है किन्तु तू अपने रूप के अनुरूप तभी होगा जब झुक कर चलेगा। देख, झुकना साधारण नहीं होता, जो प्रभु के चरणों में झुक कर चलते हैं अर्थात् प्रत्येक कार्य का कर्त्ता उसे ही जानते हैं वे ही यथार्थ में जीवन का आनन्द ले पाते हैं। उन्हें जो कुछ मिलता है (चाहे वह स्थूल हो चाहे सूक्ष्म) वह उनके लिये ईश्वर का दिया उपहार होता है, वे ईश्वर की दुनिया में बैठे मौज मनाते हैं। किन्तु जो झुकना जानते ही नहीं, प्रत्येक कार्य का कर्त्ता स्वयं को ही देखते हैं वे हमेशा चिन्तित व परेशान बने रहते हैं। ऐसे जन सब कुछ पाकर भी अभाव से घिरे रहने के कारण रोते रहते हैं—उनकी जिन्दगी यूँ ही खतम हो जाती है।

१३१२ पद-पद पर नमन, यह कैसा आगमन ? आवागमन से मुक्त होना है तो प्रथम नमन पश्चात् सानन्द गमन ।

ऐ प्राणी ! यहाँ तेरा आगमन जन-जन का मोहताज बनने के लिये नहीं हुआ है । देख, तू यदि सबकी खुशामद करता रहेगा तो तेरा जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा—ऐसे में तू यहाँ बार-बार आता जाता रहेगा, तेरा आवागमन कभी खत्म नहीं होगा । अतः तू यदि आवागमन से मुक्त होना चाहता है एवं यहाँ सानन्द विचरण करना चाहता है तो तू सबके सामने मत झुक, उस एक के सामने झुक जो सबका दाता है एवं सम्पूर्ण विश्व जिसके इशारे पर नाच रहा है । जब तू उसके चरणों पर झुक जायेगा तब तुझे जन-जन का आश्रय नहीं लेना होगा, तू जब तक रहेगा सानन्द विचरण करता रहेगा और एक दिन शान के साथ लौट जायेगा । तब तुझे लौट कर नहीं आना होगा क्योंकि यहाँ लौटकर वे ही आते हैं जो उस एक को नहीं जानते एवं जन-जन का मुँह देखा करते हैं ।

१३१३ दिल मिला था दिल्लगी के लिये या दिल लगी के लिए, जहाँ संयोग ही है वियोग नहीं ।

ऐ प्राणी ! तुझे जो दिल रूपी कीमती धन मिला हुआ है यह साधारण नहीं, अमूल्य निधि है जो तुझे मुफ्त में मिली है । देख, दिल बड़ा कोमल होता है, इससे कोई खिलवाड़ करे—इसे यह बर्दाश्त नहीं करता, यह हमेशा प्रेम पसन्द करता है । अतः तू इस कोमल हृदय को कभी दुखा नहीं अर्थात् स्थूल प्रलोभनों में फँसकर दिल की उपेक्षा न कर अन्यथा तू कभी चैन नहीं पा सकेगा । किन्तु तू यदि दिल की कद्र करना सीख जायेगा तो कभी गुमराह नहीं होगा, तू हमराही बनेगा । तब जिस सत्ता पर यह विश्व ब्रह्माण्ड टिका है उस सत्ता (ईश्वर) से तेरा दिल लग जायेगा । उससे दिल लग जाने के बाद फिर तेरा उससे वियोग नहीं होगा क्योंकि मिलने के बाद वह कभी बिछुड़ता नहीं, दिल में समा जाता है ।

१३१४ माँगा था आनन्द और मिली चिन्ता यह किसका कुसूर ? सूर बना वस्तुओं के लिए, यह तेरा कुसूर । सुर मिलाता सुरों में, न रहता कुसूर, न होता सूर ।

ऐ प्राणी ! तू जब तक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये अन्धा बना रहेगा अर्थात्

स्थूल तेरे लिये प्रधान रहेगा तब तक तू चिन्ता से घिरा रहेगा, तब तू यदि आनन्द में रहना भी चाहेगा तो नहीं रह सकेगा। अतः तू यदि चिन्ता से घिरा हुआ है तो अपने भाग्य को दोषी न ठहरा, तू अपने भावों की ओर देख, तब तू समझ जायेगा कि चिन्ता से तू कैसे घिर गया है। देख, तेरा जितना ध्यान वस्तुओं में लगा है उसका एक हिस्सा भी यदि उस मधुर ध्वनि में लगता जो तेरे अन्तर में अहर्निश हो रही है तो तू आनन्दमय जीवन बिताता। तब वस्तुएँ तेरे लिये प्रधान नहीं रहतीं और न तू उन्हें पाने के लिये परेशान होता, तू उसकी ओर देखता जो देखने सुनने से परे है।

१३१५ बलि दे उस अहंकार की जो बकरे से अधिक बलबलाता है, भैंसे से अधिक बलवान है। यह बलि, बलि का उपहास मात्र।

ऐ प्राणी ! तू यदि ईश्वर को खुश करना चाहता है या स्वयं खुश रहना चाहता है तो पशु की बलि चढ़ा कर खुश न हो, तू उस पशु की बलि दे जो तुझे कभी चैन से बैठने नहीं देता, सदा सिर उठाकर चलता है एवं अपने समान किसी को नहीं समझता। देख, वह पशु अहंकार है, उसे अपनाकर तेरी अवस्था पशु से भी बदतर हो रही है। तू बेअर्थ बकरे से भी अधिक बकबक करता रहता है और स्थूल शक्तियों को बटोर कर स्वयं को भैंसे से भी अधिक बलवान समझता है—ऐसे में ईश्वर के नाम पर तू कितनी ही पशु बलि चढ़ा देगा तो भी कभी प्रसन्न नहीं रह सकेगा। अतः तू सही रास्ता अपना अर्थात् अहंकार की ही बलि दे डाल कि तू बलि की महिमा जान पाये, तेरा जीवन शान्ति सन्तोष से भर जाये।

१३१६ हिंसा और अहिंसा, तामसिक और सात्त्विक बच्चों के लिए। मार कर खुश तम को हो तो उत्तम। मा मा है, वह हिंसा और अहिंसा से परे है।

ऐ प्राणी ! तू ईश्वर रूपी मां को न हिंसा करके (जीव की बलि चढ़ा करके) खुश कर सकेगा और न अहिंसा अपनाकर रिझा सकेगा—मां को खुश करने के लिए तुझे जीवन के अंधेरे को विदा करना होगा। देख, ईश्वर को भुलाकर तू स्वयं ही कर्त्ता बन बैठा है और यही कारण है कि तेरे जीवन में अंधेरा छा गया है। अब अंधेरे से घबड़ा कर कभी तू हिंसा में धर्म खोजता है

और कभी अहिंसा में किन्तु अहंकार शून्य नहीं हो पाता। ईश्वर की दुनिया का आनन्द पाने का सही मार्ग ईश्वर की शरण ग्रहण करना है। जैसे जैसे तू स्वयं को ईश्वर की शरण में पायेगा वैसे वैसे बिना प्रयास के तेरे जीवन का अन्धकार खत्म होता जायेगा और तब तू कर्त्तापन के मैं से भी मुक्त हो जायेगा। तेरी मां उसी दिन खुश होगी और तू भी उसी दिन प्रसन्न रह सकेगा। अन्यथा तू गुणों (तामसिक, राजसिक, सात्त्विक) में ही खेलता रहेगा, गुणातीत को नहीं पा सकेगा।

१३१७ स्मरण कर तू मा की सन्तान है। यही महामन्त्र। मा को भूल किसकी गोद में सुख पा सकेगा?

ऐ प्राणी! ईश्वर रूपी मां को भुलाकर तू ईश्वर के नाम पर कितनी भी पूजा-अर्चना कर लेगा तो भी शान्ति नहीं पा सकेगा। देख, तू मां की सन्तान है अर्थात् ईश्वर ही तेरा अपना है—जिस दिन तू इस सत्य से अवगत होगा उस दिन ईश्वर को पाने के लिये तुझे चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, ईश्वर तेरे सम्मुख होगा और तभी तू सच्ची शान्ति पा सकेगा। जब तक तू ईश्वर को भुलाकर अन्य का सुख देखता रहेगा तब तक तू सुख-सुविधा के साधन तो जुटा लेगा किन्तु प्रेम का तेरे जीवन में अभाव होगा—ऐसे में तू कभी सुख से नहीं रह सकेगा। अतः जहाँ बैठकर तेरी यह स्मृति जीवित हो जाये कि 'तू मां की सन्तान है' तू वह संग साथ ग्रहण कर क्योंकि ईश्वर मिलन इसी एक महामन्त्र से सम्भव है।

१३१८ बूँदें भूमि पर पड़ीं मिट्टी। प्रियतम के चरणों पर पड़तीं तो अमर।

ऐ प्राणी! अभाव का रोना जीवन को मिट्टी में मिला देता है किन्तु भाव का रोना प्रियतम प्रभु को सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है। जिसे यह (भाव का) रोना नसीब हो जाता है उसका जीवन आनन्द से भर जाता है। एक दिन उसका दिखलायी देने वाला शरीर चला जाता है किन्तु वह अमर हो जाता है क्योंकि उसने कभी अभाव को प्रश्रय नहीं दिया, उसका हृदय हमेशा प्रिय की प्राप्ति के लिये ही छटपटाता रहा। अतः तू यदि जीवन का सच्चा आनन्द पाना चाहता है तो जड़ वस्तुओं के पीछे न भाग, तू उस प्रियतम प्रभु की खोज कर जो सदा सर्वदा तेरे साथ है। तेरी चाह ही तुझे उससे मिलायेगी अन्यथा पास रहते हुए भी वह सदा तुझसे दूर बना रहेगा और तू अभाव में सना रोता रहेगा।

१३१९ जब घट ही में है फिर विवाद क्यों ? पर लटपट रट लगाने वाला झटपट कैसे समझे ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर सदा तेरे साथ है फिर भी तू उसे नहीं देख पाता, उसके नाम पर विवाद करता रहता है। इसका कारण यह है कि तू उसके साथ को भूल बैठा है और अधिक से अधिक कर्म (पूजा-पाठ, ध्यान-धारणा आदि) को ही उसकी स्मृति समझता है। देख, कर्म के द्वारा तू उसे कभी नहीं पा सकेगा, तू जब भी उसे पायेगा भाव से पायेगा। अतः तू यदि सचमुच ईश्वर को देखने का अभिलाषी है तो तू विवाद का परित्याग कर एवं सच्चे हृदय से उसकी ओर उन्मुख हो। तब घट में बसी मनोहर मूर्त्ति तुझसे छुपी नहीं रह सकेगी, वह तेरे सम्मुख प्रत्यक्ष हो उठेगी—तू प्रत्येक श्वास पर उसी का जलवा देख पायेगा।

१३२० हठयोग ही क्यों ? हट हाट से ठाट बाट से, फिर बाट है प्रेम राज पाट है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को तू हठ पूर्वक पाने की चेष्टा न कर, हठधर्मी से तू ईश्वर का नाम ले सकता है, उसके नाम पर अनेक कार्य कर सकता है किन्तु ईश्वर को नहीं पा सकता। ईश्वर प्रेम से पाया जा सकता है। प्रेमी के लिये केवल प्रेम ही प्रधान होता है, अन्य आकर्षण प्रधान नहीं रहते। न वह अधिक फैलाव फैलाता है और न झूठी शान-शौकत अपनाता है, वह प्रिय के चरणों की ओर देखता हुआ आगे बढ़ता जाता है—उसका सबसे बड़ा धन प्रिय की अनुभूति पाना रहता है। देख, जिनके जीवन का परम लक्ष्य ईश्वर रहता है ईश्वर को वे ही पा सकते हैं, अन्य जन चेष्टा में ही लगे रहते हैं वे ईश्वर को सम्मुख नहीं देख पाते।

१३२१ अनन्त का अन्त कैसा ? प्राणी के प्राणों का रूपान्तर है, अंत नहीं। शांत सन्त, भ्रान्त भवन। क्लान्त मन क्यों ? कांत के दर्शनाभाव में।

ऐ प्राणी ! जिस सत्य सत्ता पर सम्पूर्ण विश्व संचालित है वह सत्ता अनन्त है। दिखलायी पड़ने वाली प्रत्येक चीजें एक दिन मिट जाती हैं किन्तु वह कभी मिटती नहीं, सदा ज्यों की त्यों बनी रहती है। देख, प्राणी के प्राणों में भी वही सत्ता समायी है, प्राणी उसी के सहारे बार बार प्राणों को धारण

करता है अर्थात् उस सत्ता का कभी अन्त नहीं आता, प्राणी के प्राणों का रूपान्तर होता रहता है। जो इस सत्य को जानते हैं वे (सन्त) शान्त हो इस खेल का आनन्द लेते हैं, अन्य जन भ्रान्ति से घिर जाने के कारण जन्म-मृत्यु के चक्र से भयभीत ही बने रहते हैं क्योंकि अभी उन्होंने उस प्रियतम प्रभु को जाना नहीं जो सदा साथ है। यदि वे उसका परिचय पा जाते तो आना और जाना (जन्म और मृत्यु) दोनों को ही प्रभु का खेल जानते हुए शान्त रहते।

१३२२ करतार—जीवन तार जिसके कर (हाथ) में है वही करतार? फिर चिन्ता क्यों? चिन्ता को चिता का रास्ता दिखा।

ऐ प्राणी! तेरे जीवन की डोरी ईश्वर के हाथ में है, वही तेरा संचालक है एवं तेरी हर गतिविधि का मालिक है। देख, तू उसे भूल गया है इसीलिये तुझे अपनी चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है। जिस दिन तू उसे देख पायेगा उस दिन तेरे सामने चिन्ता के लिए कुछ भी नहीं रह जायेगा, तू देखेगा कि तेरी सारी व्यवस्था वह कर रहा है, तू तो केवल निमित्त मात्र है। उस दिन चिन्ता स्वतः तेरी राह से हट जायेगी और तू उस प्रभु के चिन्तन में लवलीन होगा जिसके हाथ में तेरे जीवन की डोर है। अतः तू चिन्ता को चिता पर चढ़ाकर चिन्तन कर उसका जो तेरा संचालक है अन्यथा तू स्वयं को कर्त्ता जानता हुआ चिन्ता से ही परेशान बना रहेगा।

१३२३ ज्ञान अग्नि है मिथ्या विश्वास के लिए। ज्ञान प्रकाश है सत्य प्रकाश के लिए किन्तु भक्ति वह योग है जो प्राणदाता में ही समाहित है।

ऐ प्राणी! जो सत्य है नहीं फिर भी सत्य सा दिखलायी पड़ता है, ज्ञान अग्नि इस भ्रम को खत्म करती है तथा व्यक्ति को सत्य प्रकाश पाने के लिये प्रेरित करती है। जब तक ज्ञान का आलोक नहीं फैलता तब तक व्यक्ति जहाँ खड़ा है वहीं खड़ा रहता है, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाता। देख, इतना होने पर भी भक्ति के बिना ज्ञान अधूरा ही रहता है। ज्ञान प्रकाश तो फैलाता है किन्तु प्रिय से मिला नहीं पाता, जबकि भक्ति वह योग है जो प्राणदाता में समाहित होकर ही चैन पाती है। अतः तू ज्ञान व भक्ति में किसी को भी

छोटा बड़ा न समझ क्योंकि ये दोनों ही दो आँखों की तरह हैं, तू इन दोनों को हृदय में प्रश्रय देकर आगे बढ़ता चल, तब तू लक्ष्य तक सहज में ही पहुँच जायेगा।

१३२४ ज्ञान सीमित, भक्ति असीम। ज्ञान विकास है भक्ति वास है प्राण पति का।

ऐ प्राणी ! भक्ति के बिना केवल ज्ञान के द्वारा बुद्धि का अधिक से अधिक विकास हो सकता है, प्रत्येक चीज को गहराई से देखा सुना जा सकता है किन्तु प्रिय की अनुभूति नहीं पायी जा सकती क्योंकि ज्ञान सीमित होता है। देख, प्रिय की अनुभूति पाने के लिये भक्ति को हृदय में प्रश्रय देना होगा। भक्ति असीम होती है। जहाँ भक्ति का निवास रहता है वहीं प्राणपति का वास दिखलायी पड़ता है अतः तू यदि असीम भावों का अभिलाषी है तो केवल ज्ञान को पाकर सन्तुष्ट न हो, तू भक्ति को भी हृदय में प्रश्रय दे कि प्रिय प्रभु तुझसे दूर न रह जाये तू उसे प्राणों में प्रतिष्ठित देख पाये।

१३२५ ज्ञान आकृष्ट करता है विस्तृत विचारों को। भक्ति इष्ट में अस्तित्व हीन हो विलीन हो जाती है।

ऐ प्राणी ! ज्ञान में विचार भाव विस्तृत होकर सामने आने लगते हैं, प्रत्येक चीज स्पष्ट होकर दिखलायी देने लगती है किन्तु भक्ति के खेल दूसरे हैं। भक्ति में इष्ट प्रधान रहता है, इसमें अलग से अस्तित्व का भान भी नहीं रह जाता। भक्त पूर्णतया प्रभु चरणों में मिट जाने का इच्छुक रहता है। ज्ञान अधिक से अधिक विकसित करता है बुद्धि को और भक्ति अधिक से अधिक समेटती है, वह मन बुद्धि का अलग से भान भी नहीं रहने देती। अतः तू शान्त रहकर दोनों का खेल देख, तब तू देख पायेगा कि जहाँ ज्ञान है वहाँ स्वतः एक दिन भक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है और जहाँ भक्ति है वहाँ ज्ञान का आलोक स्वतः फैल जाता है क्योंकि दोनों भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं।

१३२६ ज्ञान जानकारी करवाता. भक्ति जान, प्राण न्योछावर करती है अपने इष्ट पर।

ऐ प्राणी ! ज्ञान सत्य जानकारी देता है। जब तक ज्ञान का आलोक नहीं फैलता तब तक व्यक्ति अंधेरे में ही भटकता रहता है, उसे सही दृष्टि नहीं

मिलती। ज्ञान-प्रकाश उदय होने के पश्चात् ही वह देख पाता है कि जीवन पाने का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है। भक्ति इस उद्देश्य पूर्त्ति की सहायिका बनती है। वह समर्पण के भावों से सजी रहती है, प्रिय की प्राप्ति के लिये (भक्ति) जान प्राण न्योछावर करने को तत्पर रहती है—इष्ट की प्राप्ति ही उसका उद्देश्य रहता है। अतः तू ज्ञान और भक्ति में भिन्नता न देख, तू दोनों को समान स्थान दे कि प्रथम तू सही जानकरी पा सके तत्पश्चात् ईश्वर को सम्मुख देख पाये।

१३२७ ज्ञान ध्यान का समर्थक। भक्ति ध्यान से ही प्रवाहित।

ऐ प्राणी ! ज्ञान ध्यान लगाने को अच्छा समझता है एवं ध्यान लगाने के लिये कहता है किन्तु भक्ति की तो बात ही न्यारी है। भक्ति में ध्यान लगाना नहीं पड़ता, ध्यान लगने से ही भक्ति प्रारम्भ होती है—वहाँ ध्यान हटाने से भी हटता नहीं। देख, जहाँ ध्यान लगाया जाता है वहाँ ईश्वर की बातें होती हैं, ईश्वर-मिलन भक्ति से ही सम्भव है। अतः तू केवल ज्ञान का उपासक न बन, तू भक्ति धारण कर कि तेरा ज्ञान सार्थक हो जाये। अन्यथा तू अभिमान से घिरता जायेगा परिणाम ईश्वर पथ पर चल कर भी ईश्वर से दूर ही रह जायेगा।

१३२८ ज्ञान में शान अभिमान का स्थान। भक्ति में न ज्ञान, न शान, न अभिमान।

ऐ प्राणी ! ज्ञान अर्जित करने में चूँकि बुद्धि की प्रधानता रहती है इसीलिये इसमें व्यक्ति कर्त्तापन के भान को नहीं भूलता और जहाँ कर्त्तापन का ध्यान है वहाँ शान के लिए भी स्थान रहता है और अभिमान के लिए भी। किन्तु भक्ति की बात दूसरी है। भक्ति में भक्त पूर्णतया भगवान पर आश्रित होता है अर्थात् वह जो कुछ पाता है प्रभु कृपा से पाता है, बुद्धि बल के द्वारा नहीं। उसे अलग से ज्ञान (जानकारी) का बोध नहीं रहता और चूँकि ज्ञान का ध्यान नहीं रहता अतः उसके समीप न शान को स्थान मिलता है और न अभिमान को—वह सदा इष्ट की ओर देखता हुआ आनन्द मग्न रहता है।

१३२९ भक्ति—शक्ति है दीन की हीन की। ज्ञान के अधिकारी तो प्रवीण होते हैं विद्या में बुद्धि में।

ऐ प्राणी ! भक्ति को सभी अपना सकते हैं। जो बाहरी दृष्टि से किसी

भी चीज में समर्थ नहीं अर्थात् जिनमें किसी भी प्रकार का गुण नहीं दिखलायी देता—भक्ति ऐसे दीन हीन की भी शक्ति है। भक्ति को अपनाकर दीन हीन प्राणी भी सर्व समर्थ हो जाता है, वह उस धन का अधिकारी हो जाता है जिस धन को सर्वगुणी व धनी-मानी भी नहीं पा सकते। किन्तु ज्ञान के अधिकारी सब नहीं होते। जिनमें विद्या बुद्धि की अधिकता रहती है एवं सोचने समझने की सामर्थ्य भी अधिक होती है—ज्ञानी वे ही हो सकते हैं। यही कारण है कि भक्त स्वभाव से ही नम्र होता है जबकि ज्ञानी के समीप 'मैं' के लिये भी स्थान रहता है।

१३३० भक्ति दासता नहीं, समर्पण है हृदय का। ज्ञान मस्तिष्क की महानता है वहाँ हृदय नहीं, मस्तिष्क ही प्रधान।

ऐ प्राणी! भक्त पूर्णतया प्रभु चरणों पर आश्रित होता है। देख, उसका यह झुकना दासता का प्रतीक नहीं। चूँकि झुकने से उसे आनन्द की अनुभूति होती है अतः उस आनन्द अनुभूति को हर पल पाने के लिए उसका हृदय समर्पण के भावों से सज जाता है अर्थात् वह झुक जाता है। किन्तु, ज्ञान में यह बात नहीं। ज्ञान में हृदय प्रधान नहीं रहता, मस्तिष्क पक्ष प्रबल होता है। यदि सभी बातें मस्तिष्क के अनुकूल हुईं तो ज्ञानी झुक जाता है अन्यथा वह अपने ही तरीके से ज्ञान एकत्रित करता है अर्थात् अधिक से अधिक स्थूल, सूक्ष्म जानकारी हासिल करता रहता है किन्तु जल्दी से झुकता नहीं। भक्ति सहज है जबकि ज्ञान कठिन है किन्तु यह कठिन भी सहज हो जाता है जब सहज (भक्ति) का साथ पाता है।

१३३१ रंगीन दुनिया शिकायत का स्थान नहीं, हरी भूमि, नीला आकाश। लाल-लाल आँखों के लिए नहीं। श्वेत श्याम रतनार आँखों के लिये है जहाँ प्रेम बरस रहा है।

ऐ प्राणी! यह रंग रंगीली दुनिया आनन्द के लिये है। देख, यहाँ चारों ओर रंग ही रंग बिखरा हुआ है, ऊपर नीला आकाश है और नीचे हरी भूमि है—ये सब के सब हृदय को रंगीन बनाने के लिये हैं। यदि तू इनसे आनन्द ले सका तो तेरी आँखों की छटा अनुपम होगी, ये प्रेम रस में पगी और भाव रस से सनी होंगी, इनकी छटा दर्शनीय होगी। किन्तु तू यहाँ आकर भी रोता ही रहा तो तेरे लिये यह दुनिया शिकायत का स्थान बन जायेगी, तू यहाँ

कष्ट पर कष्ट झेलता रहेगा परिणाम तेरी आँखें क्रोधाग्नि से जलती रहेंगी। अतः तू यहाँ आया है तो इस रमणीय भूमि का आनन्द ले कि तेरा जीवन रमणीय बन जाये। तब तेरी आँखों में वे भाव रमण करने लगेंगे जो तुझे भी आनन्द प्रदान करते रहेंगे तथा सर्वत्र भी प्रेम का वर्षण करते रहेंगे।

१३३२ प्रतिमा प्रत्यक्ष है दीपक प्रज्वलित। सूक्ष्म प्रेम स्थूल में भी प्रकाश फैलाता है।

ऐ प्राणी! ईश्वर सदा तेरे साथ है, वह तेरे हृदयासन पर विराजमान है किन्तु अभी तेरी आँखों से ओझल है। देख, जिस दिन वह तेरे सामने होगा उस दिन तेरा हृदय प्रकाशमान हो उठेगा, इतना ही नहीं, तेरे चारों ओर भी प्रकाश फैल जायेगा क्योंकि जहाँ ईश्वर है वहीं प्रकाश है और जहाँ उसकी विस्मृति है वहीं अन्धेरा है। अतः तू ईश्वर मिलन के साज सजा अर्थात् प्यार धारण कर। प्रेम ही वह साधन है जिससे ईश्वर को प्रत्यक्ष पाया जा सकता है। अन्य साधनों (पूजा-पाठ, ध्यान धारणा आदि) से सफलता मिल भी सकती है और नहीं भी किन्तु प्रेम में यह बात नहीं। प्रेम प्रत्यक्ष में दिखलाई नहीं देता क्योंकि प्रेम सूक्ष्मातिसूक्ष्म होता है, फिर भी जहाँ प्रेम रहता है वहाँ भीतर व बाहर प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है किन्तु जहाँ प्रेम का अभाव रहता है वहाँ ईश्वर साथ रहने के पश्चात् भी अन्धेरा ही बना रहता है।

१३३३ आवाज में गुंजन है, कम्पन है तो न जाने यह क्या गुल खिलायेगी? यों पुकार निरर्थक तरंग।

ऐ प्राणी! ईश्वर को पुकारने के लिये मुख में शब्द ही नहीं, हृदय में भाव भी चाहिये। जब तक हृदय में भाव नहीं तब तक पुकार उस निरर्थक तरंग की तरह होती है जो उठती है और विलीन हो जाती है, जिसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। देख, पुकार सार्थक तभी होती है जब हृदय से होती है एवं पुकार के साथ बेचैनी रहती है। तब पुकार बेकार नहीं जाती, इसके खेल अद्भुत होते हैं—वह प्रभु जो अप्रत्यक्ष है इस पुकार के द्वारा प्रत्यक्ष हो उठता है। जिसके हृदय में ऐसी पुकार उठती है वह ईश्वर का जलवा रोम-रोम में व सर्वत्र देख पाता है, उसकी दुनिया रोशन हो जाती है अर्थात् उसके चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश फैल जाता है।

१३३४ प्यार का अधिकार सब को—निर्जीव को सजीव को। प्यार में कौन छोटा, कौन बड़ा ? प्यार में बढ़ा वही बड़ा।

ऐ प्राणी ! प्यार सबकी निधि है, यह सृष्टि का शृंगार है। यहाँ निर्जीव सजीव सभी प्यार से पल्लवित हैं, यदि प्यार न हो तो इनका सृजन व पालन पोषण कुछ भी सम्भव नहीं। देख, ऐसे प्यार को तू कभी न भुलाना, उसे तू सदा हृदय में स्थान देना क्योंकि प्यार को प्रश्रय देने से ही तू हरा भरा रह सकेगा। तू यदि प्यार को भूल बैठेगा तो तेरा जीवन नरक बन जायेगा, तू भीतर ही भीतर रोता रहेगा और कुछ भी करके उसकी पूर्त्ति नहीं कर सकेगा। देख, प्यार का अधिकार सबको है क्योंकि प्यार किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं। प्यार में कोई छोटा बड़ा नहीं होता, जो प्यार के लिये आगे बढ़ता है यथार्थ में वही बड़ा होता है। अतः तू निर्भय होकर प्यार को हृदय में बसा कि ईश्वर तेरे हृदय में प्रतिष्ठित हो जाये और सभी तेरे अपने बन जायें।

१३३५ प्राण और रस का आदान प्रदान अद्भुत है। प्राण है रस नहीं तो निष्प्राणवत् प्राणी। रस प्रेम, रस ब्रह्म। फिर भ्रम क्यों ?

ऐ प्राणी ! प्राण और रस परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। प्राण रहें किन्तु रस न रहे तो प्राण पाकर भी प्राणी निष्प्राणवत् रहेगा, उसका जीवन बोझ होगा। ऐसे ही रस रहे किन्तु उसे पाने के लिए प्राणपण से चेष्टा न हो अर्थात् रस प्राप्ति के लिये व्यक्ति प्राण भी हँसते-हँसते न्योछावर करने के लिये तैयार न हो तो रस पाना सम्भव नहीं। अतः तू भ्रम को गले लगा कर स्थूल में चक्कर न काट, तू रस ग्रहण कर। देख, रस पाने के लिये तुझे ईश्वर की शरण ग्रहण करनी होगी, प्रेम को गले लगाना होगा क्योंकि रस कुछ और नहीं, प्रेम और ईश्वर का ही दूसरा नाम रस है। प्रेम और ईश्वर ये नाम दो हैं किन्तु यथार्थ में ये दो नहीं एक हैं अर्थात् प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। अतः तू प्रेम को धारण कर कि तू अपने रूप को पहिचान पाये और तेरे प्राण रस से सराबोर हो जायें।

१३३६ परहित—पर तो परमेश्वर है। हित अहित पर पर नहीं, परमेश्वर के हाथ।

ऐ प्राणी ! कर्त्ता तू नहीं कर्त्ता कोई और है, सबके जीवन की बागडोर

एक उसी के हाथ में है। उसे भुलाकर सबका भला करने वाला यदि तू स्वयं बन बैठेगा तो कर्त्तापन के मैं से घिरता चला जायेगा—ऐसे में तू ईश्वर से दूर होता जायेगा, बाहर से भलाई के कार्य करता रहेगा किन्तु भीतर ही भीतर कष्ट पाता रहेगा। अतः तू परहित के चक्कर में न पड़, तू पर से प्रेम कर क्योंकि सबमें वही एक परमेश्वर बसा है। प्रेम को अपनाने से तेरा दिल हरा भरा हो जायेगा और तब तू देख पायेगा कि ईश्वर सदा-सर्वदा स्वतः सबकी देखभाल कर रहा है। ईश्वर की दुनिया में दुःख कहीं है ही नहीं, उसे भुलाकर जब व्यक्ति अपनी दुनिया अलग बसाता है तभी दुःख प्रारम्भ होता है अन्यथा यहाँ तो केवल आनन्द ही आनन्द है।

१३३७ वह कौन था जिसने धरा को नरक समझा? नर ने चरण धरा नरक स्वर्ग बना। पाप पुण्य की कथा समाप्त है।

ऐ प्राणी! यह संसार नरक उनके लिये है जिन्होंने नर तन की महिमा नहीं जानी। ऐसे जन यहाँ आते हैं और स्वयं को भुलाकर इसी में खो जाते हैं और जीवन पर्यन्त कष्ट पाते रहते हैं। किन्तु जो यहाँ आने का उद्देश्य जानते हैं वे स्थूल जगत में विचरण करके ही खुश नहीं होते, वे यहाँ उसे खोजते हैं जो इस सृष्टि का संचालक है और उसी के चरणों में बैठकर जीवन यापन करते हैं। ऐसे जन इसी संसार में स्वार्गिक आनन्द पाते हैं—उन्हें संसार से कोई शिकायत नहीं रहती (न उन्हें पाप पकड़ता है और न पुण्य कमाने की इच्छा रहती है) वे जहाँ भी बैठते हैं वहीं प्रभु की गोद होती है जिसमें बैठे वे आनन्द मनाते हैं।

१३३८ आप्त क्यों हो रहा है जब सर्व व्याप्त का अभिशाप नहीं बल्कि वरद हस्त सर्वत्र कार्य कर रहा है। चिन्ता कैसी जब चिन्तन मणि तेरे हृदय में है।

ऐ प्राणी! तू दुःखी न हो क्योंकि ईश्वर ने कष्ट भोगने के लिये तुझे मनुष्य बना कर नहीं छोड़ा है। ईश्वर सर्वव्यापी है और सदा तेरे साथ है, उसका वरदहस्त सदा तेरे सिर पर है। चूँकि तू उसे भूल बैठा है इसीलिए यहाँ कष्ट पा रहा है और चिन्ता से भी घिर गया है। देख, ईश्वर के साथ से यहाँ आनन्द ही आनन्द है। अतः तू कष्ट को छोड़कर सर्वव्यापी प्रभु की खोज कर। चिन्ता की जगह जब चिन्तन तेरे हृदय में होगा तब तू जहाँ भी

बैठेगा वहीं उसकी छत्रछाया फैली देख पायेगा। उस दिन कष्ट तेरे समीप नहीं रहेंगे, सर्वव्यापी प्रभु तेरे सामने होगा और तू देख पायेगा कि कष्ट की सृष्टि तेरे दुर्बल विचारों ने की थी यथार्थ में यहाँ कष्ट है ही नहीं, यहाँ तो आनन्द ही आनन्द है।

१३३९. दुःख दर्द की दवा दया है। दया चाह, दया कर, दुःख दर्द अब कहाँ ?

ऐ प्राणी! तू स्वयं को हर समय दुःख दर्द से घिरा देखता है। इससे उबरने के लिए तू कई रास्ते भी अपनाता है—कभी आमोद-प्रमोद के साधन एकत्रित करता है, कभी पूजा पाठ का उपक्रम करता है और कभी तीर्थ-व्रत आदि सम्पादित करता है फिर भी इनसे निष्कृति नहीं पाता। देख, दुःख दर्द कार्यों से मिटने वाले नहीं, हृदय परिवर्तन से मिटने वाले हैं। जब तू जन-जन के सामने नहीं गिड़गिड़ायेगा, ईश्वर की दया का भिखारी होगा तथा सबके प्रति भी तेरे हृदय में दया के भाव होंगे तब तेरे भाव बदल जायेंगे, तेरे समीप दुःख दर्द नहीं रह जायेंगे—वे ऐसे विदा हो जायेंगे जैसे प्रकाश के आगमन से अंधेरा। अतः दुःख दर्द को मिटाने के लिए तू इधर उधर चक्कर न काट, तू एक की शरण ग्रहण कर कि तेरी दुनिया बदल जाये।

१३४० द्वेष देश में फैला है, स्वदेश में नहीं। स्वदेश जन्म नहीं, भूमि नहीं, स्व है जहाँ आत्मा, परमात्मा का मिलन है।

ऐ प्राणी! बाहर विभिन्न भाव हैं किन्तु भीतर कुछ नहीं है, भीतर वे ही भाव प्रवेश करते हैं जिन्हें स्थान दिया जाता है। देख, द्वेष देश में फैला हुआ है, तुझमें (स्व देश में) नहीं है। जब तू अपने उस देश को पहिचान जायेगा, उसका पता पा जायेगा तब तू देख पायेगा कि वह दुनिया बाहर की दुनिया की तरह स्थूल नहीं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है जहाँ भाव के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है और जहाँ पहुँचने के पश्चात् बाहर की दुनिया बाहर ही रह जाती है—वहाँ पहुँचने के बाद ही आत्मा परमात्मा का मिलन सम्भव होता है। अतः तू बाहर न देख जहाँ कष्ट ही कष्ट बिखरा हुआ है, तू भीतर देख जहाँ तेरा प्रियतम विराजमान है कि तेरी दुनिया अन्तर्मुखी हो जाये और तू उसके साथ का आनन्द ले पाये।

१३४१ चीत्कार क्यों करता है ? चित्त कर प्रभु की ओर चीत्कार बंद हो ।

ऐ प्राणी ! तू दुःखों से घबड़ा कर रो धो नहीं, तू उस प्रभु को याद कर जो तेरा अपना है। देख, जब तेरा चित्त प्रभु की ओर होगा तब वह (चित्त) स्थिर हो जायेगा और तभी तेरा रोना-धोना भी बन्द होगा। अन्यथा अनेक प्रलोभन तुझे भरमाते रहेंगे और उन्हें पाने की चेष्टा में तू रोता रहेगा। अतः तू रोने धोने में समय न खो क्योंकि समय बहुत कीमती है, तू जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी प्रभु की शरण ग्रहण कर। ईश्वर की शरण पाकर तेरी बन्द आँखें खुल जायेंगी परिणाम तू उन भावों से बच जायेगा जो कष्टप्रद हैं और सदा उन्हीं भावों को अपनायेगा जो आनन्द प्रदान करने वाले हैं।

१३४२ सबला मा भूख मिटायेगी तन की, मन की ।

ऐ प्राणी ! सबला मा को भूल जाने के कारण तू तन मन का दास बन गया है। तेरे तन मन की भूख इतनी अधिक बढ़ गई है कि कुछ भी पाकर तू शान्त नहीं हो पाता—तन के कारण सदा चिन्तित बना रहता है और मन के कारण बेचैन बना रहता है। देख, तेरे तन मन की भूख ने तुझे भिखारी बना दिया है। यदि तू इनका ही दास बना रहा तो तू सदा भिखारी ही बना रहेगा और दिन ब दिन पतन की ओर उन्मुख होता जायेगा। अतः तू होश में आ तथा मा की गोद ग्रहण कर। जब तू मा की गोद में होगा तब तुझे तन मन का ध्यान भी नहीं रहेगा—ये साधन बन जायेंगे और तू इनके द्वारा आनन्द पाता रहेगा।

१३४३ संकल्प विकल्प तो कल्प, कल्पान्तर तक खेल दिखलाते रहे। आज संकल्प कर मेरा कुछ नहीं, तेरा ही तेरा है।

ऐ प्राणी ! तेरे विचार भाव ससीम हैं किन्तु ईश्वर की दुनिया असीम है। देख, आज तक अपने भाव विचारों के अनुसार तो तूने जीवन जी कर बहुत देख लिया, अब एक वार तू अपनापन छोड़कर जी कर देख। तब तू देख पायेगा कि जहाँ कल तक चलने के लिए पगडण्डी भी नहीं दिखलाई देती थी वहीं अब चौड़े रास्ते बन गये हैं अर्थात् ईश्वर की दुनिया में चिन्ता के लिये तनिक भी स्थान नहीं है, वहाँ स्वतः समयानुसार सभी कार्य होते रहते हैं—वहाँ केवल आनन्द ही आनन्द है। अतः तू आगे पीछे की चिन्ता छोड़कर अपना

आपा उसे सौंप दे जो तेरा अपना है। तब वह सदा तेरे साथ होगा, इतना ही नहीं, हर समय तू उससे प्रेरणा पाता रहेगा—एक कदम भी तेरा गलत नहीं होगा।

१३४४ पाप पुण्य की कथा कब समाप्त होगी ? जब प्रेम हृदय को मथने लगेगा।

ऐ प्राणी ! जब तक हृदय में प्रेम की जागृति नहीं हो जाती तब तक हृदय विकल बना रहता है। उस विकलता को मिटाने के लिये व्यक्ति को अनेक उपक्रम भी करने पड़ते हैं, पाप-पुण्य की कथाओं का आश्रय भी लेना पड़ता है तब भी उसके दिल की व्यथा कम नहीं हो पाती। देख, दिल की व्यथा कथा से कम होने वाली नहीं, वह तो प्रेमपूर्ण भाव से मिटने वाली है। अतः तू कथा नहीं, प्रेमी के हृदय की व्यथा सुन कि तेरा सोया प्रेम भी जाग जाये। प्रेम जब तेरे हृदय को मथने लगेगा तब तुझे कथा नहीं भायेगी, वह भाव भायेगा जिसमें प्रिय की झलक मिलती हो और तभी तेरा ईश्वर के नाम पर आगे बढ़ना सार्थक होगा। अन्यथा तू नाम लेता भी रहेगा और कथा आदि के द्वारा (नाम) सुनता भी रहेगा किन्तु ईश्वर से सदा दूर ही बना रहेगा।

१३४५ संग हटा तो संकट संग हुआ तो प्रकट।

ऐ प्राणी ! संकट तभी उपस्थित होते हैं जब व्यक्ति ईश्वर से अलग हो जाता है। ऐसे में वह शरीर से अधिक से अधिक जुड़ता चला जाता है और दिन रात शरीर के लिये ही परेशान रहने लगता है। धीरे-धीरे उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है और वह कायर, डरपोक व दब्बू बनकर रह जाता है। अरे पगले ! तू ऐसा था नहीं, ईश्वर की विस्मृति ने तुझे ऐसा बना दिया है। जिस दिन तू पुनः उसके सम्मुख हो जायेगा उस दिन कमजोर भाव तेरे समीप नहीं आ सकेंगे, तू आत्मबल से सुसज्जित होगा। देख, आत्म बल के सामने तन-मन-धन का बल कण के समान है। अतः अपनी खोयी शक्ति को पुनः पाने के लिये तू सद्गुरु का संग कर, तब वे जिन भावों से सुसज्जित हैं उन भावों से तू भी सजा होगा।

१३४६ समस्या तो अमावस्या है। समाधान तब जब सम हो या ध्यान हो, प्राणों में आह्वान हो या कान्ह हो।

ऐ प्राणी ! तू जीवन को समस्या न बना। यदि यह समस्या बनकर तेरे

सामने खड़ा हो जायेगा तो तेरा जीवन अंधकार से भर जायेगा। देख, जब तक तू ईश्वर से विमुख है तभी तक यह तेरे लिये समस्या है किन्तु जब तू ईश्वर के सम्मुख होगा, तुझे ईश्वर का ध्यान रहेगा तब यह समस्या नहीं रह जायेगा, यह कीमती बन जायेगा। अतः तू आह्वान कर प्रिय प्रभु का कि तू उसे प्राणों में बसा देख पाये, तेरे हर श्वास पर उसी का वास हो जाये। फिर इस जीवन की अवधि तेरे लिए बहुत कम होगी, इसका प्रत्येक क्षण तुझे आनन्द देता रहेगा।

१३४७ पार्श्वनाथ—नाथ पार्श्व में, हृद मन्दिर में फिर अनाथ क्यों, उदास क्यों ?

ऐ प्राणी ! ईश्वर को तू स्वयं से दूर न जान क्योंकि वह सदा तेरे साथ है, तेरे हृदय मन्दिर में विराजमान है। वह तेरा साथ क्षण भर के लिये भी नहीं छोड़ता और तू है कि उसे क्षण भर भी साथ नहीं देखता और यही कारण है कि तू स्वयं को बेसहारा (अनाथ) पाता है और उदास बना रहता है। देख, पास वाले की तू दूर कल्पना करता है इसीलिए उसे समीप नहीं देख पाता। तू आज भी यदि अहंकारशून्य होकर उसे खोजेगा तो अपने पास अवश्य पा जायेगा। तब तू कभी अकेला नहीं होगा और न कभी उदास होगा, वह अज्ञात प्रभु सदा तेरे समक्ष रहेगा और तू उसकी दुनिया में निश्चिन्त होगा।

१३४८ किसे याद करूँ कि दुःख भूल सकूँ ? याद तो बाद की अवस्था है प्रथम दर्शन तो कर आत्मदेव का।

ऐ प्राणी ! प्रथम जान पहचान होती है फिर प्रेम बढ़ता है तत्पश्चात् याद आती है—ईश्वर की भी यही बात है। देख, दुःख भुलाने के लिये तू यदि चाहेगा कि मैं ईश्वर को याद कर लूँ तो यह सम्भव नहीं क्योंकि दर्शन के पूर्व ईश्वर का नाम लिया जा सकता है किन्तु उसे याद नहीं किया जा सकता। ऐसे में दो नाम लेकर तू समझ लेगा कि तू ईश्वर को याद कर रहा है किन्तु ईश्वर से तू दूर ही रह जायेगा, ईश्वर को कभी याद नहीं कर पायेगा और ईश्वर की स्मृति से क्या मिलता है इसे भी नहीं जान पायेगा। अतः तू प्रथम दर्शन का अभिलाषी बन। जब दरशन से तेरा हृदय आलोकित हो जायेगा तब तुझे ईश्वर को याद करना नहीं पड़ेगा, तुझे स्वतः उसकी याद आयेगी और तब दुःख भी तेरे समीप नहीं ठहर सकेगा क्योंकि दुःख का आगमन अज्ञान अंधकार में ही होता है।

१३४९ रथ पर चढ़ा, स्वार्थ का पाठ पढ़ा, पथ न पहचाना। पार्थ बन, स्वार्थ सिद्ध हो।

ऐ प्राणी ! मनुष्य जन्म उस रथ की तरह है जिस पर सवार होकर गन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है। तूने इस दुर्लभ जन्म को तो पा लिया किन्तु इसे पाने का प्रयोजन क्या है इसे न जाना, तू सदा स्वार्थपूर्त्ति में ही लगा रहा—ऐसे में तेरा जीवन पाना ही व्यर्थ हो गया। देख, तू यदि केवल सवार होता और तेरे जीवन की बागडोर ईश्वर के हाथ में होती तो तुझे रथ पर चढ़ने का आनन्द मिलता। तब न तुझे गिरने पड़ने का डर रहता और न आगे बढ़ने की चिन्ता करनी पड़ती, तेरे लिये जब जैसा उचित होता वैसा निर्देश स्वतः मिलता रहता और तू उसी के अनुसार आगे बढ़ता जाता—तेरा जीवन पाना भी तभी सार्थक होता।

१३५० दूर गति—दुर्गति बनी। सहज गति—सुगति बनी। गति—मति बनी, यति बनी, रति बनी किन्तु पति को न पहचाना तो बनी जैसी न बनी।

ऐ प्राणी ! तू जब तक ईश्वर से दूर-दूर बना रहेगा तब तक तेरी दुर्गति होती रहेगी—प्रत्येक चीजें तुझे कष्ट देती रहेंगी, तू जीवन तथा जगत किसी का भी आनन्द नहीं ले पायेगा। किन्तु जब तू इधर-उधर बिना देखे सहजता से आगे बढ़ेगा तब तू गुमराह नहीं होगा, तू सही पथ पा जायेगा। देख, व्यक्ति की गति जिस ओर रहती है वैसी ही उसकी मति बनती है, उन्हीं भावों से उसका मिलन होता है और उन्हीं से प्रेम होता है। अतः प्रथम तू पति (प्राणपति) को पहिचान, फिर आगे कदम बढ़ा कि तेरी गति उसकी ओर हो जाये अन्यथा तेरा आगे बढ़ना और कुछ भी पाना नहीं पाने के समान होगा, तू बहुत कुछ बनकर भी कुछ नहीं बन पायेगा।

१३५१ साधना बाहर की थी, भीतर की थी, किन्तु तरी न थी। क्यों ? सृष्टि को न समझा, स्रष्टा को न समझा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर बाहर (जप, तप आदि) और भीतर (ध्यान-धारणा, चिन्तन-मनन आदि) अनेक साधना करके भी तू रसपूर्ण नहीं हो सकेगा क्योंकि रसपूर्ण होने के लिये केवल साधना नहीं, वह रसेश्वर प्रभु

सम्मुख चाहिये जो सम्पूर्ण विश्व का स्रष्टा है। जब तक वह सम्मुख नहीं तब तक साधना केवल क्रिया बनकर रह जाती है, उसका प्रतिफल नहीं होता। साधना फलवती तभी होती है जब हृदय स्रष्टा को देखने के लिये तड़प उठता है। ऐसे में वह साधना साधना नहीं रह जाती, ईश्वर मिलन का साधन बन जाती है—उसके द्वारा सृष्टि व सृष्टिकर्त्ता का रहस्योद्घाटन होता है और वह तरी प्रदान करता रहता है।

१३५२ मोहान्ध सुने, धनान्ध सुने, धर्मान्ध देखे। प्रेमान्ध ? प्रेम न था, तभी अन्धकार था, अन्धे थे। आज प्रेम का राज्य है, सर्वत्र प्रिय का राज्य है। किन्तु प्रेम भी राज है।

ऐ प्राणी ! मोह व्यक्ति को अन्धा बना देता है, मोह में सही दृष्टि मर जाती है—ऐसा देखा सुना जाता है। अधिक धन पाकर भी व्यक्ति अहंकारी हो जाता है, वह अपने समान किसी को नहीं समझता—ऐसा भी पाया जाता है। ईश्वर के नाम पर अधिक कार्य सम्पादित करने वाला स्वयं को बहुत बड़ा धार्मिक समझ बैठता है, उससे धर्म के नाम पर कुछ भी करवा लिया जाये वह करने को तत्पर रहता है, यथार्थ में उसने कुछ पाया या नहीं इसकी ओर उसका ध्यान भी नहीं रहता—ऐसा भी होता है। किन्तु प्रेम में यह बात नहीं। प्रेम आँखें खोल देता है, जन्म-जन्मान्तर से जो आँखें बन्द हैं वे प्रेम को पाकर खुल जाती हैं। जिन व्यक्ति-वस्तु को अन्धकार के कारण व्यक्ति अपनी समझता आया था, प्रेम को पाकर वे सभी प्रिय की दिखने लगती हैं एवं सम्पूर्ण विश्व पर प्रिय का राज्य छा जाता है। किन्तु यह प्रेम नसीब उनको ही होता है जो पूर्णतया मिटने के लिये तैयार रहते हैं अन्यथा यह राज (रहस्य) ही बना रहता है।

१३५३ सिर पर अहंकार का ताज था, तभी मोहताज था। ताज तज, प्रिय भज, तू है प्रिय के चरणों की रज। बज उठेगा वीणा का तार, अब आप ही आप उद्धार, आप ही उद्धार।

ऐ प्राणी ! अहंकार बहुत खतरनाक है, इसमें व्यक्ति की दशा पशु से भी बदतर हो जाती है—वह शरीर का दास हो जाता है और स्वयं को ही सबसे ऊँचा बड़ा समझने लगता है। ऐसे में छोटी-छोटी चीजों के लिए वह मोहताज बन जाता है, उसे कुछ भी पाकर तृप्ति नहीं मिलती। देख, अहंकार को

अपनाकर तू कभी खुश नहीं रह सकेगा अतः तू अहंकार को छोड़कर ईश्वर की शरण ग्रहण कर। जब तू ईश्वर के चरणों की रज होगा अर्थात् पूर्णतया प्रभु चरणों में झुक जायेगा तब तेरी हृदय वीणा के तार झंकृत हो उठेंगे और तू देख पायेगा कि ईश्वर सदा तेरे साथ है। तब तुझे उद्धार की चिन्ता करनी नहीं पड़ेगी, कष्टकारी भावों से तेरा उद्धार स्वतः हो जायेगा।

१३५४ हार मानूँ या हार पहनाऊँ? हार मानकर आया है, आज हार पहना दे। अब तेरी हार उसकी हार होगी। वह हारने वाला नहीं, हरण करने वाला है। पहले हर फिर हरि फिर? हरिहर।

ऐ प्राणी! तू जीवन से हताश निराश न हो, तू प्रभु की शरण ग्रहण कर। जब तू अपना आपा उसको सौंप देगा तब तेरे जनम जनम की हार उतर जायेगी अर्थात् तेरे समीप चिन्ता नहीं रह जायेगी, तेरी चिन्ता उसकी चिन्ता बन जायेगी। देख, तेरे लिये जो कुछ बोझ है उसके लिये वह बोझ नहीं, बहार है अतः तू उसकी शरण ग्रहण कर। उसकी शरण पाकर तेरी हार बहार में बदल जायेगी और वह भी आनन्द मग्न होगा। उसके समीप जाने से बोझ तेरे पास रह नहीं सकेगा क्योंकि वह बोझ हरण करने वाला है और तेरा जीवन हरा भरा हो जायेगा क्योंकि वह हरियाली प्रदान करने वाला है और तभी तू आनन्दमग्न हो पायेगा क्योंकि वह हरिहर है। ऐसे प्रभु को छोड़कर अन्य किसी की शरण में तू सुख नहीं पा सकेगा। अतः तू अपना जीवन उसके चरणों पर अर्पित कर दे कि तू हरा भरा हो जाये और तुझे देखकर वह भी धन्य-धन्य हो जाये।

१३५५ मैं जला नहीं, क्या इसीलिये तू जला रहा है? जलना—वह जलना कैसा? अभी तो आँखों में जल है दुःख का। जब आँखों में सुख का जल आयेगा तो यह दुःख स्वयं बह जायेगा, फिर वह जायेगा? जायेगा नहीं आयेगा। ऐसा आयेगा कि भगाने पर भी नहीं जायेगा। ये प्रेम के आँसू हैं।

ऐ प्राणी! जीवन में जब तक अहंकार (मैं) का समावेश रहता है तब तक व्यक्ति दुःखी बना रहता है, उसकी आँखों में दुःख के आँसू होते हैं और उसका हृदय दुःख से फटता रहता है। किन्तु जब अहंकार को प्रश्रय नहीं मिलता तब हृदय सुख से आप्लावित हो जाता है और आँखों में सुख के आँसू

रहते हैं, दुःख के आँसू वहाँ टिक नहीं पाते। देख, प्रेम भी उनके समीप ही आता है जो जो कुछ पाते हैं उसका सुख मानते हैं। ऐसों का हृदय ईश्वर के प्रति कृतज्ञता से भरा रहता है और यही कारण है कि उनका जीवन प्रेमपूर्ण होता है। एक बार प्रेम आने के बाद फिर जाता नहीं, दिन व दिन बढ़ता ही रहता है—यही प्रेम की पहचान है। अतः तू अहंकार का परित्याग करके जो कुछ तुझे मिला है उसका सुख मना कि तू प्रेम की अमूल्य निधि पा जाये, तेरा यह खजाना कभी खाली न हो पाये।

१३५६ बन्दा है बन्दी नहीं, बन्दा है बन्दगी कर। बन्दा है गन्दा नहीं, जग है फन्दा नहीं, बन्दा है बन्दगी कर। बन्दा है नभ का चन्दा है, बन्दा है शिव की गंगा है, बन्दा है बन्दगी कर।

ऐ प्राणी! यह संसार कारागार नहीं है और तू भी इसमें बन्दी नहीं है, तू तो बन्दा है और यहाँ बन्दगी करने (ईश्वर मिलन) के लिये आया है। देख, तू स्वयं को गन्दा न जान और न संसार को बन्धन मान, तू अपने रूप को पहिचान कर यहाँ बन्दगी कर। जब तू बन्दगी में लग जायेगा तब आकाश में स्थित चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान व शीतल होगा और शिव की गंगा की तरह उन भावों का स्वामी होगा जो पवित्र व कल्याणकारी हैं। अतः तू अपने रूप के अनुरूप हो कि तू यहाँ बन्दगी कर पाये और तेरे बन्धन कट जायें। तब तुझे संसार में किसी से शिकायत नहीं होगी, तू सदा आनन्द पाता व देता रहेगा।

१३५७ यह गाना है या रोना है वासना का? यह हँसना है या फँसना है जगत का। जाग, प्रिय के संग खेल फाग, सुन अन्तरात्मा का राग, खिल उठे जीवन बाग, नाच रहा मन नाग। सुख दुःख हैं विचारों के झाग, अब खेल फाग, सुन राग, राग बना अब अनुराग।

ऐ प्राणी! गाना प्रमुदित अवस्था का प्रतीक है, जब तक हृदय में प्रमुदित भाव नहीं तब तक गाने के द्वारा अधूरी आकांक्षा (वासना) व्यक्त की जाती है। देख, हँसना भी उल्लसित भाव का प्रतीक है किन्तु जहाँ उल्लसित भाव नहीं वहाँ हँसना केवल हो हुल्लड़ बन जाता है और संसार का बन्धन दरशाता

है। अतः तू होश में आ और प्रेमास्पद प्रभु से प्रेम बढ़ा। जब तू अन्तर में बसे प्रभु को पा जायेगा तब तेरी जीवन बगिया खिल उठेगी अन्यथा तू मन के इशारे पर ही नाचता रहेगा। जब ईश्वर से तेरी प्रीति हो जायेगी, तू उसकी आवाज (अन्तर्प्रेरणा) को सुन पायेगा तब सुख दुःख तेरे लिये झाग की तरह होंगे (जो पानी में पैदा होते हैं और उसी में मिट जाते हैं) और तू प्रभु प्रेम में निमग्न हो आनन्द मनायेगा।

१३५८ दुःख न झेल, कर ले मेल प्रभु से, प्रभु भक्तों से।

ऐ प्राणी ! इस संसार में दुःख ईश्वर से विमुख होने से है अन्यथा यहाँ दुःख है ही नहीं। देख, तू यदि ईश्वर से दूर ही बना रहेगा तो तेरे कष्टों का अन्त नहीं आयेगा। ऐसे में तू कदम-कदम पर दुःख झेलता रहेगा, तेरा जीना ही दूभर हो जायेगा। अतः दुःख से छुटकारा पाने के लिये तू ईश्वर से मेल बढ़ा। यदि तू ईश्वर को ऐसे न देख पाये तो ईश्वर भक्तों के समीप बैठ, उनके समीप बैठकर तू एक दिन निश्चित ही ईश्वर को समक्ष देख पायेगा। तब दुःख तेरे समीप नहीं टिक पायेंगे, तू दुःख सुख दोनों से अलग आनन्द की दुनिया में रहेगा।

१३५९ बकता जा वास यहीं करना पड़ेगा। जिस दिन बकना बन्द होगा और होश में आयेगा, उस दिन तू मुझे पास में पायेगा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के नाम पर तू बड़ी-बड़ी बातें अवश्य करता है किन्तु अभी ईश्वर की खोज नहीं करता। जब तक तू ईश्वर के बारे में बातें ही करता रहेगा, ईश्वर मिलन की चाह तेरे हृदय में नहीं जगेगी तब तक तू नाम प्रसिद्धि पा लेगा किन्तु ईश्वर को समीप नहीं देख पायेगा। देख, ईश्वर कहीं दूर नहीं, वह तेरे श्वासों प्राणों में रमा हुआ है किन्तु वह तुझे मिलेगा तभी जब तेरी बड़ी-बड़ी बातें बन्द होंगी एवं ईश्वर मिलन के लिए तेरे हृदय में आह्वान होगा। उस दिन वह तुझसे दूर नहीं रह पायेगा, तू उसे सदा साथ देख पायेगा—ईश्वर की ओर बढ़ना तेरा तभी सार्थक होगा।

१३६० प्यार की बातें लिख, यह जगत का गोरख धन्धा है, जो यों ही चला आ रहा है। तुझे प्यार चाहिये या तर्क ? प्यार कर, यह तर्क तेरे हृदय को तर न कर सकेगा।

ऐ प्राणी ! जिनका जीवन प्यारमय है उन्हें हमेशा वे ही बातें सुहाती हैं

जो उनके हृदय को तर कर सकें। अन्य बातें जो ईश्वर की सी दिखलाई देती हैं किन्तु जिनमें ईश्वर है नहीं, उन बातों से उनका हृदय खाली ही रह जाता है अतः वे उनमें दिलचस्पी नहीं ले पाते। ऐसे में वे उन बातों की ओर ध्यान देकर अपना कीमती समय बरबाद भी नहीं करते, वे शान्त होकर अन्तर्प्रेरणा की आवाज सुनते हैं और जो भाव आते हैं उन्हें लिपिबद्ध करते हैं। देख, ऐसे जन का लिखना साधारण नहीं होता, अलौकिक होता है क्योंकि उनका यह कार्य मनोरंजन के लिये नहीं, आत्म तुष्टि के लिये होता है—ऐसे जन की दुनिया ही अनोखी होती है।

१३६१ शराबी शराब में मस्त, कबाबी कबाब में। मेरा नाम शराब कबाब नहीं—जवाब है उनके लिये जो मेरे हैं। कैसा जवाब? भूल बैठेगा यह शराब कबाब जब तू नाम लेगा। मेरा नाम लेगा।

ऐ प्राणी! मांस मदिरा से कुछ समय का नशा होता है। इसमें व्यक्ति समय विशेष के लिये अपने आप को भूल जाता है, दुःख दर्द उसके समीप नहीं रह जाते किन्तु उसका वह नशा टिक नहीं पाता, जल्दी ही उतर जाता है। ईश्वर के नाम में भी नशा है किन्तु यह शराब कबाब का सा नशा नहीं। यह नशा जल्दी से किसी को चढ़ता नहीं और यदि चढ़ जाता है तो उतरता नहीं। इस नशे में मस्त ईश्वर भक्त आनन्द की दुनिया में खो जाता है, उसे न 'मैं' का ध्यान रहता है और न 'मेरे' का, रहता है केवल एक प्रभु का ध्यान और उसी को वह सर्वत्र छाया हुआ देख पाता है। देख, जब तक ईश्वर के नाम का नशा व्यक्ति नहीं पा जाता तभी तक वह दुःखी रहता है और शराब कबाब की शरण लेता है। यदि वह एक बार प्रभु नाम का नशा पा जाता तो अन्य नशे उसे छोड़ने नहीं पड़ते, स्वतः छूट जाते क्योंकि ईश्वर नाम की मस्ती के सामने कोई भी नशा नहीं टिकता।

१३६२ चुम्बक नहीं, चुप, बक मत, रसास्वादन कर, आधार का अधर है, धर पकड़ नहीं, धर ऐसा पकड़ कि तुझे पकड़ने वाला भी चुम्बक बन जाये।

ऐ प्राणी! प्रेम कोई चुम्बक नहीं कि जिसे बताया जा सके, प्रेम सहज भाव है जिसमें स्वाभाविक आकर्षण रहता है। देख, ऐसे प्रेम का तू कहीं

दरशन पा जाये तो उसका शान्त होकर रसास्वादन करना, उसे बरबाद न होने देना क्योंकि यह आकर्षण शरीरी नहीं और चेष्टा के द्वारा पाया जाने वाला भी नहीं। देख, जो अकारण ही अपनी ओर खींचता हो वह आकर्षण ईश्वरीय होता है। वह (आकर्षण) जैसे जैसे हृदय में समाता है वैसे वैसे दिल की दुनिया बदलने लगती है और जब वह हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है तब जीवन आकर्षण युक्त हो जाता है। अतः तू प्रेम की प्रतिष्ठा हृदय में कर अर्थात उसे ऐसा धर (पकड़) कि तू प्रेममय हो जाये, फिर जो आकर्षण प्रेम में है वही तुझमें होगा क्योंकि तूने प्रेम की प्रतिष्ठा हृदय में जो की है।

१३६३ रत न हुआ, सूरत न हुआ, सूरत देखना चाहता है? मैं रत कहीं सूरत देख पाया है? वह खूबसूरत है। खूब रत न होगा तो खूबसूरत के लिये तरसता ही रह जायेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर का दरशन पाने के लिये ईश्वर से प्रेम चाहिये, वह प्रेम चाहिये जिसमें अपनेपन का भान भी न रहे। जब तक 'मैं' के लिये हृदय में तनिक भी स्थान रहता है तब तक प्रेम का जागरण नहीं होता और न ईश्वर को ही देखा जा सकता है। देख, ईश्वर का सौन्दर्य अन्य सौन्दर्य की तरह नहीं, वह अनूठा है और चूँकि वह अनूठा है इसीलिये उसे पाने का तरीका भी अनूठा है अर्थात् जब तक अन्य आकर्षण खत्म नहीं हो जाते तब तक उसे नहीं पाया जा सकता। अतः तू यदि उसकी सूरत देखने का अभिलाषी है तो अहंकार का परित्याग करके तल्लीनता से उसकी ओर बढ़ कि तू उसे सम्मुख देख पाये अन्यथा मैं में रत हुआ तू उसे पाने को तरसता ही रह जायेगा।

१३६४ अवसाद क्यों करता है? अब शाद (प्रसन्न) हो जा प्रसाद सम्मुख।

ऐ प्राणी। तेरी दुःख मानने की आदत पड़ गई है इसीलिये तू बात-बात में दुःखी होता रहता है। देखः तू यदि दुःख को पकड़ कर बैठा रहेगा तो सुख के क्षण भी सुख से नहीं गुजार सकेगा, तू सदा रोता ही रहेगा। अतः तू अपनी दुःख मानने की आदत को छोड़ दे और प्रसन्न रहना सीख ले। जब तू प्रसन्न रहना सीख जायेगा तब तेरी दृष्टि ही बदल जायेगी। तेरा दुःख भी तब सुख में परिवर्तित हो जायेगा और तू जो कुछ पायेगा वह तेरे लिये प्रसाद (प्रसन्नता देने वाला) बन जायेगा। अतः तू रोना-धोना छोड़ और प्रसन्नता के साज सजा कि तेरी जिन्दगी ही प्रसाद बन जाये, तू जिन्दगी पाने का मजा पा जाये।

१३६५ सरस में सरसता है, रस्ता है हर्ष का विहार का। हार मान बैठे तो न रस्ता है न फरिश्ता।

ऐ प्राणी ! तेरा हृदय यदि सरस है तो तू जो कुछ पायेगा वह तुझे सरसता प्रदान करता रहेगा। तब तुझे प्रत्येक चीजें ईश्वर-प्रदत्त दिखलाई देंगी, तू उन्हें पाकर हर्षित होता रहेगा तथा उनके साथ का आनन्द पाता रहेगा। ऐसे में तू उन भावों का स्वामी होगा जिन्हें विरले ही पाते हैं। किन्तु तू यदि परिस्थितियों में उलझा हुआ जीवन से हार मान कर बैठ जायेगा तो तू जहाँ खड़ा है सदा वहीं खड़ा रहेगा, तू एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पायेगा और रोता हुआ भाग्य को कोसता रहेगा। ऐसे में तेरा मनुष्य जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा जो अन्य सभी जीवन से श्रेष्ठ है। अतः तू जीवन से हताश निराश न हो, तू हिम्मत से आगे बढ़ कि कमजोर भाव तेरे समीप टिक नहीं पायें, तेरा जीवन सरस हो जाये।

१३६६ आज जिन्दगी का वह साज बजा कि आवाज गूँज उठे त्रिभुवन में कि (तू) मुक्त है, युक्त है प्रभु चरणों में।

ऐ प्राणी ! प्रभु चरणों की महिमा न्यारी होती है। जो इन चरणों में झुक जाते हैं उनकी जिन्दगी सँवर जाती है एवं उनकी हृदय वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं। वे उसी में खोये हुए आनन्द मग्न रहने लगते हैं परिणाम संसार में रहते हुए भी संसार के बन्धनों में नहीं बँधते। देख, ऐसे जन की आवाज साधारण नहीं होती, उनकी भाव भरी वाणी जन मानस को झंकृत करने वाली होती है। उनकी आवाज जब गूँजती है तो उसे सुनकर व्यक्ति जान पाता है कि मुक्ति क्या है और प्रभु से युक्त होना क्या है अर्थात् उनकी वाणी ही मुक्ति का रूप दिखलाती है और प्रभु चरणों से युक्त करती है। जब तक ऐसी वाणी सुनने को नहीं मिलती तब तक ईश्वर का साथ पाकर भी व्यक्ति ईश्वर से दूर बना रहता है, उसकी जिन्दगी ही भार बन जाती है।

१३६७ अन्त तक तर न हो पाया, अन्तर के गीत गाता रहा। अन्तःकरण का कर्त्ता कौन ? कौन और क्या का उत्तर कर्त्ता है।

ऐ प्राणी ! जब तक तू ईश्वर को प्रत्यक्ष देख न पाये तब तक मिलन के

गीत न गा क्योंकि उन गीतों को गाने से तुझमें तड़प नहीं रह जायेगी, तू बिन पाये ही समझ बैठेगा कि तूने उसे पा लिया है। देख, ईश्वर मिलन की चर्चा तो दूर की बात है प्रथम तू यह तो जान कि अन्तःकरण का कर्त्ता कौन है। तू जब तक इसका उत्तर बुद्धि बल के द्वारा खोजता रहेगा तब तक तुष्टि नहीं पा सकेगा किन्तु जब डूबकर खोजेगा तब तू देख पायेगा कि इसका कर्त्ता वही है जो सम्पूर्ण विश्व का सृजनकर्त्ता है—तभी तू उसे अन्तर में प्रतिष्ठित भी देख पायेगा और तेरे मिलन के गीत भी उसी दिन सार्थक होंगे।

१३६८ विश्व उसकी ज्योति के कणमात्र से निर्मित हुआ, उस पर विजय ? उसकी जय जयकार से ही सम्भव हो सकता है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर से अलग रहकर ईश्वर की सृष्टि पर विजय पाना असम्भव है। ऐसे में व्यक्ति यदि थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर भी लेता है तो अहंकार में फूला नहीं समाता अतः उस खोज का आनन्द भी नहीं ले पाता। देख, यह विश्व ईश्वर की ज्योति का एक कण मात्र है, तेरे आनन्द के लिये ही इसका सृजन हुआ है किन्तु तू इस रहस्य को तभी जान पायेगा जब तू ईश्वर का होगा। ईश्वर से अलग रहकर तू इस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करेगा तो इसे तो जान सकेगा ही नहीं बल्कि तेरा जीवन ही दुःखपूर्ण हो जायेगा। अतः तू विश्व पर विजय पाने की चेष्टा न कर, तू उसकी जय जयकार कर जिसने विश्व निर्मित किया है। जब तू उसका होगा तब सारा विश्व तेरा अपना होगा, सम्पूर्ण विश्व पर तेरा आधिपत्य होगा और तब विश्व के कण-कण से तू आनन्द ले पायेगा।

१३६९ संयोग वियोग भी संयोग ही है। वियोग के लिये अश्रुपात क्यों ? गातधारी यदि आधार रहित तो क्या करे आँसू ही बहाये। प्रेमाश्रु की कथा निराली उनके लिये तो प्रभु भी तरसता है।

ऐ प्राणी ! सन्त से संयोग (मिलन) होना और फिर वियोग हो जाना दोनों संयोग की बात है और दोनों में ही आनन्द है। देख, सन्त आनन्द रूप होते हैं और आनन्द की भावना प्रदान करने के लिये आते हैं। उनका वियोग भी आनन्द बढ़ाने लिये होता है, रोने के लिये नहीं। किन्तु व्यक्ति इस रहस्य को नहीं जानता, उनका शरीर जाने से स्वयं को आधार

रहित मान बैठता है और आँसू बहाने लगता है। यदि सन्त के समीप बैठकर उन्होंने प्रेम पाया होता, उनके हृदय में भाव की जागृति हो गयी होती तो उनका सन्त से वियोग नहीं होता क्योंकि सन्त शरीर के माध्यम से दिखलाई अवश्य पड़ते हैं किन्तु शरीरी नहीं होते, अतः भाव वालों के लिये वे सदा विद्यमान रहते हैं।

१३७० भाव एक सुझाव है। अभाव ग्रसित के लिये। यह सुझाव यदि सुभाव बन जाये, स्वभाव बन जाये तो अभाव की गति कहाँ?

ऐ प्राणी! भाव अशरीरी भाव है, इसके आगमन से जीवन प्रकाशमान हो उठता है जबकि अभाव शरीरी है, इसका सृजन मैं के कारण होता है और इसके आगमन से जीवन में अन्धकार भरने लगता है। देख, दिन-रात अभाव में जीने वाले प्राणी के लिये भाव दृष्टि (सुझाव) है। भाव उन्हें दिखाता है कि जीवन अभाव में रोते रहने के लिये नहीं, प्रसन्नता पूर्वक बिताने के लिये है। अभाव में रहने वाला प्राणी यदि इस सुझाव को हृदय में स्थान दे दे अर्थात् उसे भाव भा जाये तथा वह उसके स्वभाव में घुलमिल जाये तो अभाव उसके समीप टिक नहीं सकेगा, वह ऐसे विदा हो जायेगा जैसे बसन्त के आगमन से हेमन्त विदा हो जाता है। फिर उसका जीवन केवल हरा भरा ही नहीं होगा, सुगन्ध से भी परिपूर्ण हो जायेगा।

१३७१ प्रीति की नीति नहीं होती, रीति नहीं होती, होती है शरणागति जो नीति रीति से दूर। दूर कब भरपूर? दूर करे भावना को चकनाचूर।

ऐ प्राणी! प्रेमी प्रियतम प्रभु के चरणों में पूर्णतया झुका रहता है, झुकने में ही उसे आनन्द मिलता है। प्रेमी को नीति की बातें नहीं सुहातीं और न वह रीति ही जानता है, वह एक प्रियतम प्रभु को जानता है और उसी के चरणों में झुका हुआ आगे बढ़ता जाता है। देख, जिनमें प्रेम नहीं और झुकने के भाव नहीं अर्थात् जो प्रेम व शरणागति से दूर हैं, वे यदि ईश्वर को पाना भी चाहते हैं तो नहीं पा सकते। वे सदा ईश्वर से ही दूर बने रहते हैं, उनके अन्तर में निहित ईश्वर मिलन की भावना चकनाचूर हो जाती है। अतः तू

यदि ईश्वर को सम्मुख देखना चाहता है तो झुकने के भावों से हृदय सजा कि तेरा प्रेम पल्लवित हो उठे और ईश्वर तुझसे दूर न रह जाये।

१३७२ समर पूर्ण जब तक समर्पण नहीं—शत्रु मित्र की एक ही नीति।

ऐ प्राणी ! लड़ाई के मैदान में तब तक दो दलों में संघर्ष होता रहता है जब तक कि कोई एक दल दूसरे के सामने आत्म समर्पण नहीं कर देता। ठीक ऐसा ही खेल भीतर की दुनिया में है। जब तक समर्पण के भावों से हृदय नहीं सज जाता तब तक प्रति मुहूर्त्त अन्तर्द्वन्द होता रहता है। यह अन्तर्द्वन्द व्यक्ति को एक मिनट भी चैन नहीं लेने देता—सोते-जागते, खाते-पीते हर समय बेचैन बनाये रखता है। इससे बचने की उसकी सारी चेष्टायें विफल होती हैं। देख, ईश्वर तेरा सच्चा साथी (मित्र) है। अपने सच्चे साथी को भूल जाने के कारण ही तेरे हृदय में झगड़ा है। अतः तू यदि इस झगड़े से मुक्ति पाना चाहता है तो समर्पण के भावों से हृदय सजाकर प्रभु को याद कर—तभी तू शान्ति पा सकेगा और जीवन पाने का लाभ उठा सकेगा।

१३७३ अश्रुमाला, पुष्पमाला में अंतर है—अश्रु हृदय स्पर्शी, पुष्प हृदय उल्लासी—यदि प्यार के हों, अन्यथा दुःख, दिखावा है।

ऐ प्राणी ! प्यार के अश्रु साधारण नहीं होते, इनकी क्षमता अनूठी होती है, ये पत्थर हृदय को भी पिघला देते हैं। ये (आँसू) चूँकि हृदय से निकलते हैं अतः स्पर्श भी हृदय को ही करते हैं। प्यार से अर्पित फूलों की भी यही बात है। ये (फूल) चूँकि उल्लसित हृदय से अर्पित किये जाते हैं अतः ये हृदय में उल्लास भरते हैं। किन्तु हृदय में यदि प्यार का अभाव हो तो आँखों में आँसू दुःख के होते हैं और ईश्वर को फूल चढ़ाना पूजा के नाम पर दिखावा होता है। बाहर के कार्य दोनों अवस्थाओं में एक जैसे होते हैं किन्तु भीतर में भिन्नता रहने के कारण उनका प्रतिफल विपरीत रहता है। अब तू अपने अन्तर को टटोल कि तूने प्रेम पाया है या नहीं ? यदि नहीं तो जिस साथ से तेरे हृदय में प्रेम का जागरण हो तू उसकी खोज कर कि तेरा जीवन प्रेमरूप बन जाये।

१३७४ श्याम की संध्या, राम का प्रभात। अब दिन और रात ? बात में गुजार या आघात में। बात प्रेम की, आघात संसार का।

ऐ प्राणी ! ईश्वर हर पल-क्षण पर छाया हुआ है, उसके बिना कहीं कुछ

भी नहीं। देख, जब यह रहस्य तेरे सामने स्पष्ट होगा तब तू दिन-रैन आनन्द पाता रहेगा, तेरे मुख पर उसी का नाम होगा एवं तू हमेशा उसी की चर्चा में रत रहेगा। यदि यह रहस्य रहस्य ही रह जायेगा अर्थात ईश्वर तुझसे दूर ही बना रहेगा तो तू ईश्वर की दुनिया में बैठा हुआ भी रोता रहेगा। तब दुनिया से तुझे मार ही मार मिलेगी, तू एक क्षण के लिए भी चैन नहीं पायेगा परिणाम रोना ही तेरा जीवन बन जायेगा।

१३७५ चरण रज न तज, तज मिथ्या भावना। भव में भाव भी, अभाव भी, देव भी, दानव भी। तज मिथ्याभिमान, भज प्रिय को, बज उठेगा सुप्त स्वर।

ऐ प्राणी! चरणों की रज अनोखी होती है, जो इसे पा जाते हैं उनका जीवन भी अनोखा हो जाता है। इन चरणों की रज भूल से भी छोड़ने की नहीं होती, इसे छोड़ने से जीवन नरक बन जाता है। अतः तू यदि छोड़ना ही चाहता है तो जिन भावों को अपनाकर तू कष्ट पा रहा है उनका परित्याग कर। देख, इस संसार में भाव और अभाव दोनों हैं, सतपुरुष और अहंकारी दोनों हैं—तू जिन भावों का अभिलाषी होगा तुझे यहाँ वे ही भाव मिल जायेंगे। किन्तु एक (अभाव) को पाकर तेरा जीवन दानव सम बन जायेगा और दूसरे (भाव) को अपनाकर तू देवतुल्य हो जायेगा। एक को अपनाकर तू कष्ट पाता तथा देता रहेगा किन्तु दूसरे को अपनाकर तू आनन्द मनाता व बाँटता रहेगा। अतः तू मिथ्या अभिमान का परित्याग कर एवं प्रिय की ओर देख कि तेरी हृदय वीणा के तार झंकृत हो उठें, तू भावमग्न रह पाये।

१३७६ रूप का अभिमान न कर राधे—अरूपी का रूप प्रेम है।

ऐ प्राणी! प्रेम के सौन्दर्य के सामने शरीर का सौन्दर्य कुछ भी नहीं। शरीर का सौन्दर्य एक समय तक रहता है और खींचता भी है किन्तु प्रेम का सौन्दर्य सदा समान रूप से विद्यमान रहता है, इसका आकर्षण अद्भुत होता है। देख, तूने यदि पराकाष्ठा का सौन्दर्य पाया है तो भी उसका अभिमान न करना, तू प्रेम को धारण करना क्योंकि प्रेम ही सच्चा सौन्दर्य है। प्रेम पाकर तू सही मायने में सौन्दर्य का धनी होगा अन्यथा अभिमान से घिरा शरीर के ही चातुर्दिक चक्कर काटता रहेगा। तब ईश्वर की शरण पाने

पर भी तू ईश्वर से दूर ही रह जायेगा। तेरे प्रेम में निखार तभी आयेगा जब तुझे शरीर का तनिक भी ध्यान नहीं रहेगा। अतः तूने कितना भी सौन्दर्य पाया हो तू उसकी ओर न देख, तू प्रेम में पूर्णतया डूब जा कि सच्चे सौन्दर्य का धनी बन जाये।

१३७७ कागज पर लिखा, दिल पर कब लिखा, तभी न पाप पुण्य की कथा कहता रहा। प्रभु भावना का भूखा है, पाप पुण्य तो तुम्हारी कल्पना है।

ऐ प्राणी! ईश्वर का नाम तू कागज पर न लिख, तेरे हृदय पर लिख। कागज पर लिख कर तू धार्मिक अवश्य बन जायेगा किन्तु तेरा दिल कोरा का कोरा ही रह जायेगा। जब तक ईश्वर का नाम तेरे दिल पर विराजमान नहीं होगा तब तक तू ईश्वर के नाम पर पाप पुण्य की बातें ही सुनता रहेगा और करता रहेगा किन्तु ईश्वर को नहीं जान पायेगा। देख, पाप पुण्य तेरे मन की कल्पना है, इनका ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं। ईश्वर हृदय का प्रेम पूर्ण भाव ग्रहण करता है पाप पुण्य नहीं। अतः तू पाप पुण्य को न पकड़, तू ईश्वर से प्रेम कर कि वह तेरा अपना बन जाये और उसके आगमन से तेरा खाली हृदय भर जाये।

१३७८ हित केवल प्रत्यक्ष में ही नहीं, परोक्ष में भी है। प्रभु प्रत्यक्ष में ही नहीं, परोक्ष में भी है। प्रत्यक्ष विज्ञान, प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञान।

ऐ प्राणी! स्थूल में दिन रात विचरण करते-करते तेरी दृष्टि पूर्णतया स्थूल हो गई है और अब जो कुछ आँखों से दिखलायी पड़ता है वही तुझे सत्य सा लगता है। देख, आँखों से दिखलायी पड़ने वाली चीजें सत्य नहीं, सत्य वह सत्ता है जो आँखों से ओझल है, उसी के आधार पर यह दृश्य जगत ठहरा हुआ है। उस सत्ता को तू कभी-कभी समक्ष देख भी पाता है फिर भी वह तेरी आँखों से परे है। किन्तु तू यदि उसे देखना चाहेगा तो वह तुझसे दूर नहीं रहेगी, वह तेरी आँखों के सामने होगी, तू सर्वत्र उसका जलवा देख पायेगा। देख, जिस विज्ञान को तू आज प्रत्यक्ष देखता है वह भी कल तक परोक्ष था, तेरी चाह से ज्ञान भी जो आज परोक्ष है प्रत्यक्ष हो उठेगा। अतः तू कुछ वस्तुओं के पीछे ही दीवाना न बन एवं उनमें ही अपना हित न देख, तू उस सत्ता की खोज कर जो सदा तेरे साथ है—तभी सही मायने में तेरा हित होगा अर्थात् ईश्वर तेरे सम्मुख होगा।

१३७९ प्रेम और वासना में आकर्षण किसका तीव्र ? वासना का किन्तु भोले प्राणी प्रेम चिरस्थाई ।

ऐ प्राणी ! शरीर प्रत्यक्ष है और प्रेम अप्रत्यक्ष है अर्थात् शरीर दिखलाई देता है किन्तु प्रेम आँखों से नहीं दिखलाई देता, यह अनुभव किया जा सकता है । व्यक्ति चूँकि स्थूल में जीता है अतः स्थूल उसे अधिक खींचता है एवं भोग की पिपासा देता है, प्रेम को उसने जाना नहीं, कहीं देखा नहीं इसलिये वह प्रेम से परे ही रह जाता है । देख, आकर्षण वासना में अधिक दिखलाई पड़ता है किन्तु चिरस्थाई प्रेम होता है । वासना जितनी तेजी से अपनी ओर खींचती है उतनी ही जल्दी उसका नशा उतर भी जाता है किन्तु प्रेम की यह बात नहीं । प्रेम जल्दी से मिलता नहीं और जब मिल जाता है तब जाता नहीं, चिरस्थाई हो जाता है । अतः तू वासना की अग्नि में भस्मीभूत न हो, तू हृदय में प्रेम दीपक प्रज्वलित कर कि तेरा जीवन प्रकाशमान हो जाये ।

१३८० शब्द, शब्दातीत, बीता अतीत, आया वर्त्तमान, अब क्यों भयभीत ? भय से प्रीति ? भूला नीति, भूला प्रीति । भूला प्रीति, भूला रीति । अब भविष्य—मय जगतमय । निर्भय प्रेम वह भी शब्दातीत ।

ऐ प्राणी ! ईश्वर के लिए दिन रात शब्दों का प्रयोग किया जाता है फिर भी वह शब्दों से परे है । देख, ईश्वर के साथ जीने वाला अतीत में नहीं जीता, वर्तमान में जीता है । उसे भय भयभीत नहीं कर पाता क्योंकि भय से उसका प्रेम ही नहीं रह जाता । उसे नीति, रीति, प्रीति कुछ भी नहीं सुहाती अर्थात् न वह नीति पर चल पाता है, न रीति ही निभा पाता है और न अलग से प्रेम ही कर पाता है, वह तो स्तब्ध हो प्रभु में ही निमग्न हो जाता है । ऐसे ईश्वर भक्त का भविष्य ईश्वरमय होता है, उसके लिये सम्पूर्ण जगत ईश्वरमय हो जाता है । उसके हृदय में प्रेम का ऐसा अविरल प्रवाह होता रहता है जो शब्दातीत है ।

१३८१ दौड़ छोड़, मन मोड़, सर्वत्र माता का क्रोड़ । प्रौढ़ हुआ, होड़ न छोड़ी, संग्रह करता रहा कौड़ी कौड़ी ।

ऐ प्राणी ! जीवन का लक्ष्य धन-सम्पति संग्रह करना नहीं, ईश्वर को पाना

है। देख, तू यहाँ आने के कारण को भूल गया है और धन संग्रह करने में ही अपनी आयु बिता रहा है। आज तेरे जीवन का तीसरा पहर तेरे सामने है फिर भी तू इस होड़ को नहीं छोड़ पा रहा है, धन संग्रह करने में ही जुटा हुआ है। अरे पगले ! अब भी तू सम्हल जा, आज भी तू इस दौड़ को छोड़ दे और ईश्वर के चरणों पर झुक जा। आज भी तू यदि उसकी ओर उन्मुख होगा तो देख पायेगा कि वह सर्वत्र तेरे लिए हाथ फैलाये खड़ा है। उसकी गोद में ही तू मोद पा सकेगा अन्यथा कितनी भी धन-सम्पति एकत्रित कर लेगा फिर भी तू रोता ही रहेगा।

१३८२ वह कौन सा युग था जब युगल मूर्त्ति नृत्य करती थी। आज भी नृत्य हो रहा है, वह भाव कहाँ? भाव किसका बदला? युग का? भाव है तो आज भी युग है।

ऐ प्राणी ! कृष्ण-राधा का प्यार किसी युग में था बात ऐसी नहीं, वह प्यार आज भी विद्यमान है किन्तु वह दिखलायी उन्हें ही पड़ता है जिन्हें भाव की दृष्टि प्राप्त है। देख, तुझमें जो भाव का अभाव है इसके लिये तू युग को दोषी ठहराता है किन्तु दोषी युग नहीं दोषी तू है और दोष युग में दिखा रहा है। भाव वाले के लिए प्रेम का वह नृत्य कभी नहीं रुकता सदा होता रहता है क्योंकि भाववाला कभी युग के बन्धन में नहीं बँधता, वह तो प्रभु के चरणों की रज बनकर सदा उन्हीं चरणों में वास करता है। अतः तू यदि उस प्रेम को देखने का अभिलाषी है तो बाहर (युग) न देख, भीतर देख जहाँ तेरा प्रियतम प्रभु विराजमान है—तब तुझे युग से शिकायत नहीं रहेगी, प्रेम का वर्षण सदा तेरे हृदय पटल पर होता रहेगा।

१३८३ प्रसाद पाया, अब अवसाद क्यों, विषाद क्यों, विवाद क्यों, प्रमाद क्यों? प्रसन्न चित्त हो, सत् चित्त आनन्द में अवगाहन कर।

ऐ प्राणी ! तेरा जीवन साधारण नहीं, यह कृपा का प्रसाद है। देख, प्रसाद को सदा प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किया जाता है और उसे पाकर स्वयं को धन्य-धन्य समझा जाता है और तू है कि इसकी कीमत ही नहीं कर पा रहा है। यही कारण है कि प्रसाद पाकर भी तू कष्टों से घिरा हुआ है, तेरा मन सदा दुःखी बना रहता है, ईश्वर के नाम पर तू तर्क करता रहता है और एक कदम

भी आगे नहीं बढ़ पाता। देख, अब भी समय है, बीते हुए समय को भुलाकर तू आज भी होश में आजा, आज भी प्रसाद की महिमा को जान ले। फिर तेरे समीप न कष्ट रहेंगे, न दुःख रहेगा, न तर्क रहेगा, न आलस्य रहेगा— रहेगा सत् चित्त आनन्द प्रभु और उसी में तेरा चित्त अवगाहन करता रहेगा।

१३८४ आश्रम था श्रम निवारण के लिये। भजनाश्रम को भोजनाश्रम बनाया क्या पाया ? भोजन। यह तो प्रत्येक योनि में प्राप्त था।

ऐ प्राणी! अनेक योनियों में चक्कर काटते काटते तू जो थक गया है उस श्रम का निवारण करने के लिए तुझे यह मनुष्य जन्म मिला है किन्तु तू इससे अनजान यहाँ भी विश्राम की जगह श्रम में ही लगा हुआ है—तूने इस भजनाश्रम को भोजनाश्रम बना दिया है। देख, भोजन तो तुझे सभी योनियों में प्राप्त था, आज भी तू यदि इसी में लगा रहा तो तेरा यह जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा। अतः तू इस जीवन की कीमत कर अर्थात् भजन कर। भजन हृदय के बोझ को कम करने वाला है। भजन से वह भगवान जो सदा साथ है फिर भी छुपा हुआ है, प्रत्यक्ष हो उठता है परिणाम भोजन की चिन्ता नहीं रह जाती—रह जाता है एक वही जिसने यह जीवन दिया है। देख, उसे सम्मुख पाकर ही तेरी जन्म-जन्मान्तर की थकावट मिट सकेगी अन्यथा तू सदा बोझिल ही बना रहेगा।

१३८५ संतान की अभिलाषा पूर्ण न कर सके वह कैसा पिता ? जो पिता को न पुकारे न याद करे वह कैसा पुत्र ? उपालम्भ सहज, उपासना कठिन।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरा पिता है, वह तुझे हर समय देख रहा है किन्तु तेरी दृष्टि अभी उसकी ओर नहीं इसीलिए तू उसके कार्यों को नहीं देख पाता और मन चाही न होने पर उसे उपालम्भ देने लगता है। देख, तेरी यह आदत अच्छी नहीं, इसमें तेरी भलाई नहीं। तेरी भलाई इसी में है कि तू उपालम्भ देना छोड़ कर उसकी उपासना कर। उपासना उसे तेरे समीप लाकर खड़ा कर देगी, तब तू देख पायेगा कि वह जिस समय जैसी जरूरत समझता है स्वतः पूरी करता है। उसे भूलने से ही जीवन में कष्ट है अन्यथा जीवन आनन्द से परिपूर्ण है—जिस आनन्द का कहीं ओर-छोर नहीं।

१३८६ अहंकार की चिनगारियाँ केवल अहंकारी के लिए ही घातक नहीं अन्य भी जलते हैं इन चिनगारियों से। फिर रक्षा ? रक्षा उसी की जो अहं को सोऽहं में समर्पित करे।

ऐ प्राणी ! अहंकार की चिनगारियाँ बड़ी भयानक होती हैं। इनसे केवल अहंकारी ही नहीं जलते, इनकी चपेट में अच्छे-अच्छे आ जाते हैं। यह (अहंकार) कब किस समय और कैसे आकर दबोच लेता है इसका पता ही नहीं लगता। इसकी चपेट में आया व्यक्ति होश में तभी आता है जब उसे प्रभु कृपा का सहारा मिलता है अन्यथा वह जीते जी ही मिट्टी में मिल जाता है। देख, इससे रक्षा उन्हीं की होती है अर्थात् इससे वे ही बचे रहते हैं जिनका अहं सर्वथा प्रभु के चरणारविन्द पर अर्पित हो गया है, जो सर्वथा मैं से विलग हो गये हैं। उनके समीप यदि अहंकार आता भी है तो उनकी अखण्ड शान्ति के सामने नतमस्तक हो जाता है और लौट कर चला जाता है।

१३८७ हार कर जाना पुनरागमन का कारण बनता है हार पहना कर जाता तो न आता और न जाता।

ऐ प्राणी ! संसार में बार-बार वे ही आते हैं जो संसार से हार कर जाते हैं। देख, यह संसार आनन्द के लिये है किन्तु यहाँ आनन्द उन्हीं को मिलता है जिनका रक्षक ईश्वर है। उन्हें न शरीर की चिन्ता सताती है और न घर-परिवार की, वे उसकी दुनिया में बैठ कर मौज मनाते हैं और एक दिन मौज के साथ ही विदा हो जाते हैं—ऐसे जन फिर लौट कर नहीं आते। किन्तु जो ईश्वर को जानते नहीं, मानते नहीं, उन्हें शरीर तथा घर-परिवार की चिन्ता घेरे रहती है वे जीवन से थक हार जाते हैं। उन्हें खाना, पीना, सोना कुछ भी नहीं सुहाता केवल रोना सुहाता है—ऐसे जन एक दिन रोते-रोते ही चले जाते हैं और तब तक बार-बार आते जाते रहते हैं जब तक कि उनका ईश्वर से मिलन नहीं हो जाता।

१३८८ किंचित् भी चित्त लगता सत् चित्त में तो आनन्द ही आनन्द रहता किन्तु कदाचित् ही ध्यान दिया हो सत्चित की ओर तो आनन्द कहाँ ?

ऐ प्राणी ! आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु के चरणों में है, उससे विलग होने से

इस संसार में कहीं आनन्द नहीं। देख, तेरा चित्त यदि किंचित् मात्र भी सत्चित्त प्रभु (सत्य के प्रतिरूप सन्त) में लगता तो तुझे आनन्द की अनुभूति होती, तब तू सत्य को अधिक से अधिक पाने को उत्सुक होता किन्तु ऐसा हुआ कहाँ ? तू तो स्थूल के पीछे मारा-मारा फिरता रहा। स्थूल ने तुझे क्या दिया ? केवल कष्ट, फिर भी तू उसे ही गले से लगाये घूम रहा है, क्षण भर के लिए भी तेरा ध्यान ईश्वर की ओर नहीं जाता। स्थूल तुझमें इतना प्रविष्ट कर गया है कि जब तू ईश्वर का नाम लेता है तब भी स्थूल में ही विचरण करता रहता है, ईश्वर को याद नहीं कर पाता। ऐसे में तू आनन्द कभी नहीं पा सकेगा। तुझे यदि आनन्द चाहिए तो तू सन्त की शरण ग्रहण कर। उनकी भाव भरी वाणी तेरे मलिन हृदय को स्वच्छ कर देगी और तभी तू सत्य की अनुभूति पा आनन्द के दरशन कर पायेगा।

१३८९ नाम विश्वास है, श्वास है, मोद है, आमोद है। नाम लेकर देखो, फैलाकर देखो।

ऐ प्राणी ! प्रेम की जागृति के पश्चात जब ईश्वर का नाम मुख में होता है तब नाम की महिमा अनोखी होती है, तब 'नाम' हृदय में विश्वास भर देता है, ईश्वर के विना श्वास लेना भी बेकार लगने लगता है। जीवन खुशियों से भर जाता है एवं चारों ओर खुशी ही खुशी नजर आने लगती है। अतः तू नाम (ईश्वर) को जीवन से बाद न कर, उसे तू हृदय में पहला स्थान दे। ऐसे में जब तू नाम लेगा तथा उसकी महिमा (अन्य के सम्मुख) गायेगा तब उसका अनोखा रूप होगा, तब जो कुछ तू पायेगा वह असाधारण होगा एवं अवर्णनीय होगा।

१३९० तैयार—तय यार, तय प्यार, हो तैयार।

ऐ प्राणी ! स्थूल उपलब्धियों के लिये स्थूल साधन जुटाने पड़ते हैं, स्थूल सजावट करनी पड़ती है किन्तु सूक्ष्म उपलब्धि के लिये स्थूल से काम नहीं चलता। ईश्वर सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, उसे पाने के लिये वैसी ही तैयारी भी चाहिये। वैसी तैयारी चेष्टा के द्वारा नहीं की जा सकती, भाव से ही सम्भव है। देख, जब स्थूल संगी-साथी तेरा साथ नहीं देंगे, एकमात्र ईश्वर तेरा अपना बन जायेगा तथा उसे पाने के लिए तेरा हृदय छटपटाने लगेगा—ईश्वर का सामीप्य तुझे तभी प्राप्त होगा और सामीप्य का आनन्द भी तू तभी ले

पायेगा। तैयारी के पूर्व ईश्वर यदि तेरे सम्मुख भी होगा तो तू उसे न पहचान पायेगा, न देख पायेगा और न उसका आनन्द ही ले पायेगा।

१३९१ व्याकुलता भी हृदय का नृत्य है, जहाँ प्रिय का संगीत गूँजता रहता है। मस्ती तभी आती है जब संगीत तथा नृत्य का समन्वय होता है।

ऐ प्राणी! प्राणों में प्रिय का संगीत प्रति मुहूर्त्त गूँज रहा है फिर भी सुनाई नहीं पड़ता। इस संगीत को वे ही सुन पाते हैं जिनके हृदय में ईश्वर मिलन की व्याकुलता होती है। व्याकुलता प्राणी को शान्त नहीं बैठने देती, हृदय में मिलन की तड़पन भर देती है। इसे अपनाकर प्राणी का हृदय विकल हो नाचने लगता है। उसकी विकलता ही उसे वहाँ पहुँचा देती है जहाँ प्रिय का संगीत गूँज रहा है। देख, जब तक ईश्वर की अनुभूति नहीं होती तब तक हृदय विकल बना रहता है, हृदय में मस्ती तभी आती है जब ईश्वर साथ होता है। अतः तू उस प्रियतम प्रभु की खोज कर जिसके साथ से तेरे हृदय की विकलता आनन्द में परिणत हो जाये और तेरा जीवन संगीतमय हो सके।

१३९२ प्रेम की बातें ही बातें हैं। बातों से किया नाता, कहाँ सुख पाता? प्रेम होता तो सर्वत्र प्रिय का दर्शन होता, बातें न होतीं। प्रेम प्रभु में, प्रेम प्राणी में, अज्ञात तार जीवन में बहार लाता।

ऐ प्राणी! तू प्रेम की केवल बातें न कर, तू प्रेम कर। तू यदि प्रेम की बातें ही करता रहेगा तो प्रेम से दूर ही रह जायेगा, तब 'प्रेम में क्या है' इसे तू नहीं जान पायेगा। देख, प्रेम ईश्वर का दूसरा रूप है। प्रेम को जब हृदय में प्रश्रय मिलता है तब सर्वत्र प्रिय ही प्रिय नजर आता है। ईश्वर से सच्चा प्रेम तभी होता है, प्रत्येक प्राणी के लिये भी प्रेम तभी आता है। तब एक अज्ञात तार हर समय ईश्वर से जुड़ा रहता है, वही हमेशा सरसता प्रदान करता रहता है एवं जीवन में बहार भरता रहता है। अतः तू प्यार को प्राणों में स्थान दे कि तेरा जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो जाये, तेरे भीतर, बाहर व सर्वत्र प्रिय ही प्रिय छा जाये।

१३९३ हस्त रेखा क्या देखता है ? मस्त रेखा बता। मस्ती, रेखा को पार करने में है, दिलदार यार करने में है, नया संसार करने में है। व्यवहार में तो हार ही हार है।

ईश्वर भक्त के हृदय में ईश्वर मिलन की व्याकुलता हमेशा बनी रहती है। उसे धन-जन, मान-सम्मान की भूख नहीं सताती, ईश्वर मिलन की भूख सताती है—वह हमेशा प्रभु के प्यार में निमग्न (मस्त) रहना चाहता है। ऐ प्राणी ! मस्ती सस्ती नहीं और यह सबके सजती भी नहीं। यह उन्हें ही शोभती है जो पूर्णतया मिटने के लिये तैयार रहते हैं अर्थात जिनकी मैं-मेरे की दुनिया नहीं रह जाती, दिलदार प्रभु के चरणों में ही जिनका वास होता है--उनका संसार अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। किन्तु ईश्वर को भुलाकर जो व्यवहार जगत में लगे रहते हैं उनके लिये मस्ती तो दूर की बात है, वे सुखपूर्वक रह भी नहीं सकते। उनके पल्ले हार ही हार पड़ती है, वे जीवन व जगत किसी का भी आनन्द नहीं ले पाते।

१३९४ पत्थर भी पिघलता है दिल की आवाज सुनकर, प्यार भी न्योछावर होता है दिलदार पर। न प्यार कर सका, न पत्थर पिघला सका। प्यार करता तो पत्थर जैसा दिल भी पिघलता।

ऐ प्राणी ! मुख की आवाज में वह शक्ति नहीं जो दिल की आवाज में है। दिल की आवाज पत्थर हृदय को भी पिघला देती है और प्यार भी ऐसे हृदय पर ही न्योछावर होता है। देख, तूने कभी दिल की कद्र नहीं की अतः न प्यार कर सका और न पत्थर हृदय को पिघला सका, तू सदा स्वार्थ में ही लगा रहा। अरे पगले ! प्यार ईश्वर है। प्यार के बिना जीवन बेकार होता है, तब सांस तो रहते हैं किन्तु जिन्दादिली का सर्वथा अभाव होता है—ऐसा जीवन लाशवत् हो जाता है। अतः तू दिल की उपेक्षा न कर, उसकी कद्र कर कि तू प्यार की निधि पा जाये। तब तेरा जीवन सरस होगा एवं तेरी वाणी की शक्ति अनोखी होगी, वह पत्थर को भी पिघलाने में समर्थ होगी।

१३९५ महान क्यों नम्र होता है ? नम्रता ही महानता है।

ऐ प्राणी ! जो महापुरुष होते हैं अर्थात् जो महान भावों से सुसज्जित हैं

उनमें स्वाभाविक ही नम्रता पायी जाती है। उनकी यह नम्रता सहज रूप से ही अपनी ओर आकृष्ट करती रहती है। उस नम्रता को देखकर कोमल हृदय नतमस्तक हो जाता है और बुद्धिमान सोचने लगता है कि ये इतने नम्र क्यों हैं ? देख, नम्रता ही महानता है, यदि उनमें नम्रता नहीं होती तो महानता भी नहीं होती। नम्रता रहे और महानता न हो ऐसा नहीं होता और महानता रहे नम्रता न हो तो वहाँ महानता नहीं, आँखों का धोखा है। अतः तू धोखे में न पड़, तू महान के समीप बैठकर उनकी नम्रता धारण कर कि महान बनने की तुझे चेष्टा न करनी पड़े, तू महान भावों से स्वतः सुसज्जित हो जाये।

१३९६ मिट्टी ने रस को भी मिट्टी बनाया, निर्मलता का हरण किया। मिट्टी दूर कैसे हो ? रस अति मात्रा में हो तो मिट्टी नीचे प्रकृति में बैठ जायेगी, रस ही रस नजर आयेगा।

ऐ प्राणी ! स्थूल (मिट्टी) से अधिकाधिक घिरा हुआ प्राणी यदि थोड़ा रस (प्रेम) कहीं पा भी जाता है तो वह रसपूर्ण नहीं हो पाता, उसे वह स्थूल दृष्टि से ही देखता है परिणाम वह रस मिट्टी में मिल जाता है। देख, स्थूल में दिन रात रमण करने वाला भी यदि रस का इच्छुक है तो रस उसे अति मात्रा में पाना होगा, थोड़े रस से उसका काम नहीं चलेगा। जब प्रेम उसे स्थूल से अधिक मात्रा में प्राप्त होने लगेगा तब उसके अन्य आकर्षण स्वतः ढीले पड़ने लगेंगे और वह प्रेम समुद्र में अवगाहन कर सकेगा। देख, प्रेम ऊपर उठाता है, उसके आगमन से स्थूल नीचे रह जाता है। अतः तू निर्भय होकर रसपान करता चल, तब तू देख पायेगा कि तेरे स्थूल आकर्षण स्वतः कम पड़ रहे हैं और तभी तू रसपान कर आत्म विभोर हो सकेगा।

१३९७ कण क्षण में पूर्ण होना चाहता है। लगन हो तो वह भी क्षण आता है जब कण मगन हो जाता है। कण व्रण रहता है जब तक कि प्रण नहीं करता, प्राण प्रिय से मिलन का।

ऐ प्राणी ! तू यदि एक दिन में पूर्ण बनना चाहेगा तो यह सम्भव नहीं। देख, आज तेरी हस्ती एक कण के समान है किन्तु तुझमें यदि लगन होगी तो वह क्षण भी जल्दी ही आ जायेगा जब तू मगन होगा। लगन का तुझमें यदि अभाव रहेगा तो वह क्षण तेरी जिन्दगी में कभी नहीं आ सकेगा, चाहे तू पूर्ण होने की लाख चेष्टा कर ले। अतः तू मन में प्राण प्रिय को पाने का प्रण कर

तथा उसे पाने के लिये लगन से आगे बढ़ कि वह तुझसे दूर न रह पाये। अन्यथा तू कीमती जीवन पाकर भी भू भार ही रहेगा, तेरा हृदय सदा कराहता रहेगा परिणाम तू जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

१३९८ विद्या और तर्क के बल पर हृदय नहीं बदलता। हृदय तर्क नहीं चाहता वह तर रहना चाहता है। तर तो तभी हो पाता जब प्रेम गंगा प्रवाहित होती रहती संत वाणी से।

ऐ प्राणी! पढ़ाई लिखाई स्थूल जगत का ज्ञान देती है, सूक्ष्म (अन्तर) जगत का नहीं। देख, तू यदि विद्या, बुद्धि (तर्क) के द्वारा हृदय बदलना चाहेगा तो सफलता नहीं पा सकेगा क्योंकि हृदय तर्क नहीं चाहता, तरी चाहता है और विद्या बुद्धि में तरी देने की सामर्थ्य ही नहीं। तरी प्रेम वाणी से मिलती है। प्रेम सन्त हृदय में विराजता है अतः उनकी वाणी प्रेम से सराबोर होती है। उनकी प्रेम भरी वाणी जब प्रवाहित होती है और प्राणी उस वाणी रूपी गंगा में स्नान करता है तो उसके हृदय का जन्म-जन्मान्तर का मैल धुल जाता है। तब उसका हृदय केवल स्वच्छ ही नहीं होता, प्रेम रस से ओत-प्रोत हो जाता है।

१३९९ संस्कार को नमस्कार। कर पुकार कि संस्कार बेकार हो जायें। होकर जाना ही तो संस्कार बना।

ऐ प्राणी! जन्म जन्मान्तरों के संस्कार मनुष्य के साथ रहते हैं। वह संस्कारों की बेड़ी में इतना अधिक बँधा रहता है कि उन्हें एक पल के लिये भी नहीं छोड़ पाता। संस्कार तोड़ने के नाम से उसका कमजोर मन दहलने लगता है और यही कारण है कि वह संस्कारों में जकड़ता चला जाता है। देख, बन्धन बन्धन है, बन्धन में कभी आनन्द नहीं मिल सकता। अतः तू आनन्द का अभिलाषी है तो इस बन्धन को तोड़ डाल अर्थात् संस्कार को नमस्कार कर। यदि तू उसे ऐसे न तोड़ पाये तो ईश्वर को याद कर। जैसे-जैसे तू स्वयं को ईश्वर की शरण में पायेगा वैसे-वैसे संस्कारों की बेड़ी से मुक्त होता जायेगा—जीवन मुक्त भी तू तभी होगा अन्यथा तू जन-जन के मुँह की ओर देखता रहेगा तथा संस्कारों में बँधा हुआ बार-बार आता जाता रहेगा।

१४०० सुन्दरता तन की या मन की। तन की रह न पायेगी, मन की ही उसको पायेगी।

ऐ प्राणी ! तन की सुन्दरता कुछ समय के लिये रहती है, हमेशा टिक नहीं पाती किन्तु मन की सुन्दरता सदा-सदा बनी रहती है तथा इसके कार्य अनोखे होते हैं। तन की सुन्दरता समय विशेष के लिये आकृष्ट करती है किन्तु मन यदि सुन्दर है तो उसका आकर्षण कभी खत्म नहीं होता। देख, तन की सुन्दरता से ईश्वर को रिझाया नहीं जा सकता किन्तु मन की सुन्दरता से उसे पाया जा सकता है—निर्मल मन में ही ईश्वर का वास होता है। जब तक मन निर्मल नहीं हो जाता तब तक प्राणी चाहे कितना भी गुणवान क्यों न हो वह ईश्वर से दूर ही बना रहता है। अतः तू निर्मल (सुन्दर) मन का उपासक बन कि तेरे हृदय मन्दिर में प्रभु की मूर्त्ति विराजमान हो जाये और तू उसकी ओर निहारता हुआ तन की दासता से मुक्त हो जाये।

१४०१ किसी ने मुक्ति की बात कही और किसी ने निर्वाण की। प्यार की बातें भी कहता तो आनन्द आता प्रिय से मिलाता।

ऐ प्राणी ! शरीर रहते जीवन मुक्त वे ही हो पाते हैं जिनका हृदय प्यार से सज जाता है—निर्वाण पद की प्राप्ति (आवागमन से मुक्ति) भी उनके लिए ही सम्भव है। अतः प्रथम मुक्ति और निर्वाण की बातें नहीं चाहिये, प्यार की बातें चाहिये। देख, प्यार पाकर ही हृदय में आनन्द की वर्षा होती है और तभी प्रिय से मिलन भी हो पाता है। प्यार के पूर्व मुक्ति और निर्वाण की बातें केवल बातें बनकर ही रह जाती हैं, उनका प्रतिफल कुछ नहीं होता—उनसे केवल मन बहलाव ही होता है। अतः तू ज्ञान ध्यान की ऊँची-ऊँची बातों के चक्कर में न पड़, तू उन बातों को सुन जो प्रेम रस से भरी हों। प्यार की बातें ही तेरे सोये प्रेम को जगायेगी परिणाम तू मौज में रह सकेगा एवं प्रिय से मिल पायेगा।

१४०२ खूबी सूरत की नहीं, सूरत देने वाले की है। भोली दुनिया खूबसूरत पर मरती है, देनेवाले पर नहीं। क्योंकि वह छिपा है खूब खूबसूरत में, बदसूरत में।

ऐ प्राणी ! सुन्दर रूप अपनी ओर आकृष्ट करता है किन्तु उसमें खूबी

रूप की नहीं, उस बनाने वाली की है जिसने इतनी सुन्दर रचना की है। देख, इस सुन्दर सृष्टि का सृजन करके भी वह (बनाने वाला) छुप गया और अब कहीं दिखलायी नहीं देता। किन्तु जो उसे देखना चाहते हैं उनसे वह छुपा भी नहीं रह सकता, वे उसे कण-कण में (खूबसूरत में, बदसूरत में व सर्वत्र) देख पाते हैं—जिन्दगी का आनन्द भी वे ही ले पाते हैं। अन्य जन बनाने वाले को भूलकर चूँकि सूरत पर ही मरते हैं अतः स्थूल के पीछे ही भागते दौड़ते रहते हैं। उन्हें कभी सफलता नहीं मिलती, वे एक दिन हताश निराश हो रोने लगते हैं, उनकी दुनिया कष्टों से भर जाती है।

१४०३ मूर्त्ति पूजा कोई खिलौना नहीं। पूजा प्रधान, मूर्त्ति निमित्त। कहीं भाव की पूजा है, कहीं रूप की। विवाद कैसा?

ऐ प्राणी। मूर्त्ति पूजा खिलौनों का खेल नहीं। मूर्त्ति भक्त के लिये ईश्वर का प्रतीक होती है, ईश्वर के निमित्त मूर्त्ति को सम्मुख रखकर भक्त ईश्वर को याद करता है। इसमें पूजा प्रधान होती है, जो जैसे भाव से पूजा करता है वैसे ही भाव से उसे देखता है। देख, कोई रूप का उपासक होता है और कोई भाव का उपासक होता है। रूप के उपासक के लिये रूप ही प्रधान रहता है, वह जिसकी पूजा करता है उस रूप के लिये मर मिटता है किन्तु भाव वाले के लिये भाव प्रधान रहता है। रूप उसके लिये उपेक्षणीय नहीं होता किन्तु प्रधान भी नहीं रहता और यही कारण है कि रूप जब सम्मुख नहीं होता तब भी उसका भाव ज्यों का त्यों बना रहता है। अतः तू पूजा को विवाद का विषय न बना, तुझे जो भाव प्रिय हैं उन भावों के साथ पूजा सम्पादित कर कि तू पूजा का आनन्द ले पाये।

१४०४ जो ज्योति से खिलने वाला है (हृदय कमल) उसे अर्थ पिपासु बनाते हो, मुरझा जायेगा, हाथ कुछ न आयेगा।

ऐ प्राणी! कमल हमेशा सूर्य के सम्पर्क से खिलता है, सूर्य का प्रकाश उसे कीचड़ में नहीं रहने देता कीचड़ से ऊपर उठा देता है। हृदय कमल की भी यही बात है। हृदय हमेशा सत्य प्रकाश से खिलता है। जब तक उसे सत्य साथ (प्रकाश) नहीं मिल जाता तब तक वह मुरझाया रहता है। देख, तूने यदि सत्य साथ न भी पाया हो तो धीरज रखना तथा हमेशा उसे पाने की पिपासा रखना। तू यदि धीरज खो बैठेगा तो अर्थ का दास बन जायेगा और

यदि अर्थ पिपासु बन जायेगा तो कहीं का नहीं रहेगा। तब तेरा जीवन मुरझा जायेगा, पाने के लिये आया हुआ तू सब कुछ खोकर चला जायेगा—तेरे हाथ कुछ भी नहीं आयेगा। अतः तू अन्धकार में न भटक, तू ज्योति की खोज कर कि तेरा हृदय कमल खिल जाये और तेरा जीवन खिले हुए फूल की तरह हो जाये।

१४०५ घर न छोड़। धर प्रिय के चरण, बड़े कोमल हैं। उजड़ा घर बसेगा। आनन्द कानन बन जायेगा, प्रिय बस में हो जायेगा। मान, व्यर्थ अभिमान की बातें छोड़, घर न छोड़।

ऐ प्राणी! यह तेरी धारणा है कि ईश्वर घर छोड़ने से ही मिलता है किन्तु बात ऐसी नहीं। ईश्वर को पाने के लिये घर छोड़ने की जरूरत नहीं, ईश्वर के चरणों में बैठने की जरूरत है। देख, ईश्वर के चरण बड़े कोमल होते हैं, वहाँ भले-बुरे सबको पनाह मिलती है—उन चरणों में बैठकर ही व्यक्ति राहत पाता है। जब तक उन चरणों की शरण नहीं मिलती तब तक वह भटकता ही रहता है, कुछ भी पाकर सन्तुष्ट नहीं होता, उसे सदा अतृप्ति ही घेरे रहती है। किन्तु जब वह उन चरणों में होता है तो उसकी उजड़ी दुनिया बस जाती है, उसमें प्रिय प्रभु विराजमान होता है। अतः तू यदि छोड़ने का ही अभिलाषी है तो तू घर न छोड़, तू मान सम्मान के भावों का परित्याग कर एवं अभिमानशून्य होकर ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू जहाँ बैठा है वहीं ईश्वर को सम्मुख देख पाये।

१४०६ मोदक वस्तु भी वाणी भी। वस्तु का प्रभाव क्षणिक वाणी अमर। आज भी वस्तु के इच्छुक प्राणी अधिक, वाणी के अति अल्प। क्यों? उत्तर सरल भी, गम्भीर भी। स्थूल, सूक्ष्म की उपासना।

ऐ प्राणी! मीठी वस्तु भी होती है और वाणी भी किन्तु वस्तु का मिठास समय विशेष के लिये सुख पहुँचाता है और मीठी वाणी हमेशा सुख पहुँचाती है—मीठी वाणी अमर होती है। देख, वस्तु हमेशा सुखदायिनी नहीं होती फिर भी वस्तु के इच्छुक प्राणी ही अधिक होते हैं क्योंकि स्थूल से प्राणी इतना आवद्ध हो गया है कि स्थूल ही उसे भाता है, सूक्ष्म की ओर उसका ध्यान भी

नहीं जाता और यही कारण है कि उसके लिये वस्तु प्रधान हो जाती है और मीठी वाणी उपेक्षित ही रह जाती है। देख, स्थूल की उपासना करके तू चार वस्तुएँ तो एकत्रित कर लेगा किन्तु शान्ति सन्तोष नहीं पा सकेगा। अतः तू स्थूल की उपासना न कर, स्थूल को साधन जानकर व्यवहृत कर एवं सूक्ष्म की उपासना कर कि तेरे भीतर की दुनिया प्रेमिल हो जाये तथा बाहर भी तू मौज में रह पाये।

१४०७ प्रकृति बाहर, प्रकृति भीतर। भीतर तर तो बाहर में बहार सदा बनी रहेगी।

ऐ प्राणी! प्रकृति बाहर भी है एवं तेरे भीतर भी है। बाहर की प्रकृति यदि हरी-भरी है किन्तु भीतर तरी नहीं शुष्कता है तो बाहर की प्रकृति हरा भरा नहीं कर सकती। किन्तु भीतर की प्रकृति यदि हरी भरी है तो बाहर भी चारों ओर हरियाली ही हरियाली फैल जाती है। बाहर की प्रकृति में परिवर्तन आता रहता है किन्तु भीतर की प्रकृति यदि एक बार हरी-भरी हो जाती है तो उसमें परिवर्तन नहीं आता, वह सदा हरी-भरी ही रहती है— उसकी हरियाली सम्पूर्ण जीवन को हरा-भरा कर देती है। अतः तू यदि हरा-भरा रहना चाहता है तो हरियाली को बाहर न देख, तू उन भावों का स्वामी बन जिन्हें अपनाकर तेरे भीतर तरी आ जाये अर्थात् तेरे भीतर की प्रकृति हरी-भरी हो जाये। तब तेरे जीवन में बहार सदा बनी रहेगी, तू जिस हाल में भी होगा मौज में होगा।

१४०८ माल है, मालिक है, साहस नहीं। माल प्राप्त कर जप माला प्राप्त हो, मालिक प्रसन्न हो।

ऐ प्राणी! इस संसार के कण-कण में आनन्द है एवं (कण-कण में) आनन्द का वर्षण करने वाला ईश्वर है किन्तु तुझमें अभी साहस नहीं कि तू आनन्द का उपभोग कर पाये एवं इसके मालिक (ईश्वर) को देख पाये जो सर्वत्र विद्यमान है। देख, तू यहाँ आकर आनन्द का अभिलाषी होगा तो स्वतः ईश्वर को याद करने लगेगा अर्थात् तुझे जप माला प्राप्त हो जायेगी—ईश्वर को भी तू तभी सम्मुख देख पायेगा। अन्यथा आनन्द की दुनिया में बैठा हुआ भी साहस के अभाव में तू न आनन्द ही ले पायेगा और न आनन्द वर्षण करने वाले को ही देख पायेगा, तू कमजोर भावों से घिरा सदा रोता ही रह जायेगा।

१४०९ कृतघ्न न बन, कृतज्ञ बन। ज्ञान नहीं तभी तो कर्त्ता को भूल बैठा। कर्त्ता उदार, केवल इतना मान, सब कुछ तेरा है।

ऐ प्राणी! देने वाले के प्रति हमेशा कृतज्ञता होनी चाहिये। प्राणी यदि देने वाले की देन का उपभोग करता रहे किन्तु उसके प्रति कृतज्ञ न हो तो वह कृतघ्नी होगा और उसका हृदय छटपटाता रहेगा। देख, 'सब कुछ करने वाला (कर्त्ता) ईश्वर है' अभी तुझे यह ज्ञान नहीं, इसीलिए तू कर्त्ता को भूल बैठा है और कष्ट पा रहा है। तेरी यह भूल आज भी सुधर सकती है और तू कष्टों से छुटकारा पा सकता है किन्तु यह तभी सम्भव है जब तुझे अहसास हो जाये कि शरीर तो केवल निमित्त मात्र है यथार्थ में करने वाला ईश्वर है। जब तू यह मान जायेगा कि 'सब कुछ ईश्वर का है' उस दिन तेरा हृदय प्रसन्नता से भरा होगा, तब तू उस धन का स्वामी होगा जो आज तक तेरी आँखों से ओझल था क्योंकि कर्त्ता बड़ा उदार है।

१४१० तलाश है प्यास बुझाने के लिये। श्वास है प्रिय दर्शन के लिये। विश्वास है शान्ति निवास के लिये। कुछ पास है तो कुछ मिलेगा ही। पूर्ण तो उऋण होने में है।

ऐ प्राणी! यदि तेरा हृदय अतृप्ति अनुभव करता है और तू उस प्यास को बुझाने की तलाश में है तो तेरी यह चाहना अवश्य पूरी होगी, तेरे श्वाँस यदि प्रिय का मिलन चाहते हैं तो तेरी यह आशा भी जरूर पूरी होगी और यदि तुझे विश्वास है कि तुझे शान्ति मिलेगी तो तू अवश्य शान्ति के दरशन भी कर पायेगा क्योंकि जिसकी जैसी भावना होती है उसके अनुसार वह जरूर पाता है—ऐसा कभी नहीं होता कि भावना के अनुसार न मिले। देख, तेरे हृदय की विकलता भी मिट जायेगी, तुझे ईश्वर के दर्शन भी हो जायेंगे एवं तू शान्ति भी पा जायेगा फिर भी पूर्णता नहीं पा सकेगा क्योंकि पूर्णता इनमें नहीं, पूर्णता उऋण होने में है अर्थात् पूर्णतया समर्पित होने में है। समर्पित होकर ही तू देख पायेगा कि तेरे पाने के लिये और कुछ बाकी नहीं रह गया है, वह स्वतः सब कुछ कर रहा है।

१४११ कसरत क्या करता है? कस कर रत हो जा प्रभु प्रेम में जीवन सफल।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर के नाम पर उठ बैठ (कसरत) न कर, तू कस कर

रत हो प्रभु प्रेम में। देख, उठ बैठ करके तू ईश्वर के नाम पर कार्य कर सकता है किन्तु उसे पा नहीं सकता क्योंकि ईश्वर कार्यों को नहीं देखता, हृदय के उन भावों को देखता है जो ईश्वर के लिये होते हैं। जब तक वे भाव तेरे हृदय में जाग्रत नहीं हो जायेंगे तब तक तू ईश्वर के नाम पर बहुत कुछ कर सकता है, नाम-प्रसिद्धि आदि भी पा सकता है किन्तु ईश्वर को नहीं पा सकता। अतः तू ईश्वर के लिये शरीर द्वारा क्या कर रहा है, इसे न देख तू अपने अन्तर के भावों की ओर देख कि वहाँ ईश्वर-मिलन के लिये व्याकुलता है या नहीं? यदि है तो ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह पायेगा, तेरा जीवन पाना सफल हो जायेगा।

१४१२ सम्पत्ति—पति को पहचाना? सम भाव हुआ प्राणियों में? यदि नहीं तो यह सम्पत्ति किस काम आई?

ऐ प्राणी! जिसे तू सम्पत्ति कहता है वह तो शरीर रक्षा का साधन है, सच्चा धन तो सच्चे पति को पहचानना है। देख, ईश्वर जब तेरा अपना होगा तब सभी तेरे अपने हो जायेंगे क्योंकि जिन्हें तू सम्मुख देख पाता है वे सभी ईश्वर के हैं—ईश्वर का होकर तू प्यार रूप हो जायेगा। यदि तूने ईश्वर (पति) को नहीं पहचाना तो तू भ्रमवश उस साधन को ही सम्पत्ति मान बैठेगा जो तुझे शरीर रक्षा के निमित्त उपलब्ध है। ऐसे में तेरा जीवन कष्टों से भर जायेगा, तू निरीह व एकांकी हो जायेगा, तेरा अपना कोई नहीं रह जायेगा। अतः तू यदि धनी बनना चाहता है तो उस पति को पहचान जो तेरी पत रखने वाला है—सच्चे अर्थों में धनवान तू तभी होगा।

१४१३ रक्त के कण-कण में वासना फिर प्रेम के लिये स्थान कहाँ? जल वाष्प बनेगा, वासना प्रेम बनेगी, जब भक्ति की अग्नि प्रज्वलित होगी।

ऐ प्राणी! अभी तेरे खून की हर बूँद में वासना (स्थूल आकांक्षा) समायी हुई है ऐसे में तू प्रेम कैसे कर पायेगा? ऐसे में तू बाहर से ईश्वर का नाम लेता रहेगा किन्तु तेरे भीतर वासना की अग्नि धधकती रहेगी। देख, वासना से जोर-जबर्दस्ती द्वारा छुटकारा नहीं पाया जा सकता, इससे उबरने के लिये सहज भाव चाहिये—वह सहज भाव तुझे भक्ति से प्राप्त होगा। जब भक्ति की अग्नि तुझमें प्रज्वलित हो जायेगी एवं तेरी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी

होने लगेंगी, तभी तू शरीर से ऊपर उठ सकेगा जैसे अग्नि का सम्पर्क पाकर जल भाप बनकर ऊपर उठने लगता है। अतः तू यदि प्रेम को हृदय में बसाना चाहता है तो भक्ति कर कि तू वासना से मुक्त हो जाये और प्रेम से युक्त हो जाये।

१४१४ प्यार बुरा नहीं, परिणाम बुरा नहीं यदि सच्चे से (सत्य से) सच्चा प्यार हो।

ऐ प्राणी ! तू जिसे प्यार नाम देता है वह प्यार नहीं, स्थूल से स्थूल को पाने की लालसा मात्र है। इसे प्यार का नाम देकर तू प्यार को कभी नहीं जान पायेगा, तब तेरी दृष्टि में प्यार बुरा ही रह जायेगा। देख, प्यार कभी बुरा नहीं होता और न प्यार का परिणाम बुरा होता है यदि प्यार व्यक्ति-वस्तु के लिये न हो, ईश्वर से, ईश्वर मिलन के लिए हो। जब सच्चे (सत्य) से तेरा सच्चा प्यार हो जायेगा तब उसका परिणाम सर्वदा अच्छा ही अच्छा होगा। तब तेरी दुनिया कष्टों से भरी हुई नहीं होगी, आनन्द से सजी होगी क्योंकि प्यार ईश्वर है, इसके आगमन से बाहर व भीतर की दुनिया सज जाती है।

१४१५ परम गति—प्रेम से पद रज में रम कि आवागमन का भ्रम दूर हो।

ऐ प्राणी ! परम गति शरीर जाने के बाद नहीं होती, शरीर रहते ही होती है। जो ऐसा समझते हैं कि शरीर जाने पर परम गति मिलेगी—वे अभी धोखे में हैं। देख, तू यदि परम गति पाना चाहता है तो आगे की कल्पना न कर, तू प्रेम पूर्वक प्रभु चरणों में रम जा। जब उन चरणों में तुझे स्थान मिल जायेगा अर्थात् तू उन चरणों पर झुक जायेगा, तब तेरी गति सत्य की ओर होगी और तू जहाँ बैठेगा वहीं आनन्द पायेगा। तब आवागमन का भय भी तेरे समीप नहीं रह जायेगा, तू उस भ्रम से मुक्त हो जायेगा—जब तक यहाँ रहेगा प्रिय के साथ रहेगा और एक दिन प्रिय के समीप ही लौट जायेगा और यदि आवश्यकता हुई तो प्रिय के चरणों में ही पुनः लौट आयेगा।

१४१६ विकट और निकट—विकट प्रश्न है जीवन और मरण का। निकट है प्राणाधार, कहीं भी जाये प्राणी, प्राण चाहिये, आधार चाहिये।

ऐ प्राणी ! 'जीना और मरना' इसे आज तक भी कोई जान न सका अर्थात् 'मनुष्य आता कहाँ से है और जाता कहाँ है' यह प्रश्न आज तक भी प्रश्न ही है। तू इन प्रश्नों को यदि सम्मुख खड़ा कर लेगा तो उलझन में ही पड़ा रहेगा, जीवन का आनन्द नहीं ले पायेगा। अतः तू इस चक्कर में न पड़कर जो कुछ तुझे मिला हुआ है उसे देख। देख, तेरे सबसे निकट प्राणाधार प्रभु है फिर भी तू उससे दूर है। तू प्राणों का उपभोग तो करता है किन्तु ये टिके हुए किस पर हैं, इसे नहीं देखता। अरे पगले ! आधार को जाने बिना तू कैसे चैन पायेगा ? अतः तू विकट को सम्मुख खड़ा न कर, तू अति निकट की ओर उन्मुख हो कि तेरा जीवन आनन्द से भर जाये। तब जन्म मरण भी तेरे लिये समस्या नहीं रहेंगे, तू देख पायेगा कि जब जैसी जरूरत रहती है वैसा ही वह (प्राणाधार प्रभु) करता है।

१४१७ प्राणों का मोह प्राणी को फिर शान्ति कहाँ ? शान्ति निर्मोही को यह भी भ्रांति है। जहाँ प्रेम का राज्य वहीं समाप्त सब काज।

ऐ प्राणी ! तेरे प्राणों की चिन्ता तू न कर, तुझे यदि प्राणों का मोह हो जायेगा अर्थात् तू इसकी चिन्ता में लग जायेगा तो तू शान्ति से नहीं बैठ सकेगा, तू सदा बेचैन ही बना रहेगा। देख, शान्ति निर्मोही को भी नहीं मिलती, शान्ति से तो प्रेमी बैठता है। जिसे तू निर्मोही समझता है वह तो संसार के व्यवहारों से घबड़ा कर घर छोड़ता है, वह यही समझता है कि ईश्वर के सामीप्य के लिये घर छोड़ना पड़ता है किन्तु बात यह नहीं है। ईश्वर प्रेम से पाया जा सकता है। प्रेम का प्रादुर्भाव जब हृदय पटल पर हो जाता है तो व्यक्ति जहाँ बैठता है वहीं उसका प्रभु साथ होता है। तब न उसे शरीर की चिन्ता सताती है और न घर छोड़कर जाना पड़ता है—उसके चारों ओर प्रेम का साम्राज्य फैल जाता है।

१४१८ करवट बदली हुआ सबेरा—कर तब बदला हुआ सबेरा।

ऐ प्राणी ! प्रतिदिन रात होती है किन्तु वह रात देखते-देखते ही बीत

जाती है और सवेरा हो जाता है। देख, बाहर प्रकृति में तो परिवर्तन आ जाता है अर्थात् रात के बाद दिन का आगमन हो जाता है किन्तु तेरे जीवन में परिवर्तन नहीं आता। अरे पगले! तेरे जीवन में भी सवेरा हो सकता है किन्तु कब? जब तू कुछ कर गुजरने के लिये तैयार होगा। जब तक तू आहार, निद्रा, भय, मैथुन में ही लगा रहेगा तब तक तुझमें कोई परिवर्तन आने वाला नहीं। किन्तु जब तू ईश्वर-मिलन के लिये अग्रसर होगा अर्थात् तेरा हृदय उस सत्ता को जानने के लिये व्याकुल होगा जिसके आधार पर जीवन ठहरा हुआ है तो तेरा जीवन प्रकाशित हो उठेगा—तेरे जीवन का अन्धकार उसी दिन खत्म होगा।

१४१९ वियोग तीव्र स्मरण का भोग है, योग तल्लीनता का। स्मरण अनुकूलता, विस्मरण प्रतिकूलता।

ऐ प्राणी! योग (मिलन) तल्लीनता देता है और वियोग तीव्र स्मरण देता है। मिलन होने से जो तल्लीन हो जाते हैं उनका जब प्रिय से वियोग होता है तो वियोग उनके लिये असहनीय हो जाता है, प्रिय की याद उन्हें तीव्र रूप से सताने लगती है एवं प्रिय के बिना उनका जीवन दूभर हो जाता है। देख, स्मरण कभी बेकार नहीं जाता, स्मरण अनुकूलता उपस्थित करता है, स्मरण से वह प्रिय जो आँखों से ओझल हो गया था किसी न किसी रूप में आकर अवश्य उपस्थित हो जाता है क्योंकि याद कभी बेकार नहीं जाती, वह अवश्य पूरी होती है। किन्तु प्रिय से वियोग के पश्चात् जिन्हें प्रिय की याद सताती नहीं, प्रिय के बिना जो रह पाते हैं ऐसे जन से वह दूर ही रह जाता है। वे प्रिय का नाम तो लेते रहते हैं किन्तु प्रिय को पाते नहीं।

१४२० लजाना है कि ले जाना है दिल, मिले तो वाह-वाह नहीं तो ले आना है, अपना दिल, लजाना क्यों?

ऐ प्राणी! सन्त सत्य के प्रतिरूप होते हैं। तुझे उनके समीप जाने का कभी सुअवसर मिल जाये तो तू उन्हें कभी बुद्धि से न तौलना, संकोच छोड़कर उनके समीप दिल लेकर जाना। यदि वे यथार्थ में सन्त होंगे तो उनसे तेरा दिल मिल जायेगा, यदि सन्त वेश में साधु-सन्यासी होंगे तो दिल नहीं मिल पायेगा, तुझे तृप्ति नहीं मिलेगी—तब तू अपना दिल लेकर लौट आना। देख, उनके समीप जाने में तुझे कभी घबड़ाने की आवश्यकता नहीं और न लजाने की आवश्यकता है क्योंकि दिल वह यंत्र है जो प्रत्येक स्थिति को सही-सही

भाँपता है। अतः तू दिल की कद्र करना सीख, तू यदि दिल की कद्र नहीं करेगा तो स्थूल रूप में बहुत कुछ पाकर भी कोरा का कोरा ही रह जायेगा और कष्ट पाता रहेगा।

१४२१ आज दिल से छूता है कल हाथ से। हाथ मैले, दिल मैला इस मैल में कमल न खिलेगा, कुम्हला जायेगा, हाथ कुछ न आयेगा।

ऐ प्राणी! प्रिय की अनुभूति प्रथम दिल में होती है तत्पश्चात उसे सम्मुख भी पाया जा सकता है। जब तक दिल में अनुभूति नहीं होती तब तक ईश्वर की कल्पना ही की जा सकती है, उसका नाम ही सुना व लिया जा सकता है किन्तु उसे पाया नहीं जा सकता। देख, ईश्वर को शरीर की चेष्टा से पाना सम्भव नहीं क्योंकि शरीर में मैं का मैल होता है। जैसे-जैसे व्यक्ति शरीर से आबद्ध होता जाता है वैसे वैसे उसका हृदय भी गन्दा होता जाता है—ऐसे में हृदय कमल खिल नहीं पाता, कुम्हला जाता है और पाने के लिये आया हुआ व्यक्ति यहाँ से हाथ मलते ही चला जाता है। अतः तू ईश्वर को कार्यों से पाने की चेष्टा न कर, तू उसकी अनुभूति दिल में पा कि तेरे दिल की दुनिया आबाद हो जाये, तू कुछ ऐसा पा जाये जिसे पाकर कुछ पाना शेष न रह जाये।

१४२२ देख चन्द्र, मन शीतल हो। देख सूर्य, मन हर्षित हो। हर्ष हुआ कर्ष मिटा, शीतलता आई।

ऐ प्राणी! चन्द्रमा शीतलता का प्रतीक है और सूर्य प्रकाश का। चन्द्रमा की ओर देखकर मन शीतल होता है और सूर्य की ओर देखकर मन हर्षित होता है। देख, सूर्य का प्रकाश यदि तू भी पा सका तो तेरा मन हर्ष से भर जायेगा और कर्ष तेरे जीवन से विदा हो जायेगा क्योंकि जहाँ प्रकाश है वहीं हर्ष है और जहाँ अन्धकार है वहीं कर्ष है। प्रकाश के आगमन से तेरे जीवन में अन्धकार नहीं रह जायेगा, वह ऐसे विदा हो जायेगा जैसे सूर्योदय होने पर अन्धेरा विदा हो जाता है। तब तेरा हृदय जलवत् शीतल होगा, वह तुझे ही शान्ति प्रदान नहीं करेगा, शान्ति पाने के इच्छुक जो भी तेरे समीप आयेंगे उन्हें भी शीतलता प्रदान करेगा।

१४२३ खेल कर देख, दुःख भूल जायेगा, रोना याद न आयेगा। रोने वाले रोते रहे। खेलने वाले खेल खिलाते, खिल खिला कर हँसते हुए चले गये। आज भी लोग रोने में ही लगे हैं। वाह रे रोने के खेल, तू तगड़ा है इसीलिये न प्रिय संसार झगड़ा है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर ने खेल के लिए इस सृष्टि की रचना की है और तू इसे जेल समझे बैठा है और चूँकि जेल समझता है इसीलिये रोता रहता है। देख, सब कुछ भूलकर तू यहाँ एक बार खेल कर देख। तब दुःख को तू भूल जायेगा, दुःख तेरे समीप रह नहीं पायेगा—रोना भी तब तुझे याद नहीं आयेगा। यहाँ रोने वाले रोते रहते हैं किन्तु खेलने वाले स्वयं खेलते हैं और अन्य को भी (खेल) खिलाते हैं, वे हँसते-हँसते ही यहाँ से विदा होते हैं। किन्तु रोने वाले जीवन पर्यन्त रोते ही रहते हैं, उनके लिए चूँकि रोना ही प्रधान रहता है अतः आनन्द रूप संसार भी रणभूमि बन जाता है—ऐसे जन रोते-रोते ही यहाँ से विदा होते हैं।

१४२४ यदि मन है बेईमान और है शैतान क्या होगा इसका परिणाम ? नाम ले प्रेमी का, प्रेम में पिघल जायेगा—परिणाम भला ही होगा।

ऐ प्राणी ! तेरा मन चाहे कितना भी बेईमान (आलसी) हो और चाहे कितना भी शैतान (चञ्चल) हो तो भी तू घबड़ा नहीं, तू सन्त (प्रेमी) की शरण ग्रहण कर। देख, सन्त प्रेम रूप होते हैं और मन प्रेम का भूखा है, उनके समीप बैठकर जब यह प्रेम पायेगा तो पिघल जायेगा। फिर इसके कार्य पहले जैसे नहीं होंगे, जैसे भी रहेंगे उनमें तेरी भलाई होगी। अतः तू मन को जोर जबर्दस्ती से वश में करने की चेष्टा न कर और न इसकी गतिविधि को देखकर हताश-निराश हो। तू प्रेम रूप सन्त के समीप जा कि तेरा मन स्वतः बदल जाये और मन के सामीप्य से तू लाभ उठा पाये।

१४२५ चिर सुन्दर का उपासक रूप नहीं सुन्दरता का प्रेमी है। जीवन विलासिता के लिये नहीं, उपासना के लिये है।

ऐ प्राणी ! जहाँ सुन्दरता की उपासना है वहाँ उपासना रूप की नहीं,

उस भाव की है जो चिर सुन्दर है। देख, रूप के उपासक का जीवन विलासिता में व्यतीत होता है किन्तु भाव के उपासक की दुनिया सूक्ष्म होती चली जाती है, उसका जीवन उपासनामय होता जाता है। उपासना करते-करते एक दिन वह उसे सम्मुख देख पाता है जो अति समीप प्राणों में ही आसन जमाये बैठा है—उपासना उसी दिन सार्थक होती है। जब तक व्यक्ति सुन्दरता का उपासक नहीं होता तब तक वह उपासना के नाम पर कुछ कार्य कलापों में एवं रूप में अटक जाता है, चिर सुन्दर को नहीं देख पाता अर्थात् चिर सुन्दर से दूर ही रह जाता है।

१४२६ खोज में मौज है यदि खो गया और हो गया तेरा। न खोजा तो अब भी खोज, नहीं तो मौज कहाँ?

ऐ प्राणी! खोजी को इच्छित वस्तु की प्राप्ति अवश्य होती है। किन्तु उसकी खोज यदि ईश्वर प्राप्ति के लिए होती, खोजने में वह तल्लीन हो जाता, उसे अपना ध्यान ही नहीं रह जाता अर्थात् उसी में वह पूर्णतया डूब जाता तो वह मौज पा जाता। देख, इस दुनिया में ईश्वर को भुलाकर मौज है ही नहीं, मौज यदि कहीं है तो ईश्वर के चरणों में है। अतः तूने यदि ईश्वर की खोज नहीं भी की है तो अब भी उसकी खोज कर अन्यथा तू मौज पाने की इच्छा में भटकता ही रह जायेगा, मौज के दरशन नहीं कर पायेगा।

१४२७ साख है तो नाक है नहीं तो जीवन भार। साख देगा, जीवन सखा। सखा नहीं तो जीवन व्यथा।

ऐ प्राणी! साख सुन्दर भावों की प्रतीक है। जहाँ सुन्दर भाव रहते हैं वहाँ साख बनाने की चेष्टा नहीं करनी पड़ती, देर सवेर स्वतः साख जमती है। किन्तु जहाँ सुन्दर भावों का अभाव रहता है वहाँ व्यक्ति साख जमाने की अनेक चेष्टायें करता है फिर भी सफल नहीं हो पाता, यदि समय विशेष के लिये उसकी साख बनती भी है तो वह टिकती नहीं। देख, सुन्दर भाव प्रभु की शरण में मिलते हैं। जब तक व्यक्ति ईश्वर को जानता नहीं, मानता नहीं तब तक वह सत्य व सुन्दर भावों का स्वामी नहीं बन सकता और तब तक उसका जीवन सजता नहीं, भार होता है। अतः तू उस जीवन साथी की खोज कर जो हर पल तेरे साथ है—उसका साथ पाकर ही तू साख के योग्य बनेगा

अन्यथा थोथी साख बनाने के चक्कर में तू कोरा का कोरा ही रह जायेगा और भीतर ही भीतर कष्ट पाता रहेगा।

१४२८ बस करेगा या वश करेगा मन को। बुद्धि बल पर असम्भव। सम भाव हो तो असम्भव भी सम्भव।

ऐ प्राणी ! तू मन के इशारे पर न नाच और न मन को वश में करने की चेष्टा कर क्योंकि मन बुद्धि के वश में आने वाला नहीं। देख, तू यदि मन के कार्यों से थक गया है तो मन मोहन की शरण ले। मनमोहन जब तेरे सम्मुख होगा तब तेरे मन की गतिविधि बदल जायेगी। तब तुझे न उसके चक्कर को रोकने की चेष्टा करनी पड़ेगी और न उसे वश में करना पड़ेगा, वह प्रेम पाकर स्वतः उन्हीं चरणों का भँवरा बन जायेगा। फिर मन के खेल अनोखे होंगे—वह सबसे प्यार करने का इच्छुक बनेगा। अतः तू मन पर जोर जबर्दस्ती न कर उसे प्रेम रस का पान करा कि वह स्वतः तेरे वश में हो जाये और सबसे प्यार कर पाये।

१४२९ भव में आया सम न हो सका, शमन, दमन न हो सका। शरण में मन शमन, दम न ले जब तक सम न हो।

ऐ प्राणी ! संसार में आने का एवं मनुष्य जीवन धारण करने का एकमात्र उद्देश्य ईश्वर से मिलन है। देख, जब तक तू यहाँ ईश्वर को सम्मुख नहीं देख पायेगा तब तक मन के इशारे पर नाचता रहेगा एवं इन्द्रियों का दास बना रहेगा। तू इन्हें वश में करने की चेष्टा भी करेगा तो असफल ही रहेगा, इनका दमन शमन नहीं कर पायेगा। इन पर विजय पाने का रास्ता ईश्वर की शरण है अतः तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर। ईश्वर की शरण पाकर तेरा चञ्चल मन स्वतः शान्त हो जायेगा वह प्रभु के चरणों का भँवरा बन वहीं रसपान में लग जायेगा क्योंकि मन रस का भूखा है। मन की तृप्ति तन को भी प्रेरित करेगी परिणाम तन दम नहीं लेगा जब तक कि ईश्वर को पूर्णतया सम्मुख नहीं देख लेगा। अतः तू तन-मन को बुद्धि द्वारा नियंत्रित करने की चेष्टा न कर, तू सीधे रास्ते चल अर्थात् प्रभु की शरण ग्रहण कर कि इनकी गतिविधि बदल जाये और तू आनन्द पाये।

१४३० वस्त्रों ने दिल की दरिद्रता छिपाई। दिलदार ने परवाह न की वस्त्रों की दुनिया की। ये वस्त्र तुझे दिल का धनी न बना सकेंगे।

ऐ प्राणी! जो दिल की कद्र नहीं करते उनका दिल गन्दा रहता है, वे दिल के भावों (दरिद्रता) को सुन्दर वस्त्र एवं बनावटी बातों से छुपाते रहते हैं। किन्तु जो दिलदार (दिल की कद्र करने वाले) हैं वे दिल के भावों को कभी छुपाते नहीं, वे उनमें परिवर्तन के इच्छुक रहते हैं। वे न वस्त्रों की परवाह करते हैं और न दुनिया की, वे केवल दिल की परवाह करते हैं क्योंकि उन्हें दिल का धन ही सबसे अधिक प्रिय होता है। देख, जो दिल के भावों को छुपाते हैं उनका दिल दिन ब दिन और अधिक दरिद्र होता जाता है किन्तु जो कद्र करते हैं वे दिल के धनी हो जाते हैं, उनका दिल सुन्दर व सुमधुर भावों से सज जाता है। एक का जीवन कष्टों से भर जाता है किन्तु दूसरा आनन्द रूप हो जाता है क्योंकि उसने बाहर वाले को नहीं सजाया, भीतर वाले (दिल) को सजाया है।

१४३१ तार भी लगा है जो तारीफ करता है। देखेगा तो उसी का हो जायेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर को देखे बिना तू ईश्वर की प्रशंसा के पुल न बाँध क्योंकि देखे बिना तेरी बातें काल्पनिक होंगी। तब वे सुनने में आकर्षक भी होंगी तो हृदय स्पर्शी नहीं होंगी, न वे तुझे रस दे पायेंगी और न सुनने वाले को ही रिझायेंगी, केवल सबका मन बहलायेंगी। अतः तू पहले ईश्वर का बन तथा उसे ऐसे अनुभव कर जैसे किसी जीते जागते व्यक्ति को देखता है। जब तू उसे सम्मुख देख पायेगा तब वह तुझसे दूर नहीं रह जायेगा, तू उसी का हो जायेगा और तब तेरा रोम-रोम उसकी तारीफ करता रहेगा—तू भी उसमें डूबा हुआ आनन्द पाता रहेगा और अन्य भी उस आनन्द का उपभोग कर सकेंगे।

१४३२ हरा भरा उद्यान, हरि का ध्यान भूल बैठा। अब सूखा ही सखा है, सुख नहीं, क्यों? जहाँ हरि का ध्यान नहीं, वहाँ सुख कहाँ?

ऐ प्राणी! तू तेरे चारों ओर हरा-भरा उद्यान पाकर उसी का उपभोग

करने में लग गया किन्तु जिसने इसे सजाया है उस सजाने वाले (हरि) को ही भूल बैठा। देख, यह संसार चाहे कितना भी आकर्षक क्यों न हो, ईश्वर को भुलाकर यहाँ सुख है ही नहीं। ईश्वर को भूलने से तू भ्रमवश इसके पीछे भागता रहेगा किन्तु पायेगा कुछ भी नहीं, तेरे भीतर सदा अतृप्ति ही बनी रहेगी। अतः तू इस उद्यान के मालिक को पहचान जिसने यह उद्यान लगाया है कि तू इसकी हरियाली को देखकर हरा-भरा हो पाये और तेरे भीतर की दुनिया सज जाये। अन्यथा हरे-भरे उद्यान में रहकर भी तू सूखा ही रह जायेगा, कभी सुख नहीं पा सकेगा।

१४३३ शिखा से कुछ सीखा ? जलते जलते शिखा बनी। प्रेम की अग्नि, ज्ञानाग्नि से कहीं अधिक तीव्र होती है।

ऐ प्राणी ! दीपक जलते ही तेज नहीं हो जाता, उसकी लौ धीरे-धीरे बढ़ती है—प्रेम की भी यही बात है। प्रेम पथ पर कदम रखते ही व्यक्ति प्रेम को नहीं पा जाता, धीरे धीरे हृदय पर उसका आधिपत्य जमता है। देख, प्रेमाग्नि जब एक बार लग जाती है तो बुझती नहीं, वह दिन ब दिन प्रखर रूप धारण करती जाती है किन्तु ज्ञानाग्नि की यह बात नहीं। ज्ञानाग्नि से प्रेमाग्नि कहीं अधिक तीव्र होती है क्योंकि ज्ञान का प्रारम्भ बुद्धि से होता है जबकि प्रेम का हृदय से। बुद्धि के विचार बदलते रहते हैं किन्तु हृदय कभी नहीं बदलता, वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। अतः तू प्रेम पथ का पथिक बन कि प्रेमाग्नि तेरे हृदय में प्रज्वलित हो जाये और तेरा जीवन दीपशिखा की तरह प्रकाशमान हो उठे।

१४३४ जीवन भार, यदि न हो आधार। जीवन उपहार यदि हो सत्याचार।

ऐ प्राणी ! सम्पूर्ण संसार आधार पर टिका हुआ है किन्तु तू यहाँ निराधार भटक रहा है। इसका कारण यह है कि तू आधार को भूल बैठा है और स्वयं को ही कर्त्ता जानकर जीवन यापन कर रहा है। देख, आधार के बिना जीवन भार होता है। यदि तेरा जीवन आधार रहित होगा तो तू हमेशा चिन्तित, परेशान व बोझिल ही बना रहेगा—ऐसे में तेरा जीवन बोझ बन जायेगा। किन्तु तू यदि सत्य पथ का पथिक होगा तो आधार के बिना रह नहीं पायेगा। तब कर्त्ता तेरे सम्मुख होगा, तू सारी क्रिया उसी के द्वारा

सम्पादित देख पायेगा—ऐसे में तेरा जीवन साधारण नहीं होगा, उपहार बन जायेगा। अतः तू यदि जीवन का आनन्द पाना चाहता है तो सत्य पथ का पथिक बन कि तेरा हर श्वास सत्य भावों से सुसज्जित हो जाये और आधार को पाकर तेरा जीवन उपहार बन जाये।

१४३५ तन्मय हो जा, मन शान्त हो। अन्यथा यों ही आयेगा, यों ही पछतायेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर के कार्य समय विशेष के लिये राहत पहुँचा सकते हैं, उन्हें अपनाकर मन शान्त नहीं हो सकता—मन की शान्ति के लिये ईश्वर के चरणों में तन्मयता चाहिये। देख, तू यदि शान्ति का उपासक है तो ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य करके ही सन्तोष न ले, तू ईश्वर के चरणों पर झुक जा तभी तेरा मन शान्त हो सकेगा। अन्यथा तेरा संसार में आना बेकार (निरर्थक) होगा, तू यों ही आयेगा और यों ही चला जायेगा और जब तेरे जाने का समय होगा तो पछतावा ही तेरे पल्ले पड़ेगा। अतः तू मिले हुए अवसर (जीवन की अवधि) का लाभ उठा अर्थात् प्रभु के चरणारविन्द में तन्मय हो जा कि तेरा मन शान्त हो जाये, तू यहाँ आने का आनन्द ले पाये और आनन्द के साथ ही यहाँ से विदा हो जाये।

१४३६ आ (मेरे) देश यही आदेश।

ऐ प्राणी! तू इधर उधर न भटक, तू ईश्वर की शरण में जा क्योंकि ईश्वर की शरण पाकर ही तू यहाँ सुख से रह सकेगा। यदि तू ईश्वर की शरण नहीं लेगा तो आनन्द के लिए मिला हुआ यह संसार—जिसके कण-कण में ईश्वर समाया हुआ है—तेरे लिए कष्ट रूप होगा क्योंकि यह संसार सुख उन्हें ही देता है जिन्हें ईश्वर की शरण मिली है। जिन्होंने ईश्वर की शरण नहीं पायी वे यहाँ हर पल रोते रहते हैं, उन्हें दुःख चिन्ता आदि अनेक भाव घेर लेते हैं। अतः आदेश शब्द के अनुसार तू प्रथम ईश्वर के देश में आ अर्थात् ईश्वर की शरण ले तत्पश्चात् संसार की ओर उन्मुख हो कि तू जीवन तथा जगत का आनन्द ले पाये।

१४३७ सन्तोष कैसे हो, जहाँ विश्वास का अभाव हो। अविश्वासी सदा विनाशी।

ऐ प्राणी! सन्तोष विश्वासी के समीप वास करता है। जहाँ विश्वास

का अभाव रहता है वहाँ सब कुछ पाकर भी व्यक्ति निर्धन ही बना रहता है, उसे सदा अभाव घेरे रहता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी प्राप्त वस्तु-व्यक्ति, धन जन आदि का सुख नहीं भोग पाता, वे ही उसे भोगते रहते हैं अर्थात् वह भीतर ही भीतर तिल तिल करके जलता रहता है। देख, अविश्वास मीठा जहर है, इसे धारण करने वाला शरीर जाने पर नहीं मरता, जीवित रहते हुए मृत्यु सम जीवन यापन करता है और दिन ब दिन निम्नतर भावों से घिरता जाता है—उसे शान्ति-सन्तोष के दरशन दुर्लभ होते हैं। उसका आने जाने का क्रम कभी खत्म नहीं होता, वह बार-बार यहाँ आता जाता रहता है।

१४३८ राह ही हत तो राहत कहाँ ?

ऐ प्राणी ! स्थूल में भटकते भटकते तू आने के उद्देश्य को ही भूल गया परिणाम तेरी राह ही बदल गई और अब जब राह ही खो गई तो तुझे राहत कैसे मिले ? देख, राहत सही राह पर बढ़ने से मिलती है। सही राह पर बढ़ने वाला एक दिन मंजिल तक अवश्य पहुँच जाता है किन्तु गुमराही को चैन नहीं मिलता। गुमराह हुआ व्यक्ति जितना आगे बढ़ता जाता है उतनी ही उसकी बेचैनी भी बढ़ती जाती है। उसे राहत तभी मिलती है जब उसे भूल का अहसास होता है और उस भूल को सुधारने के लिये वह सचेष्ट होता है। किन्तु गुमराही के लिये अपने बल पर इतना कुछ करना सम्भव नहीं, यह सब कुछ सन्त की शरण में सम्भव है। जब उसे सन्त की शरण मिल जाती है तब उसे सही दिशा का बोध होता है और तभी वह सही राह पर बढ़ता हुआ राहत पाता है अन्यथा वह सदा बेचैन ही बना रहता है।

१४३९ शून्य में आवाज गूँज रही है। शून्य महल में प्रियतम का वास। शून्य का इतना महत्व क्यों ? शून्य बढ़ती गई, मूल्य बढ़ता गया यदि एक का ध्यान हो, ज्ञान हो।

ऐ प्राणी ! यदि कहीं पहले से ही आवाज होती रहे तो वहाँ सुमधुर ध्वनि सुनायी नहीं देती क्योंकि सुमधुर ध्वनि को सुनने के लिये शान्त वातावरण चाहिये। देख, तेरे भीतर भी प्रियतम प्रभु का वास है एवं उसकी सुमधुर ध्वनि हमेशा गूँज रही है किन्तु तू उसे तब देख, सुन पायेगा जबकि तेरा हृदय शून्य (खाली) होगा। जब तक तेरा हृदय शून्य नहीं होगा तब तक आवाज गूँजती भी रहेगी तो वह तुझे सुनायी नहीं पड़ेगी और न तू प्रियतम प्रभु के ही दरशन

कर पायेगा। देख, शून्य के खेल अनोखे होते हैं। केवल शून्य का कोई महत्व नहीं होता किन्तु यदि एक साथ रहे तो शून्य की कीमत बढ़ती जाती है। अतः तू उस एक को पहिचान जो सदा तेरे साथ है और तब हृदय से खाली हो कि उसके साथ से तेरी दुनिया सज जाये। उसका साथ पाकर तू जितना अधिक खाली होता जायेगा उतनी ही तेरी कीमत बढ़ती जायेगी अर्थात् ईश्वर तेरे समीप आता जायेगा।

१४४० तुम प्रियतम हो फिर तम क्यों, गम क्यों, भाव कम क्यों, मृत्यु के पश्चात् यम क्यों? निरर्थक दम्भ क्यों? वासना है प्रेम नहीं। प्रेम में इनकी गति नहीं।

ऐ प्राणी! प्रेम और वासना में अन्तर बाहर का नहीं होता, भीतर का होता है। वासना में सने व्यक्ति का जीवन अन्धकार से भरा होता है जबकि प्रेम में डूबे व्यक्ति का जीवन प्रकाश पूर्ण होता है। देख, ईश्वर के नाम पर की जाने वाली पूजा प्रेम से भी सम्पादित की जाती है और वासना पूर्त्ति के लिये भी की जाती है। जब प्रेम से की जाती है तब उसका रूप अनोखा होता है किन्तु जब वासना पूर्त्ति के लिये की जाती है तब देखा जाता है कि पूजा करने वाले का भी जीवन अन्धकार से घिरा रहता है, दुःख उसका साथ नहीं छोड़ता, उसमें भाव की जागृति नहीं होती, उसे सदा मृत्यु का भय बना रहता है एवं अहंकार में सना हुआ वह अपने समान किसी को नहीं समझता। यदि उसने प्रेम प्रकाश पाया होता तो ये (तम, गम, यम) उसके समीप ठहर नहीं पाते, यदि आते तो भी लौटकर चले जाते और वह प्रिय के चरणों में बैठा मौज मनाता।

१४४१ पद पद पर विपद, कहाँ निरापद? पद स्पर्श कर धूलि ले, प्रभु के प्रियजनों की। अब कहाँ विपद, अब सम्पद है, सम पद है।

ऐ प्राणी! अभी तेरा जीवन अनेक विपदाओं से घिरा हुआ है, कदम-कदम पर तुझे कष्ट झेलने पड़ते हैं, तू स्वयं को निर्विघ्न नहीं पाता। इसका कारण यह है कि तू ईश्वर को भूल गया है और अपनी छोटी सी दुनिया बसाकर उसका कर्त्ता स्वयं बन बैठा है। देख, आज भी तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर और इसके लिये जो प्रभु के प्यारे हैं उनकी चरण धूलि ले। ईश्वर उनमें

प्रकट रूप से विराजता है, उनके सान्निध्य में तेरा सोया प्रेम जाग जायेगा और तू भी ईश्वर को प्रत्यक्ष देख पायेगा। ईश्वर जब तेरे सम्मुख होगा तब तू कर्त्तापन के मैं से मुक्त हो जायेगा परिणाम तेरी विपदाओं का भी अन्त हो जायेगा। तब तू उस धन का धनी होगा जिसके लिये सर्व सम्पन्न भी तरसते हैं क्योंकि तूने चरण की शरण जो पाई है।

१४४२ मैंने माना, मैं नहीं मानता। जहाँ 'मैं' है वहाँ मानना न मानना बेकार। मैं का परित्याग, शरणागति।

ऐ प्राणी! ईश्वर का द्वार बहुत सँकरा होता है, उसमें उनका प्रवेश नहीं हो पाता जो 'मैं' से मोटे हो गये हैं, उसमें केवल उनको ही प्रवेश मिलता है जो सर्वथा अहंकार शून्य हैं। जब तक व्यक्ति 'मैं' के साथ जीता है तब तक उसका ईश्वर को मानना और नहीं मानना दोनों बराबर हैं। तब यदि वह ऐसा कहे कि मैं ईश्वर को मानता हूँ तो यह गलत है और यदि ऐसा कहे कि मैं नहीं मानता तो यह भी गलत है क्योंकि अभी वह ईश्वर की ओर बढ़ा ही नहीं है फिर मानना, नहीं मानना कैसा? देख, ईश्वर के द्वार में प्रवेश पाने के लिये तुझे अहंकारशून्य होना होगा और इसके लिये तुझे कुछ करने की आवश्यकता नहीं, तू केवल मैं का परित्याग कर दे अर्थात् ईश्वर की शरणागति ले ले। तब तू देख पायेगा कि तू कहीं और नहीं, ईश्वर की गोद में ही बैठा है—उस दिन से ईश्वर सदा तेरे साथ होगा।

१४४३ प्रकृति पहचान न सकी। जड़ है। चेतन मानव भी यदि प्रकृति का दास बने तो वह भी जड़ है। जड़ है तो सड़। कल्याण चाहता है तो पड़ और पकड़ उस चेतन के चरण कि प्रकृति तुझे जड़ न बना सके।

ऐ प्राणी! प्रकृति जड़ है इसीलिये वह ईश्वर से दूर है किन्तु तू तो जड़ नहीं, तू तो चेतन है फिर तू क्यों प्रकृति से उत्पन्न जड़ वस्तुओं के पीछे परेशान है? देख, चेतन होते हुए भी तू यदि जड़ के पीछे भागता रहेगा तो तू भी जड़ ही हो जायेगा। ऐसे में तू कभी सुख नहीं पायेगा, तेरा अमन चैन छिन जायेगा। अतः तू अपना कल्याण चाहता है तो तू झुक जा और झुककर चैतन्य (चेतना देने वाले) के चरण पकड़ ले। जब तू चैतन्य की शरण

में होगा तो प्रकृति तुझे अपना दास नहीं बना सकेगी अर्थात् जड़ वस्तुएँ तुझे नहीं लुभा सकेंगी, तू उनका प्रयोग केवल साधन समझ कर करता रहेगा।

१४४४ अवधि है आयु की कार्यों की। किन्तु 'धी' (बुद्धि) नहीं तो अवधि का अन्त नहीं। पी कुछ ऐसा रस कि प्रिय की याद बनी रहे।

ऐ प्राणी! आयु की एक निर्धारित अवधि है एवं कार्यों की भी यही बात है। इस निर्धारित अवधि में यदि तुझमें विवेक की जागृति नहीं हुई तो तेरी अवधि का कभी अन्त नहीं आयेगा अर्थात् तू यहाँ बार-बार आता जाता रहेगा। देख, 'यहाँ तू क्यों आया है' प्रथम इसे जान क्योंकि तुझे मिली हुई अवधि बहुत कम है। तू यदि गफलत में ही पड़ा रहा तो तेरा समय खत्म हो जायेगा और तेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेंगी फिर पीछे तू पछताता रहेगा। अतः तू समय रहते-रहते होश में आ अर्थात् कुछ ऐसा रस पान कर जिसे कभी भुला न सके। वह रस तुझे सत्संग में मिलेगा। सत्संग में बैठ कर तू उस प्रेम रस का पान कर पायेगा जिसे पान करने के लिये देवता भी तरसते हैं। तब तू प्रिय प्रभु को कभी भूल नहीं पायेगा, वह सदा तुझे याद आता रहेगा—तेरा जीवन पाना तभी सार्थक होगा और तेरे आने जाने का क्रम भी तभी खत्म होगा।

१४४५ पतवार तेरे हाथ में है। पत रखेगा या पत जायेगी। पत वार, पत रहेगी, पतन का भय न रहेगा।

ऐ प्राणी! जिनके जीवन की बागडोर (पत) ईश्वर के हाथ में है उनको ईश्वर से कहना नहीं पड़ता कि 'मेरे जीवन की पतवार तेरे हाथ में है' और न उन्हें यह भय रहता है कि 'मेरी पत रहेगी या जायेगी'—वे तो निश्चिन्त हो जीवन यापन करते हैं। ऐसा उन्हें कहना पड़ता है जिन्होंने अभी ईश्वर को पूर्णतया जाना नहीं। ऐसे जन मुख से (प्रार्थना आदि के रूप में) बहुत कुछ कहते हैं किन्तु वे न तो ईश्वर को जानते पहचानते हैं और न उसे कुछ सौंपते ही हैं। यदि वे ईश्वर का परिचय पा जाते तो बड़ी-बड़ी बातें नहीं करते, उनकी पत (इज्जत) ईश्वर के हाथ में होती और उन्हें पतन का भय भी नहीं रहता। उनके सम्मुख केवल वह प्रभु होता जो सबकी पत रखने वाला है—वे उसी के चरणों का रसपान करते हुए उसी की याद में खोये रहते।

१४४६ अब तक समझ न पाया। अब तक (देख) समझ पायेगा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को बुद्धि बल की चेष्टा से नहीं पाया जा सकता, प्यार से पाया जा सकता है। जो बुद्धि बल पर उसे पाने की चेष्टा करते हैं वे ईश्वर के बारे में बहुत सी बातें जान लेते हैं, ईश्वर के नाम पर अनेक क्रिया कलाप भी कर लेते हैं किन्तु ईश्वर को नहीं देख पाते। ईश्वर को पाने का रास्ता प्यार है और प्यार पैदा नहीं किया जाता। ईश्वर जब अपना होता है तो प्यार स्वतः हो जाता है और जब हो जाता है तो जाता नहीं। अतः जहाँ बैठकर ईश्वर तेरा अपना बन जाये तू उस सत्य संग को ग्रहण कर कि तू उसकी ओर देख (तक) पाये। तब ईश्वर से तेरा प्यार हो जायेगा और ईश्वर की दुनिया का आनन्द भी तू तभी पायेगा।

१४४७ यह कैसा ज्ञान है जिसमें कृतज्ञता का भाव भी नहीं। भक्ति अति महान। अहंकार ने व्यक्ति को अति क्षुद्र बनाया। मन की दरिद्रता ने केवल अहंकारी ही बनाया।

ऐ प्राणी ! जिस भाव (ज्ञान) को अपनाकर हृदय में कृतज्ञता का भाव न आये, वह भाव ईश्वर के समीप नहीं ले जा सकता। जो भाव (भक्ति) ईश्वर की झलक दिखाये, हृदय में नम्रता प्रदान करे—भाव वही महान है। देख, जहाँ कृतज्ञता का अभाव रहता है वहाँ अहंकार का प्रभाव अधिक से अधिक फैलता जाता है जिसे अपनाकर व्यक्ति अति क्षुद्र हो जाता है और दिन ब दिन निम्नतर अवस्था में पहुँचता जाता है। मन से दरिद्र व्यक्ति अर्थात् जिसका मन चञ्चल है वह तो केवल मन का भिखारी होता है किन्तु जो अहंकारी है उसका तो सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, वह किसी भी चीज का आनन्द नहीं ले पाता। अतः तू वह भाव न अपना जो तुझे अहंकारी बनाये, तू उन भावों की ओर अग्रसर हो जो तुझे नम्रता प्रदान करे।

१४४८ दीप में यदि स्नेह न हो तो निरर्थक दीपक।

ऐ प्राणी ! दीपक में यदि तेल न रहे तो दीपक निरर्थक होगा, वह रोशनी तभी देगा जब उसमें तेल हो। मनुष्य जीवन की भी यही बात है। मनुष्य शरीर तो मिल गया किन्तु इसमें यदि प्रेम (स्नेह) न हो तो इसकी कोई सार्थकता नहीं। ऐसे में जीवन में अन्धेरा ही बना रहेगा, यह प्रकाशमान तभी होगा जब प्रेम से भरा होगा। अतः तू यदि प्रकाशमान जीवन का इच्छुक

है अर्थात् आनन्द से जीना चाहता है तो प्रेम को हृदय में प्रश्रय दे। जब तेरे हृदय में प्रेम स्थान पा जायेगा तब तुझे जीवन का अन्धकार खत्म नहीं करना होगा, वह स्वतः ऐसे विदा हो जायेगा जैसे सूर्य के आगमन से अन्धेरा।

१४४९ तारक नाथ है तो मारक भी नाथ है। मार अनेक तार एक।

ऐ प्राणी! ईश्वर केवल उद्धार करने वाला (तारकनाथ) ही नहीं, अनेक आते जाते भाव विचारों से रक्षा करने वाला (मारकनाथ) भी है। देख, मनुष्य कमजोर प्राणी है जब तक कि वह एक (ईश्वर) की शरण नहीं पा जाता। एक के अभाव में अनेक उस पर आक्रमण करते रहते हैं और उनसे वह जर्जरित होता रहता है। किन्तु जब संयोगवश वह एक की शरण पा जाता है तो वह 'एक' उसका उद्धार ही नहीं करता उन भावों से भी बचाता है जो उसे दिन रात जर्जरित करते रहते हैं। अतः तू यदि अपने चारों ओर की परिस्थितियों से घबड़ाया हुआ है तो तू एक ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू मार की दुनिया से बच जाये एवं तेरा हृदय सुमधुर भावों से सज पाये।

१४५० प्रभु की आन पर मर मिट कल्याण कल नहीं, आज ही होने वाला है।

ऐ प्राणी! गर्व के लायक न शरीर है और न धन-जन हैं, गर्व के योग्य यदि कुछ है तो वह ईश्वर है। देख, तुझे धन, जन, तन आदि जो कुछ प्राप्त हैं वह सब उसी की कृपा है, यदि वह नहीं तो कुछ भी नहीं। अतः तू यदि अपना कल्याण चाहता है तो प्रभु की आन पर मर मिट। तू जब प्रभु की आन पर होगा तो तेरा कल्याण कल नहीं होगा, आज ही होगा—तू आज ही स्वयं में परिवर्तन देख पायेगा। तब तेरे भीतर की दुनिया दूसरी हो जायेगी, वह प्रेम भाव से सजी होगी एवं आनन्द रस में पगी होगी अन्यथा तू बहुत कुछ पाकर भी भिखारी ही बना रहेगा।

१४५१ परलोक की बात करता है इस लोक को तो जान कि जान बचे। अन्यथा अन्य (लोक) व्यथा का कारण बनेगा, कथा का कारण बनेगा। जीवन बनेगा कि बिगड़ेगा, विश्वम्भर जाने।

ऐ प्राणी! तू परलोक को सुधारने की चेष्टा न कर, तू प्रथम इस लोक

को जान। तू यदि अन्य लोक की बातें करता रहेगा किन्तु इस लोक की तरफ ध्यान नहीं देगा तो तेरा परलोक तो सुधरने वाला है ही नहीं, तू इस लोक में सुख से नहीं रह सकेगा। देख, परलोक उनका ही सुधरता है जो इस लोक में आनन्द से रहना जानते हैं। उन्हें अलग से परलोक का ध्यान नहीं रखना पड़ता, उनके दोनों लोक स्वतः सुधरे रहते हैं। किन्तु जिन्होंने इस लोक का आनन्द नहीं पाया वे अन्य लोक को सजाने के चक्कर में व्यथित ही बने रहते हैं। इसके लिये वे कथा कहानियों का भी आश्रय लेते हैं फिर भी उनका जीवन उस अनुरूप नहीं बन पाता। अतः तू परलोक के चक्कर में न पड़, इसी लोक में सुन्दर व सुमधुर भाव ग्रहण कर कि तू जीवन पाने का आनन्द पाये।

१४५२ गया था पूजा देखने पाया क्या ? ऊपरी आडम्बर। वर पाता तो आडम्बर न रहता। डर न रहता मृत्यु जीवन का।

ऐ प्राणी ! पूजा के नाम पर तू ऊपरी आडम्बर को न अपना अन्यथा तू आडम्बर में ही अटक जायेगा, ईश्वर को समीप नहीं देख पायेगा। देख, तेरे ये आडम्बर तभी तक हैं जब तक कि तू ईश्वर से दूर है। जब आडम्बर छोड़ कर तू वर की खोज करेगा तो ईश्वर तुझसे दूर नहीं रह जायेगा और तब जीवन मृत्यु का भय भी तुझे नहीं रहेगा। जीवन का आनन्द उनको ही नहीं मिलता जो ईश्वर से दूर हैं और मृत्यु से भयभीत भी वे ही रहते हैं जो गफलत में जिन्दगी बिताते हैं। जो सतर्क रहकर प्रभु के चरणों में जीवन यापन करते हैं वे आडम्बर रहित हो, आगे-पीछे की चिन्ता छोड़कर प्रभु की स्मृति के साथ जीते हैं।

१४५३ है और था ने ऐसा हाथ फेरा कि जन्म-जन्म के फेर में पड़ गया। गा भविष्य के गीत गा ताकि प्राणों का मीत मिले, जीवन संगीत मिले।

ऐ प्राणी ! आज जो कुछ स्थूल रूप में तेरे पास है और कल जो कुछ तेरे पास था तू उनमें इतना रच पच गया है कि उनका साथ एक मिनट के लिये भी नहीं छोड़ता अर्थात् तू उन्हें क्षण भर के लिये भी नहीं भूल पाता। उनके साथ ने तेरे भीतर की दुनिया उजाड़ दी और तेरा भविष्य अन्धकारपूर्ण बना दिया। देख, जो आज प्रसन्न होकर जीते हैं वे ही कल प्रसन्न रह सकते हैं किन्तु

जो दिन रात रोते ही रहते हैं उनका भविष्य उज्ज्वल नहीं होता। अतः तू यदि सुन्दर भविष्य चाहता है तो जो तेरे प्राणों का मीत है उससे प्रेम बढ़ा कि तू देख पाये कि सब कुछ देने वाला वही है—कल भी उसी ने दिया था, आज भी वही दे रहा है तथा कल (भविष्य में) भी वही देगा। जिस दिन तू इस सत्य से अवगत होगा उस दिन से तेरा जीवन संगीतमय होगा तथा तेरा भविष्य भी तभी उज्ज्वल होगा।

१४५४ दिल काला तो मा काली—मा की लाली हृदय की लाली। भर ले जीवन की प्याली मा के प्यार में। कह उठेगा मैंने पाली मा की शरण पा ली।

ऐ प्राणी! जिनका दिल काला है वे मां काली को काली समझते हैं। उन्होंने अभी केवल मां काली का रूप देखा है, भाव नहीं देखा। देख, मां काली काली नहीं, उसका हृदय अत्यन्त कोमल (लाल-लाल) है। जो मां के समीप भाव से जाते हैं वे खाली नहीं लौटते, उनका हृदय मां का प्यार पाकर लाल हो जाता है। अतः तू मां काली के रूप को न देख, जिस भाव ने उसे पूजनीय वनाया है उस भाव को देख कि तेरे हृदय की प्याली मां के प्यार से लबालब भर जाये। तब तू कह उठेगा कि मेरी मां काली नहीं, हृदय की कालिमा का प्रक्षालन करने वाली है—आज मैंने मेरी मां की शरण पा ली है, पा ली है।

१४५५ मन ने जब बेहाल किया तो मनमोहन ने कहा—देख, मन का दास न बन, उदास हो जायेगा और कुछ न पायेगा। सुन मेरी बाँसुरी कि जीवन मुक्त हो जायेगा और कुछ ऐसा पायेगा जिसके लिये दुनिया तरस रही है।

ऐ प्राणी! मन बड़ा चंचल होता है, यह अच्छों-अच्छों को नचा डालता है किन्तु जो सत्य पथ के पथिक होते हैं उन्हें नहीं नचा पाता। मन छोड़ता तो उन्हें भी नहीं है किन्तु मनमोहन (जो उनके प्राणों में बसा है) उन्हें सतर्क करता रहता है, वह कहता है कि—"तू मन का दास न बन अन्यथा तू सदा उदास बना रहेगा और यहाँ कुछ पाने के लिये आया हुआ पाये बिना ही चला जायेगा। अतः तू मन की ओर देखना छोड़कर मेरी ओर देख। जब मेरी

आवाज तेरे कानों में होगी अर्थात् तू मेरा होगा तब किसी भी प्रकार के बन्धन तुझे बाँध नहीं सकेंगे, तू जीवन मुक्त होगा और कुछ ऐसा भाव पा जायेगा जिसे पाने के लिए अनेक तरसते रहते हैं।" देख, मनमोहन के द्वारा मिली हुई चेतना ही उन्हें गुमराह होने से बचा लेती है और उसी के इशारे पर वे आगे बढ़ते जाते हैं।

१४५६ कितनी माला फेरूँ कि दिल का भार उतरे? दिल वार कर देख, भार कहाँ दिलदार नज़र आये।

माला फेरना ईश्वर को याद करने का प्रतीक है किन्तु माला फेरते समय यदि ध्यान अन्यत्र रहे तो वह माला व्यक्ति के दिल का बोझ बढ़ाती है, कम नहीं करती। ऐसे में माला फेरकर व्यक्ति स्वयं को बहुत बड़ा भक्त समझ सकता है जबकि माला के एक मनके में भी वह ईश्वर को याद नहीं करता। ऐ प्राणी! ऐसी माला तू चाहे कितनी भी क्यों न फेर ले इससे तेरे दिल का बोझ कम होने वाला नहीं। तेरे दिल का बोझ तभी कम होगा जब माला तेरे हाथ में नहीं, दिल में होगी अर्थात् दिल को ही तू प्रभु के चरणारविन्द में अर्पित कर देगा। जब तेरा दिल समर्पित हो जायेगा तब तेरे दिल पर भार नहीं रहेगा, वह हल्का-फुल्का (खाली) हो जायेगा। तब दिल में ही तू दिलदार प्रभु की मूर्त्ति बसी देख पायेगा जिसे देखता हुआ तू मौज मनायेगा।

१४५७ गीता पढ़ूँ कि गीत गाऊँ? पढ़ नहीं पड़ उन चरणों में कि शीत, ग्रीष्म का कष्ट मिटे।

ऐ प्राणी! अर्जुन जब समरांगण में मोह ग्रसित होकर बैठ गया और उससे उबरने का उसे कोई रास्ता नहीं दिखाई दिया तब उसने भगवान श्रीकृष्ण की शरण ली थी—गीता का गान इसी का परिचायक है। देख, अब तू यदि गीता पढ़ने को एवं उसके गायन को ही सर्वस्व मान लेगा तो तेरा उद्धार होने वाला नहीं, तेरा उद्धार तभी होगा जब अर्जुन की तरह तेरे भीतर भी झुकने के भाव आयेंगे, तू ईश्वर की शरण ग्रहण करेगा। तब तू सभी परिस्थितियों में शान्त रहकर आगे बढ़ सकेगा अन्यथा कष्ट ही पाता रहेगा। अतः तू धार्मिक ग्रन्थों को ही प्रधान न बना, तू उनमें निहित भावों को ग्रहण कर कि तेरी दुनिया बदल जाये और तू झुकने के भावों से सज जाये।

१४५८ कर सके तो प्रेम कर। रख दे माला मरते समय काम आयेगी, व्यर्थ यों जान जायेगी।

ऐ प्राणी ! ईश्वर को कार्यों द्वारा नहीं पाया जा सकता, प्रेम से पाया जा सकता है। देख, प्रेम के बिना ईश्वर के नाम पर कार्य (माला फेरना, पाठ करना आदि) कितने भी क्यों न कर लिये जायें वे ईश्वर की अनुभूति नहीं दे सकते, अहंकार को ही बढ़ावा देते हैं। अतः तू हाथ की माला को उठाकर रख दे (शायद मरते वक्त यह तेरे गले की शोभा बन जाये) और ईश्वर से प्रेम कर। यदि तुझे प्रेम ऐसे न आता हो तो तू उन प्रेमियों के समीप बैठ जिन्होंने (ईश्वर से) प्रेम किया है। प्रेम पाकर ही तेरा जीवन धन्य होगा, 'ईश्वर क्या है और ईश्वर की समीपता से क्या मिलता है' आदि अनेक भाव भी तेरे सम्मुख तभी स्पष्ट होंगे। यदि तू प्रेम नहीं पायेगा, केवल कार्यों में ही उलझा रहेगा तो तेरा कीमती जीवन यों ही खत्म हो जायेगा—ऐसे में तू जीवन के आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

१४५९ लगा रह और गाता जा एक दिन वह रह न सकेगा जिसने तुझे जिन्दगी दी है।

ऐ प्राणी ! भाव की मूर्त्ति के दरशन पाकर तुझे यदि जीवन दान मिला है तो तू एक क्षण के लिये भी रुक नहीं, तू प्रेमपूर्वक आगे बढ़ता चल और प्रभु के गीत गाता जा, तब तू देख पायेगा कि ईश्वर स्वतः तेरे समीप आता चला जा रहा है। जब तू लगनपूर्वक उसकी ओर बढ़ता चला जायेगा तब वह तेरा वियोग सह नहीं सकेगा अर्थात् तेरे बिना रह नहीं पायेगा, वह तेरे पास दौड़ा चला आयेगा। अतः तू धीरज धारण कर और लगा रह उन चरणों में जो कोमल हैं, कमल हैं। तब तेरा हृदय भी कोमल हो जायेगा एवं कमलवत् खिल जायेगा—उस दिन तू साधारण नहीं होगा, तेरा दरशन पाने के लिये अनेक तरसेंगे क्योंकि तू आज उसका है जो सबका है।

१४६० दुनिया देती है गन्दगी—वह प्यारों को देता है बन्दगी। पसन्द तेरी।

ऐ प्राणी ! जो ईश्वर को भूलकर दुनिया की ओर बढ़ते हैं उनका हृदय गन्दा होता जाता है किन्तु जो ईश्वर की स्मृति के साथ जीते हैं उनका हृदय शुद्ध व स्वच्छ हो जाता है। देख, दुनिया के पास गन्दगी है और ईश्वर के

पास वन्दगी है और जिसके पास जो कुछ है उसकी समीपता वही दे सकती है। अतः तू शान्त होकर विचार कर कि तुझे क्या चाहिये, तुझे कौन सा भाव पसन्द है? यदि तू वन्दगी चाहता है तो तू ईश्वर की दुनिया में बैठ। तू जब ईश्वर की दुनिया में बैठेगा तब तेरा हृदय सदा ईश्वर की अर्चना में लगा रहेगा और उसके कार्यों को देखते हुए सदा उसका ऋणी बना रहेगा तथा मौज मनाता रहेगा। अन्यथा तू यहाँ गन्दगी बटोरता रहेगा और उस सड़ान्ध से कष्ट पाता रहेगा।

१४६१ सृष्टिकर्त्ता ने ठीक ही कहा था—एक दिन तू मुझे भूल जायेगा। अरे निर्मोही, मोह करेगा उनसे जो तेरे मोह का अनुचित लाभ उठायेंगे।

ऐ प्राणी! मोह करने योग्य शरीर के साथी नहीं, ईश्वर है जिसने तुझे जन्म दिया है और जो सदा तेरे साथ है। देख, तू जन्म देने वाले एवं सदा साथ रहने वाले को तो भूल बैठा है और जो कुछ समय के लिये साथी हैं तथा तेरे मोह का अनुचित लाभ उठाने वाले हैं उनके पीछे परेशान है। अरे पगले! ईश्वर ने सृष्टि तेरे आनन्द उपभोग के लिये बनायी है और तू है कि उसे ही भूल बैठा और यहाँ मिले साथियों से मोह करने लगा—ऐसे में तू सुख नहीं पायेगा भीतर ही भीतर सूख जायेगा। अतः तू उल्टे रास्ते न चल, तू सही राह पर कदम बढ़ा अर्थात् तू उस सृष्टिकर्त्ता की खोज कर जिसने सृष्टि का सृजन किया है कि तू उसकी सृष्टि में आने का आनन्द ले पाये, तेरे लिये यह सृष्टि कष्ट का कारण न बने।

१४६२ यह पत्थर की प्रतिमा नहीं, भाव की प्रतिमा है जो कहती है तू मुझे मा मा कहकर पुकार। तेरी नासमझी ने मुझे पत्थर बना डाला।

ऐ प्राणी! भाव वाले के लिये प्रतिमा पत्थर की नहीं होती, भाव की होती है, प्रतिमा को देखकर उसे भाव की उद्दीपना होती है। देख, भाव वाला रूप का उपासक नहीं होता किन्तु रूप उसके लिये उपेक्षित भी नहीं रहता क्योंकि रूप के माध्यम से ही उसमें भाव की जागृति होती है। उसे वह प्रतिमा भाव से अपनी ओर खींचती रहती है और कहती है कि "मैं प्रतिमा नहीं, तेरी मां हूँ, मैं प्यार भाव से तुझे सजाने वाली हूँ"—ऐसे जन ही

प्रतिमा पूजन का आनन्द लेते हैं। किन्तु जो प्रतिमा को पत्थर समझते हैं अभी उनका दिल पत्थर का है, उनकी नासमझी (अज्ञानता) ने ही उसे पत्थर का बना दिया है। अन्यथा ईश्वर पत्थर है नहीं, कोमल है और कठोर हृदय में कोमलता भरने वाला है।

१४६३ सो, इतना सो कि सृष्टि का प्रलय हो जाये और फिर भी तेरी आँखें न खुलें। क्या यही तेरे जीवन का उद्देश्य था। जाग, अब भी जाग। लय हो जायेगा मुझमें, तेरे लिये प्रलय न होगी।

ऐ प्राणी! तेरी आयु धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है फिर भी तू सोया हुआ है अर्थात आने के उद्देश्य से अनजान है। देख, तेरी यही अवस्था रही तो तेरी बाकी आयु भी बीत जायेगी और तू सोया का सोया ही रह जायेगा। ऐसे में तू यदि संसार से चला भी जायेगा तो तेरा यह क्रम (आना-जाना) खत्म नहीं होगा चाहे सृष्टि का प्रलय ही क्यों न हो जाये। अतः तू होश में आ तथा आने के उद्देश्य को जान। जब तू मेरी ओर उन्मुख होगा यथार्थ में तू उसी दिन जागेगा और एक बार यदि जाग जायेगा तो फिर तू सो नहीं सकेगा, तब तू मेरी ओर ही बढ़ता जायेगा और तब तक बढ़ता जायेगा जब तक कि मुझमें मिलकर एक नहीं हो जायेगा—उस दिन तेरी दुनिया आबाद होगी, उसमें प्रलय के लिये स्थान नहीं होगा क्योंकि तू मेरा जो है।

१४६४ मैं में हानि, महान को मही ने समझा फलती फूलती रही। नभ ने समझा प्रकाशपुञ्ज बना और ये नक्षत्र तो उसकी छत्रछाया में हैं ही।

ऐ प्राणी! ईश्वर की दुनिया में 'मैं' के साथ प्रवेश नहीं मिलता। जो मैं से घिर जाते हैं वे ईश्वर से दूर होते जाते हैं एवं दिन ब दिन निम्नतर अवस्था में पहुँच जाते हैं किन्तु दूसरी ओर जो ईश्वर की ओर देखते हैं वे विकसित होते जाते हैं। देख, महान (ईश्वर) को मही (पृथ्वी) ने समझा तो रत्नगर्भा हो गई, सदा फलती-फूलती रही, नभ ने समझा तो विशाल हो गया, सब पर छत्रछाया फैला दी तथा सारे जगत को रोशन कर दिया। तू भी जब महान की शरण में होगा तो तेरा क्या रूप होगा यह कहने-सुनने के परे है। तब तू उन भावों का स्वामी होगा जिसके सम्मुख पृथ्वी व आकाश सब

बौने नजर आयेंगे। अतः तू मैं का परित्याग करके महान की तरफ बढ़ता चल कि अपने सही रूप का दिग्दर्शन कर पाये।

१४६५ यह कैसा यन्त्र बनाया जो यन्त्रणा देता रहता है और यह कैसा मन्त्र दिया कि मन क्षण भर के लिए भी शान्त नहीं हो पाता। भजे तब न जब कुछ तजे और चाहता है यों ही मजे।

ऐ प्राणी! यह शरीर यन्त्र है और विचार भाव मन्त्र हैं। व्यक्ति जैसे विचार भावों के साथ जीता है वैसी ही उसके शरीर की गतिविधि होती है। यदि उसका मन स्थूल की ओर दौड़ता है तो वह (मन) क्षण भर के लिए भी शान्त नहीं हो पाता और तन को भी यन्त्रणा देता रहता है—ऐसे में शान्ति सन्तोष के दरशन कठिन हो जाते हैं। देख, शान्ति ईश्वर के चरणों में है। जब तक स्थूल का मोह छोड़ने के लिये तू तैयार नहीं होगा तब तक तेरा भजन प्रारम्भ नहीं होगा और न तू जिन्दगी का मजा ही ले पायेगा चाहे तू मजा लेने की कितनी ही चेष्टा कर ले। अतः तू मोह छोड़कर ईश्वर का भजन प्रारम्भ कर। तब तुझे कुछ छोड़ने व पकड़ने की चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, वे कार्य स्वतः छूट जायेंगे जो ईश्वर भजन में बाधक हैं और तू उन भावों का स्वामी होगा जो ईश्वर की ओर ले जाने वाले हैं—तन पाने का मजा तू तभी पायेगा अन्यथा यों ही समय गँवायेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

१४६६ खुद राह बना सकेगा या कहेगा कि या खुदा, राह बता, नहीं तो खुदरा-खुदरा में जिन्दगी बीतेगी।

ऐ प्राणी! तू यदि ईश्वर की ओर जाने का रास्ता जानता है तो तू आगे बढ़ता चल और यदि नहीं जानता तो ईश्वर से प्रार्थना कर कि "हे प्रभो! मुझे तेरी ओर आने का मार्ग बता"। चाह तेरी सहायक बनेगी, उससे तू वह राह पा जायेगा जो प्रभु की ओर ले जाने वाली है—उसे पाकर ही तू शान्ति-सन्तोष से जीवन यापन कर सकेगा। जब तक तू सत्य पथ का पथिक नहीं बनेगा तब तक चैन नहीं पा सकेगा, छोटी-मोटी कष्टप्रद बातें तब तुझे घेरे रहेंगी और उन्हीं में उलझा हुआ तू जिन्दगी के कीमती क्षण बिता देगा।

अतः जैसे भी बन पड़े तू सत्य पथ का पथिक बन कि राह बताने के लिये स्वयं खुदा को तेरे समीप आना पड़े ।

१४६७ त्याग की पराकाष्ठा ? प्रेम, यदि मनुष्य समझ सके । त्याग करते करते एक दिन शरीर का त्याग सम्मुख आयेगा । प्यार कर प्रभु से उसके बन्दों से कि जिन्दगी सार्थक हो ।

ऐ प्राणी ! प्रेम जैसे किया नहीं जाता, हो जाता है वैसे ही त्याग भी किया नहीं जाता हो जाता है जब जीवन में प्रेम का प्राकट्य होता है । प्रेम का समावेश जैसे-जैसे हृदय पटल पर होता है वैसे-वैसे अन्य आकर्षण स्वतः कम होने लगते हैं और प्रेम जब रोम-रोम में रच पच जाता है तो अन्य बन्धन रह ही नहीं जाते । देख, प्रेम पाये बिना त्याग की बातें बातें ही रहती हैं, पूर्णतया त्याग नहीं हो पाता क्योंकि यह संसार वस्तु-व्यक्ति का भण्डार है, इसकी एक-एक वस्तु का यदि त्याग किया जाये तो त्याग करते-करते शरीर का त्याग (अन्त) हो जायेगा किन्तु उनका त्याग नहीं हो पायेगा । अतः तू त्याग करने के फेर में न पड़, तू प्रेम कर प्रभु से, प्रभु के प्यारों से कि तेरा हृदय प्यार से सज जाये—तेरा जीवन पाना तभी सार्थक होगा ।

१४६८ मद का ही रास हो रहा है, यह मद्रास है । मद न होता रास होता रहता आनन्द के भाव का तो समुद्र की तरंगों जैसी अवस्था होती ।

ऐ प्राणी ! जितना बड़ा शहर होता है वहाँ स्थूल साधन उतने ही अधिक होते हैं, वहाँ मद का साम्राज्य भी उतना ही अधिक छाया हुआ रहता है अर्थात् वहाँ व्यक्ति अभिमान से घिर जाने के कारण नाचता कूदता रहता है । यदि उन्होंने बड़ा दिल पाया होता तो मद को नहीं अपनाया होता, उनके हृदय पर केवल रास (आनन्द का नृत्य) होता रहता । देख, मद को अपनाकर व्यक्ति स्वयं को ही भूलता जाता है और स्वयं से ही दूर हो जाता है किन्तु जहाँ मद नहीं होता वहाँ की तो बात ही निराली है । वहाँ नम्रता विराजमान रहती है तथा आनन्द का भाव भी सदा विद्यमान रहता है । जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं वैसे ही आनन्द की तरंगें वहाँ हिलोरे मारती रहती हैं । अतः तू आनन्द का अभिलाषी बन कि मद तेरे समीप न आ पाये, तेरा हृदय नम्रता से सज जाये ।

१४६९ मेरे पैरों में छाले (फफोले) पड़े और हाथों में कर्मों की बेड़ी। दिल बेचैन—काल अनिश्चित। रात और दिन प्रकाश का अभाव। क्या ऐसी ही दुनिया कर खुश है? मेरे प्रकाश स्तम्भ सन्त, जहाँ सदा दिवाली। कर भेंट उनसे, जीवन बदलेगा। शिकायत न रहेगी जिन्दगी से।

ऐ प्राणी! ईश्वर की शरण जब तक नहीं मिलती तब तक व्यक्ति घर-परिवार व शरीर के लिये दौड़ते-दौड़ते परेशान हो जाता है और कर्म करते-करते थक जाता है। उसका दिल बेचैन रहने लगता है और अनिश्चित काल तक इससे बचने का उसे कोई रास्ता नहीं दिखलायी देता। तब बाहर अवश्य प्रकाश होता है किन्तु उसके दिल में हमेशा अन्धेरा ही बना रहता है। ऐसी स्थिति में वह घबड़ा उठता है और कह बैठता है—मैं करूँ तो क्या करूँ? जब यह अवस्था उसके लिये असहनीय हो जाती है तब उसे उबरने का रास्ता भी दिखलायी देता है। उसे अन्तर्प्रेरणा मिलती है कि—सन्त मेरे प्रतिरूप हैं, वे प्रकाश स्तम्भ हैं, उनके समीप सदा दिवाली है। तू उनके समीप जा, वहाँ बैठकर तेरा जीवन बदल जायेगा। तब तुझे जिन्दगी से कोई शिकायत नहीं रह जायेगी, तेरे जीवन का अन्धकार खत्म हो जायेगा और उसमें प्रकाश की किरण फैल जायेगी।

१४७० बैठ बैठ कर माला फेरी कुछ न हुआ। आँख बन्द कर ध्यान लगाया कुछ न हुआ। दिल में कुछ भी होता प्यार मेरे लिये तो शिकायत न होती।

ऐ प्राणी! ईश्वर के नाम पर तू चाहे घंटों ही बैठकर माला फेर ले और चाहे घंटों ही ध्यान लगा ले इससे तुझे कुछ मिलने वाला नहीं क्योंकि ईश्वर हाथ की माला नहीं चाहता, तेरे हृदय का स्मरण चाहता है, ध्यान लगाने की क्रिया नहीं चाहता, तेरे अन्तर का ध्यान चाहता है। देख, तेरे दिल में थोड़ा भी प्यार यदि ईश्वर के लिये होगा तो तू उसे जरूर देख पायेगा। किन्तु तू यदि कार्यों द्वारा उसे पाना चाहेगा तो अभी तू जितना कार्य करता है उससे कई गुना अधिक भी कर लेगा तो भी उसे नहीं पा सकेगा। अतः तू कुछ कार्य करके उसका प्रतिफल न खोज, तू वह भाव अपना (प्यार कर) कि ईश्वर तुझसे दूर न रह पाये।

१४७१ किसी का होकर देख। कुछ खोयेगा, कुछ पायेगा। खो बैठेगा अभिमान और पायेगा शान्ति।

ऐ प्राणी ! जब तक बेसहारा जिन्दगी रहती है तब तक उसमें अशान्ति, दुःख, कष्ट आदि भरे रहते हैं, चैन पाने की चेष्टा में रत व्यक्ति भी तब चैन नहीं पाता, भीतर ही भीतर जलता रहता है। देख, शान्ति ईश्वर के चरणों में है। जब प्राणी को ईश्वर के चरणों में बैठने का सौभाग्य मिल जाता है तब स्वतः ही कुछ खोने लगता है और कुछ मिलने लगता है—खोता है अभिमान और मिलती है शान्ति। अज्ञानता से घिरे रहने के कारण व्यक्ति कर्त्ता स्वयं को देखने लगता है किन्तु ईश्वर की शरण पाने के पश्चात् जब हृदय का अन्धकार खत्म होता है तब वह देख पाता है कि कर्त्ता मैं नहीं, कर्त्ता कोई और है—सच्ची शान्ति भी उसे तभी मिलती है। अतः तू बेसहारा जिन्दगी न बिता, तू किसी का होकर देख कि 'जिन्दगी क्या है' इसे तू जान पाये।

१४७२ अपनी कोमल ध्वनि से जग को जगाया फिर भी मनुष्य समझ न पाया कि यह ध्वनि किसकी है। सन्तोष शान्ति मिले कैसे ?

ऐ प्राणी ! सन्त किसी व्यक्ति का नाम नहीं, उस भाव भरी मूर्त्ति का नाम है जो ईश्वर रूप है एवं आनन्द से ओत-प्रोत है। उनकी सरल-सरस वाणी प्राणी में नवीन चेतना देती है किन्तु अज्ञानता से घिरा हुआ प्राणी उस कोमल ध्वनि को सुनकर भी नहीं जान पाता कि यह ध्वनि व्यक्ति की नहीं, उस अज्ञात शक्ति की है जो उनके रोम-रोम में व्याप्त है। यही कारण है कि वह रूप का उपासक हो जाता है, भाव का उपासक नहीं बन पाता। परिणाम वह सदा उनकी वाणी से ही शान्ति सन्तोष लेता है, शान्ति सन्तोष का धनी नहीं बन पाता। यदि उस ध्वनि को सुनकर वह भाव का उपासक हुआ होता तो सन्त की मूर्त्ति उसके प्राणों में बस जाती और प्राणों में बसी सदा उसे शान्ति सन्तोष देती रहती।

१४७३ अनेक तो एक के अभाव में हैं। यदि एक का विश्वास, प्राणी न होता निराश।

ऐ प्राणी ! जब तक 'एक' नहीं मिलता तब तक व्यक्ति सहारे के लिये

जन-जन का मुँह देखा करता है फिर भी चैन नहीं पाता, अधीर ही बना रहता है। देख, ईश्वर एक है और यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत उसी एक का रूप है लेकिन जब तक वह 'एक' तुझे दिखलाई नहीं देगा तब तक तू भ्रमवश इस दृश्यमान जगत को अनेक के रूप में देखता रहेगा। किन्तु जब तू एक का होगा तब अनेक तेरे सम्मुख रहेंगे ही नहीं और तू निराश हताश भी नहीं होगा, तू जो कुछ भी देख पायेगा उसका कर्त्ता एक (ईश्वर) होगा। अतः तू उस एक की शरण ग्रहण कर जो अनेक रूपों में दिखलाई पड़ता हुआ भी एक है कि तुझे कभी निराश न होना पड़े।

१४७४ पूजा विश्वास चाहती है न कि कर्म का प्रदर्शन। यदि कर्म ही प्रधान, पूजा वहाँ बेजान।

ऐ प्राणी! प्रथम ईश्वर के प्रति विश्वास चाहिये तत्पश्चात् पूजा चाहिये। 'ईश्वर है' जब तक यह विश्वास नहीं होता तब तक पूजा पूजा नहीं होती, केवल कर्म का प्रदर्शन होता है। ऐसी पूजा केवल कर्म बनकर ही रह जाती है—पूजा से कोई विशेष लाभ नहीं होता। देख, पूजा विश्वास से सजी होती है। जब विश्वास की जागृति हो जाती है तब पूजा के प्रत्येक कार्य में भाव निहित रहता है, तब चन्दन, माला, फूल, अक्षत आदि सभी वस्तुएँ भाव से अर्पित की जाती हैं तथा उनका प्रतिफल भी अन्तर में प्रतिबिम्बित होता रहता है। ऐसी पूजा ही राहत पहुँचाती है अन्यथा पूजा के नाम पर व्यक्ति अनेक कर्म करता रहता है किन्तु उसके अन्तर की बेचैनी ज्यों की त्यों बनी रहती है।

१४७५ कुछ पृष्ठ धार्मिक पुस्तकों के देखे जहाँ यथार्थ का अभाव, आदर्श का पलड़ा भारी, वहाँ भ्रान्ति अधिक, शांति नाम मात्र। दिल की पुस्तक प्यार चाहती है प्रभु का, आदर्श की बातें नहीं।

जहाँ आदर्श प्रधान रहता है वहाँ भ्रान्ति ही अधिक देखी जाती है, शांति तो कहीं-कहीं नाम मात्र के लिये पायी जाती है। आदर्श की बातों के अनुरूप जीवन बनना अति कठिन होता है अतः जो दिल की कद्र करने वाले हैं उन्हें आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें (चाहे वे पुस्तकों में हों या प्रत्यक्ष में देखने को मिलें) नहीं सुहातीं, उन्हें तो केवल प्यार भाता है। जब तक प्यार नहीं

मिलता तब तक उनका हृदय छटपटाता रहता है अतः वे प्यार की खोज में ही लगे रहते हैं। ऐ प्राणी! प्यार की बातें बहुत कम देखने को मिलती हैं, धर्म के नाम पर भी आदर्शपूर्ण बातें ही अधिक पढ़ने-सुनने व देखने में आती हैं। देख, तू यदि प्यार पाना चाहता है तो आदर्श की बातों में ही फँसकर न बैठ जाना, तू दिल की कद्र करना, तब एक दिन तू जरूर प्यार को भी प्रत्यक्ष देख पायेगा अन्यथा आदर्श की बातों को अपनाकर भीतर ही भीतर कष्ट पाता रहेगा।

१४७६ पतंगे जलन है रूप के लिये, जल जायेगा। अंग अंग का पतन होगा ज्वाला में। अरूपी का रूप तेरे हृदय में। हृदय को टटोल, मोल कर जीवन का यह अमूल्य है।

ऐ प्राणी! इस दृश्य जगत में जो कुछ तुझे अच्छा लगता है तू यदि उन सबको पाने की चेष्टा करेगा तो तू वासना की अग्नि में जल जायेगा, तब तेरा अंग-प्रत्यंग व तेरा जीवन सब उसी की भेंट चढ़ जायेगा। देख, जिसका कोई रूप नहीं और सारे रूप जिसके हैं, वह अरूपी तेरे हृदय में बसा हुआ है, उसको भूल जाने से ही ये रूप तुझे मोहित कर रहे हैं। अतः तू रूप के पीछे दीवाना न बन, तू अपने हृदय को टटोल अर्थात् तू अरूपी की खोज कर कि तेरा अमूल्य जीवन अमूल्य हो जाये। अन्यथा उसे जानने के अभाव में तू रूपशिखा पर मँडराता रहेगा और उससे बचने का कोई रास्ता भी नहीं पा सकेगा।

१४७७ व्यवहार तेरे लिए भूमि है, लक्ष्य की ओर चल। लक्ष्य की ओर लाखों में कोई एक चलता है और पहुँचता है।

ऐ प्राणी! इस संसार में आने वाले अधिकांश प्राणी संसार के प्रलोभनों में ही फँस कर बैठ जाते हैं, कोई विरले ही ऐसे होते हैं जिन्हें जीवन पाने का प्रयोजन याद रहता है। देख, जिन्हें प्रयोजन याद रहता है उनके लिए व्यवहार प्रधान नहीं रहता किन्तु गौण भी नहीं रहता, वे सत्य भाव के साथ, सुमधुर व्यवहार करते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ते जाते हैं—ऐसे जन ही लक्ष्य तक पहुँचते हैं। किन्तु जिनका हृदय सुन्दर नहीं, जो केवल व्यवहार को सजाते हैं ऐसे जन के लिए व्यवहार ही हार बन जाता है, वे दिन ब दिन सत्य से दूर होते जाते हैं। अतः तू झूठे दिखावे में न फँस, तू लक्ष्य को सामने

रख कर आगे बढ़ता चल कि व्यवहार तेरे लिये भूमि बन जाये, तू उसमें अटक न पाये और उस पर चलता हुआ एक दिन सत्य तक पहुँच जाये।

१४७८ जिन्दा रहना है तो जिन्दगी का आनन्द ले। बन्दगी करेगा तो अधिक आनन्द पायेगा।

ऐ प्राणी! केवल श्वांस चलते रहना ही जिन्दगी जीने का लक्षण नहीं, जिन्दगी जीने के लिये जिन्दादिली भी चाहिये। देख, जिनका दिल जिन्दा है जिन्दगी का आनन्द वे ही ले पाते हैं, अन्य जन का जीवन तो जीते जी ही मृतक के समान होता है—ऐसा जीवन तो 'जीवन' नाम देने के योग्य भी नहीं। अतः तू जिन्दा रहना चाहता है तो स्वार्थ में सनकर जिन्दगी को गन्दगी न बना, तू बन्दगी कर प्रभु की कि तेरा हृदय सज जाये—तभी तेरा दिल जिन्दा रह सकेगा और तभी तू जिन्दगी का आनन्द भी ले सकेगा। अन्यथा तेरी आयु खत्म होने को आयेगी किन्तु तू जिन्दगी पाने का मजा नहीं ले पायेगा।

१४७९ किन किन को तू, तू है तू है कहता रहेगा। किन्तु एक ही है तू जो सर्वव्यापी है और तुम में छिपा है।

ऐ प्राणी! सम्पूर्ण सृष्टि को चलाने वाला एक ईश्वर है, वही सबमें गति दे रहा है। यदि वह न हो तो व्यक्ति कुछ भी नहीं कर पायेगा, बेजान हो जायेगा। देख, तू इस सत्य से अनजान है इसीलिये जिन-जिन के द्वारा तुझे कार्य होता सा दिखलायी पड़ता है तू उन्हीं की ओर देखने लगता है और कह बैठता है कि 'मेरे लिये तो ये ही सब कुछ हैं'। अरे पगले! तू यदि देने वाले को नहीं जानेगा और व्यक्ति को ही सहारा देने वाला समझ बैठेगा तो तू कभी चैन नहीं पायेगा। अतः तू उस सर्वव्यापी को जान जो सबमें समाया हुआ है तथा समान रूप से सबमें गति भर रहा है। जब वह एक तेरे सम्मुख होगा तब तू सभी में उसी का जलवा देख पायेगा—कुछ भी पाने का आनन्द तू तभी पायेगा।

१४८० सु राही होता तो सुर होता, सुरा का बेसुरा आलाप न करता। सुराही का ठण्डा जल पी—प्राण प्रिय को पुकार कर मस्त होता।

ऐ प्राणी! जो सही राह (सत्य पथ) पर कदम बढ़ाते हैं शान्ति पूर्ण

जीवन उनका ही होता है, जीवन का आनन्द भी वे ही ले पाते हैं। किन्तु जो गलत राह को पकड़ लेते हैं अर्थात् जिनके लिये स्थूल प्रधान हो जाता है उनकी अवस्था उस शराबी की सी होती है जो शराब के नशे में धुत बेसुरा आलाप करता रहता है अर्थात् वे बहक जाते हैं। अतः तू यदि संगीतमय (आनन्दी) जीवन का अभिलाषी है तो सत्य पथ पर कदम बढ़ा और जो कुछ तुझे मिले उसे ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण कर। तब तू प्राण प्रिय प्रभु को प्राणों में बसा देख पायेगा और तेरा जीवन मस्ती से भर जायेगा।

१४८१ तर रह, तरह तरह की बातें न बना। निराश और हताश तो मनुष्य होता ही रहता है।

ऐ प्राणी! तुझे जीवन काल में अनेक ऊँची-नीची परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा किन्तु उन्हें देखकर तू कभी घबड़ाना नहीं और न जीवन से हताश निराश होना। देख, जो सभी परिस्थितियों में तटस्थ रहते हैं वे ही तर (मौज में) रह सकते हैं किन्तु जो घबड़ा उठते हैं वे मन बहलाने के लिए तरह-तरह की बातें बनाते रहते हैं। ऐसे जन उन बातों के द्वारा अन्य को धोखा नहीं देते, वे स्वयं ही धोखा खाते हैं। अतः कैसी भी परिस्थितियाँ तेरे सम्मुख क्यों न आयें तू कभी निराश व हताश न होना और न तरह तरह की बातों में समय बरबाद करना—तू हमेशा तर (प्रसन्न) रहना कि तू जिन्दगी का आनन्द ले पाये।

१४८२ दर-दर भटकने वाले की कद्र कैसी। दरवाजा एक, खटखटा उसको, दिल का खट्टापन दूर हो।

ऐ प्राणी! सबका भरण पोषण करने वाला 'एक' है, वही सबका अपना है। देख, तू उसे भूलकर यदि दर-दर भटकता रहेगा अर्थात् जन-जन का मुँह देखता रहेगा तो कभी अमन चैन नहीं पा सकेगा, तब तू भीतर ही भीतर रोता रहेगा। अतः तू अपने दिल के घाव सबको न दिखा, तू एक प्रभु की शरण ग्रहण कर और उसके सामने अपना दिल खोल कर रख दे—तब तेरे दिल में घाव नहीं रह जायेंगे, वे सारे के सारे मिट जायेंगे। ईश्वर की शरण पाकर तू जन-जन का मोहताज नहीं रहेगा अर्थात् तुझे अन्य के सम्मुख हाथ नहीं फैलाने होंगे, तू दो हाथों से खरचेगा और वह चार हाथों से तुझे लुटाता रहेगा क्योंकि एक की शरण ऐसी ही होती है।

१४८३ आज मुझे प्यार कर ले, हँसता जायेगा, नहीं तो रोता रहेगा मजा कुछ न पायेगा।

ऐ प्राणी ! इस संसार का आनन्द वे ही ले सकते हैं जो मुझसे प्यार करते हैं, वे यहाँ रहते हैं तब तक भी मौज मनाते हैं और हँसते-हँसते ही यहाँ से विदा होते हैं। किन्तु जो यहाँ आकर स्थूल (मैं-मेरे) में ही उलझ जाते हैं, वे यहाँ रोते रहते हैं, उनके लिये यह संसार कष्टप्रद होता है। उन्हें कदम-कदम पर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं क्योंकि वे इसमें इतने उलझ जाते हैं कि क्षण भर के लिए भी उन्हें मेरी याद नहीं सताती। देख, संसार एक ही है किन्तु भिन्न-भिन्न भाव वालों के लिये यह भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। जो मुझसे प्यार करते हैं उनके लिए यह आनन्द रूप होता है किन्तु जो मुझे भूल जाते हैं उनके लिये काटों से भरा होता है। अतः तू आज मुझसे प्यार कर ले कि तू यहाँ से हँसते-हँसते विदा हो सके।

१४८४ काल का चक्र देख, जहाँ दिन नहीं, रात नहीं। प्रिय का धाम देख, जहाँ रात नहीं, प्रभात नहीं।

ऐ प्राणी ! काल का चक्र किसी को नहीं छोड़ता, यह दिन और रात (भले और बुरे) सबको अपने में समेट लेता है—इससे कोई भी नहीं बच पाता चाहे वह रूपधारी ईश्वर ही क्यों न हो। प्रिय के नाम की भी यही बात है। प्रिय के नाम का रस जब मिलने लगता है तब न रात का ध्यान रहता है और न दिन का अर्थात् रात और दिन कैसे गुजर जाते हैं इसका पता भी नहीं लगता। देख, जब तक ईश्वर की शरण नहीं मिलती तब तक यह संसार दुःख रूप रहता है, यहाँ कदम-कदम पर मुसीबतें खड़ी रहती हैं। किसी तरह यदि दिन गुजर जाता है तो रात कटनी मुश्किल हो जाती है और रात कट जाती है तो दिन कटना मुश्किल हो जाता है। अतः तू प्रिय का नाम स्मरण कर कि तेरे रात और दिन बात की बात में गुजर जायें और तू मौज से विदा हो पाये।

१४८५ यह घृणा तो नरक है। प्यार कर स्वर्ग की कल्पना भी न करनी पड़ेगी।

व्यक्ति के भाव विचार जैसे रहते हैं वैसी ही उसकी दुनिया होती है। सर्व सम्पन्न व्यक्ति भी यदि भाव-विचारों से सुन्दर नहीं तो वह प्रति मुहूर्त

नरक के समान यंत्रणा भुगतता रहता है किन्तु जिसका हृदय सुमधुर भावों से लवालब भरा है, उसे स्वर्ग की कहीं अन्यत्र कल्पना नहीं करनी पड़ती, उसे जो कुछ मिला हुआ है उसी के साथ वह जहाँ बैठता है वहीं स्वार्गिक आनन्द पाता है। अतः ऐ प्राणी! तू घृणा को हृदय में प्रश्रय न दे क्योंकि घृणा को अपनाकर तेरा हृदय सड़ उठेगा, तू कहीं भी चैन नहीं पा सकेगा। अतः तू कर सके तो प्यार कर। प्यार को अपनाकर तेरा हृदय उपवन की तरह खिल उठेगा—उसकी भीनी-भीनी महक तेरे रोम-रोम को महका देगी।

१४८६ जहाँ घेरा, वहाँ अन्धेरा। कब होगा आनन्दमय सवेरा? प्रभु ही जाने। सब्र कर, सवेरा भी होगा।

ऐ प्राणी! खुली जगह में पूर्ण प्रकाश रहता है किन्तु जैसे-जैसे वह (जगह) घेर दी जाती है वैसे-वैसे उसमें अन्धेरा बढ़ने लगता है। देख, मनुष्य भी प्रकाशस्वरूप है किन्तु जैसे-जैसे वह 'मैं-मेरे' से घिरता जाता है वैसे-वैसे उसकी दुनिया छोटी होने लगती है एवं उसके जीवन में अन्धकार भरने लगता है। तब उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि न वह चैन से खा-पी सकता है और न चैन से सो सकता है। सौभाग्यवश यदि वह इस स्थिति (अन्धकार) से उबरना भी चाहता है तो उसे कोई रास्ता नहीं दिखलाई देता। किन्तु उसे मालूम नहीं कि जहाँ चाह है वहाँ राह भी है। यदि वह प्रकाश पाने का इच्छुक है तो उसे धीरज अवश्य रखना होगा क्योंकि धीरज से ही वह एक दिन अन्धेरे से उबर सकेगा और प्रकाशमय जीवन पा सकेगा।

१४८७ दे और ले। एक ही आवाज गूँज रही है। दुनिया ही नहीं, भक्त और भगवान की भी यही पुकार है।

ऐ प्राणी! प्रकृति अपने पास कुछ भी नहीं रखती, जो जैसा देता है वैसा ही उसे सहस्त्रगुणा करके लौटा देती है। यहाँ के वायुमण्डल में एक ही आवाज गूँज रही है—दे और ले अर्थात् तू अन्य से जो कुछ पाने की अपेक्षा रखता है उन्हीं भावों से स्वयं सुसज्जित हो एवं वे ही भाव अन्य को दे। तब तू देख पायेगा कि वे भाव अति मात्रा में तेरे समीप स्वतः चले आ रहे हैं। देख, भक्त और भगवान की भी यही बात है। भक्त भगवान के चरणारविन्द में प्रथम स्वयं को अर्पित करता है तभी वह ईश्वरीय भावनाओं से सुसज्जित

होता है। वह यदि देने के लिये तैयार न हो तो कुछ पाना भी उसके लिए कठिन होगा और ऐसे में वह ईश्वर के नाम पर कुछ कार्य ही करता रहेगा, ईश्वर की अनुभूति नहीं पा सकेगा।

१४८८ क्यों प्यार की बातें करता है, जब यार का ही पता नहीं ? 'लुक छिप' के खेल का नाम ही दुनिया है। कहाँ छिपा है तेरा यार, सतर्क होकर खोज।

ऐ प्राणी ! प्रेमास्पद प्रभु को पाये बिना प्यार की बातें केवल बातें ही रहती हैं, प्यार से हृदय सजता नहीं—यार (प्रिय) को सम्मुख पाकर ही प्यार हृदय पर आच्छादित होता है। देख, यह संसार लुक-छिप का खेल है, इसके कण-कण में ईश्वर विद्यमान है किन्तु वह सबको दिखलाई नहीं देता, वह दिखलाई उन्हें ही देता है जो सतर्क होकर उसकी खोज करते हैं। खोजने वाले खोजते-खोजते जब उसी में खो जाते हैं, उन्हें अपना ध्यान ही नहीं रह जाता तब उनसे ईश्वर छुपा नहीं रहता, वे ईश्वर का जलवा भीतर व बाहर सर्वत्र देख पाते हैं—प्यार से हृदय भी उनका ही सजता है। अतः तू प्यार की बातें न बना, प्रथम तू प्रभु की खोज कर। जब प्रियतम प्रभु की छवि तेरे सामने होगी तो प्यार तुझे करना नहीं होगा, तेरा हृदय स्वतः प्यार से सज जायेगा।

१४८९ खोज में मौज है फिर रोज-रोज क्यों रोता है ?

ऐ प्राणी ! इस संसार में मौज उनको ही मिलती है जो यहाँ ईश्वर को खोजते हैं, ईश्वर को भुलाकर जो मौज अन्यत्र खोजते हैं वे मौज तो पाते ही नहीं, अज्ञानता से ही घिर जाते हैं। देख, मनुष्य शरीर धारण करके इस संसार में तेरा आगमन इसी उद्देश्य से हुआ है। यदि तू आने के उद्देश्य को भूल बैठेगा तो यहाँ कभी सुख नहीं पा सकेगा, तब तू रोज-रोज रोता ही रहेगा चाहे तुझे कुछ भी क्यों न मिल जाये। अतः तू यदि मौज चाहता है तो रोने में समय न गँवा क्योंकि रोने से तेरे दुःख कम होने वाले नहीं, तू रोना छोड़कर जिसके चरणों में मौज है उसकी खोज कर। जब तू उसकी खोज के लिये अग्रसर होगा तब तेरा रोना स्वतः बन्द हो जायेगा और मौज स्वतः तेरे समीप आने लगेगी क्योंकि खोज में मौज है।

१४९० सदन मिट्टी का न था, बनाया निरर्थक भाव ने। सदन हरा भरा रहे यदि हरि का ही गुणगान हो। अहंकार का नाम निशान न हो।

ऐ प्राणी ! सत्संग के स्थान (सदन) में स्थान प्रधान नहीं रहता, भाव प्रधान रहता है (भाव के कारण) वहाँ ईश्वर प्रत्यक्ष विराजता है। तब चूने-मिट्टी का होते हुए भी वह स्थान अन्य स्थान की तरह नहीं रह जाता, भाव प्रदान करता रहता है। किन्तु वहाँ यदि भाव की प्रधानता न रहे तो उसकी महत्ता वह नहीं रह जाती, तब वह स्थान अन्य घर की तरह घर ही हो जाता है। देख, ऐसे ईश्वर के मन्दिर (सदन) को तू कभी मिट्टी का न बनाना, तू वहाँ सदा हरि का ही गुणगान करना। जब तू अहंकार-शून्य होकर वहाँ प्रभु की चर्चा में निमग्न होगा तो तू भी हरा-भरा हो जायेगा और वह स्थान भी हरा-भरा हो जायेगा। तब जो भी दुःखी प्राणी वहाँ आयेंगे वे प्रवेश मात्र से ही राहत पायेंगे—उस स्थान की सार्थकता भी तभी होगी।

१४९१ है, भक्त के लिये। सख्त पाना है दुनियादार के लिये। बख्त मिला है पाने के लिये। न खो इसको, यह बड़ा अनमोल है।

ऐ प्राणी ! 'ईश्वर है' किन्तु है वह केवल भक्त के लिये। देख, भक्त के लिए ईश्वर प्रधान रहता है, ईश्वर को पाना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य होता है—ऐसे भक्तों से वह दूर नहीं रह सकता, उनके सम्मुख वह प्रत्यक्ष हो उठता है। किन्तु जिनके लिए दुनियादारी ही प्रधान है, उनके लिये ईश्वर को पाना सहज नहीं। उन्हें ईश्वर की याद आती ही नहीं और यदि आती भी है तो कष्ट से निवृत होने के लिये—ऐसे जन से वह दूर ही बना रहता है। अरे पगले ! जीवन बड़ा अनमोल है, यह तुझे ईश्वर से दूर रहने के लिये नहीं मिला, उसे समीप देखने के लिये मिला है। अतः तू इस कीमती समय को दुनियादारी में बरबाद न कर, तू इसे ईश्वर-प्राप्ति में लगा। तन से चाहे तू संगी-साथियों के कार्य करता रह किन्तु मन तू मनमोहन को दे, तभी तू जीवन पाने का आनन्द पायेगा।

१४९२ सोच और शौक। शौक से मुझे पायेगा और सोचते-सोचते, मर जायेगा।

ऐ प्राणी ! ईश्वर मन-बुद्धि से परे है। यदि कोई चाहे कि मैं उसे बुद्धि

की चेष्टा से (सोचकर) पा लूँ तो यह तीन काल में भी सम्भव नहीं। देख, ईश्वर शौक (सौख) से पाया जा सकता है अर्थात् जिनके हृदय में ईश्वर को पाने की लालसा है ईश्वर उन्हें ही मिलता है, उन्हें किसी न किसी तरह ईश्वर की उपलब्धि हो ही जाती है। अतः तू ईश्वर को जोर लगाकर पाने की चेष्टा न कर, तू अपने दिल के आईने में झाँक कि वहाँ ईश्वर को पाने की लालसा है या नहीं? यदि नहीं, तो तू सन्त के दरशन कर कि तेरे हृदय में ईश्वर को देखने की ललक पैदा हो जाये—तभी तू ईश्वर को देख पायेगा अन्यथा सोच विचार कर ईश्वर के नाम पर कर्म तो कर लेगा किन्तु तेरा दिल नहीं बदल पायेगा।

१४९३ "मैं" जाये तो मजा पाये। दिल मँजा, दिल में जा, दिलदार दिल दिल के भीतर।

ऐ प्राणी! ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है, तुझमें भी वही समाया हुआ है किन्तु 'मैं' के कारण तू उसको देख नहीं पाता, उससे दूर बना हुआ है—अब 'मैं' जाये तो तू मजा पाये। देख, मैं के विदा होने से तेरा दिल मँज जायेगा, वह स्वच्छ व सुन्दर हो जायेगा। अब तू यदि दिल में प्रवेश करेगा तो देख पायेगा कि वहाँ प्रियतम प्रभु की मूर्त्ति विराजमान है, वह केवल तेरे दिल में ही नहीं, हर दिल में विद्यमान है। यथार्थ में जिन्दगी पाने का मजा तू तभी पायेगा अन्यथा मैं का बोझ लिये हुए तू सदा ईश्वर से दूर ही बना रहेगा और कर्त्तापन का बोझ ढोता रहेगा।

१४९४ "कर" ने खर (गदहा) बनाया और लाद दिया कर्त्तव्य का भार। क्या करे? पद ग्रहण करता प्रभु का तो क्यों ऐसी अवस्था होती।

ऐ प्राणी! हाथों को कार्य करते देखकर तू भूल गया कि 'कर्त्ता कोई और है' और भ्रमवश स्वयं को ही कर्त्ता समझ बैठा। परिणाम कर्त्तव्य का बोझ तेरे सिर पर लद गया और दिन-रात तू चिन्ता में ही मग्न रहने लगा। अब तेरी अवस्था उस गदहे की सी हो गई जो अधिक से अधिक बोझ ढोता रहता है फिर भी मालिक की मार खाता रहता है। देख, तू बोझ ढोने के लिये नहीं आया है, तू आनन्द मनाने के लिये आया है किन्तु अज्ञानतावश बोझ ढो रहा है। तू आज भी यदि प्रभु की शरण ग्रहण कर पाये तो तुझे इस बोझ से

छुटकारा मिल जायेगा, तू देख पायेगा कि कर्त्ता एक ईश्वर है। तब तेरी अवस्था ही दूसरी होगी, तू इसी संसार में, इन्हीं साथियों के बीच बैठा हुआ स्वयं को प्रभु की गोद में पायेगा एवं निश्चिन्त जीवन वितायेगा।

१४९५ भक्तों ने प्रतीक्षा की और परीक्षा दी। "मैं" क्या करूँ ? "मैं" छोड़ वह तेरा ही है।

ऐ प्राणी! ईश्वर तेरा अपना है। उसे पाने के लिये तुझे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं, केवल 'मैं' का परित्याग करना है। देख, 'मैं' ने तुझे छोटा बना दिया है इसीलिए तू उसे पास नहीं देख पाता। जब मैं का घेरा टूट जायेगा तब तेरे दिल का अन्धेरा भी खत्म हो जायेगा और तब ईश्वर तेरे अति करीब होगा। भक्तों ने चाहे किसी भी चेष्टा के द्वारा उसे पाया हो—कितनी ही प्रतीक्षा की हो अथवा कैसी ही परीक्षा दी हो—तुझे उनकी जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि मैं के साथ ही इनकी स्थिति है, जब मैं सर्वथा लुप्त हो जाता है तो इनको भी स्थान नहीं मिलता। अतः तू ईश्वर को करीब देखने का अभिलाषी है तो मैं को पूर्णतया प्रभु चरणों पर अर्पित कर कि तेरा जीवन ईश्वरमय हो जाये।

१४९६ दुष्ट और शिष्ट। दो इष्ट तो दुष्ट, एक तो शिष्ट।

ऐ प्राणी! ईश्वर एक है, सम्पूर्ण जड़-चेतन संसार एक उसी का रूप है। देख, जब तक तुझे ईश्वर अलग दीखता है और संसार अलग दीखता है अर्थात् ईश्वर और संसार ये दो दिखलायी देते हैं तब तक यही कहना होगा कि तूने ईश्वर को जाना ही नहीं है। ईश्वर को पाना भी तब तेरे लिये कठिन होगा क्योंकि अभी तू दुष्ट (गलत भावों से घिरा हुआ) है। ईश्वर का जलवा वे ही देख पाते हैं जो शिष्ट हैं अर्थात् जिनका केवल 'एक' है—उनका सम्पूर्ण संसार 'एक' से सजा होता है। वे ईश्वर की कल्पना संसार से अलग कर ही नहीं पाते, उन्हें एक पत्ता भी ईश्वर द्वारा ही हिलता दिखलायी देता है। अतः तू ईश्वर को पाने का अभिलाषी है तो एक की दुनिया में आ कि तू उस एक को रोम-रोम में प्रतिष्ठित देख पाये।

१४९७ नाच और ऐसा नाच कि दुनिया तुझे नाचती नजर आये तू नहीं। अपने नाच से दुनिया को नचा जा। भाव की गंगा बहा जा।

ऐ प्राणी! तू या तो ईश्वर की ओर कदम बढ़ा नहीं और यदि बढ़ाता ही

है तो ऐसे बढ़ा कि फिर तेरे कदम रुकें नहीं, तू लक्ष्य की ओर अनवरत आगे बढ़ता जाये। देख, जब तू स्वयं को ईश्वर की दुनिया में पायेगा तब तेरी दुनिया अनोखी होगी, तब तुझे दुनिया की जी हुजूरी करने (नाच) से फुरसत मिल जायेगी। तू देख पायेगा कि इस दुनिया में ईश्वर को भूलकर सभी स्थूल के पीछे भाग रहे हैं और भ्रम के वशीभूत होकर कष्ट पा रहे हैं। तेरी भाव भरी वाणी ही तब उनका मार्गदर्शन करेगी। अतः तू ईश्वर को अधिक से अधिक पा कि तेरी दुनिया ईश्वरमयी हो जाये और तुझसे अनेक लाभान्वित हो सकें।

१४९८ कितने पुष्प अर्पित करेगा प्राणी प्रस्फुटित हो जा पुष्प की तरह कि तेरा हृदय देख इष्ट ही खिल उठे।

ऐ प्राणी! ईश्वर को तू फूल चढ़ाकर खुश नहीं कर सकेगा क्योंकि ईश्वर फूल नहीं चाहता, फूल की तरह खिला हुआ तेरा दिल चाहता है। देख, तू पुष्प कितने अर्पित करेगा? पुष्प अर्पित करते-करते तो तू थक जायेगा—उससे न तू खुश हो सकेगा और न तेरा भगवान ही खुश हो सकेगा। किन्तु तेरा हृदय यदि खिल जायेगा तो तुझे कुछ भी नहीं करना होगा—तेरा प्रस्फुटित हृदय देखकर ही तेरा इष्ट खिल उठेगा। अतः तू फूल चढ़ाने का प्रयत्न न कर, तू खिल कर रह सके वह भाव ग्रहण कर कि तू भी हमेशा प्रफुल्लित रह पाये और तुझे देखकर तेरा इष्ट भी खिल उठे—खिलने में कौन सा आनन्द है इसे भी तू तभी जान सकेगा।

१४९९ गीत में गति है शब्द की, राग की, भाव की। प्रयोग योग के लिये है या प्रदर्शन के लिये। सोच और समझ, नहीं तो ये गीत प्रीति न दे सकेंगे, प्रिय की।

ऐ प्राणी! मुख से गाये जाने वाले गीतों में बहुत कुछ रहता है—शब्द रहते हैं, राग रहती है और भाव रहता है। इन गीतों को जो जिस भावना से गाता है वैसा ही उनका प्रभाव भी होता है। यदि इनका प्रयोग ईश्वर-मिलन के लिये होता है तो इन्हें गाकर व्यक्ति झूम जाता है, उसका हृदय प्रीतम के प्यार से सज जाता है। किन्तु गीतों का प्रयोग यदि प्रदर्शन के लिये होता है अर्थात् व्यक्ति को रिझाने के लिये होता है तो प्यार के गीतों को गाकर भी व्यक्ति प्यार नहीं पाता, केवल गलाबाजी ही करता है। अतः तू अपनी

ओर देख कि जिन गीतों को तू गाता है उन्हें रीझ कर गाता है या व्यक्ति को सुनाने के लिये गाता है। यदि रीझ कर गाता है तो उन गीतों के एक-एक शब्द हृदय स्पर्शी होंगे, राग में गजब का जादू होगा और भाव ऐसा होगा जो सुध बुध भुलाने वाला होगा।

१५०० सप्त स्वर चौदह भुवन में स्वर है, ईश्वर है यह बात साढ़े तीन हाथ का बुद्धि प्रधान प्राणी क्यों नहीं समझता ? प्रधान यदि प्रदान करता अपने अभिमान को तो सब कुछ समझ पाता और पाता ऐसी दृष्टि कि स्रष्टा नजर आता।

ऐ प्राणी ! स्वर वर्ण को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि व्यंजन वर्ण स्वर की सहायता के बिना नहीं बनते। ऐसे ही सम्पूर्ण दृश्यमान संसार (चौदह भुवन) और इसमें होने वाली सारी आवाजें (सप्त स्वर) ये सभी 'स्वर' (ईश्वर) के साथ से हैं, ईश्वर के बिना इनका अलग कोई अस्तित्व नहीं। किन्तु बुद्धिमान प्राणी इस सत्य से जानते हुए भी अनजान है। वह हाथों को करते देखता है अतः स्वयं को ही कर्त्ता समझ बैठता है और अभिमान से घिर जाता है। यदि वह कर्त्तापन के अभिमान को छोड़ पाता तो देखता कि सम्पूर्ण संसार का स्रष्टा एक है, उसी एक के इशारे पर यह संसार चल रहा है—यह दृश्यमान जगत एक का ही अनेक रूप है। उस दिन उसका जीवन दूसरा होता और उसकी दुनिया भी दूसरी होती अर्थात जीवन व जगत का आनन्द वह उसी दिन ले पाता।

१५०१ द्वार पर नाथ खड़ा, स्वागत न कर पाये तथाकथित पुजारी। क्यों ? पहचानते न थे।

ऐ प्राणी ! पूजा के कुछ कार्य सम्पादित करने वाले पुजारी नहीं होते, पुजारी वे हैं जो यथार्थ में ईश्वर के चरणों में झुके हुए हैं एवं ईश्वर के सान्निध्य में ही अपना जीवन यापन करते हैं। देख, पुजारी कहलाने वालों की तो ऐसी अवस्था रहती है कि ईश्वर यदि उनके दरवाजे पर भी आकर खड़ा हो जाये तो वे उसे पहचानेंगे नहीं, वे उसे साधारण व्यक्ति समझ कर मुख फेर लेंगे। यदि वे यथार्थ में पुजारी होते तो उनकी अवस्था ही दूसरी होती। तब नाथ के आगमन मात्र से उनके हृदय की तन्त्री बज उठती और दरवाजे

पर खड़ा नाथ दरवाजे पर ही नहीं रहता, उनके हृदय मन्दिर में विराजता। जहाँ ऐसा भाव है यथार्थ में पुजारी वे ही हैं, अन्य जन तो पुजारी कहलाते हैं किन्तु पुजारी हैं नहीं। अतः तू द्वार पर आये ईश्वर (सन्त) को पहचानना चाहता है तो सच्चा पुजारी बन कि ईश्वर तेरे हृदय में विराजमान हो जाये और तेरा हृदय ही मन्दिर बन जाये।

१५०२ पूजा भाव की या तन की ? तन का पतन है, भाव अमर है।

ऐ प्राणी ! तन आज है और कल नहीं रहेगा किन्तु भाव कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा—भाव अमर है। देख, तू यदि रूप (तन) का उपासक है तो एक दिन धोखा खायेगा क्योंकि रूप (तन) का साथ किसी भी समय छूट सकता है किन्तु रूप को यदि तूने भाव से पाया है तो तेरा साथ कभी छूटने वाला नहीं—वह सदा सदा बना रहेगा। शरीर एक दिन दोनों नहीं रहेंगे—तेरा भी नहीं रहेगा और प्रिय का भी नहीं रहेगा—किन्तु भाव कभी जाने वाला नहीं, उसकी ज्योति सदा जगमगाती रहेगी और जो भाव के इच्छुक होंगे उनमें प्रकाश फैलाती रहेगी। अतः तू तन का उपासक न बन, भाव का उपासक बन कि प्रिय से तेरा कभी वियोग न हो पाये।

१५०३ करुण लोचन देख, पद्मलोचन ने कहा—शांत हो तेरी चिन्ता अब मेरी चिन्ता। करुण अब पद्म लोचन होगा केवल याद ही असम्भव को सम्भव बनाती है।

ऐ प्राणी ! ईश्वर सबका है किन्तु जो रो-रो कर ईश्वर को याद करते हैं वे ही ईश्वर की समीपता पाते हैं। ऐसे जन को पद्मलोचन (कमल नयन) प्रभु प्रेरणा देता है कि तुझे अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तू अब मेरा है—तेरी चिन्ता अब मेरी चिन्ता है। पद्मलोचन प्रभु की शरण उनके हृदय के दुःख दर्द को दूर कर देती है, इतना ही नहीं, उनका हृदय खिलने लगता है और उन्हीं भावों से सजने लगता है जो भाव पद्मलोचन में हैं। देख, केवल याद ही असम्भव को सम्भव बना सकती है। अतः तू यदि खिल कर रहने का अभिलाषी है तो आर्त्त होकर ईश्वर की शरण ग्रहण कर। तब वह तुझसे दूर नहीं रह सकेगा, तू उसे अति समीप श्वासों-प्राणों में प्रतिष्ठित देख पायेगा और खिल कर रह सकेगा।

१५०४ कण-कण में प्राण। प्राण की भी शान यदि शान्त हो—प्रिय मिलन का आह्वान हो।

ऐ प्राणी! जिन व्यक्ति-वस्तु, पेड़-पौधों आदि को तू देखता है उन सबमें प्राण हैं इसीलिये वे जीवित हैं, जिस दिन उनके प्राण निकल जायेंगे वे जड़वत् हो जायेंगे, हरे-भरे नहीं रह पायेंगे। देख, तुझे प्राण तो मिल गये किन्तु अब इन प्राणों की शान तेरे शान्त रहने से है। जब तू शान्त होगा तब तू केवल जीवित ही नहीं रहेगा, हरा-भरा (खिलकर) भी रह पायेगा। अतः तू शान्त रह सके वह भाव अपना अर्थात् प्रिय मिलन का आह्वान कर क्योंकि प्रिय की अनुभूति पाकर ही शान्त रहना सम्भव है। जैसे-जैसे प्रियतम प्रभु तेरे सामने आता जायेगा वैसे-वैसे तू उसका जलवा सर्वत्र भी देख पायेगा क्योंकि वह कण-कण में समाया है। अन्यथा प्राण पाकर भी तू निष्प्राण ही बना रहेगा और हरे-भरे संसार में रहकर भी कष्ट पाता रहेगा।

१५०५ क्यों उदास क्यों हताश। जरा विचार। आधार कोई कल्पना नहीं—आधार सहारा—मन का।

ऐ प्राणी! 'सम्पूर्ण संसार आधार पर टिका है' यह कल्पना नहीं, अटल सत्य है। देख, जो इस सत्य को भूल जाते हैं वे सहारा पाकर भी सहारे का आनन्द नहीं ले पाते, चिन्तित व परेशान बने रहते हैं। ऐसे जन हमेशा उदास रहने लगते हैं एवं जीवन से हताश व निराश हो जाते हैं। देख, आधार जीने का बहुत बड़ा सहारा है। आधार के बिना मन चञ्चल हो घूमता रहता है तथा अनेक कष्टपूर्ण वारदतें करता रहता है जिनका कुपरिणाम तन को भुगतना पड़ता है। अतः तू विचार कर और जिस आधार के सहारे तेरा यह शरीर टिका है तू उसे जान कि तुझे मन को लेकर इतना परेशान न होना पड़े, तू उन चरणों का रसपान करता हुआ विभोर हो पाये।

१५०६ आनन्द की वृष्टि होती आ रही है। भक्त हृदय में भक्ति और प्रेम की बेल लहलहाती रही किन्तु भोली दुनिया के लोगों ने आनन्द की वृष्टि का न अनुभव किया और न भक्ति प्रेम का।

ऐ प्राणी! इस सृष्टि में प्रति मुहूर्त आनन्द की वृष्टि हो रही है। देख,

जो इस वृष्टि का आनन्द लेते हैं उन भक्तों के हृदय में भक्ति और प्रेम की बेल लहलहाती रहती है, उनका जीवन सरल, सरस व आनन्दमय रहता है। किन्तु जो यहाँ आकर अनजाने में ही स्थूल आकर्षणों में खो जाते हैं वे अबोध प्राणी इस आनन्द से वंचित ही रह जाते हैं। 'आनन्द की वृष्टि प्रति मुहूर्त्त हो रही है' न तो वे इसे जान पाते हैं और न 'कहीं भक्ति और प्रेम की लता लहलहा रही है' इसे ही जानते हैं—वे केवल यहाँ कष्ट पाते रहते हैं। यदि संयोगवश वे भक्त के दरशन पा जाते तो उनके समीप बैठ कर भक्ति व प्रेम के दरशन भी कर पाते और आनन्द की वृष्टि को भी देख पाते जो प्रति मुहूर्त्त हो रही है।

१५०७ तू क्या प्यार करेगा जब भोग से ही तृप्त न हो सका। प्यार तृप्ति देता है, प्रिय से मिलाता है।

ऐ प्राणी! प्यार अशरीरी भाव है, यह समर्पण के भावों से सजा होता है। भोग शरीर की अतृप्त आकांक्षा है, यह अधिक से अधिक भोगने के पश्चात भी और अधिक भोगने की जलन भरता है। देख, जब तक भोग की भूख शान्त नहीं होती तब तक व्यक्ति प्यार नहीं पा सकता, वह शरीर के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहता है। किन्तु भोग के पश्चात भी जब तृप्ति नहीं मिलती और तृप्ति के लिये उसका हृदय छटपटाने लगता है तब वह प्यार की ओर अभिमुख होता है। प्यार पाकर उसका हृदय शान्त हो जाता है, उसके जन्म-जन्मान्तर की जलन खत्म हो जाती है, उसकी दुनिया ईश्वरमयी हो जाती है और वह ईश्वर जो अनेक जन्मों से बिछुड़ा हुआ था उसके रोम-रोम में प्रतिष्ठित हो जाता है—ऐसा है यह प्यार जो साधारण से प्राणी को असाधारण बना देता है।

१५०८ सूरत क्या देखता है? 'सु' में रत होता तो सूरत क्या 'सुर' में भी रत होता और सभी कार्य का मुहूर्त्त किसी से न पूछना होता।

ऐ प्राणी! तू अपना सारा समय सूरत देखने में न विता। देख, तू अपने दिल की कद्र करना सीख और उसके लिये जो सबसे अच्छा है (ईश्वर) उसकी शरण ग्रहण कर। जब वह तेरा अपना बन जायेगा तब तेरा हृदय सजता चला जायेगा और तब तू केवल सूरत नहीं देखेगा, उन भावों को भी देखेगा

जो तेरे अन्तर में बसे तुझे प्रेरणा दे रहे हैं। किसी भी कार्य को सम्पादित करने के लिये तब तुझे किसी से पूछना नहीं पड़ेगा, तेरा अन्तर घट ही साक्षी बनेगा और उसी के इशारे पर तू प्रत्येक कार्य सम्पादित करता रहेगा। अतः तू सूरत न देख, तू उस सु (अच्छे) की ओर देख जिसने तेरी सूरत बनायी है कि तेरा हृदय प्रेरणा स्त्रोत बन जाये और तू उसके सहारे निष्कंटक आगे बढ़ता जाये और आनन्द मनाये।

१५०९ जीवन संध्या तक यदि ज्ञान दीपक प्रज्वलित न हुआ तो अंधेरी रात में क्या देख पायेगा? देख, पायेगा अपने प्रियतम को यदि भक्ति तेरा साथ दे, भाव तेरा चाव बढ़ाये।

ऐ प्राणी! ईश्वर मिलन के लिये मिला हुआ समय तू यदि गफलत में ही बिता देगा तो तेरे जीवन की संध्या (प्रौढ़ावस्था) समीप आ जायेगी किन्तु तेरे हृदय में ज्ञान का आलोक नहीं फैल सकेगा। फिर बुढ़ापे में तो तू कुछ भी नहीं कर पायेगा क्योंकि तब तो तुझमें कुछ करने की शक्ति ही नहीं रह जायेगी। अतः समय रहते-रहते तू भक्ति पथ पर कदम बढ़ा तथा वह भाव पा कि तुझमें ईश्वर को सम्मुख देखने का चाव पैदा हो जाये। तब तेरी जीवन संध्या रंगीन होगी अर्थात् तू प्रिय प्रभु को सम्मुख देख पायेगा और रात्रि तो मिलन का प्रतीक होगी अर्थात् तेरा प्रभु तुझमें मिल कर एक हो जायेगा।

१५१० प्रेम पूर्ण शब्द का भण्डार कहाँ? जहाँ तेरा प्यार रहता है। यह दुनिया तो राग द्वेष में संलग्न है और मग्न है 'तेरा मेरा' में, 'मैं' में। प्यार की दुनिया में प्यार की ही झंकार है, 'तेरा मेरा' बेकार है।

ऐ प्राणी! प्रेम पूर्ण शब्द जोर-जबर्दस्ती से नहीं पैदा किये जाते, जब प्यार की जाग्रति हृदय में होती है तब ये स्वतः मुख से उभरते हैं—जहाँ प्यार रहता है वहाँ प्रेम पूर्ण शब्द का भण्डार रहता है। अतः जहाँ तेरे हृदय में प्यार की झंकार पैदा हो, तू उस दुनिया में चल, उस दुनिया में तेरा-मेरा के लिए स्थान नहीं होगा, केवल प्यार ही प्यार होगा। तू यदि उस दुनिया की ओर नहीं बढ़ेगा तो तू स्थूल में भटक जायेगा और अनजाने में ही राग-द्वेष, तेरा-मेरा आदि में खो जायेगा। तब तेरी दुनिया मैं के कारण कष्ट से भरी

होगी और तू सदा रोता रहेगा—प्रेम का वहाँ नामोनिशान भी नहीं होगा। अतः जो तेरे सोये प्रेम को जगा दे तू उस आकर्षण की खोज कर कि तू प्रेम रूप हो जाये और प्रेम पूर्ण शब्दों का भण्डार पा जाये।

१५११ दिल दिखलाने की वस्तु नहीं और न समझने की। दिल की भाषा मौन, जिसे अति अल्प व्यक्ति ही समझ पाये।

ऐ प्राणी! दिल कोई वस्तु नहीं है जिसे दिखलाया जा सके और न कोई ऐसी चीज है जिसे बुद्धि से समझा जा सके, दिल की भाषा मौन है। जो दिल की कद्र करते हैं वे ही इसे देख सकते हैं और वे ही समझ सकते हैं। अन्य जन स्थूल जगत को ही सर्वस्व मानते व जानते हैं, उनका दिल रोता रहता है फिर भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते। ऐसे जन का दिल मर जाता है अर्थात उनमें जिन्दादिली का सर्वथा अभाव हो जाता है। देख, जहाँ जिन्दादिली नहीं वहाँ भी कोई जिन्दगी है? ऐसी जिन्दगी तो भारपूर्ण होती है। अतः तू यदि बहार युक्त जिन्दगी चाहता है तो दिल की कद्र करना सीख तथा उन राहों पर कदम न बढ़ा जिन पर बढ़ने से तेरा दिल कुचला जाये, तू हमेशा उन्हीं भावों को गले लगा जिनसे तेरा दिल सुरक्षित रह पाये—उस दिन तेरा जीवन अनूठा होगा।

१५१२ व्याकुल मन खोज रहा है प्रिय को—प्रिय प्यार में छिपा था और प्यार को प्राणी समझ न रहा था। अवस्था डगमग।

मन जब विकल हो जाता है तब प्राणी ईश्वर की ओर उन्मुख होता है लेकिन 'ईश्वर कहाँ है' वह इसे नहीं जानता अतः ईश्वर को वह कभी मन्दिर-मस्जिद में खोजता है, कभी व्रत-उपवास में, कभी तीर्थ-भजन में किन्तु उसके बेचैन मन को राहत नहीं मिलती। ऐ प्राणी! ईश्वर किसी स्थान विशेष में या किसी कार्य विशेष में नहीं है, वह प्यार में छिपा है। देख, जब तक तेरे हृदय में प्रेम का जागरण नहीं होगा तब तक तू ईश्वर को नहीं देख सकेगा। अतः तू ईश्वर की खोज न कर, उस सत्य साथ की खोज कर जिस साथ से तेरा सोया प्रेम जाग जाये। जैसे-जैसे तेरे हृदय में प्रेम का जागरण होगा वैसे-वैसे तू ईश्वर को प्रत्यक्ष देख पायेगा क्योंकि प्यार ही ईश्वर है। अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर कार्य तो करता रहेगा किन्तु तेरी भीतरी अवस्था सदा डगमगाती रहेगी।

१५१३ तान में अभिमान कैसा? नाम ले प्रिय का कि आनन्द आये।

ऐ प्राणी! गीत (भजन) ईश्वर की समीपता पाने के लिये गाये जाते हैं अथवा हृदय के उद्‌गार व्यक्त करने के लिए गाये जाते हैं—तभी गीतों से आनन्द मिलता है। यदि उन गीतों में अभिमान हो तो वे गीत गीत नहीं और ऐसे में तुझे उनसे कुछ मिलने वाला भी नहीं। अतः तू स्वयं को भूलकर ईश्वर का नाम ले अर्थात् तू 'नाम' में इतना डूब जा कि तुझे अपना ध्यान भी न रहे—तब नाम का अद्‌भुत प्रभाव होगा, नाम लेकर तू आनन्द सागर में डूब जायेगा। ऐसा नाम तुझे नाम लेने के लिए बार-बार प्रेरित करेगा परिणाम तू बार-बार उसे याद करता रहेगा तथा उसका आनन्द पाता रहेगा।

१५१४ रसना और रसना के लिये तरसना? यह कैसी विडम्बना है। प्रिय का नाम ले, रसना रसमय हो जायेगी।

ऐ प्राणी! यह रसना (जीभ) तुझे रस लेने के लिये मिली है, तरसने के लिये नहीं मिली। इस रसना को पाकर भी तू यदि रस न ले सका, तरसता ही रहा तो यह तेरे लिए दुर्भाग्य की बात होगी। अतः तू उस रस की खोज कर जिसे पान करने के पश्चात् रसना रसमय हो उठे तथा अन्य सभी रस उसके सामने फीके हो जायें। देख, आज तक तूने इसे अनेक रस चखाये हैं जिन्हें पान करके यह समय विशेष के लिये तो तृप्त हुई है किन्तु कुछ समय पश्चात् पुनः अतृप्त हो उठी है। अब एक बार तू इसे प्रभु के नाम का रस चखा। जब तू नाम में डूब जायेगा तब तेरी रसना रसमय हो उठेगी—रसना का आनन्द भी तू तभी पायेगा। अन्यथा इस रसना की मेहरबानी से अतृप्त आकांक्षा लिये हुए तू बार-बार संसार में आता जाता रहेगा।

१५१५ बन और जा, बन में न जा। तुझे फिर आना न पड़ेगा। तेरा 'तू' है। तेरा तरा और यों ही आया और यों ही मरा।

ऐ प्राणी! 'इस संसार में तेरा आगमन प्रभु-मिलन के लिये हुआ है' जब तू इस सत्य को जान जायेगा तब तुझे यहाँ लौट कर नहीं आना पड़ेगा। देख, ईश्वर को पाने के लिये तुझे वन में जाने की जरूरत नहीं क्योंकि ईश्वर वन में ही नहीं, ईश्वर सर्वत्र है। तू जहाँ बैठा है वहीं उसका बन कर बैठ क्योंकि

तेरा अपना वही है। उसके समीप बैठकर तू वह भाव पा जायेगा जिसमें देख पायेगा कि तू अन्यत्र नहीं, उसकी गोद में बैठा है। ऐसे में तेरा आना सार्थक होगा और जाना सुखद होगा—तू जीते जी ही मुक्त हो जायेगा। अन्यथा (ईश्वर की शरण पाये बिना) तेरा आना बेकार होगा और एक दिन तू यूँ ही चला जायेगा और जब तक रहेगा तब तक प्रति मुहूर्त्त बन्धन में जकड़ा रोता रहेगा।

१५१६ आया है और तेरे दर पर खड़ा है, दरवाजा खटखटा रहा है। खोल दरवाजा और मिल ले प्रिय से। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर सदा तेरे साथ था और सदा तेरे साथ है किन्तु जब तक ईश्वर का प्रतिरूप संत तेरे साथ नहीं तब तक तू ईश्वर को नहीं देख सकेगा। देख, सन्त साधारण मानव की तरह शरीर का सुख भोगने नहीं आते, वे मोह निद्रा में सोये हुए मानव को जगाने के लिये आते हैं अर्थात् वे तेरे लिये ही आये हैं और अपनी प्यार व भाव भरी वाणी से तेरे बन्द हृदय के द्वार खटखटा रहे हैं। देख, आज भी तू यदि होश में नहीं आयेगा तो प्रिय से मिलन की कोई आशा ही नहीं रह जायेगी। अतः तू इस सुनहले अवसर को न चूक, तू संशय भ्रम का परित्याग करके दिल खोलकर सन्त की शरण ग्रहण कर। उनके समीप बैठकर तेरी बन्द आँखें खुल जायेंगी और तू प्रिय प्रभु को भीतर व बाहर हमेशा साथ देख पायेगा।

१५१७ पहचानूँ कैसे? मनुष्य को भगवान कैसे मानूँ? न पहचान और न मान यह तो तेरा ही है और तेरा ही रहेगा।

मनुष्य की बुद्धि भ्रम उत्पादिनी है और यही कारण है कि सत्य आकर्षण भी जब उसे खींचता है तो बुद्धि भ्रम की अनेक बातें लाकर उपस्थित करती है। उसकी यही धारणा होती है कि 'मनुष्य भगवान कैसे हो सकता है'? उसे मालूम नहीं कि शरीर कभी भगवान नहीं होता, भगवान 'भाव' का नाम है। ऐ प्राणी! सन्त शरीरी नहीं होते, शरीर के माध्यम से वे दिखलायी अवश्य पड़ते हैं—वे भाव की मूर्त्ति होते हैं। भाव की जागृति के पश्चात ही तू उन्हें देख सकेगा अन्यथा तू उनके शरीर को ही देखेगा, उन्हें नहीं देख पायेगा। देख, तू उन्हें न भी मानेगा तो उनका कुछ बिगड़ने वाला नहीं, वे तो तेरे ही

हैं और तेरे ही रहेंगे किन्तु तू उनके सामीप्य का लाभ नहीं उठा पायेगा और आनन्द से वंचित ही रह जायेगा।

१५१८ बना सका? न बना और न सका। किसी का बनता तो बना बनाया था, सकने का प्रश्न ही न होता।

ऐ प्राणी! तू सन्त को यदि अपना बना सका या तू उसका बन सका तो तुझे फिर चेष्टा के द्वारा कुछ प्राप्त नहीं करना होगा, तब तू अपने सत्य रूप को स्वतः पा जायेगा। तू ईश्वर रूप है किन्तु स्थूल आकर्षण से घिर जाने के कारण तू अपने रूप को भूल बैठा है। अब जब तक तुझे कोई याद न दिलाये तब तक तू अपने रूप को नहीं पा सकता। देख, सन्त ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप है, सन्त के समीप तेरी बन्द आँखें खुल जायेंगी और तू अपने रूप में आ जायेगा। अतः तू सन्त के चरणों पर झुक जा कि तू अपने रूप को पा जाये और तेरी दुनिया आनन्द से सज जाये।

१५१९. आशीर्वाद देव, दानव, मानव सभी क्यों चाहते हैं? आशीर्वाद मानसिक बल है सबके लिए चोर के लिए साह के लिए।

ऐ प्राणी! आशीर्वाद सभी चाहते हैं क्योंकि इससे बल मिलता है। देख, देवता, दानव, मानव कोई इससे अछूते नहीं रहते। देवताओं को सदा भय बना रहता है कि 'हमारा देवत्व कभी छिन न जाये, हमारी प्रतिष्ठा कभी धूमिल न पड़ जाये' अतः उसकी सुरक्षा के लिए वे आशीर्वाद चाहते हैं। दानव अपने पराक्रम द्वारा अधिक से अधिक धन-जन प्राप्त करने के लिये (चाहे वह किसी दूसरे के हक का ही क्यों न हो) आशीर्वाद चाहते हैं और मानव अपने व्यापार में उन्नति के लिये एवं धन-जन, मान-प्रतिष्ठा आदि कायम रखने के लिये आशीर्वाद चाहते हैं। आशीर्वाद चोर और साह दोनों को बल प्रदान करता है। अतः तू आशीर्वाद की महिमा जान और जिस क्षेत्र में बढ़ना चाहता है उसके लिये आशीर्वाद ग्रहण कर—तभी तू सफलता पा सकेगा अन्यथा तू हताश निराश हो जायेगा, मंजिल तक नहीं पहुँच पायेगा।

१५२० खिलते को देखकर खिल न सका, हँसते को देखकर हँस न सका। सदा मुरझाता रहा, रोता रहा। तुझे क्या पता, संत आया है, बसन्त आया है, तुझे खिलाने के लिये, तुझे हँसाने के लिए।

ऐ प्राणी! तूने अपनी कैसी दुर्गति बना रखी है? न तू खिलते को देखकर

खिल सकता है और न हँसते को देखकर हँस सकता है—तू सदा भीतर ही भीतर परेशान बना रोता रहता है। अरे पगले! तुझे ऐसा जीवन बिताने के लिये तो जिन्दगी नहीं मिली थी? देख, अब भी तू यदि तेरी इस अवस्था से घबड़ायेगा नहीं तो तू इससे कभी उबर भी नहीं पायेगा। तब तू यह भी नहीं जान पायेगा कि बसन्त रूप सन्त का आगमन इस धरा धाम पर सदा से होता आया है। देख, उनका आगमन अन्य किसी कारण से नहीं होता, प्राणी मात्र को फूल की तरह खिलाने एवं उनमें हँसी का स्त्रोत भरने के लिये होता है किन्तु तेरे लिये यह रहस्य ही बना रहेगा जब तक तू रोता रहेगा। अतः तू रोना-धोना छोड़कर सन्त के समीप जा कि तेरी दृष्टि बदल जाये। तेरे अन्तर की चाह ही तुझे उनसे मिलायेगी और तब तू रोने में अपना कीमती समय नहीं गँवायेगा, तेरा जीवन बहारों से भर जायेगा।

१५२१ प्राण में प्रिय की अनुभूति नहीं तो भाव में कैसे आयेगा? ये जो आँखों में आँसू हैं, ये तो वक्ता की वाणी का प्रभाव है। भाव कुछ और ही अवस्था है, कहने सुनने की बात नहीं।

ऐ प्राणी! भाव एक अवस्था विशेष है जिसका प्रादुर्भाव प्राणों में प्रिय की अनुभूति के पश्चात् होता है। प्रिय की अनुभूति के पूर्व आँखों में अश्रु भाव के नहीं होते, वे वक्ता की वाणी के प्रभाव से आते हैं। वक्ता की भाव भरी वाणी जब हृदय से टकराती है तब आँखों में आँसू छलक उठते हैं। देख, भाव जल्दी से आता नहीं और जब आ जाता है तो फिर जाता नहीं। वह बाहर तो कभी-कभी आता है पर आने के पश्चात् स्वभाव में ऐसा घुलमिल जाता है कि भाव है कि स्वभाव है यह जानना कठिन होता है। भाव वाले के कार्य अटपटे होते हैं, उसकी अपनी दुनिया ही नहीं होती, प्रिय की दुनिया ही उसकी दुनिया होती है—उसका एक श्वांस भी प्रिय के बिना नहीं होता। अतः तू यदि भाव पाने का इच्छुक है तो तू प्रिय की अनुभूति प्राणों में पा तभी तू भाव योगी होगा।

१५२२ मुख मलिन क्यों? दिल चिन्ता से घिरा है, क्या करे? कुछ ऐसा करे कि मुख मलिन न रहे।

ऐ प्राणी! जिन्हें चिन्ता घेर लेती है उनके भीतर व बाहर की अवस्था ही बिगड़ जाती है, वे भीतर ही भीतर रोते रहते हैं परिणाम उनका मुख

मलिन रहने लगता है। देख, मुख आईना है, इसमें सदैव भीतर के भाव प्रतिविम्वित होते रहते हैं। भीतर में यदि दुःख-चिन्ता है तो मुख मलिन हो जाता है और भीतर में यदि हर्ष व प्रसन्नता है तो मुख खिल जाता है। अतः तू यदि प्रसन्नवदन रहने का अभिलाषी है तो तू कार्य न वदल, तू वह भाव पा जिसे पाकर तेरी दृष्टि वदल जाये अर्थात् तू कार्य करे किन्तु चिन्ता न करे। देख, ऐसा सम्भव तभी होगा जव तू सत्य पथ का पथिक होगा। सत्य पथ का पथिक होने के पश्चात् तेरा हृदय मैला नहीं रह जायेगा परिणाम तेरा मुख भी मैला नहीं रहेगा, वह अनुपम आभायुक्त होगा।

१५२३ चक्र कौन मिटाये? चक्रधारी, बाँसुरी विहारी, सदाचारी। यह दिल की क्यारी, दुनिया की खवारी, मन की सवारी से मुक्त न हो सकेगा जव तक कह न सकेगा हे वनवारी, अव तो बाँसुरी वजा भाव की कि चैन से जीवन बीते।

ऐ प्राणी! अनेक विडम्वनाओं (चक्रों) में व्यक्ति जो फँस गया है इससे उवरना उसके वश की वात नहीं है। उसकी अवस्था उस मकड़ी जैसी है जो अपने ही द्वारा वनाये जाल में फँसकर बैठ जाती है। इससे उवारने वाला एक सन्त ही है क्योंकि वह चक्रधारी (चक्र को जानने वाला) है, बाँसुरी विहारी (आनन्द में विचरण करने वाला) है और सदाचारी (सत्य आचरण करने वाला) है। देख, उसकी शरण पाकर ही तेरे दिल की संकीर्णता खत्म होगी, तू दुनिया के दुःखों को भूल सकेगा और तेरा मन के इशारे पर नाचना वन्द होगा। अतः तू उसके चरणों पर झुककर नम्र निवेदन कर कि "हे वनवारी! दुनिया के खेल तो मैंने वहुत देख लिये, अव तो तू अपनी भाव भरी बाँसुरी सुना कि मैं चैन से रह सकूँ और तेरी बाँसुरी में खोकर आनन्द से विचरण कर सकूँ"। जव तू सत्य हृदय से ईश्वर को पुकारेगा तव तेरी आवाज जरूर सुनी जायेगी और तू उसके खेल भी देख पायेगा।

१५२४ रात आई विश्राम के लिये, दिन आया काम के लिये। तूने ऐसा काम किया कि विश्राम भी न ले सका। अब जीवन भार।

ऐ प्राणी! रात विश्राम के लिये होती है और दिन काम के लिये होता है किन्तु तू रात को भी विश्राम नहीं ले पाता क्योंकि तव तेरा तन तो विश्राम

करता है किन्तु मन चक्कर ही काटता रहता है। इसका कारण यह है कि दिन में तू कुछ ऐसे कार्य सम्पादित करता है जिनके कारण तेरे तन-मन बोझिल हो जाते हैं। अरे पगले! जहाँ विश्राम नहीं वह भी कोई जीवन है—ऐसा जीवन तो बोझ होता है जिसे जीने का कोई अर्थ ही नहीं होता। अतः तू केवल उन्हीं कार्यों को कर जिन्हें करके तू राहत पाये, जिन्हें सम्पादित करके तेरे दिल पर बोझ आये, तू उन कार्यों को कभी न कर—तभी तू विश्राम पा सकेगा और तेरे जीवन में बहार भी तभी आयेगी।

१५२५ कहीं है। तो मिला भी या यों ही चर्चा मात्र है। सुना है, देता है अपना भाव, अपना बना कर। तो मिल उससे कि वेद शास्त्र की चर्चा से मुक्ति मिले।

ऐ प्राणी! 'ईश्वर है' तू इसे कल्पना से न जान—ऐसे में तू उससे दूर ही रह जायेगा। तब तू केवल उसकी बातें बनायेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं पायेगा। देख, वह अपने प्यारों को अपना बनाकर अपने भावों से सुसज्जित कर देता है। जो बातें वेद शास्त्र में पढ़ने-सुनने को मिलती हैं वे (बातें) उनके जीवन में प्रत्यक्ष दिखलायी देती हैं। अतः तू केवल ईश्वर की चर्चा करके खुश न हो, तू उससे मिल कि तुझे उसको वेद-शास्त्रों में न खोजना पड़े, तू उसे प्रत्यक्ष देख पाये। लेकिन तू उसे शरीर की चेष्टा से नहीं पा सकेगा, हृदय की सच्ची तड़प से ही पा सकेगा। उसे पाने के लिये जब तेरा हृदय तड़प उठेगा तब वह तुझसे दूर नहीं रह पायेगा, तू उसे अति समीप सदा अपने साथ देख पायेगा और तभी उसके भावों से तेरा हृदय सुसज्जित होगा।

१५२६ उधार माँगना क्या शराफत है। उद्धार की पुकार तो शराफत है।

ऐ प्राणी! तू किसी के द्वारा कहे हुए शब्दों को ईश्वर के सामने न दोहरा, ईश्वर के सम्मुख तू अपने भाव रख। देख, उधार की चीज अपनी नहीं होती और उधार माँगने की आदत भी अच्छी नहीं होती—उधार माँगने वाला खरीदकर खाना भूल जाता है। तू यदि उधार के शब्दों को ही दोहराता रहेगा तो तेरे अपने भाव उदय ही नहीं होंगे। अतः तू उधार की बातों का सहारा छोड़ दे एवं अपने अन्तर के भावों को ईश्वर के सम्मुख रख। जब तू अपने

भावों को व्यक्त करेगा तब तेरी आवाज सुनी जायेगी, तेरी आवाज में गजब का जादू होगा और वह तेरा उद्धार करने में समर्थ होगी अर्थात् तेरे जन्म-जन्मान्तर के बन्धन कट जायेंगे। अतः तू उधार की बातें न कर, तू अपनी बातें कह कि तेरा उद्धार हो।

१५२७ वरदहस्त देखना चाहता है? किस रूप में? वरदहस्त के कार्य प्रत्येक क्षण हो रहे हैं। तेरी दृष्टि कहाँ है? देखना सीख।

ऐ प्राणी! तू अपने ऊपर हमेशा ईश्वर की कृपा का वरदहस्त देखना चाहता है किन्तु देख नहीं पाता क्योंकि अभी तूने ईश्वर की शरण ही नहीं पाई है। देख, ईश्वर का वरदहस्त सदा तेरे सर पर है किन्तु तू उसे पहचानता नहीं, यदि परिस्थितियाँ तेरे अनुकूल होती हैं तो तू उसे कृपा समझता है और यदि प्रतिकूल होती हैं तो उसे कोप दृष्टि समझने लगता है। अरे पगले! ईश्वर तेरा अपना है। तेरी भलाई जिसमें है ईश्वर हमेशा वही कर रहा है, उसका कोई छोटा सा कार्य भी ऐसा नहीं जिसमें तेरी भलाई न हो। अतः तू संशय-भ्रम का परित्याग करके ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि तू उसके वरदहस्त को सदा अपने सर पर देख पाये, तेरे प्रत्येक कार्य का कर्त्ता एक ईश्वर बन जाये।

१५२८ मनुष्य के बुद्धि बल का अभिमान न केवल दूसरे मनुष्यों को कष्ट देता है बल्कि उसकी मान्यताओं को कुचलता आया है किन्तु वह क्या सफल हो सका? एक कीट प्रकृति की शक्ति को क्या जाने?

ऐ प्राणी! अभिमान अच्छा नहीं होता, अभिमान करने वाला दिन ब दिन पतन की ओर उन्मुख होता जाता है। देख, तुझे बुद्धि का बल विवेक की जागृति के लिये मिला है और तू है कि इसे पाकर अभिमान से घिर गया है। यदि तू अभिमान ही करता रहेगा तो न स्वयं सुख पा सकेगा और न किसी अन्य को सुख दे सकेगा—अन्य को भी तू नीचा दिखाता रहेगा और स्वयं भी छोटा होता जायेगा अर्थात् तू ईश्वर की सन्तान होते हुए भी स्वयं को दीन-हीन व एकांकी पायेगा—ईश्वर को भुलाने मात्र से तेरी हस्ती एक

कीट के समान हो जायेगी। तब बुद्धि बल द्वारा तू यदि प्रकृति की शक्ति को जानने की चेष्टा भी करेगा तो यह सम्भव नहीं हो सकेगा—ऐसे में विफलता ही तेरे पल्ले पड़ेगी। अतः तू यदि प्रकृति का रहस्योद्घाटन चाहता है तो नम्र होकर पुरुष (प्रभु) की शरण ग्रहण कर कि ईश्वर की दुनिया तेरी अपनी बन जाये—प्रकृति का रहस्य तब स्वतः तेरे सम्मुख स्पष्ट हो जायेगा।

१५२९ मुझे क्या देखता है? मेरे काम देख, वाणी सुन, शान्ति पायेगा। नहीं तो भक्त भक्त कह कर समय गँवायेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर को स्थूल चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, भाव की आँखों से देखा जा सकता है—जहाँ ईश्वर के भक्त रहते हैं, ईश्वर वहीं प्रतिबिम्बित होता है। देख, भक्त के कार्यों में एवं उनकी वाणी में ही तुझे ईश्वर का आभास मिलेगा—शान्ति भी तुझे वहीं मिलेगी। अन्यथा अनेक कार्य करके तू स्वयं को भक्त समझ बैठेगा किन्तु शान्ति के दर्शन तुझे दुर्लभ होंगे एवं ईश्वर की समीपता भी तू नहीं पा सकेगा। अतः तू यदि ईश्वर को देखना चाहता है तो जो ईश्वर के हैं उन्हें देख एवं उनकी वाणी सुन कि 'ईश्वर क्या है' तू इसे जान पाये। तब तेरा हृदय शान्त व प्रसन्नचित्त होगा अन्यथा तू ईश्वर के नाम पर इधर से उधर भटकता रहेगा, तेरे हाथ कुछ नहीं आयेगा।

१५३० संकीर्त्तन कर परमानन्द का, संकीर्ण भाव क्यों रखता है? ऐसा रखना ही खता (अपराध) है। संग चल प्रकृति के फलना, फूलना सीखे।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर का बनकर ईश्वर का नाम ले, तभी तू नाम का आनन्द पायेगा। जब तक तू ईश्वर से अलग रहकर ईश्वर का नाम लेगा तब तक नाम लेना केवल काम होगा, नाम के आनन्द से तू वंचित ही रह जायेगा। देख, तेरे हृदय की संकीर्णता (मैं) ने तुझे ईश्वर से दूर कर रक्खा है अन्यथा ईश्वर तुझसे दूर है नहीं, सदा तेरे साथ है। जब तक संकीर्णता का घेरा नहीं टूटेगा तब तक साथ रहने के पश्चात् भी तू ईश्वर से दूर ही बना रहेगा। अतः तू इस घेरे को तोड़कर आगे बढ़ और प्रकृति के कण-कण में उसका जलवा देख कि हरी-भरी प्रकृति तुझे हरा-भरा करती रहे, उसके साथ-

साथ तू भी फलता-फूलता रहे। ईश्वर तेरे प्राणों में तब प्रतिष्ठित हो जायेगा, ईश्वर को तू क्षण भर के लिये भी नहीं भूल पायेगा।

१५३१ भक्त की पूजा भगवान की पूजा है यदि यह शुभ विचार है भक्त के भक्त का तो ठीक है। किन्तु भक्त और भगवान में अन्तर देखने वालों का अन्तर कौन मिटाये? भक्त या भगवान।

ऐ प्राणी! भक्त वही है जो पूर्णतया प्रभु चरणों में झुक गया हो एवं जिसके रोम-रोम में ईश्वर का वास हो गया हो। ऐसा भक्त ही ईश्वर का प्रतिरूप होता है और ऐसे भक्त की पूजा ही भगवान की पूजा होती है। देख, तूने यदि कहीं भक्त को देखा है और तेरी उनके प्रति यही धारणा है तब तो ठीक है, तब तेरा हृदय उनके समीप बैठकर ईश्वरीय भावों से सुसज्जित होता चला जायेगा। किन्तु तूने यदि उन्हें व्यक्ति के रूप में पाया है तो तू उनसे कुछ उपदेश की बातें सुन लेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं पायेगा—ऐसे में तेरा उनसे मिलन बेकार हो जायेगा। अतः तू यदि भक्त का भक्त है तो तू उनके कार्यों को न देख, तू उनका भाव देख। जब तू भाव का उपासक होगा तब तेरे लिये भक्त और भगवान एक होंगे और भक्त के रूप में तू भगवान को ही सम्मुख खड़ा देख पायेगा।

१५३२ पुकार में ही चार प्रकार के भक्तों का भाव छिपा है। कौन ज्ञानी? जिसे ज्ञान का अभिमान न हो।

ऐ प्राणी! तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर। जब तू सच्चे हृदय से ईश्वर की पुकार करेगा तब तुझमें समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाव उदय होंगे—कभी आर्त्त (करुण) भाव का उदय होगा, कभी विशेष अर्थ से तू उसे पुकारेगा, कभी जिज्ञासा उत्पन्न होगी और कभी ज्ञानोदय होगा। देख, तू यदि किसी भी भाव में अटकेगा नहीं, स्वयं को भूलकर ईश्वर की ओर ही देखता रहेगा तो तू सही मायने में ज्ञानी हो जायेगा। अन्यथा तुझे जो कुछ प्राप्त है उसके अभिमान से तू घिर जायेगा और सब कुछ पाकर भी कुछ नहीं पायेगा अर्थात् अज्ञान अन्धकार से ही घिरा रहेगा। अतः तू सदा ईश्वर की ओर बढ़ता चल और जो कुछ तुझे मिले उसे ईश्वर का प्रसाद समझ कर ग्रहण कर—तभी तू अभिमान-शून्य रहकर जीवन का आनन्द ले सकेगा।

१५३३ आरती तो आर्त्तजन का कष्ट हरण करती है और प्रसाद देता है प्रसन्नता। इस मर्म को न समझ व्यर्थ ही लोग कर्म में लीन।

ऐ प्राणी ! आरती आर्त्तजन के कष्ट का हरण करने वाली है और प्रसाद प्रसन्नता देने वाला है किन्तु जो इस रसमय रहस्य को नहीं जानते वे पूजा के नाम पर कर्म तो करते हैं किन्तु उसके मर्म से दूर ही रह जाते हैं। देख, पूजा अन्य कर्मों की तरह कोई कर्म नहीं, पूजा हृदय का बोझ हरण करने वाली है किन्तु पूजा बोझ उनका ही हरती है जो आर्त्त होकर ईश्वर की शरण लेते हैं—ऐसे जन के लिये पूजा प्राणदायिनी होती है। पूजा उनके शुष्क जीवन में बहार भर देती है एवं प्रसाद उन्हें प्रसन्नता देता रहता है। ऐसी है यह पूजा और ऐसा है यह प्रसाद जिसे करके व पाकर जीवन ही सुनहला हो जाता है।

१५३४ (प्रेम के आँसू) गिर जायें तो मोती हैं। बिखर जायें तो शबनम हैं। (ओस)

ऐ प्राणी ! प्रेम अमूल्य धन है, इस धन के सामने सभी धन तुच्छ हैं। यह धन जल्दी से किसी को मिलता नहीं और यदि संयोगवश मिल जाता है तो फिर छूटता नहीं क्योंकि यह होता ही ऐसा है। देख, प्रेम के आँसू तो और भी कीमती होते हैं, ये जब प्रिय प्रभु के लिये बहने लगते हैं तो वह प्रभु जो किसी भी बन्धन में नहीं बँधता, वह भी प्रेम बन्धन में बँध जाता है, इतना ही नहीं, इन आँसुओं की गाथा युगों-युगों तक गायी जाती है। व्यक्ति आते रहते हैं और जाते रहते हैं किन्तु प्रेम न आता न जाता—स्थायी रहता है। देख, ऐसा प्रेमिल हृदय पाकर जब प्रेमी सबकी ओर देखता है तो सब भी उसे बहुत भाने लगते हैं। ऐसे में वह प्रेम अनेकों में बिखर जाता है और उन्हें सुख पहुँचाने लगता है—ऐसे प्रेम को पाकर कितनों का ही जीवन धन्य हो जाता है।

१५३५ कुछ दिल की कथा सुनाओ। तुम भी तो दिल लगाओ, तो मजा आये कहने सुनने का। ज्ञान ध्यान की बातें लोग केवल कहते ही हैं, न करते और न तल्लीन होते।

ऐ प्राणी ! दिल की बातें दिलदार के सामने ही कही जा सकती हैं। जब

तक सुनने वाले का दिल खिलता नहीं तब तक दिल की कथा कहने वाले को भी मजा नहीं आता और न सुनने वाले को ही रस मिलता है और यही कारण है कि ईश्वर के नाम पर ज्ञान, ध्यान की बातें ही अधिक देखने व सुनने को मिलती हैं, दिल की बातें तो कहीं-कहीं ही होती हैं। देख, ज्ञान-ध्यान की बातें भी लोग केवल मुख से करते हैं, न उन्हें ज्ञान होता है और न वे ध्यान मग्न (तल्लीन) हो पाते हैं क्योंकि अभी उन्हें ईश्वर के नाम पर कर्म ही प्रिय हैं, ईश्वर प्रिय नहीं। जब ईश्वर प्रिय होगा तब उन्हें बातें नहीं सुहायेंगी, उनके दिल में प्रभु की छवि उतर जायेगी और केवल दिल की बातें ही उन्हें भायेंगी।

१५३६ यह भक्ति है ? यह प्रेम है ? जहाँ माँग है, स्वाँग है। भक्ति में शरणागति प्रधान, प्रेम में आत्म बलिदान। ग्रहण कर सका तो जीवन महान।

ऐ प्राणी ! भक्ति में शरणागति प्रधान होती है और प्रेम में आत्म बलिदान। जब इन भावों से सुसज्जित होकर भक्ति और प्रेम हृदय में प्रवेश पाते हैं तो जीवन महान हो जाता है और अन्य के लिये प्रेरणावर्द्धक बन जाता है। किन्तु ऐसा होता ही अति अल्प है, भक्ति के नाम पर अधिकांश जगह माँगना ही अधिक पाया जाता है। समय-समय पर विविध प्रकार की माँगें तथाकथित भक्त ईश्वर के सामने करते आये हैं जिसे भक्ति का नाम देना भी शर्म की बात है। यही बात प्रेम की भी है। प्रेम के नाम पर भी प्रेम का स्वाँग अधिक पाया जाता है। प्रेम का स्वाँग तो प्रेम नहीं, ऐसा प्रेम तो प्रेम से कोसों दूर करता है—इसे अपनाकर तो जीवन की मधुरिमा ही खत्म हो जाती है। अतः तू माँग व स्वाँग में जीवन के कीमती क्षण न बरबाद कर, तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर एवं उसके चरणों पर न्योछावर हो जा कि भक्ति और प्रेम तेरा जीवन बन जाये।

१५३७ दुर्दमनीय काम है यह धारणा आज भी अमान्य नहीं करते लोग, आंशिक यह ठीक है. किन्तु राम की शरणागति उससे भी कठिन है।

ऐ प्राणी ! अनादिकाल से यह धारणा चली आ रही है कि 'काम पर

विजय पाना अति कठिन है' और आज भी यह धारणा अमान्य नहीं। यह बात बहुत कुछ अंशों में सत्य भी है किन्तु राम की शरण पाना तो उससे भी कठिन है। देख, राम के नाम पर कुछ काम करने सहज हैं किन्तु राम की शरण पा जाना अत्यन्त कठिन है। जब अन्य आकर्षण नहीं रह जाते, राम प्रधान हो जाता है, राम के लिये व्यक्ति पूर्णतया मिटने को तैयार हो जाता है—राम की शरण तभी मिलती है। अतः तू काम पर विजय पाने की चेष्टा न कर, राम को पा कि काम तेरे लिये प्रधान न रह जाये। तब काम तुझे परेशान नहीं करेगा, तू सदा राम में आराम करेगा।

१५३८ प्रकृति से युद्ध नहीं करना है, अपनी ही भावना शुद्ध करना है। झगड़ा क्यों करता है, प्यार कर कि जीवन का आनंद आये।

ऐ प्राणी! तुझे मिला हुआ समय थोड़ा सा है, इसे तू चाहे युद्ध करने में बिता दे या प्रेम करने में लगा दे, यह तेरी मर्जी की बात है। देख, जब तक तेरी भावना शुद्ध नहीं होगी तब तक तू यहाँ झगड़ता ही रहेगा, प्रकृति सदा तुझे प्रतिकूल ही लगेगी किन्तु जब तेरी भावना शुद्ध हो जायेगी तब तेरा किसी से भी झगड़ा नहीं रहेगा, दुश्मन भी तब तेरा दोस्त होगा। अतः तू इस मिले हुए समय का सदुपयोग कर अर्थात् तू अपनी भावना शुद्ध कर ले और इसके लिये तू सच्चाई का रास्ता पकड़। जब तू नम्र होकर सत्य पथ पर आगे बढ़ेगा तब तेरा जीवन प्यार से भर जायेगा—जीवन का आनन्द भी तू तभी पायेगा।

१५३९ एक नजर इधर भी। उधर न देख, धर पकड़ है दुनियादारी की। नजर में नजर मिला उससे जिसकी नजर में दुनिया कुछ भी नहीं।

ऐ प्राणी! दुनिया तुझे मीठी-मीठी बातों द्वारा बहुत लुभायेगी किन्तु तू उसकी बातों में न फँसना। तू यदि उसको ही सत्य मान लेगा तो 'सत्य क्या है' इसे कभी नहीं जान पायेगा। देख, तू सदा उससे नजर मिलाना जिसकी एक नजर से सृष्टि का सृजन हुआ है—तब दुनिया तुझे बहुत छोटी नजर आयेगी और दुनिया के आकर्षण तुझे लुभा न पायेंगे। तेरी चाह ही तुझे उससे

मिलायेगी और तब तू वह दृष्टि पा जायेगा जिसे पाकर सृष्टि का सत्य रूप देख पायेगा। अतः तेरे मार्ग में चाहे कितने भी प्रलोभन आ जायें तू उनकी ओर न देखना, तू सदा उसकी ओर देखना जो तेरा अपना है—उसकी शरण में बैठकर ही तू निश्चिन्त रह पायेगा एवं मौज मनायेगा।

१५४० जिस भूमि पर पैर रखा वही फिसलती नजर आई। पैर क्यों रखता है? पैरों पर पड़ उस कर्त्ता के जिसने भूमि बनाई।

ऐ प्राणी! तू यदि चेष्टा के द्वारा सफलता पाना चाहेगा तो हो सकता है कि तू सफलता पा जाये और यह भी हो सकता है कि तू असफल ही रह जाये किन्तु तुझे यदि उस कर्त्ता का भरोसा है जिसने इस संसार का सृजन किया है तो सफलता तेरे कदम चूमेगी। देख, झुकने वाला कभी रुकता नहीं, वह दिन ब दिन आगे बढ़ता जाता है। अतः तू 'मैं' के साथ आगे बढ़ने का प्रयत्न न कर, तू झुक कर आगे कदम बढ़ा कि तेरे कदम कहीं अटकें नहीं, तू अनवरत आगे बढ़ता जाये। तब यदि रास्ते में मुसीबतें भी आयेंगी तो तुझे रोक नहीं पायेंगी, तू बेधड़क आगे बढ़ता हुआ मंजिल तक पहुँच जायेगा।

१५४१ रहता है इसी दुनिया में और बात करता है उस दुनिया की जो दिखलाई नहीं देती। दे कैसे इसने तो ले (ग्रहण) ने की धुन लगा रखी है। देता श्रद्धा, भक्ति तो प्रत्यक्ष होता अदृश्य संसार।

ऐ प्राणी! अभी तुझे स्थूल जगत के आकर्षणों ने घेर रखा है, तू अधिक से अधिक स्थूल उपलब्धि ही करना चाहता है। देख, जब तक तुझे यह दुनिया लुभाती है तब तक तू दूसरी दुनिया की चाहे कितनी भी बातें क्यों न कर ले, तू उस दुनिया को पा नहीं सकेगा क्योंकि वह दुनिया बातों से मिलने वाली नहीं, श्रद्धा-भक्ति से मिलने वाली है। जब श्रद्धा, भक्ति से तू प्रभु के चरणारविन्द पर झुक जायेगा तब तुझे न तो यह दुनिया छोड़नी पड़ेगी और न वह दुनिया (जो अभी तेरी आँखों से ओझल है) खोजनी पड़ेगी, तेरा स्वतः कुछ छूट जायेगा और तू स्वतः कुछ पा जायेगा—कुछ ऐसा पा जायेगा जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जायेगा।

१५४२ देना तो अति कष्ट कर है तो पाना तो अति-अति कष्ट कर। बेचैनी प्राप्त करने की, सर्वस्व लुटा देती है।

ऐ प्राणी! जब तक देने में कष्ट होता है तब तक पाना सम्भव है ही नहीं क्योंकि पाना तो देनेसे भी अधिक कष्टकारी है। देख, पानेकी अभिलाषा जब उग्र रूप धारण कर लेती है, पाये विना चलता ही नहीं तभी कुछ पाया जा सकता है और ऐसे में ही (कुछ पाने के लिये) सब कुछ लुटाया भी जा सकता है। अतः जिन्होंने कुछ पाया है तू उनकी ओर देख कि तेरा हृदय भी सत्य भावों को पाने के लिये छटपटा उठे। उनके भाव जब तेरे अपने हो जायेंगे अर्थात् पाने के लिये जब तेरा हृदय तड़प उठेगा तब तुझे कुछ भी (तन-मन-धन) रास नहीं आयेगा, तू हँसते-हँसते प्राण भी न्योछावर करने के लिए तैयार हो जायेगा क्योंकि सत्य की दुनिया होती ही ऐसी है।

१५४३ यदि मैं न नाचूँ? 'मैं' सबको नचाता है। 'मैं' रहित होने का सरल पथ शरणागति।

ऐ प्राणी! 'मैं' अच्छों-अच्छों को नचा देता है, 'मैं' रहे और नचाये नहीं ऐसा नहीं हो सकता। देख, जो ऐसा समझते हैं कि 'मुझे कोई नहीं नचा सकता' वे अभी भ्रम में हैं क्योंकि जब तक 'मैं' की हस्ती है तब तक कोई नचाये या न नचाये, 'मैं' ही नचाता रहता है। अतः तू यदि इस नाचसे मुक्ति चाहता है तो तुझे 'मैं' रहित होना पड़ेगा अर्थात् ईश्वर की शरण लेनी होगी। ईश्वर की शरण ही 'मैं' को गलायेगी और दिखलायेगी कि "प्रत्येक कार्य का कर्त्ता ईश्वर है। ईश्वर को भूल जाने से भ्रम के कारण ही तू 'मैं' से घिर गया था अन्यथा 'मैं' कुछ है ही नहीं, केवल ईश्वर ही सब कुछ है"।

१५४४ हमें भी रास्ता बतलाओ। रस लो इष्ट के पूजन में। रास्ता स्वयं इष्ट बतलायेगा।

ऐ प्राणी! ईश्वर का मार्ग ऐसा नहीं कि जिस पर पता पूछ कर बढ़ा जा सके। देख, ईश्वर की ओर जाने के अनेक रास्ते हैं भी और नहीं भी क्योंकि ईश्वर के समीप रसपूर्ण भावना से जाया जा सकता है, किसी पथ विशेष को अपनाकर नहीं। अतः तू ईश्वर की ओर बढ़ना चाहता है तो इष्ट के पूजन में रस ले। जैसे-जैसे पूजन से तुझे रस मिलता जायेगा और तेरा हृदय तृप्त

होता जायेगा वैसे-वैसे ईश्वर तेरे करीब होता जायेगा और तब तुझे अन्य से रास्ता नहीं पूछना पड़ेगा, तेरा इष्ट ही तेरे प्राणों में बसा तेरा मार्गदर्शन करता रहेगा। तब तेरा एक कदम भी गलत नहीं होगा, प्रत्येक कदम ईश्वर के साथ होगा और ईश्वर के लिये होगा।

१५४५ मद से बड़ा कोई उन्माद नहीं। दम छूटे, मद न छूटे जब तक शरणागति का भाव न ले।

ऐ प्राणी ! मद का नशा सबसे भंयकर होता है। यह नशा जब चढ़ जाता है तो जल्दी से छूटता नहीं, चाहे शरीर भले ही छूट जाये। देख, इस नशे में चूर हुआ व्यक्ति अपने समान किसी को नहीं समझता, वह सबसे ऊँचा-बड़ा अपने को ही देखता है। नशे में धुत रहने के कारण भला-बुरा देखने की दृष्टि भी उसमें नहीं रह जाती, फिर भी वह किसी की सुनता नहीं, सदा अपनी ही चलाता है। ऐसे मदान्ध व्यक्ति का जीवन मृतप्राय हो जाता है। देख, मद छूटने का रास्ता केवल एक है—वह है शरणागति। शरणागति झुकने से प्राप्त होती है या यों कहा जाये कि शरणागति से ही झुकने के भाव आते हैं और जब झुकने के भाव आ जाते हैं तो मद नहीं टिक पाता, वह ऐसे पलायन करता है जैसे सूर्योदय होने से अन्धेरा। अतः तू ईश्वर की शरण ग्रहण कर कि मद तेरे समीप न रह पाये।

31, 34, 36

1040-
1042-
1054